मानव अर्थशास्त्र

धर्मादर्थश्च कामश्च ।

नरहरि द्वारकादास परीख

अनुवादक

रामनारायण चौधरी



नवजीवन प्रकाशन मंदिर

अहमदाबाद-१४

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय अहमदाबाद-१४

पहली आवृत्ति ५०००

रु ७५०

जनवरी १९६४

जो अर्थशास्त्र किसी भी व्यक्ति या राष्ट्रके विकास अथवा कल्याणमें रुकावट डालता है ... और जो एक देशको दूसरे देशमें लूट चलानेकी छूट देता है वह अर्थशास्त्र अनीतिमय है पापरूप है।

यंग इंडिया १३-१०-२१ गांधीजी

'हमारे गांव पामाल हो गये हैं क्योंकि हमें सच्चे अर्थशास्त्र और सच्चे समाजशास्त्रका ज्ञान नहीं है।

यंग इंडिया १३-३-२७ गांधीजी

प्रकाशकका निवेदन

मानव अर्थशास्त्र का मूल गुजराती संस्करण सन १९४५ में नवजीवन द्वारा प्रकाशित किया गया था। उसके ग्यारह वर्ष बाद उसकी दूसरी आवृत्ति प्रकाशित हुई। इस बीच भारत स्वतंत्र हुआ और उसमें अनेक परिवर्तन हुए। एक पंचवर्षीय योजना पूरी हुई और दूसरी पंचवर्षीय योजना आरंभ हुई। पुस्तककी दूसरी आवृत्ति प्रकाशित करते समय उसमें विशेष संशोधन और परिवर्तन करना संभव न हो सका। परन्तु मूल गुजराती पुस्तकका हिन्दी अनुवाद कराते समय उसमें आवश्यक परिवर्तन करना लेना हमें उचित मालूम हुआ। हमारा विनती पर श्री विट्ठलदास कोठारीने यह कार्य अपने हाथमें लिया। मूल गुजराती पुस्तक पहली बार प्रकाशित हुई उसके पूर्व श्री विट्ठलदासभाई उसे आद्योपान्त देख गये थे और उसके विषयमें उन्होंने उपयोगी सूचनायें भी की थीं। पुस्तक प्रकाशित होनेके बाद श्री कोठारीने वर्षों तक गूजरात विद्यापीठके महाविद्यालयमें इस पुस्तकका उपयोग किया है। अपने इसी अनुभवके आधार पर मूल पुस्तककी दूसरी आवृत्तिमें जो परिवर्तन करना उन्हें उचित लगा वह सब करके उन्होंने उसे अद्यतन बनानेका प्रयत्न किया है।

आशा है यह हिंदी संस्करण अर्थशास्त्र-सम्बन्धी गांधीवादी दृष्टि पर प्रकाश डालनेमें सहायक होगा और विद्यार्थियों तथा सामान्य पाठकोंके लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा। इस संस्करणके विषयमें प्राध्यापक गण और पाठक अपने अनुभव और सूचनायें कृपया हमें भेजेंगे, तो इसकी दूसरी आवृत्तिके समय उन पर ध्यान दिया जायगा।

श्री विट्ठलदास कोठारीने कठिन परिश्रम करके मूल पुस्तकको अद्यतन बनाया उसीके फलस्वरूप हम यह हिन्दी संस्करण पाठकोंके सामने रख सके हैं। इसके लिए हम श्री विट्ठलदासभाईके हृदयसे आभारी हैं।

२६–१–’६४

लेखकका निवेदन

[पहली आवृत्ति]

सन् १९३०में नासिक जेलमें श्री किशोरलालभाई और मैं पास पास बिस्तर लगाकर काफी समय तक साथ रहे थे। अन्य अनेक बातोंके साथ हमने अपने देशके आर्थिक प्रश्नोंकी भी खासी छानबीन की। कम्युनिस्ट मित्रोंके साथ भी हमारी काफी चर्चाएं होती था। इसके सिवा कुछ विद्यार्थी मेरे पास गांवोंके प्रश्न हल कराने और खादीका अर्थशास्त्र पढ़ने आते थे। इससे स्वाभाविक रूपमें ही अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंकी चर्चा कभी कभी निकलती थी और यह कमी भी महसूस होती थी कि इस विषय पर गुजरातीमें कोई अच्छा पुस्तक नहीं है। श्री किशोरलालभाई मुझे बार बार कहा करते थे कि 'आप अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक लिख डालिये।' मैं कहता 'इसके लिए बहुत पुस्तकें पढ़नी पड़ेगी। इतना समय मैं कहांसे निकालूं?' तब वे कहते 'कोई भी पुस्तक देखे भाले बिना जो कुछ स्मरण हो वही विद्यार्थियोंके साथ बातचीत करते हुए इस ढंगसे अपनी नई दृष्टिसे लिख डालिये।' नासिक जेलमें तो हम सजा पूरी होनेसे पहले ही छूट गये। उसके बाद १९३२में भाई मेहरअली और मैं वरवडा जेलमें साथ हो गये। हमारी इच्छा तो साथ रहनेकी बहुत थी परन्तु हमें अलग अलग बरकोंमें रखा गया था। फिर भी रोज शामको चारसे पांच बजे तक हम मिलते थे और घूमते घूमते बातें करते थे। उन्होंने भी मुझसे बहुत आग्रह किया कि आपको अर्थशास्त्र पर एक विस्तृत पाठ्यपुस्तक लिखनी ही चाहिये। उसके बाद भी जब जब भाई मेहरअली मुझसे मिले तब तब उन्होंने मुझसे अर्थशास्त्रकी पाठ्यपुस्तककी मांग की। खास तौर पर इन दो मित्रोंकी प्रेरणासे ही मैं यह पुस्तक लिखनेमें प्रवृत्त हुआ ऐसा कहा जा सकता है। कितनी ही देरसे क्यों न हो मैं इनकी प्रेरणासे उत्पन्न हुए संकल्पको पूरा कर सका हूं इसके लिए आनन्दकी भावनाके साथ साथ इन दोनों प्रियजनोंके प्रति कृतज्ञताकी भावना भी मैं अनुभव कर रहा हूं।

आज तक ज्यादातर अर्थशास्त्रियोंने पूंजीवादी पद्धतिका ही समर्थन किया है और इस बातका ही महत्त्व दिया है कि किसी भी तरह संपत्तिका उत्पादन बढ़ाया जाय। अर्थशास्त्रकी पाठ्यपुस्तकोंकी भूमिकामें यह लिखा

अक्सर आता है कि सम्पत्ति एवं साधन [illegible] मनुष्यकी सुख-सुविधा ही होना चाहिए। परन्तु उसके बाद [illegible] पूँजीवाद इसका विचार ही नहीं किया जाता कि मनुष्यकी सुख-सुविधाका और मनुष्यका क्या होता है। सम्पत्ति ही लक्ष्य बन जाता है। पूँजीवाद जितना उत्पादन [illegible] उसका [illegible] कर भौतिक साधन-सम्पत्ति [illegible] ही साधी जाती है। मनुष्यका [illegible] और उसके [illegible] और [illegible] कोई योजना [illegible]। उसका विचार तक नहीं किया जाता। [illegible] उत्पादन बढ़ानेकी योजना जरूर बनाई जानी चाहिए। [illegible] मानव समाज [illegible] चाहिए [illegible] देखना चाहिए कि उत्पादनके कामसे [illegible] मनुष्यका [illegible] होता है। [illegible] करनेवाले मनुष्यका व्यक्तित्व [illegible] उसका विकास होना चाहिए। मनुष्यका [illegible] और [illegible] इस बातमें है कि उस [illegible] उत्पादनके लिए [illegible] मालूम है कि उसे [illegible] काम मिलना चाहिए जिससे उसकी समग्र शक्तियोंका विकास हो और वह अपना जीवन तरह-तरहकी [illegible] विविध प्रवृत्तियोंसे भरा [illegible] बना सके तथा उसके और समाजके विकासकी [illegible] हो।

इस पुस्तकमें सारे आर्थिक प्रश्नोंका विचार मानवके सुख और प्रगतिको ध्यानमें रखकर ही किया गया है। इसीलिए इस पुस्तकका नाम 'मानव अर्थशास्त्र' रखा गया है। यह नाम रखनेका दूसरा हेतु यह भी है कि इसमें किसी एक ही वर्ग या एक ही [illegible] स्वार्थकी दृष्टिसे विचार नहीं किया गया है बल्कि सारे मानव-समाजके हितकी दृष्टिसे — साधारण शब्दोंमें सर्वोदयकी दृष्टिसे — विचार किया गया है।

पूँजीवाद और साम्राज्यवादके खिलाफ आज सारी दुनियामें प्रबल विद्रोह उठ खड़ा हुआ है। [illegible] समझकर इस बातको समझ गये हैं और यथासंभव अपने अस्तित्वको कायम रखनेके लिए वे अपने विरोधमें खड़ी होनेवाली शक्तियोंके साथ समझौता करनेकी कोशिशें भी कर रहे हैं। अर्थशास्त्रके जिन पुराने सिद्धान्तोंका लाभ उठाकर पूँजीवाद पुष्ट हुआ और स्थिर बना उन पुराने सिद्धान्तोंकी आड़में अब पूँजीपति भी [illegible] नहीं [illegible]। 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः' — इस सूत्रके अनुसार वे जितना बचाया जा सके उतनेको बचा लेनेमें ही बुद्धिमानी समझते हैं। उनका सयाना स्वार्थ उनसे मुँहसे भी मजदूरोंकी भलाई और समाजकी

सुरक्षितताकी बातें कहलवाता है। फिर भी हमारे कला और वाणिज्य व्यवसायके कॉलेजोंमें अभी तक वही पुराना अर्थशास्त्र पुराने ढंग पर चलाया जाता है। प्रतिस्पर्धाको निरंकुश रखना जाताकी आवश्यकताय बताते जाना यह मानना कि चीजोंकी कीमतें माग और पूर्तिके आधार पर ही निश्चित हो सकती है किसी भी तरह मालको सस्ता बनाना विज्ञापनों द्वारा और वचनकी चतुराई द्वारा इस मालके ग्राहक खड़े करना — इन्हीं बातोंमें आर्थिक प्रगति समाई हुई है ऐसे अजीब खयाल अपने दिमागोंमें भरकर हमारे नौजवान विद्यार्थी कॉलेजोंसे निकलते है। इस पुस्तकका एक उद्देश्य यह भी है कि विद्यार्थियोंके दिमागमें भरे जानेवाले इन गलत विचारोंका भ्रम दूर करके अर्थशास्त्रके ऐसे सच्चे सिद्धान्त प्रस्तुत किये जाय जिनसे समाजका भला हो सके। मैं यह आशा तो नहीं रखता कि आजके सरकारी कॉलेजोंमें यह पुस्तक पाठ्यपुस्तकके रूपमें रखी जायगी। परन्तु इस पुस्तकको कॉलेजके विद्यार्थी यदि पढ़ें तो मैं इतनी आशा जरूर रखता हूँ कि उनके दिमागमें भरे जानेवाले गलत विचारोंको सुधारनेका और अर्थशास्त्रको उसके सच्चे रूपमें समझनेका एक साधन उन्हें जरूर मिल जायगा।

यह पुस्तक लिखते समय वर्तमान अर्थ-व्यवस्थामें पाई जानेवाली नीचे लिखी बड़ी बड़ी बुराइयां मेरी दृष्टिमें रही है

(१) दुनिया भरमें फैली हुई भयंकर बेकारी और आर्थिक असुरक्षितता।

(२) इतनी थोड़ी मजदूरी जिनसे मजदूरोंको आधे पेट रहना पड़े।

(३) मजदूरोंके साथ अमानुषिक व्यवहार।

(४) आर्थिक असमानता — जिसमें जायदादवाला आदमी समाजके लिए उपयोगी हो ऐसा कोई भी काम धंधा किये बिना मुफ्तमें होनेवाली आयसे अपना निर्वाह कर सकता है और दिनभर समाजके लिए बहुत जरूरी जी-तोड़ मेहनत करनेवालेको पेटभर खानेको भी नहीं मिलता। इसके सिवा अलग अलग धंधोंकी कमाईमें भी बड़ा अन्तर है। एक तरफ इतनी थोड़ी मजदूरी मिलती है कि मनुष्यका निर्वाह भी न हो सके और दूसरी तरफ लाखोंकी कमाई होती है।

(५) युद्धके लिए शस्त्रास्त्र और भोग विलासका सामान तैयार करनेमें होनेवाला कुदरती और मानव-सम्पत्तिका बिगाड़। इसी तरह खान-पानकी चीजोंमें होनेवाली मिलावट और झूठे विज्ञापनोंके द्वारा हानिकारक चीजोंकी बिक्रीसे होनेवाला नुकसान।

अवश्य जाना है कि सम्पत्ति एक साधन है साध्य तो मनुष्यकी सुख-सुविधा ही होना चाहिए। परन्तु उनके बाद सारी पुस्तकमें इसका विचार ही नहीं किया जाता कि मनुष्यकी सुख-सुविधाका और मनुष्यका क्या होता है। सम्पत्ति ही साध्य बन जाती है। कुदरतसे जितना ज्यादा खींचा जा सके उतना खींच कर भौतिक साधन-सम्पत्ति जितनी बढ़ाई जा सके उतनी बढ़ानेकी योजनाएं ही सोची जाती हैं। मनुष्यरूपी सम्पत्तिके योग्य रक्षा और उसके सच्चे उपयोग और विकासकी कोई योजना नहीं बनाई जाती इतना ही नहीं उसका विचार तक नहीं किया जाता। जो चीजें जरूरतसे कम पैदा होती हों उनका उत्पादन बढ़ानेकी योजना जरूर बनाई जानी चाहिए। लेकिन उसमें सिर्फ ज्यादा माल तैयार करनेका ही खयाल नहीं रखना चाहिए बल्कि यह भी देखना चाहिए कि उत्पादनके काममें लगे हुए मनुष्योंका क्या होता है। उस काम करनेसे मनुष्यकी शक्तियां कुण्ठित नहीं होनी चाहिए बल्कि उनका विकास होना चाहिए। मनुष्यका सच्चा सुख और सच्ची उन्नति इस बातमें नहीं है कि उसे सिर्फ उपभोगके लिए ज्यादा चीजें मिलें बल्कि इस बातमें है कि उसे ऐसा काम मिलता रहे जिससे उसकी समस्त शक्तियोंका विकास हो और वह अपना जीवन तरह-तरहकी ऐसी विविध प्रवृत्तियोंसे भरा हुआ बना सके जो उसके और समाजके विकासकी पोषक हों।

इस पुस्तकमें सारे आर्थिक प्रश्नोंका विचार मनुष्यके सुख और प्रगतिको ध्यानमें रखकर ही किया गया है। इसीलिए इस पुस्तकका नाम 'मानव अर्थशास्त्र' रखा गया है। यह नाम रखनेका दूसरा हेतु यह भी है कि इसमें किसी एक ही वर्ग या एक ही देशकी भलाईकी दृष्टिसे विचार नहीं किया गया है, बल्कि सारे मानव-समाजके हितकी दृष्टिसे — गांधीजीके शब्दोंमें सर्वोदयकी दृष्टिसे — विचार किया गया है।

पूंजीवाद और साम्राज्यवादके खिलाफ आज सारी दुनियामें प्रचंड विद्रोह उठ खड़ा हुआ है। इन वादोंके समर्थक इस बातको समझ गये हैं और यथासंभव अपने अस्तित्वको कायम रखनेके लिए वे अपने विरोधमें खड़ी होनेवाली शक्तियोंके साथ समझौता करनेकी कोशिशें भी कर रहे हैं। अर्थशास्त्रके जिन पुराने सिद्धान्तोंका लाभ उठाकर पूंजीवाद पुष्ट हुआ और स्थिर बना उन पुराने सिद्धान्तोंकी भाषामें अब पूंजीपति भी बात नहीं करते। 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः' — इस सूत्रके अनुसार वे जितना बचाया जा सके उतनेको बचा लेनेमें ही बुद्धिमानी समझते हैं। उनका सयाना स्वार्थ उनके मुंहसे भी मजदूरोंकी भलाई और समाजकी

सुरक्षितताकी बातें कहनेवाला है। फिर भी हमारे कला और वाणिज्य व्यवसायके कॉलेजोंमें अभी तक वही पुराना अर्थशास्त्र पुराने ढंग पर पढ़ाया जाता है। प्रतिस्पर्धाको निरंकुश रखना जीवनकी आवश्यकतायें बढ़ाते जाना यह मानना कि चीजोंकी कीमतें मांग और पूर्तिके आधार पर ही निश्चित हो सकती है किसी भी तरह मालको सस्ता बनाना विज्ञापनों द्वारा और बचनकी चतुराई द्वारा इस मालके ग्राहक खड़े करना — इन्हीं बातोंमें आर्थिक प्रगति समाई हुई है ऐसे अजीब खयाल अपने दिमागोंमें भरकर हमारे नौजवान विद्यार्थी कॉलेजोंसे निकलते हैं। इस पुस्तकका एक उद्देश्य यह भी है कि विद्यार्थियोंके दिमागमें भरे जानेवाले इन गलत विचारोंका भ्रम दूर करके अर्थशास्त्रके ऐसे सच्चे सिद्धान्त प्रस्तुत किये जायं जिनसे समाजका भला हो सके। मैं यह आशा तो नहीं रखता कि आजके सरकारी कॉलेजोंमें यह पुस्तक पाठ्यपुस्तकके रूपमें रखी जायगी। परन्तु इस पुस्तकको कॉलेजके विद्यार्थी यदि पढ़ें तो मैं इतनी आशा जरूर रखता हूं कि उनके दिमागमें भरे जानेवाले गलत विचारोंको सुधारनेका और अर्थशास्त्रको उसके सच्चे रूपमें समझनेका एक साधन उन्हें जरूर मिल जायगा।

यह पुस्तक लिखते समय वर्तमान अर्थ-व्यवस्थामें पाई जानेवाली नीचे लिखी बड़ी बड़ी बुराइयां मेरी दृष्टिमें रही हैं:

(१) दुनिया भरमें फैली हुई भयंकर बेकारी और आर्थिक असुरक्षितता।

(२) इतनी थोड़ी मजदूरी जिससे मजदूरोंको आधे पेट रहना पड़े।

(३) मजदूरोंके साथ अमानुषिक व्यवहार।

(४) आर्थिक असमानता — जिसमें जायदादवाला आदमी समाजके लिए उपयोगी हो ऐसा कोई भी काम धंधा किये बिना मुफ्तमें होनेवाली आयसे अपना निर्वाह कर सकता है और निर्भर समाजके लिए बहुत जरूरी जी-तोड़ मेहनत करनेवालेको पेटभर खानेको भी नहीं मिलता। इसके सिवा अलग अलग धंधोंकी कमाईमें भी बड़ा अन्तर है। एक तरफ इतनी थोड़ी मजदूरी मिलती है कि मनुष्यका निर्वाह भी न हो सके और दूसरी तरफ लाखोंकी कमाई होती है।

(५) युद्धके लिए शस्त्रास्त्र और भोग विलासका सामान तैयार करनेमें होनेवाला कुदरती और मानव-सम्पत्तिका बिगाड़। इसी तरह खान-पानकी चीजोंमें होनेवाली मिलावट और झूठे विज्ञापनोंके द्वारा हानिकारक चीजोंकी बिक्रीसे होनेवाला नुकसान।

(६) प्राथमिक आवश्यकताकी चीजों — जैसे अनाज दूध सागभाजी कपड़ा मकान वगैरा — का जरूरतसे कम उत्पादन।

(७) आर्थिक प्रवृत्तिका प्रेरक हेतु लोगोंकी जरूरतकी चीजें उत्पन्न करना न होकर नफा कमाना और रुपया कमाना होता है।

(८) इसके कारण सारी अर्थ-व्यवस्था पर पैसेवालोंका नियंत्रण।

(९) मनुष्यको जड़ और गुलाम बना डालनेवाले यंत्रोंका दिनोंदिन बढ़नेवाला उपयोग।

(१०) अन्यायपूर्ण और लूटन चूसनेवाले आन्तर राष्ट्रीय व्यापारके द्वारा यंत्रोद्योगोंमें पिछड़े हुए देशोंका खासकर यहांके गांवोंका शोषण और गांवोंकी कंगाली।

इन सब बुराइयोंको दूर करनेके लिए हमें क्या क्या करना चाहिये इसकी चर्चा इस पुस्तकमें जगह जगह प्रस्तुत विषयोंका ध्यान रखकर की गई है।

यह पुस्तक लिखनेमें मैंने टाउजिंग टामस और सेलिग्मनके अर्थशास्त्रके सिद्धान्त (प्रिंसिपल्स आफ इकानामिक्स) नामक तीन पुस्तकोंका काफी उपयोग किया है। हमारे देशसे सम्बन्ध रखनेवाली हकीकतोंके लिए मैंने प्रिंसिपाल जठार और बेरीकी इंडियन इकानामिक्स और प्रो० वाडिया और मर्चेण्टकी अवर इकानामिक प्राब्लेम नामक पुस्तकोंका काफी उपयोग किया है। इनके सिवा अन्य अनेक पुस्तकोंसे भी हकीकतें ली गई हैं। इन सबका मैं आभारी हूं।

परन्तु इन सब लेखकोंसे मेरा दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है। विभिन्न आर्थिक प्रश्नों पर इस पुस्तकमें मैंने जो विचार और मत प्रगट किये हैं वे उन उन विषयों पर गांधीजीके विचारोंको जैसा मैंने समझा है उसीके अनुसार हैं। ज्यादातर तो मैंने गांधीजीके लेखोंका ही अनुसरण किया है फिर भी हो सकता है कि जो विचार गांधीजीके विचारोंके रूपमें यहां प्रस्तुत किये गये हैं उनमें से कुछ विचारोंके लिए मैं गांधीजीके लेखोंसे कोई आधार न बता सकूं। गांधीजीके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्योंमें लगे रहनेके कारण इतना बड़ा ग्रंथ पढ़नेका बोझ उन पर डालना मुझे ठीक नहीं लगा। इसलिए गांधीजीके विचारोंके रूपमें बताये गये सभी विचारोंके लिए मेरे पास गांधीजीका प्रमाणपत्र नहीं है। पर गांधीजीके विचारोंको जैसा मैंने समझा है वैसा ही उन्हें यहां प्रगट किया है यह बात ध्यानमें रखनेकी पाठकोंसे मेरी प्रार्थना है।

मैं पिछले २८ वर्षोंसे काकासाहब कालेलकर और किशोरलालभाईके निकट सम्पर्कमें रहकर काम करता रहा हूं। इसलिए जीवन-सम्बन्धी लगभग प्रत्येक प्रश्न पर उनसे साथ चर्चा करनेके अवसर मुझे मिले हैं। इस कारण इस पुस्तकमें प्रगट किये गये बहुतसे विचार मुझे इन दोनोंसे प्राप्त हुए हैं। यदि इन दोनोंने मेरे छपनेसे पहले यह पुस्तक पढ़ जानेके लिए कहा होता, तो वे जरूर पढ़ जाते और उसमें बहुत कीमती संशोधन या परिवर्तन भी करते। लेकिन पुस्तकके प्रकाशनमें देर न हो इस खयालसे मैंने यह लाभ भी छोड़ दिया है। इस पुस्तकका दूसरा संस्करण छापनेका अवसर आया तो उस समय यह लाभ उठाकर इस पुस्तकमें रही त्रुटियोंको पूरा करनेकी मैं आशा रखता हूं। अन्य भाई-बहनोंसे भी मैं प्रार्थना करता हूं कि वे भी इसमें सुधार, परिवर्तन या काटछांट करनेके बारेमें अपनी सूचनाएं देनेकी कृपा करें।

द्रव्य-बाजार (मनी मार्केट) के बारेमें मुझे खुद अनुभव न होनेसे द्रव्य और सराफी (बैंकिंग) सम्बन्धी प्रकरण लिखना मेरे लिए मुश्किल था। पर इस मामलेमें इस विषयके निष्णात श्री वलुभाई मजमुदारसे, जिनके साथ सन् १९४४ में साबरमती जेलमें रहनेका लाभ मुझे मिला था, मुझे बड़ी कीमती सलाह और सूचनाएं मिली हैं। साथ ही मेरी प्रार्थना स्वीकार करके उन्होंने द्रव्य-बाजार पर एक विस्तृत लेख भी लिख दिया है और उस लेखका इन प्रकरणोंके लिखनेमें मैंने उन्हींकी स्वतंत्रतासे उपयोग कर लिया है। अलबत्ता उस लेखमें से भी मैंने जो कुछ लिया है वह अपनी समझके अनुसार ही लिया है और यहां लिखा है और उस सम्बन्धमें प्रकट किये गये मत तो मेरे अपने ही हैं। इसलिए मुझे कहना चाहिये कि इन प्रकरणोंमें कुछ अच्छी बात हो तो उसके यशके भागी श्री वलुभाई हैं और कोई दोष हो तो उसकी जिम्मेदारी पूरी तरह मेरी है। श्री वलुभाईने मुझे जो सहायता दी उसके लिए मैं उनका बहुत आभारी हूं।

प्रेसमें देनेसे पहले इस पुस्तकको गुजरात विद्यापीठके मेरे साथी भाई विट्ठलदास कोठारी आद्योपान्त पढ़ गये हैं और उन्होंने कुछ बहुत कीमती सूचनाएं भी की हैं। उनके अनुसार मैंने कहीं कहीं पुस्तकमें परिवर्तन भी किये हैं। इसके सिवा उन्होंने अर्थशास्त्रके पारिभाषिक शब्दोंकी जो सूची तैयार की है उसका भी मैंने लाभ उठाया है। वह सूची पुस्तकके अन्तमें दी गई है।

इस पुस्तकको भरसक आसान बनानेके खयालसे जहां तक पारिभाषिक शब्दोंके बिना काम चल सकता था वहां तक मैंने उन शब्दोंका उपयोग नहीं

किया है। इसके सिवा भाई विट्ठलन्नामन मेन्नन करके इस पुस्तककी जो वर्णानुक्रमा सूची तयार का है उसके लिए म उनका ऋणी हू।

यह पुस्तक जनताके सामन प्रस्तुत करते हुए मुझे सकोच हो रहा है। मन इस विषयका व्यवस्थित अध्ययन नही किया है। इसलिए मुझ इसका भान है कि इस पुस्तकमें कई त्रुटिया रह गई ह। साथ ही मुझ इसका भी भान है कि म अपन सारे विचार सुनिश्चित भाषाम नही रख सका हू। फिर भी एसी पुस्तककी हमारी भाषामें जरूरत होनके कारण मन यह साहस किया है। वह कहा तक ठीक है इसका निणय तो विद्वान पाठक ही करग।

सेवाग्राम १०-१२-४५ नरहरि परीख

अनुक्रमणिका

पहला भाग प्रास्ताविक

पृष्ठ

दूसरा भाग उत्पादन

तीसरा भाग विनिमय

चौथा भाग बटवारा या वितरण

पाचवा भाग न्याय

छठा भाग नवीन अर्थ रचना

मानव अर्थशास्त्र

पहला भाग

प्रास्ताविक

१

अर्थशास्त्र क्या है?

मनुष्यकी आवश्यकतायें

१ हर मनुष्यको पेट भर खाना चाहिये शरीरको ढकनेके लिए कपड़े चाहिये और रहनेको मकान चाहिये। सभ्य मनुष्यके जीवनकी ये प्राथमिक आवश्यकतायें मानी जाती है। इनके बिना जीवन टिक नहीं सकता। मनुष्य चाहे जिस स्थितिमें रहता हो परन्तु इतनी चीजोंके बिना उसका काम चल ही नहीं सकता। अपने जीवनकी इन प्राथमिक आवश्यकताओंके बारेमें भी कोई योगी यति या अवधूत बेपरवाह हो सकता है, परन्तु ऐसे लोग विरले ही होते है। अतः वे अपवाद माने जायेंगे। ज्यादातर लोगोंको तो पहली चिन्ता अपने जीवनकी इन प्राथमिक आवश्यकताओंकी ही करनी पड़ती है। कोई भी समाज सुव्यवस्थित और सुखी तभी हो सकता है जब उस समाजमें रहनेवाले सभी लोगोंकी ये प्राथमिक आवश्यकतायें अच्छी तरह पूरी हो जायं। लेकिन मनुष्यको अपनी प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी हो जानेसे ही कभी सतोष नहीं होता। अन्य कई सुविधायें पैदा करनेके लिए और अपने शरीरकी तथा आसपासकी चीजोंकी शोभा और सजावट बढ़ानेके लिए भी आरम्भसे ही उसकी कोशिश रही है। रोटीको हाथमें रखकर खानेसे भी भूख तो मिट जाती है पर मनुष्य ऐसा करता नहीं। वह खानेकी चीजें अच्छी तरह रखनेके लिए थाली बनाता है खानेकी तरल चीजोंके लिए कटोरी रखता है भोजनके लिए बैठनेको पाट या दूसरे आसन जुटाता है। इस तरह वह अपनी आवश्यकतायें पूरी करनेके प्रत्येक कार्यमें सुविधाके साधन बनाता जाता है और उसीके साथ साथ उनमें सुन्दरता और कलाकी वृद्धि करनेकी तरफ भी उसका झुकाव रहता है। इस तरह जैसे जैसे समाज आगे बढ़ता है वैसे वैसे मनुष्यकी आवश्यकतायें बढ़ती जाती है और उन्हें पूरी करनेके लिए वह अपनी प्रवृत्ति भी बढ़ाता जाता है।

२ मनुष्य अपनी आवश्यकतायें बढ़ाता जाय, इसे आजके अर्थशास्त्री सभ्यता और प्रगतिकी निशानी मानते है। लेकिन आवश्यकतायें बढ़ाते जाना और उनको पूरा करनेके पीछे ही पड़े रहना मनुष्य-जीवनका सच्चा ध्येय

नही हो सकता। सभ्यता और प्रगति आवश्यकताओ और सुख सुविधाओके विस्तारमें नही ह बल्कि मनुष्यकी ऊची भावनाओ जसे भ्रातृभाव सहकार न्याय स्वतत्रता आदिके विकासमें है। ऐसी ऊची भावनाओको छोड कर मनुष्य अपनी आवश्यकतायें बढानेके पीछे और उन्हें पूरा करनेके लिए उत्पादन बढानेके पीछे ही पडा रहे तो उसे सच्ची सभ्यता या प्रगति नही कहा जा सकता।

३ परन्तु साथ ही साथ यह भी स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिये कि कष्ट कठिनाई या कगालीमें रहना भी हमारा ध्येय नही है और न होना चाहिए। कष्ट कठिनाई और कगालीका जीवन बितानेवाले समाजमें ऊचे विचार और ऊची भावनाए उत्पन्न नही हो सकती। आज हमारे देशके गरीब और पिछडे हुए वर्गोंकी यही स्थिति है। इसलिए इतनी आवश्यकतायें तो सबकी पूरी होनी ही चाहिए कि जिनसे जीवन सुविधापूण स्वस्थ और स्फूर्तिमय रह सके। इन आवश्यकताओको विचारपूवक निश्चित करना और स्वेच्छासे उनकी मर्यादा बाधना समाजके सुख और सतोषके लिए बहुत जरूरी और वाछनीय है। ऐसा करनेसे ही मनुष्यका सच्चा सुख और सच्चा सतोष बढता है और ऐसा करनेमें ही मनुष्य जातिका सच्चा विकास और विश्वकी शाति समायी हुई है।

आवश्यकतायें कसे पूरी होती ह ?

४ हमारी कुछ आवश्यकतायें ऐसी हैं जिनको पूरा करनेके लिए हमें कोई खास श्रम नही करना पडता। उदाहरणार्थ हवा हमारी ऐसी आवश्यकता है, जिसके बिना हमारा काम चल ही नही सकता। लेकिन वह हर मनुष्यको श्रमके बिना ही मिलती है। यही बात सूयकी गरमी और प्रकाशकी है। खुलेमें रहनेवाले मनुष्योको हवा धूप और प्रकाश बिना श्रम किये जितने चाहिए उतने मिलते ह। इसी तरह नदी या तालाबके किनारे रहनेवाले लोगोको वहा जाकर लाने भरका श्रम करनेसे पानी मिल जाता है। ये सब वस्तुए जीवनके लिए बहुत ही आवश्यक और महत्वकी ह। लेकिन वे बिना श्रम और बिना दामके मिल जाती ह। वे सचमुच अमूल्य ह। उनके बदलेमें हमें कोई कितना ही मूल्य दे तो भी हमारा काम उनके बिना नही चल सकता इस अथमें वे अमूल्य ह और उनका हम कुछ भी मूल्य नही देना पडता इस अथमें भी वे अमूल्य ह।

५ हमारी दूसरी आवश्यकतायें जसे खानकी कपडकी और घरकी ऐसी ह जिन्हें श्रम किये बिना मनुष्य पूरा नहीं कर सकता। उसके सामन

विशाल कुदरत खुली पडी है। जमीनको खोदकर जोतकर और उसमें बीज बोकर वह अपनी जरूरतका सारा अनाज, फल और साग भाजी वगैरा उत्पन्न कर लेता है। फिर उसमें कपास उगाकर उससे कपडे तयार करता है। जंगलोंमें से पेड काटकर वह ईंधनके लिए लकडी और घर बनानेके साधन जुटाता है। खानें खोदकर उनमें से कोयला लोहा तेल आदि कई वस्तुएं निकालता है। पशुओं आदिको मारकर उनका मांस खाता है और उनकी चरबी, चमडे आदिका उपयोग करता है या पशुओंको पालकर उनसे दूध घी ऊन जैसी चीजें प्राप्त करता है। पशुसे सवारीका और बोझ ढोने वगैराका काम भी वह लेता है। हवा और पानीका भी वह शक्तिके रूपमें उपयोग करता है। मनुष्यके उपयोगमें आनेवाली तमाम वस्तुओंको — जिन्हें हम धन या सम्पत्ति कहेंगे — जड कुदरतके भीतर है। कुदरतने अपने भंडार उदारतासे मनुष्यके लिए खुले छोड दिये हैं। उनमें से मनुष्य परिश्रम करके अपनी जरूरतकी वस्तुएं उत्पन्न कर लेता है।

६ हम यदि ऐसी कल्पना कर लें कि मनुष्यको जो भी वस्तुएं चाहिये वे सब वह खुद ही पैदा कर ले और खुद ही उन्हें काममें ले तब तो दुनियाका व्यवहार बिलकुल सीधा-सादा हो जाय, एक मनुष्यका दूसरे मनुष्यके साथ कोई सम्बन्ध न रहे। लेकिन यह जाननेमें नहीं आता कि बहुत पुराने समयमें भी कभी दुनियामें ऐसी स्थिति रही हो। जबसे मनुष्य पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ, तभीसे वह समूह बनाकर रहता देखनेमें आया है। सारा समूह इकट्ठा होकर अपनी आवश्यकताकी वस्तुएं जुटा लेता था और सब मिलकर ही उनका उपयोग करते थे। आजकल तो हमारा व्यवहार बहुत पेचीदा या अटपटा हो गया है। किसान खेत जोतकर अनाज पैदा करता है लेकिन उसका हल किसी दूसरे ही मनुष्य यानी बढईका बनाया हुआ होता है, हलके लिए लकडी जंगलसे कोई दूसरा ही मनुष्य काटकर लाया होता है। और उस हलकी फालका लोहा किसी खानमें से किसी तीसरे ही मनुष्यका खोदकर निकाला हुआ होता है और लोहेको ठोक-पीटकर फाल बनानेवाला कोई चौथा ही — लुहार — होता है। इसके सिवा, अपनी खेतीके काममें किसान दूसरे मजदूरोंकी सहायता भी लेता है। इस तरह यदि गिनने बैठें तो खेतमें अनाज उत्पन्न करनेके काममें सैकडों मनुष्योंका अपना-अपना हिस्सा मालूम होगा। मनुष्य अकेला रहनेवाला जीव नहीं है वह सामाजिक प्राणी है। बहुतसे मनुष्य एकत्र होकर तथा एक-दूसरेके साथ सहयोग करके अपने समाजकी आवश्यकताकी चीजें उत्पन्न करते हैं।

अर्थशास्त्रका विषय

७ समाजके लिए आवश्यक वस्तुएं बनानेकी प्रवृत्तिमें हर मनुष्य वही काम करता है जिसमें वह अधिक कुशल होता है। वह अपनी बनाई हुई वस्तुएं दूसरोंको देकर या दूसरोंके लिए काम करके बदलेमें अपनी आवश्यकताकी वस्तुएं और सेवाएं लेता है। कुछ लोग खेतीका काम करते हैं कुछ बुनाईका काम करते हैं और कुछ मोचीका काम करते हैं। इसके सिवा दूसरे लोग उत्पन्न हुए मालको उसका उपयोग करनेवाले लोगों तक पहुंचानेका काम करते हैं। इनमें फुटकर और थोक माल खरीदने और बेचनेवाले व्यापारी होते हैं। इसी तरह एक स्थानसे दूसरे स्थान पर माल पहुंचानेवाले बनजारे — गधवाले बैलवाले ऊंटवाले गाडीवाले मोटर-लारीवाले और रेलवाले होते हैं तथा जलमार्गमें यही काम करनेवाले छोटी नावोंके मल्लाहोंसे लेकर बड़े बड़े जहाजवाले लोग होते हैं।

८ इस प्रकार मालका लेन-देन खरीद बिक्री या मालका अदल-बदल आसपासके स्थानोंके बीच भी होता है और दूर-दूरके स्थानोंके बीच भी होता है। आज हमारे दैनिक उपयोगकी कितनी ही वस्तुएं अत्यन्त दूर-दूरके देशोंसे आती हैं। दियासलाई स्वीडनसे आती है। घासलेट ब्रह्मदेश और अमरीकासे आता है। मोटरकी वस्तुएं इंग्लैण्ड जर्मनी और जापानसे आती हैं। इस तरह यदि हिसाब लगाने बैठें तो हर देश किसी दूसरे देशकी कोई न कोई वस्तु काममें लाता है और दूसरे देशको अपनी कोई न कोई वस्तु भेजता है। मालके इस तरहके अदल-बदलके व्यवहारको वस्तुओं अथवा सम्पत्तिका विनिमय कहा जाता है। यह विनिमय पहले तो वस्तुके बदले वस्तु देकर ही किया जाता था। परन्तु इसमें जब बड़ी असुविधा होने लगी तो ऐसा कोई माप या मान ढूंढ निकालनेका प्रयत्न होने लगा जो विनिमयके लिए सबमान्य हो सके। इस तरहके मापके लिए विभिन्न वस्तुओंको आजमाकर देखनेके बाद आज सोने चांदीके सिक्कोंको या उनके प्रतिनिधि माने जानेवाले कागजके नोटोंको सब देशोंमें विनिमयका सबमान्य माप स्वीकार कर लिया गया है। निश्चित गुणवाला निश्चित वजनवाला और निश्चित आकारवाला सोने चांदीका सिक्का तथा उसका प्रतिनिधि कागजका नोट द्रव्य कहलाता है। द्रव्य लेकर अपना बनाई हुई वस्तुएं मनुष्य दूसरोंको देता है और इस द्रव्यसे वह अपनी आवश्यकताकी सब वस्तुएं खरीदता है। इस तरहकी अदला-बदली करनेके लिए वस्तुओंकी कीमत निश्चित करनेके प्रश्न खड़े होते हैं। कीमतें किस तरह निश्चित की जाती हैं और कीमत निश्चित

होनेमें कौन-कौनसे बल कैसा काम करते हैं यह अर्थशास्त्रका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय माना जाता है।

९ कीमत निश्चित होनेके बाद भी बहुतसे प्रश्न खड़े होते हैं। यदि पूरी वस्तु एक ही मनुष्यके श्रमसे बनी हो, तब तो उसकी पूरी कीमत पर उसके बनानेवालेका ही अधिकार माना जायगा। लेकिन हमने देखा है कि एक छोटीसी वस्तु बनानेमें भी बहुतसे मनुष्योंका अलग अलग रूपमें हिस्सा होता है। इसलिए यह प्रश्न पैदा होता है कि किसी वस्तुकी कीमतमें से उसे बनानेमें मदद करनेवाले हर मनुष्यका कितना भाग मिलना चाहिये। खादीका उदाहरण लें तो उसके उत्पादनमें कपास उत्पन्न करनेवाला, कपास ओटनेवाला, रुईको पींजकर पूनी बनानेवाला, इन पूनियोंसे सूत कातनेवाला और इस सूतको बुननेवाला — इस तरह कई लोगोंका भाग होता है। ये सारी क्रियाएं करनेवाले अपने-अपने कामके बदलेमें मजदूरी पाते हैं। और इस सारी मजदूरीके कुल खर्च परसे खादीकी कीमत निश्चित की जाती है। अथवा यह भी कह सकते हैं कि खादी बेचने पर खादीका जो कीमत मिलती है वह खादी तैयार करनेमें जिन जिन लोगोंने द्वारा हिस्सा लिया जाता है उनके बीच उनके अपने श्रमके अनुपातमें बंट जाती है। कई मनुष्योंके सहयोगसे उत्पन्न होनेवाली संपत्तिके बंटवारेके सम्बन्धमें अनेक महत्त्वपूर्ण तथा न्याय और नीतिके एसे प्रश्न खड़े होते हैं जिन पर बहुत बारीकी और गहराईसे विचार करनेकी जरूरत होती है।

१० यह भी बड़े महत्त्वका विषय है कि उत्पन्न हुई संपत्तिका उपभोग कैसे किया जाय। किसी भी वस्तुका पूरा पूरा उपयोग कर लेना अर्थात् उसका थोड़ा भी बिगाड़ न होने देना उसके उपभोग या व्ययमें बड़े महत्त्वकी बात है। आज मनुष्य जातिके हाथमें जितनी संपत्ति है उसका अगर सद्व्यय हो, तो मनुष्य-जातिके सुखकी मात्रा आजसे कहीं अधिक बढ़ जाय। लेकिन हम इस पुस्तकमें देखेंगे कि आज तो हम वस्तुओंका भारी दुर्व्यय कर रहे हैं।

११ इस तरह अर्थ या संपत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली जो प्रवृत्ति मनुष्य करता है, उसके उत्पादन, विनिमय, वितरण और व्यय या उपभोग जैसे चार मुख्य विभाग हो जाते हैं। इन चारों विभागोंसे सम्बन्धित मनुष्यके व्यवहारोंका विवेचन करके तथा उनसे सम्बन्धित नीति नियम निश्चित करनेका प्रयत्न करके उनका जो शास्त्र रचा गया है उसे अर्थशास्त्र कहते हैं। उसमें किसी एक व्यक्ति या वर्गके हितकी दृष्टिसे नहीं बल्कि सारे समाजके हितकी दृष्टिसे विचार किया जाता है, अथवा किया जाना चाहिये। 'किया जाना चाहिये'

मन इसलिए कहा है कि आज वस्तुत ऐसा होता नही है। प्रत्येक देशके अर्थशास्त्रियोने इसी बातका अधिक विचार किया है कि अपने देशका उत्पादन और व्यापार किस तरह बढे। इस उत्पादन और व्यापारसे बहुत थोडे लोग ही लाभ उठाते ह और अधिकतर लोगोको तो अपनी प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी करने जितना भी नही मिलता। इस बुराईकी तरफ अर्थशास्त्रियोका ध्यान अभी अभी ही गया है।

अर्थशास्त्रका उद्देश्य

१२ जिस रूपमें और जिस पद्धतिसे आज इस विषयकी चर्चा होती है अर्थात् आज जिसे अर्थशास्त्र कहा जाता है उसका जन्म और विकास पिछले तीन सौ वर्षमें ही हुआ है। यूरोपके लुटेरे राष्ट्रोने सात समुद्र पार करके व्यापारके नाम पर दुनियाभरमें जो लूट मचाई उसीके साथ इस शास्त्रका जन्म हुआ है और यूरोपमें कारखानो और पूजीवादका जो विकास हुआ उसीके साथ इस शास्त्रका विकास हुआ। इसलिए भयकर अत्याचार अन्याय और शोषणके साथ वर्तमान अर्थशास्त्रके जन्म और विकासका गहरा सम्बन्ध है। आर्थिक प्रगतिके नाम पर यूरोपके अर्थशास्त्रियोने यूरोपके राष्ट्रोके इस अत्याचार अन्याय और शोषणका बचाव भी किया है। आज दुनियामें हम देखते ह कि थोडेसे धनवान लोगोको किसी भी चीजकी कमी नही रहती और बहुत बडे गरीब वर्गको पेटभर खानेको भी नही मिलता। इस अन्यायपूर्ण विषमताका कारण यह है कि अर्थ या सपत्तिसे सम्बन्धित हमारे व्यवहार जिस शास्त्रके अनुसार चलते ह उस शास्त्रका सच्चा उद्देश्य और उसका सच्चा स्वरूप हमने समझा ही नही है। अर्थशास्त्रका सच्चा उद्देश्य तो ऐसे नियम खोज निकालना होना चाहिये जिनके अनुसार अर्थ-सम्बन्धी हमारे सारे व्यवहारोकी ऐसी व्यवस्था हो सके कि समाजमें किसीको किसी भी तरहका आर्थिक कष्ट न होने पाय। अर्थात हर मनुष्यको पूरा काम मिल जाय और जो पूरा काम करे उसे अपनी उचित आवश्यकताकी सारी चीजें मिल जायें। किसी भी अर्थ व्यवस्थाको समाजके लिए हितकारी तभी कहा जा सकता है जब समाजके प्रत्येक व्यक्तिको अपनी शक्तिके अनुसार अनुकूल काम करनेका पूरा पूरा मौका मिलता रहे अर्थात उस कामको करनेके लिए जिन साधनो या औजारोकी आवश्यकता हो उनके मिलनेमें कोई रुकावट न हो तथा उन कामोके लिए जो कुदरती साधन चाहिये उन्हे आवश्यकताके अनुसार काममे लेनेकी पूरी-पूरी स्वतत्रता हो। इसके सिवा यह भी जरूरी है कि उसके किये हुए कामोंसे होनेवाले उत्पादन अथवा उसमे से मिलनेवाले फलोका लाभ दूसरे लोग अनुचित

या गलत तरीकोंसे न उठा लें। सार यह कि समाजमें भुखमरी और गरीबी न रहे, एक देश दूसरे देशका और एक ही देशमें एक वर्ग दूसरे वर्गका शोषण न कर सके। ऐसी अर्थ-व्यवस्था किस ढंगसे निर्माण की जा सकती है यह बताना अर्थशास्त्रका काम है।

१३ इसमें यह याद रखना चाहिये कि अर्थ अथवा संपत्ति तो केवल साधन है। अर्थशास्त्रका मूल और मुख्य उद्देश्य इस बातका विवेचन करना है कि इस साधनके सच्चे स्वरूप तथा उसके उत्पादन उसके विनिमय उसके वितरण और व्यय आदिकी व्यवस्था किस प्रकार की जाय जिससे मानव जातिको सुख-शान्ति मिले और उसका कल्याण हो। अर्थात् अर्थशास्त्रकी दृष्टिमें अर्थ अथवा संपत्ति तो साधन मानी जानी चाहिये और मानव जातिका सुख और कल्याण साध्य माना जाना चाहिये। लेकिन आजकलकी अर्थ-प्रवृत्तिकी जांच करनेसे मालूम होता है कि उसमें साधनको ही साध्य मान लिया गया है। आजकल समाजके विशाल जन-समुदायकी आर्थिक स्थितिकी उपेक्षा करके इसी विचारको प्रधानता दी जाती है कि उत्पादन किस तरह बढ़ाया जाय अथवा नफा किस तरह कमाया जाय। इस विचारका समर्थन करनेवाले अर्थशास्त्री भी दुनियामें मौजूद हैं और अर्थशास्त्रके नाम पर अनेक बुराइयां उत्पन्न हो गई हैं।

अर्थशास्त्रके नियम

१४ किसी भी विषयका शास्त्रीय विवेचन करनेके लिए अथवा शास्त्रकी रचनाके लिए हम उस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले तथ्योंकी बारीकीसे जांच करके और उनको एकत्र करके उनका व्यवस्थित वर्गीकरण करते हैं और इस तरह वैज्ञानिक पद्धतिसे जमाये हुए तथ्यों परसे उनके बारेमें सर्वसामान्य नियम निकालते हैं। इस पुस्तकमें हम देखेंगे कि अर्थशास्त्रके भी ऐसे नियम या कानून निश्चित करनेके प्रयत्न किये गये हैं।

१५ भौतिकशास्त्र — जैसे पदार्थ विज्ञान, रसायनशास्त्र आदि — के नियम जितने निश्चित और पूर्ण बन गये हैं उतने निश्चित और पूर्ण अर्थशास्त्रके नियम नहीं माने जा सकते। गुरुत्वाकर्षणका नियम किसी भी देशमें और किसी भी समय लागू होगा ही। आप दो माप हाइड्रोजनके लेकर उसमें एक माप आक्सीजनका मिलायेंगे तो पानी बनेगा ही। ऐसा अर्थशास्त्रके नियमोंके सम्बन्धमें होता नहीं दिखाई देता। इसका कारण यह है कि जहां भौतिकशास्त्रमें जड़ वस्तुएं एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डालती दिखाई देती हैं वहां अर्थशास्त्र एक सामाजिक शास्त्र होनेके कारण उसमें विभिन्न स्वभावों

विभिन्न विचारों, विविध भावनाओं और विविध आदर्शोंवाले मानवकी प्रवृत्तियां तथा उनके आपसी व्यवहार अपना अपना पाट अदा करते हैं। मनुष्य-स्वभाव सब देशोंमें और सब समयोंमें एकसा हो ही नहीं सकता। इसीलिए इंग्लैंडमें अर्थशास्त्रके जनक माने जानेवाले प्रसिद्ध लेखक एडम स्मिथने मनुष्यको हर देश और हर जमानेमें स्वार्थका पुतला मानकर अपने अर्थशास्त्रके जो नियम बनाये थे अधिकतर गलत सिद्ध हुए हैं और अनर्थ करनेवाले भी सिद्ध हुए हैं। वैसे ही एक अन्य लेखक रिकार्डोने मनुष्यको माल पैदा करनेवाला जड़ यंत्र समझकर उसे इतनी ही मजदूरी मिलनेका नियम ढूंढ निकाला जिससे मजदूर मुश्किलसे जिंदा रह सके। इस नियमको उसने अर्थशास्त्रमें स्थान दे दिया। वह नियम भारी अत्याचार और अन्यायका कारण बन गया, इसलिए उस नियममें आज परिवर्तन हो रहे हैं। मतलब यह कि अर्थशास्त्रके नियम कभी बदल न सकें और सदाके लिए अटल हों ऐसी कोई बात नहीं है।

१६. इसके अतिरिक्त देश और कालके अनुसार भी अर्थशास्त्रके नियम बदलते देखे जाते हैं। स्वामित्वके अधिकारके नियमका ही उदाहरण लीजिये। जब वह मानव जातिकी प्रगतिके लिए आवश्यक मालूम हुआ तब धीरे धीरे उसका विकास हुआ और स्वामित्वके अधिकारमें कई अंगोंका समावेश हुआ। लेकिन आज वह शोषण, बेकारी और आलस्यका कारण बनकर मनुष्यके हितमें रुकावट डालनेवाला हो गया है। इसलिए उसमें काफी काटछांट होने लगी है और यहां तक कहा जाने लगा है कि उत्पादनके साधनों परसे तो स्वामित्वका अधिकार बिलकुल उठ ही जाना चाहिये। कालकी तरह देशके अनुसार भी अर्थशास्त्रके नियम बदलते हैं। किसी भी देशके अर्थशास्त्रका आधार उसकी भौगोलिक परिस्थिति पर अर्थात् वहांकी आबोहवा, जमीनका स्वरूप तथा नदियों पहाड़ों समुद्र आदिकी सुविधाओं और असुविधाओं पर होता है। फिर भौगोलिकके साथ ऐतिहासिक कारणोंसे भी किसी देशके निवासियोंका स्वभाव विशेष प्रकारका बन जाता है। इस मानव-स्वभाव पर भी उस देशके अर्थशास्त्रका आधार रहता है। इंग्लैंडके अर्थशास्त्रसे जर्मनीका अर्थशास्त्र भिन्न है। इंग्लैंडने दूसरे देशोंके बाजारोंको हथिया कर तथा अपना माल उन बाजारोंमें भरकर उनका शोषण आरंभ किया और अपने इस शोषणको टिकाये रखनेके लिए ऐसा सिद्धान्त निकाला कि अप्रतिबद्ध अथवा मुक्त व्यापारकी नीति ही अर्थशास्त्रको मान्य हो सकती है। परन्तु जर्मनी नये नये उद्योग खड़े कर रहा था। अतः उसके अर्थशास्त्रियोंने संरक्षित व्यापारकी नीतिका ही समर्थन किया। फिर जिस अप्रतिबद्ध अथवा मुक्त

व्यापारकी नीतिने इग्लण्डको मालामाल कर दिया, उसी नीतिको उसने भारत पर जबरन लादकर उसे कगाल बना दिया। इग्लण्ड और जर्मनी जैसे छोटे देशोका लाभ इसीमें है कि वे अपने उद्योग-धंधे यत्रो द्वारा ही चलावें। यह भी समझमें आ सकता है कि यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) जैसे विशाल किन्तु बहुत थोडी आबादीवाले देशको यत्रोका सहारा लेना पडे। परन्तु भारत जैसा विशाल क्षेत्रफलवाला और उतनी ही विशाल आबादीवाला देश भी अपने सारे उद्योग-धंधे यदि यत्रोकी मददसे चलाने लगे, तो देशके चालीस करोड लोगोमें से तीस करोडसे अधिक लोगोको बेकार होना पडेगा, अथवा सारे लोगोको यदि यत्रोसे चलनेवाले उद्योग-धंधोमें लगा दिया जाय तो इतना अधिक माल तैयार हो जायगा कि यही न सूझेगा कि उस मालका क्या किया जाय। इस प्रकार हर देशके लिए आर्थिक नियम उसकी परिस्थितियोके अनुसार भिन्न भिन्न होते है। इस कारणसे जो वस्तु एक देशके लिए अमृत हो वही दूसरे देशके लिए जहर जैसी हो सकती है। रोएदार चमडेका कोट कैनाडा या स्काटलैण्ड जैसे बहुत ठडे देशोमें आवश्यक माना जायगा, परन्तु गरम देशोमें वह बोझ बन जायगा।

१७ इस तरह कालके अनुसार, देशके अनुसार तथा वहाके मनुष्य-समाजके स्वभाव और आदर्शके अनुसार अर्थशास्त्रके नियम भिन्न भिन्न होते है। इसके अलावा, भौतिकशास्त्रके नियमोमें मनुष्य कोई परिवर्तन कर ही नही सकता, परन्तु अर्थशास्त्रके नियमोमें यह बात नही होती। इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्रके नियमोका आधार परिस्थितियो पर रहता है और मनुष्य अपने प्रयत्नोसे परिस्थितियो पर नियत्रण पा सकता है और उनमें बहुत परिवर्तन भी कर सकता है। उदाहरणके लिए, कैसी भी प्रतिकूल परिस्थिति हो तो भी विकसित जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताओके बारेमें हर देश अपने पैरो पर खडा रहनेमें और अपने ही साधनोसे उन्हें पूरा कर लेनेमें अपनी सुरक्षितता समझता है। इन आवश्यकताओकी चीजें अपने देशमें उत्पन्न न करके दूसरे देशोसे मगानेमें बहुत सस्ती पडती हो तो भी महगे-सस्तेके नियमोको ताकमें रखकर उस देशके लोग भारी कष्ट उठाकर भी ऐसी स्वावलम्बी स्थिति प्राप्त करने और उसे टिकाये रखनेका परिश्रम करते है। इसका अर्थ इतना ही हुआ कि अर्थशास्त्र हर देश और हर समयमें एकसा रहनेवाला शास्त्र नही है। फिर भी इसे शास्त्र इसलिए कहा जाता है कि किसी विशेष कालमें किसी विशेष देशकी परिस्थितियोको देखकर और उनके कारणोकी जाच करके हम इस प्रश्न पर शास्त्रीय पद्धतिसे विचार कर सकते है कि उन

परिस्थितियोंमें तथा उन कारणोंके रहते हुए वहाके जन-समाजकी प्रगति और कल्याण साधनेकी दृष्टिसे हमारी आर्थिक प्रवृत्तिया कैसे चलाई जाय और विचार करनेके बाद इन आर्थिक प्रवृत्तियोंके नियम भी बना सकते है।

२

अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र

१ विविध मानव-व्यवहारो और सबधोका सारे जन-समाजकी सुख शान्ति, प्रगति और कल्याणकी दृष्टिसे विचार और विवेचन करनेवाले शास्त्रोंके लिए सामान्यत समाजशास्त्र शब्दका प्रयोग किया जाता है। सपत्तिके स्वरूप और उसके उत्पादन विनिमय आदिसे सबधित मनुष्यके व्यवहारोका विचार अर्थशास्त्र करता है इसलिए वह समाजशास्त्रकी एक शाखा माना जाता है। राजनीति शास्त्र विधानशास्त्र समाज रचना नीतिशास्त्र—ये सब भी मानवीय व्यवहारोंसे सबध रखनेवाले शास्त्र होनेके कारण समाजशास्त्रकी ही शाखाए है। अर्थ शास्त्रमें मानव-जातिकी सुख शाति आदिके लिए सपत्ति जैसे एक साधन मानी जाती है, उसी तरह राजनीतिमें राज्य-व्यवस्थाको और राज्य-सस्थाओको, विधानशास्त्रमें विधानो या काननोको समाज रचनामें सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक सस्थाओंको तथा नीतिशास्त्रमें सदाचार या नीतिमय व्यवहारके सिद्धान्तो और नियमोको साधन माना गया है। इन सब शास्त्रोका उद्देश्य एक ही है इसलिए वे एक-दूसरेके साथ अत्यत घनिष्ठ सबध रखते है। प्रत्येक शास्त्रका प्रभाव दूसरे सारे शास्त्रो पर सदा पडता ही रहता है। इनमें से कोई भी एक शास्त्र दूसरे किसी शास्त्रकी उपेक्षा करे तो उससे अनर्थ ही उत्पन्न होता है। पुराने अर्थशास्त्री इन सब शास्त्रोका परस्पर सबध और परस्परावलम्बन समझ ही नही पाये थे। और इसीलिए अर्थशास्त्र सबधी उनका आकलन दोषपूर्ण रहा। विभिन्न देशोंमें मनुष्यने जो आर्थिक प्रगति की है उसके इतिहासकी जाच की जाय तो जान पडेगा कि राजनीतिने नीतिशास्त्रने और धार्मिक मान्यताओने समाजकी अर्थ प्रवृत्ति पर गहरा प्रभाव डाला है। ये सारे सामाजिक शास्त्र एक-दूसरेके साथ किस तरह गुथे हुए है इसकी थोडी झाकी ही यहा दी जा सकेगी।

राजनीतिशास्त्रके साथ सबध

२ राज्य-व्यवस्था और राज्य-सस्थाओका स्वरूप कैसा हो तो उस व्यवस्था और सस्थाओंके अधीन रहनेवाले समाजकी सुख शान्ति और प्रगति

साधी जा सकती है — इस प्रश्नका विवेचन करके तत्सबंधी नियम तय करना राजनीतिशास्त्रका मुख्य उद्देश्य है। सम्पत्तिके उत्पादन और वितरणकी विभिन्न पद्धतियोंका यानी समाजकी अर्थ रचनाका अनुसरण करके अलग-अलग समयमें राजनीतिका विचार अलग-अलग प्रकारसे हुआ है और अमुक प्रकारकी राज्य व्यवस्था और राजनीतिक संस्थाओंका उदय हुआ है। उदाहरणके लिए जिस समय गुलामीकी प्रथा अस्तित्वमें थी और उत्पादनसे संबंधित मेहनत मजदूरीके सारे काम गुलामोंसे कराये जाते थे, उस समय गुलामीकी प्रथाको आवश्यक मानकर उसे स्वीकार करनेमें और गुलाम अपने मालिकोंके पूरी तरह अधीन रहकर पूरा काम करें ऐसी व्यवस्था करनेमें सच्ची राजनीति मानी जाती थी। कुछ समयसे अर्थ-व्यवस्था पूंजीवादी पद्धति पर चल रही है और हरएक देशमें शासन-तंत्रका उसे काफी सहारा मिला है। पर पूंजीवाद आज समाजकी सुख शांति और प्रगतिमें एक रोड़ा बन गया है। समाजकी सारी आर्थिक शक्तियां चारों तरफसे उस पर हमला कर रही हैं। उसकी बुनियाद हिल उठी है। फिर भी पुराने विचारके राजनीतिज्ञ और उनके असरमें चलनेवाले राज्यतंत्र आज भी पूंजीवादकी रक्षा करनेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। दूसरी तरफ देखें तो रूस जैसे देशमें पूंजीवादको उखाड़ फेंकनेके उद्देश्यसे, एक विशेष दल राज्यसत्ताको हाथमें लेकर पूंजीवादका नाश करनेके लिए उसका पूरा उपयोग करनेमें लगा हुआ है। हमारे देशमें अंग्रेजोंने अपनी राज्यसत्ताका काफी उपयोग करके यहांकी प्राचीन खेती प्रधान और ग्रामोद्योग प्रधान तथा आर्थिक दृष्टिसे लगभग स्वयंपूर्ण गावोंकी समाज व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्थाको छिन्न भिन्न कर डाला है और देशके तथा विदेशोंके पूंजीवादियोंको सहारा दिया है। दूसरी तरफ यहांकी ब्रिटिश सत्ताका विरोध करनेवाली राजनीतिक शक्तियां इस बातका प्रयत्न कर रही हैं कि हमारे देशकी यह पुरानी अर्थ-व्यवस्था आवश्यक परिवर्तनके साथ पुनर्जीवित हो जाय।

३ इस तरह राजनीतिक आंदोलन और कार्यक्रम तथा आर्थिक आंदोलन और कार्यक्रम हमेशा एक-दूसरे पर असर डालते ही रहते हैं। अलबत्ता, समग्र इतिहासका व्यापक दृष्टिसे अवलोकन करने पर यह पाया जाता है कि लम्बे अरसेके बाद तो राज्यतंत्रोंको समाजमें काम कर रही आर्थिक शक्तियोंका और उनके कारण अमलमें आनेवाली अर्थ रचनाका अनुसरण करना ही पड़ता है। उदाहरणके लिए छोटे पैमाने पर और स्थानीय आवश्यकतायें पूरा करनेके लिए उत्पादनकी प्रथा जब तक जारी रही तब तक राज्य भी छोटे छोटे ही थे। कभी कोई अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी और कीर्तिलोभी विजेता पैदा होता

परिस्थितियोंमें तथा उन कारणोंके रहते हुए वहाके जन-समाजकी प्रगति और कल्याण साधनेकी दृष्टिसे हमारी आर्थिक प्रवृत्तिया कसे चलाई जाय और विचार करनेके बाद इन आर्थिक प्रवृत्तियोंके नियम भी बना सकते ह।

२

अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र

१ विविध मानव-व्यवहारों और सबधोंका सारे जन-समाजकी सुख शाति प्रगति और कल्याणकी दृष्टिसे विचार और विवेचन करनेवाले शास्त्रके लिए सामान्यत समाजशास्त्र शब्दका प्रयोग किया जाता है। सपत्तिके स्वरूप और उसके उत्पादन विनिमय आदिसे सबधित मनुष्यके व्यवहारोंका विचार अर्थशास्त्र करता है इसलिए वह समाजशास्त्रकी एक शाखा माना जाता है। राजनीति शास्त्र विधानशास्त्र समाज रचना नीतिशास्त्र—ये सब भी मानवीय व्यवहारोंसे सबध रखनेवाले शास्त्र होनेके कारण समाजशास्त्रकी ही शाखाए ह। अर्थ शास्त्रमें मानव जातिकी सुख शाति आदिके लिए सपत्ति जसे एक साधन मानी जाती है उसी तरह राजनीतिम राज्य-व्यवस्थाको और राज्य-सस्थाओंको विधानशास्त्रमें विधानो या कानूनोको समाज रचनामें सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक सस्थाओको तथा नीतिशास्त्रमें सदाचार या नीतिमय व्यवहारके सिद्धान्तो और नियमोंको साधन माना गया है। इन सब शास्त्रोंका उद्देश्य एक ही है इसलिए वे एक-दूसरेके साथ अत्यन्त घनिष्ठ सबध रखते ह। प्रत्यक शास्त्रका प्रभाव दूसरे सारे शास्त्रो पर सदा पडता ही रहता है। इनमें स कोई भी एक शास्त्र दूसरे किसी शास्त्रकी उपेक्षा करे तो उससे अनर्थ ही उत्पन्न होता है। पुराने अर्थशास्त्री इन सब शास्त्रोंका परस्पर सबध और परस्परावलम्बन समझ ही नहीं पाये थे। और इसीलिए अर्थशास्त्र सबधी उनका आकलन दोषपूर्ण रहा। विभिन्न देशोंमें मनुष्यने जो आर्थिक प्रगति की है उसके इतिहासकी जाच की जाय तो जान पडेगा कि राजनीतिने नीतिशास्त्रने और धार्मिक मान्यताओंने समाजकी अर्थ प्रवृत्ति पर गहरा प्रभाव डाला है। ये सारे सामाजिक शास्त्र एक-दूसरेके साथ किस तरह गुथे हुए ह इसकी थोडी झाकी ही यहा दी जा सकेगी।

राजनीतिशास्त्रके साथ सबध

२ राज्य-व्यवस्था और राज्य-सस्थाओंका स्वरूप कसा हो तो उस व्यवस्था और सस्थाओंके अधीन रहनेवाले समाजकी सुख शान्ति और प्रगति

साधी जा सकती है—इस प्रश्नका विवेचन करके तत्संबंधी नियम तय करना राजनीतिशास्त्रका मुख्य उद्देश्य है। सम्पत्तिके उत्पादन और वितरणकी विभिन्न पद्धतियोंकी यानी समाजकी अर्थ रचनाका अनुसरण करके अलग-अलग समयमें राजनीतिका विचार अलग-अलग प्रकारसे हुआ है और अमुक प्रकारकी राज्य व्यवस्था और राजनीतिक संस्थाओंका उदय हुआ है। उदाहरणके लिए, जिस समय गुलामोंकी प्रथा अस्तित्वमें थी और उत्पादनसे संबंधित मेहनत मजदूरीके सारे काम गुलामोंसे कराये जाते थे, उस समय गुलामोंकी प्रथाको आवश्यक मानकर उसे स्वीकार करनेमें और गुलाम अपने मालिकोंके पूरी तरह अधीन रहकर पूरा काम करें ऐसी व्यवस्था करनेमें सच्ची राजनीति मानी जाती थी। कुछ समयसे अर्थ-व्यवस्था पूंजीवादी पद्धति पर चल रही है और हरएक देशमें शासन-तंत्रका उसे काफी सहारा मिला है। पर पूंजीवाद आज समाजकी सुख शांति और प्रगतिमें एक रोड़ा बन गया है। समाजकी सारी आर्थिक शक्तियां चारों तरफसे उस पर हमला कर रही हैं। उसकी बुनियादें हिल उठी हैं। फिर भी पुराने विचारके राजनीतिज्ञ और उनके असरमें चलनेवाले राज्यतंत्र आज भी पूंजीवादकी रक्षा करनेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। दूसरी तरफ देखें तो रूस जैसे देशमें पूंजीवादको उखाड़ फेंकनेके उद्देश्यसे एक विशेष दल राज्यसत्ताको हाथमें लेकर पूंजीवादका नाश करनेके लिए उसका पूरा उपयोग करनेमें लगा हुआ है। हमारे देशमें अंग्रजोंने अपनी राज्यसत्ताका काफी उपयोग करके यहांकी प्राचीन खेती प्रधान और ग्रामोद्योग प्रधान तथा आर्थिक दृष्टिसे लगभग स्वयंपूर्ण गांवोंकी समाज व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्थाको छिन्न भिन्न कर डाला है और देशके तथा विदेशोंके पूंजीवादियोंको सहारा दिया है। दूसरी तरफ यहांकी ब्रिटिश सत्ताका विरोध करनेवाली राजनीतिक शक्तियां इस बातका प्रयत्न कर रही हैं कि हमारे देशकी यह पुरानी अर्थ-व्यवस्था आवश्यक परिवर्तनके साथ पुनर्जीवित हो जाय।

३ इस तरह राजनीतिक आंदोलन और कार्यक्रम तथा आर्थिक आंदोलन और कार्यक्रम हमेशा एक-दूसरे पर असर डालते ही रहते हैं। अलबत्ता समग्र इतिहासका व्यापक दृष्टिसे अवलोकन करने पर यह पाया जाता है कि लंबे अरसेके बाद तो राज्यतंत्रोंको समाजमें काम कर रही आर्थिक शक्तियोंका और उनके कारण अमलमें आनेवाली अर्थ रचनाका अनुसरण करना ही पड़ता है। उदाहरणके लिए छोटे पैमाने पर और स्थानीय आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए उत्पादनकी प्रथा जब तक जारी रही तब तक राज्य भी छोटे छोटे ही थे। कभी कोई अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी और कीर्तिलोभी विजेता पैदा होता

तो वह विशाल प्रदेशको जीत कर अपना साम्राज्य जमाता। लेकिन उसके मरते ही उसका साम्राज्य भी छिन्नभिन्न हो जाता था। और ऐसे राज्यों या साम्राज्योंके हाथमें केवल सनिक सत्ता ही होती थी। समाजकी दूसरी सारी प्रवृत्तियोंमें वे हस्तक्षेप नहीं करते थे। परन्तु आज बड़े बड़े कारखाने शुरू हो जानेका फल यह हुआ है कि उनकी रक्षाके लिए केंद्रित सत्तावाले बड़े बड़े राज्यतंत्र अस्तित्वमें आये हैं। राज्यसत्ता आर्थिक मामलोंमें कितना प्रभाव डाल सकती है इसका एक बड़ा प्रमाण आजका कागजी नोटोंके रूपमें होनेवाला मुद्रा प्रसार है। इस मुद्रा प्रसारने सारे देशके आर्थिक तंत्रमें उथल-पुथल मचा दी है। इसके सिवा आज कोई भी सरकार अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति अपने आर्थिक प्रश्नोंके अनुसार ही निश्चित करती है। उसमें द्रव्य-संबंधी नीतिका बहुत बड़ा हिस्सा होता है। एक राष्ट्रकी दूसरे राष्ट्रके साथ चलनेवाली प्रतिस्पर्धा केवल विजेताकी कीर्ति प्राप्त करने या ख्याति प्राप्त करनेके लिए नहीं होती मुख्यतः वह आर्थिक स्वरूपकी ही होती है। प्रत्येक राष्ट्रका राज्यतंत्र दुनियामें जहांसे मिल सके वहींसे अपने देशके लिए कच्चा माल जुटाने और अपने देशमें तैयार होनेवाले पक्के मालको दूसरे देशोंमें खपानेके लिए बाजारों पर कब्जा करनेकी जी-तोड़ प्रयत्न कर रहा है। आजकल संसारके राष्ट्रोंके बीच जो बड़ी भारी प्रतिस्पर्धा चल रही है उसका और उससे पैदा हुए विश्वव्यापी युद्धका मुख्य कारण भी आजकी यह आर्थिक प्रतिस्पर्धा ही है।

विधानशास्त्रके साथ संबंध

४ अर्थनीतिका राजनीतिके साथ जितना संबंध देखनेमें आता है उससे भी अधिक और स्पष्ट संबंध अर्थ रचनाका विधानशास्त्र तथा कानूनोंके साथ देखा जाता है। यह सच है कि जिनके हाथमें राज्यसत्ता होती है वे कई बार अपनी मरजीके मुताबिक कानून बनाते देखे जाते हैं। परन्तु समाजमें काम करनेवाली अलग-अलग शक्तियों और समाजकी सच्ची आवश्यकताओं पर अच्छी तरह ध्यान दिये बिना जो लोग मनमाने ढंगसे कानून बनाने बैठ जाते हैं वे सच्चे विधानशास्त्री नहीं कहलाते और उनके बनाये हुए कानून ज्यादा दिन टिक भी नहीं सकते। चाहे जितना बलवान राज्यसत्ता भी ऐसे मनमाने कानूनों पर बहुत दिन तक प्रजासे अमल नहीं करा सकती। विधानशास्त्रियोंका सच्चा काम तो यह है कि समाजकी प्रगतिमें सहायता पहुंचानेवाली समाजमें लंबे समयसे चली आनेवाली और आम लोगों द्वारा मान्य की हुई परम्पराओं रूढ़ियों और विश्वासोंको कानूनका रूप देकर उन्हें निश्चित और ठोस आकार

दें। कभी ऐसा होता है कि कोई रीति रिवाज या रूढ़ि आरम्भमें तो समाजको बल देनेवाली सिद्ध होती है परन्तु परिस्थितियोंके बदल जानेके कारण बादमें वह समाजको नुकसान पहुंचाने लगती है। जब बुद्धिमान और उन्नत विचारके लोग ऐसे रीति रिवाजों या रूढ़ियोंको नुकसानदेह समझते हों, परन्तु जनसमाज परम्परासे चिपटे रहनेकी जड़ताके कारण ही उन रीति रिवाजों या रूढ़ियोंको न छोड़ सकता हो, तब भी विधानशास्त्री उन्नत लोकमतका सहारा लेकर कानून बनाते हैं और उसके जरिये जनसमाजकी जड़ता पर प्रहार करते हैं। इस तरह जहां लोकमत समझदार और निश्चित होता है वहां तो कानून लोकमतका अनुसरण करता ही है। परन्तु जहां लोकमत भिन्न होता है वहां कानून उन्नत लोकमतका सहारा लेकर अज्ञान और जड़ लोकमतको सुधारनेका काम करता है। बाल विवाहको रोकने और विधवा विवाहकी अनुमति देनेवाले कानून इसी तरहके हैं। शराबबन्दी जैसे मामलेमें कानून बुरी आदतके शिकार बन हुए लोगोंको उनकी कमजोरीसे बचानेका काम करता है। परन्तु वह कानून सफलतासे तभी काम कर सकता है जब लोकमत उसके अनुकूल हो। लोकमतको ठुकराकर कोई कानून लम्बे समय तक टिक नहीं सकता। अमरीकामें शराबबन्दीका कानून बनाया गया था। परन्तु लोकमत अनुकूल न होनेके कारण वहांका कानून मद्य निषेध करानेमें सफल नहीं हुआ। दूसरी तरफ हमारे देशमें शराबके विरोधमें लोकमत हमेशा प्रबल रहा है। इसलिए कांग्रेस सरकारोंने अलग अलग प्रान्तोंमें कानूनकी मददसे शराब बन्दीका जो काम उठाया वह पूरी तरह सफल रहा।

५ अब हम आर्थिक विषयोंसे सबंधित कानूनोंके कुछ उदाहरण लेकर अर्थशास्त्र और विधानशास्त्रका सबंध स्पष्ट करेंगे। हम स्वामित्व-अधिकार और उत्तराधिकारका विचार करेंगे जो आज सर्वमान्य बने हुए हैं। जब खेती करनेके लिए जमीनकी कमी नहीं थी, लेकिन वह जमीन खेतीके उपयोगमें तभी लाई जा सकती थी जब उसे खूब परिश्रम करके साफ कर लिया जाता, उस समय जिस समूह या कुटुम्बने सावधानीके साथ बड़ा परिश्रम करके उस जमीनको साफ किया हो उसका स्वामित्वका अधिकार उस पर सुरक्षित रहे और उसके वारिसोंका उत्तराधिकार भी मान लिया जाय तभी उस समूह या कुटुम्बको उस जमीनकी सफाई करनेकी लगन रह सकती थी। अगर ऐसा हो कि आज एक कुटुम्ब कड़ा परिश्रम करे और कल दूसरा कुटुम्ब आकर उसे बाहर निकाल दे तो ऐसे समाजमें स्वाभाविक ही किसीको परिश्रम करनेका उत्साह नहीं रहेगा। नतीजा यह होगा कि उस समाजमें आर्थिक उन्नति रुक जायगी। अत

तो वह विशाल प्रदेशोंको जीत कर अपना साम्राज्य जमाता। लेकिन उसके मरते ही उसका साम्राज्य भी छिन्नभिन्न हो जाता था। और एसे राज्यों या साम्राज्योंके हाथमें केवल सैनिक सत्ता ही होती थी। समाजकी दूसरी सारी प्रवृत्तियोंमें वे हस्तक्षेप नहीं करते थे। परन्तु आज बडे बडे कारखाने खडे हो जानेका फल यह हुआ है कि उनकी रक्षाके लिए केन्द्रित सत्तावाले बडे बडे राज्यतंत्र अस्तित्वमें आये हैं। राज्यसत्ता आर्थिक मामलोंमें कितना प्रभाव डाल सकती है इसका एक बडा प्रमाण आजका कागजी नाणेके रूपमें होनेवाला मुद्राप्रसार है। इस मुद्राप्रसारने सारे देशके आर्थिक तंत्रमें उथल-पुथल मचा दी है। इसके सिवा आज कोई भी सरकार अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति अपने आर्थिक प्रश्नोंके अनुसार ही निश्चित करती है। उसमें द्रव्य-संबंधी नीतिका बहुत बडा हिस्सा होता है। एक राष्ट्रकी दूसरे राष्ट्रके साथ चलनेवाली प्रतिस्पर्धा केवल विजयकी कीर्ति प्राप्त करने या ख्याति प्राप्त करनेके लिए नहीं होती बल्कि वह आर्थिक स्वरूपकी ही होती है। प्रत्येक राष्ट्रका राज्यतंत्र दुनियामें जहांसे मिल सके वहींसे अपने देशके लिए कच्चा माल जुटाने और अपने देशमें तैयार होनेवाले पक्के मालको दूसरे देशोंमें खपानेके लिए बाजारों पर कब्जा करनेका जी-तोड प्रयत्न कर रहा है। आजकल संसारके राष्ट्रोंके बीच जो बडी भारी प्रतिस्पर्धा चल रही है उसका और उससे पैदा हुए विश्वव्यापी युद्धका मुख्य कारण भी आजकी यह आर्थिक प्रतिस्पर्धा ही है।

विधानशास्त्रके साथ संबंध

४ अर्थनीतिका राजनीतिके साथ जितना संबंध देखनेमें आता है उससे भी अधिक और स्पष्ट संबंध अर्थरचनाका विधानशास्त्र तथा कानूनोंके साथ देखा जाता है। यह सच है कि जिनके हाथमें राज्यसत्ता होती है वे कई बार अपनी मरजीके मुताबिक कानून बनाते देखे जाते हैं। परन्तु समाजमें काम करनेवाली अलग-अलग शक्तियों और समाजकी सच्ची आवश्यकताओं पर अच्छी तरह ध्यान दिये बिना जो लोग मनमाने ढंगसे कानून बनाने बैठ जाते हैं, वे सच्चे विधानशास्त्री नहीं कहलाते और उनके बनाये हुए कानून ज्यादा दिन टिक भी नहीं सकते। चाहे जितनी बलवान राज्यसत्ता भी ऐसे मनमाने कानूनों पर बहुत दिन तक प्रजासे अमल नहीं करा सकती। विधानशास्त्रियोंका सच्चा काम तो यह है कि समाजकी प्राथमिक मान्यता पहचाननेवाली समाजमें लम्बे समयसे चली आनेवाली और आम लोगों द्वारा मान्य की हुई परम्पराओं रूढियों और विश्वासोंको कानूनका रूप देकर उन्हें निश्चित और ठोस आकार

हैं। कभी ऐसा होता है कि कोई रीति-रिवाज या रूढ़ि आरम्भमें तो समाजको बल देनेवाला सिद्ध होता है परन्तु परिस्थितियोंके बदल जानेके कारण बादमें वह समाजको नुकसान पहुंचाने लगता है। जब बुद्धिमान और स्वतंत्र विचारके लोग ऐसे रीति रिवाजों या रूढ़ियोंसे नुकसानको समझते हों परन्तु सर्वसाधारण परम्पराके प्रति रहनेवाली जड़ताके कारण हो उन रीति रिवाजों या रूढ़ियोंको न छोड़ सकते हों, तब भी विधानशास्त्री उन्नत लोकमतका सहारा लेकर कानून बनाते हैं और उसके जरिये जनसमाजकी जड़ता पर प्रहार करते हैं। इस तरह जहां लोकमत समझदार और निश्चित होता है वहां तो कानून लोकमतका अनुसरण करता ही है। परन्तु जहां लोकमानसमें भ्रम होता वहां कानून उन्नत लोकमतका सहारा लेकर आगे आता और जड़ लोकमतको सुधारनेका काम करता है। बाल विवाहको रोकने और विधवा विवाहकी अनुमति देनेवाले कानून इसी तरहके हैं। शराबबन्दी जैसे मामलोंमें कानून बुरी आदतके शिकार बने हुए लोगोंको उनकी कमजोरीसे बचानेका काम करता है। परन्तु यह कानून सफलतासे तभी काम कर सकता है जब लोकमत उसके अनुकूल हो। लोकमतके खिलाफ कोई कानून लम्बे समय तक टिक नहीं सकता। अमेरिकामें शराबबन्दीका कानून बनाया गया था। परन्तु लोकमत अनुकूल न होनेके कारण वहांका कानून मद्य निषेध करानेमें सफल नहीं हुआ। दूसरी तरफ हमारे देशमें शराबके विरोधमें लोकमत हमेशा प्रबल रहा है। इसलिए कांग्रेस सरकारोंने अलग अलग प्रान्तोंमें कानूनकी मददसे शराबबन्दीका जो काम उठाया वह पूरी तरह सफल रहा।

५ अब हम आर्थिक विषयोंसे सम्बन्धित कानूनोंके कुछ उदाहरण लेकर अर्थशास्त्र और विधानशास्त्रका सम्बन्ध स्पष्ट करेंगे। हम स्वामित्व-अधिकार और उत्तराधिकारका विचार करेंगे, जो आज सर्वमान्य बन हुए हैं। जब खेती करनेके लिए जमीनकी कमी नहीं थी, लेकिन वह जमीन खेतीके उपयोगमें तभी लाई जा सकती थी जब उसे खूब परिश्रम करके साफ कर लिया जाता, उस समय जिस समूह या कुटुम्बने सावधानीके साथ बड़ा परिश्रम करके उस जमीनको साफ किया हो उसका स्वामित्वका अधिकार उस पर सुरक्षित रहे और उसके वारिसोंका उत्तराधिकार भी मान लिया जाय तभी उस समूह या कुटुम्बको उस जमीनकी सफाई करनेकी लगन रह सकती थी। अगर ऐसा हो कि आज एक कुटुम्ब बड़ा परिश्रम करे और कल दूसरा कुटुम्ब आकर उसे बाहर निकाल दे तो ऐसे समाजमें स्वाभाविक ही किसीको परिश्रम करनेका उत्साह नहीं रहेगा। नतीजा यह होगा कि ऐसे समाजमें आर्थिक उन्नति रुक जायगी। अत

समाजकी सुस्थिति और आर्थिक प्रगतिके खातिर ही प्रथम तो ये अधिकार एक अलिखित कानूनके रूपमें मान लिये गये। जैसे जैसे समाज आगे बढ़ता गया वैसे वैसे इन अधिकारोंमें जमीन किसीको भेंट दे सकनेका और इसी तरहके दूसरे भी तत्त्व दाखिल हुए और अन्तमें उन्हें कानूनका रूप दे दिया गया। किन्तु आज जब कि समाजका एक बहुत छोटा परन्तु शक्तिशाली वर्ग इन अधिकारोंके बल पर बड़ी जमीन-जायदाद और उत्पादनके लगभग सभी साधनों पर अपना अधिकार जमाकर बैठ गया है और इन साधनों पर मजदूरोंसे अपनी ही शर्तों पर काम लेता है और बहुतोंको कामके बिना बेकार रहना पड़ता है, यही कानून जो पहले किसी समय समाजकी आर्थिक उन्नतिके लिए आवश्यक थे आर्थिक उन्नतिमें रुकावट बन गये हैं। जो नई आर्थिक शक्तियां उत्पन्न हो गई हैं और जो अर्थ-व्यवस्था बदलती जा रही है उसके मार्गमें ये कानून रोकते दिखाई देते हैं। इस कारण समाजकी आर्थिक प्रगतिके लिए इन कानूनोंमें बड़े सुधार करना और आज तक मान्य किये हुए अधिकारोंको मर्यादित करना आवश्यक हो गया है। मनुष्य मनुष्यके बीचके अर्थ-व्यवहारसे संबंधित कितने ही करारोंके बारेमें जिन्हें मौजूदा कानून स्वीकार करता है हम देखते हैं कि हमारी आर्थिक सुव्यवस्था और आर्थिक प्रगति जिस न्यायकी मांग करती है उस न्याय तक कानूनका न्याय नहीं जा सकता। जमीन पर अपने स्वामित्वके अधिकारका दावा करके किसी भी तरहका श्रम किये बिना कितने ही जमींदार अपने किसानोंको आज चूस रहे हैं, अथवा चारों तरफसे पैसेकी तंगीसे घिरा हुआ कर्जदार पचास या पचहत्तर प्रतिशत ब्याज देनेका करार लिख दे तो इस करारके बल पर आज तक साहूकार कर्जदारको पूरी तरह निचोड़ सकता है। इस तरह आर्थिक न्याय और कानूनके न्यायके बीच बहुत बार विसंगति उत्पन्न होनेके कारण स्वामित्व-अधिकारके उत्तराधिकारके और लेनदेनके कानूनमें जड़से परिवर्तन करनेकी जरूरत पैदा हो गई है।

६ एक दूसरा उदाहरण देकर हम इस बातको अधिक स्पष्ट करनेकी कोशिश करेंगे। हमारे मिल-मजदूरोंकी मजदूरीकी दरों और मजदूरोंके लिए दूसरी आवश्यक सुविधाओंके प्रश्न पर विचार करें। मालिकों और मजदूरोंके बीचके आर्थिक न्यायका विचार करने पर जहां इस बारेमें जरा भी शंका नहीं हो सकती थी कि मजदूरोंको मजदूरीकी दर अधिक मिलनी चाहिये वहां कानून मजदूरोंको अधिक दर नहीं दिला सकता था। कानून तो कहता था कि मालिकों और मजदूरोंको मजदूरीकी दरके बारेमें जो करार

करना हो उसे करनेके लिए वे स्वतंत्र हैं। कानून इस बातकी परवाह नहीं करता था कि करार करनेवाले दो पक्षोंमें से एक पक्ष कम संगठित या राज्यतंत्र पर कम असर डालनेवाला और इसलिए निर्बल होनेके कारण न्याय पानेमें समर्थ नहीं है। इसके अतिरिक्त मजदूरोंको अमुक सुविधायें और लाभ मिलने चाहिये यह बात आर्थिक या दूसरी अनेक दृष्टियोंसे कितनी ही न्यायपूर्ण क्यों न हो परन्तु कानून इसके बीचमें नहीं पड़ता था। आखिर जब मजदूर अपना संगठन करके न्याय पानेके लिए हड़तालें करने लगे तब विधानशास्त्री जागे और उन्हें मजदूरोंकी दरोंके बारेमें मजदूरोंकी सुख सुविधाओंके बारेमें और इसी तरह मजदूरों और मालिकोंके बीचके दूसरे संबंधोंको नियंत्रणमें रखनेके बारेमें कानून बनाने पड़े। दूसरी बात यह है कि जितनी तेजीसे सुधार होने चाहियें उतनी तेजीसे सुधार होते नहीं। इस दृष्टिसे इन कानूनोंमें बड़ी न्यूनता मालूम होगी। जब लोकमत जाग्रत होकर जोर लगाता है तब कानून अमलमें आनेवाली नई अर्थ-व्यवस्थाकी सहायताके लिए तत्पर होता है। लेकिन एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि कानून नया आर्थिक बल पैदा नहीं कर सकता। मजदूर जब संगठित होने लगे तब कानून उनकी सहायता करने आया। किसानोंका संगठन हो तभी जमींदारों पर कानूनका अंकुश रखा जा सकता है। नये आर्थिक बलको नैतिक बलके सहारेकी जरूरत पड़ती है, जो कानूनसे नहीं बल्कि संगठन और स्वावलम्बनसे मिलता है। कानून सुधारके लिए अनुकूल परिस्थिति अवश्य निर्माण कर सकता है।

समाज रचनाके साथ सम्बन्ध

७ अगर हम कुटुम्ब-संस्थाका विवाहकी अलग-अलग प्रथाओंका और वर्ण-व्यवस्थाका विचार करें तो उनकी जड़में समाजकी एक विशेष अर्थ रचना जान पड़ेगी। समाजके कुछ खास धंधोंके लिए संयुक्त कुटुम्बकी व्यवस्था अनुकूल थी, विविध धंधोंके सम्बन्धमें वर्ण व्यवस्था हुई और वर्ण-व्यवस्थामें से विवाह संबंधोंकी अमुक मर्यादाएं निर्माण हुई। इस तरह समाजकी इन संस्थाओंके उत्पन्न होनेका कारण अमुक तरहकी अर्थ रचना मालूम होती है। इन संस्थाओंके स्थिर और दृढ़ हो जानेके बाद समाजके दूसरे क्षेत्रोंमें भी इन्होंने मानव जातिके विकासमें सहायता पहुंचाई है। उदाहरणके लिए इसमें कोई शंका नहीं कि अर्थशास्त्रके श्रम विभागके सिद्धान्तका अनुसरण करके ही हमारे देशमें वर्ण व्यवस्था उत्पन्न हुई और उसका विकास हुआ। परन्तु समाजके आर्थिक विकासमें सहायक होनेके अलावा हमारी वर्ण-व्यवस्थाने, जब तक वह शुद्ध

रूपमें रही तब तक राजनीतिक सांसारिक नैतिक और धार्मिक क्षेत्रमें भी हमारा विकास किया। कुटुम्ब-संस्था और विवाह-संस्थाके विषयमें भी यही कहा जा सकता है। अर्थ-व्यवहारके सिवा दूसरे व्यवहारोंमें भी ये संस्थाएं मानव-जातिके लिए बहुत उपकारक सिद्ध हुई हैं इस कारण सारी दुनियाके समस्त समाजोंमें इनकी जड़ इतनी मजबूत जम गई है कि मनुष्यके लिए ये बहुत ही स्वाभाविक बन गई हैं और इससे ये पवित्र भी मानी गई हैं। मानवताकी ऊंचीसे ऊंची भावनाओंका और ऊंचेसे ऊंचे गुणोंका इन संस्थाओंने विकास किया है तथा और भी अधिक उनका विकास करनेकी शक्ति इन संस्थाओंमें है। यद्यपि बदली हुई अर्थ-रचनाका थोड़ा-बहुत असर तो इन संस्थाओं पर पड़ेगा ही फिर भी यह नहीं हो सकता कि अर्थ-व्यवस्थाके बदलने पर इन संस्थाओंके लिए अपना अस्तित्व बनाये रखनेका कोई कारण न रह जायगा और इसलिए ये मिट जायगी।

८ हमने देख लिया कि राज्यसत्ता और कानूनके साथ होनेवाले आर्थिक शक्तियोंके संघर्षमें आखिर जीत आर्थिक शक्तियोंकी ही होती है। परन्तु यह विश्वास नहीं रखा जा सकता कि ऊपर बताई हुई जो संस्थाएं मानव-जातिके लिए स्वाभाविक हो गई हैं उनके साथके संघर्षमें भी आर्थिक शक्तियोंकी ही जीत होगी। इन संस्थाओंकी नींव पर खड़े किये हुए समाज-तंत्रको छिन्न भिन्न कर डालनेवाले अर्थतंत्रकी रचनाके जो प्रयत्न होंगे वे शायद थोड़े समय तक उत्पात मचा सकें परन्तु अंतमें उनके निष्फल सिद्ध होनेकी ही संभावना है। वर्ण-व्यवस्थाके विषयमें यह बात सही है कि दुनियाके सब देशोंमें कार्य विभागके सम्बन्धमें और समाजके विभिन्न वर्गोंके रहन-सहनके सम्बन्धमें वह किसी न किसी रूपमें देखनेमें आती है। परन्तु हमारे देशमें इस व्यवस्थाका अधिक विचार किया गया है और उसकी रचना जन्मके आधारके अतिरिक्त गुण-कर्मके अधिक शास्त्रीय आधार पर की गयी है।* वर्ण-व्यवस्थाके सिद्धान्तकी जड़में यह विचारसरणी निहित है कि एक तरहका धंधा करनेवाले कुटुम्ब एक खास वर्णके माने जायं और उसके बाद उस वर्णमें ही वह धंधा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहे जिससे वंशपरम्परागत संस्कारोंका और बचपनसे ही इस प्रकारकी तालीम तथा वातावरणका लाभ मनुष्यको उस धंधेके विकासके लिए प्राप्त हो और समाजका अर्थ-व्यवहार शान्तिसे चलता रहे। परन्तु आर्थिक प्रवृत्तियोंमें

* यह ध्यानमें रखना होगा कि हमारे देशमें इस समय जो जातिप्रथा चल रहा है वह यह वर्ण-व्यवस्था नहीं है।

खुली प्रतिस्पर्धाके तत्त्वका जो प्रचार हुआ, उसके फलस्वरूप दूसरे देशोंमें और हमारे यहां भी वर्ण-व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गई। दूसरी तरफ यह अमर्यादित प्रतिस्पर्धा समाजकी प्रगति साधनेमें और सुख-शान्ति कायम करनेमें असफल सिद्ध हुई है। इतना ही नहीं इसने सारी दुनियाको लड़ाईकी आगमें झोंक दिया है। इसलिए अर्थतन्त्र यदि मानव-जातिका कल्याण करनेवाला बनना है और दुनियामें सुख-शांति और प्रगति साधनी है तो वर्ण-व्यवस्थाके सिद्धान्तको मानकर उसके अनुसार चले बिना उसका काम नहीं चलेगा।

नीतिशास्त्रके साथ संबंध

९ अर्थशास्त्रियोंके बहुत बड़े भागका यह मानना है कि अर्थशास्त्रका नीतिशास्त्र अथवा धर्मनीतिके साथ कोई भी संबंध नहीं है। वे कहते हैं कि जिस मनुष्यको शराब पीनेकी आदत पड़ गई है और जिसका शराबके बिना काम ही नहीं चल सकता, उसके लिए शराब एक आवश्यकता है, और क्योंकि शराब बनानेवाले और शराब बेचनेवाले लोग यह आवश्यकता पूरी करनेका काम करते हैं इसलिए उनके काम पर अर्थशास्त्र कोई आपत्ति नहीं उठा सकता। नीतिशास्त्र भले ही इस बातका विचार करे कि शराब पीनेकी आदत अच्छी है या बुरी और शराबका धंधा अच्छा है या बुरा परन्तु अर्थशास्त्र तो इस आवश्यकताको और इस धंधेको स्वीकार करके ही आगे चलेगा।

१० पुराने विचारके कुछ अर्थशास्त्री तो इन दो शास्त्रोंको एक दूसरेका विरोधी मानते हैं। एडम स्मिथ अर्थशास्त्रके जनक माने गये हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तकमें सारे अर्थशास्त्रका विचार एक ऐसे आधार पर किया है जिसमें से यह प्रकट विरोध फलता है। मनुष्यकी स्वार्थबुद्धिको जीवन-व्यवहारकी प्रेरक शक्ति मानकर उसके आधार पर एडम स्मिथने अर्थशास्त्रके नियम बनानेका प्रयत्न किया है। वे कहते हैं कि अर्थशास्त्रका आधार मनुष्यकी स्वार्थबुद्धि है और नीतिशास्त्रका आधार मनुष्यमें पाई जानेवाली दया और परोपकारकी वृत्ति है। इन दो वृत्तियोंमें मेल कभी बैठ ही नहीं सकता। उन्होंने यह मान लिया है कि मनुष्य केवल अर्थ-परायण है और यह कहा है कि मनुष्यको अर्थ-परायण मानकर ही जिस अर्थशास्त्रका विचार किया जाय वही शुद्ध अर्थशास्त्र है। अर्थशास्त्रके अपने बनाये हुए शास्त्रीय नियमोंके अमलमें दया, परोपकार आदि मानवतापूर्ण वृत्तियोंको उन्होंने विक्षेप डालनेवाली कहा है। इसमें उनकी गलती यह हुई है

कि वे इस बातको भूल गये कि अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनोंका उद्देश्य मानव जातिकी प्रगति और कल्याण करना है इसलिए वह एक ही है। अर्थशास्त्रको सिर्फ अर्थोत्पादनका शास्त्र मानकर ही उन्होंने विचार किया है। यदि हम अर्थशास्त्रको भी मनुष्यकी प्रगति और कल्याणका विचार करनेवाला शास्त्र मानें तो मानवताकी वृत्तियोंको इस शास्त्रके नियम बनानेमें निर्णायक अंग समझना चाहिये और मनुष्यकी स्वार्थवृत्तिको — जो स्वार्थवृत्ति समाजके कल्याणकी उपेक्षा करके सिर्फ अपना आर्थिक लाभ ही देखती है — विक्षेपक अंग समझना चाहिए। समाजके कल्याणकी दृष्टिसे विचार करें तब तो सच्ची अर्थप्रवृत्ति और सच्चा अर्थलाभ नीतिका विरोधी कभी हो ही नहीं सकता। इतना ही नहीं नीतिका अनुसरण करके और नीति पर निर्भर रहकर ही ये दोनों साधे जा सकते हैं। इसे सब कोई मानते हैं कि ईमानदारी ही सबसे अच्छी नीति है। इस नीतिका भंग करनेसे किसी मनुष्यको कुछ समयके लिए भले ही थोड़ा आर्थिक लाभ हो जाय परन्तु उसके भंगसे समाजकी अर्थ-व्यवस्था कभी भलीभांति काम कर ही नहीं सकती। क्योंकि नीतिके बिना एक-दूसरेके साथके आर्थिक व्यवहारमें कोई स्थिरता नहीं रह सकती। जो व्यक्ति अथवा समाज नीति-अनीतिका विचार किये बिना केवल स्वार्थको प्राधान्य देकर अपना कार्य चलाता है वह चरित्रमें और अन्तमें बुद्धिबलमें भी शिथिल हुए बिना नहीं रहता। इससे वह नीतिके साथ साथ अर्थको भी गवा बैठता है। हम यह प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि आज अर्थोत्पादनकी पूंजीवादी पद्धतिने मनुष्यका विचार किये बिना मालके ढेर लगाने शुरू किये इससे मालके खरीदार मिलनेकी कठिनाई पैदा हुई और उसीमें से दुनियाको तबाह करनेवाली लड़ाइयां फूट निकलीं। इसीलिए हमारे शास्त्रकारोंने उसी अर्थ और कामको उचित बताया है, जो धर्मके विरुद्ध न हो।

३

सम्पत्तिकी परिभाषा

सर्व-सुलभ सम्पत्ति*

१ हवा, पानी और सूर्यकी गर्मी मनुष्यके जीवनके लिए बहुत आवश्यक वस्तुएं हैं, इसलिए एक प्रकारसे तो ये अमूल्य सपत्ति मानी जायगी। लेकिन उन्हें प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको श्रम नहीं करना पडता। सामान्यत जिसे उनकी आवश्यकता होती है उसे वे पर्याप्त मात्रामें मिल जाती हैं। ऐसी वस्तुओंको बिना श्रम किये मिलनेवाली या सर्व-सुलभ सपत्ति कहा जाता है। ऐसी वस्तुओं पर सामान्यत किसीका स्वामित्व नहीं हो सकता। अत ऐसी वस्तुओंकी खरीद बिक्री यानी अदला-बदली या विनिमय भी नहीं होता। अर्थशास्त्रमें हमें ऐसी सपत्तिका बहुत विचार नहीं करना पडता। ऐसी सर्व सुलभ सपत्ति आर्थिक सपत्ति नहीं कही जाती। फिर भी दुनियामें हवा पानी और सूर्यकी किरणें सर्वत्र एकसी नहीं होती। उनमें अच्छे-बुरेका भेद होता है। जो स्थान हवा पानी वगराकी दृष्टिसे अच्छे माने जाते हैं वे आर्थिक दृष्टिसे महत्त्व प्राप्त करते हैं, और वहाकी जमीन घरों आदिकी कीमत अधिक आकी जाती है। इस प्रकार परोक्ष रूपमें ये वस्तुएं भी आर्थिक व्यवहारका विषय बन जाती हैं।

आर्थिक सपत्ति

२ आर्थिक सपत्ति उसे कहा जाता है जिसमें हमारी आवश्यकतायें पूरी करनेका गुण या शक्ति हो तथा जिसे आवश्यक मात्रामें और जहा हमें उसकी जरूरत हो वहा जुटानेके लिए श्रम करना पडे अथवा हमारी मागकी तुलनामें वह इतनी कम या दुर्लभ हो कि उसके स्वामित्वके लिए प्रतिस्पर्धा पैदा हो जाय। हम पहले प्रकरणमें देख चुके हैं कि प्रकृति पर श्रम करके मनुष्य किस तरह अपने उपभोगके योग्य सपत्ति निर्माण करता है।

---

* सपत्तिकी सामग्री है सारा धन-दौलत। उसके सदुपयोगका अर्थ है सम्पत्ति उसका दुरुपयोग है विपत्ति — अनर्थ, और उसका निरुपयोग दरिद्रता है।

है

जो इसमें उस जमाना

था।

लगा।

आर्थिक

है जो या तो

कि एक जगह जो वस्तु

मानी जाता वह दूसरी

जाती है। नदीके किनारे रेत

भरने या चूनमें मिलानेके लिए

लाना पड़ता है। इस कारण वह श्रमप्राप्य

देनी पड़ती है। बिलकुल थोड़ी आबादीवाले

मिलती है लेकिन शहरमें उसे लानेमें श्रम

दाम देने पड़ते हैं। हवा जैसी चीज भी

हो जाती है। खुले मैदानमें हवा सर्व-सुलभ है परन्तु

लोग इकट्ठे हों तो वहां हवाके लिए पंखे लगाने पड़ते हैं

अर्थात् उसके लिए श्रम करना पड़ता है और इसलिए उसकी कीमत आंकी

जाती है। यही बात पानीकी है। नदीके किनारे पानी मुफ्त मिलता है परन्तु

हमारे घर एक-दो घड़े पानी लानेके दाम देने पड़ते हैं। इस तरह जो

पानी नदीके किनारे सर्व-सुलभ कहलाता है वह हमारे घर पर श्रमप्राप्य

हो जाता है और इस कारण वह बन जाता है।

बिना परिश्रमके मिलनेवाली ... मर्यादित परिमाण

थोड़ी मात्रामें ही मिल सकती हो ... तो उसके

लिए होड़ पैदा हो ... । ऊपर ... तो दिया ही

है। इसी न्यायसे ... और ... र्थिक सम्पत्ति

जाते हैं। कुछ ... नदीके

बाढ़ उतर जानेके ... हो

है वह मर्यादित ... उम्मीद

बार बहुत होते हैं।

है और उसे जोतना

इसी तरह जंगलकी

वस्तुए एसी ह जिनके लिए किसाको परिश्रम नही करना पडता। फिर भी कानूनके जरिये सरकार इनका ठका द रखती है, इसलिए ये वस्तुए दुष्प्राप्य हो जाती ह और उनके लिए पैसा खर्च करना पडता है। इनके सिवा उल्का यानी टूटनेवाले तारोंके पत्थर जब गिरते हैं तो वे विना श्रमके मिलते ह। परन्तु वे क्वचित ही गिरते ह और वैज्ञानिक खोजके लिए बहुत उपयोगी माने जाते ह इसलिए उनके दाम बहुत अधिक मिलते ह। ऐसी सब चीजें आर्थिक सपत्तिके अन्तर्गत मानी जाती ह।

५ हमारे आजकलके शहरोंमें पानीकी बडी-बडी टकिया होती ह। उनमें पानी इकट्ठा करके बडे बडे नलो द्वारा सारे शहरमें घर घर पानी पहुचाया जाता है। बच्चोंको ऐसा लगता है कि हमने नल खोला कि हमें तुरत मुफ्त पानी मिल जाता है। परन्तु यह पानी मुफ्त नही मिलता। म्युनिसिपल्टीको घर घर पानी पहुचानेके लिए बडा खर्च करना पडता है और उसके बदलेमें वह पानी लेनेवालोंसे प्रतिवर्ष करके रूपमें पानीके दाम लेती है। इसलिए यह पानी आर्थिक सपत्ति कहा जायगा।

सार्वजनिक सपत्ति

६ परन्तु रास्तेके बडे नलसे पानी पीनेवाला, या सार्वजनिक बागका घूमन फिरनके लिए उपभोग करनवाला, या नदी पर बधे हुए पुल परसे आने-जानवालाको कोई कर नहा देना पडता। यह कहा जा सकता है कि उन्हें ये चीजें मुफ्त मिलती ह। फिर भी हम उन्हें विना श्रमके मिलने वाली सब-सुलभ वस्तुओंमें नही गिन सकते। किसी न किसीका ता उनक लिए श्रम करना ही पडा है। अत इस अर्थमें व श्रमप्राप्य ही ह। इसके सिवा उनक लिए कर चुकानवालोंका तो पसा देना ही पडा है। परन्तु उनका उपभोग कोई भी मनुष्य कर सकता है। उनके लिए किसी भी प्रकारका श्रम न करनवाले अथवा करके रूपमें एक पाई भी न चुकानेवाले भी उनका उपभोग कर सकत ह। ऐसी वस्तुओंको सार्वजनिक सपत्तिका नाम दिया जाता है।

७ करकी छानबीनमें इस तरहके प्रश्नोंका विचार करना होता है कि किन वस्तुओंको सार्वजनिक रखा जाय उनकी व्यवस्थाके लिए कौन खर्च करे उस खर्चकी रकम किस तरह प्राप्त की जाय और यदि वह रकम लोगो पर कर लगाकर प्राप्त करना हो तो वह कर उनका उपभोग करनेवाले प्रत्येक मनुष्य पर डाला जाय या नजदीकके प्रदेशोंमें रहनेवाले लोगो पर डाला जाय या उनमें स भी खास वर्गों पर ही डाला जाय।

कुदरती साधन-सम्पत्ति

८ सब-सुलभ सम्पत्तिका विचार अर्थशास्त्रमें कम किया जाता है। परन्तु इस संबंधमें भी इतना तो ध्यानमें रखना ही चाहिये कि जिस प्रदेशमें श्रमके बिना मिलनेवाली या सब-सुलभ वस्तुओंकी मात्रा जितनी ज्यादा होती है उतना ही वह प्रदेश अधिक सम्पत्तिवाला माना जाता है। परन्तु यह हमेशा संभव नहीं होता कि उस प्रदेशमें रहनेवाले लोगोंको बिना श्रमके मिलनेवाली वस्तुएं पर्याप्त मात्रामें मिल जाती हैं, इसलिए वे लोग ज्यादा वैभव या सुखोपभोग भोगते हैं। अफ्रीकाके कितने ही प्रदेशोंमें जहां आज भी प्राथमिक अवस्थामें जीवन बितानेवाले लोग रहते हैं, कुदरतकी अपार साधन-सम्पत्ति बिखरी पड़ी है तो भी वहांके लोग उसे अपने उपभोगके लायक नहीं बना सके, और इसलिए वे लोग सम्पत्तिशाली या धनी नहीं माने जा सकते। प्रकृतिकी दी हुई सम्पत्तिकी दृष्टिसे हमारा देश बहुत सम्पन्न माना जायगा। हमारे यहां खेती करने लायक पर्याप्त जमीन है, ऐसे विशाल जंगल हैं जिनमें से विविध वस्तुएं मिल सकती हैं, भांति भांतिकी खानें हैं, सुन्दर नदियां हैं और ऐसे बड़े बड़े जलप्रपात हैं जिनसे बिजली जैसी भौतिक शक्ति पैदा की जा सकती है। इन सबके लिए हमें किसी भी तरहका श्रम नहीं करना पड़ा है। कुदरतने खुले हाथों यह सम्पत्ति हमें भेंट की है। फिर भी हमारा देश आज दुनियाके बहुत गरीब देशोंमें से एक है। इसका कारण हमारी राजनीतिक पराधीनताके अलावा हमारी अपनी कुछ कमियां भी हैं। और राजनीतिक पराधीनता भी हमारी ऐसी कमियों और कमजोरियोंके कारण ही तो आई है न? कुदरती साधन-सम्पत्तिके साथ मानव-बुद्धि और मानव-श्रमका योग हो तभी उपभोगमें आने लायक सम्पत्ति समाजको मिलती है। इसके अतिरिक्त इस सम्पत्तिका रक्षण करके उसका अच्छेसे अच्छा उपयोग करनेकी शक्ति भी इस समाजमें होनी चाहिये। ऐसा समाज ही सम्पत्तिशाली या धनी बनता है।

द्रव्य और सम्पत्ति

९ प्रचलित लोकमान्यताके अनुसार द्रव्य या पैसेको ही सम्पत्ति या धन माना जाता है। साधारण व्यवहारमें यह बात सच्ची मालूम होती है। क्योंकि जिसके पास पैसा होता है वह उसके द्वारा अपनी आवश्यकताकी हर वस्तु प्राप्त कर सकता है। चूंकि प्रत्येक समाजने द्रव्य या पैसेको वस्तुओंकी अदला-बदली या विनिमय करनेका एक साधन या माप मान

लिया है इसीलिए ऐसा हो सकता है। यदि चादी-सोनके सिक्कोको या उनके बदले काममें आनेवाले कागजी नोटोको विनिमयके साधन मानना बन्द हो जाय तो चादी-सोनेके सिक्केमें रही धातुकी वस्तुके रूपमें मनुष्यके लिए जितनी उपयोगिता हो—जैसे गहनाके लिए—उतनी ही हद तक वह सम्पत्ति माना जायगा। नोट तो निरे कागज ही बन कर रह जायगे। विनिमयके साधनके तौर पर चादी-सोनेके सिक्केमें जो गुण है उसे यदि निकाल दिया जाय तो फिर उसमें मनुष्यकी आवश्यकताए पूरी करने या मनुष्यके लिए उपयोगी बननेका गुण बहुत थोडा रह जाता है। नोटमें तो वह गुण बिल्कुल नही रहता। किसी शहरमे कितना ही सोना चादी या सोने चादीके सिक्के हो लेकिन यदि बाहरसे वहा पानी अनाज और जरूरतकी दूसरी वस्तुए आना बन्द हो जाय, तो वह चादी-सोना या उसके सिक्के खाने-पीने या पहनने-ओढनेके किसी काममें नही आ सकते।

अमूर्त सम्पत्ति

१० अब तक हमने सम्पत्तिके रूपमे केवल भौतिक या मूर्त वस्तुओका विचार किया है। परन्तु बडे महत्त्वकी कुछ सम्पत्ति अमूर्त भी होती है। सपत्तिका एक बडा लक्षण मनुष्यकी आवश्यकताओकी पूर्ति माना जाय तो शिक्षक बालकोको पढाता है सिपाही देशकी रक्षाके लिए लडता है, डाक्टर रोगीका इलाज करता है वकील कानूनकी सलाह देता है और नौकर काम करता है—ये सब काम और सेवाए भी एक तरहकी सपत्ति है। क्योकि इन कामो और सेवाओसे समाजकी जरूरतें पूरी होती है और समाजकी आर्थिक प्रगति भी होती है। उद्योग धधोकी योजना बनानेवाले लोग इजीनियर वैज्ञानिक शोधक, विभिन्न विषयोके विशेषज्ञ—इन सबके काम तथा सेवायें समाजकी आर्थिक प्रगतिमें बहुत बडी सहायता पहुचाती है।

११ समाजके रीति रिवाजोसे या राज्यके कानूनसे मनुष्यको जो अधिकार प्राप्त होते है वे भी ऐसी ही एक तरहकी अमूर्त सपत्ति है। किसी मनुष्यको अपना घर या जमीन बेचनी हो, तो दूसरा ग्राहक जो कीमत देनेको तयार हो उस कीमत पर पडोसीका उसे खरीदनेका पहला अधिकार मिलता है। इसे अग्रक्रय अधिकार कहा जाता है। यह भी एक तरहकी सपत्ति ही है। पुस्तकके लेखक और प्रकाशकको प्रकाशनका अधिकार मिलता है किसी दवा या यत्रके शोधकको पेटेन्ट (एकाधिकार) मिलता है और व्यापारीको अपने मालका ट्रेड मार्क मिलता है। ये सब अधिकार आर्थिक सपत्ति है क्योकि समाजकी आर्थिक व्यवस्थाकी रचनामें सहायक होनेके कारण ये

समाजकी कुछ खास आवश्यकतायें पूरी करते हैं। लोग इन्हें कीमती समझ कर इनके स्वामी बनते हैं और आवश्यकता पड़ने पर इनका क्रय विक्रय भी करते हैं।

१२ इतनी चर्चाके निष्कर्षके रूपमें सम्पत्तिके मुख्य लक्षण नीचे दिये जाते हैं

(क) उपयोगिता

किसी वस्तुमें कामयें या सेवामें मनुष्यके लिए उपयोगी होनेका अर्थात् उसकी आवश्यकता पूरी करनेका गुण होना चाहिये।

(ख) श्रमप्राप्यता

वस्तु ऐसी होनी चाहिये जिसे पानेमें मनुष्यको कुछ श्रम करना पड़े। बिना कीमत चुकाये मिलनेवाली वस्तु हो तो भी वह इतनी कम मात्रामें होनी चाहिये कि सब-सुलभ न हो सके। ये वस्तुएं भी आर्थिक संपत्ति मानी जाती हैं।

(ग) अधीनता

वस्तु ऐसी होनी चाहिये जिस पर मनुष्य अपना अधिकार रख सके। बादलोंमें खूब बिजली पैदा होती है और हवा तेज चलती है तब उसकी शक्ति बहुत होती है परन्तु मनुष्य उसे वशमें करके काममें ले तभी वह सम्पत्ति बन सकती है।

(घ) विनिमय-योग्यता

संपत्तिमें गिने जानेके लिए वस्तु ऐसी होनी चाहिये जिसका विनिमय हो सके यानी जिसे देकर बदलेमें दूसरी वस्तु ली जा सके। मनुष्यमें स्वास्थ्य हो तो वह अधिक काम कर सकता है और अधिक सम्पत्ति पैदा कर सकता है। परन्तु स्वास्थ्यको अर्थशास्त्रमें सम्पत्ति नहीं माना जाता क्योंकि अपना स्वास्थ्य वह दूसरेको नहीं दे सकता और उसका विनिमय भी नहीं हो सकता। इसी तरह मनुष्यकी दूसरी शक्तियां — गानेकी नाचनेकी अथवा दूसरी कुशलतायें जैसे बढ़ई कामकी और लुहार कामकी — भी सम्पत्ति नहीं मानी जातीं क्योंकि मनुष्यसे अलग करके इनका विनिमय नहीं हो सकता। हां ये लोग समाजकी जो सेवा करते हैं वह तो सम्पत्ति है ही। गानेवाले तथा नाचनेवाले जमा होकर जलसा करें तथा देखने और सुननेवालोंका मनोरंजन करें तो उनकी यह सेवा — यह जलसा — सम्पत्ति कहलायगा। बढ़ई मेज बनाये और लुहार

लोहा पीटकर गाड़ीका चार्जे बनाये तो वे सम्पत्ति ही कही जायेंगी। लेकिन बढ़ईकी या लुहारकी कुशलता सम्पत्ति नहीं कहलाती। शिक्षक शिक्षा देनेका काम या सेवा करता है। उसकी यह सेवा सम्पत्ति मानी जायगी परन्तु शिक्षक खुद सम्पत्ति नहीं माना जायगा। यह भेद जरा सूक्ष्म है परन्तु ध्यानमें रखने लायक है। जिस प्रकार किसी प्रदेशमें अपार कुदरती साधन-सम्पत्ति होने पर भी जब मनुष्य उस पर श्रम करके उस साधन सम्पत्तिको उपभोगके लायक बनाता है तभी वह अर्थशास्त्रमें सम्पत्ति मानी जाती है, उसी प्रकार मनुष्यमें कितनी ही शक्तियां क्यों न हों तो भी जब वह उन शक्तियोंको अपने काम या अपनी सेवाके जरिये अपने या दूसरोंके उपभोगके लायक बनाता है तभी वे सम्पत्ति मानी जाती हैं। यानी मनुष्य खुद सम्पत्ति नहीं है किन्तु सम्पत्तिको पैदा करनेवाला है। फिर भी यह सही है कि जब मनुष्यको गुलाम या गुलाम जैसा बनाकर उसकी सारी शक्तियों और कुशलता पर उसका मालिक अधिकार रख सकता है और उन शक्तियों और कुशलतासे पैदा होनेवाली सब चीजोंसे वह मालिक फायदा उठा सकता है, तब वह गुलाम सम्पत्ति जैसा बन जाता है।

१३ इस तरह जिस वस्तुमें मनुष्यकी आवश्यकतायें पूरी करनेका गुण हो, जो श्रमप्राप्य हो या जो मांगके प्रमाणमें दुर्लभ या विरल हो, जिस पर मनुष्य अपना अधिकार रख सकता हो और जिसका विनिमय हो सकता हो, वह वस्तु सम्पत्ति मानी जाती है।

आर्थिक जीवनका विकास

१ दुनियामें उत्पन्न होनेके बाद बहुत समय तक मनुष्यने जगली वनस्पति तथा कदमूल और फल पर अपना निर्वाह किया है। आहारकी खोजमें वह पचीस पचासकी टोलियोंमें घूमता रहता था और ऋतु तथा जल वायुकी अनुकूलता और प्रतिकूलताके अनुसार आहारकी विपुलता या कमीका अनुभव करता था। लेकिन मनुष्य अपने जीवनके आरभ-कालमें भी केवल वनस्पति खानेवाला नही था बल्कि मासाहारी भी था। जहा मिल जाते वहा अपने खानेमें वह मास और मछलीका भी उपयोग कर लेता था। कभी कभी वह मनुष्यका मास भी खा लेता था।

मृगया-वृत्ति

२ जमीनमें से कन्दमूल खोदकर और जगलके फल चुनकर खानेके साथ साथ जहा पशु-पक्षी मिल सकते थे वहा मनुष्य उनका शिकार भी कर लेता था। पासमें कोई साधन हथियार या औजार हो तो शिकार करनेमें अधिक सफलता मिल सकती है इस विचारसे मनुष्यकी बुद्धि इन साधनोकी खोजके पीछे पडी। जबसे मनुष्यने हथियारो और औजारोकी खोज की और उन्हे वह काममें लाने लगा तबसे मनुष्य दूसरे प्राणियोंसे अलग पड गया। इन हथियारो और औजारोके निर्माणका विकास ही अधिकाशमें आर्थिक प्रगतिका इतिहास है। पहले हथियारो और औजारोमें कोई भेद न था। जो चीजें जमीन खोदनेमें और कन्दमूल खोदकर निकालनेमें काम आती थी वे ही चीजें आक्रमण और रक्षा करनेमें भी काम आती थी। लकडी पत्थर जानवरोकी हड्डिया दात और हाथीके दात आरभ-कालमें हथियार भी थे और औजार भी थे। लताओ या जडोसे लकडीको पत्थर बाधकर मनुष्यने गदा जैसा हथियार बनाया। उसका वह हाथमें पकडकर और फेंककर मारनेके काममें उपयोग करने लगा। लडाईके सिवा दूसरे कामोमें भी इस हथियारका उपयोग करनेसे थोडी मेहनतमें अधिक काम होने लगा। फिर चमडेकी रस्सियो या अतडियोंसे बडी लकडियोंके साथ नुकीले पत्थरो या बडे सीगोको बाधकर मानवने बडा हथियार बनाया। इस तरह हथियारो और औजारोमें

सुधार करनेमें मनुष्य अपनी बुद्धि चलाने लगा। परन्तु जब उसे आगका उपयोग करनेकी सूझी, तब तो उसने प्रगतिके मार्गमें एक बहुत बड़ा कदम आगे बढ़ाया। जो वस्तु दूसरे जानवरोंका भय और त्रास देनेवाली लगती थी, उसको मनुष्यने वशमें करके अपनी सेवामें लगा दिया। पहले-पहल आग उसे अचानक भभक उठनेवाले दावानलसे ही मिली। अग्नि प्रकट करना मनुष्यको बहुत देरसे मालूम हुआ। इसलिए हर टोलीने इस तरह मिली हुई आगको बहुत सावधानीसे रक्षा करनेका प्रयत्न किया। उन्होंने इसमें दिव्यता और पवित्रताका आरोपण किया। आगका सभालकर हमेशा सुलगती रखना धार्मिक कार्य माना जाने लगा। आगे चलकर दो लकड़ियोंको या दूसरी चीजोंको आपसमें रगड़नेसे आग उत्पन्न करनेकी कला मनुष्यके हाथ लगी। छठ आदिवासीके जैसा प्राथमिक दशामें रहनेवाली आजकलकी कितनी ही जंगली जातियोंको घर्षणसे आग उत्पन्न करनेका रीति मालूम है तो भी सुरक्षित रखी हुई निरंतर जलती आगसे तिनका सुलगाकर उसके द्वारा आगमें से आग सुलगानेकी सरल रीति ही सब जातियां काममें लेती है। वैदिक अग्निहोत्रियोंके यहां, पारसी अगियारियाम और कैथोलिक ईसाई गिरजोंमें आगको हमेशा जलती रखनेकी जो धार्मिक प्रथा आज भी प्रचलित है, उसकी जड़ पुराने जमानेमें आगकी दुर्लभता और सार्वत्रिक उपयोगितामें है।

३ आगका उपयोग केवल गरमीके लिए ही नहीं बल्कि खाना पकानेके लिए और खाद्य पदार्थोंको सेंक कर लम्बे समय तक टिकने लायक बनानेके लिए भी हुआ। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि आसपासकी कुदरती परिस्थितिके अनुसार ही मनुष्यका जीवन बनता है फिर भी आगके तरह तरहके उपयोगकी खोजके बाद मनुष्य कुदरत पर अधिकाधिक अधिकार प्राप्त करने लगा है। आगका बड़से बड़ा उपयोग औजारोंमें सुधार करनेके लिए हुआ है। मनुष्यने जबसे धातुओंका उपयोग शुरू किया तबसे आगका महत्त्व बहुत ही बढ़ गया है।

४ यहां इतना ध्यानमें रखना चाहिए कि ये सब सुधार करनेमें मनुष्यको हजारों वर्ष लग गये। हमें प्राप्त हुए पुरानेसे पुराने चकमकके हथियार एक लाख वर्ष पुराने हैं। इतने वर्षोंमें मनुष्यने हड्डियां और पत्थरोंको घिसकर, छीलकर और सुडौल बनाकर उनसे तार, छुरी, भाले हथौड़े चक्की और करवत बनाये हैं। यह सब बनानेमें मनुष्यने अधिकतर अपने शरीरके बाहरी अंगोंकी ही नकल की है। करवत बनाना उसे दांतों परसे सूझा है, मुट्ठी परसे उसे हथौड़ा सूझा है, मुड़ी हुई अंगुली परसे उसे आंकड़ेका खयाल आया है,

लम्बाये हुए हाथ परसे उस भाग सूझा है और तीखे नखसे छुरीकी कल्पना सूझी है। बरतनोंके बारेमें भी ऐसा ही हुआ है। जानवरोंके सींगो परसे मानवको लम्बे प्याले बनाना अन्दरसे खोखली लकडी परसे टोकरिया बनाना और तूमडा परसे लोटे बनाना सूझा है। आरममें तो कुदरती तौर पर मिलनेवाली इन चीजोंको ही मनुष्य काममें लेता था, पर धीरे धीरे वह मिट्टीके और आगे चलकर धातुके बरतन बनाने लगा। कुम्हारकी विद्याकी खोज इतने बडे महत्त्वकी मानी जाती है कि इतिहासकार मानव-सस्कृतिमे उसे एक बडी क्रातिकारी खोज मानते है। पत्थरके उपयोगके बहुत समय बाद मनुष्य धातुओका उपयोग करने लगा। और इसमें आगने बहुत बडा काम किया।

५ यहा इस बातका उल्लेख करना चाहिये कि नये नये औजारो नये नये साधनो और नई नई वस्तुओकी खोज और उनके विकासमें मानवकी अर्थ वृत्तिके अलावा धर्मवृत्तिने भी काफी काम किया है। मनुष्य केवल अपनी आर्थिक आवश्यकताए पूरी करके बैठा नही रहा। अपने आसपासकी प्रकृतिको देखकर वह ऐसे विचार भी करने लगा कि यह सब किसने बनाया होगा किसलिए बनाया होगा और मरनेके बाद हमारा क्या होता होगा। इसी सिलसिलेमें वह सूर्य मेघ और हवा आदि बलवान और उपकारी विभूतियोको देवता समझकर उनकी पूजा करने लगा। फिर इन सब विभूतियोंकी जड और सब जीवोंका पालन-पोषण करनेवाले सर्वशक्तिमान और दयाके भडार देवताओके देवता अथवा परमात्माकी कल्पना करके उसकी उपासना भी मानव करने लगा। इसीके साथ वह कई धार्मिक क्रियाए और यज्ञ-यागादि करने लगा। इन सबकी विधिया और उन्हें करनेके शुभ मुहूर्त निश्चित करते करते उसने प्रकृति विज्ञानकी कितनी ही खोजें की और अनेक नई नई वस्तुए बनाई।

६ इतिहासके इस बहुत लम्बे समयको जिसमें मनुष्य खास तौर पर शिकार करके अपना निर्वाह करता था और समुद्रके किनारे रहनेवाला मनुष्य मछली पकडकर अपना निर्वाह करता था मृगया-वृत्ति का काल कहते है। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि उस समय मनुष्य सिर्फ शिकार पर ही गुजर नही करता था बल्कि जगली फल और कदमूलका भी उसके आहारमें काफी हिस्सा होता था। हो सकता है कि जब ताकतवर पुरुष शिकारके पीछे भटकते होंगे तब बूढे स्त्रिया और बच्चे फल चुनने और कन्दमूल खोदकर निकालने और जमा करनेका काम करते रहे होंगे।

गोपवृत्ति

७ जैसे जैसे शिकारमें कठिनाई पड़ने लगी होगी वैसे वैसे, अलबत्ता पहले तो अचानक ही, मनुष्यको सूझा होगा कि शिकार करके भोजन पानेके अनिश्चित और खतरनाक उपायके बजाय तथा जानवरोंको मारकर खा जानेके बजाय उन्हें पाल-पोसा जाय, तो अधिक आसानीसे अधिक निश्चित रूपमें और अधिक मात्रामें आहार मिल सकता है। फिर पशुसे आहार पानेके सिवा बोझा ढोने और सवारीका काम भी लिया जा सकता है। उसे मारे बिना उसके बाल और ऊन लेकर उनके कपड़े बनाये जा सकते हैं और कुत्ते जैसे जानवरोंसे पहरा देनेका काम भी लिया जा सकता है। इस तरह मृगया-वृत्तिको छोड़कर मनुष्य जानवरोंको पालने लगा। इसे हम पशु-पालनका या गोपवृत्तिका काल कहेंगे।

८ पशुओंको पालनेसे आहार और दूसरी आवश्यकताकी वस्तुएं ज्यादा आसानीसे मिलने लगीं इसलिए पशुओं पर स्थायी अधिकार रखनेकी वृत्ति मनुष्यमें जगी और उसमें से उसके हृदयमें व्यक्तिगत स्वामित्वकी भावना पैदा हुई। इसका नतीजा यह हुआ कि ज्यादा जानवरोंवाला मनुष्य ज्यादा धनवान और कम जानवरोंवाला कम धनवान इस तरहके वर्गभेद समाजमें उत्पन्न होने लगे।

९ लेकिन हर प्रदेशमें मृगया-वृत्तिके बाद गोपवृत्ति ही आरंभ नहीं हुई। सभी प्रदेशोंमें पालने लायक जानवर नहीं मिल सकते थे और सभी स्थानों पर जानवरोंके चरनेके लिए लम्बे-चौड़े चरागाह भी नहीं थे। इसलिए जहां भौगोलिक परिस्थितियां और जलवायु अनुकूल था वहीं गोपवृत्ति आरंभ हुई।

कृषिवृत्ति

१० गोपवृत्तिके बाद कृषिवृत्तिका युग आता है। लेकिन हर प्रदेशमें पशु पालनेवाला मनुष्य किसान नहीं बन सका। मृगया-वृत्ति या मछलीमारीके युगमें ही खेतीका थोड़ी मात्रामें आरंभ हुआ पाया जाता है। इसलिए यह भी नहीं कह सकते कि गोपवृत्तिमें से ही कृषिवृत्तिका जन्म हुआ है। जंगली फल और कन्दमूल चुननेकी प्रवृत्तिमें से ही स्वभावतः खेतीका उदय हुआ है। जब मनुष्यने देखा कि वह जो फल खाता है उसका बीज जमीनमें गिरकर उग निकलता है और जब उसने यह भी देखा कि जमीन खोदनेके काममें अणीदार लकड़ी अधिक काम देती है तबसे खेतीका आरंभ हुआ माना जा सकता है। जंगली जानवरोंका शिकार करनेके बजाय उन्हें

पालनसे ही जैसे गोपवृत्ति आरंभ हुई वैसे ही जंगली पेड़ोंका विकास करनेसे कृषिवृत्तिका आरंभ हुआ। कुछ इतिहासकार ऐसा भी मानते हैं कि गोपवृत्तिका विकास शिकारियोंके हाथसे नहीं हुआ, बल्कि प्राथमिक दर्जाके किसानोंके हाथसे ही हुआ।

११ यहां एक बात खास ध्यान देनेकी है कि कृषिविद्याका आरंभ शिकारियोंकी स्त्रियों और उटकियान टोली या कुटुम्बके निर्वाहमें मदद पहुंचानेवाले साधनके तौर पर किया था। इतना ही नहीं मृत पशुओंके चमड़ेको साफ करना उसे सीकर ओढ़ने-पहनने लायक बनाना चमड़ेकी रस्सियां बनाना अंतड़ियोंसे तांत तैयार करना और आगे चलकर पेड़ोंकी रेशेवाली छालको कूटकूटकर उसके कपड़े बनाना पशुओंके बाल और ऊनके कपड़े बनाना पशुओंकी देखभाल करना उन्हें दुहना और खाना पकाना — ये सब काम स्त्रियां ही करती थीं। थोड़ेमें कह सकते हैं कि जीवनको अधिक सुविधापूर्ण बनानेवाले अधिकतर गृह उद्योगोंका विकास स्त्रियोंने ही किया है। पुरुष तो शिकारकी तलाशमें निकल जाते थे और गोपवृत्ति आरंभ हुई तब पशुओंको चराने ले जाते थे पशुओंको चरानेका एक चरागाह खतम हो जाता तो दूसरे चरागाहकी तलाशमें फिरते थे और कभी कभी चरागाह पर अधिकार करनेके लिए लड़ाइयां भी लड़ते थे।

१२ इस तरह मनुष्यके इतिहासकी एक बड़ी लम्बी अवधि बिलकुल सादी और प्राथमिक स्वरूपकी अर्थ प्रवृत्तिमें ही बीती है। ऐसा कह सकते हैं कि विशेष आर्थिक प्रगति तो बिलकुल आधुनिक युगमें ही हुई है। अब तककी अर्थ-व्यवस्था स्वयंपूर्ण अथवा स्वावलंबी स्वरूपकी थी। प्रत्येक समूह या कुटुम्ब अपनी जरूरतकी चीजें स्वयं ही पैदा कर लेता और स्वयं ही उपयोगमें लेता था। गोपवृत्ति और कृषिवृत्तिके आरंभके जमानेमें तो प्रत्येक समूह और कुटुम्ब पूरी तरह स्वावलंबी रहा है। परन्तु आगे चलकर देखनेमें आता है कि समूहों और कुटुम्बोंमें गुलाम भी दाखिल हो गये। शुरूआतमें गुलाम भी कुटुम्बके लोगोंके साथ ही काम करते और खाते-पीते थे। आगे चलकर दोनोंमें भेदभाव पैदा होने लगा। कुटुम्बके लोग कम काम करते या कम श्रमके ही काम करते थे और गुलाम लोग ज्यादा और कठिन श्रमके काम करते थे। खाने-पीनेमें भी कुछ भेदभाव आने लगा। परन्तु इस अर्थ व्यवस्थामें एक बात निश्चित थी कि सारा उत्पादन और उपभोग समूह या कुटुम्बके अंदर ही सीमित था।

१३ समय पाकर जिस समूह या कुटुम्बके पास जो वस्तुएं पैदा करनेकी कुदरती या दूसरी तरह प्राप्त की हुई सुविधा अधिक होती उसके पास वे

वस्तुएं जरूरतसे ज्यादा पैदा होने लगी और दूसरे समूह या कुटुम्बके साथ उनका लेन देन करनेकी प्रथा आरम्भ हुई। आरम्भमें तो यह लेन देन एक-दूसरेको प्रसन्न करने और आपसमें सद्भाव बढ़ानेके लिए भेंटके रूपमें होने लगा। आगे चलकर एक समूह या कुटुम्ब दूसरे समूह या कुटुम्बको कुछ देने पर उसके बदलेमें कुछ पानेकी आशा रखने लगा। जब तक इस तरहके लेन-देनके अवसर थोड़े आते और हरएक समूह या कुटुम्ब अपनी आवश्यकताकी अधिकतर वस्तुएं स्वयं ही पैदा कर लेता था, तब तक यह अर्थ-व्यवस्था जारी रही मानी जायगी। लेकिन जबसे लेन-देनका व्यवहार बढ़ने लगा और समूह व्यवस्था बिल्कुल मिट गई तथा कुटुम्ब गांव बनाकर रहने लगे तबसे इस कुटुम्ब तक ही सीमित (कुटुम्ब पर्याप्त) अर्थ व्यवस्थाका अंत हुआ माना जायगा।

वाणिज्य-वृत्ति

१४ प्रत्येक कुटुम्बका अपनी आवश्यकताकी सब या अधिकतर वस्तुएं पैदा कर लेना बंद हुआ, तबसे वाणिज्य-वृत्तिका आरम्भ हुआ माना जायगा। अब कुटुम्ब अमुक वस्तुएं अपनी आवश्यकतासे अधिक उत्पन्न करने लगा और ये अतिरिक्त वस्तुएं दूसरोंको देकर अपनी आवश्यकताकी दूसरी वस्तुएं उनसे लेने लगा। इस प्रथाने आरम्भमें समूह या कुटुम्बके स्थान पर गांव आर्थिक इकाई बनता है। गांवमें मुख्य धंधा तो खेतीका ही रहता है, पर उसके साथ खेतीको मदद पहुंचानेवाले बढ़ई लुहार और कुम्हार आदिके अलग अलग धंधे करनेवाले स्वतंत्र कुटुम्ब अस्तित्वमें आते हैं और गांव स्वयंपूर्ण अर्थ व्यवस्थाकी इकाई बनता है। लेकिन हरएक गांवमें अपनी आवश्यकताकी सभी वस्तुएं पैदा कर लेनेकी कुदरती सुविधाएं नहीं होतीं। उदाहरणके लिए किसी गांवमें गेहूं ही अधिक पैदा हो सकते हैं तो किसीमें चावल ही अधिक पैदा हो सकते हैं। इसलिए धीरे धीरे एक गांव द्वारा दूसरे गांवके साथ वस्तुओंका लेन-देन करनेके अवसर भी आने लगते हैं। इस तरहका लेन देन करनेके लिए खास खास ग्राम समूहोंके बीच मेले, हाट या बाजार लगानेका रिवाज पड़ता है। ऋतुके पौहारों और धार्मिक त्यौहारोंके अवसर पर खास तौर पर तीर्थोंकी जगहमें मेले लगते हैं और हरएककी अपनी अपनी आवश्यकताकी वस्तुओंका लेन-देन वहां होता है। इसमें सुविधा मुख्य कारण मालूम होता है। सामान्यतः आगे जा यह देखा जाता है कि यात्रियोंका वर्ग अलग और व्यापारियोंका वर्ग अलग रहता है। सम्भव है व्यापारी उस स्थानको तीर्थ न भी मानता हो। ऐसे अवसर बहुत लम्बी अवधिके बाद आनेके कारण लेन-देनकी

जरूरतोंके लिए काम करने लगते हैं तब गांवके तीर्थस्थान पर सप्ताहमें एक बार हाट या गुजरी लगानेका रिवाज शुरू होता है। बादमें ऐसी जगहों पर स्थायी बाजार खड़े हो जाते हैं और बाजार लगानेवाले व्यापारियोंके आसपास कारीगरों और दूसरे लोगोंकी बस्ती बढ़ा करके वहां छोटे मोटे शहर बन जाते हैं।

१५ आरंभमें बढ़ई लुहार जुलाहे आदि कारीगर लोग किसान पर अवलम्बित रहते थे। कुछ तो चौमासेमें खुद खेती भी करते थे। हर गांवमें ये कारीगर लोग [illegible] कारण उसका भाग पा जाते थे और ये लोग जमीनके मालिक किसानोंसे कम प्रतिष्ठावाले माने जाते थे। किसानोंकी जरूरतके सारे काम करनेके बाद जो समय बचता उसीमें ये लोग दूसरी चीजें बना सकते थे और इस तरह बनाई हुई चीजें मेले या हाटमें बेचने जाते थे। परंतु स्थायी बाजारवाले शहरोंके बन जाने पर इनमें से जो कारीगर-वर्ग शहरोंमें जा बसा वह अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र हो गया और दूसरोंके साथ बराबरीका दरजा भोगनेकी इच्छा भी उसमें जागी। कारण कच्चा माल पसन्द करके खरीदनेसे लेकर उससे अपने बंधे हुए ग्राहकोंके लिए या बाजारके लिए तैयार माल बनाकर बेचने तककी सारी क्रियाएं वह स्वयं करता था और इस तरह सब बातोंमें स्वतंत्र होता था। लेकिन ऐसे कारीगरके पास बहुत पूंजी न होनेके कारण वह अपनी जरूरतका सारा कच्चा माल उसके पैदा होनेके मौसममें खरीद कर रख नहीं सकता था। इसलिए मौसमके समय कच्चा माल थोकबंद खरीद कर रखनेवाला और जैसे जैसे जरूरत पड़े वैसे वैसे कारीगरोंको वह माल देनेवाला एक व्यापारी वर्ग खड़ा हुआ। फिर तो यह व्यापारी वर्ग कारीगरोंका माल जैसे जैसे बनता जाता वैसे वैसे उसे खरीदने लगा। इसलिए कच्चे मालकी खरीदके लिए और तैयार मालकी बिक्रीके लिए कारीगरोंको व्यापारियों पर आधार रखना पड़ा। जिस तरह गांवमें रहते हुए उन्हें किसानों पर अवलंबित रहना पड़ता था वैसे ही शहरोंमें उनका बड़ा भाग व्यापारियों पर अवलंबित रहने लगा।

१६ इस तरह धीरे धीरे खेतीके सिवा दूसरे उद्योग अस्तित्वमें आये और उन उद्योगोंमें कुशल कारीगरों द्वारा बनाई हुई वस्तुएं सिर्फ स्थानीय और सीमित प्रदेशमें ही नहीं बल्कि दूर दूरके प्रदेशोंमें ले जाकर बेचनेका काम व्यापारी करने लगे। पहले जिस कुटुम्बके पास लम्बी चौड़ी जमीन हो या बहुतसे पशु हों वही धनवान माना जाता था। परंतु अब व्यापार

करके धन कमानेवाले धनी व्यापारियोंका वर्ग अस्तित्वमें आया। अलबत्ता, बड़े जमींदारोंकी तुलनामें यह व्यापारी वर्ग बहुत छोटा था और दूरके प्रदेशोंमें बचनेकी चीजें बनानेवाला कारीगर वर्ग भी छोटा था। अधिकतर कारीगर तो गांवोंमें और शहरोंमें इन चीजोंका उपयोग करनेवाले ग्राहकोंके लिए आर्डरके अनुसार ही चीजें तैयार करनेवाले थे।

१७ दुनियाके सभी सभ्य देशोंमें यह स्थिति थी। उसमें बहुत बड़ा परिवर्तन तो तब हुआ जब यूरोपके समुद्री वाणिज्य-व्यापार करनेवालोंने अमरीकाकी खोज की और पूर्वके देशोंके साथ व्यापार करनेके समुद्री मार्ग ढूंढ़ निकाले। पूर्वके देशोंके साथ व्यापार करनेके लिए जो व्यापारिक कंपनियां खड़ी हुईं, उनका उन उन देशोंकी राज्यसत्ताने पट्टे देकर समर्थन किया। इन व्यापारिक कंपनियोंकी प्रवृत्ति शुद्ध व्यापारके बजाय लूट मचानेकी ही अधिक थी। अमरीकासे बहुत बड़ी मात्रामें सोना केवल इकट्ठा करनेके श्रमके फलस्वरूप ही यूरोप पहुंचा और भारत तथा पूर्वके दूसरे देशोंके साथ व्यापार करके भी यूरोपके लोगोंने — विशेषतः इंग्लैण्डने — अपार धन जमा किया। अब तक जो उद्योग हाथकी कारीगरीसे चलते थे और जिनके चलानेमें मनुष्य-बल अथवा पशु-बलका ही उपयोग किया जाता था उनमें भापकी शक्तिका उपयोग करनेकी खोज हुई और उसके लिए बड़े बड़े कारखाने खड़े करनेकी जरूरत पड़ी, तब ये कारखाने कायम करनेके लिए आवश्यक पूंजी अमरीकासे खींचकर लाये हुए तथा पूर्वके देशोंसे व्यापारके नाम पर लूटे हुए धनसे यूरोपके राष्ट्रोंको, और खास तौर पर इंग्लैण्डको मिल गई। और उसीमें से आजका औद्योगिक युग आरंभ हुआ।

औद्योगिक वृत्ति

१८ हम ऊपर देख चुके हैं कि आरंभमें पूंजीवाले व्यापारियोंने कच्चा माल खरीदकर उसमें तैयार माल बनानेके लिए कारीगरोंको देना शुरू किया, और फिर तैयार हुआ माल कारीगरोंसे लेकर उसे बेचनेका काम भी वे ही करने लगे। इस तरह पूंजीवाले व्यापारियोंका काम उत्पादनके आरंभमें और उत्पादनके अंतमें रहता था। परंतु धीरे धीरे उन्होंने कारीगरोंको काम करनेके लिए अपने मकानों पर बुलाना शुरू किया। कारीगर अपने अपने औजार लेकर पूंजीपतिके यहां काम करने जाते थे। बादमें उत्पादनके लिए जिनन औजारोंकी जरूरत होती, वे औजार भी पूंजीपति ही देने लगा। इन औजारोंकी जगह पर जब भौतिक शक्तिसे चलनेवाली मशीनें लगाई गईं, तब पूंजीपतियोंके मकान, जो छोटे कारखाना जैसे थे वे बड़ी मिलोंके रूपमें

बदल गये। उत्पादनके सभी आवश्यक साधन — कच्चा माल, मशीनें औजार और मकान — पूंजीपतियोंने अपने खड़े किये। कारीगर मिलके मजदूर बन गये। अब उनका काम सिर्फ यह रह गया कि मिलकी सीटी बजते ही हाथ हिलाते कारखानेमें चले जायँ और सौंपा हुआ काम करके सीटी बजते ही हाथ हिलाते वहांसे बाहर निकल आयें। कच्चा माल खरीदने और तयार माल बेचने आदिकी सारी जिम्मेदारी पूंजीपति पर ही थी इसलिए मजदूरका कच्चे मालके साथ मशीनों या औजारोंके साथ तयार मालके साथ या उसकी बिक्रीके साथ कोई संबंध नहीं रहा। इस तरह कारीगर मजदूर बना और केवल अपनी मजदूरीका ही मालिक रह गया।

१९ जैसे जैसे मिलें बड़ी होती गईं वैसे वैसे इन मिलोंसे संबंधित अलग अलग जरूरी कामकाज करनेवाले — कच्चा माल खरीदकर मिलोंको देनेका काम करनेवाले मशीनें मुहैया करनेवाले और तयार हुआ माल मिलोंसे खरीदकर छोटे खुर्दा व्यापारियोंको और ग्राहकोंको पहुंचानेवाले विभिन्न वर्ग खड़े हुए। ये सारे वर्ग काफी पूंजी रखनेवाले होते थे। फिर जैसे जैसे पूंजीका जोर बढ़ने लगा वैसे वैसे ये सारे ही काम एक एक पूंजीपति अपनी करने लगी। आज ऐसी भी कंपनियां हैं जो अपनी जरूरतका सारा कच्चा माल उत्पन्न करनेसे लेकर तयार माल प्रत्येक ग्राहकके पास पहुंचाने तकके सारे काम स्वयं ही करती हैं। वे अपने ही खेत जंगल और खानें रखती हैं अपनी ही रेलें चलाती हैं अपनी मिलोंके लिए आवश्यक मशीनें भी स्वयं ही बनाती हैं और अपनी मिलोंका तयार माल बेचनेके लिए अपनी ही दुकानें भी रखती हैं। फोर्ड मोटर कंपनी अपनी ही लोहे और कोयलेकी खानें रखती है अपनी जरूरतका रबर अपने ही जंगलोंमें उत्पन्न कर लेती है अपनी जरूरतका चमड़ा अपने ही कारखानोंमें तयार कर लेती है अपनी जरूरतकी मशीनें स्वयं ही बना लेती है और छोटी छोटी रेलें भी स्वयं ही रखती है। अमरीकाके कितने ही शहरोंमें रोटी पहुंचानेवाली ऐसी कंपनियां हैं जो गेहूं पैदा करनेसे लेकर उसकी आटेकी रोटी ग्राहकके घर पहुंचाने तकका काम स्वयं करती हैं।

२० इस प्रथामें स्वाभाविक रूपमें ही उत्पादन बहुत बड़े पैमाने पर होता है। बाजार भाव अनुकूल हो तब कच्चा माल थोकबंद खरीद लिया जाता है और अच्छा भाव मिले तब बेचनेके लिए तयार माल बड़ी मात्रामें संग्रह करके रखा जाता है। बड़ी मिलें बारहों महीने चलती रहती हैं और उनमें ढेरों माल बनता ही रहता है इसलिए बहुत बार लोगोंकी मांगसे

अधिक माल भी तयार हो जाता है। उस बचनेके लिए नई आवश्यकताएं उत्पन्न करनेका प्रचार अखबारोंमें लेखों और लुभानेवाले विज्ञापनों द्वारा किया जाता है। ग्राहकोंके आर्डर मिलनेके बाद माल तयार करनेकी पुरानी जमानेकी शांत और आपसी मेलजोलवाली प्रथाके बजाय उत्पादन बढ़ाने और तयार हुए मालको ऊंचेसे ऊंचे भाव पर बेचनेकी धांधली और तीव्र प्रतिस्पर्धावाली प्रथा आज दुनियाके कोने कोनेमें फैल गई है।

२१ बड़े उद्योगोंके लिए विपुल मात्रामें कच्चा माल खरीदनेके लिए कारखानोंके मकानोंके लिए माल पैदा करनेवाली मशीनोंके लिए मजदूरोंको मजदूरी चुकानेके लिए और कारखानेका तयार माल बिके तब तक उसे सुरक्षित रखनेके लिए काफी द्रव्य लगाया जाता है। यह द्रव्य देनेका काम सराफ और बैंक करते हैं। ऐसे जैसे उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है वैसे वैसे कारखानेदारोंको बैंकों तथा पैसेवालों पर आधार रखना पड़ता है। इस तरह कारखाने चलानेवाले उद्योगपतियोंकी तरह बैंकोंका कारबार चलानेवाले पूंजीपतियोंका वर्ग पैदा होता है। बड़ी बड़ी पूंजीपति कंपनियोंके और बड़े बड़े बैंकोंके दुनियाके विभिन्न देशोंमें आर्थिक स्वार्थ कायम हो जाते हैं। अतएव उनकी रक्षाके लिए अधिक विशाल और अत्यंत बलशाली राज्य सत्ताओंकी जरूरत होती है। अपने अपने देशके उद्योगपतियों और पूंजीपतियोंके आर्थिक स्वार्थोंकी रक्षा करनेवाली इन राज्यसत्ताओंके बीच भी आपसमें तीव्र प्रतिस्पर्धा चलती है और इसीमें से भयानक युद्ध उत्पन्न होते हैं।

२२ हम पहले कह चुके हैं कि सम्पत्तिका मूल उद्भव-स्थान तो कुदरत —खास तौर पर जमीन ही है। फिर भी जो वस्तुएं आज हम काममें लेते हैं उनमें से बहुतेरी वस्तुओंकी अंतिम रचना और कुदरत या जमीनके बीच बहुत बड़ा अंतर हो गया है। फिर आज खेती या व्यापारसे भी इतना सारा नफा नहीं कमाया जा सकता जितना उद्योगोंसे कमाया जा सकता है। हमारे आर्थिक विकासके आरंभ-कालमें जिसके पास ज्यादा जमीन होती, वह मनुष्य धनवान गिना जाता था। दूसरे युगमें लक्ष्मी व्यापारियोंके घर रही। और आज बड़े बड़े उद्योगपति ही लक्ष्मीपति हो सकते हैं। इसलिए इस युगको औद्योगिक युग कहा जाता है। जो देश उद्योगोंमें आगे बढ़े हुए हैं वे और सब प्रकारसे भी आगे बढ़े हुए माने जाते हैं और दुनियामें सबसे अधिक सत्ता भी वे ही भोगते हैं।

२३ अब हाथ-उद्योगोंका स्थान यंत्रोद्योग लेते हैं। हम पहले देख चुके हैं कि इस पद्धतिमें कारीगरकी स्वतंत्रता पूरी तरह खतम हो गई। कच्चा

माल व्यापारीसे लेकर अपने घरमें ही बैठ-बैठे उसका पक्का माल बनाकर देनेवाले कारीगर तो गये ही साथ ही अपने औजार व्यापारीके यहां ले जाकर कारीगरोंका काम करनेवाले कारीगर भी गायब हो गये। मशीनें इतनी महंगी होती थी कि कोई कारीगर अपने बूते पर उन्हें घरमें नहीं लगा सकता था। साथ ही उन्हें चलानेके लिए जरूरी भौतिक शक्ति भी वह नहीं जुटा सकता था। मशीनोंके भौतिक शक्तिसे चलनेके कारण सारे कारखाने एक स्थान पर केन्द्रित होने लगे और कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंको अपना घरबार छोड़कर इन कारखानोंके पास रहने जाना पड़ा। गांवोंमें जिन्हें खेतीमें पूरा काम नहीं मिल सकता था वे भी कारखानोंमें काम करनेके लिए जाने लगे। कारीगर जब पूरी तरह व्यापारी-पूंजीपति पर निर्भर हो गया था तब भी उसका अपना घर तो रहा ही था। परन्तु अब तो कारखानोंके कारण नये शहर खड़े हो गये या पुराने शहरोंका विस्तार बढ़ गया। वहां उसे हवा रोशनी पानी और पाखाने वगैराकी सुविधाओंवाले घरोंके बजाय मैले-कुचैले झोंपड़ोंमें भाड़से रहना पड़ा। कारखानोंमें शक्तिसे बाहर काम करना और किसी भी तरहकी सुविधाके बिना गन्दगी और भीड़भाड़में रहना — यही यंत्रोद्योगोंके आरंभके समय मजदूरोंकी हालत थी। उस समयकी तुलनामें आजके मजदूरोंकी हालत बहुत अच्छी मानी जायगी। परन्तु हमेशा बेकारीका डर और बहुत बार प्रत्यक्ष बेकारी आज मजदूरोंका बड़ेसे बड़ा दुःख है।

मर्यादित जिम्मेदारीवाली कंपनियां

२४ यह ध्यान देनेकी बात है कि इस पद्धतिका अधिक विकास एक अन्त बड़े परिवर्तनके कारण हुआ। व्यापार जब बड़े पैमाने पर होने लगा और उसमें ज्यादा पूंजी लगने लगी तब उसे चलाना एक ही कुटुम्बकी शक्तिसे बाहर हो गया। इसलिए दो-चार या इससे भी अधिक कुटुम्ब साझेदारीमें मिलकर बड़ी बड़ी व्यापारी कंपनियां चलाने लगे। ये कंपनियां दूर दूरके देशोंसे व्यापार करती। व्यापारके अलावा ऐसी बड़ी कंपनियां सराफीका काम भी करती और व्यापारके सिलसिलेमें होनेवाला द्रव्यका लेन-देन भी इनके द्वारा होता। एक देशकी प्रसिद्ध कंपनी अपनी साख पर बहुत दूरके देशकी दूसरी प्रसिद्ध कंपनी पर हुंडियां लिखती और वे आपसमें स्वीकार की जाती।

२५ फिर भी इस पद्धतिमें एक कमी रहती थी। कंपनीके हर साझेदारकी सारी जायदाद पूरी कंपनीके कुल कर्जके लिए जिम्मेदार मानी जाती थी। इसके कारण कंपनीका काम बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ानेमें हर

साझेदारको संकोच रहा करता था। उन्नीसवीं शताब्दीमें जब मर्यादित जिम्मेदारीवाली कंपनियां — लिमिटेड कंपनियां — स्थापित करनेकी कानूनी व्यवस्था हुई, तबसे बहुतसे साझेदारोंकी छोटी छोटी रकमें जमा करके उनसे व्यापार उद्योग चलानेमें बड़ी सुविधा हो गई। लिमिटेड कंपनीमें जितने साझेदार होते वे जितनी रकमके हिस्से अथवा शेयर खरीदते कंपनीके कर्ज या नुकसानमें उनकी उतनी ही जिम्मेदारी मानी जाती। उदाहरणके लिए एक लाख रुपयेकी कंपनीमें किसीने एक हजार रुपयेके शेयर खरीद हों तो उस कंपनीके कर्ज या नुकसानमें उस आदमीकी जिम्मेदारी एक हजार रुपये तक ही मर्यादित समझी जाती थी। कंपनीको कितना ही नुकसान क्यों न हुआ हो, तो भी उस एक हजारकी रकमके अलावा उस साझेदारकी बाकी संपत्ति पर कंपनीके लेनदारका कोई दावा नहीं चल सकता था। कानूनकी इस सुविधाके कारण कंपनी कितनी ही बड़ी क्यों न हो तो भी उसमें साझेदार बननेकी मनुष्यकी हिम्मत होती थी और बहुतसे लोगोंकी थोड़ी थोड़ी पूंजी जमा करके उससे बहुत बड़े भारी मात्रामें पूंजी एकत्र करके बड़े बड़े उद्योग चलानेकी बहुत बड़ी सुविधा हो गई।

प्रबंधक

२६ अब तककी प्रथाम कारीगर या मजदूर और पूंजीपति व्यापारी अथवा पूंजीवाले उद्योगपति — ये दो ही वर्ग थे। किन्तु अब एक तीसरा वर्ग उत्पन्न हुआ। अब तक ऐसा होता था कि व्यापार धंधा करनेके लिए जो ज्ञान कुशलता दूरदर्शिता साहस और व्यवस्था शक्ति चाहिये वह किसी मनुष्यमें हो, तो भी बड़ी पूंजीके अभावमें वह कोई बड़ा व्यापार या उद्योग नहीं चला सकता था। परन्तु अब उसके पास बहुत बड़ी पूंजी न हो और ऊपर लिखे सब गुण हों तो वह बहुतसे छोटे साझेदारोंकी पूंजी इकट्ठी करके व्यापारकी या उद्योगकी बड़ी कंपनी बना कर उसे चला सकता है। इस तीसरे वर्गको हम प्रबंधक नाम देंगे। यह प्रबंधक सारी कंपनीके कर्ता धर्ता और लगभग मालिककी तरह व्यवहार करता है, यद्यपि कानूनके अनुसार अपने व्यवस्था-कार्यके लिए वह कंपनीके साझेदारोंके सामने जिम्मेदार माना जाता है। परन्तु आजकलके तथाकथित लोकतंत्रमें राजकाजके बारेमें जितना नाममात्रका हिस्सा मतदाताका होता है और जितना नाममात्रका असर वह राजकाज पर डाल सकता है, उतना ही नाममात्रका हिस्सा और उतना ही नाममात्रका असर अपने हिस्सेके अनुपातमें साझेदारका कंपनीके कामकाजमें हो सकता है।

२७ पहलेकी साधारण कंपनियोंमें प्रत्येक साझेदारकी अमर्यादित जिम्मेदारीके सिवा यह भी होता था कि कोई साझेदार मर जाता या चला जाता तो कंपनी बंद हो जाती थी। परन्तु इन नई मर्यादित जिम्मेदारीवाली या लिमिटेड कंपनियोंमें हिस्सेदार अपना हिस्सा (शेयर) दूसरे किसीको बेच सकता है, पुरस्कारके रूपमें दे सकता है और मरनेके बाद उसका हिस्सा उसके उत्तराधिकारीको मिल सकता है या वसीयतनामा लिखकर वह जिसे देना चाहे उसे दे सकता है। इन सब सुविधाओंके कारण अच्छी कंपनियोंमें साझेदार बननेके लिए बहुत लोग तैयार हो जाते हैं और साझेदारोंमें कितना ही परिवर्तन हुआ करे तो भी कंपनियां स्थिरतासे अपना काम कर सकती हैं। लोगोंमें भी इन लिमिटेड कंपनियोंकी साख अच्छी रहती है क्योंकि उनके हिसाब किताब और दूसरे कामकाज पर सरकारका अंकुश रहता है।

२८ यह सब होते हुए भी मर्यादित जिम्मेदारीवाली कंपनियोंका एक दोष यहां बताना ही चाहिये। अंग्रेजीमें एक कहावत है कि कानूनसे स्थापित संस्थामें आत्मा नहीं होती। व्यापारी या सराफ अपनी प्रतिष्ठा साख या वचनके लिए मर मिटनेको भी तैयार हो जाता है, परन्तु इन कंपनियोंसे ऐसी आशा नहीं रहती। कोई व्यापारी अपने व्यक्तिगत व्यवहारमें जितनी प्रामाणिकता रखनेकी चिन्ता करता है उतनी चिन्ता वही व्यापारी किसी लिमिटेड कंपनीका एजण्ट या डाइरेक्टर बनने पर कंपनीके व्यवहारमें रखनेकी आवश्यकता नहीं मानता। बहुतसी कंपनियोंके डाइरेक्टर तो पूरी हकीकतें भी नहीं जानते। ऐसे लोगोंसे छोटे छोटे साझेदारों (शेयर होल्डरों) के भलेका ध्यान रखनेकी आशा भी क्या की जाय? इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि पुराने जमानेमें जमींदार अपने किसानों और कारीगरोंको तथा व्यापारी अपने कारीगरोंको किसी न किसी रूपमें चूसते थे, फिर भी चूंकि वे एक दूसरेके साथ सीधे सम्पर्कमें रहते थे इसलिए उनके बीच एक तरहका व्यक्तिगत सम्बन्ध मानवताका सम्बन्ध होता था। जमींदार और व्यापारी अपने किसानों और कारीगरोंके दुःख-सुखमें भाग लेते थे और उनकी कठिनाईमें सहायता देते थे। उन किसानों और कारीगरोंको आजके जैसी स्वतंत्रता और दूसरे अधिकार नहीं थे। परन्तु एक बातका उन्हें बड़ा सुख था। आजकी तरह बेकारीका भय उनमेंसे किसीको भी सताता नहीं था। कल क्या खायेंगे इसकी भी किसीको चिंता नहीं रहती थी। इसलिए उनका भोजन और काम दोनों निश्चित थे। परंतु आजकलकी मर्यादित जिम्मेदारीवाली

बड़ी मिलों और कम्पनियोंमें उनके साझेदारोंका कारीगरों या मजदूरोंके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। इतना ही नहीं, उनका प्रबन्धक, जो आम तौर पर मिल-मालिक कहलाता है, भी अपने हजारों कारीगरों या मजदूरोंको नहीं जानता और न उनसे कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध रखता है। मालिकका कर्तव्य इतना ही जानना और इतनी ही चिंता करना माना जाता है कि उसकी कम्पनीमें काम करनेवाले सब मजदूर भलीभांति काम करते हैं या नहीं और उन्हें निश्चित मजदूरी चुकाई जाती है या नहीं। इसके सिवा वे कहां रहते हैं, क्या खाते-पीते हैं, उनके बाल-बच्चोंकी क्या दशा है, वे सब कैसा जीवन बिताते हैं, रोग-शोकमें कैसे गुजर करते हैं — ये सब बातें देखना तो व्यक्तिगत सम्बन्धमें ही संभव होता है — यह जानना अथवा इसमें सहायता करना मालिकका कर्तव्य नहीं माना जाता। हां, ऐसे कुछ कर्तव्य अब मालिकों पर कानून द्वारा डाले जाने लगे हैं।

पुराने जमानेमें किसान और कारीगरका टूटा-फूटा झोंपड़ा तो भी उसके लिए सुरक्षित रहता था। आजकी तरह कोई कर्जदार आकर उसे झोंपड़ेसे बाहर निकाल नहीं सकता था। किसान या कारीगर जब बूढ़ा या काम करनेके लिए अशक्त हो जाता अथवा अन्य प्रकारसे निराधार हो जाता था, उसका पालन-पोषण करनेकी जिम्मेदारी उसके जमींदार या व्यापारीकी मानी जाती थी। और शायद ही कोई जमींदार या व्यापारी ऐसा दुष्ट निकलता जो यह जिम्मेदारी पूरी न करता हो।

२९. इस प्रकरणमें हम आर्थिक जीवनको मृगया-वृत्ति, पशुवृत्ति, कृषि-वृत्ति, वाणिज्य-वृत्ति और उद्योग-वृत्तिके क्रममें — बहुत निश्चित रूपमें नहीं पर मोटे रूपमें — विकास करते देख चुके हैं। कुछ अर्थशास्त्री यह भी कहते हैं कि हमारा आर्थिक जीवन पहले पशुओं पर, फिर खेती पर और बादमें खानों पर आधार रखकर बढ़ा है। कुछ लोग वस्तु-विनिमय पर आधार रखनेवाली अर्थ-व्यवस्था, द्रव्य पर आधार रखनेवाली अर्थ-व्यवस्था और साख पर आधार रखनेवाली अर्थ-व्यवस्था इस तरहके तीन क्रम बनाते हैं। आजकलकी अर्थ-व्यवस्थाको साख पर आधार रखनेवाली इसलिए कहा जाता है कि आजकल दो देशोंके बीच मालका जो लेन-देन होता है उसका कीमत चुकानेके लिए एक देशसे दूसरे देशको सचमुच पैसा नहीं भेजा जाता, बल्कि एक देशसे आये हुए मालकी कीमत चुकानेके लिए दूसरे देशसे भेजे हुए मालकी कीमतके हवाले दिये जाते हैं। देश-विदेशोंके बीच व्यापार करनेवाली कम्पनियोंमें आपसमें विश्वास हो और वे एक-दूसरेकी

सबको स्वीकार करती हो तभी इस तरहका व्यवहार संभव हो सकता है। कुछ अर्थशास्त्री यह कहते हैं कि संपत्ति पर सामुदायिक स्वामित्वका रूप बदलते-बदलते वैयक्तिक स्वामित्ववाली अर्थ-व्यवस्थाका जन्म हुआ अथवा रूढ़ि और रीति रिवाजसे बंधी हुई अर्थ व्यवस्थामें से मुक्त और खुली प्रतिस्पर्धावाली अर्थ-व्यवस्थाका जन्म हुआ है। इन सबमें कुछ न कुछ तथ्य तो है ही। पर हमने जिस क्रमसे आर्थिक जीवनके विकासका वर्णन किया है वह क्रम विकासके इतिहासको अधिक स्पष्ट करता है।

२० यहां एक बात ध्यानमें रखनेकी है कि जब एक वृत्ति या एक क्रममें से दूसरी वृत्ति या दूसरे क्रमका आरम्भ होता है तब पहली वृत्ति सर्वथा मिट नहीं जाती। आज भी दुनियाके लगभग सभी सभ्य माने जानेवाले देशोंमें ये पांचों वृत्तियां थोड़ी-बहुत पाई जाती हैं। हमारे देशमें तो वे हैं ही। इसके सिवा संसारके प्रत्येक देशमें यंत्रोद्योग आरंभ हो गये हैं और शहर संख्यामें और विस्तारमें बढ़ने लगे हैं फिर भी गांव बिलकुल नष्ट नहीं हुए हैं और इन गांवोंमें अर्थोत्पादनकी पुरानी पद्धतियां भी जारी हैं।

५

आर्थिक प्रगतिकी बुनियादें

१ आज तकमें मानव-जातिने जो आर्थिक प्रगति सिद्ध की है उसके बारेमें प्रचलित अर्थशास्त्रियोंका यह मानना है कि वह प्रगति अमुक तत्त्वोंको आवश्यक अथवा अनिवार्य माननेके रूपमें स्वीकार कर लेनेसे ही हुई है। इनमें मुख्य तत्त्व वे अर्थशास्त्री इस प्रकार गिनाते हैं: (१) आवश्यकताओंकी वृद्धि (२) व्यक्तिगत स्वामित्वका अधिकार (३) खुली प्रतिस्पर्धा और (४) आर्थिक स्वतंत्रता। इन चारों तत्त्वोंका विवेचन करके हम इस बातका विचार करेंगे कि इन तत्त्वोंके कारण सच्ची आर्थिक प्रगति अर्थात् मनुष्य-जातिका कल्याण करनेवाली प्रगति किस हद तक सिद्ध हुई है और किस हद तक ये तत्त्व इस प्रगतिमें बाधक सिद्ध हुए हैं।

आवश्यकताओंकी वृद्धि

२ हम पहले कह चुके हैं कि आवश्यकताओंको बढ़ाना सभ्यता और प्रगतिकी निशानी माना जाता है। जब मनुष्यको किसी भी वस्तुकी आवश्यकता मालूम होने लगती है तभी वह यह सोचता है कि उस वस

प्राप्त किया जाय फिर वह उसे प्राप्त करनेकी रीति ढूंढकर उसके लिए श्रम करता है। हमारे यहां इस आशयकी कहावत है कि पेट ही कड़ी मेहनत कराता है। मनुष्यके साथ पेट न लगा होता तो वह कुछ भी नहीं करता। यह बात मनुष्यकी प्राथमिक आवश्यकताओंके विषयमें बिलकुल सच है यद्यपि वह अपनी प्राथमिक आवश्यकताओंके अलावा अपने भीतर रही कला और शृंगारकी स्वाभाविक वृत्तिको संतुष्ट करनेके लिए भी परिश्रम करता है। साथ ही जीवनकी कुछ छोटी मोटी सुख सुविधायें भी सस्कारी और समाजोपयोगी जीवनके लिए जरूरी हैं। इसलिए मनुष्यको सिर्फ प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी कर लेनेसे ही संतोष नहीं होता। परन्तु इस परसे यह कहना ठीक नहीं कि मनुष्य अपनी आवश्यकतायें निरन्तर बढ़ाता ही रहे उपभोगके नये नये साधन प्रतिदिन पैदा करता ही जाय और उन्हें जुटानेके लिए परिश्रम करता ही रहे। केवल आर्थिक सुख-सुविधाएं बढ़ाते रहना ही मानव-जीवनका ध्येय नहीं है। अगर हम आर्थिक और सामाजिक न्यायके तौर पर इतना स्वीकार कर लें कि मनुष्य जितनी वस्तुओं या सेवाओंका उपभोग करता है उनके बदलेमें उन वस्तुओं और सेवाओंका पूरा बदला चुकाने जितना समाजोपयोगी श्रम उसे स्वयं करना ही चाहिये तब तो मनुष्य अपनी आवश्यकताओंकी और उनके उपभोगकी मर्यादा बांधे बिना रह ही नहीं सकता। हमारे चार पुरुषार्थोंकी परिभाषाके अनुसार काम अर्थ और धर्मका विचार करें तो जान पड़ता है कि जब तक मनुष्य अपने काम पुरुषार्थ अर्थात् उपभोगके पुरुषार्थ पर कुछ न कुछ अंकुश न रखे तब तक वह अर्थ-पुरुषार्थ — आजकी नई भाषामें अर्थोत्पादनकी प्रवृत्ति — सिद्ध कर ही नहीं सकता। और इस प्रवृत्तिका ऊपर बताये हुए सामाजिक और आर्थिक न्याय अर्थात् नीतिधर्मके अनुसार चलाना हो, तो अर्थोत्पादनको भी नियन्त्रित और मर्यादित किये बिना काम नहीं चल सकता। अर्थात् मनुष्यको यदि धर्म सिद्ध करना हो जीवनका पूरी तरह विकास करना हो और समाजके लिए उसे भरसक उपयोगी और हितकारी बनाना हो तो काम और अर्थकी अपनी प्रवृत्तियोंको उसे एक हद तक रोकना ही पड़ेगा। परन्तु आजकल तो एक विचित्र कार्य विभाग चल रहा है एक वर्ग (जो बहुत छोटा लेकिन सत्ताधारी है) तो वस्तुओंका उपभोग अथवा व्यय किया करता है और दूसरा वर्ग (जो बहुत बड़ा है लेकिन दबाया और कुचला हुआ है) उत्पादनके लिए सारा श्रम किया करता है। इस कार्य विभागमें भोक्तावर्गकी भोग-सामग्री और विलासकी विविधताकी कोई हद ही नहीं रहती। फिर ये

परोपजीवी निठल्ले लोग अपनी स्थितिको टिकाये रखनेके लिए मेहनत मजदूरी करनेवाले उत्पादक वर्गको दवा हुआ रखकर उसका शोषण करनेकी अनेक तरकीबें निकालते हैं और उसके लिए सुन्दर सिद्धान्तोंका निर्माण कर लेते हैं।

३ सम्यता और प्रगति मुट्ठीभर लोगोंके लिए ही नहीं बल्कि सारे मानव-समाजके लिए हो तभी वह सच्चा सुधार सच्ची सम्यता और सच्ची प्रगति कहला सकती है। ये सब बातें आवश्यकतायें घटाते जानेसे सिद्ध नहीं होंगी परन्तु उन पर विचार करने और स्वेच्छासे उनका नियमन करलेसे ही सिद्ध हो सकेंगी। दुनियाके प्रत्येक समाजमें प्रत्येक मनुष्यका यह अधिकार है कि उसे जीवित रहनेके लिए पर्याप्त पौष्टिक और शुद्ध भोजन मिले शरीर ढकने और उसकी रक्षा करनेके लिए जरूरी साफ सुथरे और सादे कपड़े मिलें तथा ठंड धूप और बरसातसे बचनेके लिए अच्छी हवा और रोशनीवाले सुघड़ मकान मिलें। अर्थशास्त्रका कर्तव्य है कि वह ऐसी अर्थ-व्यवस्था ढूंढ निकाले जिससे ये चीजें प्रत्येक मनुष्यको मिल सकें। इसके अलावा प्रत्येक समाजमें सारे बच्चोंको एक खास उम्र तक शिक्षा पानेकी पूरी पूरी सुविधा होनी चाहिये साथ ही इस अर्थ व्यवस्थामें इस बातकी भी गुंजाइश होनी चाहिये कि प्रत्येक मनुष्यको शरीर और मनकी शांतिके लिए तथा मनबहलावके लिए नित्य और नैमित्तिक विश्रांति मिले।

४ आवश्यकताएं विभिन्न प्रकारकी होती हैं

(१) सामान्य — अनाज कपड़े।

(२) आराम देनेवाली (सुविधाएं बढ़ानेवाली) — गादी भूला आराम कुर्सी।

(३) रिवाजसे सम्बन्ध रखनेवाली — पगड़ी टोपी चूड़ी बिन्दी।

(४) मौजशौकवाली — इत्र खिलौने कलगी।

इनमें से सामान्य आवश्यकताओंको कुछ अर्थशास्त्री आवश्यक या अनिवार्य आवश्यकतायें कहते हैं। ये आवश्यकतायें किसी वर्ग विशेष जाति विशेष अथवा समाज विशेषके प्रचलित स्तरके अनुसार आवश्यक या अनिवार्य हो सकती हैं परन्तु जीवनकी दृष्टिसे आवश्यक या अनिवार्य नहीं होतीं। अर्थात् उनके बिना मनुष्य जी ही न सके ऐसी बात नहीं है। कपड़ोंके बिना जिया जा सकता है। परन्तु कुछ कपड़े समाजकी दृष्टिसे आवश्यक हैं सामान्यतः जरूरी हैं। इसलिए ऐसी आवश्यकताओंको सामान्य कहना ही उचित है और ये आवश्यकतायें पहले पूरी होनी चाहिये। उनके बाद आराम देनेवाली और सुविधायें बढ़ानेवाली

आवश्यकताओंको स्थान मिलना चाहिये। विकाससे सम्बन्धित आवश्यकताओंके उपयोगका बनाना जरूरी नहीं है। और भौतिककी आवश्यकताओंके उपयोगके बारेमें भी विवेकसे काम लेना जरूरी है।

कुछ मौजशौक हानिकारक होते हैं जब कि दूसरे कुछ शिक्षणिक स्वास्थ्यवर्धक अथवा निर्दोष होते हैं। शैक्षणिक और ऐतिहासिक फिल्म देखनेका शौक हानिकारक नहीं है जब कि चोरी-डाकू-व्यभिचार और स्वच्छन्दताका पोषण करनेवाली फिल्में हानिकारक होती हैं। अच्छी पुस्तकें पढ़नेका शौक हानिकारक नहीं है जब कि हलके प्रकारके उपन्यास या इस प्रकारकी कहानियां पढ़नेका शौक हानिकारक है। इसी प्रकार संगीत और चित्रकलाका शौक भी हानिकारक अथवा निर्दोष हो सकता है।

इनमें से निर्दोष मौजशौकको प्रोत्साहन दिया जा सकता है — यदि स्वयं मेहनत करके उन्हें पूरा किया जाय और किसीका शोषण न किया जाय। परन्तु सामान्यतः मौजशौकका पोषण दूसरोंको नुकसान पहुंचा कर किया जाता है। इसलिए उन्हें बढ़ानेमें अत्यन्त सावधान रहनेकी जरूरत है। उन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। ऐसा न किया जाय तो समाजमें भ्रष्टाचार फैलता है और उसका पतन होता है। प्राचीन कालके महासाम्राज्योंके पतनमें उनकी प्रजाओंके भोग विलासका बहुत बड़ा हाथ रहा था।

इस प्रकार मौजशौक पर नियंत्रण रखा जाय और परिश्रम करना प्रत्येक मानवका कर्तव्य माना जाय तो जीवन शुष्क नहीं हो जायगा? उस स्थितिमें बुद्धि और हृदयका विकास किस तरह होगा? अर्थोत्पादनके श्रमसे मुक्त होनेके कारण मिलनेवाली पर्याप्त फुरसतके फलस्वरूप ही जिन साहित्य, संगीत आदि ललित कलाओंका सृजन संभव है उनका क्या होगा? इन प्रश्नोंका उत्तर देनेका यह स्थान नहीं है। यहां हम सिर्फ इतना ही कहेंगे कि ऊपर कहे अनुसार सारे जन-समाजकी आवश्यकतायें पूरी हो जायं, तो उसमें से सुख शांति, सन्तोष और आरोग्यका जो स्रोत बहेगा उसीसे साहित्य, संगीत, कला, तत्त्वचर्चा और वैज्ञानिक संशोधन सब आजसे कहीं बड़ी और अधिक अच्छी मात्रामें अपने-आप प्रगट होंगे। आज भी सच्ची कलाका और प्रगतिके मार्ग पर ले जानेवाले साहित्यका सृजन प्रतिदिन अपनी आवश्यकतायें बढ़ानेवाले लोग नहीं करते। शरीर, बुद्धि और हृदय सबके विकासके लिए शारीरिक श्रम किसी हद तक जरूरी है। शरीर-श्रमको अवकाश न मिले इस सीमा तक सुख-सुविधाके साधन बढ़ाकर उनका उपयोग करते करते मनुष्य बहुत बार अपंग और मंदबुद्धि बन जाता है। जीवनकी

सस्कारिताको यदि हम सच्चे अर्थमें समझ तो मालूम होगा कि उसकी जड आर्थिक और सामाजिक अन्यायसे पैदा होनेवाले ठाठ-बाट ऐश-आराम और भोग विलासमें नही है बल्कि न्याय और भाईचारेको बढानेवाले सच्चे श्रममें है।

व्यक्तिगत स्वामित्वका अधिकार

५ अलग अलग प्रकारकी सम्पत्ति पर व्यक्ति अपना स्वामित्व-अधिकार रख सकता है यह विचार और मान्यता हमारे खूनमें इतनी गहरी पैठ गई है कि स्वामित्वके अधिकारको हम एक कुदरती अधिकार ही समझने लग गये है। परन्तु स्वामित्वका अधिकार मनुष्यके साथ ही पैदा हुई चीज नही है। समाजमें चलनेवाले आर्थिक व्यवहारोंके बहुत लम्बे क्रममें से धीरे धीरे इस अधिकारका विकास हुआ है। जब ठेठ प्राथमिक दशामें रहनेवाले मनुष्य दूसरे प्राणियोंकी तरह खानेकी चीज मिलते ही उसे खा डालते थे और संग्रह करके रखनेके लिए उनके पास कुछ होता ही नही था उस समय स्वामित्वके अधिकारका प्रश्न खडा नहीं हुआ था। हम यह भी देख चुके है कि मनुष्य कभी एकाकी जीवन बितानेवाला न था बल्कि वह समूह बनाकर रहता था। अतः जो आहार उसे मिल जाता था उसको सारा समूह मिलकर खाता था। आगे चलकर जब मनुष्यने ऐसी खोज कर ली जिससे खानेकी सामग्री अधिक समय तक सुरक्षित रखी जा सके तब उस पर वयक्तिक नही बल्कि सामुदायिक स्वामित्व रखनेकी प्रथा शुरू हुई। पहले पहल वयक्तिक स्वामित्व शरीरके श्रृंगारकी चीजो — जैसे पत्थर पख वगरा — पर स्थापित हुआ। फिर पहनने-ओढनेकी जो थोडीसी चीजें मनुष्यके पास थी उन पर हुआ। उसके बाद मनुष्यके अपने बनाये हुए हथियारो-औजारो पर और बरतन भाडो पर हुआ। परन्तु ये सब मनुष्यके निजी उपयोगकी चीजें कहलायेंगी। आज हम जायदादका जो अर्थ करते है उस अर्थमें ये चीजें जायदाद नही कही जा सकती। जबसे हमने पशु पालना शुरू किया तभीसे जायदादकी कल्पना शुरू हुई और यह माना जाने लगा कि स्वामित्वका अधिकार कोई महत्त्वकी चीज है। जब तक लोग अपना निवास स्थान एक जगहसे दूसरी जगह बदलते रहे तब तक स्वामित्वका अधिकार जगम वस्तुओ पर ही रहा। फिर मनुष्य जैसे जैसे खेती करनेकी दिशामें आगे बढा और जमीनको खेतीके लायक बनाने लगा वैसे वैसे वह एक जगह स्थिर होकर रहने लगा। किसान-कुटुम्बोंने साफ करके खेतीके लायक बनाई हुई अपनी जमीन पर और अपने रहनेके घर पर स्वामित्वका अधिकार जमाना शुरू किया।

६ यदि यह मान लें कि भविष्यमें उपयोग करनेके लिए वस्तुओंका संग्रह करनेकी वृत्तिमें से जायदादका जन्म हुआ तो भी संग्रह करके रखनेकी इस वृत्तिको अधिक उत्तेजन तो तभी मिला कहा जाना चाहिये जब समाज स्वामित्वके अधिकारको स्वीकार करने लगा। जैसे जैसे समाजमें स्वामित्वका अधिकार स्वीकार किया जाने लगा वैसे वैसे अपनी आवश्यकतासे अधिक उत्पन्न करनेकी वृत्ति अपनी पदार्थोंका किफायतसे उपयोग करनेकी वृत्ति और भविष्यके लिए उसका संग्रह करके रखनेकी वृत्ति — ये गुण और आदतें मनुष्यमें पनपने लगीं। जब तक मनुष्य प्रतिदिन जितना उत्पन्न करे उतना ही तुरन्त खर्च कर डाले, तब तक न तो उसके जीवनमें स्थिरता आती है और न किसी तरहकी आर्थिक प्रगति ही हो सकती है। बुढ़ापा बीमारी या संकट जैसे मौकोंके लिए भी संग्रह होना चाहिये और भविष्यमें अधिक उत्पादनके लिए उपयोगी हो सके इसके लिए भी संग्रह होना चाहिये। हम आगे देखेंगे कि व्यवस्थित और अधिक उत्पादनके लिए पूंजी जरूरी है। इस पूंजीका संचय मनुष्य-जाति अपने उत्पादनमें से बाट-बसर करके युगोंसे जो बचत करती आई है उसीसे हुआ है। आज हम उत्पादनकी विपुल साधन-सामग्रियां — जिनका दूसरा नाम पूंजी है — का उपयोग कर रहे हैं उसका कारण यही है कि हमारे पूर्वजोंने अपने श्रमसे जो उत्पादन किया उसमें से बचाये हुए भागको वे संग्रह करते रहे। हमारी आजकी पूंजी हमारे पूर्वजोंका संचित श्रम ही है।

७ *अपनी पैदा की हुई और संग्रह करके रखी हुई वस्तुओं पर मनुष्यका* स्वामित्व अधिकार कायम रहे, तभी मनुष्यको अधिक उत्पन्न करनेकी और उसमें से बचाकर अपने लिए या समाजके लिए संग्रह करके रखनेकी वृत्तिको प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार स्वामित्वके अधिकारका उदय समाजके लिए इष्ट मानी गई आवश्यकताओं अर्थात् सामाजिक कल्याणके विचारमें से हुआ है। इसीलिए आज दुनियाके हर देशमें वहांकी सरकारें और कानून स्वामित्वके अधिकारको मानते हैं और उसे सुरक्षित बनानेकी चिंता रखते हैं। लेकिन समाजके कल्याणके लिए शुरू होनेवाली बातोंमें भी समयके साथ अनिष्ट तत्त्व घुस जाते हैं और पहले जो बात समाजके लिए हितकारी होती है वही परिस्थिति बदलने पर समाजके लिए हानिकारक हो जाती है। इसलिए हमें सोचना चाहिये कि स्वामित्व अधिकारकी प्रथा आज समाजके लिए किस हद तक हितकारी है।

८ आरंभमें जमीन सबके लिए सुलभ थी। उस समय जिसने पहले उस पर अधिकार करके उसे अपने उपयोगमें लेना शुरू किया वह उसका

स्वामी माना गया। और जो चीजें श्रमप्राप्य थी उन्हें जिसने अपने श्रमसे उपभोगके योग्य बना लिया वही उन सबका स्वामी माना गया। दूसरे लोग उससे जबरदस्ती ये चीजें छीन न सकें इसके लिए उसमें इनकी रक्षा करनेकी शक्ति होना आवश्यक था। इस बातके काफी उदाहरण मिलते हैं कि कुछ विजेताओंने इन स्वामियोंको हराकर उनके अधिकारकी जायदाद पर अपना स्वामित्व-अधिकार जबरदस्ती कायम कर लिया। इस तरह स्वामित्वका अधिकार आरंभमें भले ही समाजहितके विचारसे पैदा हुआ हो परन्तु उसकी स्थिरताका आधार तो उसके रक्षणकी शक्ति पर ही रहा है। आज एक समाज या एक राष्ट्रके भीतर उस समाज या राष्ट्रके कानून नागरिकोंके स्वामित्व-अधिकारकी रक्षा करते हैं, लेकिन राष्ट्र राष्ट्रके बीच स्वामित्वके अधिकारका झगड़ा खड़ा हो तो उसका अंतिम निबटारा जबरदस्तीकी कसौटी पर ही होता है। साथ ही राष्ट्रके भीतर भी जिस वर्गके हाथमें सत्ता होती है या जिस वर्गका सत्ताधारी वर्ग पर प्रभाव होता है वह वर्ग परोक्ष रूपसे उस सत्ताका लाभ उठाकर काफी जायदाद इकट्ठी कर सकता है और बड़ी बड़ी जायदादों पर स्वामित्वका अधिकार जमा लेता है। आज दुनियामें स्थावर और जंगम किसी भी तरहकी जितनी सम्पत्ति है उसका बहुत बड़ा भाग — विशेषतः उत्पादनके साधन तो लगभग सारे ही — हर देशके बहुत छोटे वर्गके हाथमें हैं और उन पर अपना अधिकार वह उस देशकी सैन्यशक्तिके बल पर कायम रखता है। हर देशमें मालिक-वर्ग या पूंजीपति वर्गका सत्ताधारी सैनिक वर्गके साथ गठबंधन हो गया है। हर देशमें गरीब मजदूर वर्गकी संख्या बहुत बड़ी होने पर भी उसकी कुछ नहीं चलती और इस वर्गकी मेहनत पर पूंजीपति भारी नफा कमाते हैं। हमारे देशमें बड़से बड़ा उद्योग खेतीका है। लेकिन खेतीके लिए उपयोगी बहुतसी जमीन ऐसे थोड़से जमींदारों और साहूकारोंके हाथमें है जो बिलकुल खेती नहीं करते। जहां जमीन खेती करनेवाले किसानोंके हाथमें है वहां भी इस जमीन पर जमींदार साहूकारोंका इतना बड़ा बोझ है कि किसानोंके हाथमें अपनी मेहनतका फल नहीं रहता। इस तरह आज स्वामित्व-अधिकारके जोर पर चारों ओर शोषण चल रहा है। इसलिए जो अधिकार एक समय आर्थिक उन्नतिके लिए जरूरी था वही आज सच्ची आर्थिक उन्नतिमें बाधक बन गया है।

९. आजके कानूनके अनुसार वैयक्तिक स्वामित्वके अधिकारमें मुख्यतः नीचेकी पांच बातें आती हैं: (१) मनुष्य चाहे उतनी यानी अमर्यादित मात्रामें

वैयक्तिक जायदाद रख सकता है (२) अपनी जायदादका वह चाहे जैसा उपयोग कर सकता है (३) अपनी इच्छाके अनुसार वह किसीको अपनी जायदाद भेटमें दे सकता है (४) विक्रीके अथवा और किसी भी तरहके करारसे अपनी जायदादकी मनचाही व्यवस्था कर सकता है, (५) अपनी मृत्युके बाद जायदादको विरासतमें दे सकता है।

१० दुनियाकी सारी आधुनिक सरकारें थोड़े-बहुत भेदके साथ इन अधिकारोंको स्वीकार करती है। फिर भी समाजके हितके लिए इन अधिकारों पर अंकुश रखनेकी आवश्यकताके बारेमें लोकमत बहुत प्रबल हो गया है। और सरकारें इस लोकमतका आदर करनेके लिए मजबूर होने लगी है। सम्पत्ति-कर आय-कर और उत्तराधिकार-कर — ये सब कर स्वामित्वके अधिकार पर अंकुश रखनेके कानूनी प्रयत्न है। इंग्लैण्ड जैसे देशमें दूसरे महायुद्धसे पहले भी बड़ी जायदादों पर उत्तराधिकार-कर लगभग ७० प्रतिशत तक पहुंच गया था। और दूसरे महायुद्धमें आय-कर लगभग सभी देशोंमें ८० प्रतिशतसे ऊपर चला गया था। लड़ाईका कारण न हो तो ऐसे अंकुश पूंजीपतियोंसे मनवाना कठिन हो, परन्तु लड़ाईके कारण वे इन्हें स्वीकार कर लेते है। एक बार ये अंकुश मान लेनेकी आदत पड़ गई है इसलिए लड़ाईके बाद भी ये जारी रहें तो स्वामित्व-अधिकारका कष्ट एक हद तक जरूर कम हो जायेगा।

११ परन्तु बहुतसे अर्थशास्त्रियोंको इतने अंकुशोंसे संतोष नहीं होता। वे निश्चित रूपसे यह मानते है कि जब तक उत्पादनके सब साधनों पर वैयक्तिक स्वामित्वका अधिकार मिटकर समाजका स्वामित्व स्थापित नहीं होता तब तक समाजमें न्याय्य अर्थ-व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती। अलबत्ता यह बात कानूनकी मदद यानी राजनीतिक सत्ताके बिना पार नहीं पड़ सकती। इसलिए इस तरहके परिवर्तनमें विश्वास रखनेवाला वर्ग राजकीय सत्ता अपने हाथमें ले सके तभी ये सुधार हो सकते है।

१२ गांधीजी अपनेको अर्थशास्त्री नहीं मानते थे। फिर भी उन्होंने सारी दुनियाको अथवा बदल डालनेवाला क्रान्तिकारी आर्थिक कार्यक्रम तो हमारे देशके सामने रखा ही है। वे इस प्रश्न पर दूसरी ही दृष्टिसे सोचते थे। वे कहते थे कि आप उत्पादनके साधनों परसे वैयक्तिक स्वामित्वका अधिकार मिटा दें तो भी समाजके लिए इन साधनोंका प्रबन्ध करके उन्हें उत्पादनके काममें लगानेवाले प्रबन्धक तो आवश्यक होंगे ही। तो फिर ऐसा क्यों न किया जाय कि आजके स्वामी ही जिन्हें प्रबन्धका अनुभव है यह

वाम करने लगें? वे भले ही स्वामी कहलायें परन्तु वे अपने अधिकारका दुरुपयोग न कर सकें इसके लिए उन पर प्रभावशाली अंकुश लगानेकी व्यवस्था होनी चाहिये। इन अंकुशोंके द्वारा गांधीजी इस अधिकारमें जड़ मूलसे परिवर्तन करना चाहते थे। वे कहते थे कि सम्पत्तिवाले और पूंजीपति भले ही स्वामी बने रहें परन्तु अपने अधिकार मांगनेके बजाय उन पर अपने फर्ज अदा करनेकी जिम्मेदारी अधिक डाली जानी चाहिये। अब तक तो इसीकी चर्चा बहुत हुई है कि स्वामीके अधिकार क्या क्या हैं। और उन अधिकारोंकी रक्षाके लिए कानून भी बनाये गये हैं। परन्तु स्वामीके कर्तव्योंके बारेमें लोकमत जोरदार नहीं बना और इसलिए इस विषयमें कानूनने भी कोई महत्त्वका काम नहीं किया। गांधीजी स्वामियोंसे कहते थे कि वे अपनी जायदादके निरंकुश स्वामी न रहकर समाजके प्रति अपनी जिम्मेदारी और फर्ज अदा करनेवाले ट्रस्टी बन जायें। उनका कहना था कि ट्रस्टीके नाते वे जायदादकी व्यवस्था समाजके हितके विचारसे करें। आज तो उनकी दृष्टि इस बातकी ओर लगी रहती है कि जायदादकी व्यवस्थामें से वे अपने लिए अधिकसे अधिक नफा किस तरह पैदा करें। परन्तु ट्रस्टीके नाते तो उन्हें यह विचार रखना पड़ेगा कि उनकी जायदाद समाजके लिए अधिकसे अधिक हितकारी कैसे हो सकती है। साथ ही जायदादसे होनेवाले सारे नफेके वे अकेले ही अधिकारी नहीं हो सकते बल्कि प्रबन्धकके नाते उचित पारिश्रमिक लेनेके ही अधिकारी हो सकते हैं। स्वामी — मालिकको इस तरह ट्रस्टी बनानेमें कानून अर्थात् राज्यसत्ता लोकमतके सहारे जिस हद तक सहायता करनेको तैयार हो उस हद तक उसकी सहायता लेना गांधीजी इष्ट मानते थे। परन्तु यह सहायता काफी न हो तो मजदूरोंको जो पूंजीके सच्चे उत्पादक हैं — आज दुनियाके पास जो पूंजी है वह भी पहलेके मजदूरोंके संचित श्रमका ही फल है — चाहिये कि वे शान्तिमय उपायोंसे मालिकोंका विरोध करके उन्हें अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिए मजबूर करें। मजदूर-वर्ग मालिकोंके साथ शान्तिपूर्ण असहयोग करे तो यह हो सकता है। क्योंकि दूसरोंके स्वेच्छासे या मजबूरीसे दिये हुए सहयोगके बिना धन इकट्ठा नहीं किया जा सकता इतना ही नहीं जिसके पास धन है वह इस सहयोगके बिना उसका उपभोग भी नहीं कर सकता।

१३ वैयक्तिक स्वामित्वके अधिकारके विषयमें सबसे बड़ी बुराई यह पैदा हो गई है कि मालिक समाजकी भलाईका कुछ भी काम किये बिना उससे होनेवाली आयका उपभोग कर सकते हैं। जो आदमी जमीन

जानता हो वह उस पर स्वामित्वका अधिकार रखे यह तो उचित और जरूरी समझा जा सकता है परन्तु जिन्हें जमानवी शक्ल तक न देखी हो एसे लोग आज लम्बी-चौडी जमीनोंके मालिक बन गये हैं और दूसरोंको खेती करने देकर बदलेमें उनसे भारी लगान वसूल करते हैं। यह समझमें आ सकता है कि जिन औजारोंसे मनुष्य काम लेता है उन पर उसका स्वामित्वका अधिकार हो। परन्तु आज तो जिन मशीनों और औजारों पर मनुष्य अपना ऐसा अधिकार रखता है उन मशीनों और औजारोंको चलाना या उनका उपयोग करना उसे नहीं आता और फिर भी उन मशीनों और औजारों पर काम करनेवाले मजदूरोंकी मजदूरीमें से उसे भारी नफा मिलता है। अपने और अपने कुटुम्बके रहनेके लिए तथा अपना कामधंधा करनेके लिए जो घर चाहिये उस पर मनुष्यका स्वामित्व अधिकार हो यह समझा जा सकता है लेकिन आज तो जिन घरोंका उसके लिए कोई भी उपयोग नहीं उन पर वह स्वामित्वका अधिकार रखकर दूसरोंको उसमें रहने देनेके बदलेमें उनसे भाड़ा वसूल करता है। इसलिए इस अधिकारका जरूरत या कामधंधेके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रहा। आज यह अधिकार नफा कमाने और सत्ता प्राप्त करनेका एक साधन बन गया है। इसके सिवा ऐसा भी नहीं कि यह नफा समाजके लिए उपयोगी किसी कामके अनुपातमें मिलता हो। मनुष्य कुछ भी काम न करता हो तो भी उसे नफा मिलता है। इसके सिवा मालिकको जो अधिकार और सत्ता मिलती है उसके साथ उसका कुछ जिम्मेदारी भी होनी चाहिये परन्तु आजकलके मालिकों पर तो किसी भी जिम्मेदारीका बंधन नहीं होता।

१४ स्वामित्वके मुख्य मुख्य प्रकार नीचे दिये जाते हैं। इनसे यह कल्पना आयेगी कि कौनसे स्वामित्व अधिकार उचित हैं और कौनसे अनुचित।

(क) शारीरिक आवश्यकताओं और सुविधाओंके लिए व्यक्तिगत उपयोगकी वस्तुओंका स्वामित्व।

(ख) जो जमीन मालिक स्वयं जोतते हों और जो औजार तथा साधन उनके मालिक अपने धंधेके लिए स्वयं काममें लेते हों उनका स्वामित्व।

(ग) लेखकोंके प्रकाशनके अधिकारों और शोधकोंके 'पेटेंट' अधिकारोंका स्वामित्व।

(घ) जिस सम्पत्तिसे ब्याज, डिविडेन्ड भाड़ा कमीशन आदिकी आय श्रम किये बिना मिलती रहे उस सम्पत्तिका स्वामित्व।

(ङ) अपने किसी श्रमके कारण नहीं बल्कि सामाजिक या आर्थिक उथल-पुथलके कारण होनेवाले और सट्टेबाजीसे होनेवाले धन-नफेका स्वामित्व।

(च) एकाधिकारसे होनेवाले मुनाफेका स्वामित्व।

(छ) शहरोंमें बढ़ी हुई कीमतवाली जमीनोंका स्वामित्व।

(ज) इनामों और जमीन जागीरोंका स्वामित्व।

ऊपरका वर्गीकरण बहुत स्थूल जैसा है फिर भी उसमें अधिकतर सम्पत्ति या जायदादें आ जाती हैं। इस परसे जान पड़ता है कि पहली तीन प्रकारकी सम्पत्तिका उसके मालिकको किसी न किसी तरहकी सीधी आवश्यकताओं और श्रमके साथ सबंध है। दूसरी सब सम्पत्तियां ऐसी हैं जिनमें मालिक किसी भी तरहकी सामाजिक जिम्मेदारी लिये बिना आलसी बन रहकर बैठे-बैठे उनसे होनेवाली आय खा सकते हैं। पहले तो मालिकको अपनी सम्पत्तिकी रक्षा और व्यवस्था करनेकी भी चिन्ता रहती थी परन्तु आज कुछ सम्पत्तियां ऐसी हो गई हैं जिनके लिए मालिकको कुछ भी नहीं करना पड़ता। उदाहरणके लिए ज्वाइण्ट स्टाक कंपनीके शेयर होल्डरोंको सिवा इसके कि उनका ब्याज कितना आता है और कुछ नहीं देखना पड़ता। इनामदार या जागीरदार अपनी जमीन या जागीर दूसरेको अमुक समयके लिए पट्टे पर दे दे तो उसे कुछ भी किये बिना आय मिला करती है।

१५ आज स्वामित्वके अधिकारके साथ कोई भी जिम्मेदारियां लगी हुई नहीं हैं इसलिए वह बड़े अनर्थका और समाजके लिए भारी विपत्ति सिद्ध होनेवाले आर्थिक अभावका कारण बन गया है। मनुष्य सम्पत्ति तब ही रख सकता है जब वह अपने लिए मेहनत मजदूरीके साधनके तौर पर उसे काममें लावे या अपने लिए मेहनत मजदूरी करनेके लिए आवश्यक सम्पत्तिसे अधिक हो तो उसकी भलीभांति रक्षा करके समाजके हितके लिए उसकी व्यवस्था करे। इस व्यवस्थाके बदलेमें वह उचित पारिश्रमिक ले सकता है। लेकिन बेकार पड़े रहकर बिना श्रम किये उसकी आय खानेका या उससे कम नफा कमानेका अधिकार तो मिटना ही चाहिये। आज यह अधिकार समाजकी आर्थिक प्रगतिको रोक रहा है।

प्रतिस्पर्धा

१६ यह सही है कि जब तक मनुष्य अपना खाना जुटानेके लिए केवल प्रकृतिके साथ ही जूझता रहा तब तक उसने एक तरहका जीवन

संग्राम जरूर लगा। परन्तु हम जिसे आर्थिक प्रतिस्पर्धा कहते हैं वह तो पहले-पहल उसी समय शुरू हुई जब आहारकी कमी मालूम होने लगी और एक समूहको दूसरे समूहके साथ आहारके साधनोंके लिए लड़ाईमें उतरना पड़ा। लेकिन मानव-समाजमें प्रतिस्पर्धाका यह तत्त्व दाखिल हुआ उससे पहले अपने अपने समूहके भीतर ही भीतर परस्पर सहयोग और सहायताकी वृत्तिका विकास हो चुका था। इन दो तत्त्वोंके कारण ही एक समूह संगठित हो सका और दूसरे समूहके साथ प्रतिस्पर्धा करनेमें सफल हुआ। इसलिए प्रतिस्पर्धाकी अपेक्षा सहयोग और सहायताकी वृत्ति अधिक पुरानी है। इसके बिना प्रतिस्पर्धा हो भी नहीं सकती।

१७ दूसरे प्राणियों और मनुष्योंमें यह भेद है कि अन्य प्राणी कुदरतसे जिस रूपमें चीजें मिलती हैं उसी रूपमें उनका उपयोग करते हैं और मनुष्य उन पर श्रम करके उन्हें विशेष रूपमें उपभोग्य बनाता है। मनुष्य नई नई सम्पत्ति निर्माण करता जा रहा है और अनेक मनुष्योंके सहयोगसे निर्माण की हुई सम्पत्तिमें से अधिकसे अधिक हिस्सा अकेले उसीको मिले इसके लिए प्रतिस्पर्धा भी करता है। यह आसानीसे समझमें आनेवाली बात है कि मनुष्यको अधिक मिले उससे पहले अधिक उत्पन्न होना चाहिये। हम देख चुके हैं कि हर मनुष्य या हर कुटुम्ब या हर गांव या हर देश अपनी जरूरतकी सभी चीजें उत्पन्न नहीं कर सकता। अपनी आवश्यकतासे अधिक बनी हुई चीजोंका विनिमय उसे दूसरे कुटुम्ब गांव या देशके साथ करना ही पड़ता है। इस विनिमयकी क्रियामें भी अधिक लाभ उठानेके लिए एक-दूसरेके साथ प्रतिस्पर्धा होती है।

१८ प्रतिस्पर्धाके तत्त्वको आर्थिक प्रगतिका आधार माननेवाले अर्थशास्त्री उसका पूर्वपक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं

प्रतिस्पर्धामें अधिक लाभ उठानेके लिए पहले तो हर एक अपना उत्पादन बढ़ानेका प्रयत्न करता है। इसलिए वैयक्तिक स्वामित्वके अधिकारकी प्रथाकी तरह प्रतिस्पर्धाकी यह प्रथा भी सम्पत्तिके अधिक उत्पादन और संचयको प्रोत्साहन देती है। जब तक किसी भी चीजका उत्पादक एक ही होता है तब तक कोई प्रतिस्पर्धा नहीं पैदा होती। उसकी बनाई हुई चीजकी जिसे जरूरत हो उससे वह मनमानी कीमत ले सकता है और चाहे जितना ज्यादा मुनाफा कर सकता है। परन्तु उसका नफा देखकर उसी चीजके जब कई उत्पादक खड़े हो जाते हैं तब हर उत्पादक अपनी चीजको खपानेके लिए उसे ज्यादा अच्छी और ज्यादा सस्ती बनानेका प्रयत्न करता है। चीजको

सस्ती और अच्छी बनानेके लिए उत्पादक बच्चे मालकी पदावार और उसके खचमें बहुत सावधानीके साथ किफायत करते हैं श्रम बचानेके रास्ते ढूंढते हैं अपनी कुशलता और कारीगरीको उत्तरोत्तर बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं अपने औजारोंमें समय समय पर सुधार करते हैं और हर तरहसे अपने ग्राहकोंको रिझानेका अधिकसे अधिक प्रयत्न करते हैं। फिर किसी उत्पादकको कोई खास चीज बनानेकी कुदरती सुविधायें अधिक हों और वह चीज बनानेमें उस उत्पादककी प्रतिस्पर्धामें उतरना कठिन हो तब उस चीजके बजाय उसीके जैसी और उतना ही काम देनेवाली दूसरी चीज खोजनेका प्रयत्न भी होता है। इसके फलस्वरूप लोगोंके काम तरह तरहकी चीजें उत्तरोत्तर अच्छी किस्मकी और सस्ते दामोंकी पहुंच जाती हैं। इस तरह वे अपनी आवश्यकताओंका स्तर ऊंचा कर सकते हैं। इसीलिए प्रतिस्पर्धाके तत्त्वको आर्थिक प्रगतिका आधार माना गया है।

१९ आजकल आर्थिक प्रतिस्पर्धा वस्तु और वस्तुके बीच व्यक्ति और व्यक्तिके बीच बाजार और बाजारके बीच और देश व देशके बीच चल रही है। टीनके बरतनोंने घासलेटके डिब्बों और टीनके पीपोंने मिट्टीके घड़ों और काठियोंको निकाल बाहर किया छप्परोंके पतरोंने खपरैलोंको हटा दिया दीयाबत्तीके लिए काममें आनेवाले तेलके दीयोंको घासलेटकी लालटेनोंने बिदा कर दिया और अब घासलेटकी लालटेनोंको बिजलीकी बत्तियां निकालना शुरू कर दिया है। ये वस्तु और वस्तुके बीचकी प्रतिस्पर्धाके उदाहरण हैं। मजदूरों कारकूनों और शिक्षकोंके बीच एक ही काम कम वेतन पर करनेकी जो प्रतिस्पर्धा चल रही है वह व्यक्ति और व्यक्तिके बीचकी प्रतिस्पर्धाका उदाहरण है। बम्बईका बन्दरगाह जब बड़ा हो गया तो वहां बड़ी मंडी खड़ी हो गई। इस कारणसे सूरतका बन्दरगाह और दूसरे कई छोटे छोटे बंदरगाह टूट गये। यह बाजार और बाजारके बीचकी प्रतिस्पर्धाका उदाहरण है। दूसरा विश्वयुद्ध शुरू होनेके पहले दुनियामें बड़से बड़ा द्रव्य-बाजार लन्दन था। न्यूयार्कने उसकी प्रतिस्पर्धा आरंभ कर दी थी। आज दुनियाका मुख्य द्रव्य-बाजार न्यूयार्क बन गया है। यह भी बाजार और बाजारके बीचकी प्रतिस्पर्धाका उदाहरण है। अपने देशके उद्योग बढ़ानेके लिए दूसरे देशोंके बाजारों पर अधिकार करनेका हर देश जो प्रयत्न करता है वह देश और देशके बीचकी प्रतिस्पर्धा है। पूंजीपतियों और मजदूरोंके बीचकी प्रतिस्पर्धा और पूंजीपतियोंमें भी जमींदारों व्यापारियों और उद्योगपतियोंके बीचकी प्रतिस्पर्धा वर्ग और वर्गके बीचकी प्रतिस्पर्धा

है। इन सब प्रतिस्पर्धाओंने इस जमानेमें भयंकर रूप धारण कर लिया है। आर्थिक प्रतिस्पर्धा अर्थात व्यापार व्यवसायकी और उद्योग धंधोंकी प्रतिस्पर्धा होनी तो चाहिए शान्तिमय स्वरूपकी, परन्तु उसने सारी दुनियाम तलवारें खिंचवा दी है और निहत्थे तथा निर्दोष लोगों पर अग्निकी वर्षा आरंभ करवा दी है।

२० प्रतिस्पर्धाके इन भयंकर परिणामोंका विचार करें तो आर्थिक प्रगतिका आधार होनेका उसका दावा टिक नहीं सकता। जहां दो पक्षोंके बीच स्पर्धा अथवा मुकाबला हो वहां एक पक्ष हारेगा और दूसरा जीतेगा ही। दो उत्पादकों या दो व्यापारियोंमें जब प्रतिस्पर्धा होती है तब जो हारता है वह बरबाद हो जाता है। उसका कारखाना या उसकी कंपनी नष्ट हो जाती है। इसका धक्का उस कारखाने या कंपनीमें हित-संबंध रखनेवाले कई लोगोंको पहुंचता है और ऐसा होने पर जो बिगाड़ और बरबादी होती है उसका बोझ अन्तमें सारे समाज पर पड़ता है। कभी कभी तो एक प्रतिस्पर्धी दूसरेको नष्ट करके अकेला ही खड़ा रहकर लाभ उठाने रहनेके लिए यहां तक प्रतिस्पर्धामें उतरता है कि लागत कीमतसे भी सस्ती कीमत पर माल बेचनेको तैयार हो जाता है। अगर वह बहुत ही साधन सम्पन्न होता है तो लंबे समय तक हानि उठाकर भी दूसरे पक्षको हराता है और फिर मनमाना मुनाफा कमाता है। लेकिन दोनों पक्ष एकसे बलवान या एकसे निर्बल हों तो दोनों ही बरबाद हो जाते हैं। मजदूर और दूसरे कारीगर जब ऐसी प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं तब उन्हें सस्तेसे सस्ता काम और कमसे कम मजदूरी स्वीकार करनी पड़ती है। देश और देशोंके बीचकी प्रतिस्पर्धाने तो दुनियाका कचूमर ही निकालना शुरू कर दिया है।

२१ इसके सिवा यह दावा भी नहीं टिक सकता कि प्रतिस्पर्धासे माल अच्छा और सस्ता मिलता है। जैसे जैसे प्रतिस्पर्धा बढ़ती जाती है वैसे वैसे अच्छा माल घटता ही जाता है। बाजार सस्ते परन्तु कमजोर और नकली मालसे भर जाते हैं। अच्छा माल इतना सस्ता बनाया ही नहीं जा सकता इसलिए उसका बनाना बंद हो जाता है। मालको सस्ता बनानेके लिए हल्की बनावटका, मिलावटवाला और नकली माल बनाया जाता है। सब जगह यही माना जाता है कि प्रतिस्पर्धामें उतरनेका अर्थ है ईमानदारी और न्याय जैसा सद्‌भावनाओं ताकमें रख देना। इसलिए माल अच्छा तो नहीं परन्तु सस्ता जरूर मिलता है। और ऐसे अन्यायके फलस्वरूप माल यदि सस्ता भी मिले तो क्या? मनुष्य जैसे ग्राहक है, उपभोग करनेवाला है वैसे ही वह उत्पादक भी है।

ग्राहकको माल सस्ता देनेके लिए मजदूरको मजदूरी कम दी जाती है तब उसे उपभोग करनेवालेकी हैसियतसे जो लाभ होता है उसके बदलेमें उत्पादककी हैसियतसे नुकसान सहना पडता है। इसके सिवा उत्पादक मजदूर समाजका बहुत बडा अंग है। उसके हितकी उपेक्षा करके उत्पादनकी जो भी पद्धति काममें ली जाय उसे हानिकारक ही मानना चाहिये। उत्पादक मजदूरका नुकसान पहुचाकर माल सस्ता बनानेसे समाजको लाभके बजाय हानि ही अधिक होती है।

२२ प्रतिस्पर्धाके पूर्वपक्षमें उसके जितने लाभ बताये गये हैं वे सब काल्पनिक हैं। क्योंकि आजके समाजमें जहा आर्थिक और राजनीतिक असमानता है अलग अलग वर्गोंकी शिक्षा और शक्तिमें असमानता है और काले-गोरेका भेद मौजूद है शुद्ध प्रतिस्पर्धा हो ही नहीं सकती। हम इस पुस्तकमें जगह जगह यह देखेंगे कि एक-दूसरेके साथ सौदा करनेवाले एक दूसरेके साथ करार करनेवाले दो पक्षोंकी स्थिति अनेक प्रकारसे असमान होनेके कारण उनके सौदे या करार ज्यादातर एक ही पक्षको लाभ पहुचानेवाले होते हैं। इस तरह प्रतिस्पर्धाको आर्थिक प्रगतिका आधार माननेमें बडी भूल होती है। आर्थिक प्रगतिका सच्चा आधार तो सहयोग और उसके साथ लगे हुए एक्य और न्यायके तत्त्व हैं।

आर्थिक स्वतत्रता

२३ हम देख चुके हैं कि इतिहासके आरभ-कालसे ही मनुष्य आर्थिक मामलोंमें किसी न किसी तरहकी पराधीनता भोगता आया है। जब बिलकुल आदि वनवासी पर मनुष्यके लगाये हुए दूसरे कोई बधन नहीं थे तब भी वह कुदरतके अधीन तो था ही। साथ ही जो वनवासी उससे अधिक बलवान होता उससे उसे डर कर रहना पडता था। अपने समूहकी रूढियो और रिवाजोंके बधनमें भी उसे रहना पडता था। जब गुलामीकी प्रथा शुरू हुई तब गुलाम पर ज्यादा बधन लादे गये। कुटुम्बकी और आगे चलकर ग्राम-समाजकी सम्पत्तिके सारे उत्पादनमें बडा भाग गुलामका होता था तो भी सपत्तिके बटवारेमें उसे बहुत थोडा भाग मिलता था। गुलाम पर लादा गया बधन शरीर-बलका बधन था। जब गुलामीकी प्रथासे स्वतंत्र मजदूरकी प्रथा और जमीन देकर बसाये हुए कारीगरकी प्रथा निकली तब सीधे शरीर-बलका बधन तो ढीला हुआ लेकिन रूढियो और रिवाजोका अमल बहुत सख्तीसे होता था। शहरोंमें व्यापारी और कारीगर इन पुरानी रूढियोंसे कुछ स्वतत्रता जरूर भोगने लगे। लेकिन वहा भी आगे चलकर नये रिवाज और नये बधन पैदा हो

गये। उन रिवाजोंका अमल शहरोंमें गांवोंकी जैसी सख्तीसे नहीं होता था। परन्तु कारीगरोंको जैसे जैसे पूंजीकी जरूरत होने लगी वैसे वैसे वे व्यापारियोंके पंजेमें फंसते गये। व्यापारी कारीगरको कच्चे मालके रूपमें रुपया उधार देता और अपनी पूंजी तथा ब्याजकी वसूलीके लिए कारीगरका तैयार माल मनचाहे भावसे खरीद लेता था। इसलिए जिसे आज आर्थिक स्वतंत्रता कहा जाता है उस तरहकी आर्थिक स्वतंत्रता पुराने समयमें बहुत थोड़ी थी। आजकी आर्थिक स्वतंत्रता भी नाममात्रकी ही है। श्रम करनेवाले विशाल जन-समुदायके लिए तो यह बेकारी भोगने और भूखों मरनेकी ही स्वतंत्रता है। तुलनामें पुराने जमानेकी परतंत्रता इतनी कठोर नहीं थी क्योंकि उस समय अर्थसत्ता और राज्यसत्ता आजकी तरह केंद्रित और सर्वग्राही नहीं थी।

२४ बहुतसे ऐतिहासिक कारणोंके फलस्वरूप, जिनकी तफसीलमें जानेकी यह जगह नहीं है, सोलहवीं शताब्दीमें दुनियाके प्रत्येक आगे बढ़े हुए देशमें राजा निरंकुश सत्ता धारण करते पाये जाते हैं। हर देशमें प्रजा भी राजाकी इस निरंकुश सत्ताका स्वागत करती है। हिंदू राजनीतिके अनुसार राजाकी सत्ता पर ब्राह्मणों और धर्मशास्त्रोंका अंकुश होते हुए भी राजाको विष्णुका अवतार माना गया है। मुसलमानी हुकूमत आई तब मुसलमान सुलतानों और बादशाहोंके प्रति भी हिंदू प्रजाकी यह भावना बनी रही। ऐसा नहीं जान पड़ता कि यूरोपमें इसके पहले ऐसी कोई बात थी लेकिन वहां भी सोलहवीं शताब्दीसे राजाके ईश्वरदत्त अधिकारों (डिवाइन राइट्स आफ किंग) का वाद जन्म लेता है और उसका खूब प्रचार होता है। सारी सत्ता एक ही हाथमें करनी हो तो अपने राज्यके भीतर ग्राम-पंचायतों और व्यापारिक संघोंके जरिये अनेक मण्डल जो सत्ता और स्वराज्य भोगते हैं उसे राजा बरदाश्त नहीं कर सकता। इसलिए वह स्वराज्य भोगनेवाली सब संस्थाओंको तोड़ डालता है। अपने राज्यके भीतर हर क्षेत्रमें राजाकी सत्ता सर्वोपरि मानी जाती है। उसकी इच्छाके विरुद्ध और उसकी स्वीकृति लिये बिना कोई भी बड़ा काम, फिर वह सामाजिक हो, धार्मिक हो या आर्थिक हो, प्रजा नहीं कर सकती। हमारे देशमें यह जमाना मुगल साम्राज्यका जमाना था। मुगल बादशाहोंने भी सत्ताको जहां तक बन पड़ा केंद्रित और 'एकमुखी' बना दिया था। पर हमारा देश बहुत विस्तृत होनेसे ज्यादा आबादी गांवोंमें होनेसे और खास कर हमारी सत्ताकी भावना यूरोपसे भिन्न होनेके कारण उन्होंने प्रजाके सामाजिक और धार्मिक व्यवहारमें हस्तक्षेप नहीं किया। इसी तरह उन्होंने ग्राम-पंचायतों और व्यापारियों तथा कारीगरोंके संघोंकी

स्वराज्य भोगनेवाली संस्थाओंको भी नहीं तोड़ा। हमारे देशकी ये स्वराज्य भोगनेवाली संस्थाएं तो ब्रिटिश शासनमें यूरोपीय पद्धतिकी केन्द्रित राज्यसत्ताके कारण ही टूटीं।

२५ अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें राजाकी निरंकुश सत्ताके खिलाफ समाजहितैषी तत्त्वज्ञानियों और लेखकोंने प्रजाकी स्वातंत्र्य भावनाको जगाया। उसका परिणाम यह हुआ कि अठारहवीं शताब्दीके अंतमें फ्रांसमें महान राज्यक्रान्ति हुई। इस क्रान्तिकी आगमें फ्रांसका राजा, जमींदार, सामन्त और बड़ी बड़ी जागीरोंवाले महंत और धर्माचार्य सब भस्म हो गये। इतना ही नहीं, यूरोपके सारे देशोंके राज्य सिंहासन हिल गये। क्रान्तिके बाद फ्रांसके सिवा दूसरे देशोंमें राजाओंका अस्तित्व तो बना रहा, परन्तु उनकी सत्ता पर अंकुश लग गया और हर देशमें ऐसी व्यवस्था होने लगी जिससे वहांके राज्यतंत्रमें प्रजाकी आवाज सुनाई दे। राजाओंकी निरंकुश सत्ताके समयमें राजाकी इच्छाके विरुद्ध और स्वीकृतिके बिना प्रजा कोई भी काम नहीं कर सकती थी। इसकी प्रतिक्रियाके रूपमें अब ऐसा वाद अस्तित्वमें आया कि प्रजाके किसी आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यमें राज्यतंत्रका कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यको अपने विश्वासके अनुसार चलने और जो काम उचित लगे और पसन्द हो वह काम करनेकी स्वतंत्रता होनी चाहिये। हर मनुष्यको अपनी पसन्दका धर्म पालनेकी, अपनी पसन्दका व्यापार, धंधा या व्यवसाय करनेकी और अपनी इच्छाके अनुसार अपनी जायदादका उपयोग करनेकी स्वतंत्रता होनी चाहिये। हर मनुष्यमें स्वयं अपना हित समझने और अपना स्वार्थ किसमें है यह देखनेकी शक्ति होती है। इसलिए जो अवसर मिलेगा उसका फायदा उठानेमें कोई भी मनुष्य नहीं चूकेगा और अपने स्वार्थको समझकर उसकी सिद्धिमें वह अपनी सारी शक्तियां लगा देगा। हर मनुष्य अपनी शक्तियोंका ज्यादासे ज्यादा उपयोग करेगा और इस तरह अपने-आप सारे समाजका हित सध जायगा। इस वादमें यह मान लिया गया है कि वैयक्तिक स्वार्थ और समाज हितके बीच कोई भेद ही नहीं है। इससे वैयक्तिक स्वार्थको पूरी स्वतंत्रता मिल गई।

२६ यही काल यूरोपमें भौतिक शक्तिकी शोधका काल था। पूंजीपतियोंने भौतिक शक्तिसे चलनेवाले बड़े बड़े कारखाने खड़े किये और मजदूर चूसे और पीसे जाने लगे। प्राचीन तथा मध्यकालमें किसान वर्ग जमींदारके अधीन था और कारीगर-वर्ग व्यापारियोंके अधीन था। फिर भी समाजमें ऐसी भावना फैली हुई थी कि जमींदारों और व्यापारियोंको किसानों और

कारीगरोंके साथ मानवताका व्यवहार रखना चाहिये। उसके लिए समाजके रीति रिवाज और कानूनके अंकुश होते थे। परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रताके नाम पर निरंकुश रीतिसे वैयक्तिक स्वार्थ साधनेकी फिलासफीवाले इस युगमें पूंजीपतियोंको कोई कुछ कह नहीं सकता था। मजदूरीकी दरके बारेमें, कामके घंटोंके बारेमें और कामके चुनावके बारेमें मजदूर पूंजीपतियोंके साथ स्वतंत्रतापूर्वक करार करते हैं और वे अपना स्वार्थ समझकर स्वेच्छापूर्वक उसे स्वीकार करते हैं — इस तत्वज्ञानका प्रचार अर्थशास्त्री गंभीरतासे करते थे। यह माना जाता था कि मजदूर अगर कारखानोंमें घिस और पिस जाते हैं तो वे अपनी इच्छासे ऐसा होने देते हैं। राज्यसत्ता तो सिद्धान्तके अनुसार बीचमें पड़ ही नहीं सकती थी। साथ ही लोकमत भी सारा पूंजीपतियोंके पक्षमें होता था क्योंकि इस तथाकथित प्रजासत्ताके जमानेमें राष्ट्र भावनाका लोगोंमें खूब जोर था। हर देशकी भौगोलिक चतुःसीमाओंके भीतर बसने वाले हर मनुष्यके हृदयमें यह आकांक्षा उत्पन्न और पोषित की जाती थी कि हमारा राष्ट्र दूसरे राष्ट्रोंके साथ युद्धमें जीते, हमारे राष्ट्रका विस्तार बढ़े, हमारा राष्ट्र दूसरे राष्ट्रोंकी तुलनामें कला-कौशलमें ऊंचा माना जाय, हमारा राष्ट्र व्यापारिक प्रतिस्पर्धामें दूसरोंको हराकर दूसरे देशोंसे धन खींचकर लाये और हमारे राष्ट्रकी कीर्ति दसों दिशाओंमें गाई जाय। इस सारी कीर्ति, समृद्धि, सत्ता या धनसे देशके बड़े हिस्सेके लोगोंको तो कुछ भी लाभ न मिलता था और उनके दैनिक जीवनमें भी कोई सुधार न होता था। फिर भी यह मानकर कि हमारे राष्ट्रको जो कुछ मिलता है वह हमीको मिलता है, देशकी सामान्य जनता राष्ट्रकी विजय और धनदौलतको देखकर खुश होती थी और उसमें गौरव मानती थी। जहां प्रजामें ऐसी भावनाओंका ही बोलबाला हो वहां इस बातका विरोध कौन कर सकता था कि हमारे देशमें दूसरे देशोंसे अपार धन आये और उसकी कीर्ति सब जगह फैले? व्यक्तिकी तथाकथित आर्थिक स्वतंत्रताका वाद इस सीमा तक पहुंच गया कि यदि आठ दस मजदूर मिलकर मजदूरीकी दर बढ़वाने या दूसरी सुविधाएं प्राप्त करनेके लिए कोई संघ बनाते तो उसे भी व्यक्ति-स्वातंत्र्यमें रुकावट समझा जाता था। इसके सिवा तथाकथित प्रजासत्तामें प्रजाके नाम पर पूंजीपति ही संपूर्ण सत्ता भोगते थे। अभी निर्वाचन-पद्धतिकी रचना इतनी अधिक दोषपूर्ण थी कि इस बातकी कोई व्यवस्था ही नहीं थी कि प्रजाकी तरफसे चुनी हुई वहां जानेवाली प्रजासभामें प्रजाका प्रतिनिधित्व भलीभांति हो। इसलिए पूंजीपतियों पर राज्यसत्ता या लोकमतका अंकुश भी नहीं था।

वादके रूपमें तो यह कहा जाता था कि हर मनुष्य आर्थिक विषयोंमें पूरा तरह स्वतन्त्र है, लेकिन इस वादके कारण व्यवहारमें तो 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का ही न्याय चलता था।

२७. इसी आर्थिक स्वतन्त्रताके नाम पर यह वाद भी प्रचलित हुआ कि देश और देशके बीच मुक्त व्यापारकी नीति होनी चाहिये। किसी भी देशका राज्यतंत्र मालके आयात-निर्यातके व्यापार पर जकात लगाता या दूसरी तरहका कोई प्रतिबंध लगाता, तो वह अर्थशास्त्रके सिद्धान्तके खिलाफ माना जाता था। यह मनवाया जाने लगा कि मुक्त व्यापारकी नीतिसे ही अच्छेसे अच्छा और सस्तेसे सस्ता माल हर देशकी जनताको मिल सकता है; इसलिए एक देशके दूसरे देशके साथ होनेवाले व्यापारमें किसी भी तरहकी रुकावट न डालनी चाहिये। इसका फल भी यह निकला कि जो देश उद्योग-धंधोंमें — खास करके यंत्रोद्योगमें — आगे बढ़ा हुआ था, वह दूसरे देशोंको चूसने लगा। इस तरह इसमें भी 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का न्याय ही चलने लगा।

२८. किसी राक्षस और बौनेको आपसका व्यवहार निश्चित करनेकी पूरी स्वतन्त्रता हो, तो यह दीये जैसी स्पष्ट बात है कि उसमें बौनेके साथ अन्याय ही होगा। बौनेकी स्वतन्त्रता उसके किस काम आयगी? स्वतन्त्रता भी समाजकी प्रगतिमें और समाजके हितमें तभी उपयोगी सिद्ध हो सकती है, जब समाजमें समानता मौजूद होती है। समान शक्तिवाले दो पक्षोंमें लेन-देनके या दूसरे करार बिलकुल स्वतन्त्रताके साथ हों, तो उनमें दोनों ही पक्ष अपने अपने हितोंकी रक्षा कर सकते हैं। परन्तु जहां एक पक्ष बहुत बलवान हो और दूसरा बिलकुल निर्बल हो, वहां इन दोनोंके बीचकी स्वतन्त्रताका पूरा लाभ बलवान पक्षको ही मिलता है। इसलिए अगर न्यायकी रक्षा करनी हो तो बलवान पक्ष पर सामाजिक जिम्मेदारीके उचित अंकुश होने ही चाहिये।

२९. इसके सिवा, अगर दोनों पक्ष समान बलवाले हों, परन्तु एक दूसरेसे द्वेष रखते हों, मौका मिलते ही एक-दूसरेको नीचे गिरानेकी वृत्ति दोनों पक्षोंमें हो, तो भी समाजकी सुख-शांति और प्रगतिमें रुकावट पड़ती है। दो समान पक्षोंमें भी समाजके कल्याणकी वृत्ति हो, दोनोंमें भाईचारेकी भावना हो, तो ही इन समान पक्षोंकी स्वतन्त्रता समाजके उत्कर्षमें सहायक हो सकती है; नहीं तो यह कहावत चरितार्थ होती है कि सांड सांड लड़ें और बागड़का नाश हो। दो बलवानोंकी लड़ाईमें जनता बिना कारण परेशान होती है। इस विचारधाराको ध्यानमें रखकर ही फ्रांसकी क्रान्तिकी प्रेरणा देनेवाले तत्त्वज्ञानियोंने क्रान्तिके घोषणा-सूचक रूपमें स्वतन्त्रता, समानता और बंधुत्वकी भावनाएं

लोगोंकी जबान पर चढ़ा दी थी। उनमें से स्वतंत्रताकी भावना दुनियामें फैली और आज भी आदर्शके रूपमें स्वीकार की जाती है। परन्तु जब तक समानता और बंधुत्वकी भावनायें सिद्ध न हो जाय तब तक समाजके भलेके लिए स्वतंत्रता पर अंकुश रखना ही पड़ेगा। कारण बलवान पक्षकी जिम्मेदारीके भानसे रहित निरी स्वार्थपरायण स्वतंत्रता और निर्बल पक्षकी अपना हित रक्षण न कर सकनेवाली निरी पंगु स्वतंत्रता — दोनों ही समाजको हानि पहुंचानेवाली हैं। यह स्वतंत्रता शब्दका दुरुपयोग और मजाक बिडम्बना ही है।

३० यह बात दूसरे सामाजिक व्यवहारोंकी तरह अर्थ-व्यवहारमें भी स्वीकार की जाने लगी है। प्रत्येक देशमें मिल मालिकों और मजदूरोंके बीचके व्यवहारमें मजदूरोंके हितकी रक्षाके लिए और जमींदारों साहूकारों तथा किसानोंके आपसी संबंधोंमें किसानोंके हितोंकी रक्षाके लिए सरकार बीचमें पड़कर कानून बनाती है। कुछ उद्योग धंधे तो सरकार अपने हाथमें लेकर स्वयं ही चलाती है। बेलगाम पूंजीपतियोंकी नफाखोरी और सूदखोरीको रोकनेके लिए सरकारें प्रयत्न करने लगी हैं। गरीबोंके विशेष लाभके लिए म्युनिसिपलिटियां अस्पताल खोलने और अच्छे घर बनवाने जैसे काम करती हैं। लोगोंकी ओरसे भी दया और परोपकारके कामके रूपमें अनाथालय आदि चलते हैं। परन्तु यह सब ऊपरी दिखावा है। देशके राजकाजमें अभी तक कर्ताधर्ता वर्ग पूंजीपतियोंका ही है या पूंजीपतियोंने अपने पैसेके बल पर अथवा दूसरे प्रभावसे कर्ताधर्ता वर्गको अपने वशमें कर रखा है। इसलिए ऐसे प्रयत्नोंसे मजदूरों किसानों और दूसरे गरीब तथा दलित वर्गोंके हितोंकी रक्षा भलीभांति नहीं हो सकती।

३१ मालिक और पूंजीपति वर्गके साथ बराबरी करनेके लिए मजदूरोंने अपने संघ बनाकर मालिकोंसे टक्कर लेना शुरू किया है। इसमें से समानताकी स्थापना होनेकी आशा अधिक दिखाई देती है। हर तरहके शोषित वर्ग अब अपने अपने इस तरहके संघ बनाने लगे हैं। परन्तु जिस हद तक इन संघोंका संगठन प्रतिस्पर्धा और द्वेषके सिद्धान्त पर होगा उस हद तक इन प्रयत्नोंमें भी समाजका कुशल नहीं है। इन संघोंका संगठन न्याय और मानवता अथवा बंधुत्वके सिद्धान्त पर करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

३२ संक्षेपमें, मनुष्य जब तक समाजमें रहता है तब तक मनुष्यको शुद्ध स्वतंत्रता संभव ही नहीं है। किसी भी तरहकी जिम्मेदारीका अंकुश स्वीकार किये बिना दूसरोंको नुकसान पहुंचाकर जो अपनी स्वाधीनताका

१

कुदरत

१ हम सम्पत्तिकी व्याख्या कर चुके हैं। यह सम्पत्ति जिन क्रियाओंसे निर्माण हो उन सब क्रियाओं और प्रवृत्तियोंको हम उत्पादन कह सकते हैं। उत्पादनके काम द्वारा मनुष्यकी आवश्यकताएं पूरी करनेके लिए मूल पदार्थमें से हम उपभोगके योग्य नई नई चीजें बनाते हैं या जो चीजें मौजूद होती हैं उनकी उपयोगिताको बढ़ाकर उन्हें अधिक उपभोग्य बनाते हैं। मनुष्यके कुछ कार्यों और सेवाओंके द्वारा भी समाजकी आवश्यकताएं पूरी होती हैं। इन कार्यों और सेवाओंको भी सम्पत्ति माना जाता है। मनुष्यके उपयोगमें आनेवाली और विनिमयमें जिसका मूल्य आंका जा सके ऐसी भौतिक तथा अभौतिक अथवा अशरीरी सम्पत्ति उत्पन्न करनेका नाम उत्पादन है।

२ भौतिक सम्पत्तिके उत्पादनमें हम कोई नई वस्तु निर्माण नहीं करते। यह मानव शक्तिके बाहरकी बात है। परन्तु कुदरतसे हमें जो कुछ मिलता है उस पर श्रम करके हम उसे उपभोगके योग्य बनाते हैं।

३ अशरीरी सम्पत्तिमें मनुष्यके काम और सेवाएं आ जाती हैं। इस सम्पत्तिकी बुनियाद कुदरत पर नहीं बल्कि मानव शक्ति और मानव-कुशलता पर होती है। यह शक्ति और कुशलता शिक्षासे बढ़ती है।

४ अलबत्ता भौतिक वस्तुओंके उत्पादनमें भी शिक्षाका महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। यह शिक्षाका ही प्रताप है कि नई नई खोजोंके कारण भौतिक परिस्थितियोंमें तथा भौतिक वस्तुओंके उत्पादनमें बहुत सुधार हुए हैं। इस तरह कुदरत भी मनुष्यकी शक्ति कुशलता और स्वभावको तालीम देनेमें बहुत सहायक होती है।

५ किसी भी देश या समाजकी आर्थिक स्थितिका अनुमान लगानेमें आम तौर पर भौतिक सम्पत्तिके उत्पादनका ही हिसाब लगाया जाता है। इस उत्पादनके मुख्य अंग अथवा कारण चार हैं १ कुदरत २ श्रम ३ पूंजी और ४ प्रबन्ध।*

---

* गीताके अनुसार पांच कारण हैं अधिष्ठान (कुदरत) कर्ता (श्रम), करण (साधन—पूंजीमें प्राप्त करने योग्य वस्तुएं), क्रिया और दैव।

६ अर्थशास्त्रकी अंग्रेजी पुस्तकोंमें कुदरतके बजाय जमीन शब्दका उपयोग करनेकी प्रथा है। जब उत्पादनके एक अंगके रूपमें प्रबन्धकको माननेकी प्रथा शुरू नहीं हुई थी, तब जमीन, श्रम और पूंजी ये तीन ही उत्पादनके अंग माने जाते थे। इन अंगोंको तीन जकारवाले नामोंके रूपमें रखना हो तो पुरानी कहावतको थोड़ा बदलकर हम जमीन, जोर और जर — इन तीनको उत्पादनके अंग कह सकते हैं।

७ इस प्रकरणमें हम कुदरतका विचार करेंगे। जिस देशको जैसी कुदरती परिस्थितियां मिलती हैं वैसा ही उस देशका आर्थिक जीवन बनता है। परिस्थितियां अनुकूल हों तो जरूरतकी चीजोंका आसानीसे उत्पादन किया जा सकता है और लोग सुख-सुविधा भोग सकते हैं। परिस्थितियां प्रतिकूल हों तो जरूरतकी चीजोंके उत्पादनमें बहुत कठिनाइयां आती हैं और लोगोंको कष्टमय जीवन बिताना पड़ता है। कुदरती परिस्थितियां नीचेकी पांच बातों पर निर्भर होती हैं :

१ जलवायु २ भूपृष्ठकी रचना ३ भूस्तरकी रचना ४ भौगोलिक स्थिति ५ वनस्पति तथा पशु पक्षी।

(१) जलवायु: मनुष्य अभी तक पृथ्वीके बहुत थोड़े हिस्सेको आबाद कर सका है। दोनों ध्रुव प्रदेशोंके आसपासके बहुत ठंडे भागोंमें तथा विषुवत रेखाके आसपासके बहुत गरम प्रदेशोंके बहुत बड़े भागोंमें आबादी बहुत ही कम है — नहींके बराबर है। दुनियाकी आबादीका बड़ा भाग समशीतोष्ण प्रदेशोंमें बसता है। हमारे देशके और चीनके कुछ हिस्से और यूरोप महाद्वीपके कुछ देश घनी बस्ती वाले आबादीवाले हैं। ठंड, गरमी, बरसात, सूखी या गीली हवा, ऋतुओंके परिवर्तन और पानीकी सुविधा — ये सब जहां अनुकूल हों वहां संस्कृतियां फली फूली हैं। जहां इन सब बातोंकी प्रतिकूलता है वहां मनुष्य बसा हुआ दीखे तो भी वह नितान्त प्राथमिक और जंगली दशामें ही होता है।

(२) भूपृष्ठकी रचना: पहाड़, नदियां, रेगिस्तान, जंगल, ऊंची-नीची या समतल जमीन, समुद्रका किनारा — ये सब मनुष्यके आर्थिक जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव डालते हैं। पहाड़ी प्रदेशमें रहनेवालोंका जीवन, समतल प्रदेशमें रहनेवालोंका जीवन और समुद्रके किनारे रहनेवालोंका जीवन तीनों एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न होते हैं। इसी तरह नदीके आसपासके खेतीवाले प्रदेशमें रहनेवालोंका जीवन, ऊंचे-नीचे और गोचरभूमिवाले प्रदेशमें रहनेवालोंका जीवन और रेगिस्तानमें रहनेवालोंका जीवन भी एक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न होता

है। उनके खान-पीनेकी चीज पोशाक घरकी रचना और सामाजिक रीति रिवाज अलग अलग होते हैं। नदियां वर्षाऋतुमें पूर आती हैं और किनारे काट काटकर अपने साथ मिट्टी ले आती हैं। इससे जमीन उपजाऊ बनती है। कभी कभी वे गांवोंको बहाकर भी ले जाती हैं यद्यपि अधिकतर वे मदद ही करती हैं। जिन नदियोंमें नावें चल सकती हैं वे यातायातमें मदद करती हैं। सभी नदियां सामान्यतः आसपासके प्रदेशको समतल उपजाऊ और अधिक आबादीके लायक बनानेमें मदद करती हैं। समुद्र-तट भी जहां खाडियोंवाला होता है वहां जहाजरानीके लिए और मछलीमारोंके धंधेके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। हमारे देशकी संस्कृतिके विकासमें उत्तर भारतमें हिमालय पर्वतने और सिंध सतलज, गंगा-यमुनाके नदी परिवारोंने तथा दक्षिण भारतमें सह्याद्रि पर्वत और बीचके ऊंचे प्रदेशने और गोदावरी कृष्णा कावेरीके नदी परिवारोंने बहुत हाथ बटाया है। मध्यप्रदेशको उपजाऊ बनानेमें इसी तरहका काम नर्मदा, ताप्ती चंबल, सोन आदि नदियोंने किया है।

(३) भूस्तरकी रचना जमीनकी ऊपरी सतहमें जमीनका प्रकार—काली लाल पीली, रेतीली आदि—और उसका उपजाऊपन अर्थोत्पादनमें बहुत बड़ा काम करते हैं। इसके सिवा, जमीनके अन्दरकी सतहमें तरह तरहकी धातुओंकी तथा कोयले और पत्थरकी खान और तेलके कुएं जहां होते हैं उस प्रदेशका आर्थिक महत्त्व बहुत बढ़ जाता है।

(४) भौगोलिक स्थिति पृथ्वीके गोले पर कौनसा प्रदेश किस जगह पर है इसका भी आर्थिक महत्त्व होता है। खास प्रदेश जिस अक्षांश पर हो, समुद्रकी सतहसे जितना ऊंचा हो समुद्रसे जितना दूर या पास हो और पर्वत मालायें जिस ओर हों उसके अनुसार उस प्रदेशकी आबोहवामें और उसके कारण अर्थोत्पादनके गुणमें तथा मनुष्यके जीवनमें फर्क पड़ता है। हमारे देशका उत्तरी भाग समशीतोष्ण कटिबंधमें होते हुए भी समुद्रसे दूर होने और उसकी सतहसे बहुत ऊंचा न होनेके कारण उसके भीतर अत्यन्त ठंडी हवाएं और अत्यन्त गरम हवा तककी विविधता पाई जाती है। उसके निर्माणमें हिमालय पर्वतका बहुत बड़ा हाथ है। अरबी समुद्रसे और बंगालके उपसागरसे उत्तरकी तरफ जानेवाले बरसाती बादलोंको रोककर वह इस प्रदेशको बरसात देता है तथा उत्तरमें तिब्बतकी ओरसे आनेवाली अत्यन्त ठंडी और सूखी हवाको रोकता है और सिंध-सतलज, गंगा-यमुना और ब्रह्मपुत्रा आदि नदियोंका सारे प्रदेशमें बहाकर उसे उपजाऊ बनाता है। दक्षिण भारत उष्ण कटिबंधमें होते

हुए भी सारा प्रदेश समुद्रकी सतहसे ऊंचा होने और समुद्रके समीप होनेके कारण वहां बहुत गरमी नहीं पड़ती। इसके सिवा सह्याद्रि पर्वत अरबी समुद्रके बरसाती बादलोंको रोककर कोंकण और मलाबारके सारे पश्चिमी किनारेके प्रदेशको विपुल मात्रामें वर्षा देकर उपजाऊ बनाता है और दूसरी ओरके यानी पूर्वके प्रदेशमें गोदावरी कृष्णा और कावेरी आदि नदियोंको बहाकर उसे उपजाऊ बनाता है।

(५) वनस्पति और पशु-पक्षी जंगल और दूसरी वनस्पतियां तथा पालने लायक पशु और पक्षी भी देशकी आर्थिक स्थितिमें अपना योग देते हैं। हमारा देश जंगलकी पैदावारमें काफी समृद्ध है। और गाय भैंस हाथी ऊंट घोड़े गधे बकरी और भेड़ आदि पशुधन भी देशमें बड़ी संख्यामें है।

८ प्राकृतिक परिस्थिति या कुदरतकी प्रादेशिक रचना मनुष्यके रहन सहन स्वभाव आर्थिक जीवन आदि पर जो प्रभाव डालती है उसमें अन्य सारी वस्तुओंकी अपेक्षा नदी और समुद्र अधिक हाथ बटाते हैं। इसी कारणसे हम दुनियामें जन्म लेनेवाली आज तककी सारी संस्कृतियोंको नदी या समुद्रके आसपासके प्रदेशमें विकसित हुई पाते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति सप्तसिंधु और गंगा-यमुनाके प्रदेशमें फली फूली है। प्राचीन द्राविड़ संस्कृति गोदावरी कृष्णा तथा कावेरीके प्रदेशमें तथा अरबी समुद्र और बंगालके उपसागरके तटवर्ती प्रदेशमें फूली फली होनी चाहिये। चीनकी संस्कृति ह्वांगहो और यांगसक्यांग नदियोंके प्रदेशमें, बेबिलोन और खाल्डियाकी संस्कृति युफ्रेटीज और टाइग्रीस नदियोंके प्रदेशमें और मिस्रकी संस्कृति नील नदीके प्रदेशमें समृद्ध हुई है। यूनान रोम कार्थेज और फिनिशियाकी संस्कृतियां भूमध्य समुद्रके आसपास फली फूली हैं। डेनमार्क हालैण्ड बेल्जियम इंग्लैण्ड फ्रांस और जर्मनीकी संस्कृतिका उदय और विकास उत्तरी समुद्रके आसपास हुआ माना जायगा। जापानको हम जापानी समुद्र और प्रशान्त महासागरके साथ जोड़ेंगे। लेकिन अमरीकाको हम किस समुद्र अथवा नदीके साथ जोड़ें? परन्तु अब किसी भी देशको इस तरह नदी या समुद्रके साथ जोड़नेकी जरूरत नहीं। ऊपर बताई हुई बात पुरानी संस्कृतियोंके बारेमें ही ठीक है। क्योंकि यातायात और संदेश-व्यवहारके साधनोंमें नई नई खोज करके मनुष्यने इतना अधिक सुधार कर लिया है कि अब एक-दूसरेके साथ व्यवहार करनेमें देश और कालके बंधन कोई खास रुकावट नहीं डालते।

९ मनुष्य अपने भौगोलिक परिवेष्टनोंके अधीन होकर कभी बैठा नहीं रहा। इन परिवेष्टनों पर उत्तरोत्तर विजय पानेका पुरुषार्थ ही मनुष्य

जातिकी आर्थिक प्रगतिका इतिहास है। जलवायुमें परिवर्तन करना बहुत कठिन होते हुए भी वीरान प्रदेशोंमें वन लगाकर और सूखे प्रदेशोंमें दूरकी नदियोंसे नहर बहाकर मनुष्यने उन प्रदेशोंके जलवायुमें काफी परिवर्तन किये हैं। हमारे गुजरातमें चरोतरका प्रदेश जो बाग जैसा दिखाई देता है वह मनुष्यके श्रमका ही फल है। इसके सिवा कुछ प्रदेशोंमें नदियोंमें बड़े बड़े बांध बांधकर उनसे बारहों महीने खेतीके लिए पानी लेनेकी मनुष्यने व्यवस्था की है। नील नदीके कुछ बड़े बांध और सिंधु नदीका सक्कर बांध इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं। पंजाबमें बहुत बरसात नहीं होती लेकिन उसमें बहनेवाली पांच नदियोंसे नहरें निकालकर ही मनुष्यने उसे उपजाऊ बनाया है। बीकानेरके राजाने सतलज नदीसे बड़ी नहर निकालकर अपने राज्यके कुछ रेतीले प्रदेशको हराभरा बना लिया है। हमेशा पानीसे भरी रहनेवाली और दलदलवाली जमीनोंसे नालियों द्वारा पानी निकालकर और सुखाकर मनुष्यने उन्हें खेतीके उपयोगमें लिया है। खारी ऊसर जमीनमें समुद्रके ज्वारका पानी न आ सके ऐसी व्यवस्था करके और वहां बरसातका मीठा पानी भरा रखकर मनुष्यने ऐसी धरतीको भी खेतीके लिए उपयोगी बनाया है। इसके सिवा खड्डे और टेकरावाली जमीनके ऊंचे भागको खोदकर और निचाईवाले हिस्सेकी ओर बड़ी बड़ी पाल बांधकर जमीनको सपाट बनाकर खेतीके काममें लिया गया है। जमीनमें खाद देकर तथा फसलोंमें शास्त्रीय पद्धतिसे परिवर्तन करके भी जमीनको ज्यादा उपजाऊ बना लिया जाता है। नदियों और झरनोंके तेजीसे दौड़ते हुए प्रवाहसे पहाड़के दोनों ओरके भागोंको कटावसे बचानेके लिए वहां पेड़ लगाकर जंगल उगाये जाते हैं। इसके कारण पानीके बहावका जोर घटता है और भयंकर बाढ़ें नहीं आ पातीं। आज हम नदियोंमें जो भयंकर बाढ़ें आती सुनते हैं उसका कारण जंगलोंकी रक्षा करने और उनको लगानेकी पद्धतिमें कोई दोष मालूम होता है।

१० जंगली वनस्पति पर मेहनत करके मनुष्यने नये नये अनाज और नये नये फल उपजाये हैं। दुनियाके अलग अलग देशोंमें आज जो अनेक प्रकारके फलोंके पेड़ और अनाजके पौधे पाये जाते हैं वे सब उसी देशकी पैदावार हों ऐसा नहीं है। मनुष्यने जैसे स्वयं देश और स्थान बदला है वैसे ही उसने फलके पेड़ और अनाजके पौधोंमें भी देश और स्थान बदलवाया है। साथ ही जंगली दशामें रहनेवाले पशुओंकी नसल सुधारकर उन्हें मनुष्यने अधिक दूधवाले, अधिक मांसवाले, बोझ ढोनेकी अधिक शक्ति रखनेवाले और

दौड़नमें अधिक गतिवाले पशु बनाया है। हाथी ऊंट और घोड़का तो मनुष्यने लड़ाईकी भी तालीम दी है। फौजका सामान लादनेके लिए घाड़े और गधेकी नसलके मिश्रणसे मनुष्यने खच्चर पैदा किया है। टीपू सुलतानने अपनी तोपें खींचनेके लिए बलवान ऐक खास नसलके तैयार किये थे। सन्देश वाहकके रूपमें मनुष्यने कबूतरका उपयोग किया है। पहरा देनेमें मदद करनेके लिए कुत्तको तालीम देकर मनुष्यने उसे अपना साथी बनाया है और शिकारमें मदद करनेके लिए कुत्ते और बाजको तालीम दी है।

११ कुछ उद्योगोंके लिए यह जरूरी है कि हवामें एक खास मात्रामें गरमी और नमी हर समय बनी रहे। ऐसी युक्तियां खोजी गई हैं जिनसे बाहरकी हवामें कितनी ही गरमी या ठंडी क्यों न हो और उसमें दिनके अलग अलग हिस्सोंमें कितने ही परिवर्तन क्यों न हों फिर भी कारखानोंमें कृत्रिम ढंगसे निश्चित की हुई मात्रामें ही गरमी या नमी हर समय रह सकती है। इसी तरह सभागृहोंमें घरोंके कमरोंमें और रेलके डिब्बोंमें जैसी हवा चाहिये वैसी रखी जा सकती है। दूसरे महायुद्धमें तो आगकी तरह धधकते रेगिस्तानमें भी अन्दर बैठे हुए लोगोंके लिए ठंडी हवा बनाये रखनेवाले टैंकोंका उपयोग हुआ था।

१२ इस तरह प्रकृति पर कई तरहसे अधिकार जमाकर मनुष्यने आसपासकी प्रकृतिको अपने अनुकूल बनानेके लिए भगीरथ प्रयत्न किये हैं और ऐसा करके अपनी खुशहाली और प्रगति साधी है। फिर भी हम यह न भूलना चाहिये कि अंतमें तो कुदरतके सामने मनुष्यकी शक्तिकी कोई बिसात नहीं है। कुदरत जब रूठती है या कोप करती है — यानी जब बड़े बड़े भूकंप होते हैं बड़ी बड़ी बाढ़ें आती हैं पानीकी जगह जमीन और जमीनकी जगह पानी हो जाता है और भयंकर अकाल पड़ते हैं तब मनुष्य उनके सामने लाचार हो जाता है। इस तरह अयक्त क्षनमें भी अंतमें तो कुदरत ही स्वामिनी होती है।

१३ यहां हम संक्षेपमें यह बतायेंगे कि मनुष्य कुदरतके विभिन्न अंगोंका क्या क्या उपयोग करता है और उससे उसे क्या क्या मिलता है।

(१) जमीन खेती करके अनाज फल सागभाजी घासचारा और दूसरी चीजें। साथ ही ढोरोंकी चराईके लिए चरागाहोंका उपयोग।

(२) जंगल इमारती और जलाऊ लकड़ी तथा गोंद लाख राल रबर बांस वगैरा दूसरी पैदावार।

(३) खानें द्वारा कोयला तेल लोहा तथा तरह तरहकी दूसरी धातुएं।

(४) नदी और सरोवर प्रतिदिनके उपयोगका पानी खेतीके लिए पानी सींचना और नहरोंके द्वारा तथा जहां सुविधा हो वहां व्यापार या यात्राके लिए नावों द्वारा यातायात।

(५) झरने और जलप्रपात बिजली।

(६) समुद्रका किनारा अनुकूलता हो वहां बन्दरगाह मछलीमारी नारियल वगैराकी पैदावार।

(७) समुद्र समुद्री यात्रा और व्यापारके लिए। कुछ स्थानोंमें मोती और मूंगे निकाले जाते हैं। उसमें मगरमच्छ भी पकड़े जाते हैं।

(८) पहाड़ कुदरती तौर पर ही मनुष्यको अमुक सुविधायें और रक्षण देते हैं। वहां मनुष्यने तीर्थस्थान हवाखानेके स्थान और फौजी छावनियां भी बनाई हैं।

(९) वायुप्रवाह उनकी दिशा और समय जानकर मनुष्य उनका समुद्री व्यापार या यात्रामें उपयोग करता है।

(१०) पशुपक्षी इनसे मांस चमड़ा चर्बी ऊन बाल पंख दूध अंडे आदि वस्तुएं मनुष्यको मिलती हैं। इसके सिवा भार ढोने सवारी खेती द्वारा इनसे और शिकारमें भी मनुष्य इनका उपयोग करता है। शहदकी मक्खी जैसे कीड़ोंसे भी मनुष्य शहद और मोम लेता है। शहदकी मक्खियां पाली भी जाती हैं।

१४ इस तरह प्रकृतिने तो जगतको उदारतापूर्वक अपना भंडार हमारे लिए खोल दिया है। लेकिन यह खूब सोचने जैसा प्रश्न है कि मनुष्य उसमें से कितना लेता रहे और किस तरह लेता रहे। कुदरतसे हम अधिकसे अधिक कैसे ले सकते हैं इसकी आधुनिक विज्ञानने कई शैलियां खोज निकाली हैं और आज भी नई नई रीतियां खोजनेके पीछे वह पड़ा हुआ है। लेकिन अपने भण्डारमें से घटी हुई वस्तुकी पूर्ति करनेकी कुदरतमें जितनी शक्ति हो उससे अधिक उसमें से पानेके लिए कुदरतका उपयोग नहीं किया जा सकता, वरना उसकी लूट बन जायगी। और आजकल हम जिस तरह बिना सोचे विचारे कुदरतको लूट रहे हैं उससे कुदरतका भंडार भी खाली हो जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। उदाहरणके लिए जमीनमें बिल्कुल खाद न देकर हम फसल पैदा किया ही करें तो जमीनका कस बिल्कुल

दौड़नमें अधिक गतिवाले पशु बनाया है। हाथी ऊंट और घोड़ेको तो मनुष्यने लड़ाईकी भी तालीम दी है। फौजका सामान खींचनेके लिए घोड़े और गधेकी नस्लके मिश्रणसे मनुष्यने खच्चर पैदा किया है। टीपू सुल्तानने अपनी तोपें खींचनेके लिए बैलोंकी एक खास नसल तयार की थी। संदेश वाहकके रूपमें मनुष्यने कबूतरका उपयोग किया है। पहरा देनेमें मदद करनेके लिए कुत्तेको तालीम देकर मनुष्यने उसे अपना साथी बनाया है और शिकारमें मदद करनेके लिए कुत्ते और बाजको तालीम दी है।

११ कुछ उद्योगोंके लिए यह जरूरी है कि हवामें एक खास मात्रामें गरमी और नमी हर समय बनी रहे। ऐसी युक्तियां खोजी गई हैं जिनसे बाहरकी हवामें कितनी ही गरमी या ठंडी क्यों न हो और उनमें दिनके अलग अलग हिस्सोंमें कितने ही परिवर्तन क्यों न हों फिर भी कारखानामें कृत्रिम ढंगसे निश्चित की हुई मात्रामें ही गरमी या नमी हर समय रह सकती है। इसी तरह सभागृहोंमें घरके कमरोंमें और रेलके डिब्बोंमें जैसी हवा चाहिये वैसी रखी जा सकती है। दूसरे महायुद्धमें तो आगकी तरह धधकते रेगिस्तानमें भी अन्दर बैठे हुए लोगोंके लिए ठंडी हवा बनाये रखनेवाले टैंकोंका उपयोग हुआ था।

१२ इस तरह प्रकृति पर कई तरहसे अधिकार जमाकर मनुष्यने आसपासकी प्रकृतिको अपने अनुकूल बनानेके लिए भगीरथ प्रयत्न किये हैं और ऐसा करके अपनी खुशहाली और प्रगति साधी है। फिर भी हम यह न भूलना चाहिये कि अंतमें तो कुदरतके सामने मनुष्यकी शक्तिकी कोई बिसात नहीं है। कुदरत जब रूठती है या कोप करती है — यानी जब बड़े बड़े भूकंप होते हैं बड़ी बड़ी बाढ़ आती हैं पानीकी जगह जमीन और जमीनकी जगह पानी हो जाता है और भयंकर अकाल पड़ते हैं तब मनुष्य उनके सामने लाचार हो जाता है। इस तरह अर्थके क्षेत्रमें भी अंतमें तो कुदरत ही स्वामिनी होती है।

१३ यहां हम संक्षेपमें यह बतायेंगे कि मनुष्य कुदरतके विभिन्न अंगोंका क्या क्या उपयोग करता है और उससे उसे क्या क्या मिलता है।

(१) जमीन खेती करके अनाज फल सागभाजी घासचारा और दूसरी चीजें। साथ ही ढोरोंको चराईके लिए चरागाहोंका उपयोग।

(२) जंगल इमारती और जलाऊ लकड़ी तथा गोंद लाख राल रबर बांस वगैरा दूसरी पैदावार।

निकल जायगा और वह फसल देना बन्द कर देगी। इससे उलटे रासायनिक खादके द्वारा जमीनको बहुत अधिक उत्तेजित करके उसकी स्वाभाविक शक्तिसे अधिक फसल ले ली जाय तो भी जमीन थक जायगी और उसकी फसल देनेकी शक्ति घट जायगी। जंगलमें जितने पेड़ फिरसे उग सकें उससे अधिक यदि काट लिये जायं तो जंगल साफ हो जायगा। पृथ्वीके पेटमें तेलके कुएं हैं और कोयलेके ढ़ेर तथा दूसरे अनेक पदार्थोकी खानें हैं। वे कई युगकी कुदरती प्रक्रियाओंसे बनी होगी। ये चीजें हम अत्यधिक मात्रामें खानोंसे ले लें तो जल्दी या देरसे वे खतम हो जायगी। तेल और कोयलेके बारेमें तो यह डर पैदा भी हो गया है। प्रकृतिसे ये चीजें लेनेकी हमारी रीतें भी इतनी दोषयुक्त हैं कि हमारे हाथमें जितना आता है उससे कई गुना ज्यादा बिगाड़ होता है। साथ ही कुदरतसे हम जितना लेते हैं उसका सदुपयोग ही करते हों सो बात भी नहीं। उसका बड़ा हिस्सा तो हम व्यर्थके और गलत कामोंमें नष्ट कर डालते हैं। कुदरती साधन सम्पत्तिका उपयोग सारी मानव-जातिके लिए सुख-सुविधाकी वस्तुएं बनानेमें करनेके बजाय बहुत छोटे वर्गके भोग विलासकी और आरामकी चीजें बनानेमें होता है। द्वितीय महायुद्धमें कुदरती साधन-सम्पत्तिका हमने जो बिगाड़ किया है वह कुदरत पर मनुष्यकी तरफसे होनेवाले भयंकर अत्याचारका एक स्पष्ट और सचोट उदाहरण है। इसलिए कुदरतका उचित आवश्यक और समझदारी भरा उपयोग करनेमें ही सच्चा अर्थशास्त्र समाया हुआ है।

निकल जायगा और वह फसल देना बन्द कर देगी। इसके उलटे रासायनिक खादके द्वारा जमीनको बहुत अधिक उत्तेजित करके उसकी स्वाभाविक शक्तिसे अधिक फसल ली जाय तो भी जमीन थक जायगी और उसकी फसल देनेकी शक्ति घट जायगी। जंगलमें जितने पेड़ फिरसे उग सकें उससे अधिक यदि काट लिये जायं तो जंगल साफ हो जायगा। पृथ्वीके पेटमें तेलके कुएं हैं और कोयले, लोहे तथा दूसरे अनेक पदार्थोंकी खानें हैं। वे कई वर्षोंकी कुदरती प्रक्रियाओंसे बनी होंगी। ये चीजें हम अत्यधिक मात्रामें खानोंसे लें तो जल्दी या देरसे वे खतम हो जायंगी। तेल और कोयलेके बारेमें तो यह डर पैदा भी हो गया है। प्रकृतिसे ये चीजें लेनेकी हमारी रीतें भी इतनी दोषयुक्त हैं कि हमारे हाथमें जितना आता है उससे कई गुना ज्यादा बिगाड़ होता है। साथ ही कुदरतसे हम जितना लेते हैं उसका सदुपयोग ही करते हों सो बात भी नहीं। उसका बड़ा हिस्सा तो हम व्यर्थके और गन्दे कामोंमें नष्ट कर डालते हैं। कुदरती साधन-संपत्तिका उपयोग सारी मानव-जातिके लिए सुख-सुविधाकी वस्तुएं बनानेमें करनेके बजाय बहुत छोटे वर्गके भोग विलासकी और आरामकी चीजें बनानेमें होता है। द्वितीय महायुद्धमें कुदरती साधन-सम्पत्तिका हमने जो बिगाड़ किया है वह कुदरत पर मनुष्यकी तरफसे होनेवाले भयंकर अत्याचारका एक स्पष्ट और सचोट उदाहरण है। इसलिए कुदरतका उचित, आवश्यक और समझदारी भरा उपयोग करनेमें ही सच्चा अर्थशास्त्र समाया हुआ है।

दुनियामें लगभग सब जगह देखी जाती है। कुछ लोग मानते हैं उस प्रकार मनुष्यकी कामनाओंका और उनकी तृप्तिके लिए किये जानेवाले श्रमका विकास एक विशेष तर्कनिर्णीत क्रमसे नहीं हुआ है — अर्थात् पहले अपनी मुख्य आवश्यकताओंकी चीजें जुटानेके लिए उद्योग करना फिर सुविधाएं और आरामकी चीजें प्राप्त करनेके लिए उद्योग करना और फिर शृंगार मौज-शौक और सुख-चैनकी चीजोंके लिए उद्योग करना — इस प्रकार नहीं हुआ है। ये सब बातें साथ साथ होती चली आ रही हैं।

५ इस प्रकार श्रम या उद्योग मूलतः कोई ऐसी चीज नहीं जो अनावश्यक या अच्छी न लगनेवाली हो। फिर भी आजके समाजमें ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसके कारण लोगोंमें मेहनत मजदूरीके बारेमें काम करनेके बारेमें अरुचि पाई जाती है। मनुष्य जब कोई काम अपनी इच्छासे शौकसे या उत्साहसे करता है तब उसे करनेसे वह ऊबता नहीं। परन्तु जब वही काम उसे इच्छा न होने पर भी मजबूरीसे करना पड़ता है तब वह ऊब जाता है। मजबूरीका अर्थ इतना ही नहीं कि कोई डंडा लेकर हमारे पास खड़ा रहे और जबरदस्ती हमसे काम करावे। हम कोई काम पसन्द न हो और दूसरा काम करनेको हम तैयार हों परन्तु परिस्थितियां ऐसी हों कि हम अच्छा न लगनेवाला काम यदि न करें तो हम या हमारे आश्रितोंको भोजन न मिले तो उस स्थितिमें भी काम करनेमें मजबूरी ही मानी जायगी। इसके सिवा मनुष्यको अपने श्रमका पूरा फल न मिलता हो और उसे दूसरा कोई ले जाता हो और परिस्थितियां ऐसी हों कि दूसरेको उससे वह रोक भी न सकता हो तब भी उस कामके करनेमें मनुष्यको रस या आनन्द नहीं आता। कामका हेतु अथवा उद्देश्य जाने या समझे बिना काम करनेमें भी आनंद नहीं आता। ज्ञानपूर्वक कोई काम करनेमें अधिक रस आता है। इसके सिवा जब मनुष्यको शक्तिसे बाहर काम करना पड़ता है तब भी वह कामसे थक ऊब जाता है। आजकल किसान और मजदूर वर्गोंमें लोगोंको ठंडी आहें भरते हुए मजबूरन काम करते जो देखा जाता है उसके कारण ढूंढें जायं तो उनमें मजबूरी शक्तिसे बाहर काम और मेहनतका फल दूसरों द्वारा भोगा जाना ये तीनों कारण मिलेंगे। यदि प्रत्येक मनुष्यको अपनी शक्ति या वृत्तिके अनुसार ही स्वेच्छासे काम करनेको मिले और वह काम करते हुए शरीरकी जितनी हानि होती हो उसे पूरा करनेके लिए कामके बदलेमें पर्याप्त कमाई हो जाय तो आज कामके लिए जो अरुचि देखनेमें आती है वह न रहे। कुछ

३ मानव उद्योगके मूलमें रहे शरीर-व्यापारोंकी जांच करें तो एक बहुत बड़ी महत्वकी बात हमारे ध्यानमें एकदम आ जाती है। जीवनके धारण-पोषणके लिए जो शरीर-व्यापार जरूरी हैं उन सबके साथ प्रकृतिने शारीरिक या शारीरिक और मानसिक दोनों तरहका विशेष आनन्द अथवा रस स्पष्ट रूपमें जोड़ दिया है। मेहनत करना पशु पालना रहनेका मकान बनाना खाना-पीना पहनना-ओढ़ना संतान पैदा करना संतानकी रक्षा करना और उसका पालन-पोषण करना तथा इन कामोंमें बाधा पहुंचानेवाले आक्रमणोंका सामना करना — ये सब प्रवृत्तियां जीवनके लिए आवश्यक हैं। इनके बिना व्यक्ति-शरीरका और समाज-शरीरका धारण-पोषण हो ही नहीं सकता। इन सब कामोंमें इतना रस या आनन्द भरा है मानो उन्हें करनेके लिए कुदरतने उनमें प्रलोभन रख दिया हो। साथ ही इन सब प्रवृत्तियोंमें श्रम या उद्योगके तत्त्वके साथ मनोरंजन और कलाके तत्त्व जैसे नाच गान और शृंगार आदि भी जुड़े हुए हैं। ये प्रवृत्तियां प्राणीमात्रमें पाई जाती हैं। मनुष्यके सिवा दूसरे प्राणी ये प्रवृत्तियां ज्ञानपूर्वक नहीं करते। चींटी शहदकी मक्खी या दीमकका जीवन देखें तो अपनी समस्त जातिके धारण-पोषण और विकासके लिए उस जातिका प्रत्येक जीव जो कुछ करता है और जरूरत पड़ने पर मरने तकके लिए तैयार रहता है वह आश्चर्यजनक है। उसमें बड़ी दूरदर्शी भी भरी होती है। फिर भी इन सबमें ज्ञानका तत्त्व बहुत थोड़ा होनेके कारण उनकी सारी प्रवृत्तियां और कार्य-विभाजन एक निश्चित प्रकारका ही होता है। उनमें व्यक्तिगत विशेषता बहुत कम पाई जाती है। मनुष्यकी प्रवृत्तियोंमें जैसे जैसे ज्ञान और बुद्धि अधिक भाग लेते हैं वैसे वैसे उसमें अपने व्यक्तित्वका भान अधिकाधिक जागृत होता है। इसमें से विशेष और विविध प्रकारकी कामनायें या आवश्यकतायें उत्पन्न होती हैं। इन विशेष कामनाओंने ही मनुष्यको नए नए उद्योग खोजने और करनेकी प्रेरणा दी है। इसके सिवा दूरके उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिए अपने वर्तमान सुखोपभोग पर ज्ञानपूर्वक नियंत्रण रखनेकी तैयारीमें मनुष्यकी आर्थिक प्रगतिका बीज निहित है। यदि मनुष्य जितना उत्पन्न करता गया उतना ही तुरन्त खर्च भी करता गया होता तो आज उसने अर्थ अथवा सम्पत्तिके विषयमें जितनी प्रगति की है उतनी वह न कर सका होता।

४ अलग अलग तरहके काम या श्रमके साथ साथ रसदायक तथा मनोरंजक प्रवृत्ति करनेकी प्रथा बहुत प्राचीन समयसे पायी जाती है। अकेले या मिलकर काम करते समय गानेकी या तालके साथ काम करनेकी प्रथा

दुनियामें लगभग सब जगह देखी जाती है। कुछ लोग मानते हैं उस प्रकार मनुष्यकी कामनाओंकी और उनकी तृप्तिके लिए किये जानेवाले श्रमका विकास एक विशेष तर्कनिर्णीत क्रमसे नहीं हुआ है—अर्थात् पहले अपनी मुख्य आवश्यकताओंकी चीजें जुटानेके लिए उद्योग करना, फिर सुविधाएं और आरामकी चीजें प्राप्त करनेके लिए उद्योग करना और फिर शृंगार, मौज-शौक और सुख-चैनकी चीजोंके लिए उद्योग करना—इस प्रकार नहीं हुआ है। ये सब बातें साथ साथ होती चली आ रही हैं।

५ इस प्रकार श्रम या उद्योग मूलतः कोई ऐसी चीज नहीं जो कष्टदायक या अरुचि न लगनेवाली हो। फिर भी आजके समाजमें ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसके कारण लोगोंमें मेहनत-मजदूरीके बारेमें काम करनेके बारेमें अरुचि पाई जाती है। मनुष्य जब कोई काम अपनी इच्छासे शौकसे या उत्साहसे करता है तब उसके करनेसे वह ऊबता नहीं। परन्तु जब वही काम उसे इच्छा न होने पर भी मजबूरीसे करना पड़ता है तब वह ऊब जाता है। मजबूरीका अर्थ इतना ही नहीं कि कोई डंडा लेकर हमारे पास खड़ा रहे और जबरदस्ती हमसे काम करावे। हमें कोई काम पसन्द न हो और दूसरा काम करनेको हम तैयार हों परन्तु परिस्थितियां ऐसी हों कि हम अरुचि न लगनेवाला काम यदि न करें तो हमें या हमारे आश्रितोंको भोजन न मिले तो उस स्थितिमें भी काम करनेमें मजबूरी ही मानी जायगी। इसके सिवा मनुष्यको अपने श्रमका पूरा फल न मिलता हो और उसे दूसरा कोई ले जाता हो और परिस्थितियां ऐसी हों कि दूसरेको खानेसे वह रोक भी न सकता हो तब भी उस कामके करनेमें मनुष्यको रस या आनन्द नहीं आता। कामका हेतु अथवा उद्देश्य जाने या समझे बिना काम करनेमें भी आनन्द नहीं आता। ज्ञानपूर्वक कोई काम करनेमें अधिक रस आता है। इसके सिवा, जब मनुष्यको बूतेसे बाहर काम करना पड़ता है तब भी वह कामसे झट ऊब जाता है। आजकल किसान और मजदूर वर्गोंमें लोगोंको ठंडी आहें भरते हुए मजबूरन काम करते जो देखा जाता है उसके कारण ढूंढे जायं तो उनमें मजबूरी, बूतेसे बाहर काम और मेहनतका फल दूसरों द्वारा भोगा जाना, ये तीनों कारण मिलेंगे। यदि प्रत्येक मनुष्यको अपनी शक्ति या रुचिके अनुसार ही स्वेच्छासे काम करनेको मिले और वह काम करते हुए शरीरकी जितनी हानि होती हो उसे पूरा करनेके लिए कामके बदलेमें पर्याप्त कमाई हो जाय तो आज कामके लिए जो अरुचि देखनेमें आती है वह न रहे। कुछ

३ मानव उद्योगके मूलमें रहे शरीर-व्यापारोंकी जाँच करें तो एक बहुत बड़ी महत्त्वकी बात हमारे ध्यानमें एकदम आ जाती है। जीवनके धारण-पोषणके लिए जो शरीर-व्यापार जरूरी हैं उन सबके साथ प्रकृतिने शारीरिक या शारीरिक और मानसिक दोनों तरहका विशेष आनन्द अथवा रस स्पष्ट रूपमें जोड़ दिया है। मेहनत करना, पशु पालना, रहनेका मकान बनाना, खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, संतान पैदा करना, संतानकी रक्षा करना और उसका पालन-पोषण करना तथा इन कामोंमें बाधा पहुँचानेवाले आक्रमणोंका सामना करना — ये सब प्रवृत्तियाँ जीवनके लिए आवश्यक हैं। इनके बिना व्यक्ति-शरीरका और समाज-शरीरका धारण-पोषण हो ही नहीं सकता। इन सब कामोंमें इतना रस या आनन्द भरा है मानो उन्हें करनेके लिए कुदरतने उनमें प्रलोभन रख दिया हो। साथ ही इन सब प्रवृत्तियोंमें श्रम या उद्योगके तत्त्वके साथ मनोरंजन और कलाके तत्त्व जैसे नाच, गान और शृंगार आदि भी जुड़े हुए हैं। ये प्रवृत्तियाँ प्राणीमात्रमें पाई जाती हैं। मनुष्यके सिवा दूसरे प्राणी ये प्रवृत्तियाँ ज्ञानपूर्वक नहीं करते। चींटी, शहदकी मक्खी या दीमकका जीवन देखें तो अपनी समस्त जातिके धारण-पोषण और विकासके लिए उस जातिका प्रत्येक जीव जो कुछ करता है और जरूरत पड़ने पर मरने तकके लिए तैयार रहता है, वह आश्चर्यजनक है। उसमें बड़ी दूरदेशी भी भरी होती है। फिर भी इन सबमें ज्ञानका तत्त्व बहुत थोड़ा होनेके कारण उनकी सारी प्रवृत्तियाँ और कार्य-विभाजन एक निश्चित प्रकारका ही होता है। उनमें व्यक्तिगत विशेषता बहुत कम पाई जाती है। मनुष्यकी प्रवृत्तियोंमें जैसे जैसे ज्ञान और बुद्धि अधिक भाग लेते हैं वैसे वैसे उसमें अपने व्यक्तित्वका भान अधिकाधिक जाग्रत होता है। इसमें से विशेष और विविध प्रकारकी कामनायें या आवश्यकतायें उत्पन्न होती हैं। इन विशेष कामनाओंने ही मनुष्यको नए नए उद्योग खोजने और करनेकी प्रेरणा दी है। इसके सिवा दूरके उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिए अपने वर्तमान सुखोपभोग पर ज्ञानपूर्वक नियंत्रण रखनेकी तैयारीमें मनुष्यकी आर्थिक प्रगतिका बीज निहित है। यदि मनुष्य जितना उत्पन्न करता गया उतना ही तुरंत खर्च भी करता गया होता, तो आज उसने अर्थ अथवा सम्पत्तिके विषयमें जितनी प्रगति की है उतनी वह न कर सका होता।

४ अलग अलग तरहके काम या श्रमके साथ साथ रसदायक तथा मनोरंजक प्रवृत्ति करनेकी प्रथा बहुत प्राचीन समयसे पायी जाती है। अकेले या मिलकर काम करते समय गानेकी या तालके साथ काम करनेकी प्रथा

दुनियामें लगभग सब जगह देखा जाती है। कुछ लोग मानते हैं उस प्रकार मनुष्यकी कामनाओंका और उनकी तृप्तिके लिए किये जानेवाले श्रमका विकास एक विशेष तर्कानुकूल क्रमसे नहीं हुआ है — अर्थात पहले अपनी मुख्य आवश्यकताओंकी चीजें जुटानेके लिए उद्योग करना फिर सुविधाएं और आरामकी चीजें प्राप्त करनेके लिए उद्योग करना और फिर शृंगार मौजशौक और सुख-चैनकी चीजोंके लिए उद्योग करना — इस प्रकार नहीं हुआ है। ये सब बातें साथ साथ होती चली आ रही हैं।

५ इस प्रकार श्रम या उद्योग मूलतः कोई ऐसी चीज नहीं जो अनावश्यक या अरुचि न लगनेवाली हो। फिर भी आज समाजमें ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसके कारण लोगोंमें सम्पन्न मजदूरीके बारेमें काम करनेके बारेमें अरुचि पाई जाती है। मनुष्य जब कोई काम अपनी इच्छासे शौकसे या उत्साहसे करता है तब उसे करनेमें वह ऊबता नहीं। परन्तु जब वही काम उसे इच्छा न होने पर भी मजबूरीसे करना पड़ता है तब वह ऊब जाता है। मजबूरीका अर्थ इतना ही नहीं कि कोई बड़ा लश्कर हमारे पास खड़ा रहे और जबरदस्ती हमसे काम कराये। हमें कोई काम पसन्द न हो और दूसरा काम करनेको हम तैयार हों परन्तु परिस्थितियां ऐसी हों कि हम अच्छा न लगनेवाला काम यदि न करें तो हमें या हमारे आश्रितोंको भोजन न मिले, तो उस स्थितिमें भी काम करनेमें मजबूरी ही मानी जायगी। इसके सिवा, मनुष्यको अपने श्रमका पूरा फल न मिलता हो और उसे दूसरा कोई खा जाता हो और परिस्थितियां ऐसी हों कि दूसरेको खानेसे वह रोक भी न सकता हो तब भी उस कामके करनेमें मनुष्यको रस या आनंद नहीं आता। कामका हेतु अथवा उद्देश्य जाने या समझे बिना काम करनेमें भी आनन्द नहीं आता। शक्तिपूर्वक कोई काम करनेमें अधिक रस आता है। इसके सिवा जब मनुष्यको शक्तिसे बाहर काम करना पड़ता है तब भी वह कामसे झट ऊब जाता है। आजकल किसान और मजदूर वर्गोंमें लोगोंको ऊँची आह भरते हुए मजदूरीका काम करते जो देखा जाता है उसके कारण ढूंढे जाय तो उनमें मजबूरी, शक्तिसे बाहर काम और मेहनतका फल दूसरों द्वारा खाया जाना ये तीनों कारण मिलेंगे। यदि प्रत्येक मनुष्यको अपनी शक्ति या बूतेके अनुसार ही रुचिपूर्वक काम करनेको मिले और वह काम करते हुए शरीरकी जितनी हानि होती हो उसे पूरा करनेके लिए कामके बदलेमें पर्याप्त कमाई हो जाय तो आज कामके लिए जो अरुचि दिखनेमें आती है वह न रहे। कुछ

काम समाजके लिए अत्यंत उपयोगी और समाजके सुख-स्वास्थ्यके लिए अनिवार्य होते हुए भी कम प्रतिष्ठित माने जाते हैं। इतना ही नहीं, भंगी जैसोंके काम तो घृणाके लायक भी समझे जाते हैं। और समाजने इन कामोंके करनेवालोंका सदा अपमान और तिरस्कार किया है। ऐसे कामोंका पारिश्रमिक भी बहुत थोड़ा मिलता है। लेकिन कुछ काम ऐसे हैं जो समाजके लिए बहुत कम उपयोगी होते हुए भी प्रतिष्ठित माने जाते हैं और उनमें पारिश्रमिक भी बहुत भारी मिलता है। इस कारणसे भी समाजमें कामके प्रति और खास तौर पर मेहनत मजदूरीके कामके प्रति अरुचि पैदा हो गई है। श्रमके फलको भोगता या श्रम करनेवाले पर केवल निगरानी रखनेका अथवा मार्ग-सूचनका काम करता है तब उसके इस काममें किसी प्रकारकी कठोरता न हो तो भी वह श्रमके विषयमें लघुता या हीनताकी भावना उत्पन्न करता है। यदि भोक्ता श्रम करनेवालेके साथ ही लगातार काम करे तो श्रम करनेवालेमें ऐसा भावना उत्पन्न न हो। यदि हम बुद्धिकी प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे तो श्रमकी अप्रतिष्ठाका संस्कार जरूर उत्पन्न होगा।

६ किसी भी तरहके परिवर्तनके बिना लंबे समय तक एक ही काम करते रहनेसे भी मनुष्य उस कामसे ऊब जाता है और उसके स्वास्थ्य पर ज्यादा बुरा असर पड़ता है। चीजोंके उत्पादनमें मशीनोंका उपयोग जैसे जैसे बढ़ता जाता है वैसे वैसे अधिकांश मजदूर वर्गको एक ही तरहका काम लगातार और लम्बे समय तक करना पड़ता है। कारखानेमें मशीन पर काम करनेवालेको सारे दिन अमुक ढंगसे मशीन चलाते ही रहना पड़ता है या चलती मशीनमें कहीं कुछ गड़बड़ पैदा न हो जाय इसकी सावधानी रखते हुए खड़े रहना पड़ता है। इसमें उसे कोई विशेष कुशलता काममें नहीं लेनी पड़ती, विचार नहीं करना होता और न काममें कोई परिवर्तन करना होता है। इसके विपरीत हाथके औजारोंसे काम करनेवाले कारीगरको अपनी कुशलताका उपयोग करनेकी काफी गुंजाइश रहती है। इसके सिवा चीजकी बनावटमें आरंभसे अंत तककी सारी क्रियाएं उसीको करनी होती हैं, इसलिए उसकी सारी योजना उसीको बनानी पड़ती है। अलग अलग क्रियाएं करनेमें उसके काममें परिवर्तन भी होता रहता है और अंतमें तैयार हुई चीजके रूपमें उसे अपने श्रम और कुशलताका फल देखनेका संतोष और आनंद भी मिलता है।

७ कारकुनी या मुनीमगिरीके काममें भी एकको एक बातको नोंध करते रहना और शाम होने पर उसके आय-व्ययका हिसाब मिला देना पड़ता है।

इससे मनुष्य ऊब जाता है और उसके स्वास्थ्य पर ज्यादा बुरा असर होता है। काम जब एक ही प्रकारका होता है तब मनुष्यके एक ही अंगको या एक ही प्रकारकी शक्तिको अधिक काम मिलता है और दूसरे अंगोंको तथा दूसरी शक्तियोंको निष्क्रिय रहना पड़ता है। एक ओर जिस अंग या शक्ति पर अधिक श्रम पड़ता है उसकी अधिक घिसाई होनेसे उसे हानि पहुंचती है तो दूसरी ओर दूसरे अंगों और शक्तियोंके निष्क्रिय रहनेसे उन्हें हानि पहुंचती है। इस तरह किसी भी मनुष्यको सारे दिन लगातार एक ही काम करना पड़े तो उसे हानि पहुंचती है और उससे वह ऊब भी जाता है।

८ मनुष्यके सब अंगों और सारी शक्तियोंको पूरा काम मिले — अर्थात् जितना आवश्यक है उससे न तो कम और न ज्यादा — तो मनुष्यके स्वास्थ्यको कमसे कम हानि पहुंचे और कुल मिलाकर काम भी अधिक हो। कम श्रमका काम भी जब तक थकावट न आ जाय तब तक उतने समय करना अच्छा लगता है। इसलिए थोड़े समयमें बड़े परिश्रमका काम हो फिर हलका परन्तु घरके बाहर धूपमें करनेका काम हो फिर छायामें बैठकर करनेका काम हो, अमुक समय अपने शौकका ही कोई विशेष काम हो, अमुक समय समाजके लोगोंके साथ रहकर बिताना हो, एक समय नया ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हो, दूसरा समय खेलकूद या गाना बिनानेका हो — इस तरह सारे दिनके कामका ऐसा विभाजन हो कि उसमें शरीर और बुद्धिको जितना चाहिये उतना ही श्रम करना पड़े और जल्दी आराम भी मिल जाय तो अधिकसे अधिक काम हो, अधिकसे अधिक सुविधा मिले, मनुष्यका अधिकसे अधिक विकास हो और व्यक्ति तथा समाज दोनोंको सुख-संतोष भी अधिकसे अधिक मिले।

इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्यका सारा श्रम-योग्य समय उसकी निजी आवश्यकतायें पूरी करनेमें नहीं बीतना चाहिये। उसे फुरसत मिलनी चाहिये और आवश्यकतासे अधिक उत्पादन होना चाहिये — अर्थात् उसका परिग्रह शक्ति बनना चाहिये।

३

उत्पादक और अनुत्पादक श्रम

१ अर्थशास्त्रमें उत्पादक श्रम और अनुत्पादक श्रम ऐसे श्रमके दो भाग किये जाते हैं। जिस श्रमके फलस्वरूप किसी भी नई वस्तुका उत्पादन हो वही उत्पादक श्रम है ऐसा मान कर प्राचीन अर्थशास्त्री केवल खेतीको ही उत्पादक श्रम मानते थे। किसान जमीनको साफ करके और जोतकर उसमें एक दाना डालता है और अनेक दाने उत्पन्न करता है इसलिए उसका ही श्रम सच्चा उत्पादक श्रम है। आगे चलकर किसानके साथ पशुपालकका श्रम भी उत्पादक माना जाने लगा। परन्तु जुलाहे सुनार लुहार आदि लोग यद्यपि अलग अलग वस्तुएं तैयार करते हैं फिर भी वे मूल वस्तुका आकार बदलनेका ही काम करते हैं किसान या पशुपालककी तरह वे एक वस्तुसे अनेक वस्तुएं नहीं बना सकते इसलिए उन लोगोंका श्रम उत्पादक नहीं माना जाता था। परन्तु इस बारेमें ज्यों ज्यों गहरा विचार होता गया त्यों त्यों समझमें आता गया कि मूल वस्तु जिस कच्चे रूपमें होती है उस पर श्रम करके ये लोग मनुष्यके उपयोगमें आने लायक विभिन्न रूप उसे न दें तो मूल वस्तु अधिकतर बेकार ही पड़ी रहे। इन लोगोंके श्रमसे ही मनुष्यकी अमुक आवश्यकतायें पूरी होती हैं और उसे सुख सुविधा मिलती है इसलिए उनका श्रम भी उत्पादक श्रम माना जाना चाहिये। वस तो हम यह मानते हैं कि किसान एक दानेमें से अनेक दाने उत्पन्न करता है लेकिन उसे भी बीज बो देनेके बाद तो धूप और बरसात पर ही आधार रखना पड़ता है। इसके सिवा वैज्ञानिक दृष्टिसे देखें तो एक कणमें से जो अनेक कण उत्पन्न होते हैं वे हवा पानी धूप जमीनका रस आदि पदार्थोंके भीतर रहे अनेक तत्त्वोंका ही रूपान्तर होकर अनेक कण बनते हैं। इस तरह विचार करते करते अर्थशास्त्री यहां तक पहुंचे कि जिस श्रमके परिणामस्वरूप कोई भी स्थूल या दृश्य पदार्थ उत्पन्न हो और वह मनुष्यके लिए उपयोगी हो उस श्रमको उत्पादक श्रम मानना चाहिये। इस तरह किसानके साथ कपास ओटनेवाले रुई पीजनेवाले पूनिया कातनेवाले सूतका कपड़ा बुननेवाले पेड़ काटनेवाले लकड़ी चीरनेवाले सुतार लुहार आदि सब लोग उत्पादक श्रम करनेवाले माने गये। फिर यह विचार उत्पन्न हुआ कि खेतमें पके हुए अनाजको सिर पर रखकर गाड़ीमें भरकर

या दूसरे साधना द्वारा जिन्हें उनकी जरूरत हो उन लोगोंके घर तक पहुचानेवालेका श्रमको क्या समझा जाय? पेड कटनेके बाद उसका लकडी सुनारके यहा पहुचे तभी तो वह उसे छील कर चीर कर और काटकर उससे अलग अलग चीजें बनाता है। और तैयार हुई चीजोंको स्वय बनाने वाला या दूसरा आदमी उनका उपयोग करनेवालेके घर पहुचाता है तभी तो वे उपयोगमें आती है। इस तरह जैसे अधिकतर कच्चा माल उसका रूपान्तर होने पर उपयोगमें आने लायक बनता है वैसे ही कच्चे या तैयार मालको एक जगहसे दूसरी जगह जहा उसकी आवश्यकता हो वहा ले जाने पर अर्थात उसका स्थानान्तर होने पर ही वह उपयोगमें आता है। इस तरह अगर उनका स्थानान्तर न किया जाय तो अनाज खेतमें पडा पडा सड जाय। मान लीजिये कि कुछ वस्तुओंका उपयोग वहीं होता है जहा वे पकती है तो भी आवश्यकतासे अधिक वस्तुए तो बेकार ही पडी रहती न? इसी तरह जो वस्तुए जिस स्थान पर न बनती हो उस स्थान पर वे दूसरे स्थानसे लाई न जाय तो वहाके लोगोको वे उपयोगके लिए मिलें ही नहीं। इस तरह यह बात आसानीसे समझमें आ सकती है कि स्थानान्तर करनेवालोंका श्रम भी आवश्यक और उपयोगी है। इसलिए अर्थशास्त्रियोंने उसे भी उत्पादक श्रममें स्थान दिया। भाप बिजली आदि भौतिक शक्तियोंको मनुष्यके उपयोगमें लानेकी खोज हुई और उनके कारण माल बनानेके बडे बडे कारखाने खडे हुए। इससे दुनियाकी अर्थ-व्यवस्थामें भारी क्रांति हुई। परन्तु उस शक्तिके उपयोगसे रेल जहाज मोटर आदि वाहनोंकी जो व्यवस्था हुई उसने और सन्देश भेजनेके लिए तार टेलीफोन और बेतारके तारकी जो खोज हुई उसने इन कारखानोंसे भी अधिक बडी क्रांति की है। आज दुनियामें देश और काल कोई रुकावट नहीं डालता और हर किसी देशके लोग अलग अलग देशोंमें तैयार हुआ माल उपयोगमें ला पाते हैं तथा अलग अलग देशोंके लोगोंके साथ बात करते देखे जाते हैं। परन्तु इन साधनोंका लाभ थोडे ही लोग उठा सकते हैं। और देशके कोने कोनेसे धन-सम्पत्ति खिच कर बडे शहरोंमें इन थोडेसे लोगोंके हाथमें इकट्ठी होने लगी है। कुछ चीजें तो एक स्थानसे दूसरे स्थान पर व्यर्थ ही ले जाई जाती है। इसलिए यह एक सोचने जैसा प्रश्न है कि कुल मिलाकर सारी मनुष्य जाति इन सुविधाओंसे सुखी हुई है या नहीं।

२ स्थानान्तर करनेका यानी यातायातकी व्यवस्था करनेवालोंका काम उत्पादक श्रममें मान लिया जाय, तो उसके साथ ही व्यापार और दुकानदारी

करनेवालोंके कामका प्रश्न पैदा होता है। ठेठ प्राथमिक अवस्थामें छोटे छोटे समाज अपनी आवश्यकताकी सारी वस्तुएं स्वयं ही तैयार कर लेते थे इस लिए दुकानदारों और व्यापारियोंकी जरूरत नहीं पड़ती थी। लेकिन आज तो शायद ही कोई ऐसा समाज होगा जहां दुकानदार या व्यापारीके बिना काम चल सके। किसी गांव या किसी प्रदेशमें कौन कौनसा माल कितनी मात्रामें चाहिये इसका अन्दाज लगाकर उतना माल व्यापारी वहां मंगानेकी व्यवस्था करता है। थोक माल मंगानेवाला व्यापारी फुटकर दुकानदारको वह माल बेचता है और उसके यहांसे मालका उपयोग करनेवाले ग्राहक जब जरूरत हो तब और जितना जरूरी हो उतना माल खरीद लेते हैं। यातायातके काममें बड़ी बड़ी जहाजी और रेलवे कंपनियोंसे लेकर छोटे समुद्री व्यापारी मोटरवाले गाडीवाले और ऊंट गधा तथा पशु पर माल लादनेवाले जानवर बंजारे वगैरा बहुत लोग लगे होते हैं। इसी तरह व्यापारके काममें भी थोक व्यापारी फुटकर दुकानदार मालकी खरीद और बिक्री करनेवाले आढ़तिये दलाल मालका रुपया एक जगहसे दूसरी जगह पहुंचानेकी व्यवस्था करनेवाली सराफी पेढ़ियां और बैंक तथा मालका बीमा करनेवाली बीमा कंपनियां — सभी आ जाते हैं। दुनियाके आजकलके अर्थव्यवहारमें ये सब साधन और इन सब साधनोंके संचालक बहुत बड़ा काम करते हैं। इसलिए इनका श्रम भी उत्पादक श्रम माना गया है।

४ फिर यह प्रश्न उठा कि शिक्षक धर्मोपदेशक न्यायाधीश वकील और डाक्टर आदि लोग जो श्रम करते हैं उसे उत्पादक श्रम माना जाय या नहीं? वे अपने धंधोंको संस्कारपोषक धंधे (Liberal Profession) कहते हैं। और उनका यह दावा है कि अपने कार्य तथा कुशलतासे वे समाजके लिए इतने उपयोगी बन जाते हैं कि उनके बिना समाजको संस्कारोंका पोषण नहीं मिल सकता और समाजका तंत्र भी अच्छी तरह नहीं चल सकता। यद्यपि ये लोग कोई माल नहीं बनाते और न ग्राहकके घर माल पहुंचानेका काम ही करते हैं लेकिन उनका यह दावा है कि उनकी सेवाओंसे समाजके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा होती है। शिक्षक कहते हैं कि हम लोगोंको शिक्षा देकर नीतिपरायण संस्कारी और कार्यकुशल बनाते हैं। इसी कारणसे आपका अर्थव्यवहार सरलता और कुशलताके साथ चलता है। इसके सिवा विद्या पढ़कर होशियार बने हुए लोग उत्पादनके साधनोंमें सुधार कर सकते हैं और नये नये साधन भी बना सकते हैं। इसलिए यद्यपि हम माल पैदा करनेका सीधा काम नहीं करते तो भी हमारी सेवासे समाजकी

सम्पत्तिमें वृद्धि होती है। वकील और न्यायाधीश कहते हैं कि मनुष्य मनुष्यके बीचके व्यवहारमें पैदा होनेवाले झगड़े निपटानेका काम हम करते हैं, इसीलिए समाजमें सफाई और दृढ़ता कायम रहती है। धर्मोपदेशक कहते हैं कि हम उपदेश देकर लोगोंको नीतिके मार्ग पर टिकाये रखते हैं, इसलिए समाजका व्यवहार शांतिसे चलता है। डॉक्टर कहते हैं कि लोगोंके स्वास्थ्यकी रक्षामें हम मदद करते हैं, इससे लोग अपना काम ज्यादा अच्छी तरहसे कर सकते हैं और सुखी रहते हैं। इसी प्रकार साहित्य संगीत और कलाकी सामग्री देनेवाले कवि, साहित्यकार, संगीतज्ञ, नर्तक, नट, चित्रकार और शिल्पी सब कोई कहते हैं कि हमारा श्रम भी उत्पादक माना जाना चाहिये। कारण हृदयमें ऊंचे भावोंके उद्दीपनसे जो शुद्ध और संस्कारी आनंद मिलता है, उससे मानव-जीवन समृद्ध होता है और समाजमें सुखकी मात्रा बढ़ती है। इसी तरह पुलिस, फौज और दूसरे विभागोंमें काम करनेवाले सरकारी नौकर यह दावा करते हैं कि हमारे श्रमके बिना लोगोंके जान-मालकी सलामती नहीं रह सकती, किसी प्रकारकी सुव्यवस्था नहीं रह सकती और समाजमें अंधाधुंधी फैल जायगी। जिस हद तक इन सब धंधोंके लोगोंका और सरकारी नौकरोंका दावा सच्चा है और जिस हद तक वे सच्चाईके साथ अपना काम करते हैं, उस हद तक उनके श्रमको अवश्य उत्पादक श्रम मानना चाहिये। क्योंकि समाजकी सुव्यवस्था, लोगोंका आरोग्य और समृद्धि, नीति-नियमोंका पालन, न्यायकी व्यवस्था, साहित्य और शिक्षाके द्वारा ज्ञान और संस्कारिताकी अभिवृद्धि तथा मनुष्यकी सूक्ष्म शक्तियोंका विकास — ये सब बातें खान-पान और पहनने-ओढ़नेके साधनों जितनी ही समाजके लिए जरूरी हैं। और जैसे मनुष्यके लिए उपयोगी स्थूल पदार्थोंको हम धन या संपत्ति मानते हैं, वैसे ही मनुष्यके लिए उपयोगी इन सेवाओंको भी धन या संपत्ति मानना चाहिये।

४. अब रहा घरका काम करनेवाले नौकरोंका वर्ग। इन लोगोंके श्रमको उत्पादक श्रम माननेके विषयमें काफी मतभेद है। यह तो समझमें आ सकता है कि कोई मनुष्य अपंग हो, बीमार हो और कमजोर हो तब उसका व्यक्तिगत और घरका काम दूसरा कोई कर दे। या कोई मनुष्य दूसरे कामोंमें इतना अधिक फंसा रहता हो कि उसके पास घरके काम करनेका समय ही न बचता हो और वह अपना सारा समय अधिक महत्त्वके और लोकोपयोगी कार्योंमें लगाता हो, तब उसके व्यक्तिगत काम उसके साथी श्रमसे कर दें यह भी समझमें आ सकता है। ऐसे मनुष्योंका

काम कर देनवाले मनुष्योके कामके लिए समाजकी श्रम-व्यवस्थामें स्थान है। परन्तु जो लोग अमीरीका बडप्पन दिखानके लिए या अपने आलस्यको बढानके लिए ही अपने कामका भार दूसरो पर डाल्त ह वे तो समाजकी अर्थ-व्यवस्थाको और समानताको भावनाको हानि ही पहुचाते हैं। इस दृष्टिसे व्यक्तिगत और घरेलू काम करनवाले नौकरोके श्रमकी जाच करें तो ऐसे नौकर बहुत थोडे निकलेंगे जिनका श्रम उत्पादकको श्रेणीमें आ सके। इसलिए समाजमें ऐसे नौकर चाकरोकी सख्या जितनी कम हो उतना ही अच्छा है।

५ ऊपरके विवचनसे उत्पादनकी सारी क्रियाओका वर्गीकरण इस तरह किया जा सकता है

(१) कृषि रूप=खोचना। जमीनमें से सपत्ति खीच कर बाहर लानवाले धधे। इनमें खतीके अलावा जगल और खानोम से सब तरहका कच्चा माल उत्पन्न करनेके काय आ जाते हैं।

(२) पशु-पालन दूध मास ऊन बाल चमडा चर्बी वाहन और सवारी वगराके लिए पशु पालनका काय। मच्छीमारीको भी हम इसीमें शामिल करेंगे।

(३) उद्योग धधे कच्चे मालका रूप बदलकर उसमें से तरह तरहका तयार माल बनानेके काय।

(४) यातायात कच्चे और तयार मालको एक जगहसे दूसरी जगह पहुचानेका काय।

(५) व्यापार थोक और फुटकर माल बचनकी दुकान आढ़त दलाली सराफी बक बीमा कपनी आदि धधोसे सबध रखनवाले काय।

(६) सस्कार पोषक धधे धर्मोपदेशकके शिक्षकके न्यायकी व्यवस्था करनवालोके और लोगोको नीरोग रखनेवालोके काय। साहित्य सगीत चित्र कला मूर्ति निर्माण-कला और शिल्प आदि रचनात्मक कलाओसे सबध रखन वाले कार्योको भी इसी विभागमे रखना चाहिये।

(७) राज्य-व्यवस्था सरकारी नौकरोके और म्युनिसिपलिटिया तथा लोकल बोर्डोके नौकरोके तथा पुलिस और फौजके काय।

(८) घरका काम नौकर चाकरोके काय।

६ व्यायाम या कसरत खेलकूद पहाडोमें घूमना समुद्रका सफर करना वगरा कार्योको किस वर्गमें गिनेंगे? इस काय करनवालोका शरीर नीरोग रहता है दृढ बनता है और उन्हे आनद भी मिलता है। परन्तु

ये लाभ केवल उस व्यक्तिको ही मिलते हैं। इन कामोंको सामाजिक नहीं कह सकते। इसलिए व्यक्ति विशेषको लाभ पहुंचानेवाले होने पर भी ये काम उत्पादक कार्योंमें नहीं गिने जा सकते। फिर भी उस कामके उद्देश्यके बारेमें विवेक तो करना ही पड़ता है। अगर कोई मनुष्य भूगोल अथवा इतिहासके बारेमें खोज करनेके लिए पहाड़ोंमें भटकता हो, समुद्रकी यात्रा करता हो अथवा अलग अलग देशोंके रीति रिवाज वगैरा जानकर उनसे लोगोंका ज्ञान बढ़े इस तरह यात्रा वर्णन लिखनेके लिए यात्रा करता हो, तो उसका काम उत्पादक हो सकता है। जो मनुष्य वायुयात्राके लिए शौकके लिए या स्वास्थ्य सुधारनेके लिए पहाड़ोंमें घूमता हो, उसका काम अनुत्पादक हो सकता है, परन्तु जो मजदूर उसका सामान उठाकर चलता हो उसका काम ऐसे मनुष्यकी आवश्यकतायें पूरी करता है, इसलिए वह उत्पादक माना जाना चाहिये।

७. एक ही वस्तु अपने हेतु और उपयोगकी दृष्टिसे अर्थ या अनर्थकारी बनती है। यही बात श्रमकी भी है। आजकल सब वस्तुओं और कार्योंका मूल्य धनके गजसे मापा जाता है, इसलिए यह खयाल फैला हुआ है कि जिससे अर्थप्राप्ति हो वही श्रम उत्पादक है। परन्तु आजकल जो काम आर्थिक या उत्पादक कहलाते हैं उनका मूल्य मनुष्य जातिकी सुख-सुविधा और उन्नतिके गजसे मापा जाय तो ऐसे बहुतसे काम जिनसे धनप्राप्ति होती है और इसीलिए जो उत्पादक माने जाते हैं, बिलकुल निरर्थक ही नहीं बल्कि सचमुच अनर्थ करनेवाले मालूम होंगे।

८. खेतीके धंधेमें तम्बाकू या अफीमकी खेती करनेका या ताड़ी निकालनेके लिए खजूरके पेड़ लगानेका श्रम जरूर अनर्थकारी है। पशु-पालनमें साठमारीके लिए या शर्तें बदनेके लिए हाथी, बाघ, सिंह, सांड और घोड़े पालनेमें जो श्रम किया जाता है वह भी बेकार अनर्थकारी है।

९. आजके बड़े बड़े कारखाने और यातायातके साधनों तथा व्यापारके विशाल तंत्रका बहुत बड़ा भाग जनताको सुख नहीं पहुंचाता बल्कि दुःख पैदा करता है। जब बहुतेरे लोग कपड़ेके बिना ठंडसे ठिठुरते हों तब बारीक और बहुमूल्य कपड़े तैयार करनेमें बहुतसे लोगोंका श्रम खर्च हो, तो उसमें निश्चित रूपमें श्रमका दुरुपयोग है। कई दिनों तक आलसी और बेकार पड़े रहनेके कारण ऊब जानेवाले लोग अपनी उकताहट दूर करनेके लिए ऐश आराम और भोग विलासकी सुविधाओंवाली रेलगाड़ियों, जहाजों या विमानोंमें यात्रा करने निकलें और इन लोगोंकी यात्राकी सुविधाके लिए

सकडा हजारो आदमियोका श्रम खच हो तो वह लाखो मनुष्याके जीवनकी आवश्यक्ताओकी कुर्बानी करके ही खच होना है। उद्योग धधा और व्यापारकी कितनी ही व्यवस्था आज एसी हो रही है जिसम अपार श्रम व्यय व्यर्थ होता है। उदाहरणके लिए हमारे देशमे जितनी चाहिये उतनी रुई पैदा होती है और हमारे देशको जितना चाहिये उतना कपडा बना सकनेकी कुशलता भी हमारे लोगोमें है फिर भी हमारे देशसे जापान और विलायतको रुई भेजी जाती थी और वहाके कारखानामें उसका कपडा बनकर यहा आता था। इसम रुईकी गाठें बाधने उन्हे रेल और जहाजसे विदेश ले जाने वहा फिर गाठें खोलने और ले जाते समय उसमें जो कचरा भर जाता है उसे साफ करने और उसका कपडा बनाने बाद फिर उसकी गाठें बाधकर रेल और जहाजके जरिये हमारे देशमे वह कपडा लाने आदिका सारा श्रम व्यय होता था। इसके सिवा ग्राहकको जरूरतका माल मुहैया करनेके लिए जो व्यापार जरूरी हो वह तो ठीक है लेकिन जिस सट्टेमें मालका कोई लेन देन न होता हो और अनेक युक्तियो द्वारा कृत्रिम ढगसे भावकी घटा-बढी पैदा करके उसके फक्का ही लेन देन होता हो एसी सट्टेबाजी निकम्मी ही है। इतना ही नहीं बल्कि इमानदारीसे होनवाले व्यापारमें वह हस्तक्षेप करती है। झूठ और ललचानेवाले विज्ञापनो द्वारा लोगोके लिए लगभग अनावश्यक या हानिकारक वस्तुओका प्रचार किया जाता है। यह काम भी समाजको नुकसान पहुचानेवाला होनेके कारण अनर्थकारी है।

१० इसी तरह धमके नाम पर जनतामें अधविश्वास और दुराचार फैलानेवाले साधु सयासी और भगत आदिके आलस्यम जीवन बितानेवाले और अपनेको योगी, यती या बरागी कहनेवाले बाबा फकीर आदिके तथा भविष्य बतानेका ढोग रचनेवाले ज्योतिषी धर्मादाके नाम पर लोगोसे रुपया लेकर उडानेवाले महन्त तथा अपनेको धमगुरु या धर्मोपदेशक कहनेवाले बहुतसे ढोगी मनुष्योके काम न केवल निरथक हैं बल्कि समाजके लिए हानिकारक भी हैं। न्यायकी व्यवस्थाके काममें भी घुसे हुए झगडा करानेवाले दलाल खटपटी और विघ्नसतोषी लोग समाजको हानि ही पहुचाते हैं। डाक्टरोमें भी नीमहकीमो और लोगोके शरीरोका निसत्व बना देनवाली मादक दवायें खिलानेवालोका काम समाजके लिए हानिकारक ही है।

११ सरकारी महकमोके नौकरो और पुलिस तथा फौजके आदमियोके कामके बारेमें भी हमें विवेक करना ही चाहिये। जिस हद तक इनके कामोसे

सारी जनताकी सच्ची भलाई होती हो उस हद तक ही वे काम समाजके लिए उपयोगी हैं। उनमें भी जब सत्ताकी होड़ चलती है, प्रभावका दुरुपयोग होता है और रक्षणके बजाय लोगोंका भक्षण होता है तब उनके ये काम अनर्थकारी ही बन जाते हैं।

१२ जो सर्जनात्मक कलाएं कहलाती हैं उनमें भी अपार दंभ और अनय चल रहा है। सच्चे साहित्यकार और कलाकार थोड़े ही होते हैं और नामधारी बहुत होते हैं। मनुष्योंकी हीन वृत्तियोंको उभाड़नेवाली पुस्तकें, गीत, चित्र, मूर्तियां आदि रचनेवालोंका काम तो समाजको उलटे और अनीतिके मार्ग पर ही ले जाता है। घरका काम करनेवाले नौकरोंके बारेमें तो हम विचार कर ही चुके हैं। इस बारेमें दो मत हो ही नहीं सकते कि चोर, डाकू, बदमाश, गुंडे, भिखारी, इन सबके काम हानिकारक हैं। लेकिन ऐसे अर्थशास्त्री भी मौजूद हैं जो शराबकी दुकानों, वेश्यालयों और जुआघरोंको जिन्हें अपना धंधा करनेके लिए सरकारकी तरफसे परवाने मिलते हैं, चलानेके कामको भी उत्पादक श्रम मानते हैं। इन लोगोंका तर्क एक ही है कि यह विचार करना अर्थशास्त्रका काम नहीं कि मनुष्यकी आवश्यकतायें अथवा कामनायें उचित हैं या अनुचित। जिन चीजोंकी लोगोंमें मांग हो वे चीजें मुहैया करनेवालोंका श्रम उत्पादक माना जायगा। परन्तु यह विचार गलत है क्योंकि ऐसे लोगोंका काम समाजको नुकसान ही पहुंचाता है, और जिस समाजमें ऐसे लोगोंको अपना काम करनेके परवाने मिलते हैं वह समाज नैतिक दृष्टिसे ही नहीं बल्कि आर्थिक दृष्टिसे भी नीचे गिरता है।

१३ शुद्ध आर्थिक दृष्टिसे विचार करने पर जिनके श्रमसे मानवका सुख, संतोष और प्रगति सिद्ध हो उन्हींके श्रमको उत्पादक श्रम मानना चाहिये और उन्हींको अपने श्रमके अनुपातमें उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिये। उनके सिवा दूसरे लोगोंकी कमाई गलत रास्तेसे की हुई कमाई ही कहलायेगी। फिर भी इस कसौटीसे जो उत्पादक श्रम करनेवालोंकी गिनतीमें नहीं आ सकते ऐसे अनेक लोग बहुत बड़ी कमाई करते पाये जाते हैं। इसी कारणसे समाजमें आर्थिक असमानता, दुःख और दरिद्रता पैदा होती है।

१४ मनुष्यकी उत्पादन-शक्ति नीचेकी बातों पर आधार रखती है:

(१) श्रमका काम करनेमें वंश-परम्परागत कुशलताका महत्वपूर्ण भाग रहता है। भिन्न भिन्न प्रकारकी कुशलता और गुण मनुष्यको उत्तराधिकारमें मिलते हैं। इनके अनुरूप काम मनुष्यको करनेके लिए मिलें तो उसकी शक्ति अधिक खिलती है और वह अधिक अच्छा काम कर

सकता है। एक ही वर्गमें पहनवाले या विद्यार्थियोंमें से पहले कोई तालीम न मिली हो तो भी मुलारका लम्बा अधिक सरल्तास वसूल रदा या फरसा चलाना सोख लेता है। यह सबका सामान्य अनुभव है। पतृक धधा करनेका महत्त्व भी इसी कारणसे है। और ऐसा लगता है कि इसीमें से वर्णाश्रमकी कल्पनाका जन्म हुआ होगा। यही नियम सारे धधे करनेवालों पर लागू होता है।

(२) मनुष्यके खानपान और आहार विहार पर भी उसकी कुशलताका आधार रहता है। निःसत्व अथवा पोषणहीन आहार खाकर मनुष्य अच्छा काम नहीं कर सकता। इसी तरह रातमें जागरण करनेवाले और शराबी लोग भी अच्छा काम नहीं कर सकते। जिनका रहन-सहन अच्छा होता है जो लोग स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करके जीवन बिताते हैं और जिन्हें उचित खान-पान और निवासस्थानकी सुविधा मिलती है उनसे अच्छे कामकी आशा रखी जा सकती है।

(३) भिन्न ऋतुएं और भिन्न जलवायु भी मनुष्यकी कार्यशक्ति पर असर डालते हैं। हम सर्दीकी ऋतुमें जितना काम कर सकते हैं उतना गरमीकी ऋतुमें नहीं कर सकते। ठंडे देशोंके लोग जितना सतत और बड़ा काम कर सकते हैं उतना गरम देशोंके लोग नहीं कर सकते। इसी प्रकार पहाड़ोंमें रहनेवाले, जंगलोंमें रहनेवाले, रेगिस्तानोंमें रहनेवाले और मैदानोंमें रहनेवालोंकी कार्यशक्ति अलग अलग होती है। ये ही लोग यदि एक दो पीढ़ियों तक भिन्न भिन्न प्रकारके जलवायुवाले प्रदेशोंमें रहने जायं तो उनकी कार्यशक्तिमें थोड़ा फर्क पड़ेगा। लम्बे अरसे तक रहें तो उनकी कार्यशक्तिमें बहुत बड़ा फर्क हो जायगा।

(४) व्यवस्थित शिक्षण और तालीम भी मनुष्यकी कार्यशक्तिको बहुत बढ़ा देती है। लुहारके लड़केको यंत्रविद्याका व्यवस्थित ज्ञान मिले तो वह इस ज्ञानके अभावमें जितना काम कर सकता है उससे अधिक अच्छा इंजीनियरी-काम अवश्य कर सकता है। प्रत्येक मनुष्यमें आनुवंशिक और अन्य प्रच्छन्न शक्तियां होती हैं। उन्हें उचित तालीम देकर विकसित किया जाय तो वह अधिक अच्छा काम करने लगेगा। इस दृष्टिसे शिक्षाका बहुत बड़ा महत्त्व है।

(५) मनुष्यकी नैतिक भावना और उसकी आदतों पर भी उसकी कार्यक्षमताका आधार रहता है। मनुष्य अनियमित, आलसी और सुस्त हो तो वह जरूर अपना काम बिगाड़ेगा। इसी प्रकार जो मनुष्य निगरेखक बिना

अच्छा काम नहीं करते, पसका ठीक हिसाब नहीं रखते, औजारोंको बिगाड़ देते हैं तथा अपने लाभके लिए दूसरोंका काम खराब करते हैं, वे भी कामको जरूर बिगाड़ेंगे। इसलिए स्वच्छ और सुघड़ आदत, मितव्ययिता और निश्चितता, नियमितता और प्रामाणिकता, सामाजिक उत्तर-दायित्वका भान और सहयोगसे काम करनेकी कुशलता—ये सब गुण और आदतें मनुष्यकी कार्यक्षमताको बढ़ाते हैं।

(६) कामका वातावरण अर्थात् वेतनका स्तर, कामके घंटे, छुट्टीके नियम, कारखानेकी सुविधायें तथा साथी मजदूरों और ऊपरके अधिकारियोंका व्यवहार भी मनुष्यके काम पर असर डालता है। साथियोंके साथ मन न मिलता हो, ऊपरी अधिकारी रूखा और अपमानपूर्ण व्यवहार करते हों, कामके घंटे ज्यादा हों, बहुत छोटे गंदे और बिना हवा उजेले वाले घरोंमें रहना पड़ता हो, खाने सोनेके लिए पूरा समय और सुविधायें न मिलती हों, बीमारीके समय छुट्टियोंकी सुविधा न रहती हो और पर्याप्त वेतन न मिलता हो तो आदमी उत्साहसे काम नहीं कर सकता और उसका काम बिगड़ेगा।

(७) कार्यक्षमताका अंतिम महत्त्वपूर्ण आधार साधनोंकी सुविधा पर रहता है। कामके साधन पर्याप्त न हों या वे पुराने अथवा बिगड़े हुए हों तो अन्य सब प्रकारसे गुणयुक्त और शक्ति-सम्पन्न होने पर भी मनुष्य अच्छी तरह काम नहीं कर सकता। सामान्य अनुभव यह है कि एक ही मजदूर पुराने ढंगके कारखानेकी बनिस्बत उन्नत यंत्रों और व्यवस्थावाले कारखानेमें अधिक काम कर सकता है। ऐसे विविध कारणोंसे अलग अलग देशके लोगोंकी और एक ही देशके अलग अलग मनुष्योंकी कार्यशक्तिमें फर्क पड़ता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि किसी भारतीयकी अपेक्षा इंग्लैण्ड या अमरीकाका आदमी २० से ३० गुना अधिक उत्पन्न करता है।

४

पूंजी

१ जमीन आदि कुदरती साधन-संपत्तिके सिवा ऐसी सारी सम्पत्ति जिसका उपयोग दूसरी अधिक संपत्ति उत्पन्न करनेमें होता है पूंजी कहलाती है। आजकल हम ऐसी अत्यन्त विशाल सम्पत्तिका पूंजीके रूपमें उपयोग करते हैं। जिस अनाजका बीजके रूपमें दूसरा अनाज उत्पन्न करनेमें उपयोग किया जाय वह पूंजी है। खेतीका धंधा करनेके लिए किसानके पास हल लोहा-लकड़ीके औजार गाड़ी बैल आदि जो साधन होते हैं वे पूंजी हैं। सुतारके औजार और जुलाहेका करघा उसकी पूंजी हैं। बड़े कारखानेमें कारखानेका मकान मशीनें स्टोर्स तैयार माल बनानेके लिए खरीदा हुआ कच्चा माल ये सब पूंजी हैं। हमारे आर्थिक विकासके ठेठ आदिकालसे ही पूंजीका अस्तित्व चला आ रहा है। उस समय उसका स्वरूप बिलकुल सादा था और उसकी मात्रा भी बहुत थोड़ी थी। आदि वनवासी मनुष्यने एकाध पत्थर या चकमक घिसकर शिकारके लिए जो कुल्हाड़ी बनाई वह सर्व प्रथम पूंजी थी। उस वनवासीने आहारके लिए जानवरोंके पीछे दौड़ते रहनेके बजाय अपना समय और शक्ति ऐसी चीजोंके निर्माणमें लगाई जिन्हें वह स्वयं सीधे काममें नहीं ले सकता था परन्तु जिनके द्वारा वह अपने सीधे उपयोगकी दूसरी चीजें प्राप्त करनेवाला था। अपने समय और शक्तिका उपयोग उसने पूंजीका निर्माण करनेमें किया। यह काम उसने अपने फुरसतके समयमें किया होगा और इस कामके करनेमें जितने दिन लगे होंगे उतने दिनका भोजन उसने इकट्ठा करके रख लिया होगा। आज जिन बहुतसी चीजोंका हम पूंजीके रूपमें उपयोग करते हैं वे भी इसी तरह पैदा हुई हैं। उत्पन्न हुई चीजोंको उसी समय उपयोग कर डालनेके बजाय हम उनमें से जरूरतके लायक चीजें अलग करके बाकीको भविष्यके लिए बचाकर रख लें और फिर अपना समय और शक्ति हमारी सीधी आवश्यकतायें पूरी करनेवाली चीजोंके उत्पादनमें लगानेके बजाय वे चीजें अधिक मात्रामें उत्पन्न कर सकनेवाले औजार मशीनें स्टोर्स उन्हें रखनेके मकान आदि बनानेमें लगायें तभी पूंजीका निर्माण होता है।

मान लीजिये हमें नदीके उस पार जाना है। हम कुछ बांस इकट्ठे करके बेड़ा बनाते हैं और एक बड़ा लक्कड़ नदीमें तैरता छोड़ कर उसे

पकड़ते हैं और बादमें उन वेंडका पत्र नहीं देन। क्या यह बचत समय अथवा उपभागमें विफायत करके उपन की हुइ पूजा कहा जायगी? इसी तरह कोई गिलास बनाता है खडोका शौवरके रूपम या कावन्स रूपम उपयाग करता है। ये सब औजार पूजी बनते हैं। परन्तु उनका उत्पादन क्या उसी उपयोगके लिए है? क्या वह उपभोग्य बचायी हुई पूंजीसे नहा हुआ है? भले उस बनानेका काम फुरसतके समयमें नहीं किन्तु खास समय देकर और एक समयका खाना छोडकर भी किया गया हो।

२ पूजी और पैसे (द्रव्य) के बीचका भेद हमेशा ध्यानमें रखना चाहिये। जैसे सपत्ति और पैसेको गलतीसे एक समझ लिया जाता है उसी तरह पूजी और पैसेको भी गलतीसे एक मान लिया जाता है। सामान्य परिस्थितियोंमें पैसेसे आवश्यकताकी चीज खरीदी जा सकती है इसलिए जैसे पैसेको सम्पत्ति कहा जाता है वैसे ही पैसा हो तो बड़े कारखाने खड़े किये जा सकते हैं इसलिए पैसेको पूजी कहा जाता है। धनी आदमीको पूजपति भी कहा जाता है। परन्तु वास्तवमें जैसे सम्पत्ति और पैसा अलग चीज है वैसे ही पूजी और पैसा भी अलग चीज है। पैसा तो सम्पति और पूंजीका केवल प्रतीक मात्र है। दूसरे महायुद्धके कारण जो असाधारण परिस्थितिया पैदा हुई है उनमें यह भेद स्पष्ट दिखाई देता है। यह बात सब समझ गये हैं कि बंगालमें अनाजकी तंगीसे जो भुखमरी फैल रही थी वह केवल पैसेसे ही मिटनेवाली नहीं थी वह तो अनाजसे ही मिट सकती थी। इस प्रकार मनुष्यके पास कितना ही पैसा क्यों न हो फिर भी यदि नया कारखाना खड़ा करनेके लिए जो चीज चाहिये वे बाजारमें न मिल सकती हों तो नया कारखाना खड़ा हो ही नहीं सकता। इस प्रकार पैसा नहीं बल्कि नये कारखानेके लिए जरूरी चीजें ही वास्तवमें पूजी हैं। फिर पैसेसे जब आप रोजके उपयोगकी चीजें खरीदते हैं तब उसका उपयोग पूजीके रूपमें नहीं होता परन्तु जब यह पैसा उत्पादनके साधन खरीदनेमें खर्च होता है तभी उसका पूजीके रूपमें उपयोग होता है।

३ कोई वस्तु पूजी है या नहीं इसका आधार इस बात पर है कि वह किस उपयोगमें आती है और उस उपयोगके पीछे हेतु क्या है। कोई मनुष्य भविष्यके उपयोगके लिए खानेकी चीजें या पैसा या सोना बचाये परन्तु उसे गाड़ कर ही रखे और फिर आवश्यकता पड़ी होने पर केवल अपने व्यक्तिगत उपयोगके लिए ही उसे खर्च करे तो वह पूजी नहीं हो सकता। किसी मकानको यदि वह अपने रहनेके लिए उपयोग करे तो वह पूजी नहीं है परन्तु वह मकान

कारखानेके उपयोगमें आये पुस्तकालयके उपयोगमें आये या प्रयोगशालाके उपयोगमें आये तो वह पूजी ही जाता है। अपनी सवारीका उपयोग शौकके लिए घूमनेमें किया जाय तो वह पूजी नहीं होगी लेकिन उसे किराये-पर चलाया जाय या उत्पादनके काममें उसका उपयोग किया जाय तो वह पूजी हो जाती है।

पूजीकी वृद्धि

४ अब हम यह देखेंगे कि पूजी कैसे बढ़ती है। व्यय और आयके फर्कसे होनेवाली बचत पूजीका मूल कारण है। व्ययसे आय अधिक हो तो ही बचत हो सकती है। आर्थिक दृष्टिसे जो देश आगे बढ़े हुए समझे जाते हैं जैसे इंग्लैण्ड और अमरीका वहां व्यय और आयके बीच बहुत बड़ा फर्क है। इसलिए वहां पूजी बढ़ती ही जाती है। लेकिन हमारे देशमें जहां हर मनुष्यकी वार्षिक औसत आय पहले ६० से ६५ रुपये मानी जाती थी और आज करीब ३०० मानी जाती है इतनी मामूली आयमें जीवन निर्वाह ही बड़ी कठिनाईसे होता है अथवा नहीं हो पाता। तब बचतकी तो बात ही क्या की जाय? इसके अलावा इस औसत आयमें तो ऐसे धनी भी आ जाते हैं जिनकी आय हजारों और लाखों रुपये होती है। इसलिए ये थोड़ेसे धनी लोग और ऊपरी मध्यम वर्गके लोग ही बचत कर सकते हैं। लेकिन वह बचत आम जनताको हानि पहुंचाकर होती है। बहुत बड़े जनसमुदायके लिए तो बचत करनेका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। वे तो उलटे दिनोंदिन कर्जमें डूबते जाते हैं। *सच्चा नियम तो यह है कि जिस देशमें कुदरती साधन* सपत्ति अधिक हो और जहांके लोगोंको उसका अच्छी तरह उपयोग करना आता हो उस देशमें पूजी बढ़ती है। अमरीकामें यह नियम भलीभांति काम करता दिखाई देता है। वह देश विशाल है और साधन-सपत्तिवाला है। इसकी तुलनामें जनसख्या वहां कम है।[१] और यह थोड़ी जनसख्या कुदरती साधन-सपत्तिका पूरा-पूरा उपयोग करनेमें कुशल है। इसलिए वह सबसे बड़ी आयवाला देश बन गया है। परंतु इंग्लैण्ड कोई विपुल कुदरती साधन सपत्तिवाला देश नहीं है फिर भी वह बड़ी आयका मालिक है। यह हमारे और हमारे जैसे दूसरे देशोंके शोषणसे ही सभव हुआ है। हमारे देशमें कुदरती साधन-सपत्ति विपुल मात्रामें होते हुए भी और लोगोंके बुद्धिमान

१ यूनाइटेड स्टेट्सका विस्तार हमारे देशसे लगभग ढाई गुना है और जनसख्या हमारे देशकी जनसख्याकी एक तिहाई है।

और कुशल होते हुए भी डेढ सौ वर्षसे अधिक समयमें होने वाले शोषणके कारण हमारा देश आज गरीब है और उसके पास आवश्यक पूंजी नहीं है।

५ आय और व्ययके फर्कके सिवा पूंजी बढ़ानेके जो दूसरे सामान्य कारण अर्थशास्त्री बताते हैं उनका हम यहां उल्लेख करेंगे[1]।

(१) जनतामें भविष्यका विचार करके भविष्यके लिए बचाकर रखनेकी आदत होनी चाहिये। कुटुम्ब प्रेमके कारण मनुष्य अपने बालबच्चोंके लिए किफायत करके बचत करनेका प्रयत्न करता है। इसके सिवा जिसे बड़ा व्यापार-धंधा चलानेकी महत्त्वाकांक्षा होती है वह भी उसके लिए जरूरी पूंजी इकट्ठी करनेका प्रयत्न करता है।

(२) इस प्रकार बचत करके रखनेकी वृत्तिको भी प्रोत्साहन तभी मिलता है जब देशमें लोगोंके जान-मालकी सलामती होती है और राज्यतंत्र लोगोंकी भलाईके लिए सुव्यवस्थित रूपमें चलता है।

(३) इसके अतिरिक्त जो बचत की जाय उसे इस तरह धंधेमें लगानेकी सुविधा हो कि उस पर किसी तरहकी आंच न आये तो ही यह बचत पूंजीके रूपमें काम आती है। बहुत हद तक ऊंची साखवाली प्रतिष्ठित सराफी पेढ़ियां, बैंकें, बीमा कंपनियां, लिमिटेड कंपनियां, सहकारी समितियां और प्राविडेण्ट फण्डोंमें बचत लगाई जाय तो उसका उपयोग पूंजीके रूपमें हो सकता है। बचा बचाकर लोग भविष्यके उपयोगके लिए केवल गाड़कर ही रखें तो वह बचत पूंजीके रूपमें किसी कामकी नहीं रहती।

(४) बचतको इस तरह लगानेके लिए ब्याजकी दर काफी फलदानवाली होनी चाहिये। कुछ लोग ऐसी दलील देते हैं कि ब्याजकी दर नीची होनी है तब लोगोंको अधिक बचत करनी पड़ती है क्योंकि बहुत लोगोंकी यह इच्छा होती है कि अमुक बचत करके उसके ब्याजकी आय निश्चित कर लेनी चाहिये जिससे बुढ़ापेमें बैठे बैठे निर्वाह हो सके या पीछे रहनेवालोंको

---

[1] यह सारा विचार वर्तमान पूंजीकी दृष्टिसे ही किया गया है। सार्वजनिक पूंजीकी दृष्टिसे पूंजीका अर्थ होगा कुदरतका भंडार और शक्तियां तथा प्रजाकी प्रामाणिकता, परिश्रमशीलता, ज्ञान और संयम विषयक साख। इनकी वृद्धि ही पूंजीकी वृद्धि मानी जायगी। ब्याज केवल इस पैसे संबंध रखनेवाली पूंजीका अंग है। सच कहा जाय तो ब्याज सच्ची पूंजी पर एक बोझ है। इसलिए ब्याजकी दर जितनी अधिक होगी उतना ही दारिद्र्य और विषम बंटवारा अधिक होगा।

थोई कठिनाई न हो। यदि ब्याजकी दर नीची हो तो एस लोगोंको अधिक बचत करनी पडती है क्योंकि ऐसा करनेसे ही तो उनकी सारी हुई आय निश्चित हो सकती है। इस तरह ब्याजकी नीची दर पूंजी बनानेका कारण बनती है। परन्तु सब बातोंको देखते हुए यह दलील ठीक नहीं लगती। अधिकतर तो ब्याजकी दर अधिक होने पर ही बाजारमें पैसा खिचकर आ सकता है। ब्याजकी दरके सिवा न्याय हुए पैसेकी सुरक्षितता भी पैसेके बाजारमें खिचकर आनेका एक कारण बनती है।

६ अब पूजीके विविध स्वरूपों और उसके नियोजनके आधार पर हम उसका वर्गीकरण करेंगे।

स्वरूपके आधार पर

(१) कुदरती पूंजी जमीन जंगल खान जलप्रपात आदि।

(२) मनुष्य द्वारा उत्पन्न की हुई पूंजी कारखाने मकान मशीन रेलवे लाइनें जहाज आदि।

स्वामित्वके आधार पर

(३) व्यक्तिगत स्वामित्वकी पूंजी जिस पर कुछ व्यक्तियोंका स्वामित्व अधिकार हो वह पूजी। हमारे देशमें खेतोंमें मिलोंमें कारखानोंमें बैंकोंमें और वाणिज्य व्यापारमें लगी हुई पूंजी इस प्रकारकी है।

(४) सार्वजनिक या सामाजिक स्वामित्वकी पूंजी जिस पर एक या अधिक व्यक्तियोंका स्वामित्व अधिकार न हो परन्तु जो सामाजिक संस्थाओं या सरकारके अधिकारमें हो और जिसका उपयोग सारे समाजकी भलाईके लिए किया जाता हो वह पूंजी। लोकल बोर्डकी धर्मशालाएं कुए सडकें म्युनिसिपैलिटीके पानीके बम्ब बिजलीघर बाग बगीचे सरकारी रेलें सडकें तार डाक विभाग नहर आदि सार्वजनिक पूंजीके उदाहरण हैं।

नियोजनके आधार पर

(५) चल पूंजी उत्पादनके काममें एक बार लगाने पर खतम हो जाय ऐसी पूंजी। उदाहरणके लिए कपडेकी बनावटमें रूई खेतीमें बीज और खाद। इसके सिवा कोयला तेल और पेट्रोल भी ऐसी ही पूंजी हैं। मजदूरोंको मजदूरी चुकानेमें काम आनेवाला पैसा भी इसी तरहकी पूंजी है। इसे चल पूंजीका नाम इसलिए दिया गया है कि कच्चे माल पर मजदूर मेहनत करके तैयार माल बनाते हैं वह माल जब बिकता है तो यह पूंजी वापस लौटती है और फिरसे ऊपर बताये गये सब कामोंमें उसका उपयोग

लिया जाता है। प्रत्येक उद्योग या धंधा चलानेके लिए थोडी या अधिक मात्रामें इस तरहकी चल पूंजीकी जरूरत पडती है। किसान जब खेती शुरू करता है तब उसे खाद चाहिये बोनेके लिए बीज चाहिये और निराई कटाई वगैरा काम करनेवाले मजदूरोंकी रोजी चुकानेके लिए पैसा चाहिये। इन सब कामोंमें उसे कुछ पूंजी लगानी ही पडती है। यह पैसा खेतमें पैदा हुए मालके बिकने पर फिर उसके हाथमें आता है। व्यापारीको दुकानका भाडा देनेके लिए गुमाश्तोंका वेतन चुकानेके लिए और दुकानमें बिक्रीका माल संग्रह करके रखनेके लिए जो पूंजी चाहिये वह जैसे जैसे माल बिकता जाता है वैसे वैसे वापस आती जाती है।

(६) अचल पूंजी जो लंबे समय तक टिक सके वह अचल अथवा स्थिर पूंजी कहलाती है। इसमें बार बार द्रव्य नहीं लगाना पडता बल्कि एक बार इकट्ठा ही लगाना पडता है। कारखानेके मकान और मशीनें अचल पूंजी कहे जायंगे। किसानका हल लोहे-लकडीके दूसरे औजार और एक हद तक बैल भी अचल पूंजी हैं। रेलें नहरें मोटर-ट्रक भी अचल पूंजीके उदाहरण हैं। इस तरहकी पूंजीके लिए जो अचल शब्द काममें लिया गया है वह चल पूंजीके साथमें सापेक्ष मतलबमें ही है। अचलका अर्थ स्थायी नहीं है परन्तु तुलनामें अधिक समय तक टिकनेवाली पूंजी है। वैसे मशीनोंकी घिसाई होती है मकान पुराने पड जाते हैं और बैल बूढे होकर मर जाते हैं। इस तरह यह अचल पूंजी कोई पांच वर्ष टिकनेवाली कोई दस-बीस वर्ष टिकनेवाली और कोई सौ-पचास वर्ष टिकनेवाली होती है। इस बीच भी उसकी मरम्मत करने और उसे अच्छी हालतमें रखनेका खर्च तो करना ही पडता है। अचल पूंजीमें बैल और ढोर-ढंगर हों तो उन्हें खिलाना भी पडता है। इसलिए अचल पूंजी पर भी कुछ खर्च तो करते ही रहना पडता है।

अचल पूंजीके दो उपप्रकार बताये जाते हैं। एक पूंजी ऐसी होती है जिसका उपयोग एक ही काममें होता है। उदाहरणके लिए रेलवेके लिए बनाया गया पुल या सुरंग और किसी काममें नहीं आ सकते। रेलकी लाइन बन्द की जाय तो वह सुरंग बेकार पडी रहती है। ऐसी पूंजीको हम डूबी हुई पूंजीका नाम देंगे। इससे उल्टे प्रकारकी पूंजीको हम तरती पूंजी कहेंगे। कपडेकी मिलके लिए मकान बनाया गया हो और वह कपडेकी मिलके बजाय दूसरी मिल चलाना हो तो मकानका उपयोग दूसरी मिलके लिए भी हो सकता है। कुछ मशीनें भी थोडे परिवर्तनसे दूसरे काममें ला

जा सकता है। यद्यपि ऐसी परिस्थितिमें थोड़ा-बहुत नुकसान जरूर होता है परन्तु सारी पूंजी बेकार नहीं जाती। कुछ पूंजी तो किसी तरहके नुकसानके बिना भी दूसरे काममें लगाई जा सकती है। कोयला, तेल और बिजलीका उपयोग आप कई कामोंमें कर सकते हैं। इसके सिवा भौतिक और विनिमय हो सके ऐसी तथा जिसका विनिमय न हो सके ऐसी अभौतिक अथवा व्यक्तिगत — ये भेद भी पूंजीके किये जाते हैं। मनुष्यकी कुशलता और कला-कौशल अभौतिक या व्यक्तिगत पूंजी है। गवैयेका कंठ, चित्रकारका हस्त-कौशल, इंजीनियरकी कुशलता आदि सब इसी प्रकारकी पूंजीके उदाहरण हैं।

पूंजीकी मीमांसा

७. पूंजीके बारेमें सामान्यतः जानने योग्य बातोंका हम उल्लेख कर चुके। अब पूंजीका सच्ची आर्थिक प्रगतिकी दृष्टिसे अथवा सामाजिक हितकी दृष्टिसे विचार करना रह जाता है। हम कह चुके हैं कि समाजके तात्कालिक उपभोगके लिए जितना उत्पादन आवश्यक हो उससे अधिक जितना उत्पादन होगा उतनी ही अधिक पूंजी बनेगी। आज जितनी पूंजी है वह हजारों वर्षसे होनेवाले इसी तरहके अतिरिक्त उत्पादनका परिणाम है। लेकिन यदि हम गहरे जाकर देखेंगे तो मालूम होगा कि यह सारी पूंजी न्यायसे इकट्ठी नहीं हुई है। सम्पत्तिके उत्पादनमें जिन्होंने मदद दी है उनकी सारी उचित आवश्यकतायें उस सम्पत्तिसे पूरी हो जायं, उसके बाद जो कुछ बचे वास्तवमें उसीको पूंजीके रूपमें रखना चाहिये। लेकिन हम देखते हैं कि सम्पत्तिके उत्पादनमें कीमती सहायता करनेवाले बहुत बड़े जनसमुदायकी उचित तो क्या परन्तु जीवनको टिकाये रखनेके लिए जरूरी बिलकुल प्राथमिक आवश्यकतायें भी पूरी नहीं होतीं। और ऐसी स्थितिमें भी उत्पादनकी व्यवस्था करनेवाला छोटासा वर्ग सम्पत्तिके वार्षिक उत्पादनमेंसे काफी हिस्सा पूंजीके रूपमें ले जाता है। इस प्रकार पूंजीका निर्माण करनेवाला बहुत बड़ा संग्रह उचित या सच्ची बचतका नहीं हुआ है बल्कि सम्पत्तिके सच्चे उत्पादकों यानी मजदूर-वर्गके पेट पर पट्टी बांधकर उसका संग्रह किया गया है। हमारी वर्तमान पूंजी शरीर-श्रम द्वारा सम्पत्तिका उत्पादन करनेवाले बहुत बड़े वर्गके युगोंके संचित श्रमका फल है। फिर भी दुनियाकी लगभग सारी ही वर्तमान पूंजी पर एक छोटासा वर्ग व्यक्तिगत स्वामित्वका अधिकार भोग रहा है। पूंजी पर स्वामित्वका अधिकार होनेके कारण समग्र उत्पादनका बहुत बड़ा भाग यह छोटासा

पूंजीपति वर्ग हृष्ट पुष्ट रहता है और मेहनत मजदूरी करनेवाले लोगोंका शोषण लगातार जारी रहता है। नतीजा यह होता है कि लगभग सभी देशोंमें — धनवान कहलानेवाले देशोंमें भी — बेकारी और कंगाली पाई जाती है।

८ दुनियाकी पूंजीका समग्र दृष्टिसे विचार करें तो एक और बात हमारा ध्यान खींचती है। जैसे जैसे पूंजीका संचय बढ़ता जाता है वैसे वैसे उत्पादनके साधन श्रमकी अपेक्षा पूंजीका प्राबल्य बढ़ता जाता है। नई नई मशीनों और नये नये प्रकारकी भौतिक शक्तियोंका उपयोग ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है त्यों त्यों मजदूरोंकी जरूरत अपेक्षाकृत घटती जाती है। यंत्रोद्योगोंके सामने हाथ उद्योग मिटते जाते हैं। इसके सिवा यंत्रोद्योगोंमें भी पहलेकी अपेक्षा कम आदमियोंसे अधिक उत्पादन होता जाता है। उत्पन्न हुई सम्पत्तिका तुलनामें बहुत बड़ा भाग पूंजीके मालिकोंको मिलता है और श्रमके मालिकोंका भाग दिनोंदिन घटता जाता है। यह सही है कि सारी पूंजी पर समाजका अनिवार्य स्वामित्व स्थापित कर लिया जाय तो यह बुराई दूर हो जाय। लेकिन बढ़ती जानेवाली पूंजीके कारण मानव-श्रम निकम्मा हो जाय तो लोगोंको पूरा काम नहीं मिल सकता। लेकिन इसके बावजूद उनकी आवश्यकतायें तो पूरी होनी ही चाहिये। समाजवादी अर्थ रचनामें भी यह प्रश्न किसी न किसी समय खड़ा हुए बिना नहीं रह सकता। किसी न किसी समय इसलिए कहा है कि रूस जैसे देशके सामने आज यदि यह प्रश्न खड़ा न हुआ हो तो इसका कारण केवल यही है कि उसने अपने यहांके अतिरिक्त मनुष्योंको काफी बड़ी संख्यामें युद्ध सामग्री बनानेवाले कारखानोंमें जरूर लगाया होगा और आज वह वह सीधा युद्धमें लगा रहा है। लेकिन युद्ध-सामग्रीका उत्पादन तो बुरा है और उसे अच्छा भी मान लिया जाय तो उसकी कोई सीमा अवश्य होनी चाहिये। इसलिए आजके अर्थशास्त्रियोंके सामने यह बड़ा प्रश्न खड़ा है कि या पूंजी मनुष्योंको बेकार बना दे उस दिन इन्हें किस तरह बसाया जाय। इसका एक रामबाण उपाय यह है कि जहां जहां हो सके वहां वहां ग्रामोद्योगोंका जिनमें बहुत थोड़ी पूंजीकी जरूरत पड़ती है पुनरुद्धार किया जाय।

९ इसके अलावा आजका सारा अर्थ-व्यवहार द्रव्य (पैसे) के मारफत होता है और सब तरहकी पूंजीकी व्यवस्था भी द्रव्यके मारफत ही होती है। एक बहुत ही छोटा वर्ग इस द्रव्य पर अधिकार करके और इसकी व्यवस्था अपने हाथमें रखकर बड़ा विषम स्थिति पैदा कर रहा है। आज धनिकोंका दुनियाके सारे उद्योगों पर नियंत्रण है। यह नियंत्रण इतनी चालबाजी और

चतुराईसे किया जाता है कि रोगोंकी आरामें घर झावरर वहत वन्पमान पर धोलवानी चलाइ ना सकती है। स्न्न और यूयाक्के द्रव्य बाजारके मुखिया सारी दुनियाको अपना हथली पर नचा सकत ह।

१० इसलिए सामान्य जनताकी भलाइके लिए और सच्ची आर्थिक प्रगतिके खातिर — अर्थात इसलिए कि सबको काम मिलता रह और काम करनेवाले अपन कामका फल स्वय भोग सके यह जरूरी है कि जिम छोटेसे वर्गने पूजी पर अधिकार जमा रखा है उसके हाथमें या उसके पास पूजीको छनाया जाय। साथ ही पजीका धनपतियोंके चगुलम छुनानके लिए द्रव्यकी सारी व्यवस्थामें भी जडमूलस परिवतन होना चाहिये।

११ दूसरा प्रश्न पूजीके उपयोगके बारेमें है। आज एसा नहा होता कि जिन उद्योग धधोको जनताको बहुत जरूरत हो उनमें ही पूजी लगे। इसके विपरीत जिन उद्योग धधोंमें बड़ा नफा होता है उन्हींमें पूजी लगायी जाती है। अथ प्रवृत्तिका ध्येय नफा कमाना नहीं बल्कि समाजकी आवश्यकतायें पूरी करना है। हर देशमें समाजकी अनिवाय और प्राथमिक आवश्यकतायें पूरा करनवाले उद्योग अब जरूरी सत्याम अच्छी तरह चलने लग उसके बाद ही कम महत्त्वकी आवश्यकताओंसे सम्बन्ध रखनवाले उद्योग धध खोलनेकी तरफ ध्यान दिया जाना चाहिये। लेकिन आम तौर पर प्राथमिक और अनिवाय आवश्यकताओंके उद्योग धधोंके बजाय मौज शौकके उद्योग धधोंमें नफा ज्यादा होता है इसलिए एस ही धधोंमें पूजी लगाना पूजीपति पसन्द करत ह। इसके फलस्वरूप प्राथमिक आवश्यकताओंकी चीज यानी खाद्य पदाथ आवश्यक मात्रामें और अच्छी जातिके नहीं मिलते और मौज शौककी चीजें जरूरतसे ज्यादा मिलती ह। हमारे देशके उदाहरणसे यह बात अधिक स्पष्ट होगी। आजकल हमारे देशमें खतीका धधा लाभदायी नहीं माना जाता। यहा तक कि किसान अपना तामली और लचके दोन सिरे भी नहीं मिला सकता और कज करके ही जाता है। किसान पर कजका बोझा लगातार बढता जाता है। इसका अथ हो यह होता है कि किसान अपने जीवनके लिए जिन चीजोंको आवश्यक समझता है उन्हें जटान लायक आम दनी खतीके धधेस नहीं होती। खतीका धधा किसानको नहीं पुसाता और खतीकी पदावार घट रह है इसके कइ कारणोंमें से एक बहुत बडा कारण यह है कि खतीमें जितनी चाहिये उतनी पजी नहीं लगाई जाती। जमीनमें अच्छी तरह खाद देना चाहिये अच्छी जताई करनेके लिए अच्छे हल होने चाहिये अच्छे बीज चाहिये ठीक समय पर मजदूर लगाकर

उनसे निराई आदिके काम करा लेनेके लिए मजदूरोंको चुकानेको रुपया चाहिये। यह सब पूंजी किसानोंके पास नहीं होती। जब गांवोंमें साहूकार, सामान्य अपने गांवका पैसा लगानेके दूसरे रास्ते खुले न थे, तब वे किसानोंको उचित ब्याज पर पैसा उधार देते थे। परन्तु लिमिटेड कंपनियों और बैंक शुरू हो जानेके बाद गांवोंका सारा पैसा खिंचकर शहरोंमें चला गया, क्योंकि वहां ब्याज और डिविडेंड अच्छा मिलता था और गांवोंमें किसानोंको उधार देनेमें कुल मिलाकर थोड़ा नफा मिलता था। इसलिए खेतीके उद्योगमें पूंजीकी तंगी होने लगी। पूंजीकी तंगी हुई इसलिए खेती बिगड़ी। इस तरह खेतीमें नफा न होनेसे पूंजी नहीं लगाई जाती और पूंजी न लगनेसे खेती अधिक बिगड़ती है — ऐसा दुश्चक्र आरम्भ हो गया है। इसके सिवा आज बंजर मानी जानेवाली परन्तु खेतीके काममें आ सकनेवाली जमीनोंका सुधार करके उपयोगमें लाने और नहरों तथा कुओंके जरिये खेतीके लिए पानीकी व्यवस्था करनेमें जितनी जरूर पूंजी लगनी चाहिये उतनी हमारे देशमें नहीं लगाई जाती। यही स्थिति हमारे पशुपालन या दूधके धंधेकी है। उसमें पूंजी लगानेकी कोई परवाह ही नहीं करता। दुधारू जानवरोंकी संख्या भारतमें बहुत बड़ी — दुनियाभरके दुधारू ढोरोंकी एक तिहाई होने पर भी हमारे देशमें दूध-घीकी कमी रहती है। हमारे भोजनमें भी अच्छे अनाज और पौष्टिक तत्त्ववाले दूसरे खाद्य-पदार्थ कम होते हैं। साग-भाजी और फल तो बहुत बड़ी संख्याके लोगोंको चखनेके लिए भी नहीं मिलते। यह सब हमारे पास जो थोड़ी-बहुत पूंजी है उसके गलत उपयोगका परिणाम है। इसलिए समाजकी आवश्यकताओं तथा उपयोगिताके क्रममें विचार करके उसी क्रममें पूंजी तभी लगाई जा सकती है जब पूंजीका उपयोग किसीकी सट्टाखोरीके लिए नहीं, परन्तु समाजकी जरूरतकी चीजोंका महत्त्वके अनुसार वर्गीकरण करके उनके उत्पादनमें किया जाय।

१२. ऊपरके विवेचनका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि हमारे देशमें खेतीके सिवा दूसरे उद्योग-धंधोंका विकास करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारे ग्रामोद्योगोंको जो मृतप्राय दशामें आ गये हैं, सजीव करनेकी बड़ी जरूरत है। ये उद्योग जो रहें तो उनसे खेतीको भी सहायता मिल सकती है। इन उद्योगोंके लिए बहुत बड़ी पूंजीकी जरूरत नहीं। पूंजीके लिए खींचातानी ग्रामोद्योगों और खेतीके बीच नहीं, बल्कि खेती और शहरके यंत्रोद्योगोंके बीच है। यंत्रोद्योग ग्रामोद्योगोंको मार कर खेतीके उद्योगको भी हानि पहुंचा रहे हैं।

५

प्रबन्धक

१ हम पहले देख चुके हैं कि जबसे बहुतसे लोगोंकी पूंजी एकत्र करके लिमिटेड कंपनियों द्वारा उद्योग-धंधे चलानेकी पद्धति अस्तित्वमें आई है तबसे उत्पादनके अंगके रूपमें कुदरत, श्रम और पूंजीके अतिरिक्त प्रबन्धक भी अस्तित्वमें आया है। यों तो उत्पादनकी सारी पद्धतियोंमें भी — उदाहरणके लिए एक किसान-परिवार अपनी खेती करे या एक जुलाहा-परिवार करघा चलावे या कोई दुकानदार दुकान करे या सराफ अपनी पेढ़ी चलावे तो उसमें भी योजना, व्यवस्था और विवेकका उपयोग करके निर्णय करने पड़ते हैं। परन्तु जिन उद्योगोंमें उत्पादनके अलग अलग अंगों पर अलग अलग मनुष्योंका स्वामित्व हो उनमें सम्पूर्ण व्यवस्था करनेके लिए बुद्धिशाली और विवेकशक्तिवाले स्वतंत्र व्यक्तिकी आवश्यकता होती है। यद्यपि विवेकके साथ सारी व्यवस्था करना भी एक तरहका श्रम ही माना जायगा, फिर भी प्रबन्धकका यह श्रम एक विशेष प्रकारका और बड़े महत्त्वका होनेके कारण हमने उसका अलग विचार किया है। प्रबन्धकके श्रमको दूसरे प्रकारके श्रमसे अलग माननेका एक कारण यह भी है कि अन्य सब प्रकारके श्रम करनेवालोंको एक निश्चित किया हुआ पारिश्रमिक मिलता है, जब कि प्रबन्धक एक विशेष साहस करता है जिसमें कभी उसे अच्छा नफा मिलता है और कभी नुकसान भी उठाना पड़ता है।* यद्यपि किसान, जुलाहा, कारीगर, दुकानदार, सराफ वगैराको भी इस तरहका साहस करना पड़ता है और नफे-नुकसानकी जिम्मेदारी उठानी पड़ती है, लेकिन उनका श्रम, पूंजी आदि सब अपना ही होता है, जब कि प्रबन्धक तो अलग अलग आदमियोंका श्रम और पूंजी इकट्ठी करके उद्योगकी योजना करता है और उसकी सारी छोटी मोटी बातोंकी व्यवस्था करता है। तात्त्विक दृष्टिसे देखें तब तो प्रबन्धकके श्रमको भी उच्च बौद्धिक श्रमका एक प्रकार ही मानना चाहिये। लेकिन जैसा ऊपर कहा गया है, उसके विशेष महत्त्वके कारण हमने उसका अलगसे विचार किया है। उसका मुख्य कार्य कई लोगोंकी पूंजी इकट्ठी करके उससे कोई उद्योग खड़ा करनेका साहस दिखाना और उस उद्योगमें तरह तरहका श्रम करनेवाले — महाबुद्धिशाली मनजरों

* वह अपनी पूंजी न लगाये तब?

इंजीनियरों और वनानिवास लेकर मामूली मजदूरी करनेवालों तकको काममें लगाकर उत्पादन-कार्यका संचालन करना है।

२ सामान्यतः प्रबंधकको नीचे लिखे काम करने होते हैं

(१) पहले वह यह कल्पना करता है कि किस जगह कौनसा औद्योगिक साहस अच्छे और लाभदायक ढंग पर चल सकता है। फिर वह उसकी पूरी योजना और रचनाका विचार करता है और उसके लिए अनुकूल स्थान पसन्द करता है।

(२) इस साहसके लिए वह आवश्यक पूंजी खड़ी करता है।

(३) एक ओर जो माल तैयार करना हो उससे सम्बन्धित उद्योगके निष्णात रखकर उनकी सलाहके अनुसार मकान बनानेका काम वह शुरू करता है और दूसरी ओर उसके लिए जरूरी मशीनों, औजारों वगैराके आर्डर देता है।

(४) उद्योगके लिए निष्णातों, मैनेजरों, कारकुनों, वैज्ञानिकों और मजदूरों वगैराकी पसंदगी करके उन्हें रखता है।

(५) वह अपने कारखानेमें कामका बंटवारा और दूसरी व्यवस्था ऐसे शास्त्रीय ढंगसे करता है जिससे संपूर्ण उद्योगके संचालनमें आदमियोंके श्रमका, मशीनोंका, दूसरे सामानका और कच्चे माल आदिका किसी भी तरहका बिगाड़ न हो और अधिकसे अधिक उत्पादन हो।

(६) उद्योगके आरम्भ होनेसे पूर्व और चालू हो जाने पर भी बाजारका रुख देखकर वह हर प्रकारका माल खरीदता है। उसे बाजार भावोंके चढ़ाव उतारका खतरा उठाना पड़ता है, इसलिए बाजार भावका उसे सदा ध्यान रखना पड़ता है और बाजारके रुखका अच्छा अध्ययन करना पड़ता है।

(७) मालका उपयोग करनेवालोंकी अभिरुचिमें और उसके अनुसार समाजके फैशनोंमें जो परिवर्तन होते रहते हैं उनका उसे सदा ध्यान रखना पड़ता है।

(८) साथ ही विज्ञापनों और दूसरे कई तरहके प्रचारके द्वारा लोगोंमें नई नई जातिके मालके लिए अभिरुचि उत्पन्न करके नये नये फैशनोंको जन्म देकर और नई आवश्यकतायें उत्पन्न करके वह अपने मालके लिए नई मांग खड़ी करता है।

संक्षेपमें उसे इस बातकी हमेशा चिन्ता रहती है कि अपने साहसमें अधिकसे अधिक नफा वह किस तरह कमाये।

३ प्रबन्धकके आवश्यक गुण ऊपरके सब काम सफलताके साथ कर सकनेके लिए उसमें दूरदेशी विवेक धंधा-सम्बन्धी कुशलता मनुष्योंकी पहचानने उनका विश्वास सम्पादन करने और उनसे काम लेनेकी शक्ति आदि गुण होने चाहिये। आजकल उद्योग-धंधोंमें भारी खतरा बना ही रहता है। क्योंकि लोगोंकी आवश्यकतायें जानकर लोगोंकी मांगके अनुसार माल तैयार नहीं होता बल्कि मांग पैदा होनेकी आशासे लोगोंको चाहिये उससे पहले पहले माल तैयार किया जाता है। इसलिए लोगोंकी रुचियोंमें परिवर्तन होनेसे मालकी मांग एकाएक बदल जाय मकान मशीन आदि जो बड़ा खर्च करके खड़े किये गये हों वे नई शोधके कारण पुराने पड़ जायं कच्चा माल और दूसरा सामान युद्धके या दूसरे कारणोंसे मिलना बंद हो जाय या पूरी मात्रामें न मिल सके — ऐसा तो चलता ही रहता है। द्रव्य बाजारमें उथल-पुथल होनेसे साखके व्यवहारमें बाधा पहुंचनेकी भी संभावना रहती है। ऐसे बहुतसे कारणोंसे कितनी ही होशियारीके साथ लगाया हुआ हिसाब भी उलटा पड़ जाता है। इसके सिवा अलग अलग उद्योग-धंधे एक-दूसरेके साथ जुड़े हुए होनेके कारण एक धंधेके उद्योगको धक्का पहुंचने पर दूसरे उद्योगोंको भी नुकसान पहुंचता है। इसलिए प्रबन्धकमें इन सब प्रतिकूल परिस्थितियोंका सामना करनेकी हिम्मत होशियारी और दूरदेशी होना आवश्यक है। इसके सिवा आजकलके सारे उद्योग-धंधे प्रतिस्पर्धाके सिद्धांत पर चलते हैं और यह प्रतिस्पर्धा बहुत बार युद्ध जैसा रूप पकड़ लेती है। इसलिए जैसे सेनाके सेनापतिमें अनुशासनसे काम लेनेकी कुशलताके साथ साथ व्यूह-रचनाका कौशल भी आवश्यक होता है वैसे ही प्रबन्धकमें भी जागरूकता और कुशलता आवश्यक है। प्रबन्धकके लिए जो उद्योगपति शब्दका उपयोग किया जाता है वह सेनापति की व्यूह-रचनाका अनुसरण करनेवाला होनेके कारण बहुत उपयुक्त प्रयोग है।

४ प्रबन्धकके ऊपर बताये हुए कार्य और गुण आर्थिक प्रगतिके लिए आवश्यक जरूर हैं लेकिन यह विवादास्पद है कि आजकलके प्रबन्धक अपनी शक्ति और कार्योंका उपयोग समाजकी सच्ची आर्थिक प्रगतिके लिए करते हैं। यह बात इस पुस्तकमें बार बार कही जा चुकी है कि केवल उत्पादन बढ़ानेसे समाजका हित नहीं हो सकता सच्ची आर्थिक प्रगति सिद्ध नहीं हो सकती। अर्थशास्त्रसे सम्बन्धित किसी भी प्रश्न पर विचार करते समय यह वस्तु हमेशा आंखोंके सामने रखनी चाहिये। आजकल तो वही प्रबन्धक बहुत कुशल और सफल माना जाता है जो सारी परिस्थितियोंसे अर्थात् द्रव्य

बाजारसे खरीद बिक्रीसे और मजदूरोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठा सके और अपने सम्पर्कमें आनेवाले सारे तत्वोंका अधिकसे अधिक शोषण करके अधिकसे अधिक नफा कमा सके। उसकी एकमात्र दृष्टि यहां होती है कि नई नई मशीनें मोजार और मजदूरोंके कार्य विभागकी नई नई रचना करके किस तरह कमसे कम मजदूरोंसे अधिक उत्पादन किया जाय कच्चे मालको खरीदकर कैसे कमसे कम भाव पर माल मिले और तैयार मालको बिक्रीमें किस प्रकार ऊंचेसे ऊंचे भाव मिलें। इससे मजदूरोंका शोषण होता है तथा बेकारी फैलती है कच्चा माल पैदा करनेवालोंको भरपेट खाना भी नहीं मिलता और ग्राहकों अर्थात् तैयार माल खरीद लेनेवाले बहुसंख्यक लोगोंको जो माल वे खरीदते हैं उससे जीवनकी आवश्यकताओंकी दृष्टिसे पूरा लाभ नहीं मिलता। इसका कारण जैसा कि हम पिछले प्रकरणमें पूंजीके सम्बन्धमें देख चुके हैं यह है कि प्रबन्धकोंकी शक्ति भी प्राथमिक आवश्यकताओंकी वस्तुएं उत्पन्न करनेके बजाय जीवनके लिए कम महत्त्वकी वस्तुएं उत्पन्न करनेमें अधिक खर्च होती है। हमारे देशकी गरीबीका कारण विदेशी शोषणके अलावा हमारी खेती और ग्रामोद्योगोंकी दुर्दशा भी रही है। हमारे प्रबन्धक लोग हमारी खेती और ग्रामोद्योगोंके विकासमें अपनी शक्ति लगायें तो सारे देशकी आर्थिक स्थिति बहुत जल्दी सुधर जाय। लेकिन आजकल तो वे यंत्रोद्योगोंके विकासके पीछे ही लगे हुए हैं। इससे विदेशी शोषणके अलावा इनके यंत्रोद्योगोंके शोषणका शिकार भी गांवोंको बनना पड़ता है। इतना होने पर भी हमारे प्रबन्धकोंका यह दावा है कि यंत्रोद्योगोंका विकास करके वे देशकी आर्थिक उन्नतिमें सहायता करते हैं और इस देशमें फैली हुई राष्ट्रीय भावना और स्वदेशीकी भावनाका लाभ उठाना चाहते हैं यद्यपि उनमें राष्ट्रीयता या स्वदेशीकी भावनाका बहुत परवाह नहीं होती। क्योंकि जब इन भावनाओं और उनके नफे और स्वार्थके बीच संघर्ष खड़ा होगा तो बहुत थोड़े अपवादोंको छोड़कर बाकी सब प्रबन्धक दोनोंमें से किसे पसन्द करेंगे इस विषयमें कोई शंका नहीं है।

५ जैसे अर्थ-व्यवहारमें प्रबन्धकका कार्य बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है, वैसे ही समाजके दूसरे सब व्यवहारोंमें भी है। सारे सार्वजनिक कार्योंकी बागडोर हाथमें लेकर समाजका संगठन करनेवाले समाजकी शक्ति बढ़ानेवाले और समाजको सही दिशामें मोड़कर प्रगतिके मार्ग पर लगानेवाले भी प्रबन्धक ही होते हैं। म्युनिसिपैलिटी और लोकल बोर्डोंके कार्य राजनीतिक कार्य सामाजिक व्यवहार ग्राम-संगठन आदि सब कार्य कुशल प्रबन्धकके बिना नहीं चल सकते। इन प्रबन्धकोंके पास अपने बुद्धिबलके सिवा द्रव्यबल

और मनुष्योंका सत्यावल भी होता है। इसलिए उनकी सत्ता असाधारण मानी जाती है। परन्तु प्रबल लोकमत चाहता है कि इन प्रबंधकोंकी अपनी शक्ति और सत्ताका उपयोग व्यक्तिगत स्वार्थ या लाभके लिए नहीं बल्कि समाजके हितके लिए ही करना चाहिये। सिर्फ अर्थके क्षेत्रमें ही प्रबंधकों पर इस तरहका वक्तव्य नहीं डाला जाता। जब तक दूसरे प्रबंधकोंकी तरह आर्थिक क्षेत्रके प्रबंधक भी केवल व्यक्तिगत स्वार्थ और नफेके लिए नहीं, बल्कि सारे समाजके आर्थिक कल्याणके लिए काम नहीं करने लगेंगे तब तक सच्ची आर्थिक प्रगति सिद्ध नहीं हो सकेगी।

६

कार्य विभाग

१ हम देख चुके हैं कि ऐसी स्थिति कभी नहीं थी जब अकेला आदमी अपनी जरूरतकी सब चीजें खुद जुटा लेता हो। मनुष्य अपने उत्पत्ति कालसे ही सामाजिक प्राणीके रूपमें समूह-जीवन बितानेवाला पाया जाता है। ऐसे प्राथमिक दशामें जीवन बितानेवाले समूह और आगे चलकर जब कुटुम्ब अस्तित्वमें आये तब कुटुम्ब अपनी जरूरतकी सब चीजें खुद ही उत्पन्न कर लेते थे। अर्थात् किसी समूह अथवा कुटुम्बके लिए आवश्यक सभी धंधे उस समूह या कुटुम्बमें चलते थे। समाज जैसे जैसे आगे बढ़ता गया वैसे वैसे जरूरतकी अलग अलग चीजें उत्पन्न करनेवाले अलग अलग धंधे चलानेवाले कुटुम्ब अस्तित्वमें आते गये। काम या धंधेके इस बंटवारेके लिए श्रम विभाग शब्द काममें आता है। लेकिन अधिक सच्चा शब्द तो कार्य विभाग है क्योंकि श्रमके विभाग नहीं किये जाते किन्तु कामके विभाग किये जाते हैं। श्रम विभाग शब्द अधिक प्रचलित होने पर भी वह गलत है इसलिए हम कार्य विभाग शब्दका ही प्रयोग करेंगे।

२ कार्य विभागके मुख्य चार स्वरूप हैं

(१) नैसर्गिक कार्य विभाग (२) सामाजिक कार्य विभाग (३) औद्योगिक कार्य विभाग और (४) प्रादेशिक या भौगोलिक कार्य विभाग।

नैसर्गिक कार्य विभाग

३ स्वयंपर्याप्त और स्वावलम्बी समूह तथा कुटुम्ब जब अपनी जरूरतकी सब चीजें स्वयं ही उत्पन्न कर लेते थे तब भी समूह या कुटुम्बके भीतर पुरुषों

और स्त्रियोंकी शरीर रचनाके भेदके कारण अमुक कार्य विभाग देखा जाता है। पुरुष शिकार करनेका, ढोर चरानेका या ऐसा कोई काम करते थे, जिसमें उन्हें अपने रहनेकी जगहसे बहुत दूर जाना पड़ता था। स्त्रियोंको बालकोंके पालन-पोषण और रक्षणके लिए घर पर ही रहना पड़ता था। इसलिए वे घर बैठे जो काम हो सकता था वही करती थी। यह पहले कहा जा चुका है कि गृह उद्योगोंका और गृह-कलाओंका विकास स्त्रियोंने ही किया है। पुत्रीके लिए संस्कृतमें 'दुहितृ' शब्द है। इससे जान पड़ता है कि पुत्रीका काम दूहनेका माना जाता था। अंग्रेजीमें कुंवारी कन्याके लिए स्पिन्स्टर (spinster) शब्द है। स्पिन का अर्थ है कातना। इस परसे कुंवारी लड़कीका काम कातनेका था। अंग्रेजीमें पत्नीके लिए वाइफ (wife) शब्द है और वाइफ शब्द वीव (weave) याने 'बुनना' परसे बना है। इस तरह बुननेका काम पत्नीका माना जाता था। आज भी दुनियाके प्रत्येक समाजमें इस तरहका कार्य विभाग देखा जाता है। पुरुष बाहरका काम धंधा करता है और कमाता है तथा स्त्री बालकोंका पालन और तालीम देती है और घरके भीतरका सारा कामकाज संभालती है। हां, मजदूर-वर्गमें स्त्रियां भी मजदूरी करने जाती हैं और कमाई करती हैं। दुनियाकी आबादीका बहुत बड़ा भाग तो मजदूर वर्गका ही है। इसलिए समाजके बहुत बड़े भागमें स्त्री और पुरुषके बीच ऊपर बताया हुआ स्वाभाविक, आवश्यक और वाछनीय कार्य विभाग अच्छी तरह हो नहीं पाता। नतीजा यह होता है कि स्त्री पर कामका दुगुना बोझ पड़ता है। उसे मजदूरी करने तो जाना ही पड़ता है, इसके सिवा उसे बच्चोंको पालना होता है और घरका काम भी संभालना पड़ता है। इस कारण घरकी तरफ और बच्चोंकी शिक्षा और पालन पोषणकी तरफ जितना चाहिये उतना ध्यान वह दे नहीं पाती। जब तक बच्चा माका दूध पीता है तब तक तो वह पूरी तरह माका ही आश्रित रहता है और दूध छोड़नेके बाद भी लंबे समय तक वह माका आश्रय और माकी सहायता छोड़ नहीं सकता। बच्चेकी इस कोमल वयमें जैसी शिक्षा और तालीम उसे मासे मिल सकती है वैसी और किसीसे नहीं मिल सकती। क्योंकि इस वयमें जो प्रभाव और संस्कार उसके मन पर पड़ते हैं वे कभी मिटते नहीं। अच्छी आदतें डालनेके लिए भी यही वय उत्तम है। शिशुकाल और बाल्यावस्थाकी यह शिक्षा भविष्यकी सारी शिक्षा और जीवनकी बुनियाद होती है। इसीलिए बालकका अच्छी तरह पालन-पोषण और अच्छी आदतें तथा अच्छे संस्कार डालकर उसे शिक्षा देनेके कामको

माताको अर्थोत्पादनके बाबत कारण जिस हद तक वंचित रहना पड़ता है उस हद तक समाजकी बड़ी हानि होती है। बालकके प्रति अपना कर्तव्य पूरा तरह पालनेके बाद यदि पतिके धंधेमें सहायक बनकर स्त्री अर्थोत्पादनमें सहायता दे सके तो ठीक है परन्तु यह उसका मुख्य कार्य कभी नहीं बनना चाहिये। आज अधिकतर स्त्रियां ऐसा नहीं कर पाती तो इसे वर्तमान अर्थ-व्यवस्थाका बड़ा दोष मानना चाहिये। परन्तु कुछ समाजशास्त्रियोंका यह मानना है कि जब तक स्त्रियां अर्थोत्पादनके कार्योंमें पूरा भाग लेकर आर्थिक दृष्टिसे स्वावलम्बी नहीं होती तब तक आज जो वे पुरुषोंसे नीची गिनी जाती हैं और उन्हें पुरुषोंके अधीन रहना पड़ता है वह हीन स्थिति उनकी दूर नहीं हो सकती। स्त्रियां अर्थोत्पादनके काममें भलीभांति भाग ले सकें इसके लिए उन्हें बच्चोंके पालन-पोषण और शिक्षणके बोझसे जहां तक हो सके मुक्त किया जाय। यह काम समाज यानी सरकार अपने हाथमें ले और दूध छोड़ते ही अथवा संभव हो तो उससे पहले भी बच्चोंको उनके लिए बनाये गये खास शिशुगृहोंमें रखा जाय। इस योजनाके पक्षमें समाजशास्त्रियोंकी एक दलील यह भी है कि बच्चेकी इस कोमल वयमें उसे अच्छी तरह पालने और अच्छी शिक्षा देनेके लिए जिस शास्त्रीय ज्ञानकी आवश्यकता है उसकी आशा मां बननेवाली सभी स्त्रियोंसे नहीं रखी जा सकती। इसलिए जो थोड़ी स्त्रियां ऐसी योग्यतावाली हों उन्हींको बाल-संगोपन और बाल-शिक्षणके कामकी विशेष तालीम देकर समाजके सारे बच्चे सौंप दिये जायं तो ही अच्छी ज्ञानवान प्रजाका निर्माण हो सकता है। इसके विरोधमें यह कहा जा सकता है कि शास्त्रीय ज्ञानके बिना भी मांके प्रेममें जो शक्ति होती है वह शास्त्रीय ज्ञानमें नहीं होती। बच्चोंकी पहली आवश्यकता प्रेमकी है बादमें शास्त्रीय ज्ञानकी है। इसके सिवा अभी यह बात मानव-स्वभावमें आई नहीं है कि शास्त्रीय ज्ञानकी तालीम पाई हुई सभी स्त्रियां सौंपे हुए बच्चोंको मांके प्रेमका अनुभव करा सकें। यह दूसरी बात है कि दूसरोंके बच्चोंके लिए मांका स्थान लेनेवाली सज्जनोंमें कोई विरली स्त्री निकल आये परंतु यह निश्चित होने पर भी कि ऐसी स्त्रियां बड़ी संख्यामें नहीं मिल सकती यदि हम बच्चोंको माताओंसे जल्दीमें जल्दी छुड़ाकर शिशुगृहको सौंप देंगे तो वहां प्रेमके बिना बच्चे तरसेंगे और कुम्हला जायंगे। इसलिए अपने अपने बालकोंके पालन-पोषणकी और प्राथमिक शिक्षणकी जिम्मेदारी माताओं पर ही रहने दी जानी चाहिये और वे यह काम अधिक अच्छी तरह कर सकें इसके लिए उन्हें तालीम

देनेकी व्यवस्था करना चाहिये तथा अर्थोत्पादनकी जिम्मेदारीमें से वे आवश्यकतानुसार मुक्त रहें ऐसी समाज रचना और अर्थ रचना करनी चाहिये। यही अधिक स्वाभाविक और मुक्ति देनेवाला सिद्ध होगा।

४ मध्यम वर्ग और उच्च वर्गकी स्त्रियोंका विचार करने पर मालूम होता है कि उन पर अर्थोत्पादनकी जिम्मेदारी नहीं होती। वे घरका और बच्चोंके पालन-पोषणका काम ही करती हैं यद्यपि उच्च वर्गकी कुछ स्त्रियां तो यह काम भी अपने सिरसे उतार फेंकती हैं। अब तो ऐसा आन्दोलन शुरू हुआ है जिसमें ये स्त्रियां आर्थिक स्वतंत्रता भोग सकें और घरका क्षेत्र छोड़कर या जिसे रसोईघर और बालबच्चोंमें फंसे रहना कहा जाता है उसे छोड़कर बाहरके कामोंमें भाग ले सकें। हम ऊपर कह चुके हैं कि बाल-संगोपन और बाल-शिक्षणके लिए माताओंका स्थान ले सकनेवाली कुछ योगिनी और अपवादरूप स्त्रियां ही निकलेंगी। इसी तरह घरका क्षेत्र छोड़नेकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियां भी अपवादरूप और विरली ही निकलेंगी, क्योंकि स्त्रियां स्वाभाविक वृत्तिसे ही समझती हैं कि उनका सच्चा काम क्या है। बड़से बड़ा और मानव प्रगतिके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बाल-संगोपन और बाल-शिक्षणका काम स्त्रियोंको अपने घरके अन्दर ही मिल जाता है। यह सच है कि उचित शिक्षा और तालीमके अभावमें यह काम अच्छी तरह कर सकनेवाली स्त्रियां आज थोड़ी ही हैं, परन्तु स्त्रियोंमें स्वभावतः इस कामके लिए प्रेम होता है। इसलिए प्रकृति द्वारा निर्मित अपना यह स्वाभाविक काम छोड़कर स्त्रियां आर्थिक स्वातंत्र्य प्राप्त करनेके पीछे दौड़ती रहें और अपने बच्चोंके पालन-पोषण और शिक्षणका काम शास्त्रीय ढंगसे करनेका दावा करनेवाली संस्थाओंको सौंप दें इसे स्वयं स्त्रियां ही स्वीकार नहीं करेंगी। समाजके लिए यह सर्वथा हितावह भी नहीं है। इसलिए स्त्रियोंको उनके इस प्रकृति-निर्मित कामके लिए खास तौर पर तालीम देकर विशेष योग्य बनानेमें ही मानव-सुख और मानव-प्रगति समाई हुई है। फिर यह तर्क भी ठीक नहीं कि आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करनेसे ही स्त्रियोंकी परतंत्र दशा सुधर सकती है, क्योंकि मजदूर-वर्गकी स्त्रियां आर्थिक स्वावलम्बन भोगती हैं, फिर भी उनमें से शायद स्वतंत्रता भोगती नहीं दीखती। स्त्रियोंकी पराधीनताका मुख्य कारण तो यह है कि माताके रूपमें उनका जो पवित्र और गौरवपूर्ण काम है उसके लिए उन्हें उचित शिक्षा नहीं मिलती। अच्छी शिक्षाके अभावमें वे यह काम अच्छी तरह नहीं कर पातीं। इसके अलावा आज

वल्की कुशिक्षाके कारण कुछ स्त्रियां तो पत्नीत्वको स्वीकार करके भी माता बनना नहीं चाहती। यह भी उनकी पराधीनताका और लघुताका एक बडा कारण है। बस यदि स्त्रियां अपना मातृत्वका काम आवश्यक कुशलता और ऊंची भावनासे करने लग जायं तो उसके सामने आर्थिक स्वतंत्रता तुच्छ चीज है। परिवारके भरण-पोषणके लिए अर्थोत्पादनका काम पुरुष करता है इसलिए स्त्रीको पुरुषके अधीन ही रहना चाहिये यह बात गलत है। समझदार और सस्कारी परिवारोंमें जहां पुरुष और स्त्री अपना अपना सच्चा फर्ज अदा करते हैं एक-दूसरेके अधीन होनेका प्रश्न ही खडा नहीं होता। पुरुष और स्त्री न तो एक-दूसरेसे ऊंचे हैं न एक-दूसरेसे नीचे। वे न स्वावलम्बी हैं और न परावलम्बी हैं। वे तो परस्परावलम्बी हैं एक दूसरेके पूरक हैं। ऐसे सब प्रश्न तो तभी खडे होते हैं जब स्त्री और पुरुष अपने अपने स्वभाव निर्मित कार्यक्षेत्रोंको छोडकर आपसमें प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं।

५ और पुरुषके साथ अनबन हो जाने पर या विधवा हो जाने पर स्त्रीको अपना और अपने बच्चोंका निर्वाह करनेके लिए अर्थोत्पादनका काम करना पड़े तो स्त्रीके लिए यह कोई बहुत कठिन बात नहीं है। जो आदमी मेहनत करनेके लिए तैयार हो उसे निर्वाहकी कठिनाई न पडनी चाहिये। लेकिन आजकी प्रचलित अर्थ-व्यवस्थामें बहुत अधिक विषमता और अन्याय होनेके कारण सामान्य जनताके लिए जीवन-संग्राम बहुत कठिन हो गया है। इसलिए संभव है कि किसी स्त्रीके सामने अर्थोत्पादनका प्रश्न एकाएक आ खडा होने पर वह घबरा जाय। अतः आवश्यकता पडने पर स्त्री अर्थोत्पादन भी कर सके ऐसी शिक्षा उसे मिलनी चाहिये। परन्तु अधिक आवश्यक तो आजकी विषम और अन्यायपूर्ण अर्थ-व्यवस्थाको बदलना है। हमारे लोगोंमें कहावत है कि बापके राजमें बच्चे नहीं समाते पर माके चरखेमें समा जाते हैं। इस कहावतमें समाज-जीवनकी बहुतसी बातें आ जाती हैं। परन्तु प्रस्तुत प्रश्नके लिए एक बात निश्चित है कि यह कहावत जब शुरू हुई होगी तब ऐसी अर्थ-व्यवस्था रही होगी जिसमें संकट आ पडने पर स्त्रियां आसानीसे अर्थोत्पादन करके तथा अपने बच्चोंका अच्छी तरह पालन-पोषण करके उन्हें बड़ा कर सकती थीं।*

६ सार यह है कि सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थामें जो जो दोष हों उन्हें हम जरूर दूर करें लेकिन स्त्री और पुरुषके बीच जो प्रकृति निर्मित और स्वाभाविक कार्य विभाग है उसमें हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं है।

* सूतकी यानी खादीका बाजार तेज होने पर ही यह संभव हो सकता था।

७ तब क्या स्त्रियाँ सार्वजनिक कार्योंमें बिलकुल भाग न लें? हमारे कहनेका यह आशय नहीं है। जिन स्त्रियों पर बच्चोंके पालन-पोषणका काम न हो अर्थात् जो स्त्रियाँ कुँवारी ही रहना चाहती हों या विधवा हों या बच्चे बड़े हो जानेके कारण जो वानप्रस्थ जीवन बिताती हों, वे जरूर सार्वजनिक कार्योंमें भाग ले सकती हैं। कुँवारी रहना चाहनेवाली स्त्रियाँ संख्यामें हमेशा थोड़ी ही होंगी, परन्तु विधवा और वानप्रस्थ स्त्रियाँ समाजमें अच्छी संख्यामें रहेंगी। उन्हें जरूर शिक्षाके और दूसरे सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेना चाहिये। यह कोई महत्त्वकी बात नहीं है कि वे अपने इस कामके बदलेमें पारिश्रमिक लें या न लें। और परिवारकी जिम्मेदारीके कारण ऐसी स्त्रियाँ सार्वजनिक कार्योंमें भाग न ले सकें तो भी कोई स्त्री समाजके लिए उपयोगी हो सकनेवाले दो-तीन संस्कारी और चरित्रशाली बालकोंको शिक्षा देकर तैयार करे, तो यह भी उसका काफी महत्त्वपूर्ण काम माना जायगा।

सामाजिक कार्य विभाग

८ कार्य विभागका दूसरा प्रकार समाजकी सुव्यवस्थाके लिए आवश्यक विभिन्न धंधोंसे सम्बन्ध रखता है। खेती, बुनाई, सुतारी, लुहारी, राजका काम, चमारका काम, मोचीका काम — ये सब धंधे करनेवाले अलग अलग वर्ग जैसे जैसे अस्तित्वमें आते गये, वैसे वैसे समाजकी आर्थिक प्रगति और दूसरी तरहका विकास भी होता ही गया है। ये धंधे करनेवाले वर्ग प्रत्यक्ष अर्थोत्पादन करनेवाले हैं। लेकिन प्रत्यक्ष अर्थोत्पादनके साथ सम्बन्ध न रखनेवाले वर्ग, जैसे कि तत्त्वचिन्तन और अध्ययन-अध्यापनका काम करके समाजके सामने जीवनके ऊँचे आदर्शोंको तथा धर्म और नीतिको जाग्रत रखने वाला ब्राह्मण-वर्ग उत्पन्न हुआ तथा अन्याय, जुल्म, आक्रमण, चोरी, लूट-पाट वगैरा अत्याचारोंसे प्राणोंका, धनका और आबरूका रक्षण करनेवाला क्षत्रिय-वर्ग अस्तित्वमें आया, तब समाजने आर्थिक विकासके साथ साथ दूसरी दिशाओंके विकासमें भी बहुत बड़ा कदम आगे बढ़ाया। अर्थोत्पादनका श्रम करनेवालोंमें भी खेती, गोपालन आदि धंधे और व्यापार वाणिज्य करने वाला वैश्य-वर्ग और सिर्फ बताई हुई मेहनत मजदूरीके और व्यक्तिगत सेवाके काम करनेवाला शूद्र-वर्ग इस तरह ये वर्ग अलग माने जाने लगे। इसका यह अर्थ नहीं कि ब्राह्मण और क्षत्रिय-वर्ग जिस प्रकारका काम करने लगे उस प्रकारका काम इनके अलग वर्ग उत्पन्न हुए उसके बाद ही समाजमें होने लगा। मनुष्य निरा अर्थ-परायण अपनी शारीरिक आवश्यकतायें पूरी करके पड़ा रहनेवाला तो कभी था ही नहीं। समूह-जीवनके युगमें जब अलग

अलग कामो और धधोके आधार पर अलग अलग वर्ग नहीं बने थ तब भी मनुष्य अपने दूसरे कामोके साथ तत्व चिन्तन करते थे धार्मिक क्रियाए करते थे अध्ययन-अध्यापन भी करते थे और समाजकी रक्षाके लिए जरूरी क्षात्रवृत्तिके काम भी करते थे।

९ ऊपर बताये हुए अलग अलग वर्ग दुनियाके हर समाजमें मौजूद है। समाजकी आवश्यकतायें जैसे जैसे बढ़ती जाती है वैसे वैसे धधोके प्रकार भी बढ़ते जाते है और उनके करनेवाले अलग अलग समूह भी अस्तित्वमें आते जाते है। उनका वर्गीकरण ऊपर बताये हुए चार मुख्य वर्गोंमें प्रत्येक समाजने थोडा बहुत किया ही है। प्राचीन यूनानी तत्ववेत्ता प्लेटोने समाजके इस तरहके वर्गीकरणका शास्त्रीय रूप देनेका प्रयत्न अपनी पुस्तक रिपब्लिक में किया है। लेकिन जिसे शास्त्रीय कहा जा सके ऐसा निश्चित वर्गीकरण और स्पष्ट व्यवस्था यूरोपके समाजोंमें नहीं हुई। हिंदू स्मृतिकारोने यह वर्गीकरण शास्त्रीय पद्धतिसे करके हर वर्गके कर्तव्य या वृत्तिया निश्चित कर दी है और उस वर्ण-व्यवस्था का नाम दिया है तथा वर्ण-व्यवस्थाको समाजके अस्तित्व और व्यवस्थित प्रगतिके लिए एक आवश्यक सिद्धान्तके रूपमें माना है।

औद्योगिक कार्य विभाग

१० अलग अलग कामके लिए अलग अलग वर्ग बन जानेके बाद सपत्तिके उत्पादनकी मात्रा काफी बढ़ी। लेकिन इस उत्पादनकी मात्राको बहुत तजीसे वृद्धि करनेवाला तत्त्व औद्योगिक कार्य विभागका है। इसमें एक ही धधेसे सम्बन्ध रखनेवाली विविध क्रियाओका पृथक्करण करके अलग अलग क्रियाए अलग अलग मनुष्योसे कराई जाती है। अर्थशास्त्रकी पुस्तकोमे इसका प्रसिद्ध उदाहरण एडम स्मिथ द्वारा वर्णित पिनकी बनावटका है। एक ही मनुष्य यदि पिन बनाने बैठे और उससे सम्बन्धित सारी क्रियाए वह खुद ही करता रहे तो दिनभरमें वह मुश्किलसे १०-१५ पिन बना सकता है। परन्तु एक मनुष्य धातुके मोटे तारको खीचकर बारीक तार बनाये दूसरा उसे सीधा करे तीसरा उसे काटे चौथा धिसकर उसे नुकीला बनाये पाचवा उसकी घुण्डी बनाये छठा गडी बिठाये और सातवा फिर उस पर मुलम्मा चढाये — इस तरह एक पिन बनानेके कामका उसने अठारह अलग अलग क्रियाओमें बाटनेका वर्णन किया है। इनमें से प्रत्येक क्रिया अलग अलग मनुष्य करता है। यदि यह मान लें कि एक मनुष्य अकेला ही सब क्रियाए करे तो एक दिनमें वह १५ पिन बना सकता है तो १८ मनुष्य दिनभरमें

२३० पिन बना सकते हैं। लेकिन जब प्रत्येक क्रिया अलग अलग मनुष्य करता है तब इन अठारह मनुष्योंके कामसे दिनभरमें २७०० पिन तैयार हो सकती हैं। आज तो कामका इस तरहका बटवारा बहुत आगे बढ़ गया है। फोर्डके मोटरके कारखानेमें मोटरके सारे हिस्से तैयार हो जानेके बाद सिर्फ उन हिस्सोंको जोड़कर गाड़ी खड़ा करनेके कामको पैंतालीस अलग अलग क्रियाओंमें बांट दिया गया है। ये सब क्रियाएं एक कड़ी बनानेके रूपमें की जाती हैं। इस कतारमें छह फुट प्रति मिनिटकी गतिसे काम होता है। मोटरके चौखटेका मडगार्ड पर बोल्ट लगानेसे कामका आरम्भ होता है। जो मनुष्य बोल्ट रखता है उसे ढिबरी नहीं बिठाना पड़ता। और जो मनुष्य ढिबरी बिठाता है उसे पेंच घुमाकर कसना नहीं पड़ता। ये क्रियाएं अलग अलग मनुष्य करते हैं। एक मनुष्य बोल्ट ही लगाया करता है दूसरा मनुष्य उस पर ढिबरी ही बिठाया करता है और तीसरा मनुष्य पेंच घुमाकर कसा ही करता है। इस तरह दसवें केन्द्र पर मोटर बन कर खड़ा होता है। फिर उसमें दूसरा सामान लगाया जाता है। चालीसवें केन्द्र पर मोटरमें पेट्रोल भरा जाता है। चवालीसवें केन्द्र पर रेडियेटरमें पानी भरा जाता है और पैंतालीसवें केन्द्र पर पूरा मोटर चालू होकरमें रास्ते पर आकर खड़ी हो जाता है। अब यदि एक या दो चार मनुष्य सारी मोटर जोड़नेकी सभी क्रियाएं करने लगें तो दिनभरमें वे मुश्किलसे एक या दो मोटरें जोड़कर चालू कर सकते हैं। इसके बजाय इस तरहकी व्यवस्थासे थोड़े मनुष्य सैकड़ों मोटरें जोड़कर चालू कर सकते हैं।

११ ये उदाहरण तो मशीनकी मददसे काम करनेके हुए। लेकिन बुनाईके हाथ-उद्योगका उदाहरण लें तो उसमें भी स्त्री ताना बनाती है फिर स्त्री और पुरुष मिलकर उस पर मांड चढ़ाते हैं। बादमें यह ताना करघे पर चढ़ाया जाता है। जुलाहा कपड़ा बुनता हो तब उसका लड़का नली भरकर देता है। और बुनते समय तार यदि टूट जाय तो जुलाहा करघे पर ही बैठा रहता है और उसकी स्त्री या लड़का उसे जोड़ देता है। अब यदि ये सब काम एक ही मनुष्य करने लगे तो तीन मनुष्योंके सहयोगसे किये जानेवाले कामका तीसरा भाग नहीं बल्कि शायद छठे या दसवें भागका काम ही वह कर सकता है। घासकी गंजी लगानेका उदाहरण लीजिये। कोई मनुष्य अकेला ही गंजी लगाने लगे तो वह मुश्किलसे थोड़ा काम कर सकता है। लेकिन जब कई मनुष्य एक एक हाथकी दूरी पर जमीन पर कतार बना लें और एकके हाथसे दूसरेके हाथमें और दूसरेके हाथसे

तोसरेके हाथमें घासकी पूलिया ऊपर पहुचाई जायें, तो गजी तेज गतिसे खड़ी हो जाती है। इन सब उदाहरणोंमें कामके विभागके साथ कामके सयोगका सिद्धात भी पाया जाता है। मोटर जोडने या गजी लगानेके काममें जसे कामका विभाग होता है वसे ही कामका सयोग भी होता है।

१२ यह बात ध्यानमें रखनेकी जरूरत है कि काय विभाग और काय-सयोग एक ही चीजके या एक ही सिक्केके दो पहलू ह। कोई भी चीज बनानेके लिए अनेक अलग अलग क्रियाए करनी पडती ह। इन क्रियाओंका पृथक्करण करके अलग अलग मनुष्योंमें अलग अलग क्रियाए बाट देना ही काय विभाग है। परन्तु इन अनेक क्रियाओंका उद्देश्य एक वस्तु या एक तरहका माल तयार करना होनेके कारण इन क्रियाओंका सम्बन्ध एक दूसरेके साथ जोडना पडता है और क्रियाओंके फलको एकत्र करना पडता है। इस प्रकार अलग अलग क्रियाओंके परिणामोंका एकीकरण करना काय सयोग है। कोई माल तयार करनेके लिए जितनी क्रियाए करनी पडती ह उनका विचार करके काय विभागमें कामके टुकडे किये जाते ह। काय-सयोगमें प्रत्येक मनुष्यके श्रमका स्वतत्र विचार करके इस बात पर नजर रखी जाती है कि एसी कितनी क्रियाओंको एकत्र करनेसे वस्तु तयार हो सकती है। काय विभाग जसे जसे बढता जाता है वसे वसे और उतनी ही मात्रामें काय-सयोग भी बढता जाता है। काय सयोग दो प्रकारका होता है। एक सादा और दूसरा मिश्र। एक काम करनेके लिए जब एक ही प्रकारका बहुतसा श्रम एकत्र करना पडता है तब वह सादा काय-सयोग कहलाता है। उदाहरणके लिए एक बडा लट्ठा उठाना हो तो बहुतसे आदमी मिल कर उसे उठाते ह। घर बनानेके लिए कई राज कई सुतार और कई मजदूरोंके कामका सयोग करना पडता है। यह मिश्र काय-सयोग कहलाता है। काय-सयोग या सहयोगका यह तत्त्व सारे समाजमें सवत्र दिखाई देता है। और समाज जसे जसे प्रगति करता जाता है वसे वसे इस तत्त्वका विकास होता जाता है।

१ यहा इस बातका उल्लेख करने जसा है कि हर धधेमें काय विभागके सिद्धातका एकसा प्रयोग नही हो सकता। धधेके स्वरूपके आधार पर काय विभागका प्रयोग कम-अधिक हो सकता है। उदाहरणके लिए कच्चे मालसे तयार माल बनानेके धधोंमें काय विभागका जितना विस्तार किया जा सकता है उतना विस्तार खेतीके धधेमें नही किया जा सकता। कारण यह है कि खेती-सम्बन्धी अलग अलग क्रियाए एक ही साथ या एक ही

समय करनेकी जरूरत नहीं होती। चप्पल बनानेके धंधेमें एक मनुष्य तले बनाता हो तो उसी समय दूसरा मनुष्य ऊपरकी पट्टियां तैयार कर सकता है। परन्तु जब जमीनमें जुताई चल रही हो तब कटाई नहीं हो सकती। इस तरह खेतीके धंधेमें तो एक ही मनुष्य एकके बाद एक सारी क्रियाएं कर सकता है।

१४ अब हम औद्योगिक काम विभागके लाभ-हानियोंकी चर्चा करेंगे।

औद्योगिक काम विभागके लाभ इस काम विभागका सबसे बड़ा लाभ यह है कि उतने ही श्रम और पूंजीसे उत्पादनकी मात्रा बहुत बढ़ाई जा सकती है और इसके फलस्वरूप माल सस्ता बनता है। क्योंकि

(१) एक क्रिया पूरी करके दूसरी क्रिया आरंभ करनेमें मजदूरको जो समय लगता है वह इसमें बच जाता है। जब एक ही मजदूर एक वस्तुके उत्पादनके लिए आवश्यक सारी क्रियाएं स्वयं अकेला करता है तब एक औजार रख देनेके बाद दूसरे औजारका उपयोग शुरू करनेमें और एक जगहसे दूसरी जगह उसे ले जानेमें उसका कुछ समय चला जाता है। फिर एक काममें लगे हुए मनको उसमें से हटाकर दूसरे काममें लगानेमें भी समय जाता है। मनुष्यको यदि एक ही काम करना हो तो उसका मन एकाग्र हो सकता है और इससे वह काम जल्दी होता है।

(२) मनुष्यको एक ही प्रकारका काम करना होता है इसलिए अभ्यासके कारण वह काम करनेकी उसकी कुशलता और गति बढ़ती है। टाइपिस्टकी कुशलता और गति तथा सराफकी दुकानके गुमाश्तोंकी रुपये गिननेकी गति और खरा-खोटा रुपया परखनेकी कुशलता इसके उदाहरण हैं। एक ही काम करते रहनेके कारण मनुष्य उसमें निष्णात बन सकता है।

(३) किसी भी वस्तुके उत्पादनके लिए आवश्यक अलग अलग क्रियाओंमें एक ही तरहके श्रमकी या एक ही तरहकी कुशलताकी जरूरत नहीं होती। इसलिए मजदूरोंको उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तिके अनुसार वर्गीकरण करके उन्हें योग्यताके अनुसार अलग अलग काम सौंपे जा सकते हैं। जिस काममें अधिक कुशलताकी जरूरत है वह काम कुशल मनुष्योंको सौंपा जा सकता है और जिसमें बहुत बुद्धि न लगानी पड़े वह काम कम कुशल मनुष्यको सौंपा जा सकता है। इसी तरह ज्यादा श्रमका काम बलवान मनुष्यको सौंप सकते हैं और कम श्रमका काम निर्बल मनुष्यको दिया जा सकता है। इस तरहकी व्यवस्थासे शारीरिक दोषवाले मनुष्यको भी उसके लायक काम सौंपा जा सकता है।

(४) धधकी जो क्रिया एक मनुष्यको करनी हो उस क्रियाको यदि वह सीख ले तो उसे काममें लगाया जा सकता है। इसलिए नये मनुष्यको धधा सिखलाने पहले कोई काम सीखनेमें अधिक समय नही लगाना पडता और अधिक दिन तक उम्मीदवारी भी नही करनी पडती।

(५) पूजी सामानमें बचत होती है। एक धधकी सारी क्रियाएं एक ही मनुष्यको करनी हो तो प्रत्येक मनुष्यके पीछे उस धधेके लिए आवश्यक हर तरहके औजारोका सेट रखना पडता है। लेकिन काय विभागके कारण प्रत्येक मनुष्यको उतने ही औजारोसे काम चल जाता है जितने उसकी क्रियाके लिए आवश्यक होते है।

(६) जसे जसे एक धधसे सम्बधित क्रियाके विभाग और उप विभाग होते जाते है वसे वसे प्रत्येक क्रिया बहुत आसान और आप्त सीधकर करने जसी सरल हो जाती है। इसलिए उस क्रियाके लिए मशीनका उपयोग करना बहुत आसान हो जाता है। मनुष्यकी अपेक्षा मशीनसे ही यह काम ज्यादा अच्छा और अधिक मात्रामें हो सकता है। इसलिए नये नये यत्रोकी खोज करनेकी तरफ मन जाता है और जसे जसे नये यत्रोकी खोज होती जाती है वसे वसे कामके उप विभाग बनते जाते है।

औद्योगिक काय विभागकी हानियां (१) काय विभागकी बडीसे बडी हानि यह है कि उसमें मजदूर मनुष्य न रहकर मशीन जसे बन जाते है। किसी मनुष्यको अपने जीवनके अतमें कहना पडता है कि मैने सारा जीवन पिनकी घुण्डी बनानेमें ही बिताया! यह मनुष्यके लिए कोई गौरवकी बात नही मानी जा सकती। उसने जीवनमें क्या सीखा या जीवनका क्या आनन्द भोगा?

(२) मनुष्यको जब एक पूरी वस्तु बनानी होती है तब अपने कामका परिणाम प्रत्यक्ष देखकर उसे अपने काममें आनन्द आता है। एक सुतारको सारी मेज खुद बनानी हो तब अपने काममें उसे जो आनन्द आता है वह आनन्द उसे उस स्थितिमें नही आता जब बहुतसी मेजोके एक खास भागके टुकडो पर ही उसे रन्दा घमाना होता है। अलग अलग प्रकारके अपने श्रम और कुशलताका एकीकरण करनेमें जिस विचार शक्ति और योजना शक्तिका प्रयोग मनुष्यको करना पडता है उसके प्रयोगका ऐसी उपक्रिया करनेवालेको मौका ही नही मिलता। इसलिए उसकी इस प्रकारकी शक्तियोका विकास नही होता।

(३) मनुष्यने यदि एक ही धधकी या धधके एक ही उप विभागकी कुशलता बढाई हो और किसी कारणसे वह धधा टूट जाय तो वह बेकार

बन जाता है। और दूसरे कामकी कुशलता न होनेके कारण तथा दूसरी तरहसे उसका विकास न हुआ होनेके कारण यह प्रश्न हल करना बहुत कठिन हो जाता है कि उस प्रकारका क्या काम दिया जाय।

(४) कामके इस तरहके उप विभागके कारण मनुष्यको प्रायः शक्तिसे बाहर काम करना पड़ता है। मान लीजिये कि चप्पल बनानेका काम पांच छह विभागोंमें बटा हुआ है। ऐसी हालतमें पट्टियां बनानेवालेको इस तरह काम करना ही चाहिये कि तले और दूसरी क्रियाएं करनेवालोंके साथ उसके कामका मेल बैठे। दूसरे लोग ज्यादा गतिसे काम करते हों तो उसे भी उनके साथ खिंचना पड़ता है। इससे भी अधिक ज्वलन्त उदाहरण तो हम फोर्ड कंपनीमें मोटरें जोड़नेके कामका ऊपर दे चुके हैं। वह काम एक कतारमें होता है और उस कतारमें प्रति मिनट छह फुटकी गतिसे काम होता है। एक केन्द्रसे दूसरे केन्द्र तक तेजीसे काम होता जा रहा हो तब बीचमें कोई मनुष्य दम लेनेको खड़ा रहना चाहे तो वह खड़ा नहीं रह सकता। क्योंकि आसपाससे काम ही उसे धकेलता आता है। जब हाथके बजाय यंत्रसे काम करना होता है तब इस तरहका तनाव अधिक पड़ता है। यंत्र जिस तरह चले उसी तरह मनुष्यको चलना पड़ता है। हाथकी कारीगरीकी अपेक्षा यंत्रोद्योगमें मनुष्य पर कामके उप विभागका ज्यादा बुरा असर होता है।

(५) कहा जाता है कि काम विभागके तत्त्वके कारण मनुष्य एक क्रियामें या एक विषयमें निष्णात हो जाता है। लेकिन यह सोचनेकी बात है कि मनुष्य यंत्रकी एक क्रियाके उपक्रियामें या ज्ञानकी एक ही शाखामें कुशल हो जाय तो वह जीवनके विकासके लिए इष्ट है या नहीं। सच्चे कुशल मनुष्यका एक लेखकने इस तरह वर्णन किया है, वह हर वस्तुके मूल तत्त्वको जानता है और साथ साथ एकाध वस्तुके बारेमें विस्तारसे सब-कुछ जानता है। ऐसा कुशल व्यक्ति अवश्य ही दुनियाके ज्ञान भण्डारमें कुछ वृद्धि कर सकता है। परन्तु आजकलके कुशल व्यक्ति एक उपक्रिया या उप विषयके बारेमें तो सब-कुछ जानते हैं परन्तु बाकी क्रियाओं और विषयोंके बारेमें घोर अज्ञान रखते हैं। ऐसी कुशलता मनुष्यको संकुचित और कूपमंडूक जैसा बनाकर दुनियाके लिए प्रायः नुकसानदेह साबित होती है।

१५ सार यह है कि काम विभागके जो बहुतसे लाभ गिनाये जाते हैं उनका संबंध केवल अधिक उत्पादनकी वृद्धिसे ही है। और उससे हानियां ये हैं कि उसके कारण मनुष्य पर अधिक तनाव पड़ता है, उसकी शक्तियां

कुंठित हो जाती है उसकी विचार-शक्ति और योजना-शक्ति मर जाती है और कारीगरकी स्थितिमें वह लाचार बन जाता है। मनुष्यको हानि पहुंचा कर तो हम कोई अर्थोत्पादन करना ही नहीं चाहिये क्योंकि अर्थ आखिर मनुष्यके लिए है मनुष्य अर्थके लिए नहीं। अर्थ साधन है मनुष्य-सुख साध्य है। इसलिए साधन प्राप्त करनेकी ऐसी पद्धति तो हमें कभी अपनानी ही नहीं चाहिये जो साध्यके हितमें ही बाधक हो जाय। यहां एक बात फिर ध्यानमें रखनी चाहिये कि किसी भी उद्योगको थोड़ीसी बड़ी बड़ी क्रियाओंमें बांट दिया जाय तो ऐसे कार्य-विभागसे हानि नहीं होती बहुत बार वह आवश्यक और वांछनीय भी होता है। क्योंकि इसमें उद्योगमें भी मनुष्यको दूसरोंकी मददकी जरूरत पड़ती ही है। लेकिन आजकल क्रियाओंके जो बहुत ही छोटे छोटे उप-विभाग कर दिये जाते हैं वे हानिकारक हैं। यंत्रोंकी जैसे जैसे खोज होती जाती है वैसे वैसे यह उप-विभागोंकी संख्या बढ़ती जाती है और यह मनुष्यके लिए अवश्य हानिकारक है।

प्रादेशिक अथवा भौगोलिक कार्य-विभाग

१६ मनुष्योंकी तरह अमुक प्रदेश किसी विशेष उत्पादन तथा धंधेके लिए विशेष अनुकूल या योग्य होते हैं। उष्ण प्रदेशमें जो वस्तुएं उत्पन्न हो सकती हैं वे ठंडे प्रदेशमें उतनी आसानीसे उत्पन्न नहीं हो सकतीं। इसके सिवा पहाड़ी प्रदेशकी पैदावार अलग होती है और समुद्र-किनारेकी पैदावार अलग होती है। समतल प्रदेशमें भी जहां बरसात अधिक होती है वहां एक पैदावार होती है और जहां पानी कम बरसता है वहां दूसरी पैदावार होती है।

१७ विभिन्न प्रदेशोंके आधार पर होनेवाला यह कुदरती कार्य-विभाग हमें स्वीकार करके ही चलना पड़ता है। पंजाबमें गेहूं और दालोंके लिए अधिक सुविधा है और बंगालमें चावलके लिए अधिक सुविधा है। अतः वहांके किसान इस बातका ध्यान रखकर ही खेती करते हैं। मलाबारमें नारियलकी पैदावार और उससे संबंध रखनेवाले धंधे ही मुख्य हैं। उन प्रदेशोंमें रहनेवाले लोग अपना जीवन भी उसीके अनुकूल बना लेते हैं। पंजाबियोंका मुख्य भोजन गेहूं और दालका होता है और बंगालियोंका मुख्य भोजन चावल और मछलीका होता है क्योंकि मछली वहां अधिक मिल सकती है। मलाबारके लोगोंके भोजनमें नारियलकी विविध वानगियोंका बहुत बड़ा हिस्सा रहता है।

१८ खेतीके धंधेमें मनुष्यको कुदरत पर जितना आधार रखना पड़ता है उतना दूसरे उद्योग-धंधोंमें नहीं रखना पड़ता। अलबत्ता यह सही है कि

दूसरे उद्योग-धंधोंमें भी जहां उनके लिए कच्चा माल आसानीसे मिल सकता हो, कारखानेको लकड़ी या दूसरी खानें नजदीक हों, जलवायु अनुकूल हो और मजदूरोंकी बहुतायत हो, उसी प्रदेशमें उस धंधेके चलनेकी अधिक सुविधा होती है। आजकल बहुतसे उद्योग तो बड़े पैमाने पर यानी शहरोंमें बड़े बड़े कारखानोंमें चलते हैं। ये कारखाने जिस शहरके नजदीक कुदरती सुविधाएं होती हैं वहीं खड़े होते हैं।

१९. हमारे देशमें सूती कपड़ेका उद्योग अहमदाबाद और बम्बईमें केन्द्रित हुआ है, क्योंकि पासके प्रदेशोंमें रुई बहुतायतसे मिल सकती है। सनका उद्योग कलकत्तेमें केन्द्रित हुआ है, क्योंकि सनकी पैदावार बंगालमें बहुत अधिक होती है। और लोहेका बहुत बड़ा कारखाना जमशेदपुरमें है, क्योंकि कोयले और लोहेकी खानें उसके पास हैं। इस तरह अमुक उद्योगको किसी एक शहरमें केन्द्रित करनेके दूसरे भी कुछ लाभ हैं। वे इस प्रकार हैं:

(१) कोई उद्योग जिस शहरमें केन्द्रित हो जाता है, उस शहरमें उस उद्योगके सबब रखनेवाले दूसरे उद्योग-धंधे — जैसे उस उद्योगके लिए जरूरी मशीनें बनानेके, मशीनोंके पुर्जे बनानेके तथा मशीनोंकी मरम्मतके उद्योग — चलते हैं। साथ ही कच्चे मालकी खरीद और पक्के मालकी बिक्रीका व्यापार तथा कारखानोंके लिए जरूरी स्टोर और दूसरे सामानका व्यापार भी चलता है। अगर शहरमें एकाध ही कारखाना हो तो इन दूसरे उद्योग-धंधों और व्यापारको चलानेकी सुविधा वहां नहीं हो सकती।

(२) बहुतसे कारखानोंके होनेसे उनके लिए जरूरी रेल और डाक-तारकी खास व्यवस्थाएं खड़ी करना सुविधापूर्ण होता है।

(३) ऐसे केन्द्रमें बड़े बड़े बैंक खुल जाते हैं। इसके सिवा वहां शेयर बाजार, रुई-बाजार जैसे खास बाजार भी चल सकते हैं।

(४) इस धंधेसे संबंधित विशेष कुशलतावाले कारीगर और निष्णात वहां बसनेके लिए आते हैं और हर कारखानेको अच्छेसे अच्छे आदमी पसन्द करनेका अवसर मिलता है।

(५) उस धंधेसे सबब रखनेवाले विभिन्न यांत्रिक और वैज्ञानिक कामोंकी तालीम देनेकी व्यवस्था ऐसे केन्द्रमें की जा सकती है और नये नये खोजोंको प्रोत्साहन मिलता है।

२०. यह तो एक प्रदेशके भीतरके प्रान्तिक काम विभागकी बात हुई। लेकिन इस तरहका काम विभाग एक हद तक अलग अलग देशोंके बीचमें भी होता है। जिस देशको जो माल उत्पन्न करनेकी अधिक सुविधा हो वह

देश वही माल उत्पन्न करे और अपनी जरूरतका दूसरा माल दूसरे देशोंसे जहां वह माल उत्पन्न करनेकी विशेष सुविधाएं हों मंगावे। इस तरहकी व्यवस्था स्वीकार करनेमें ही सारी दुनियाका अधिकसे अधिक लाभ है इस तर्कको सिद्धांतके रूपमें मानकर मुक्त व्यापारकी नीतिकी हिमायत की जाती है। इस नीतिका सहारा लेकर इंग्लैण्डने खेतीको लगभग छोड़ दिया है और वह केवल औद्योगिक देश बन गया है। ऐसा करना इंग्लैण्डके लिए हानिकारक सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि इंग्लैण्डके अधिकारमें अनेक उपनिवेश तथा खास करके भारत देश था। अपने लिए आवश्यक खुराक और अपने कारखानोंके लिए आवश्यक कच्चा माल वह अपने लिए लाभप्रद शर्तों पर इन उपनिवेशोंसे और भारतसे ले सकता था और अपना तैयार माल भी अपने अधीनस्थ देशोंके बाजारोंमें बेच सकता था। विशेषत भारतकी व्यापारिक लूटके बल पर ही इंग्लैण्ड अपनी यह नीति चला सका है। सब देशोंको ऐसी सुविधा नहीं मिलती। यद्यपि यूरोपके दूसरे देशोंने भी इस तरहकी स्थिति प्राप्त करनेकी भरसक कोशिश की है परंतु इसमें उन्हें इंग्लैण्ड जितनी सफलता नहीं मिली। इन सब देशोंके बीच चलनेवाली यह प्रतिस्पर्धा ही बार बार होनेवाले युद्धोंका कारण बनी है। पिछले दो विश्व युद्धोंने तो हद ही कर दी है। सत्य यह है कि कोई भी देश इस तरहका कार्य विभाग ईमानदारीसे और निःस्वार्थ वृत्तिसे माननेको तैयार ही नहीं। जहां किसी भी तरहका अनुचित लाभ उठानेकी वृत्तिसे दूर रहनेवाला और एक-दूसरेकी शक्तिको बढानेवाला शुद्ध सहयोग चलता हो वहीं इस तरहका कार्य विभाग लाभदायी माना जा सकता है। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक यही रास्ता अच्छा है कि हर देश खास तौर पर अपनी प्राथमिक आवश्यकताओंके बारेमें स्वयंपर्याप्त और स्वावलंबी बने।

२१ प्रादेशिक कार्य विभागके और अलग-अलग प्रकारके कारखाने अलग अलग शहरोंमें केंद्रित करनेके जो लाभ बताये जाते हैं और जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं उन पर भी यही नियम लागू होता है। इस बातकी भी जांच करनी चाहिये कि जब एक शहरमें एक उद्योगके बहुतसे कारखाने केंद्रित हो जाते हैं तब आसपासके प्रदेश पर उनका क्या असर पड़ता है। हमारे देशका इतिहास तो ऐसा है कि पहले इंग्लैण्डने हम पर व्यापारिक आक्रमण करके हमारे गांवोंके उद्योग धंधे नष्ट कर दिये। इस आक्रमणमें उसने हमारे शहरों और वहांके व्यापारियों और पूंजीपतियोंको बीचके दलाल बनाकर रखा। ये ही व्यापारी और पूंजीपति अब जरा अपने पैरों पर खड़े

होकर विदेशी व्यापार और उद्योगोंके साथ प्रतिस्पर्धा करके स्वयं वे उद्योग धंधे चलाने लगे हैं। लेकिन हमारे गांवोंको कंगाल और तबाह करनेकी क्रिया जरा भी नहीं रुकी है। जैसे इंग्लैंडके साथ हमारे देशका काम विभाग हमारे लिए हानिकारक था वैसे ही हमारे गांवों और शहरोंके बीचका प्रादेशिक काम विभाग भी हानिकारक है। इसमें गांवोंका भक्षण हो रहा है और केवल शहरोंका ही पोषण हो रहा है।

२२ हर प्रकारका काम विभाग — फिर वह समाजके अलग अलग वर्गोंके बीच हो, किसी उद्योगकी अलग अलग क्रियाएं करनेवालोंके बीच हो, एक देशके अलग अलग प्रदेशोंके बीच हो, शहरों और गांवोंके बीच हो या एक देश और दूसरे देशके बीच हो — तभी लाभदायक होता है जब वह काम विभाग जिन जिनके बीचमें हो उन सबको बल पहुंचाये और सब पक्षोंका उससे लाभ हो। वैसे हमारे परिवारोंमें सास-बहूका काम विभाग तो सबको मालूम है। सास बहूसे कहती है: "तेरे घरमें आनेसे अब हम दो जन हो गये। अब हम कामका बटवारा कर लें। खाना तू बनाना और मैं खाऊंगी। बिस्तर तू कर देना और मैं सो जाऊंगी।" आज उद्योग धंधोंमें आगे बढ़े हुए देशों और पिछड़े हुए देशोंके बीच, शहरों और गांवोंके बीच, पूंजीपतियों और मजदूरोंके बीच, मजदूरोंमें भी मुकादम और मजदूरके बीच, जमींदार और किसानके बीच तथा समाजमें ऊंचे माने जानेवाले और नीचे माने जानेवाले वर्णोंके बीच इसी तरहका काम विभाग है। इस सारे काम विभागकी रचना शोषण पर खड़ी है। काम विभागकी कसौटी इस मापदंडसे करनी चाहिये कि उससे किसीका शोषण न हो परन्तु सबका पोषण हो। इसी मापदंडसे काम विभागकी सीमा निर्धारित करनी चाहिये।

७

यंत्रोंकी मर्यादा

१ यह युग यंत्रोंका माना जाता है। वैसे तो मनुष्यने पहले-पहल कुल्हाड़ी बनाई और अपने हाथकी शक्ति कई गुनी बढ़ा ली, तभीसे वह एक तरहके यंत्रका उपयोग करने लगा था। परन्तु ऐसे जितने साधनों, हथियारों या औजारोंकी मनुष्यने खोज की, उन सबको गति देनेके लिए मानव-बलका अथवा मनुष्यके पाले हुए कुछ जानवरोंके बलका ही उपयोग होता था। इन सब साधनों या औजारोंको गति देनेके लिए भौतिक शक्तियोंकी — भाप और बिजलीकी खोज हुई, उसके बाद उत्पादनकी पद्धतिमें और मनुष्यकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थितिमें बहुत बड़ी क्रांति हुई है। मानव-जातिके आर्थिक जीवनमें जितने परिवर्तन तीन-चार हजार वर्षके इतिहासमें हो सके हैं, उनसे कहीं अधिक परिवर्तन इन खोजोंके कारण पिछले डेढ़ सौ वर्षोंमें हुए हैं।

२ सन् १७६९ में जेम्स वाट नामके अंग्रेजने अपने खोजे हुए भापसे चलनेवाले एंजिनका पेटेंट कराया और सन् १७७५ में अपना एंजिन अच्छी तरह चलाकर समाजके सामने रखा। सन् १७८५ में कातने और बुननेकी मशीन वाटके एंजिनसे चलने लगी। सन् १८०२ में फोर्थ और क्लाइड नदीकी नहरोंमें पहली स्टीमबोट चली। सन् १८२४ में रेलका प्रथम एंजिन चालू हुआ और सन् १८३७ में पहला स्टीमर या जहाज एटलांटिक महासागरके पार हुआ। इस तरह इस आधी शताब्दीमें भौतिक शक्तिके विविध उपयोगोंके कारण यंत्रयुग आरंभ हुआ। तरह-तरहकी भौतिक शक्तियोंको अधीन करके उपयोगमें लानेकी विद्याको यंत्रविद्या कहा जाता है। इस विद्यामें इस युगने खूब प्रगति की है। किसी भी देशको सभ्य कहलाना हो तो उसे अपने उद्योग-धंधोंमें, यातायातके साधनोंमें और जीवनके दूसरे व्यवहारोंमें यंत्रोंका उपयोग यथासंभव बढ़ाते जाना चाहिये। इसे आवश्यक और वांछनीय माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि किसी भी समाजको अपना जीवन-स्तर ऊंचा उठाना हो तो यंत्रका आसरा लेनेसे ही यह संभव हो सकता है। यदि आम जनताके सुख और कल्याणके गजसे ही इन सब परिवर्तनों और मान्यताओंके लाभ-हानिका माप निकाला जाय, तो यह मान लेना कठिन होगा कि दुनियाको उनसे विशेष लाभ ही

हुआ है। यंत्रसे लाभ अवश्य हुए हैं लेकिन कुल मिलाकर हानि अधिक हुई है। इसका विचार करके हमें यह निर्णय करनेकी आवश्यकता है कि हमारे लिए जहां जहां संभव हो वहां वहां यंत्र जारी करना अच्छा है या यंत्रकी कोई मर्यादा निश्चित कर लेना जरूरी है।

३ यंत्रका पूर्वपक्ष इस प्रकार है :

(१) यंत्रके उपयोगसे मनुष्यकी उत्पादन-शक्तिमें बहुत बड़ी वृद्धि हुई है। खेतीके लिए मनुष्य सिर्फ कुदालीसे खोदकर ही जमीन तैयार करे इसके बजाय यदि वह हलकी मदद्से हल चलाकर जमीन जोते तो बहुत ज्यादा काम कर सकता है। लेकिन यदि वह सादे हलके बजाय ट्रैक्टर काममें ले, तो वही अधिक जमीन उतने ही समयमें जोत सकता है। मनुष्य हाथ-करघे पर जितना कपड़ा बुन सकता है उसकी अपेक्षा भौतिक शक्तिसे चलनेवाला करघा (पावर लूम) चलाकर बहुत अधिक कपड़ा बुन सकता है। यंत्रोंकी इस तरहकी सहायतासे दुनियाके उत्पादनकी मात्रामें आज बहुत बड़ी वृद्धि हो गई है, और पहले जमानेमें जो चीजें राजा-महाराजा और अमीर लोगोंको भी दुर्लभ थीं उन्हें आज साधारण मनुष्य भी काममें लेने लगे हैं।

(२) यंत्रोंने मनुष्यों और पशुओंको जी-तोड़ मेहनतसे मुक्त कर दिया है। शहरोंमें ऊंची इमारतें बनानेके लिए भारी बड़ी वजनदार चीजें ऊपर चढ़ाते समय या मालसे भरे हुए जहाज खाली करते समय मजदूरोंको पहले लगातार जो भारी मेहनत करनी पड़ती थी वह अब नहीं करनी पड़ती। चालीस वर्ष पहले बम्बईकी ट्रामोंमें जब घोड़े जोते जाते थे तब बहुत बलवान घोड़े भी एक वर्षमें बेकार हो जाते थे। यह बात अब नहीं रही।

(३) कितना ही मानव-बल या पशुबल एकत्र करने पर भी जो भारी काम उससे कभी नहीं हो सकते थे वे काम आज यंत्र कर सकते हैं। उदाहरणके लिए, भौतिक शक्तिसे चलनेवाला फौलादी घन तीन फुट मोटे पत्थरको इस तरह कुचल डालता है मानो वह कोई मुलायम मिट्टी हो। इसी तरह मनुष्यसे कभी नहीं होनेवाले अत्यंत बारीक काम भी यंत्रसे हो सकते हैं; उदाहरणके लिए, एक इंचके करोड़वें हिस्सेकी मोटाई भी यंत्रसे नापी जा सकती है।

(४) यंत्रोंसे एक ही माप और एक ही तरहका माल बारबार तेज गतिसे बनाया जा सकता है।

(५) मालकी जाति और माप एकसे होनके कारण एक बारके लिये हुए नमूने परसे दूर दूरके व्यापारियोंको तार या डाक द्वारा भाव ठहराने और सौदा करनेमें सुविधा होती है। इस सुविधाके कारण बड़े व्यापारको बहुत प्रोत्साहन मिलता है। साथ ही एकसे निश्चित मापका माल उत्पन्न किया जा सकता है इसलिए मशीनके पुर्जे पहलेसे तैयार रख जा सकते हैं और जब जरूरत हो तब मिल भी सकते हैं। उदाहरणके लिए साइकिल, मोटर पंप या ट्रैक्टरके पुर्जे।

(६) यातायात और सन्देश भेजनेके साधनोंमें जो अद्भुत प्रगति हो गई है उसके कारण देश और कालका अन्तर बहुत घट गया है। मानो हमारी पृथ्वीका गोला बहुत छोटा हो गया है। अहमदाबादसे सूरत घोड़ा गाड़ीमें जाना हो तो ४–५ दिन लगेंगे। आज रेलसे लोग ५–६ घन्टेमें सूरत पहुँच जाते हैं और हवाई जहाजमें जाना होगा तो आध पौन घंटेमें ही पहुँच सकते हैं। इंग्लैंडसे हिंदुस्तान आनेमें नावसे ४–५ महीने लगते थे स्टीमरमें १५ दिन लगने लगे और विमानसे १–२ दिनमें चले जाते हैं। इसके अलावा तार व टेलीफोनसे संसारके किसी भी भागमें एक दो घंटेके भीतर सारे समाचार घूम जाते हैं। इस कारण यात्राकी और उसके जरिये ज्ञान और अनुभव प्राप्त करनेकी एक जगहसे दूसरी जगह माल ले जाने लानेकी और व्यापार रोजगार करनेकी सुविधाएं बहुत बढ़ गई हैं।

(७) यन्त्रोंसे अखबारों मासिक पत्रों और पुस्तकोंमें जो शिक्षा और प्रचारके बहुत बड़े साधन हैं अपार वृद्धि हुई है। इसके अलावा रेडियो ब्राडकास्ट और सिनेमा भी लोक शिक्षणमें बहुत बड़ी मदद देते हैं और आज यदि पूरी तरह मदद न दे सकते हों तो भी ये साधन ऐसे बनाये जा सकते हैं जिससे इनका अच्छा उपयोग करके अच्छी मदद ली जा सके।

(८) यन्त्रोंकी मददसे हुई वैज्ञानिक शोधोंके कारण रोगोंका निदान और उनका इलाज करनेमें बहुत सुधार हो सके हैं और इसीलिए पहले असाध्य माने जानेवाले रोगोंका इलाज भी आज अच्छी तरहसे हो सकता है।

(९) हमारे रोजके व्यवहारमें पानीकी, गटरकी बिजलीकी रोशनीकी बिजली और गैसके चूल्हेकी ट्राम और बस आदिकी सवारीकी और टेलीफोनकी सुविधाएं यन्त्रोंके कारण ही उपलब्ध हुई हैं। ऐसी सुविधाएं पहले बड़े शहरोंमें ही मिलती थीं परन्तु अब छोटे शहरोंमें भी मिलने लगी हैं।

बिजलीकी रोशनी और पानीके नल गांवोंमें भी पहुंचने लगे हैं। रेल और मोटर ठेठ दूर दूरके देहाती गांवों तक पहुंच गई हैं।

(१०) कुछ ऐसे मनुष्य भी जिनमें विचार करनेकी या बुद्धिका उपयोग करनेकी शक्ति ही नहीं होती यन्त्र पर काम करके जीविका कमा सकते हैं।

४ अब हम यन्त्रोंका उत्तरपक्ष प्रस्तुत करें

(१) यन्त्रोंका मनुष्य अर्थोपार्जन कम करता है इसमें कोई शंका नहीं। लेकिन एक नये यन्त्रकी खोज होनेके कारण पहले जिस काममें १० मनुष्य लगते थे वह अब एक मनुष्यसे हो सकता है। अतः ९ मनुष्य बेकार हो जाते हैं। इस सामान्य कथनको हमारे देशमें कपड़ेके उद्योगमें जो स्थिति पैदा हुई है उससे पूरा समर्थन होता है। यह हिसाब लगाया गया है कि जब हमारा देश कपड़ेके बारेमें पूरा स्वावलम्बी था तब बीस लाख हाथ करघे चलते थे। हमारे यहांकी कपड़ेकी मिलोंमें आज लगभग ८ लाख मजदूर काम करते हैं और उनसे हमारे सारे देशकी आवश्यकताका लगभग पूरा कपड़ा उत्पन्न हो जाता है। इन ८ लाख मजदूरोंमें धोजना कातना बुनना, रंगना छापना और धोना — सब प्रकारके काम करनेवाले आ जाते हैं। हमारी कपड़ेकी आवश्यकतायें आज बढ़ गई हैं। इसलिए इन आवश्यकताओंको हाथ-करघेसे पूरा करना हो तो तीस लाख हाथ-करघे चलने चाहिये। कपड़ेकी मिलोंके ८ लाख मजदूर हमारे तीस लाख जुलाहोंके अलावा बुनाईके काममें भिन्न भिन्न किस्मकी सहायता करनेवाली उनकी स्त्रियोंका इतने करघोंके लिए सूत कातनेवाले बहुत बड़े वर्गका और पिंजारे धोबी रंगरेज तथा करघे बनानेवाले सुतारों आदिका उत्कार बनाते हैं।

हमारा देश उद्योग-धंधोंके बारेमें पिछड़ा हुआ माना जाता है। और यह भी माना जाता है कि हमारे देशकी आबादी बहुत अधिक होनेके कारण उसमें बेकारीके लिए अवकाश रहेगा ही। परन्तु इंग्लैंड जैसे उद्योग-धंधोंमें आगे बढ़े हुए तथा एक ही समयमें सारे जगतका कारखाना बन जानेवाले और बहुत कम आबादीवाले देशोंमें भी आबादीके लिहाजसे बहुत बड़ी बेकारी पैदा हुई रोगकी तरह एक समस्या बन गई थी। थी इसलिए लिखा है कि यह सारा तर्क दूसरे महायुद्धके पहलेकी स्थितिको ध्यानमें रखकर लिया गया है।

(२) यन्त्रसे उत्पादन बढ़ता जरूर है लेकिन यह सोचनेकी बात है कि किसी वस्तु चीजोंका उत्पादन बढ़ा है। आजकल बड़ीसे बड़ी आवश्यकता

अन्न है लेकिन उसका उत्पादन बहुत नहीं बढ़ा है। उत्पादन बढ़ा है ऐसी कपड़ा, दूसरी मौज-शौककी चीजों, शराब और दवाओं तथा युद्धक शस्त्रास्त्रोंका। और यह उत्पादन हदसे ज्यादा बढ़ा है। आज किसी भी अखबारको खोलकर देखें तो उसमें बस विज्ञापन पाये जाते हैं? हर कपड़ेकी मिल अपने कामका बढ़ाकर विज्ञापन छपवाती है। दवावाले शक्तिकी दवाओंके और शरीरको सुन्दर बनानेके सचित्र विज्ञापन देते हैं। अंग्रेजी अखबार चार शौरसे शराब और सिगरेटके विज्ञापन देते हैं। सुगंधित तेल, पाउडर, टूथपेस्ट, साबुन आदिके विज्ञापन भी बड़ी संख्यामें देखनेमें आते हैं। इतने अधिक विज्ञापन ही यह बता देते हैं कि ये चीजें स्वाभाविक आवश्यकताकी नहीं हैं। इसलिए झूठे प्रलोभन देकर आवश्यकतायें उत्पन्न करनेका प्रयत्न करना पड़ता है। सारे यन्त्रोद्योगी देश अपने अतिरिक्त उत्पादनको दूसरे देशोंमें बेचनेके लिए आपसमें प्रतिस्पर्धा करते हैं। इसका परिणाम युद्धके रूपमें आता है। इसके अलावा युद्धके शस्त्रास्त्र बनानेवाले कारखानेदार भी युद्धकी राह देखते रहते हैं। इस तरह यह अधिक उत्पादन युद्ध और विनाशका कारण बन जाता है।

यन्त्रोंसे होनेवाले अधिक उत्पादनके कारण धनवान वर्गने जो अपने साथियोंके साथ पुराने जमानेके राजा-महाराजाओं और अमीरोंसे कुछ बढ़ा है मौज-शौक और भोग-विलासकी चीजें बढ़ी हैं। परन्तु आम लोगोंकी दरिद्रता इस अधिक उत्पादनसे कम नहीं हुई है।

(३) इस गलत तरीकेसे होनेवाले आवश्यकतासे अधिक उत्पादनके कारण आजका जमाना पागलोंकी तरह कुदरती साधन-संपत्तिका तेजीसे विनाश कर रहा है। इसके विरुद्ध कुछ वैज्ञानिकों और अर्थशास्त्रियोंने बहुत गंभीर चेतावनी देना शुरू कर दिया है। वे कहते हैं कि मानव इतिहासके आरंभसे लेकर १९वीं शताब्दीके अन्त तक जितने खनिज पदार्थोंका हमने उपयोग किया होगा उससे बहुत अधिक खनिज पदार्थोंका हमने पिछले चालीस वर्षोंमें उपयोग कर डाला है। कोयला, तेल, लोहा, तांबा आदि खनिज पदार्थ ऐसे हैं जिन्हें जमीनके भीतर तैयार होनेमें हजारों बल्कि लाखों वर्ष लगते हैं। ये चीजें हम जितनी लेते हैं उतनी हजार दो हजार वर्षके हिसाबसे गिनें तब तो सदाके लिए कम हो गई कही जायगी। पिताकी पूंजी उड़ा देनेवाले अपव्ययी पुत्रकी तरह हम इन चीजोंका उपयोग करने लगे हैं। मिनरल रिसोर्सेज फार फ्यूचर पापुलेशन (भावी संतानके लिए खनिज संपत्ति) नामक पुस्तकमें कहा गया है कि खनिजों सम्बन्धी जानकारीसे

मालूम होता है कि थोड़े ही समयमें खनिजोंकी मात्रा घट जायेगी अथवा जमीनमें से उन्हें निकालनेकी कीमत बेहद बढ़ जायगी। आज जिस मात्रामें हम खनिज पदार्थोंका उपयोग करने लगे हैं उसी मात्रामें उनका उपयोग यदि होता रहा तो वर्तमान जनसंख्याके लिए आवश्यक मात्रामें खनिज पदार्थ मिलना थोड़े समयमें बहुत कठिन हो जायगा।

और यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि इतना बड़ा उपयोग इन पदार्थोंका सारे मनुष्य-समाजके सुख या हितके लिए नहीं होता बल्कि थोड़ेसे मनुष्योंके भोग विलासके लिए और एक-दूसरेके संहारके लिए होता है।

दूसरी कुछ कुदरती संपत्ति ऐसी है, जो हमारे काममें आनेके थोड़े बाद फिर उत्पन्न हो सकती है। जैसे लकड़ी घास वगैरा। इनका भी बिना विचारे बिगाड़ करनेमें यन्त्रोंका बहुत बड़ा हाथ है। अमरीकामें प्रतिवर्ष जितने पेड़ उगाये जा सकते हैं उनसे चार गुने अधिक पेड़ कागज बनानेके लिए लकड़ी और घास प्राप्त करनेमें काट डाले जाते हैं। इस हिसाबसे तीस वर्षमें वहाके सभी जंगल साफ हो जायंगे। और छापनेकी कला जैसे जैसे प्रगति करती जाती है वैसे वैसे हम कागजका अधिक बिगाड़ करते जाते हैं। युनाइटेड स्टेटसमें जो कुछ छपता है उसका आधा भाग विज्ञापनोंसे सम्बन्ध रखता है। सामान्यतः अखबारोंमें ४० से ७५ प्रतिशत स्थान विज्ञापन ले लेते हैं। न्यूयार्कके एक अखबारके कागजके लिए लकड़ीका जितना माल चाहिये उसके लिए प्रतिवर्ष दो हजार एकड़ जंगल साफ हो जाता है। यह हिसाब लगाया गया है कि डाकमें जितना माल पड़ता है उसका ८० प्रतिशत भाग विज्ञापनों और प्रचार-साहित्यका होता है। इसमें से बड़ा हिस्सा तो पढ़े बिना ही रद्दीकी टोकरीमें फेंक दिया जाता होगा। अमरीकामें खेती मशीनोंसे होती है। इस बारेमें जे० रसल स्मिथ कहते हैं "हम दुनियाके दूसरे देशोंकी अपेक्षा जमीनको कम बहुत ज्यादा लूट रहे हैं। और ऐसा करके हम आर्थिक सत्यानाशको न्योता रहे हैं। खानिज अर्थशास्त्रमें मि० ग्रेग कहते हैं "किसी भी ऐसी संस्कृतिको जो लम्बे समय तक टिकना चाहती हो, अपना पूंजी और शक्तिका जमा-खर्च पक्केके समान रखना सीखना चाहिये अर्थात् पानी हवा और सूर्यके अटूट शक्ति-भंडारमें से प्रतिवर्ष जितनी मिल सके उतनी ही शक्ति उसे खर्च करनी चाहिये।

(४) अधिक उत्पादन और उसकी बिक्रीकी घातक प्रतिस्पर्धाका एक बहुत बुरा परिणाम यह हुआ है कि मानवी जाति दिनादिन ज्यादा हल्की

होती जाती है। इसका एक कारण यह भी है कि अनजान ग्राहकके और अनजान बाजारके लिए माल तैयार करनेवाले कारखानदारकी वृत्तिमें और जान हुए तथा प्रतिदिनके ग्राहकके आडरके अनुसार अथवा स्थानीय और जान हुए बाजारके लिए माल तैयार करनेवाले कारीगरकी वृत्तिमें बडा भेद होता है। एक कारखानदारने एक सभामें कहा था कि हमारी नीति पहले मालको आकर्षक बनानेकी होती है बादमें सस्ता बनानेकी और अन्तमें उसकी जाति और टिकाऊपनका विचार करनेकी होती है। इस एक वाक्यमें आजकलकी सारी व्यापारी दुनियाकी मनोभाव प्रकट होता है। और जहा उत्पादनका सारा स्तर ही इस तरहका हो वहा अच्छा, टिकाऊ विशेष सुविधावाला और खरा माल बाजारसे गायब हो जाय और उसकी जगह पर कमजोर हलका नकली और हानिकारक माल बाजारमें भर जाय तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहा। हानिकारक इसलिए कहा गया है कि आज कल खानेकी चीजोंमें धोखेबाजी और मिलावट बहुत बढ गई है। शहरा और गावोंम शुद्ध और अच्छा घी-दूध किसी भाग्यवानको ही मिल सकता है। घीमें वनस्पति घीकी जो तेलका बना हुआ होता है मिलावट होती है तिलके तेलम मूगफलीका तेल मिला दिया जाता है। और गहूके बदले बाजारसे आटा लायें तो हल्के अनाजके आटेकी मिलावटवाला आटा मिलता है।

इस सार जरूरतसे ज्यादा और नकली मालको बचनेके लिए आखोंमें धूल झोकनेवाले विज्ञापन मोहक पैकिंग और सेल्समनोंके अनेक प्रकारकी युक्तियावाले झूठ प्रचार—इन सबमें जो गलत खर्च और बिगाड होता ह सो तो अलग ही है।

(५) अब हम इस बातका विचार करग कि यन्त्रो पर काम करने वाले मजदूरोंके शरीर और मन पर कसा असर होता है। बडे कारखानोंमें बन्द और गरम हवामें तथा मशीनोंकी भयंकर आवाजोंके बीच घण्टो तक लगातार काम करनेके कारण मजदूरोंके ज्ञानतंतुओं पर बहुत जोरका तनाव पडता है उनके शरीर निर्बल हो जाते ह और इसके फलस्वरूप उनकी आयु घट जाती है। इसके सिवा यन्त्र पर काम करनेसे मनुष्य अधिकतर यन्त्र जसे बन जाते ह। जसे जसे यन्त्रविद्यामें प्रगति होती जाती है वसे वसे एक एक उद्योगकी अलग अलग क्रियाओंके अधिकाधिक उप विभाग होते जाते ह और हर क्रियाको ज्यादासे ज्यादा सादी सरल और एकसी बनानेकी तरफ झुकाव बढता जाता है। हर क्रियाको फूलप्रूफ यानी जिसम मूर्ख मनुष्य

भी भूल न कर सके ऐसी बनानेकी कोशिश की जा रही है। यदि इस तरह एक ही क्रिया सारे दिन और जन्मभर करनेवाला मनुष्य बुद्धिमान होने पर भी मूर्ख बन जाय तो इसमें आश्चर्य क्या है?

इस तरह लगातार एक ही काम प्रतिदिन करते रहनेसे मनुष्यमें जड़ता आती है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि कारखानेके शोरगुलमें काम करनेके बाद मन बहलानेके लिए कोई शांत या सौम्य मनोरंजन उसे अच्छा नहीं लगता। उसकी भावनाएं इतनी जड़ हो जाती हैं कि जोरदार नाच, मद्यपान, सिनेमाके सनसनी और कंपकंपी पैदा करनेवाले दृश्य — इस तरहकी अत्यंत उत्तेजित करनेवाली चीजोंमें ही उसे आनंद आता है। इसके सिवा उसकी सामाजिक वृत्तियां भी मंद हो जाती हैं। उसके जीवनमें से यह विचार चला जाता है कि दूसरेकी भावनाओं और सुख-सुविधाओंकी हमें परवाह करनी चाहिये। और इस तरह वह समाजके लिए असुविधाजनक और भाररूप बन जाता है।

(६) यंत्रोद्योगवाले धंधोंके मजदूरोंमें रोगोंकी — खास तौर पर मानसिक रोगोंकी — मात्रा बढ़ी है। बहुतसे मानसिक रोग तो बेकारीके कारण होते हैं और बेकारी इन यंत्रोंका सीधा और बड़ा परिणाम है। बेकार मनुष्य घर बैठा बैठा ही चिन्तासे इतना सूख जाता है कि उसका दिमाग कमजोर पड़ जाता है। कुछ काम — जैसे टीन या कोयलेकी खानोंके भीतरका काम, गटरोंके अंदरका काम और शराब बनानेवाले कारखानोंमें किया जानेवाला काम — शरीरको नुकसान पहुंचानेवाले होते हैं। और ऐसे धंधोंमें मृत्युकी संख्या अधिक होती है। सबसे अधिक प्राणघातक चीजें दो हैं — (१) शराब (२) धूल और धुआं। ये दोनों चीजें मानो बड़े कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंके जीवनके साथ सदाके लिए जुड़ जाती हैं। धूल और धुआं यंत्रके साथ आते हैं और शराब यंत्रके कारण आती है।

(७) और इस शारीरिक हानिसे भी बड़ी हानि तो यह है कि मनुष्य स्वयं जो काम क्या करता है, उसमें जो तालीम उसे मिलनी चाहिये तथा जो आनंद और सन्तोष उसे अनुभव होना चाहिये वह इस यंत्र पर किये जानेवाले काममें नहीं होता। सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन कहते हैं: बड़ी मिलों और बड़े कारखानोंमें काम करनेवाले हजारों लोगोंमें से बहुतोंकी कलाकी समझ करने और उसका आनन्द लेनेकी शक्ति और स्फूर्ति नष्ट हो गई है। पुराने जमानेके सुनार और राजगीर आजकलके-से राजनीतिक अधिकार कम होने पर वेतन और सुख-सुविधाएं भी शायद

कम मिलती होगी फिर भी वे आजके सुनार और राजसे अधिक सुखी थे क्योंकि उन्हें अपने काममें धधेमें आनन्द मिलता था। उन्हें मतपेटीमें पास जाकर मत नहीं देना होता था इसलिए हमारे आजके कारीगर — जिन्हें मत देनेका अधिकार है — वह सकते हैं कि वे तो गुलाम थे। लेकिन उनके काममें उनके जीवनका आनन्द प्रगट होता था। प्रत्येक शिल्पकार या राज लुहार या सुतार एक बड़े सहयोगी समूहका सदस्य होता था और उसे छोटी आयुसे ही अपने धधेकी कुंजियोंका ज्ञान कराया जाता था। सौन्दर्यका सर्जन करनेकी तीव्र इच्छा उसके मनमें सर्वोपरि होती थी। आजकल एक धधेके कई विभाग हो गये हैं और एक एक मनुष्य एक पूरे धधेके बजाय उसकी किसी खास क्रियामें ही निष्णात होता है। इस कारण कारीगरोंको अपने धधे और कला-कौशलका जो अभिमान था वह जाता रहा। अब धधा एक बाजारू चीज बन गया है।' (हिंदू जीवन-दर्शन पृष्ठ ११६–११७)

(८) इस यन्त्रयुगमें हमारे उपयोगकी चीजें जस जसे हमें अधिकाधिक मात्रामें तैयार मिलती जाती हैं वैसे वैसे अपने आसपासकी परिस्थितिमें से साधन और सुविधाएं पैदा करके अपनी आवश्यकतायें पूरी करनेकी हमारी शक्ति कम होती जाती है। शहरोंमें विपुल साधन-सामग्री और सुविधाओंके बीच रहनेवालेको गांवमें कुदरतके नजदीक और कुदरती ढंगसे रहनेका मौका पड़ने पर उसके कैसे बुरे हाल होते हैं यह बहुतोंने देखा होगा। इस तरहके बुरे हाल न हों इसके लिए स्काउटकी तालीममें हमें इस तरहके क्लास चलाने पड़ते हैं। पहले जो कुदरती तौर पर मिल सकता था उसे जुटानेके लिए अब बड़ी योजनाएं बनानी पड़ती हैं। एक बहुत ही छोटा उदाहरण लें। गैस या बिजलीका चूल्हा जलानेवालेको अंगीठीमें आग जलाना नहीं आता या बटन दबाकर रोशनी करनेवालेको दियासलाईसे दिया जलाना नहीं आता यहां तक स्थिति पहुंच जाती है। यन्त्रोंके कारण हम अपने हाथोंसे काम लेनेकी कला और बनावटी साधनोंकी मददके बिना कुदरती परिस्थितिमें रहनेकी शक्ति खो बैठे हैं और अधिकाधिक अपंग बनते जा रहे हैं।

(९) इस यन्त्रयुगमें शहर विस्तारमें और संख्यामें दिनोंदिन बढ़ते जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि शहरोंमें सुख और आरामके साधन खूब बढ़ गये हैं। परन्तु उनका लाभ शहरके ऊपरी वर्गके लोगोंको ही मिलता है। बाकीके अधिकांश लोगोंके भाग्यमें तो शहरकी कंगाली और गन्दगी भोगना ही लिखा

होता है। और सुख-सुविधाओंमें भी तरह तरहकी पेटण्ट दवाएं, साबुन, लोशन, टूथपेस्ट, हजामतका सामान, ग्रामोफोन, रेडियो, सिनेमा, ट्राम, मोटर, बस, बिजलीकी रोशनी आदि ही बढ़े हैं। परन्तु क्या उस ऊपरी वर्गको भी ताजी, पौष्टिक और शुद्ध खुराक अधिक मिलती है? और क्या उन सारी सुख सुविधाओंके साथ साथ मजदूरोंके गंदे झोंपड़े, शराबकी दुकानें, गंदा और बीमारी फैलानेवाला खाना देनेवाले होटल, वेश्याघर, डाक्टर, अस्पताल, दुर्घटनाएं — ये सब भी नहीं बढ़े हैं? और शहरोंमें शोरगुल और कान फोड़नेवाली आवाज कितनी ज्यादा बढ़ी है? इनके कारण ज्ञानतंतुओंकी कमजोरीसे दुःख भोगनेवाले मनुष्योंकी संख्या बढ़ती ही जाती है। धुएंकी तकलीफके मारे शहरोंमें श्वासोच्छ्वासके रोग भी बढ़ते जाते हैं।

(१०) विनाशकी खोजों और तरह-तरहके यत्रोंके उपयोगसे आजकलकी युद्ध-पद्धतिमें क्रांतिकारी परिवर्तन हो गये हैं। युद्धकी शस्त्र-सामग्रीमें आक्रमण और विनाशके साधनोंकी जितनी खोज और प्रगति हुई है उसके हिसाबसे बचावके साधनोंकी खोज और प्रगति कुछ भी नहीं हो सकी है। पहलेके युद्धोंमें सीधा हिस्सा लेनेवाले सैनिक ही घायल होते या मरते थे। लेकिन आजकलके युद्धमें रणभूमिसे दूर रहनेवाले असैनिक लोग — बच्चे, बूढ़े, बीमार और स्त्रियां कोई भी सुरक्षित नहीं हैं। जिस सम्पत्तिके निर्माणमें बरसों लगे हों उसका पलभरमें नाश किया जा सकता है।

उपसंहार

५. लेकिन यंत्रकी इन सब बुराइयोंके बारेमें कहा जाता है कि ये सब यंत्रोंके दुरुपयोगके परिणाम हैं। आज यंत्र पूंजीपति वर्गके कब्जेमें होनेसे ये सब बुराइयां पैदा होती हैं। परन्तु यंत्रों पर समाजका अधिकार स्थापित कर दिया जाय और उनका उपयोग समाजके कल्याणके लिए ही किया जाय, नफेके लिए नहीं, बल्कि लोगोंको जिन चीजोंकी वास्तवमें जरूरत हो उनके उत्पादनके लिए ही यंत्र चलाये जायं, तो ऊपर बताई हुई बहुतसी बुराइयां टाली जा सकती हैं। उदाहरणके लिए, उत्पादनका नियमन करके नियमित नुकसान पहुंचानेवाली अथवा अनिश्चित चीजोंका उत्पादन और उसके सिलसिलेमें होनेवाला बिगाड़ रोका जा सकता है। जनताकी आवश्यकताओंका अन्दाज लगाकर उसके अनुसार उत्पादन किया जाय तो बिक्रीकी सब

क्या यह कहा जा सकता है कि यंत्रयुगसे पहलेके जमानेमें रास्ते और मकान अधिक स्वच्छ और हवा प्रकाशवाले थे?

आढ़तियों और दलालोंका नफा तथा उत्पादकों और व्यापारियोंके बीचकी प्रतिस्पर्धा भी रोकी जा सकती है। मजदूरोंके कामके घण्टे घटाये जा सकते हैं, उन्हें रहनेको अच्छे मकान दिये जा सकते हैं और अन्य अनेक तरहसे उनकी स्थिति सुधारी जा सकती है। यह बात मान लें तो भी कुछ बुराइयां तो यंत्रकी जड़में ही भरी हैं और वे मिटाई नहीं जा सकतीं। उदाहरणके लिए मनुष्यने जीवनमें जहां तहां यंत्र घुस गये हैं इसलिए सारे जनसमाजको यंत्रोंके निष्णात-वर्ग पर ही निर्भर रहना पड़ता है। हर चीज तैयार मिल जानेमें मनुष्यकी कुदरती शक्तियोंके विकासके लिए गुंजाइश नहीं रहती — कुदरतके पास रहनेवाले मनुष्यमें कष्ट श्रम सहन करनेकी जो शक्ति और किसी भी नई स्थितिका सामना करनेकी जो सूझ-बूझ होती है, वह यंत्र-संस्कृतिमें नष्ट हो जाती है। फिर यंत्रों पर जो लोग काम करते हैं उनमें से अधिकतरको अपने कामसे जो शिक्षा और आनन्द मिलना चाहिये वह नहीं मिल पाता। इससे भी उनकी शक्तियां कुंठित हो जाती हैं और उनका जीवन नीरस बन जाता है। जब तक यंत्रोंको कोयलेके बिना चलानेकी युक्ति हम खोज नहीं लेते तब तक धुएंके कष्टसे नहीं बच सकते। फिर बड़े यंत्रों, रेलों और हवाई जहाजोंके साथ शोरगुलकी तकलीफ तो अनिवार्य रूपमें लगी ही हुई है। यंत्र-संस्कृतिका एक अपरिहार्य लक्षण यह है कि उसमें जीवन उतावलीवाला किसी भी तरहकी निश्चितता तथा शांतिसे रहित और धांधली भरा हो जाता है। उसके कारण दुर्घटनाओं और मानसिक रोगोंकी मात्रा बढ़ती जाती है। यंत्रोंके साथ जुड़ी हुई एक अनिवार्य बुराई यह भी है कि उनके कारण कुदरती साधन-संपत्तिका बहुत अधिक बिगाड़ होता है और युद्धमें यंत्रोंके उपयोगसे बहुत बड़े पैमाने पर बरबादी होना भी अनिवार्य है।

६. हम यंत्रोंके लाभों और बुराइयोंका विचार कर चुके हैं। उनके जो लाभ बताये जाते हैं उनमें समाजका शुद्ध लाभ ही हो सो बात नहीं। इसी तरह उनकी बुराइयोंमें से कुछ ऐसी हैं जो टाली जा सकती हैं और कुछ ऐसी हैं जो टाली नहीं जा सकतीं। इसलिए इस चर्चा परसे इतना तो निश्चित हो ही जाता है कि हर कहीं यंत्रोंको दाखिल कर देना अच्छी बात नहीं। इसी तरह यंत्रमात्रका बहिष्कार कर देना भी अच्छा नहीं। अतः इस बातका विवेक करना चाहिये कि कहां यंत्रोंको दाखिल किया जाय और कहां नहीं। किसी भी धंधेमें यंत्र दाखिल किये जायें उससे पहले यह विचार करना चाहिये कि यंत्रोंके उपयोगसे उस धंधेमें लगे हुए मजदूरों

पर क्या असर होगा? और उनके सामाजिक और आर्थिक परिणाम क्या आयेंगे? यदि यंत्र दाखिल करनेसे मजदूर बेकार हो जाते हों तो उनकी बेकारी दूसरी तरह दूर की जा सकती है या नहीं? मान लें कि बेकारी थोड़े समयमें दूर की जा सकती है तो बेकारीके समयमें इन मजदूरोंके निर्वाहकी जिम्मेदारी जिनके लाभके लिए यंत्र लगाये गये हों उन पर डाली जा सकती है। लेकिन बेकारी स्थायी बनती हो तो इस बड़ी हानिकी तुलनामें यंत्र दाखिल करनेसे होनेवाला छोटा लाभ छोड़ देना चाहिये। फिर यह विचार भी करना चाहिये कि यंत्र दाखिल करनेसे हाथकी कारीगरी और कला पर तथा उस यंत्रको चलानेवाले मनुष्यके मन और शरीर पर क्या असर होगा। अगर इन बातोंके लिए खराब असर होता हो तो ऐसे उदाहरणमें हम यंत्रको साफ छोड़ देना चाहिये। संक्षेपमें किसी भी धंधेमें यंत्र दाखिल करनेसे पहले यह जांच कर लेनी चाहिये कि उससे मनुष्यके जीवन पर कुल मिलाकर बुरा असर होगा या अच्छा।

७ आज दुनियामें यह स्थिति हो गई है कि प्रचलित आर्थिक विचार प्रणालियोंसे बिलकुल भिन्न और नतीजे लानेवाले उपायोंसे काम लेकर भी यदि हम थोड़े समयमें सब-व्यापक बनी हुई बेकारीकी बुराईको दूर न करेंगे तो यह यंत्रयुग जल्दी ही क्रांतियों और युद्धोंको जन्म देकर हमारा सर्वनाश कर डालेगा। जिस हद तक यंत्र समाजके सभी वर्गोंकी समृद्धि साधनेका साधन बनते हैं उस हद तक वे स्वागत करने लायक हैं। परन्तु यंत्रोंके कारण बड़े उद्योगोंमें आगे बढ़े हुए देशोंमें तथा इन देशोंके साम्राज्यवादी शोषणके शिकार बने हुए नये उपनिवेशों और बड़े उद्योगोंमें पिछड़े हुए देशोंमें ये यंत्र लाखों नहीं बल्कि करोड़ोंकी बेकारी और गरीबीके कारण बन जाते हैं और इसलिए भयंकर अभिशापका रूप ले लेते हैं। अतमें हम यह सूत्र याद रखना चाहिये कि यंत्र मनुष्यके लिए है, मनुष्य यंत्रके लिए नहीं है। इसलिए यंत्रका स्थान जन-समाजके सेवकका है। उसे मालिक बनकर नहीं बैठने देना चाहिये।

८ अब हम इस बात पर विचार करें कि हमारे देशमें यंत्रोंका क्या स्थान है। हम देख चुके हैं कि यंत्रमें मुख्य प्रश्न भौतिक शक्तिके उपयोगका है। लेकिन हमारे देशमें सभी उद्योगोंको भौतिक शक्तिसे चलानेकी जरूरत नहीं, क्योंकि आज हमारे यहां अपार मानव-शक्ति और पशु-शक्ति बेकार पड़ी रहती है। यंत्रोंके आनेके बाद बड़े उद्योगोंने जिस हद तक ग्रामोद्योगोंका नाश किया उसी हद तक यह बेकारी बढ़ी है। इसलिए इसमें कोई शक नहीं कि मनुष्यों और पशुओं द्वारा कामके लिए पैदा हुए नाना प्रकारके औजार और

इस कारण भूरा रखकर हम भौतिक शक्तिका उपयोग करते रहें। हमारे देशमें यंत्र याना भौतिक शक्ति दाखिल करते समय पहला विचार हम यही करना चाहिये कि इस कामके लिए मानव शक्ति या पशुशक्ति पर्याप्त मात्रामें हो तो हम इस कामके लिए यंत्र नही चाहिये। परंतु जो काम समाजके लिए अत्यंत उपयोगी हो और जो मानव शक्ति और पशुशक्तिसे न हो सकता हो या जिसमें मनुष्यों और पशुओं पर बहुत ज्यादा बोझ पड़ता हो एसे कामके लिए भौतिक शक्तिका जरूर उपयोग किया जाना चाहिये। इस तरह इस तो खेतोंमें कपडके धधमें और सनीक सहायक तथा पोषक बहुतर ग्रामोद्योगोंमें यंत्र याना भौतिक शक्तिके उपयोगकी गुंजाइश नहीं है। यंत्र कितने आदमियोंका काम कर डालते है इसका हिसाब लगाकर एक लेखक बताते है कि अमरीकाको यंत्रोंके जरिये प्रति मनुष्य ३६ गुलाम मिल जाते है। अब यदि अमरीकासे बहुत ज्यादा आबादीवाला और कम कुदरती साधन-संपत्तिवाला हमारा देश अमरीकाकी नकल करने लगे और प्रति मनुष्य ३६ यंत्र-गुलाम रखे तो ४० करोडसे सवा करोड मनुष्योंके लिए ही काम करना जरूरी रहे और इसलिए इतने ही मनुष्योंको जीनेका अधिकार रहे।

८

बड़े पैमाने पर उत्पादन

१ सब प्रथम यूरोपमें और फिर दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें यंत्रोद्योग आरंभ हुए उससे पहले सारा उत्पादन छोटे पैमाने पर होता था। कारीगरोंको एक जगह एकत्र करके उनसे काम लेनेवाले कारखाने तो थे परंतु वे संख्यामें थोडे और आजकलके कारखानोंकी तुलनामें बहुत छोटे थे। भौतिक शक्तिका उपयोग करनेकी खोज होनेके बाद यह स्थिति बदल गई है और पिछडे हुए माने जानेवाले देशोंमें भी बडे बडे कारखाने खडे होने लगे है। पूंजी और श्रम एसे कारखानोंमें केन्द्रित होते है।

२ बहुतसे आदमियोंकी थोडी थोडी पूंजी शेयरके रूपमें इकट्ठी करके मर्यादित जिम्मेदारीवाली कंपनियां स्थापित करनेकी सुविधा कानून द्वारा हो जानेके बाद बडी बडी कंपनियां बनी। एक बडी कंपनीके शुरू होने पर बहुतसे छोटे छोटे कारखाने और छोटी छोटी पेढियोंका काम बंद हो जाता या वे बडी कंपनीमें मिल जाती। इस तरह छोटी छोटी प्रतिस्पर्धायें कम होने लगी। लेकिन बडी बडी कंपनियोंके बीच तो प्रतिस्पर्धा जारी ही रही।

उस गतिके लिए इन बड़ी बड़ी कंपनियोंमें भी संयुक्त मण्डल बनानेकी प्रथा अब अस्तित्वमें आई है। बड़ी बड़ी कंपनियाँ संयुक्त मण्डलोंमें मालके उत्पादन और भाव पर अंकुश रखा जा सकता है। व्यवस्थामें बहुत किफायत हो सकती है और समस्त संयुक्त मण्डलकी तरफसे अपने उद्योगके लिए नये नये प्रयोग करके और वैज्ञानिक संशोधनका काम कराके उनकी सुविधा पूरी की जा सकती है। यातायातकी और डाक टेलीफोन तथा तार आदि सदृश भेजनेकी वर्तमान सुविधाओंके कारण इस तरहके संयुक्त मण्डल चलानेकी अनुकूलतायें इस जमानेमें बहुत बढ़ गई हैं।

३ ऐसे संयुक्त मण्डल दो प्रकारके होते हैं। एक ही तरहका माल उत्पन्न करनेवाली और बेचनेवाली कई कंपनियाँ इकट्ठी होकर अपना संयुक्त मण्डल बनायें यह एक प्रकार हुआ। इस प्रकारमें सभी कंपनियाँ अपना लड़ी सी हुई एक केन्द्रीय व्यवस्थाके मातहत आ जाती हैं। यह निश्चित किया जाता है कि हर कंपनी कितना माल उत्पन्न करे और बाजारमें उसका क्या भाव रखे। इस उद्योगमें सुधार करनेके बारेमें आवश्यक संशोधन इस संयुक्त मण्डलकी तरफसे किया जाता है। अमरीकामें ऐसे अनेक संयुक्त मण्डल स्थापित हुए हैं। न्यूयार्कको स्टैण्डर्ड आइल कंपनी ऐसा ही एक संयुक्त मण्डल है जो युनाइटेड स्टेट्सकी पचासियों रिफाइनरियोंमें से ज्यादातर पर अपना नियंत्रण और अधिकार रखता है। हमारे देशमें सब सीमेण्ट कंपनियोंका ऐसा मण्डल बना हुआ है। इससे अलग अलग सीमेण्ट कंपनियोंकी प्रतिस्पर्धा मिट गई है और देशमें सब जगह सीमेण्ट एक ही भाव बिकता है। इस तरहके संयुक्त मण्डलोंको अंग्रेजीमें हॉरिजॉण्टल काम्बिनेशन (समानांगोंका एकीकरण) कहा जाता है। हॉरिजॉण्टलका अर्थ है एक सतह पर या एक ही स्तर पर स्थित। इसलिए एक ही तरहका उद्योग या व्यवसाय करनेवाले मण्डलोंको हॉरिजॉण्टल कहा जाता है और उनके संगठन याने संयुक्त मण्डलको हॉरिजॉण्टल काम्बिनेशन कहा जाता है।

४ दूसरी तरहके संयुक्त मण्डलोंको वर्टिकल काम्बिनेशन (सम्बद्ध भागी एकीकरण) कहा जाता है। वर्टिकल याने खड़ा स्तरसे स्थित, नीचेसे ऊपर तकके। इस संगठनमें उद्योग अलग अलग प्रकारके होते हैं। अंतिम पक्की वस्तु तैयार करनेके लिए कच्चा माल पैदा करनेसे लेकर उसका तैयार माल बन जाने तक बीचमें जो जो क्रियाएँ की जायँ उनसे सम्बन्धित उद्योगोंका संगठन वर्टिकल काम्बिनेशन कहलाता है। जैसे रोटी बनानेवाली भठियारोंकी कंपनी हो और वह अपने ही खेतोंमें गेहूँ पैदा कर अपनी ही

आटेकी मिलामें आटा पिसवाये फिर उसकी रोटी पकवाये और अपनी ही दुकानो पर वह रोटी बिकवाये तो यह एक वर्टिकल काम्बिनेशन होगा। हमारे देशमें जमशेदपुरकी टाटा आयर्न एण्ड स्टील कम्पनी एसा ही 'वर्टिकल काम्बिनेशन' है। उसकी अपनी लोहे और कोयलेकी खानें है लोहा गलानेकी भट्टिया भी उसीकी है और लोहे तथा फौलादकी तरह तरहकी चीजें और मशीनें भी वही बनाती है।

५ अमरीकामें एसे हारिजाण्टल और वर्टिकल दोनो तरहके सगठन करनेवाले कुछ सयुक्त मण्डल भी खडे हो गये है। अलग अलग कपनिया अपनी भीतरी व्यवस्थाके बारेमें स्वतन्त्र रहकर सिर्फ प्रतिस्पर्धाको टालनेके लिए कुछ शर्तों पर अपना सगठन मर्यादित रूपमें भी करती है। कपनिया मिलकर अपना निश्चित की हुई जातिका माल एक निश्चित भावसे ही बेचनेका निर्णय करती है। इसमें यदि कोई कपनी बेईमानी करके *निश्चित की हुई जातिसे हल्की जातिका माल बनावे तो सगठन टूट जाता* है। कभी कभी अलग अलग कपनिया भीतर ही भीतर निश्चय करके अलग अलग प्रदेशोंके बाजार आपसमें बाट लेती है जिससे एक ही बाजारमें वे एक दूसरेके साथ प्रतिस्पर्धामें न उतर सकें। हमारे देशमें एक ही रास्ते पर अलग अलग मालिकोकी मोटर-बसें चलती हो और वे अपना कोई भी सगठन न करें तो वे प्रतिस्पर्धामें बरबाद हो जाते है। सामान्यत वे यह निश्चित करते है कि अमुक समय पर अमुक मालिककी मोटर रवाना हो। सभी मोटरोमें टिकट उनके सगठनकी तरफसे दिये जाते है। और शामको भाडकी जितनी आय हुई हो वह अलग अलग मालिकोकी मोटरो द्वारा लगाये हुए चक्करोके हिसाबसे बाट ली जाती है। इसका हिसाब नही रखा जाता कि किसकी मोटरमें कितने यात्री बैठे। एसा करनेसे यात्री लेनेकी खीचातानी मिट जाती है और शान्तिसे काम चलता है।

६ अमरीकामें इन सब प्रकारके सगठनोको ट्रस्ट कहते है। अलग अलग कारखाने एक व्यवस्थाके नीचे एकत्र हो जाते है। अपनी अपनी लगाई हुई पूजी आदिके हिसाबसे उन्हें ट्रस्टके सर्टिफिकेट मिल जाते है। वे अपना सारा प्रबन्ध और सारी सत्ता ट्रस्टियोंके केन्द्रीय मण्डलको सौंप देते है। अपने अपने ट्रस्ट-सर्टिफिकेटोंके अनुसार वे नफा-नुकसानमें साझेदार होते है। जर्मनीमें इस तरहके सगठनोको कार्टेल कहते है। जर्मनीमें कोयलेकी खानोका उद्योग एसे कार्टेलके हाथमें है। सारे कोयलेकी बिक्री एक केन्द्रीय मण्डल द्वारा होती है और कार्टेलके सब सदस्योंमें नफा

बांट लिया जाता है। कुछ कार्टेल अपने सदस्योंमें प्रतिस्पर्धा न होने देनेके लिए उन्हें बिक्रीके प्रदेश यानी बाजार बांट देते हैं। केन्द्रीय मण्डल आर्डर दर्ज कर लेता है भाव तय करता है और बिक्रीकी व्यवस्था कर देता है। ट्रस्टकी अपेक्षा कार्टेलमें व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य कुछ अधिक होता है।

७ बड़े पैमानेके उत्पादनमें प्रथम महायुद्ध (१९१४–१८) के बाद जो एक नई विचारसरणी चल पड़ी है उसका भी यहां उल्लेख कर देना चाहिये। ऐसा कहा जाता है कि किसी भी उद्योगको अच्छी तरह विकास करना हो तो उसके प्रबन्धकको सिर्फ इतने ही विचारसे सन्तोष करके बैठे न रहना चाहिये कि इस उद्योगमें मुझे अमुक नफा मिल जाता है और कारखाना बराबर चलता है। कारखानेसे अमुक नफा मिलता रहता है यह तो एक व्यक्तिगत दृष्टि हुई परन्तु इतने नफेसे सन्तोष मानकर बैठे रहनेके बजाय प्रबन्धकका सामाजिक कर्तव्य यह है कि वह सुधरी हुई या आगे बढ़ी हुई पद्धतियां जारी करके जहां जहां संभव हो वहां वहां फिजूलको रोककर और बचत करके उत्पादनके खर्चमें भरसक कमी करे। ऐसा करनेके लिए प्रबन्धकको नीचेकी बातों पर ध्यान रखना चाहिये

(१) यंत्रोंमें सुधार करके मजदूरोंकी संख्यामें यथासंभव कमी की जाय।

(२) यंत्रों और औजारोंकी इस तरह व्यवस्था की जाय जिससे मजदूरोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान पर आने-जानेकी जरूरत कम पड़े और उनका समय तथा श्रम अधिकसे अधिक बचे।

(३) कारखानेमें कामके घंटे सात या आठ भले रखे गये हों लेकिन मजदूर शुरूके घंटोंमें स्फूर्ति और सावधानीसे जितना काम कर सकता है उतना बादके घंटोंमें नहीं कर सकता। मनुष्य थक जानेके बाद अथवा उकताहट मालूम पड़नेके बाद जितना काम करता है उसमें उसके शरीरको भी नुकसान होता है। इसलिए थकावट या उकताहट मालूम होनेकी हद आये उस समय मजदूरोंको थोड़ा आराम दिया जाय और चाय, पानी या बीड़ी पीनेकी छूट दी जाय तो वह फिरसे ताजा होकर अधिक काम कर सकता है और कुल मिलाकर अधिक काम होता है। इसलिए कारखानेमें आरामकी और खाने वगैराकी सुविधायें देकर हर मजदूरसे निश्चित समयमें अधिकसे अधिक काम ले सकनेकी व्यवस्था की जाये।

(४) प्रत्येक कारखाना जहां तक हो सके एक ही जातिका माल बनाये जिससे कम खर्च और थोड़े श्रमसे अधिक उत्पादन हो सके।

(५) माल बनानेकी क्रियाओंका अधिकसे अधिक पृथक्करण करके हर क्रियाको यथासंभव सरल बना दिया जाय जिससे आदमीके बजाय यंत्रसे वह क्रिया कराई जा सके।

(६) खरीद बिक्री और यातायातके काममें अलग अलग कारखानोंमें सहयोग स्थापित करके और हारिजाटल तथा वर्टिकल संगठन खड़े करके प्रतिस्पर्धाका अन्त कर दिया जाय।

८ इस तरह उद्योगको यथासंभव अधिकसे अधिक नये ढंग पर और किफायतके साथ चलानेको उद्योगका 'रेशनलाइजेशन' करना कहते हैं। इस प्रकारका रेशनलाइजेशन गत महायुद्धके बाद पहले पहल जर्मनीमें आरंभ हुआ। क्योंकि वहां भारी मुद्रा प्रसार हो गया था और दूसरी तरहसे भी देश बड़ा आर्थिक दुर्दशामें फंस गया था। इसलिए कच्चे मालको तथा मजदूरोंके समय और श्रमकी अधिकसे अधिक बचत करने तथा नयी वैज्ञानिक खोजों द्वारा निकम्मी और रद्दी मानी जानेवाली चीजोंका भी उपयोग करके उसे अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनी थी। उसके बाद यह हलचल अमरीकामें खूब चली। बाटाके जूतोंके कारखानेमें और फोर्डके कारखानेमें इस रेशनलाइजेशनका अमल बहुत अधिक किया गया है। अब तो हमारे देशके भी औद्योगिक मण्डलोंमें रेशनलाइजेशनकी बात होने लगी है।

९ इसमें शंका नहीं कि यदि उत्पादन बड़े पमाने पर किया जाये उद्योगोंका संगठन किया जाय और रेशनलाइजेशन दाखिल किया जाय तो उसमें केवल उत्पादनकी दृष्टिसे बड़ा लाभ होता है और व्यवस्था-खर्च बहुत बड़े उत्पादन पर बंट जानेसे बहुत कम हो जाता है। कीमती और बिलकुल नये ढंगकी मशीनरी काममें ली जा सकती है। भौतिक शक्ति भी बड़े पमाने पर उत्पन्न की जाती है और एक जगह बड़े पमाने पर खर्च की जाती है इसलिए उसका खर्च भी कम आता है। बड़ी मात्रामें खरीद बिक्री करनेसे उसमें भी बहुत लाभ होता है। ऐसे कारखानों या संगठनोंके पास पैसेकी शक्ति अधिक होती है और वे स्वयं ही बड़े खरीदार और विक्रेता होते हैं इसलिए बाजारमें सौदा करते समय इच्छित अपने सोचे हुए भाव मिल सकते हैं। विज्ञापनों द्वारा और दूसरी तरहसे अपने मालका प्रचार तथा प्रसार करनेका खर्च भी बड़े पमाने पर उत्पन्न किये जानेवाले माल पर बंट जानेके कारण कम आता है। और इन सबसे बड़ा लाभ तो यह होता है कि बड़े पमाने पर उत्पादन करनेवाले कारखानोंमें निकलनेवाले कचरेका तथा टूटी फूटी चीजोंका पूरा उपयोग किया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रयोग करके उत्पादनका

खर्च किस तरह घटाया जाय और कोई माल बनानेमें जो चीजें निकम्मी हो जाती हैं और अन्य किसी भी उपयोगमें न आ सकनेके कारण जो बेकार समझ ली जाती हैं उनका कैसा उपयोग किया जाय इन बातोंका पता की जा सकती है। उदाहरणके लिए हमारे यहां तेलकी बड़ी मिलें अपने कचरेसे तरह तरहके बढ़िया साबुन बनाती हैं। जहां छोटे पैमाने पर उत्पादन होता हो वहां इस तरह कचरे या टूट-फूटे सामानका उपयोग करना पुसाता नहीं।

१० बड़े पैमानेके उत्पादनसे ऐसे बहुतसे लाभ बताये जाते हैं लेकिन उससे नुकसान भी छोटे-मोटे नहीं हैं। छोटे पैमाने पर स्वतन्त्र रीतिसे काम करनेवाले उत्पादकोंको बड़े पैमानेवाले कारखानेदार प्रतिस्पर्धामें कुचल डालते हैं और ऐसा करनेमें वे अच्छे-बुरे चाहे जैसे उपायोंका आसरा लेनेमें भी नहीं हिचकिचाते। वे लोग ऐसी दलील जरूर करते हैं कि उत्पादनका खर्च घटाकर हम ग्राहकोंको सस्ता माल मुहैया कर सकते हैं। परन्तु एक बार अपनी भीतरी प्रतिस्पर्धाको मिटाकर बड़ा संगठन खड़ा कर लेनेके बाद वे उस उद्योगके एकाधिकारी बन बैठते हैं और मनमाने भाव लेते हैं। इसके सिवा अपने छोटे प्रतिस्पर्धियोंको वे खतम कर डालते हैं तब अथवा अधिक लाभ लेनेके लिए जब वे उत्पादनको मर्यादित कर देते हैं या रेशनलाइजेशन करते हैं तब उनमेंसे मजदूर फालतू हो जाते हैं। इससे भयंकर बेकारी पैदा होती है। ये बड़े संगठन जबरदस्त सट्टा खेलते हैं, बाजारमें आनेवाले मालको सट्टा खेलकर केवल अपने ही हाथमें कर लेते हैं और अपने छोटे प्रतिस्पर्धियोंको अपनेमें मिला लेनेके लिए और न मिलें तो उन्हें कुचल डालनेके लिए अच्छे-बुरे हर तरहके उपाय काममें लेते हैं। अमरीकामें तो जब कोई संगठन कोई खास माल अपने हाथमें कर लेता है तब उसके मनमाने भाव उपजानेके लिए पैदा होनेवाला दूसरा वैसा माल वह खरीद लेता है और उसे नष्ट तक कर डालता है। फिर जब ऐसी स्थिति पैदा हो जाय कि वह माल बाजारमें और कहीं नहीं मिले तो अपने जमा किये हुए मालको मनमाने भावसे बेचकर वे भारी नफा कमाते हैं। अमरीका और इंग्लैण्डमें जहां ऐसे संगठन बहुत बड़े और मजबूत हैं वे अपने धनबलके प्रभावसे राज्यकी सारी बागडोर भी अपनी इच्छानुसार चला सकते हैं। वे पार्लियामेंट या सिनेटमें अपने मत अनुसार चलनेवाले सभ्योंका बहुमत बना लेते हैं और फिर सारे राज्यतंत्र पर अधिकार जमाते हैं। ये लोग कहनेको तो हैं प्रजातंत्रवाले लेकिन जनताके बहुत बड़े भागको कुछ भी नहीं गिनते। पूंजीवादी संगठन ही सारे राज्यतंत्र और प्रजातंत्र पर अधिकार किये बैठे हैं।

११ यह सही है कि उनके विरोधमें मजदूरोंके संगठन खड़े होने लगे हैं। लेकिन पूंजीपति और शासक एक-दूसरेके मित्र बनकर जो संगठन बना चुके हैं उसके विरुद्ध अंतिम लड़ाई लड़ सकनेकी स्थितिमें वे अभी नहीं पहुंचे हैं। आज तो आगे बढ़े हुए और स्वतंत्र माने जानेवाले देशोंमें भी पूंजीपतियों और सत्ताधारियोंने आम लोगोंको दबा रखा है।

१२ बात यह है कि इन सारी योजनाओंमें केवल इसी बातका विचार किया जाता है कि उत्पादनका खर्च कैसे घटे और अर्थोत्पादन ज्यादासे ज्यादा कैसे हो। इनमें उत्पादन करनेवाले मजदूरोंको जीते-जागते मनुष्य नहीं बल्कि जड़ यंत्र मानकर ही उनका विचार किया जाता है। इसके सिवा उत्पादनमें लगे हुए मजदूरोंको अच्छी हालतमें रखा जाय तब भी यह विचार नहीं किया जाता कि उत्पादनकी पद्धतिमें किये जानेवाले प्रत्येक सुधारके साथ जो अनेक मजदूर बेकार बनते हैं उनका क्या होगा। यंत्रोंका विचार करते समय उनके जो थोड़े अनिवार्य परिणाम — शोरगुल, धुआं, मजदूरोंके शरीर और मन पर पड़नेवाला हानिकारक असर, निष्प्राणता, पर-समाजका अवलम्बन आदि — गिनाये गये हैं, वे विराट उत्पादनमें आ ही जाते हैं। विराट उत्पादनको सार्वत्रिक बनानेके विरुद्ध किये जानेवाले तर्कमें इतनी बुराइयां गिनाना पर्याप्त होगा। परन्तु व्यापक और स्थायी बेकारी एक ऐसी बुराई है जिसे तत्काल मिटाना जरूरी है। आजकल कारखाने पूंजीपतियोंके हाथमें हैं और वे लोग जनताके हितके लिए नहीं बल्कि अपने नफेके लिए ही उन्हें चलाते हैं। इसके बजाय यदि कारखाने सामाजिक संपत्ति बना दिये जायें और मजदूरोंके कामके घंटे कम कर दिये जायें तो बेकारी दूर हो सकेगी, ऐसी दलील दी जाती है। यह बात अच्छी मानी जाय तो भी वह थोड़ी आबादीवाले देशोंमें ही संभव हो सकती है। इंग्लैण्ड और जर्मनी जैसे देशोंमें यह संभव हो तो भी हमारे जैसे बहुत बड़ी आबादीवाले देशमें जहां करोड़ों मनुष्योंकी बेकारी मिटानेका प्रश्न हमारे सामने है, यह बात संभव नहीं है। इन करोड़ों मनुष्योंको आज पेटभर खाना नहीं मिलता। पेटभर खाना देना हो तो उन्हें पूरा काम देना ही चाहिये। यदि हम यंत्रोंके जरिये बड़े पैमाने पर उत्पादनका कार्य करेंगे तो उन्हें कभी काम नहीं दे सकेंगे। इसलिए भले ही बड़े पैमानेके उत्पादनकी इस सुधरी हुई पद्धतिमें थोड़े खर्चसे अधिक माल पैदा होता हो और माल सस्ता भी बन सकता हो, परन्तु आखिर सस्ता माल भी बनाना तो मनुष्यके लिए ही है। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो कि इस सस्ते मालको खरीदनेके लिए मनुष्य जिंदा ही न रहे

सकें तो सस्ता माल किस कामका? इसलिए आम लोगोंकी भलाईकी दृष्टिसे देखें तो सारा उत्पादन बड़े पैमाने पर करना अच्छा नहीं है।

१३ लेकिन कुछ उद्योग और कुछ सेवाएं ऐसी हैं जो बड़े पैमाने पर ही चलायी जा सकती हैं। जैसे लोहेका उद्योग, खानोंका उद्योग, मोटरें बनानेका कारखाना, बिजली पैदा करनेका कारखाना तथा रेल, तार और डाक जैसी सेवाएं बड़े पैमाने पर ही चल सकती हैं। इसके सिवा सीनेकी मशीनें, साइकिलें और मोटरें आदि समाजके लिए आवश्यक हों, मानी जायं तो ये चीजें भी बड़े कारखानोंमें ही तैयार हो सकती हैं। इस तरह हर राष्ट्रको जो उद्योग बड़े पैमाने पर चलाने ही पड़ें, उनमें नफाखोरी और मजदूर-वर्गके शोषणकी गुंजाइश न रहने पाये, इस दृष्टिसे ये कारखाने राष्ट्र या समाजकी सम्पत्ति होने चाहिये। लेकिन जो उद्योग आसानीसे मनुष्यकी या मनुष्यके पाले हुए पशुओंकी शक्तिसे हाथ-उद्योगके रूपमें चलाये जा सकते हैं और जिन्हें भौतिक शक्तिसे यंत्रोद्योगके रूपमें चलानेसे लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों आदमियोंकी अनिवार्य बेकारीका प्रश्न खड़ा होता है, वे उद्योग बड़े पैमाने पर यंत्रोद्योगोंके रूपमें नहीं चलाये जाने चाहिये। उदाहरणके लिए हमारे यहांके कपड़ा उद्योगको लीजिये। पहले यह हाथ-उद्योगके रूपमें चलता था, परन्तु यंत्रोद्योगोंने इस पर भयंकर आक्रमण किया। अब गांधीजी और कांग्रेसकी तरफसे इसे हाथ-उद्योगके रूपमें फिरसे जारी करनेके भगीरथ प्रयत्न हो रहे हैं। यह धंधा हाथ-उद्योगके रूपमें चले इसीमें सामाजिक और आर्थिक सुख-शांति समायी हुई है। इसके सिवा तेल निकालनेकी मिलें बहुतसी घानियों और कोल्हुओंको बेकार कर देती हैं। पीसने-कूटनेकी मिलें चक्कियों और ऊखलियोंको बेकार बनाती हैं। माल ढोनेवाली मोटर-लारियां बैलगाड़ियोंको बेकार करती हैं। कारखानेमें तैयार होनेवाली टीनकी चद्दरें, टीनके पीपे और घासलेटके डिब्बे कुम्हारोंके खपरैलों, कोठियों और मटकोंका स्थान लेकर कुम्हारके धंधेको तोड़ देते हैं। जूते बनानेवाले कारखाने मोचियोंको बेकार बनाते हैं। इन सबका विचार ऊपर बताई हुई दृष्टिसे करना चाहिये। आज बड़े पैमानेके उद्योग निरंकुश प्रतिस्पर्धाके सिद्धान्त पर या एकाधिकारके सिद्धान्त पर चलते हैं। इसके बजाय राष्ट्रको सारा उत्पादन एक निश्चित योजनाके अनुसार और नियंत्रित ढंगसे इस बातका विचार करके चलाना चाहिये कि राष्ट्रके लिए कौनसे उद्योग कितने आवश्यक हैं और किन उद्योगोंको यंत्रोद्योगोंके रूपमें अथवा हाथ-उद्योगके रूपमें चलानेमें राष्ट्रका अथवा राष्ट्रके सारे वर्गोंका हित है।

९

बढते-घटते उत्पादनका नियम

बढते उत्पादनका नियम

१ किसी कामका एक मनुष्यके बजाय दो मनुष्य मिलकर करें, तो दुगुना ही नहीं बल्कि दुगुनेसे कुछ अधिक काम होता है। इसके सिवा काम करनेके साधनोंमें हम जैसे जैसे सुधार करते जाते हैं या वृद्धि करते जाते हैं, वैसे वैसे सुधार और वृद्धि करनेमें जितना खर्च होता है उससे अधिक मात्रामें उत्पादन होता है। इस परसे एक ऐसा नियम या कानून निकाला गया है कि किसी भी काममें हम श्रम और पूंजी बढाते जायें तो श्रम और पूंजी बढानेसे जितना खर्च बढता है उसकी अपेक्षा उत्पादन अधिक बढता है। उदाहरणके लिए, एक सौ करघोंके कारखानेके बजाय दो सौ करघोंका कारखाना चलानेके लिए दुगुना श्रम और पूंजी नहीं लगानी पडती। क्योंकि अधिक पावर या शक्तिके लिए एंजिन बायलर बडे चाहिये, परन्तु दो सौ करघे चलानेके लिए दुगुनी शक्तिकी जरूरत होते हुए भी दुगुना पावर या शक्ति पैदा करनेके लिए दुगुना कोयलेका खर्च नहीं होता। इसके सिवा इंजीनियर, दफ्तरके कर्मचारी, खरीद बिक्री करने वाले आढतियों, आफिस और मकानका खर्च भी दुगुना नहीं करना पडता। थोडा-बहुत खर्च बढा देनेसे ही काम चल जाता है। और इसमें तो कोई शंका ही नहीं कि दो सौ करघे चलाये जायें तो कपडा दुगुना उत्पन्न होगा। इसलिए कुल मिलाकर पूंजी और श्रम सवाया या ड्योढा करनेसे दुगुना उत्पादन होता है। कोई भी उद्योग जितने बडे पैमाने पर चलाया जाता है उतना ही मालके उत्पादनका खर्च कम आता है। यह नियम व्यापार और खेती पर भी एक हद तक लागू होता है। जो व्यापारी दुकान चलानेके लिए दस हजार रुपयेका माल स्टाकमें रखता है वह जितनी बिक्री और मुनाफा कर सकता है, उससे बीस हजार रुपयेका स्टाक रखनेवाला अधिक बिक्री और नफा कर सकता है। क्योंकि वह अपनी दुकानमें मालकी विविधता अधिक रख सकेगा, इसलिए उसके यहां ग्राहक ज्यादा आयेंगे। उसे दुकान दुगुनी बडी या दुगुने किरायेकी नहीं रखनी पडेगी। इसी तरह माल बेचनेवाले गुमाश्ते भी दुगुने नहीं रखने पडेंगे। एक ही हिसाबनवीससे काम चल जायगा। दुकानके लिए माल खरीदने

जानेवाला। लेकिन थोड़ा माल खरीदे या अधिक, तो भी खरीदका खर्च तो उतना ही होगा। खेतीका विचार करें तो एक किसान जितनी खाद देता है उससे ज्यादा दे, ज्यादा अच्छे हल रखे, ज्यादा अच्छी जुताई करे, ज्यादा अच्छे बीज बोये, ज्यादा मजदूर लगाकर निराई ज्यादा अच्छी कराये और जमीन व फसलको अच्छी तरह साफ रखे तो उसका खर्च जिस अनुपातमें बढ़ेगा उसकी अपेक्षा फसलके अनुपातमें बहुत बड़ी वृद्धि होगी। खाद सवायी ड्योढ़ी होगी तो फसल ड्योढ़ी या दुगुनी होगी। बीज अच्छा लानेके लिए अधिक भाव देना पड़ा हो तो भी फसल अच्छी जातिकी और अधिक मात्रामें होनेसे उसकी कीमत बहुत ज्यादा आयगी। बैल अच्छे होंगे तो काम दुगुना करेंगे, लेकिन खराब और कमजोर बैलोंसे वह दुगुना नहीं पायगा।

इस तरह प्रत्येक उद्योग धंधेमें यह देखा जाता है कि पूंजी और श्रमकी मात्रा जितनी बढ़ाई जाती है उससे उत्पादन अधिक मात्रामें होता है। इसे बढ़ते उत्पादनका नियम या क्रमागत उत्पत्ति-वृद्धि नियम कहते हैं।

घटते उत्पादनका नियम

२ लेकिन ऊपरका नियम एक हद तक ही सही साबित होता है। अगर हम श्रम और पूंजीकी मात्रा अमर्यादित रूपमें बढ़ाते जायें तो उत्पादनकी मात्रा भी अमर्यादित रूपमें बढ़ेगी ही ऐसा कोई नियम नहीं है। उत्पादनकी मात्रा बढ़नेकी एक सीमा होती है। उस सीमाको आ जानेके बाद यदि श्रम और पूंजी बढ़ाई जाय तो उस वृद्धिके अनुपातमें अधिक उत्पादन नहीं होगा परन्तु कम उत्पादन होगा। हम खेतीका उदाहरण लें। यह सच है कि खाद ज्यादा देनेसे फसल ज्यादा अच्छी होती है लेकिन इस कारण जमीनमें चाहे जितनी खाद नहीं दी जा सकती। इसलिए खेतोंमें अमुक हद तक जुताई, खाद, पानी वगैराकी सुविधा बढ़ायें यानी श्रम और पूंजी बढ़ायें तो अधिक उत्पादन होगा परन्तु उसकी हद आनेके बाद भी उसे बढ़ाते जायें तो अधिक उत्पादन न होकर अनुपातमें कम होगा। घटते उत्पादनका अर्थ नुकसान नहीं, किन्तु अनुपातमें कम उत्पादन समझना चाहिये। दुगुने काममें यदि ढाई गुना ज्यादा हो तो बढ़ता उत्पादन हुआ कहा जायगा, लेकिन ड्योढ़ा हो तो घटता उत्पादन हुआ कहा जायगा। यदि ऐसा हो तो नुकसान नहीं हुआ। कुल मिलाकर उत्पादन तो बढ़ा परन्तु अनुपातमें कम उत्पादन हुआ इसलिए घटता उत्पादन हुआ कहा जायगा।

३ व्यापारीकी दुकानमें भी ऐसा ही होता है। दुकानमें मालकी विविधता अधिक हो तो ग्राहकको चुनाव करनेकी ज्यादा गुंजाइश रहती है

और इससे बिक्री ज्यादा होती है। परन्तु उसकी भी सीमा तो होती ही है। इस सीमासे अधिक माल रखें यानी अधिक पूजी लगायें तो फिर उस अनुपातमें बिक्री नही बढ़ेगी और ज्यादा नफा भी नही होगा। जिस मालकी माग हो वही माल बिकता है। दूसरा माल पडा रहता है। उद्योगका कारखाना भी बहुत बडा बना लिया जाय तो उसमें पूरी देखरेख नही रह सकती अव्यवस्था पैदा हो जाती है और बिगाड भी होता है। इस तरह प्रत्येक धधेमें बढ़ते उत्पादनके नियमकी सीमा आ जाती है और उसके बाद पूजी और श्रम बढ़ाते जायें उद्योगको बडा बनाते जायें तो उत्पादन अनुपातमें बढनेके बजाय घटने लगता है। इसे घटते उत्पादनका नियम या क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम कहते है। एक खास सीमा तक बढ़ने उत्पादनका नियम लागू होता है और उस सीमा पर पहुच जानेके बाद घटते उत्पादनके नियमका अमल शुरू हो जाता है।

४ इस तरहकी सीमा सब उद्योग धधोंमें एकसी नही बाधी जा सकती। खेतीमें बढते उत्पादनकी सीमा बहुत जल्दी आ जाती है और घटते उत्पादनका नियम बहुत जल्दी लागू होता है। यह सीमा व्यापार और हाथ-उद्योगमें खेतीकी अपेक्षा देरसे परन्तु बडे पैमानेके उद्योगकी अपेक्षा जल्दी आती है। बडे कारखानोंमें यह सीमा बहुत देरसे आती है। फिर भी उनमें आती तो है ही। इसीलिए हम पिछले प्रकरणमें देख चुके है कि प्रतिस्पर्धा मिटानेके लिए बडे बडे कारखानोंको इकट्ठा नही किया जाता परन्तु कारखानोंकी भीतरी व्यवस्थाको अलग और स्वतत्र रख कर उनका सगठन किया जाता है।

स्थिर उत्पादनका नियम

५ किसी उद्योगमें पूजी श्रम आदि जितना बढाया जाय उतने ही अनुपातमें उत्पादन बढता हो तो कहा जायगा कि उस पर स्थिर उत्पादनका नियम या क्रमागत उत्पत्ति समता नियम लागू होता है। यो तो किसी भी उद्योग धधे पर आरभसे ही स्थिर उत्पादनका नियम लागू नही होता। आरभमें एक हद तक बढते उत्पादनका नियम लागू होता है। बादमे एक खास हद तक कभी कभी स्थिर उत्पादनका नियम लागू होता है और फिर घटते उत्पादनका नियम लागू होने लगता है।

६ किस उद्योग पर कब कौनसा नियम लागू हो सकता है इस जानकारीका यह निश्चित करनेमें बडा हाथ होता है कि उत्पादनका खर्च कितना आयगा और किस कीमत पर माल बेचना लाभदायक होगा। बाजार-कीमत आदिसे सम्बध रखनेवाले प्रकरणोंमें हमें इन नियमोंका बार बार उल्लेख करना पडेगा।

मानव अर्थशास्त्र

तीसरा भाग

विनिमय

१

प्रास्ताविक

१ जब तक प्रत्येक कुटुम्ब या समूह अपनी आवश्यकताकी चीजें स्वयं ही उत्पन्न कर लेता था तब तक किसी भी चीजका एक-दूसरेके साथ विनिमय करनेका अवसर नहीं आता था। कुटुम्ब और समूह जब एक-दूसरेके साथ अधिक मिलने-जुलने लगे तब अपने पासकी आवश्यकतासे अधिक चीजें आरम्भमें जिन कुटुम्बों या समूहोंको उनकी ज्यादा आवश्यकता होती उन्हें भेंटमें देने लगे। भेंट लेनेवाले कुटुम्बोंको स्वभावतः यह विचार आता था कि अपनी उत्पन्न की हुई चीजोंमें से कुछ चीजें भेंट देनेवाले कुटुम्बको देकर उसका बदला चुकाना चाहिये। इसमें से आगे चलने पर अपनी आवश्यकतासे अधिक चीजोंका विनिमय ऐसी चीजोंसे व्यवस्थित रूपमें होने लगा जो दूसरोंके पास आवश्यकतासे अधिक हों और अपने लिए आवश्यक हों।

२ एकके लिए आवश्यकतासे अधिक और दूसरेके लिए आवश्यक चीजोंकी अदला-बदली विनिमयका शुद्ध और न्याय्य स्वरूप कहलाता है।

विनिमयमें हमेशा कमसे कम दो पक्ष होते हैं। इसलिए ऊपरके वाक्यको विस्तारसे यों कहना चाहिये कि एक पक्षकी आवश्यकतासे अधिक चीजोंका — जो दूसरे पक्षके लिए आवश्यक हों — दूसरे पक्षकी ऐसी अतिरिक्त चीजोंसे जो पहले पक्षके लिए आवश्यक हों अदला-बदली करना विनिमय है। जहां नीचेकी शर्तों पर अमल हो वहां विनिमय शुद्ध और न्यायपूर्ण होता है :

(१) एकको दूसरेके पासकी चीजकी आवश्यकता होनी चाहिये और दूसरेके पास वह चीज आवश्यकतासे अधिक होनी चाहिये।

(२) जिन दो चीजोंका विनिमय किया जाय वे एकसी कीमतकी होनी चाहिये।

(३) विनिमय करनेकी चीजोंकी कीमतका ठीक ठीक अन्दाज लगा सकनेकी सुविधा होनी चाहिये।

(४) विनिमय करनेवाले सभी पक्षोंको वस्तुओंके विनिमयसे एकसा लाभ और एकसा सन्तोष मिलना चाहिये।

(५) अपनी उचित आवश्यकतायें पूरी होनेके बाद जो अधिक चीजें रहें उन्हींका विनिमय होना चाहिये। साथ ही इन अधिक चीजोंके बदलेमें वे ही चीजें मिलनी चाहियें जिनकी हमें सच्ची जरूरत हो।

३ यद्यपि आजकल विनिमयका यह व्यवहार दुनियामें बड़े पैमाने पर चल रहा है वह वैसा सादा नहीं रहा जैसा ऊपर बताया गया है फिर भी विनिमयकी सारी क्रियाओंका पृथक्करण करके देखें तो उसकी जड़में यही बात दिखाई दिये बिना नहीं रहेगी। आज केवल कुटुम्ब और समूह जैसे छोटे समाजोंके बीच नहीं परंतु बड़े बड़े देशोंके बीच विनिमय होता है। किसी देशमें अपनी आवश्यकतासे कोई चीज अधिक मात्रामें उत्पन्न होती हो और उस चीजकी दूसरे देशको आवश्यकता हो और इसलिए दूसरे देशको यह चीज देकर उसके बदलेमें अपनी आवश्यकताकी तथा दूसरे देशके लिए अतिरिक्त चीज वह देश ले ले तो यह शुद्ध विनिमय कहलायेगा और इस तरहका विनिमय जरूरी भी माना जायगा। इस तरहका विनिमय अतिरिक्त चीजोंवाले और आवश्यकतावाले दो देशोंके बीच सीधा होना संभव नहीं भी होता क्योंकि यह जरूरी नहीं कि एक देशकी अतिरिक्त चीज जिस देशको चाहिये उसकी अतिरिक्त चीजकी सामनेवाले देशको आवश्यकता हो ही। इसलिए एक देश दूसरेको दे दूसरा तीसरेको दे और तीसरा चौथेको दे और अंतमें अंतिम देश पहले देशको दे — इस तरह विनिमयका चक्र चलता है और इसके परिणामस्वरूप हर देशको अपनी जरूरतकी चीज मिल जाती है। विनिमय करनेवाले यानी बेचनेवाले और खरीदनेवाले सभी देशोंके व्यापारी स्वेच्छासे और साफ नीयतसे हों तो इन सब देशोंको आर्थिक लाभ हो पूरा सन्तोष मिले और उनकी प्रगति भी हो। लेकिन इस विभागमें हम देखेंगे कि आजकल विनिमयके व्यवहारमें जिसकी लाठी उसकी भैंस का न्याय चल रहा है। उद्योगोंमें आगे बढ़े हुए और एड़ीसे चोटी तक शस्त्रसज्ज होकर बैठे हुए देश पिछड़े हुए माने जानेवाले देशोंसे कच्चा माल खींच कर ले जाते हैं और अपने कारखानोंमें तैयार किया हुआ माल भले ही इस मालकी पिछड़े हुए माने जानेवाले देशोंको सचमुच आवश्यकता हो या न हो इन देशोंके बाजारोंमें भर देते हैं।

४ इस व्यवहारकी तहमें परोक्ष रूपमें जबरदस्ती रहती है क्योंकि इस तरहका व्यवहार करने और टिकाये रखनेके लिए राजनीतिक सत्ताका काफी उपयोग किया जाता है। अलबत्ता आजकलके विनिमयके पीछे जो शोषण और लूट चलती है उसके हेतु कोई भी देश सीधी तरह प्रकट नहीं करता और स्वीकार भी नहीं करता। विनिमयके नामसे चलनेवाली इस लूट और शोषणको प्रकट रूपमें तो पिछड़े हुए देशोंकी शिक्षा और सुधारका तथा उनकी

आर्थिक आवश्यकतायें पूरी करनेका काम ही बताया जाता है। अपन शोषण अथवा लूटको इतनी चालाकीसे छिपाया जाता है और शिक्षा सभ्यता और आर्थिक प्रगति आदि आकर्षक नामोंका मुलम्मा उस पर ऐसी छटासे चढाया जाता है कि शोषण अथवा लूटके शिकार बने हुए देश पतगोंकी तरह चौंधियाकर इस विनिमयके व्यवहारमें कूद पड़ते हैं और नष्ट हो जाते हैं।

५ मनुष्यके अन्य व्यवहारमें जबसे काम विभागका सिद्धान्त अस्तित्वमें आया और हरएक मनुष्य या समाज प्रत्यक्ष रूपमें अपनी आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए नहीं बल्कि दूसरोंको बेचनेके लिए उत्पादनका काम करने लगा और उसके बदलेमें अपनी आवश्यकताकी चीजें प्राप्त करने लगा तबसे विनिमय उत्पादनका एक आवश्यक अंग बन गया है। सारे उत्पादनका हेतु समाजकी किसी न किसी आवश्यकताकी पूर्ति होनेके कारण उत्पन्न की हुई चीजें जिन्हें उनकी जरूरत हो उनके पास पहुच जायें तभी उत्पादनका हेतु सिद्ध होता है और उसका काम पूरा होता है। लेकिन जबसे उत्पादन आवश्यकतायें पूरी करनेके मुख्य उद्देश्यसे होने लगा है तबसे उत्पादनमें समाजकी आवश्यकताओंका हिसाब मुख्य नहीं माना जाता बल्कि अपने नफेका हिसाब मुख्य माना जाने लगा है और उत्पादन तथा विनिमयमें जबसे हानिकारक और अनियन्त्रित प्रतिस्पर्धा घुस गई है तबसे यह सारा व्यवहार समाजमें अनेक दुःखोंका कारण हो गया है।

६ विनिमयका क्षेत्र बाजार है — स्थानीय बाजारोंसे लेकर दुनिया भरके बाजार। वहा बेचनेवाले और खरीदनेवाले इकट्ठे होते हैं। मालकी माग और पूर्तिके हिसाबसे उनमें परस्पर एक-दूसरेके साथ प्रतिस्पर्धा होती है और उसके फलस्वरूप चीजोंके भाव-ताव तय होते हैं तथा खरीद-बिक्रीके सौदे होते हैं। ये सौदे या चीजोंका विनिमय नकद पैसेके जरिये होता है या एक-दूसरेकी प्रतिष्ठा और साख पर उधारके व्यवहारसे भी होता है। यह सब काम व्यापारियों दलालों आढ़तियों सराफों और बैंकों द्वारा होता है। इस वर्गमें स्थानीय दुकानदारोंसे लेकर दुनिया भरके देशोंमें आयात निर्यातका काम करनेवाली बड़ी बड़ी व्यापारिक कंपनियां तथा स्थानीय सराफों और साहूकारोंसे लेकर दुनियाके हर व्यापारिक केन्द्रमें अपनी शाखाएं रखनेवाले बड़े बड़े बैंकों का समावेश होता है।

७ विनिमयके क्षेत्रमें मालको एक जगहसे दूसरी जगह पहुचानेवाले बनजारे भी — जिनमें गधों और बैलोंकी लादीवाले और गाड़ीवालोंसे लेकर मोटर-लारी और रेलगाड़ी तक तथा छोटे मोटे नाववालोंसे लेकर बड़ी बड़ी

जहाजी कम्पनियां तक आ जाती हैं — महत्त्वपूर्ण काम करते हैं। इन सबके द्वारा देशके भीतर और देशके बाहर एक देशके साथ दूसरे देशके विनिमयका काम चलता है। जैसे जैसे उत्पादन अधिकाधिक बड़े पैमाने पर विराट स्वरूप धारण करता जाता है वैसे वैसे विनिमयका क्षेत्र विशाल बनता जाता है। यंत्रोंकी नई नई खोजों और यातायातके साधनोंकी तेज गति तथा सस्तेपनके कारण विनिमयका कामकाज चलानेमें बहुत बड़ी सुविधाएं हो गई हैं।

८ विनिमयके क्षेत्रमें काम करनेवाले छोटे-बड़े सभीका यह उद्देश्य होना चाहिये कि उत्पन्न हुआ माल उसका उपयोग करनेवालोंके पास पहुंचायें, मालके उत्पादकों और उपभोक्ताओंके बीच आवश्यक कड़ीका काम करें, समाजके लिए उपयोगी बनें और इसके बदलेमें उचित पारिश्रमिक लें। आज ये सब लोग काम तो वही करते हैं, उनके काममें कोई फर्क नहीं पड़ा है, परन्तु उनके उद्देश्यमें बहुत बड़ा फर्क पड़ गया दीखता है। आज उनका उद्देश्य समाजके लिए उपयोगी होना नहीं रहा, बल्कि भारी नफा कमाना हो गया है। उत्पादक या ग्राहक दोनोंमें से किसीका भी हित उनके दिलमें नहीं होता। उनके सारे कार्योंका ध्येय और सारे व्यवहारोंका सार यह होता है कि उत्पादकको कमसे कम कैसे दिया जाय और ग्राहकसे अधिकसे अधिक कैसे लिया जाये। इसके सिवा विनिमयके कामकाजके सिलसिलेमें अलग अलग बाजारोंमें सट्टा-बाजार चलते हैं और उनमें बड़े-बड़े सट्टे खेले जाते हैं। वास्तवमें ये सट्टे जुएकी तरह होते हैं और उत्पादक तथा ग्राहक दोनोंको हानि पहुंचानेवाले होते हैं। फिर भी ये सट्टे खेलनेवाले व्यापारी और सट्टेका समर्थन करनेवाले अर्थशास्त्री लोगोंको यह समझाते हैं कि उत्पादकोंके मालके लिए बाजार खड़ा करने और बाजारमें भावोंका नियमन करनेके लिए ये सट्टे आवश्यक हैं।

९ आजकी उत्पादन-पद्धतिमें और विनिमयके व्यवहारमें द्रव्यका बहुत बड़ा हाथ होता है। द्रव्यमें धातुमुद्राओं और उनके प्रतिनिधि-स्वरूप कागजी मुद्राओंका ही समावेश नहीं होता। इस सरकारी मुद्राओंके काममें लिये बिना भी सराफों और बैंकोंकी हुंडियों और चेकों द्वारा बहुतसा काम होता है। व्यापारियों, सराफों और बैंकोंकी साख पर इस तरह जो द्रव्य खड़ा किया जाता है उसे हम सराफी द्रव्य कहेंगे। इस विभागमें हम देखेंगे कि सराफी द्रव्यके कारण बाजारमें द्रव्यकी मात्रा किसी भी समय बढ़ाई घटाई जा सकती है। उसका असर चीजोंके भाव-ताव पर बहुत पड़ता है। यह सारा तंत्र बड़े सराफों और बैंकरोंके हाथमें होता है जिन्हें हमने

द्रव्यपति कहा है। वे समाजके इस तरहके अर्थ-व्यवहार पर नियंत्रण रखते हैं और जिसे चाहें उसे हंसा या रुला सकते हैं।

१० आन्तरराष्ट्रीय व्यापारने तो अलग अलग देशोंके बीच व्यवस्थित आर्थिक युद्धका ही रूप धारण कर लिया है। इस व्यापारमें द्रव्यका लेन देन करनेवाले शक्तिशाली बैंकोंका बहुत महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। प्रत्येक देशका चलनी द्रव्य (सिक्का) भिन्न प्रकारका होता है। जिस देशसे माल खरीदा जाता है उस देशके द्रव्यमें मालकी कीमत चुकानी पड़ती है। यह काम एक्सचेन्ज बैंकोंके मारफत किया जाता है। ये बैंक एक देशके चलनी सिक्कोंको दूसरे देशके चलनी सिक्कोंमें बदल देते हैं। इन्हें हम विनिमय बैंक कहेंगे। ये बैंक एक देशके चलनके साथ दूसरे देशके चलनके विनिमयकी दर मांग और पूर्तिके आधार पर निश्चित करते हैं। चलनके विनिमयकी इस दरको हुंडावन कहते हैं। यह दर प्रतिदिन या प्रति घंटे बदलती है। उसकी करामात इन लोगोंने ऐसी अटपटी कर डाली है कि साधारण बेचनेवाले और खरीदनेवालेके तो वह समझमें ही नहीं आती। हुंडावनके समय समय पर होनेवाले इस परिवर्तनके कारण कई बार बेचने या खरीदनेवालोंको हजारों बल्कि लाखों रुपयोंका घाटा हो जाता है। इस विभागमें हम देखेंगे कि हुंडावनकी करामातसे ब्रिटिश सरकारने हमारे देशको बहुत नुकसान पहुंचाया है।

११ विनिमयके इस तंत्रका और उसके सारे व्यवहारोंका विवेचन हम इस विभागमें करेंगे। पिछले प्रकरणमें हम देख चुके हैं कि उत्पादनकी पद्धतिमें जड़मूलसे परिवर्तन किया जाये और समाजकी उचित आवश्यकताओंको — आवश्यक चीजें पूरी मात्रामें मिलती रहें इस तरह — भलीभांति अन्दाज लगाकर हर देश अपने उत्पादनकी व्यवस्थित योजना करे और उसका बंटवारा सारे समाजकी भलाईको ध्यानमें रखकर उचित ढंग पर किया जाये, तो बहुत संभव है कि विनिमयके लिए खड़े किये गये तंत्रका बड़ा हिस्सा अनावश्यक हो जाये। अन्त संभव है कि नई अर्थ रचनामें विनिमयका महत्त्व घट जाये। फिर भी विनिमयका तंत्र आज किस तरह चलता है यह जाननेकी जरूरत इसलिए है कि इससे समाजको होनेवाले हानि-लाभकी कल्पना हमें हो जायगी।

२

बाजार

हाट अथवा गुजरी

१ जसे जसे अपनी उत्पन्न की हुई चीजें दूसरोको देकर उनके बदलेमें अपनी आवश्यकताकी चीजें लेनकी जरूरत मनुष्योको ज्यादा मालूम होने लगी वसे वसे इस तरहकी अदला-बदली करनके लिए किसी निश्चित समय और निश्चित स्थानकी जरूरत भी उन्हे मालूम होने लगी। शुरू शुरूमें तो धार्मिक त्योहार या सामाजिक उत्सवके अवसरो पर प्राकृतिक सौन्दयवाले जिस देवस्थान पर बहुतसे लोग इकट्ठे होते वही इस तरहकी अदला-बदली होन लगी। फिर हर हफ्ते एक खास दिन और एक खास जगह पर हाट या गुजरी लगानका रिवाज पडा। वहा लोग अपनी आवश्यकतासे अधिक चीजें लेकर आते और उनके बदलेमें अपनी आवश्यकताकी चीजें लेकर चले जाते। अब भी जहा हाट या गुजरी लगती है वहा कारीगर अपनी बनाई हुई चीजें लेकर जाते ह। दुकानदार शहरोंसे नमक मिच-मसाले गुड शक्कर चाय तेल वगरा चीजें खरीद कर लाते ह और वहा बचनके लिए बठते ह किसान अनाज या कपास लेकर वहा जाते ह और इनके बदलेमें कारीगरो और दुकानदारोसे अपनी आवश्यकताकी चीजें लेते ह। चौधरी भील वगरा आदिवासियोके प्रदेशमें खास खास स्थानो पर निश्चित दिनोमें एसे हाट लगते ह। अहमदाबाद शहरमें रविवारको जब गुजरी लगती है तो दुकानदार और कारीगर अपना माल खुला बिछाकर बठते ह। आसपासके गावोके लोग खास तौर पर खरीदीके लिए ही उस दिन शहरमें आते ह। सूरतमें गोकुल-अष्टमीके मेलेके समय दूर दूरसे कारीगर अपनी बनाई हुई चीजें बचनेके लिए आते ह और अपनी कामचलाऊ दुकान लगाकर बठते ह। अहमदाबादमें ताब-पीतलके बरतन खरीदना दीवालीके बादके पाच दिनामें शुभ माना जाता है। उन दिनो दुकानदार अपन बरतन दुकानके बाहर सजाते ह और शकुनके रूपमें लोग एक दो ताब-पीतलके बरतन उनमें से खरीदते ह।

२ पुराने जमानेम चीजके बदले चीजकी अदला-बदली होती थी। उसमें चीजोकी कीमत निश्चित करने और अदला-बदली करनमें बहुत कठिनाइया

आती थी। इसलिए अदला-बदलीके एक साधनके रूपमें द्रव्यकी खोज हुई। द्रव्यका उपयोग आरंभमें तो विनिमयके साधनके रूपमें हुआ, लेकिन आज हमारे अर्थ-व्यवहारमें वह एक प्रबल शक्ति बन गया है। द्रव्यकी खोज उसके स्वरूप उसके प्रकार आदिका विचार हम आगे करेंगे।

स्थायी बाजार

३ अब तो शहरों और बड़े कस्बोंमें स्थायी बाजार बन गये हैं और वहां सामान्य आवश्यकताकी सभी वस्तुएं मिलती हैं। हां ढोरोंके बाजार अभी तक स्थायी नहीं बने हैं। अहमदाबादमें शनिवारको ही ढोरोंका बाजार लगता है। कुछ प्रदेशोंमें ढोरोंको खरीदने-बिकाने सुभीतेके लिए ढोरोंके खास मेले भरनेका रिवाज है। साधारण तौर पर एक बाजारमें सभी चीजोंकी दुकानें होती हैं। हां बड़े शहरोंमें हर चीजका अलग अलग बाजार भी होता है जैसे अनाजका बाजार सब्जी बाजार लोहेका बाजार कपड़ेका बाजार, शक्कर बाजार जौहरी बाजार वगैरा। इसके अलावा चीजें थोकबन्द बेचने और फुटकर बेचनेके बाजार भी अलग अलग होते हैं।

बाजारका विशेष अर्थ

४ अर्थशास्त्रमें बाजारका ऐसा संकुचित अर्थ नहीं लगाया जाता कि वह चीजें खरीदने-बेचनेका एक निश्चित स्थान है। बाजारका विशिष्ट अर्थ उसकी नीचे लिखी दो मुख्य शर्तोंसे ध्यानमें आयगा

(१) खरीद बिक्रीके मामलेमें बेचनेवाले और खरीदनेवाले आपसमें और एक-दूसरेके साथ सीधा और खुली प्रतिस्पर्धा कर सकें।

(२) इस प्रतिस्पर्धाका नतीजा यह हो कि एक प्रकारकी और एकसे गुणोंवाली चीजोंका भाव एक समयमें एक हो हो।

बाजारमें माल बेचनेवाले हमेशा अपनी चीजका अधिक भाव पानेका और खरीदनेवाले हमेशा कम भाव देनेका प्रयत्न करते हैं। यदि दुकानदार किसी चीजको कम भावमें बेचने लगे तो सारे खरीदार उसीके यहां दौड़ जाते हैं। उस समय दूसरे दुकानदार वस्तुस्थितिकी अच्छी तरह जांच करते हैं। और यदि उन्हें यह पता लगे कि ग्राहकोंकी संख्या बड़ी है और उस दुकानदारके पास जितना माल है उससे मांग ज्यादा है तो वे अपना भाव नहीं घटाते बल्कि उस दुकानदारका माल बिक जानेकी राह देखते हैं। इस बीच वह कम भावमें बेचनेवाला दुकानदार भी देखता है कि ग्राहक तो ज्यादा हैं ही और दूसरे दुकानदार अपना भाव नहीं घटा

रहे हैं बस, वह भी अपना भाव कम कर देता है क्योंकि उसका हेतु दूसरोंसे कम भावमें अपना माल बेचना तो होता ही नहीं। उसका हेतु तो यही होता है कि उसका सारा माल ऊंचे भावसे बिक जाय। यही हाल खरीदारोंका होता है। कोई खरीदार अपनी गरजके कारण या किसी खास चीजकी अधिक उपयोगिता मालूम पड़नेके कारण अपने लिए तो अधिक भाव देकर भी उसे खरीदनेको तैयार हो सकता है परन्तु वह भी तो दूसरे ग्राहकोंसे ज्यादा भाव देनेको राजी नहीं होता। दूसरे खरीदारोंको जिस भाव वह चीज मिलती हो उससे ज्यादा भाव देना वह पसन्द नहीं करता। इसी तरह कोई दुकानदार दूसरे दुकानदारसे कम भाव लेनेको तैयार नहीं होता। बाजारके किसी भी हिस्सेमें भावोंकी घटा-बढ़ी होते ही थोड़े समयमें सारे बेचनेवालों और खरीदनेवालोंको उसका पता चल जाता है और उनमें ऊपर बताई हुई प्रतिस्पर्धा चलती है। इस प्रतिस्पर्धाके कारण ही भाव एकसे रहते हैं। फिर भी यह हो सकता है कि प्रतिस्पर्धाके शुरू होने और उसका निश्चित परिणाम निकलनेके बीच भावमें थोड़ा बहुत फर्क पड़ जाय। जो बाजार बहुत व्यवस्थित हो गये हों उनमें भी एक ही समयमें एक ही चीजके सौदे अलग अलग भावोंमें होना सम्भव है। जो खरीदार अधीर और उतावले होते हैं वे भाव स्थिर होने या भाव निश्चित होनेसे पहले ही ज्यादा भाव देकर खरीदने लग जाते हैं। इसी तरह घबराहटमें बेचने वाले भी कम भाव पर बेच डालनेको तैयार हो जाते हैं। ऐसा भी होता है कि शान्त प्रकृतिवाले और होशियार आदमी एक ही दिनमें जल्दबाज बेचनेवालोंसे कम भावमें माल खरीद कर और उतावले खरीदारोंको अधिक भावमें माल बेचकर नफा कमा लेते हैं। भाव स्थिर तो शान्त प्रकृतिके जानकार और कुशल लेन-देन करनेवालोंके सौदेसे ही होते हैं। इस तरह यह कहनेके बजाय कि किसी एक समयमें एक बाजारमें समान गुणवाली चीजके भाव एकसे रहते हैं यह कहना चाहिये कि भावका रुख एकसा रहनेकी तरफ होता है।

स्थानीय बाजार और विश्वव्यापी बाजार

५ इस कसौटी पर परखनेसे हमें पता चलेगा कि कुछ चीजोंके बाजार स्थानीय होते हैं अर्थात् अलग अलग जगहों पर उन चीजोंके अलग अलग भाव रहते हैं। हमारे देशमें दूध साग भाजी फल फूल आदि जल्दी बिगड़नेवाली चीजोंके भाव स्थानके अनुसार अलग अलग होते हैं। बड़े शहरोंमें इन चीजोंके भाव बहुत अधिक होते हैं छोटे शहरोंमें उनसे कुछ कम और

गांवोंमें बहुत कम पाये जाते हैं। दूध अधिक समय तक अच्छा नहीं रह सकता इसलिए किसी भी शहरकी दूधकी आवश्यकता आसपासके कुछ मीलके क्षेत्रसे ही पूरा की जा सकती है। इस क्षेत्रके बाहर दूध कितना ही उत्पन्न होता हो और वहां घास-चारेकी खासी अच्छी सुविधा होनेसे दूध कितना ही सस्ता पड़ता हो तो भी वह दूध उस शहरमें समय पर अच्छी हालतमें नहीं पहुंचाया जा सकता। इसलिए शहरमें बसनेवाले दूधकी मांग और पूर्तिकी प्रतिस्पर्धामें उस मर्यादित प्रदेशके बाहरका दूध कोई हाथ नहीं बंटा सकता। हां पश्चिमके देशोंमें दूधको लम्बे समय तक अच्छी हालतमें रखनेके लिए एकसे ठंडे तापमानमें रखनेकी वैज्ञानिक पद्धतिकी मददसे और यातायातके साधनोंकी व्यवस्थाके कारण दूध बहुत दूर दूर तक ग्राहकोंके पास समय पर और अच्छी हालतमें पहुंचाया जा सकता है। ऐसे देशोंमें दूधके बाजारका क्षेत्र काफी बड़ा है। यही बात साग-भाजी और फल-फूलकी है। ये चीजें जितनी ताजी होती हैं उतनी ही उनकी उपयोगिता ज्यादा होती है और इसीलिए उनकी मांग और दाम भी ज्यादा होते हैं। अभी हमारे देशमें इन चीजोंके बाजार बहुत मर्यादित हैं यानी अलग अलग जगहोंमें अलग अलग होते हैं। जिस प्रदेशमें साग-भाजी और फल-फूल बहुत उत्पन्न होते हैं वहां ये बड़ी मात्रामें और सस्ते मिलते हैं। जहां ये उत्पन्न नहीं होते वहां महंगे और कम मात्रामें मिलते हैं। लेकिन इंग्लैण्ड फ्रांस बेल्जियम और हॉलैंड जैसे छोटे देशोंमें यातायातके तेज साधनोंकी व्यवस्थाके कारण और इन चीजोंको ताजी बनी हुई रखनेकी वैज्ञानिक सुविधाओंके कारण, जो चीजें जल्दी बिगड़ जानेवाली मानी जाती हैं उनके लिए भी सारे देशका एक बाजार बन गया है अर्थात् सारे देशमें सब जगह पर ये चीजें लगभग एक ही भावसे बिकती हैं, यद्यपि वहां भी यातायातका खर्च अपना काम किये बिना नहीं रहता। मौसममें साग-भाजी और फल-फूल खूब पैदा होते हैं इसलिए उनको पैदावारके स्थानोंमें उनके भाव मन्द रहते हैं, क्योंकि बहुत कम मात्रामें माल बाहर भेजनेका खर्च उठानेकी अपेक्षा उस स्थान पर ही सस्ते भावसे बेच देना उत्पादकको अधिक सुविधा देता है।

६ मक्खन और मांस जैसी थोड़े समयमें बिगड़ जानेवाली चीजोंके बाजार भी इन चीजोंके रक्षणकी वैज्ञानिक पद्धतियोंके कारण अब विशाल होने लगे हैं। इन चीजोंको इस प्रकार डिब्बोंमें बन्द करते हैं कि बाहरकी हवा बिलकुल भीतर न जा सके। फिर वहां रेल और जहाजमें रखनेसे ठंडे तापमानवाले डिब्बों या कमरोंमें रखकर हजारों मील दूर भेजा जा

सकता है। इनके भावमें यातायात-खर्च जितना बहुत थोड़ा पर ही पड़ता है।

७ जो चीज कीमतमें बहुत हल्की परन्तु वजनमें बड़ी और वजनमें भारी होती है जैसे रेत कंकर चूना मिट्टी इंट और पत्थर उनके बाजार हमेशा बिल्कुल स्थानीय ही रहते हैं। ये चीजें जहां होती हैं या बनाई जाती हैं वहां उनकी जो कीमत होती है उसमें जैसे जैसे उन्हें दूर ले जाया जाता है वैसे वैसे वृद्धि होती जाती है। एक-दो मीलके अन्तरमें भी उनके भावमें बहुत फर्क पड़ जाता है क्योंकि इन चीजोंकी मूल कीमत पर यातायातका खर्च बहुत ज्यादा पड़ता है। दूसरी ओर सोना चांदी और हीरा मोती वगैरा छोटी चीजें और बहुत कीमती चीजोंका यातायात-खर्च उनकी भारी कीमतकी तुलनामें बहुत थोड़ा होता है। इसलिए उनके बाजार विश्वव्यापी होते हैं। सोना चांदी और जवाहरातकी कीमत दुनियाके सारे देशोंमें लगभग एकसी होती है।

८ जिन चीजोंकी सब जगह जरूरत रहती है जो बहुत बड़ी मात्रामें उत्पन्न होती हैं जो जल्दी बिगड़नेवाली नहीं होतीं जिनका निश्चित वर्णन किया जा सकता है और जिनका जाति और गुणके अनुसार निश्चित वर्गीकरण किया जा सकता है उन चीजोंके बाजार बहुत बड़े होते हैं। जो चीजें अमुक देशोंमें ही उत्पन्न होती हों लेकिन जिनकी आवश्यकता सब देशोंमें हो — जैसे गेहूं रुई तिलहन सीमेंट वगैरा — उनके बाजार विश्वव्यापी होते हैं। बेचनेवाले और खरीदनेवाले प्रत्यक्ष मिले बिना और चीजको आंखोंसे देखे बिना भी उसकी जातिके वर्णन परसे या उसके नमूने परसे उसका सौदा कर सकते हैं।

९ अर्थशास्त्रियोंने श्रमको भी बाजारकी चीज माना है। मजदूरोंकी जरूरत सब देशोंमें होती है परन्तु उनके बाजार हमेशा स्थानीय रहते हैं। इसका कारण यह है कि मजदूर कोई जड़ या निर्जीव चीज नहीं है। उनकी अपनी रुचि-अरुचि भावनायें और स्वतंत्र इच्छा होती है। इसलिए उन्हें एक जगहसे दूसरी जगह जल्दी जल्दी नहीं भेजा जा सकता। (यूरोप और अमरीकाके गुलामोंके व्यापारको इसका अपवाद समझा जाना चाहिये। लेकिन उसमें तो जबरदस्ती थी।) वे अपना वतन छोड़कर जानेको तैयार न हों, उन्हें दूसरे प्रदेशोंका हवा-पानी अनुकूल न आये नये रहन-सहन और रीत रिवाजोंमें रहना उन्हें पसन्द हो या न हो कोई बलवान और बहुत काम करनेवाले हों और कोई कमजोर हों कोई होशियार हों और कोई

मूख हो कोई आनाकारी हो और कोई अडियल हों — इन सब कारणोंसे एक देशसे दूसरे देशमें ही नहीं बल्कि एक ही देशके अलग अलग भागोंमें भी मजदूरोंकी अदला-बदली नहीं हो सकती। और मजदूरोंकी बहुतायत और कमीके कारण विभिन्न प्रदेशोंमें मजदूरोंकी दर अलग अलग होती है।

१० उपरोक्त विवेचन परसे हमने देखा कि बेचनेवाले और खरीदनेवालोंके बीच परस्पर और एक-दूसरेके साथ चलनेवाली पूरी प्रतिस्पर्धाके कारण जहां एक जातिकी और समान गुणवाली चीजोंके भाव एकसे रह सकते हों वहां यह कहा जाता है कि उस चीजका बाजार एक है। काश्मीरमें सेर दो पैसेका दूध मिलता हो और अहमदाबादमें चार आनेका एक सेर तो कहा जायगा कि दूधका बाजार अहमदाबाद और काश्मीरमें अलग अलग है। काठियावाडके गीर प्रदेशमें अच्छी गाय ५० रु० में मिलती हो लेकिन बम्बईमें वैसी ही गायके २०० रु० देने पड़ें तो कहा जायगा कि गायका बाजार काठियावाड और बम्बईमें अलग अलग है। लेकिन रुई गेहूं और घासलेट वगैरा चीजोंके भाव उनकी अलग अलग जातिके अनुसार सारी दुनियामें लगभग एकसे होते हैं। बम्बई लिवरपूल और न्यूयार्कमें एक जातिकी रुईके भावमें ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। यातायात-खर्चके कारण थोड़ासा फर्क पड़ता है लेकिन ऐसी चीजों पर यातायात-खर्च बहुत भारी नहीं आता। इसलिए तीनों स्थानोंका बाजार एक ही है ऐसा कहा जायगा।

विशाल बाजारकी आवश्यक शर्तें

११ बाजारके विशाल होनेके लिए नीचेकी शर्तें जरूरी मानी जाती हैं :

(१) समाचार भेजने और माल लाने-ले जानेके साधनोंकी व्यवस्था सस्ती और तेज होनी चाहिये। खरीदने और बेचनेवाले एक-दूसरेके साथ जल्दी सम्पर्क स्थापित कर सकें ऐसी तार-टेलीफोनकी व्यवस्था हो तो बाजारका विस्तार बढ़ सकता है। अलग अलग देशोंमें पैदा होनेवाले मालकी फसल या उत्पादनमें कमी पड़नेकी सम्भावनाके समाचार और उन परसे बड़े अनुभवी व्यापारी भावके जो अन्दाज लगाते हैं वे अन्दाज सारी दुनियामें तुरन्त फैलाये जा सकते हैं और जहां मालकी मांग हो वहां जल्दीसे और मांग पर ज्यादा असर न हो ऐसी किफायती दरोंमें माल पहुंचानेकी सुविधापूर्ण व्यवस्था भी हुई है। इसी कारणसे बाजार बहुत व्यापक हो गये हैं।

(२) संग्रह अथवा पूर्ति और मांग अथवा खपतकी मात्रा बहुत बड़ी होनी चाहिये यानी माल ऐसा होना चाहिये जिसका उत्पादन बहुत बड़ी मात्रामें होता हो और उसकी मांग भी बहुत ही बड़ी मात्रामें हो। जैसे,

रुई या गहूकी माग दुनियाके बहुतेरे देशोंमें बडी मात्रामें होती है इसी तरह अलग अलग देशोंमें उनका उत्पादन भी बडी मात्रामें होता है। इस लिए इन चीजोंके बाजार बहुत विशाल है। लेकिन राएल्गार चमडेकी जरूरत ठंडे देशोंमें ही होती है और वहा भी उसकी माग कममें ही होती है इसलिए उसके बाजार छोटे होते है। कुछ चीजें ऐसी होती है जो मर्यादित मात्रामें ही मिल सकती है। उदाहरणके लिए प्राचीन कालकी उपलब्ध विरल वस्तुएं अथवा उत्तम कलाकी वस्तुओंके बाजार सदा मर्यादित ही रहते है।

(३) मालकी जाति और गुणके अनुसार उसका वर्गीकरण करनेकी तथा उसके निश्चित वर्णन और नमूनेकी पहचान परसे सारा माल एक ही वर्णनके अनुसार अथवा निश्चित वर्गीकरणके अनुसार है ऐसा निर्णय करनेकी सभावना होनी चाहिये। अगर ऐसी सुविधा हो कि मालकी जाति आदिके बारेमें गलतफहमी भ्रम या शका न रहने पाय तो ही दूर बैठकर और मालको आखोसे देखे बिना तार या टेलीफोनसे उसके सौदे हो सकते है। रुई गहू और सोने चादीके सौदे इस तरह हो सकते है। परन्तु साफ है कि गाय भैस खरीदनी हो तो उन्हें प्रत्यक्ष देखे बिना नही खरीदा जा सकता। कारखानेमें तैयार किये हुए मालकी निश्चित पहचानके लिए कारखानेदार और व्यापारी अपने अलग अलग जातिके मालके लिए अपने व्यापार चिह्न (ट्रेडमार्क) रखते है। इससे बाहरके व्यापारीको उस मालका आर्डर देनेमें सुविधा रहती है।

(४) माल ऐसा होना चाहिये कि एक जगहसे दूसरी जगह पहुचानेमें उसकी मूल कीमतके अनुपातमें यातायातका खर्च बहुत ज्यादा न आय। ऊपर कहा जा चुका है कि ईट पत्थर चूना रेत वगैराके बाजार भावमें यातायातके खर्चका बहुत बडा भाग होता है। ऐसी चीजोंके बाजार व्यापक नही हो सकते।

(५) माल ऐसा नही होना चाहिये जो जल्दी बिगड जाय। यह चर्चा हम कर चुके है कि दूध साग भाजी फल फूल आदिके बाजार स्थानीय होते है। लेकिन दूधके पाउडरका गाढा करके जमाये हुए (कण्डेन्स्ड) और डिब्बोंमें हवा न लग इस तरह बन्द किये हुए दूधका और पैक करके वैज्ञानिक पद्धतिसे सुरक्षित रखे हुए मक्खन मास फल वगैरा चीजोंका बाजार बहुत व्यापक हो गया है।

द्रव्य और पूंजीके बाजार

१२ दूसरी चीजोंकी तरह द्रव्य और पूंजीके भी बाजार होते हैं। यह काम सराफी पेढ़िया और बैंक करते हैं। वे अन्य अनेक मनुष्योंकी छोटी छोटी रकमोंको अपने यहां चालू खातेमें या निश्चित अवधिके लिए जमा रखते हैं और इस तरह एकत्र हुआ द्रव्य बड़ी व्यापारिक औद्योगिक कंपनियोंको जमानत पर उधार देते हैं तथा ऐसा करके पूंजीका प्रवाह उद्योग-धंधोंकी ओर मोड़नेका काम करते हैं। साथ ही वे साखका उपयोग करके कृत्रिम रूपमें द्रव्य खड़ा भी कर सकते हैं। इस सम्बन्धमें विशद विवेचन अगले प्रकरणोंमें किया जायगा।

३

मूल्य और कीमत

१ व्यवहारी भाषामें सामान्यतः हम मूल्य और कीमत इन दो शब्दोंका एक ही अर्थमें उपयोग करते हैं। किसी पुस्तक पर मूल्य २ रुपये या कीमत २ रुपये छपा रहता है। हम समझ लेते हैं कि यह पुस्तक खरीदनी हो तो हमें २ रुपये देने पड़ेंगे। परन्तु अर्थशास्त्रके प्रयोगमें इन दो शब्दोंका विशेष अर्थमें उपयोग होता है। जो चीज बहुत उपयोगी हो उसके बाजारमें भले कुछ भी दाम न लगें तो भी ऐसा कहा जाता है कि वह बहुत मूल्यवान है। उदाहरणके लिए हवा और पानी। गेहूं बाजरा या चावल हमारे भोजनकी आवश्यकताकी दृष्टिसे बहुत मूल्यवान हैं फिर भी बाजारमें ये चीजें सोने चांदी जैसी कीमती नहीं मानी जातीं। हवा और पानीकी तो कोई कीमत भी नहीं होती। ये चीजें बाजारमें कीमती न मानी जाने पर भी हमारे जीवनको टिकाये रखनेके लिए बहुत आवश्यक होनेके कारण बड़ी मूल्यवान हैं। ये चीजें मनुष्यके लिए बहुत ही उपयोगी हैं। इनके बिना उसका काम ही नहीं चल सकता। इन चीजोंमें उपयोगिताका बहुत बड़ा गुण है लेकिन व्यवहारमें हम इनके बदले दूसरी चीज लेने जायं तो वह नहीं मिलती यानी विनिमयकी दृष्टिसे उनकी कोई कीमत नहीं। इसलिए हम कह सकते हैं कि इन चीजोंका उपयोग-मूल्य तो बहुत है परन्तु विनिमय मूल्य या बाजार-मूल्य कुछ भी नहीं है। गेहूं बाजरा या चावलकी तुलनामें सोने चांदीका उपयोग मूल्य बहुत कम है फिर भी इन धातुओंका विनिमय मूल्य बहुत अधिक है।

२ यह जरूरी नही कि जिस जिस चीजमें उपयोग मूल्य हो उसमें विनिमय मूल्य भी होना ही चाहिये। इसके उल्टे किसी भी चीजमें विनिमय मूल्य तभी हो सकता है यानी बाजारमें उसकी कीमत तभी मिल सकती है जब उसमें लोगोंने कम या अधिक उपयोगिता मान रखी हो। इसमें ऐसा जरूर हो सकता है कि मनुष्यने किसी चीजमें उपयोगिता अनुचित रूपमें मान ली हो जैसे शराबी शराबको उपयोगी वस्तु मान लेता है। शराबी शराबकी कीमत इसीलिए देनेको तैयार होता है कि उसे शराबमें उपयोगिता मालूम होती है शराबसे उसे अपना माना हुआ आनन्द मिलता है और इसलिए शराबमें सचमुच उपयोग मूल्य न होने पर भी उसका विनिमय-मूल्य काफी होता है।

३ अर्थ-व्यवहारमें हमें विशेषत विनिमय-मूल्यका ही विचार करना होता है। एक चीजके बदलेमें दूसरी कौन कौनसी चीजें मिल सकती है इसके आधार पर उस चीजका विनिमय मूल्य आका जाता है। किसी भी चीजके बदलेमें पहले जितनी चीजें मिल सकती थी उनसे अब कम मिलें तो यह कहा जायगा कि उस चीजका विनिमय मूल्य घट गया और उस चीजकी तुलनामे रखी जानेवाली उन दूसरी चीजोंका विनिमय मूल्य बढ गया। उदाहरणके लिए पहले एक मन बाजरेके बदलेमें जूतोंकी एक जोड मिलता हो और अब एक जोड जूतोंके लिए दो मन बाजरा देना पडे तो ऐसा कहना चाहिये कि जूतोंका मूल्य बढ गया परन्तु साथ साथ यह भी कहना चाहिये कि बाजरेका मूल्य घट गया। सभी चीजोंका विनिमय मूल्य एकसाथ घट या बढ नही सकता क्योंकि कुछ चीजोंका विनिमय मूल्य बढता है तो उनके बदलेमें आनेवाली चीजोंका विनिमय मूल्य घटता है। अर्थशास्त्रमें किसी चीजके इस तरहके विनिमय मूल्यके लिए बदलेमें दूसरी चीजें पानेकी उस चीजकी शक्ति यानी खरीद शक्तिके लिए अकेला मूल्य शब्द काममें लाया जाता है। लेकिन आजकल तो सामान्यत सारी चीजोंका मूल्य समाजमें जो द्रव्य चलनमें हो उस द्रव्यके रूपमें ही आका जाता है। किसी चीजके मूल्यका द्रव्यके रूपमें जो अकन होता है उसके लिए हम कीमत या भाव शब्दका उपयोग करेंगे।

४ चीजोंके विनिमय मूल्यके लिए मूल्य और कीमत ये दो अलग अलग शब्द काममें लानेका कारण यह है कि जैसा ऊपर कहा गया है सब चीजोंका मूल्य एकसाथ नही बढ सकता। एक चीजका मूल्य घटता है तो दूसरी चीजका मूल्य बढता है लेकिन सभी चीजोंकी कीमत एकसाथ घट

या बढ सकती है। जब महगाई होती है तब सभी चीजोंकी कीमत या भाव बढते है और सस्ताई होती है तब सभी चीजोंकी कीमत या भाव घटते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि द्रव्यका ही, जिसके जरिये सारी चीजोंका मूल्य नापा जाता है मूल्य बढता घटता है। दूसरे महायुद्धसे पहलेके समयसे आज हर चीज महगी मिलती है। आज रुपयेका मूल्य या उसकी खरीद शक्ति घट गई है, जब कि सस्ताईमें रुपयेका मूल्य या खरीद शक्ति बढती है। रुपया लेकर हम बाजारमें जायें तो सस्ताईके समय उसके बदलेमें हर चीज हमें ज्यादा मात्रामें मिलती। द्रव्यके मूल्यमें परिवर्तन होनेके कारणो और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली महगाई या सस्ताईकी ब्यौरेवार चर्चा करनेका यह स्थान नहीं है। यह चर्चा हम आगे करेंगे।

यहा तो हमने इतनी चर्चा केवल यह स्पष्ट करनेके लिए की है कि विनिमय मूल्यके दो रूप — मूल्य और कीमत इन दो शब्दोंका — इस पुस्तकमें हम भिन्न अर्थोंमें उपयोग करेंगे।

५ अब हम यह देखें कि किसी चीजके मूल्यका मुख्य आधार किस बात पर होता है। यह तो हम देख चुके कि किसी चीजकी उपयोगिता पर उसके मूल्यका आधार रहता है। मूल्यका दूसरा आधार उस श्रम पर भी रहता है, जो उस चीजको पैदा करनेमें या उसे उपभोगके योग्य बनानेमें मनुष्यको करना पडता है।

हवा और पानी जैसी भारी उपयोगिता मूल्यवाली परन्तु अनायास मिल जानेवाली चीजोंके लिए कोई श्रम नहीं करना पडता। इसलिए उनका श्रम मूल्य कुछ नहीं होता और इसीलिए उन चीजोंका विनिमय मूल्य भी कुछ नहीं होता। इन चीजोंको सर्व-सुलभ संपत्ति मानकर अर्थशास्त्रके विवेचनमें हमने उन्हें स्थान नहीं दिया। अर्थशास्त्रमें तो श्रमप्राप्य अथवा कष्टसाध्य सम्पत्तिका ही विचार करना होता है। लेकिन जिन चीजोंके लिए श्रम किया गया हो ऐसी सभी चीजोंका विनिमय-मूल्य नहीं होता। किसीने मूर्खतापूर्ण और व्यर्थका श्रम करके निरुपयुक्त बेकार या हानिकारक चीज बनाई हो तो उसका विनिमय-मूल्य नहीं होता। बाजारमें उसकी कुछ भी कीमत नहीं मिलती। परन्तु एक बात निश्चित है कि किसी चीजका विनिमय मूल्य तभी हो सकता है जब उस चीजके लिए कुछ श्रम हुआ हो, यानी वह चीज श्रम-मूल्यवाली हो। अलबत्ता यह श्रम मूर्खतापूर्ण

और निकम्मा न होकर ऐसा होना चाहिये, जिसे समाजने मान्यता प्रदान की हो और जो समाजमें उपयोगी समझा जाता हो।

६ किसी चीजके विनिमय मूल्यका प्रश्न तभी पैदा होता है जब मनुष्यने अपने उपयोगके लिए नहीं बल्कि दूसरेको बेचनेके लिए वह चीज बनाई हो। जो चीज वह स्वयं बनाता है और स्वयं ही काममें लेता है उसके विनिमय मूल्यका प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। इसलिए ऐसी चीजके मूल्यका अन्दाज लगाना नहीं पड़ता। फिर भी उस चीजमें उपयोगिता और श्रमका तत्त्व तो होता ही है। उसके विनिमय मूल्यके प्रश्न पर भले विचार करना जरूरी न हो फिर भी उस चीजमें उपयोग-मूल्य और श्रम मूल्य तो रहते ही हैं। उपयोग मूल्यका चीजके उपयोगके साथ संबंध है। श्रम मूल्यका चीजके उत्पादनके साथ सम्बन्ध है। किसी चीजके उपयोग मूल्य पर उस चीजकी मांगका आधार रहता है। चीजके श्रम मूल्य पर उस चीजकी पूर्तिका आधार रहता है। मनुष्य कोई चीज तैयार करके स्वयं ही उसका उपयोग करे तो भी उस चीजके उपयोगसे जो लाभ मिलता है या उस चीजके द्वारा अपनी आवश्यकता पूरी होनेसे जो तृप्ति होती है उसके साथ उस चीजके उत्पादनमें लगे श्रम या उठाये गये कष्टका मेल बैठता हो मनुष्य उस चीजके लिए श्रम करनेको तैयार होगा। किसी चीजको तैयार करनेमें बहुत श्रम करना पड़ता हो और उसके उपयोगसे उस श्रमकी तुलनामें बहुत कम सन्तोष या लाभ मिलता हो तो मनुष्य उसके लिए श्रम करनेको तैयार नहीं होता। यह बात तो हुई उस चीजकी जो मनुष्य अपने उपयोगके लिए ही तैयार करता है। दूसरोंके लिए अगर वह कोई चीज बनाता हो तो वह यह देखेगा कि जो परिश्रम वह करता है उसका पूरा बदला उसे मिलता है या नहीं। अगर उसे इतना बदला न मिले जिससे उसे सन्तोष हो तो वह उस चीजको बनानेका श्रम करनेको तैयार नहीं होगा। यह बदला मिलनेका आधार इस बात पर रहता है कि वह चीज दूसरोंके लिए कितनी उपयोगी होगी। बनानेवाला आदमी अपने उत्पादक श्रमका जो मूल्य कूते उसका मेल उस मूल्यके साथ बैठना चाहिये जो उसे काममें लेनेवाला अपने उपयोगका लगाता है। अर्थात् किसी भी चीजके श्रम मूल्यका अंकन और उपयोग मूल्यका अंकन एक हो तभी उसके बनानेवाले और उपयोग करनेवालेके बीचका विनिमय-व्यवहार बिलकुल न्यायपूर्ण माना जायेगा उस चीजका विनिमय मूल्य बिलकुल उचित आंका गया समझा जायगा। वह चीज अगर पैसेसे बेची जाय तो उसकी बिक्री

ठीक कीमतसे हुई मानी जायगी। अदला-बदली या विनिमयके न्यायसंगत और उचित व्यवहारके लिए यह जरूरी है कि चीजोंके विनिमय मूल्यका उपयोग मूल्यका और श्रम मूल्यका एक-दूसरेके साथ अच्छी तरह मेल बैठे।

७ आज इन तीनों मूल्योंका हिसाब द्रव्यसे लगाया जाता है और समाजमें आर्थिक असमानता फैली होनेके कारण इस हिसाबमें सच्चे न्यायकी रक्षा नहीं होती। उदाहरणके लिए अमीर आदमीके लिए किसी चीजका उपयोग मूल्य बहुत थोड़ा हो, तो भी वह उसके लिए ज्यादा द्रव्य देनेको तैयार हो जाता है, क्योंकि उसे द्रव्यकी कोई कमी नहीं। द्रव्यका मूल्य उसकी नजरमें बहुत कम होता है। सामाजिक दृष्टिसे देखें तो हीरा, माणिक मोती वगैरा चीजोंका उपयोग मूल्य बहुत कम माना जायगा परन्तु अमीर लोग अपने शौकके लिए तथा अपनी अमीरी और ठाटबाटका प्रदर्शन करनेके लिए ऐसी चीजें भारी मूल्य देकर खरीदते हैं। इसी तरह फैशनके लिए या फैशनी चीजोंके लिए लोग अधिक द्रव्य खर्च करनेको तैयार हो जाते हैं। ऐसी चीजें बनानेवालोंको उनके श्रमके बदलेमें अधिक द्रव्य मिलता है। दूसरी तरफ साग भाजी और घी दूध वगैरा खानेकी चीजें पैदा करनेवालोंको उनके श्रमका पूरा बदला नहीं मिलता। जीवनके लिए आवश्यक इन खाद्य-पदार्थोंके भाव इतने कम होते हैं कि उनके उत्पादकोंको पेट भर खाना भी नहीं मिलता। इसी कारण इस अन्यायको दूर करनेके लिए कार्ल मार्क्सने ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि किसी चीजका मूल्य अथवा उसे तैयार करनेमें लगे हुए श्रमसे ही किया जाना चाहिये। गांधीजीने इस सिद्धान्तको दूसरी भाषामें जनताके सामने रखा है। वे कहते हैं कि समाजके लिए जो चीज आवश्यक और उपयोगी हो उसकी कीमत इतनी उचित होनी चाहिये कि उससे बनानेवालेका निर्वाह अच्छी तरह हो जाये। इस विषयकी चर्चा हम उचित कीमतके प्रकरणमें करेंगे।

४

मांग और पूर्ति

मांग और पूर्तिका विशेष अर्थ*

१ किसी चीजके लिए मांग हो, लोगोंको उसकी आवश्यकता अनुभव होती हो, तभी मनुष्य उसका उत्पादन करनेके लिए प्रेरित होता है। लेकिन आजकल उत्पादन करनेमें समाजकी आवश्यकतायें पूरी करनेका विचार उत्पादकके मनमें मुख्य नहीं होता। किसी आदमीको कपड़ेकी कितनी ही आवश्यकता क्यों न हो, परन्तु उसके पास कपड़ा खरीदनेके लिए यदि द्रव्य न हो तो कहा जायगा कि उसके लिए कपड़ेका उत्पादन होता ही नहीं। दूसरी ओर, किसी अमीरको बहुत कीमती सिगरेटकी जरूरत हो और उस सिगरेटके मुंहमांगे दाम देनेको वह तैयार हो तो उसके लिए ऐसी सिगरेटका उत्पादन किया जायेगा। कोई उत्पादक इस बातका विचार करने नहीं बैठता कि सिगरेटसे ज्यादा आवश्यक चीजोंके बिना समाजमें अनेक लोग रह जाते हैं।

२ *बाजारमें खाद्य-पदार्थों या कपड़ेका संग्रह कितना भी क्यों न हो* लेकिन जिस मनुष्यके पास यह खुराक या कपड़ा खरीदनेको पैसा नहीं होता, उसकी आवश्यकतायें उस खुराक या कपड़ेसे पूरी नहीं हो सकती। बाजारमें खुराक या कपड़ेकी कितनी मांग है, इसका अंदाजा लगाते समय उस बिना पैसेवाले आदमीकी आवश्यकता या खपतका हिसाब नहीं लगाया जाता। बाजारमें तो किसी भी चीजकी आवश्यकताका अंदाज इसी परसे लगाया जाता है कि उस चीजको खरीदनेकी शक्ति कितने मनुष्योंके पास है और कितने मनुष्य उसे खरीदनेको तैयार हैं। बाजारकी दृष्टिसे तो जिन लोगोंके पास उस चीजके खरीदनेकी शक्ति हो, उन्हींकी मांगका हिसाब लगाया जाता है। इस परसे इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि समाजकी आवश्यकता और बाजारकी मांग — ये दो चीजें एक नहीं होतीं।

---

* मांगका अर्थ है समाजके साधनयुक्त उपभोगेच्छु मनुष्योंकी आवश्यकताओंका अन्दाज। इस तरह कहा जा सकता है कि मांग यानी साधनेच्छा और उपभोगेच्छा।

पूर्तिका अर्थ है समाजके विनिमयकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्योंके पास रहनेवाली आवश्यकताओंका संग्रह।

३. इसी प्रकार चीजकी पूर्तिका हिसाब मालकी राशिके केवल अस्तित्वसे ही नहीं लगाया जाता। मालकी राशि यदि बाजारसे इतनी दूर हो कि बाजार तक अच्छी स्थितिमें न पहुंचाई जा सके तो वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो बाजारकी कीमत तय करनेमें मालकी पूर्तिका जो हाथ होता है उसमें इस राशिका कोई हिसाब नहीं लगाया जाता। इसके सिवा, किसी व्यापारीके पास मालकी राशि बहुत हो, लेकिन यदि वह इस मालको बाजारमें बेचनेके लिए न रखे तो उसकी यह राशि भी पूर्तिमें नहीं गिनी जा सकती। अपने पासका माल व्यापारी तभी बेचनेको निकालता है जब उसकी पूरी कीमत उसे मिले। अतः जैसे किसी चीजकी मनुष्यकी आवश्यकता और उस चीजकी बाजारू मांग एक बात नहीं होती वैसे मालकी राशि और चीजकी बाजारमें पूर्ति भी एक बात नहीं होती। परन्तु कोई माल तुरन्त बिगड़ जानेवाला हो जैसे साग भाजी तो उसका पूरा भाव मिले या न मिले फिर भी वह बिल्कुल खराब हो जाय और उसे फेंक देना पड़े इसके बजाय मालिक उसे थोड़े समयमें बेच ही डालता है। अतः ऐसे मालके बारेमें बाजारमें मालकी राशि और चीजकी पूर्ति एकसी होती है। लेकिन ऐसा माल जो देर समय तक टिक सकता है व्यापारी यदि अच्छा भाव आने तक न बेचे तो उसके पासका माल बाजारकी पूर्तिमें कोई हाथ नहीं बटाता। यह जानी हुई बात है कि गोदाममें माल भरा होने पर भी ज्यादा भाव लेनेके लिए व्यापारी उसे बेचनेके लिए नहीं निकालते और इस तरह बाजारमें तंगी पैदा करते हैं।

४. किसी भी चीजकी बाजारमें मांग और पूर्ति कितनी है इसका असर उस चीजकी कीमत पर पड़ता है। इसी तरह कीमतका असर भी मांग और पूर्ति पर पड़ता है। यह किस प्रकार होता है इसे समझानेके लिए मांग और पूर्ति-सम्बन्धी कुछ विस्तृत चर्चा आवश्यक है।

उपयोगिताकी सीमा और मांग

५. ऐसा कहा जाता है कि मनुष्यकी इच्छाओं या आवश्यकताओंकी कोई सीमा नहीं होती। अपनी आवश्यकतायें बढ़ाते ही जाना मनुष्यका स्वभाव है। एक आवश्यकता पूरी हुई कि वह दूसरी खड़ी कर लेता है और दूसरी पूरी हुई कि तीसरी खड़ी कर लेता है। इस तरह सामान्यतः वह अपनी आवश्यकताओंकी कोई सीमा नहीं बांधता। लेकिन मनुष्यकी हर एक आवश्यकताका अलग अलग विचार करें तो पता चलता है कि प्रत्येक आवश्यकताकी सीमा जरूर होती है। आहार मनुष्यके जीवनकी एक बड़ी आवश्यक चीज है और इसलिए उसका मनुष्यके लिए बहुत बड़ा

उपयोगिता है। इसलिए मनुष्यके लिए उसकी मांगकी सीमा होती है। मनुष्यका पेट आहारकी अमुक मात्रासे भर जाय और वह अघा जाय तो फिर कुछ समयके लिए — यानी उसे दुबारा भूख न लगे तब तक — उसे आहारकी अधिक जरूरत नहीं रहेगी और अधिक आहारकी मांग भी वह नहीं करेगा। पेट भर जानेके बाद अधिक आहारका उस समय तो उसके लिए कोई उपयोग नहीं रहेगा। *उस समय अधिक आहार उसके लिए अनुपयोगी* ही नहीं बल्कि नुकसान करनेवाला भी सिद्ध हो सकता है। अब किसी मनुष्यकी इतनी बड़ी आवश्यकता है कि खाद्य पदार्थ बहुत महंगे हों और उसके पास पैसे कम हों तो दूसरी चीजोंके लिए खर्च करना छोड़कर वह पहले अपने लिए आवश्यक खाद्य-पदार्थ खरीदेगा। आवश्यक आहार खरीदनेके बाद पैसा बचेगा तो ही वह दूसरी चीज खरीदनेका विचार करेगा। दूसरी ओर भूख मिट जानेके बाद उस समयके लिए उसे आहारकी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। अर्थात् उसके लिए आहारकी उपयोगिताकी सीमा आ जायगी और आहार कितना ही सस्ता हो तो भी वह उसे खरीदना नहीं चाहेगा और न खरीदेगा। किसी भी चीजके बारेमें इस *प्रकारकी तृप्ति — बस अब नहीं चाहिये की वृत्ति अमुक मात्रासे* अधिक प्राप्त करने अथवा खरीदनेकी अतत्परता या अनिच्छा उपयोगिताकी सीमा कहलाती है। मनुष्यकी उपयोगिताकी सीमा आ जानेके बाद उस समयके लिए तो उस चीजके लिए उसकी मांग नहीं रहेगी। कई बार ऐसा होता है कि वास्तवमें चीजकी उपयोगिता तो हो लेकिन उसे खरीदनेकी शक्ति नहीं हो तब मनुष्यको मजबूर होकर अपनी उपयोगिताकी सीमा बांधनी पड़ती है। बाजारमें इस चीजकी मांग वह नहीं कर सकता। प्रचलित अर्थशास्त्र कहता है कि यह देखना हमारा काम नहीं है कि मनुष्यने अपनी उपयोगिताकी सीमा स्वेच्छासे बांधी है या अनिच्छासे। और बाजारमें तो कोई इस प्रश्न पर विचार करता ही नहीं। इसके फलस्वरूप बाजारमें तो उपयोगिताकी सीमा और मांग एक ही बात हो जाती है। आहारके मामलेमें उपयोगिताकी सीमा जल्दी आती है परन्तु बाकी बहुत मात्रामें उपयोगिताकी सीमा आ जानेका यह नियम लगभग* सभी चीजों पर लागू होता है।

---

* 'लगभग' शब्द मैंने इसलिए काममें लिया है कि इसमें कुछ अपवाद होते हैं। जैसे कोई आदमी डाकके पुराने टिकट इकट्ठा करता है। वह यथा संभव अधिकसे अधिक टिकट जमा करना चाहता है। कुछ टिकट जमा

६ साधारण नियम यह है कि किसी चीजकी मात्रा जैसे जैसे मनुष्यके पास बढ़ती जाती है वैसे वैसे उसकी बढ़ती हुई मात्राकी उपयोगिता घटती जाती है। मनुष्यको कुछ दो जोड़ी कपड़ोंकी जरूरत होती है। इनमें भी पहली जोड़ीका उपयोग मूल्य जितना होता है उतना दूसरी जोड़ीका नहीं होता और उसके बादकी जोड़ियोंका उपयोग मूल्य तो और भी कम होता है। यद्यपि कपड़े बहुत दिन तक टिकनेवाले होनेके कारण कपड़ोंकी तीसरी जोड़ीकी तुरन्त आवश्यकता न होने पर भी मनुष्य एक समय पर तीसरी जोड़ी रखनेको भी तैयार हो जायगा कि वक्त बेवक्त वह काम आयगी। जिनके पास धनकी बहुतायत होती है वे तो बहुत जोड़ी कपड़े रखते हैं। लेकिन ऐसे लोग भी जितने कपड़े आलमारीमें भलीभांति रख सकते हैं और सम्भाल कर रख सकते हैं उससे ज्यादा कपड़े रखनेको तैयार नहीं होते। इस तरह ऐसे धनवान आदमियोंकी भी कपड़ोंकी मांगकी सीमा तो आती ही है। कोई मनुष्य अपने कमरेके लिए एक कुरसी रखे तो उसकी उपयोगिता उसके लिए बहुत होगी। अगर उसे कमरेमें चार और कुरसियां रखनेकी सुविधा हो तो मुलाकातियोंके लिए कुछ और कुरसियां भी वह रख लेगा। परन्तु मान लीजिये कि कमरेमें कुल चार कुरसियां ही रखनेकी सुविधा हो और उससे ज्यादा कुरसियां रखनेसे जगहकी तंगी होती हो तो चारसे ज्यादा कुरसियां उस मनुष्यके लिए निरुपयोगी ही नहीं बल्कि कठिनाई पैदा करनेवाली भी हो जायेंगी। इस तरह सामान्य नियमके रूपमें यह कहा जा सकता है कि कोई भी चीज जैसे जैसे मनुष्यको अधिक मात्रामें मिलती जाती है वैसे वैसे उस चीजकी उपयोगिता उसके लिए घटती जाती है। किसी चीजकी अमुक मात्रा मिल जानेके बाद उसकी उपयोगिताकी सीमा आ जाती है। उसके बाद मनुष्य वह चीज खरीदनेके लिए तैयार नहीं होता अर्थात् उस चीजके लिए उसकी मांग नहीं रह जाती।

७ किसी मनुष्यके लिए किसी भी चीजकी उपयोगिताकी सीमाका माप द्रव्यके रूपमें लगाना हो तो वह इस तरह लगाया जा सकता है कि अपनी आवश्यकताकी आखिरी चीजको — जिसके बाद वह चीज मिलती ही

करनेके बाद वह सन्तुष्ट नहीं हो जाता बल्कि अपना मकान बढ़ाता ही जाता है। दूसरा उदाहरण लें। कंजूस आदमीको धन इकट्ठा करनेका शौक होता है। उसके लालचकी भी कोई सीमा नहीं होती। इस नियमके कुछ अपवाद भले हों परन्तु इसके संग्रहकी कोई सीमा नहीं आती।

सस्ती मिले तो भी वह न लेगा — यह कितना कीमत देनेको तयार है। इसका कारण यह है कि बाजारमें एक जातिकी किसी भी चीजका दाम सबसे हाल में एक ही उस मनुष्यकी आवश्यकता वह पहली चीज हो या आखिरी। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि किसी चीजकी उपयोगिताकी सीमाका माप उस कीमतसे लगता है जो मनुष्य बाजारमें उसके लिए देता है। सामान्य भाषामें हम यह नहीं कहते कि अमुक चीजकी उपयोगिताकी सीमा कहां आ जाती है परन्तु यह कहते हैं कि अमुक मनुष्यके लिए अमुक चीजकी कितनी कीमत है। किसी भी चीजकी हमारे लिए जितनी कीमत होती है उससे अधिक कीमत देनेको हम तयार नहीं होते।

द्रव्यकी उपयोगिताकी तुलना

८ हमने देख लिया है कि अलग अलग व्यक्तियोंकी भोजन कपड़ा आदि चीजोंकी आवश्यकता अलग अलग होती है। इसके सिवा अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार वे उन चीजोंकी उपयोगिताकी सीमा भी जल्दी या देरसे बांधते हैं। जिस मनुष्यके पास द्रव्य ज्यादा होता है उसकी नजरमें द्रव्यकी कीमत कम होती है। इसलिए कम उपयोगी या कम आवश्यक चीजके लिए भी वह ज्यादा द्रव्य खर्च करनेको तयार हो जाता है। धनी आदमीका एक रुपया उसके पासके बहुतसे रुपयोंमें से एक होता है इसलिए किसी निकम्मी-सी चीजके लिए उस रुपयेको खर्च कर डालनेमें उसे उस रुपयेकी कमी नहीं मालूम होती। लेकिन बिल्कुल गरीब आदमीके लिए तो एक रुपया बड़ा उपयोगी — बहुत कीमती है। क्योंकि एक रुपयेसे वह अपने कुटुम्बके लिए दो-तीन दिनका भोजन जुटा सकता है। ऐसे गरीब आदमीको भी जैसे जैसे अधिक रुपये मिलते जाते हैं वैसे वैसे उन अधिक रुपयोंकी उपयोगिता या कीमत उसके लिए घटती जाती है। हां बल्कि धनवान मनुष्योंकी दृष्टिमें अधिक रुपयोंकी कीमत जितनी कम होती है उतनी कम कीमत गरीब आदमीकी दृष्टिमें अधिक रुपयोंकी नहीं होती।

उपयोगिताकी सीमा निश्चित करनेमें अन्याय

९ व्यवहारमें हम देखते हैं कि गरीब आदमीके लिए अलग अलग चीजोंकी उपयोगिताकी सीमा जल्दी आ जाती है और धनी आदमीके लिए देरमें आती है। यद्यपि अनाज जैसी चीजके बारेमें गरीब और धनी दोनोंकी उपयोगिताकी सीमामें कोई फर्क नहीं पड़ता। दोनोंको एकसी मात्रामें अनाज

चाहिये। शायद गरीबके लिए ज्यादा अनाज चाहिये और धनीके लिए कम चाहिये। अनाज महंगा होगा तो गरीब आदमी दूसरी चीजोंको छोड़कर भी अपनी जरूरतका अनाज जरूर खरीदेगा। अलबत्ता आहारमें या दूध घी साग-भाजी और फल जैसी चीजोंकी उपयोगिताका मामला फरक पड़ता है। दूध महंगा होगा तो गरीब आदमी नहीं खरीद सकेगा। इसलिए वास्तवमें दूधकी आवश्यकता और उपयोगिता भी उसके लिए कितनी ही क्यों न हो, तो भी अपनी मांगकी सीमा उसे बांधनी पड़ती है, क्योंकि अपनी मांगके अनुसार दूध प्राप्त करनेकी क्रयशक्ति उसमें नहीं है। इसी प्रकार गरीब आदमीकी कपड़ेकी मांगकी सीमा भी जल्दी आती है। उपयोगिताके प्रमाणमें मनुष्यकी क्रयशक्ति न हो तो मजबूर होकर उसे अपनी उपयोगिताकी सीमा बांधनी पड़ती है।*

१० अब हम फिरसे बाजारके व्यवहारकी ओर लौटें। उपयोगिताकी सीमा और मांगका स्वरूप समझनेके लिए अब तक हमने व्यक्तिगत उदाहरणों पर विचार किया। बाजारमें तो सारे खरीदनेवालोंकी किसी चीजसे सम्बन्धित समग्र उपयोगिताकी सीमा या मांगका असर कीमत पर होता है। यद्यपि हर खरीदारकी किसी चीजसे सम्बन्ध रखनेवाली उपयोगिताकी सीमा अलग अलग होती है, फिर भी जिस खरीदारकी उस चीजसे सम्बन्धित उपयोगिताकी सीमा अधिक होती है वह भले उसकी अधिक कीमत देनेको तैयार हो तो भी जो कीमत दूसरे खरीदार देते हैं उससे अधिक कीमत वह नहीं देता। बाजारमें तो एक जातिकी चीजके भाव एकसे ही होते हैं। चीजकी पूर्तिकी तुलनामें उसकी कुल मांग कम हो और खरीदारोंमें से अन्तकी उपयोगिताकी सीमा थोड़ी हो तो अन्तिम खरीदारको जो कीमत देनी पड़ती है या जिस कीमत पर वह चीज मिलेगी उसी कीमत पर अधिक उपयोगितावालेको भी वह चीज मिलेगी। इस प्रकार उपभोक्ता स्वयं जितनी कीमत देनेको तैयार हो उसकी अपेक्षा जितनी कम कीमतमें वह वस्तु उसे मिलती है उतना उपभोक्ताको लाभ होता है। इसलिए जब तक अपने मनमें मानी हुई गुणके समान कीमत उसे न चुकानी पड़े तब तक कम दाममें वह अधिक सन्तोष प्राप्त कर सकता है।

* कभी सरकारकी ओरकी प्रतिस्पर्धा कभी व्यवसायियोंकी आपसी प्रतिस्पर्धा कभी सरकारकी रोकथाम कभी उनके बाहर जाने आदि अनेक कारणोंसे वस्तुकी कीमत निश्चित होती है। फिर भी कुछ सिद्धान्तोंके अनुसार ही कीमत बदलती रहती है।

ऐसा सन्तोष जीवनकी आवश्यक वस्तुओंमें अधिक प्राप्त होता है और धनवान आगारी अधिक प्राप्त होता है। क्योंकि आवश्यक चीजें महंगी हो तो भी उन्हें उन्हें ही खरीदना पड़ता है और धनवान आदमी चीज महंगी हो जाय तो भी उसे खरीदता है।

लचकहीन मांग और लचकदार मांग

११ किसी चीजकी कीमतमें होनेवाली घटा-बढ़ीका असर जब उसकी मांग पर होता है तो यह कहा जाता है कि उस चीजकी मांग लचकदार है और जब कीमतका असर मांग पर अधिक नहीं पड़ता तब यह कहा जाता है कि उस चीजकी मांग लचकहीन है। मांगसे सम्बन्ध रखनेवाले मांगके इस लचीलेपन और अलचीलेपनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं

(१) प्राथमिक आवश्यकताओंकी चीजोंकी मांग सामान्यतः लचकहीन होती है और मौज-शौक या भोग-विलासकी चीजोंकी मांग लचकदार होती है। खाये बिना मनुष्यका काम नहीं चलता। खानेकी जरूरी चीजें महंगी हो जाय तो भी दूसरी सब चीजोंमें काटकसर करके वे चीजें तो मनुष्यको खरीदनी ही पड़ती हैं। दूसरी ओर खानेकी चीजें अगर बहुत सस्ती हो जाय तो इस कारणसे मनुष्य उन्हें अधिक मात्रामें खरीदनेको तैयार नहीं होगा। क्योंकि खाद्य पदार्थ सस्ते होनेसे अधिक नहीं खाये जा सकते। मनुष्य दूसरेके यहां खाकर बीमार पड़ता है तो हम कहते हैं कि भाई विचार तो करना था न? खाना दूसरेका था परन्तु पेट तो पराया नहीं था? लेकिन जो चीज मौज-शौक या भोग-विलासकी होती है वह महंगी हो जाय तो धनी आदमी ही उसे खरीद सकते हैं। दूसरे लोग उसके बिना ही काम चला लेते हैं। ग्रामोफोन जैसी चीज सस्ती हो जानेसे आम साधारण लोग भी अपने घरोंमें उन्हें रखने लगे हैं। पहले बहुत धनवान लोग ही उन्हें रखते थे। सिनेमाकी दर बहुत घट जाय तो बड़े झुंड लोग सिनेमा देखने जाते हैं परन्तु दर बहुत बढ़ जाय तो थियेटर खाली भी पड़ा रह सकता है। इसके विपरीत खानेकी चीजें कितनी ही महंगी या सस्ती क्यों न हो जाय तो भी उनकी मांगमें फर्क नहीं पड़ता क्योंकि मनुष्य न तो खाये बिना रह सकता है और न पेट भरनेके बाद ज्यादा खा सकता है।

(२) जिस चीजकी खरीद मुल्तवी रखी जा सकती है उसकी मांग लचकदार रहती है। उदाहरणके लिए कपड़ा बहुत महंगा हो जाय तो

लोग पुराने कपड़ोंकी मरम्मत करके काम चला लेते हैं और नये कपड़े नहीं खरीदते। इसलिए ऐसी चीजें महंगी हो जाय तो उनकी माग एकदम घट जाती है।

(३) जो चीज संग्रह करके रखी जा सकती है उसकी माग लचकदार होती है। ऐसी चीज सस्ती हो जाय तो उसकी माग बढ़ जाती है। लोग भविष्यके उपयोगके लिए उसे खरीद कर उसका संग्रह कर लेते हैं।

(४) जहां एक चीजके बदलेमें दूसरी चीज काममें ली जा सकती हो वहां माग लचकदार रहती है। गुड़ और शक्कर ऐसी चीजें हैं कि हम एक खानपानमें भले गुड़ और दूसरेमें शक्कर डालते हों तो भी एक-दूसरेकी जगह उनका उपयोग किया जा सकता है। दोनोंमें से एक चीज यदि बहुत महंगी हो जाय तो उसे छोड़कर सब लोग दूसरी चीज काममें लेने लगेंगे और उसकी माग बढ़ जायेगी। चाय और काफीमें तथा रेशमी और सूती कपड़ोंमें भी ऐसा हो सकता है।

(५) जिस चीजकी कीमत साधारणतः बहुत ज्यादा होती है या बहुत कम होती है उसकी माग सामान्यतः लचकहीन रहती है। हीरा, मोती आदि चीजें सामान्यतः महंगी होती हैं। इनकी कीमतमें थोड़ी बहुत कमी बेशी होनेसे इनकी मागमें फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि ये चीजें धनी लोग ही खरीद सकते हैं। दूसरी ओर, साबुन, दियासलाई वगैरा चीजें तुलनामें इतनी सस्ती मिलती हैं और इनका उपयोग इतना सार्वत्रिक होता है कि उनकी कीमतमें सहज घटा-बढ़ी होनेसे उनकी मागमें फर्क नहीं पड़ता।

(६) जिस चीजके विभिन्न उपयोग हो सकते हैं उस चीजके कुछ उपयोगोंके बारेमें माग लचकदार रहती है और कुछ उपयोगोंके बारेमें लचकहीन रहती है। कोयलेके कई उपयोग हैं। खाना बनानेके काममें, ठंडे प्रदेशोंमें या बीमार आदिके कमरेमें, जाड़ेकी ऋतुमें तापनेके काममें, कारखानों और रेलोंमें एंजिन चलानेके काममें, पत्थरका कोयला और गैस बनानेके लिए कच्चे मालके रूपमें — इस प्रकार अलग अलग कामोंमें कोयलेका उपयोग होता है। अब कोयला कितना ही सस्ता या महंगा क्यों न हो, लेकिन खाना पकानेके लिए तो उसकी माग लचकहीन ही रहेगी। परन्तु वह महंगा हो तो गरीब लोग तापनेके काममें उसका उपयोग करना छोड़ देंगे और एंजिन चलानेके कामोंके लिए भी कारखानेवाले यह सोचने लगेंगे कि कीमतकी नजरसे दूसरी चीज सस्ती पड़ेगी या नहीं।

लचकहीन पूर्ति और लचकदार पूर्ति

१२ किसी चीजकी कीमतमें होनेवाली घटा-बढ़ीका असर जब उसकी पूर्ति पर नहीं होता अर्थात् कीमतके घटने या बढ़नेके हिसाबसे पूर्ति घटाई बढ़ाई नहीं जा सकती तब यह कहा जाता है कि पूर्ति लचकहीन है और कीमतमें होनेवाली घटती-बढ़तीके हिसाबसे पूर्तिमें भी घटती-बढ़ती की जा सकती हो तो पूर्ति लचकदार कहलाती है। जब किसी चीजकी मात्रा बहुत हो या थोड़े समयमें चीजका उत्पादन बढ़ाकर या बाजारमें लाई जा सकती हो तब पूर्ति लचकदार कहलाती है और जब चीजकी मात्रामें अमर्यादित न हो या थोड़े समयमें उस चीजका उत्पादन बढ़ाया न जा सकता हो तब पूर्ति लचकहीन कहलाती है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं

(१) स्वर्गवासी चित्रकारके अपने हाथसे बनाये हुए मूल चित्र पुराने साधु-सन्तोंकी प्रसादीरूप व्यक्तिगत उपयोगकी चीजें पुराने जमानेकी मिली हुई मूर्तियां या अन्य वस्तुएं — ऐसी वस्तुओंकी पूर्ति लचकहीन रहती है। उनकी मांग कितनी ही क्यों न बढ़ जाय और कलाप्रेमी तथा प्राचीन वस्तुओंके संग्राहक लोग कितने ही दाम देनेको तैयार क्यों न हो जायं तो भी ऐसी चीजोंकी पूर्ति बढ़ाई नहीं जा सकती।

(२) दूसरे महायुद्धके समय हमारे देशमें सेनाके लिए मांस और दूधकी मांग बहुत बढ़ गई थी। लेकिन मांगके अनुसार नये ढोर तो जल्दी जल्दी पैदा नहीं हो सकते। इसके सिवा मांसके लिए तो शायद अच्छे ढोर यानी खेतीमें काम आनेवाले बैल और ब्याई हुई जवान गायें भी काटकर मांसकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है। लेकिन दूधकी मात्रा एकाएक नहीं बढ़ाई जा सकती। साग भाजी और अनाजकी मात्रा भी एकाएक नहीं बढ़ाई जा सकती क्योंकि नये खेत और नई बाड़ियां एकदम पैदा नहीं हो सकतीं। अतः ऐसी चीजोंकी पूर्ति सामान्यतः लचकहीन रहती है।

(३) इसी तरह जिस चीजको उत्पन्न करनेके लिए मकानों और मशीनोंके रूपमें बहुत बड़ी स्थावर पूंजीकी जरूरत पड़ती हो — और ऐसी स्थावर पूंजी एकदम खड़ी नहीं की जा सकती — उसकी मांग और कीमत बढ़ने पर भी पूर्ति उस समय तक लचकहीन बनी रहती है।

संयुक्त मांग

१२ कुछ चीजोंकी मांग एक-दूसरेके साथ जुड़ी हुई होती है। जैसे फाउंटन पेन और स्याही सेफ्टी रेजर और ब्लेड टेनिसका बल्ला और

रबरकी गेंद, चाय, शक्कर तथा दूध या घर बनाना हो तो ईंट, चूना, सीमेंट, लकड़ी वगैरा। ऐसी चीजोंमें एककी मांगमें कोई घटा-बढ़ी हो तो उसका असर उसके साथ जुड़ी हुई दूसरी चीजोंकी मांग पर भी होता है। चाय महंगी हो जाय और कम लोग उसका उपयोग करने लगें तो इसके लिए जो खास प्याली लगती है वह कितनी ही सस्ती क्यों न मिले तो भी उसकी मांग घट जायगी। लोग ज्यादा चाय पीने लग जायें तो चायके साथ दूध और शक्करकी मांग भी बढ़ जायगी। कभी-कभी ऐसा होता है कि जिस चीजका उत्पादन तुरन्त न बढ़ सकता हो अर्थात् जिसकी पूर्ति लचकहीन परन्तु आवश्यकता अनिवार्य हो उस चीजके भाव एकदम बढ़ जाते हैं। जिस गांवमें चाय ज्यादा पी जाती है वहां चाय और शक्करके भाव नहीं बढ़ते परन्तु दूधका भाव बढ़ जाता है। क्योंकि चाय और शक्कर तो बाहरसे जितनी चाहिये लाई जा सकती है परन्तु दूधका बाजार स्थानीय होता है और उसकी पूर्ति लचकहीन होती है। उसका उत्पादन एकदम नहीं बढ़ाया जा सकता। किसी शहरका विकास हो और लोग नये सरकारी मकान बनाने लगें तो उनके लिए जरूरी चीजोंमें से जिनकी पूर्ति लचकहीन या मर्यादित होती है उन चीजोंके भाव एकदम बढ़ जाते हैं और जिनकी पूर्ति लचकदार या जितनी चाहें उतनी बढ़ सकनेवाली होती है उनके भाव उतने नहीं बढ़ते। जैसे ईंटोंका भाव बढ़ जायगा परन्तु सीमेंटका भाव नहीं बढ़ेगा क्योंकि ईंट तुरन्त तैयार नहीं हो सकती और न बाहरसे ही लाई जा सकती है परन्तु सीमेंट बाहरसे लाई जा सकती है।

वैकल्पिक मांग

१८ जब मनुष्यकी एक आवश्यकता अनेक साधनोंसे पूरी हो सकती हो तब उपयोग करनेवालेके लिए यह विकल्प रहता है कि वह किस साधनसे काम ले या किस साधनकी मांग करे। इस प्रकाशकी जरूरत लालटेन, दियेसे, घासलेटका तेल, मोम अथवा गैस या बिजलीकी बत्तीसे पूरी हो सकती है। ऐसी स्थितिमें लोग उस चीजसे काम लेते हैं जो ज्यादा सुभीतेकी या सस्ती होती है। बड़े शहरोंमें सवारीकी सुविधा घोड़ागाड़ी, रिक्शा, ट्राम, बस या मोटर टैक्सियोंके जरिये प्राप्त होती है। लोग उस सवारीका जिस समय ज्यादा सुभीता और सस्ता होता है उसका उपयोग करते हैं। एक साधनसे दूसरे साधनके बदले किसी दूसरी परिस्थितिमें सस्ता सुविधा भी होती है या एक साधनसे दूसरे भाव अलग अलग रहते

कंपनियोंकी गाड़ियोंसे लाये जाते हैं। जहां पसन्दगीके लिए ऐसी गुंजाइश हो वहां मनुष्य अधिक जल्दीका अधिक सुभीतावाला और अधिक सस्ता रास्ता चुनता है।

इसी प्रकार अनेक चीजें खरीदनी हों तब मनुष्यकी यथाशक्ति और खरीदनेकी इच्छाके अनुसार वह ऐसी चीज खरीदनेका निर्णय करता है जिससे उसे अधिकसे अधिक संतोष प्राप्त हो। अर्थात् अपने पासके द्रव्यसे वह ऐसी आवश्यक वस्तुएं खरीदना पसन्द करता है जिनसे उसे सब मिलाकर विशेष संतोष प्राप्त हो। उदाहरणके लिए घरके उपयोगके लिए आम जैसे मोसंबी अंगूर और चीकू खरीदनेकी उसकी इच्छा हो परन्तु सब फल खरीदनेमें वह असमर्थ हो तो वह इनमें से चुनकर कम या अधिक मात्रामें ऐसे फल ही खरीदेगा जिनसे उसे अधिकसे अधिक संतोष प्राप्त हो। इसके सिवा घरके लिए यदि साइकल रेडियो पंखा और आलमारी खरीदनी जैसी हों तो इनमें से भी वह ऐसी चीजें पसंद करके खरीदेगा जिनसे उसे अधिकसे अधिक संतोष हो। स्वभावतः प्रत्येक मनुष्यका चुनाव एकसा नहीं होगा। परन्तु इतना निश्चित है कि ऐसा चुनाव प्रत्येक मनुष्यको करना पड़ता है और उसका असर वस्तुकी मांग पर होता है।

संयुक्त पूर्ति

१ जैसे एक चीजकी मांग दूसरी चीजके साथ जुड़ी होती है वैसे ही एक चीजकी पूर्ति भी दूसरी चीजके साथ जुड़ी होती है। उदाहरणके लिए घास और भूसा, ज्वार बाजरा और उसके पूले, रुई और बिनौले, तेल और खली। इनमें से हम एक चीजकी पूर्ति बढ़ा देते तो दूसरीकी पूर्ति अपने-आप बढ़ जाती है। ऐसे मामलोंमें उत्पादनका खर्च दोनों चीजोंकी बिक्री पर बांट दिया जाता है। दोनोंमें से जिस चीजकी मांग अधिक होगी उसकी कीमत अधिक आयेगी। उदाहरणार्थ बिनौलेसे रुईकी और खलीसे तेलकी मांग अधिक होती है इस कारणसे एक रतल रुई या एक रतल तेलकी कीमत एक रतल बिनौले या एक रतल खलीसे अधिक मिलती है। रुई और तेल प्रधान चीज मानी जाती है और बिनौले तथा खली गौण उपज (by product) माना जाता है। रसायनशास्त्रमें हुई प्रगतिके कारण ऐसी गौण उपजके बहुतसे उपयोग होने लगे हैं। उदाहरणके लिए खलीका उपयोग। ढोरोंको खिलानेमें या खादके तौर पर होनेके बजाय अब कितनी ही चीजोंका खलीका उपयोग बिस्कुट बनानेमें होने लगा है। तेलकी मिलोंमें तेलको साफ करनेके बाद जो मैल रह जाता है उसका

साबुन बनानेमें उपयोग करते हैं। जमीनमें जो मिट्टीका तेल निकलता है उसमें पेट्रोल, केरोसिन, वेसलीन वगैरा चीजें बनती हैं। जहां ऐसा हो सकता है वहां गौण उपजसे होनेवाले नफेके कारण उत्पादकको यदि जरूरी मालूम हो तो वह मुख्य वस्तु बहुत सस्ती बेच सकता है।

५

बाजार कीमत

१. बाजारमें किसी चीजका भाव या कीमत उस चीजके बेचनेवालों और खरीदनेवालोंके बीच परस्पर या एक दूसरेके साथ होनेवाली प्रतिस्पर्धासे निश्चित होता है। इस प्रतिस्पर्धामें किसी चीजकी पूर्ति और मांग बहुत बड़ा काम करती है। हम यह भी देख चुके हैं कि बाजारका मुख्य लक्षण यह है कि किसी एक बाजारमें एक ही जातिकी समान गुणवाली चीजका एक समयमें एक ही भाव होता है। बाजारमें किसी चीजकी कीमत निश्चित होनेकी सारी प्रक्रिया बड़ी जटिल होती है। मुख्य रूपमें वस्तुकी पूर्ति और मांग उसके निर्णायक तत्त्व होते हुए भी अलग अलग मनुष्योंकी अलग अलग वृत्तियां, अलग अलग परिस्थितियां और अलग अलग सामाजिक और आर्थिक बल उसमें कम हाथ नहीं बटाते। इन दूसरे कारणोंको अभी अलग रखकर एक बहुत सादे काल्पनिक उदाहरणसे हम यह स्पष्ट करेंगे कि पूर्ति और मांगका बाजार कीमत तय करनेमें कितना हाथ होता है।

२. मान लीजिये कि पन्द्रह गजवाला खादीका थान पांच रुपयेमें मिलता है और बाजारमें उसकी एक हजार थानकी मांग है। अर्थात् इस कीमत पर इतने थान खरीदनेवाले लेनेको तैयार हैं। अब यदि थान तीन रुपयेमें मिलता हो तो दो हजार थानकी मांग है। लेकिन अगर थान सात रुपयेमें मिलता हो तो मांग घट जाती है और छह सौ थान ही खरीदनेवाले मिल सकते हैं। दूसरी ओर थानकी कीमत तीन रुपये ही मिलती हो तो थान बनाने और बेचनेवालेके लिए यह कीमत बहुत कम होनेके कारण थान बनाना या बेचना कुछ पुसाता नहीं, और केवल पांच सौ थान ही बेचनेवाले मिलते हैं। अगर एक थानके पांच रुपये मिलते हों तो एक हजार थान बेचनेवाले तैयार होते हैं और सात रुपये मिलते हों तो अठारह सौ थान बेचनेवाले मिल सकते हैं।

३ इस उदाहरणमें यदि थानकी कीमत पाच रुपये निश्चित हो तो एक हजार बचनवाला और एक हजार खरीदनेवालोंका मेल बठता है अर्थात इस कीमत पर पूर्ति और माग एकसी हो जाती है। तीन रुपयेके भावमें खरीदनेवाले दो हजार है परतु बचनवाले केवल पाच सौ ही है अत इस कीमतमें पाच सौ थान ही बिक सकेंगे। सात रुपये कीमत हो तो बेचनेवाले अठारह सौ निकल आते है परतु खरीदनेवाले छह सौ ही रहते है अत छह सौ थान ही बिक सकते है। पाच रुपया कीमत एसी है जिसके साथ अधिकसे अधिक पूर्ति और अधिकसे अधिक मागका मेल बनता है। इस लिए थानकी बाजार-कीमत ५ रुपये निश्चित होगी। जिस बचनवालेकी इससे अधिक कीमत लेनी होगी वह अपना माल बाजारमें नहीं रखेगा और जिस खरीदारको उससे कम कीमतमें थान लेना होगा उसकी माग पूरी नहीं हो सकेगी। इस परसे यह कहा जा सकता है कि जस जस वस्तुकी कीमत बढ़ती है वसे वसे बचनवालोकी सख्या बढ़ती है अर्थात मालकी पूर्ति बढ़ती है लेकिन खरीदनेवाले घटते है अर्थात मालकी माग घटती है। जसे जसे वस्तुकी कीमत घटती है वसे वसे उसकी पूर्ति घटती है और माग बढ़ती है। यह बात नीचके कोष्टकमें स्पष्ट हो जाती है

कीमत	खरीदनेवालोंकी माग	बचनवालोंकी पूर्ति
१	३५०	६ ०
९	६	३० ०
८	५ ०	२३०
७	६००	१८ ०
६	८००	१४०
५	१०००	१० ०
४	१५ ०	७०
३	२०	५०
२	३	२

उपरके कोष्टकसे स्पष्ट दीखता है कि बाजार कीमत माग और पूर्ति दोनोंका मेल थानकी कीमत ५ रु होने पर बठता है अत बाजार कीमत ५ रु रहेगी।

४ मूल्य और कीमतवाले प्रकरणमें उपयोग किये गये पारिभाषिक शब्दोंके अनुसार कहें तो बाजार-कीमत विनिमय मूल्य है। मागका आधार इस बात पर रहता है कि खरीदारके लिए किसी चीजकी कितनी उपयोगिता

है। इस तरह माग चीजका उपयोग मूल्य बनाती है। और पूर्तिका आधार इस बात पर है कि वह चीज बनानेवालेको कितना श्रम पडता है अथवा रुपया गिनने पर उसका कितना उत्पादन-व्यय होता है। इस तरह पूर्ति किसी चीजका श्रम मूल्य या उत्पादन मूल्य बनाती है। परन्तु इनके सिवा दूसरे बहुत तत्त्व भी माग और पूर्ति पर असर डालते ही है। ऊपरके उदाहरणमें हमने पूर्ति और मागके विषयमें ऐसा माना है कि वे मनचाहे रूपमें घटाई बढाई जा सकती है परन्तु पिछले प्रकरणमें हमने देखा है कि पूर्ति और मागको हम जैसा चाहें घटा बढा नहीं सकते। कभी माग एकतरफी होती है और कभी पूर्ति एकतरफी होती है। ऐसी स्थितिमें जहा मागका जोर होगा वहा माग पर कीमतका आधार रहेगा और जहा पूर्तिका जोर होगा वहा पूर्ति पर कीमतका आधार होगा।

५ मागका जोखा उदाहरण लीजिये। किसी शहरमें बडा समारोह या उत्सव हो और उस प्रसग पर वहा भीड दिखनेके लिए बाहरसे बहुत लोग आ पहुचे तो उस समय वहा चीजोंकी माग बढ जानेसे उनके भाव एकदम बढ जायगे। व्यापारियोंको इसका पहलेसे पता होता है इसलिए वे बाहरसे बहुतसा माल मगाकर भी रखते है। फिर भी दूध और साग भाजी जैसी प्रतिदिनकी आवश्यकताकी चीजें बाहरसे मगाकर रखी नहीं जा सकती। फिर कुछ लोग होटलमें खाना पकानेकी झझटमें पडनेके बजाय होटलमें खाना चाहते है। इसलिए होटलमें खानेवालोंका भाव बढ जाती है। इसके सिवा उत्सवमें आये हुए लोग खेल-कूद और मौज-शौकमें भी पैसे खर्च करते है। वे कुछ अनोखी चीजें भी खरीदना चाहते है। सक्षेपमें इस मौके पर मनुष्योंमें ज्यादा पैसा खर्च करनेकी वृत्ति पैदा हो जाती है। अब एक तो इस कारणसे कि मागके अनुसार मालका सग्रह नहीं होता और दूसरे इस कारणसे कि लोगोंमें ऐसे मौके पर ज्यादा खर्च करनेकी वृत्ति होती है — अर्थात् इसलिए भी कि उनके समयके लिए पैसेकी कीमत या उसकी परवाह कम होती है — मागका जोर बढ जाता है और मागके कारण महगाई पैदा हो जाती है।

६ अब दूसरा उल्टा उदाहरण लें। मौसममें साग भाजी बहुत पैदा होती है। वह न तो बहुत दूर बाजारमें भेजी जा सकती है और न बहुत समय तक सग्रह करके रखी जा सकती है। इसलिए एक खास मर्यादित प्रदेशमें उसकी पूर्ति — उसका परिमाण — बहुत बढ जाता है। उसे साग बरतनेवाले तो उतने ही रहते है इसलिए साग भाजीकी माग

पूर्तिकी तुलनामें बढ़ती नहीं। इस कारण वह वस्तु सस्ता हो जाता है। पूर्तिका जोर कीमत निश्चित करनेमें जो काम करता है उसका यह उदाहरण है। सामान्यत यह देखा जाता है कि जल्दी बिगड़ जानेवाली चीजोंकी मांग और पूर्तिका मेल नहीं बठाया जा सकता। इसलिए उनके भावमें बार बार परिवर्तन हुआ करते हैं। लम्बे समय तक टिकनेवाली चीजोंकी पूर्ति और मांगके अनुपातको एक-दूसरेके साथ मेल बठाया जा सकता है। इसलिए ऐसी चीजोंका भाव अपेक्षाकृत अधिक स्थिर रहता है।

७ ऊपरके उदाहरणोंसे हम सामान्यतः यह कह सकते हैं कि

(१) किसी चीजकी मांगसे उसकी पूर्ति बाजारमें अधिक हो तो उस चीजकी कीमत घटती है।

(२) किसी चीजकी मांगसे उसकी पूर्ति बाजारमें कम हो तो उस चीजकी कीमत बढ़ती है।

(३) जो चीज लम्बे समय तक टिक सकती है और जिसकी पूर्ति बाजारमें हमेशा रखी जा सकती है उस चीजका भाव स्थिर रहता है।

(४) तात्कालिक पूर्तिके अभावमें जो चीज महंगी हो सकती हो परन्तु जिसकी मांग स्थगित रखी जा सकती हो उस चीजके भाव बढ़ते नहीं और स्थिर रहते हैं।

प्रचलित बाजार-कीमत और सामान्य कीमत

८ चीजोंकी बाजार कीमत मांग और पूर्तिमें समय समय पर होनेवाले परिवर्तनोंके कारण बार बार बदलती रहती है। लेकिन हम अगर लम्बी अवधिका निरीक्षण करें तो देखेंगे कि अधिकतर चीजोंकी कीमतोंमें बहुत हद तक स्थिरता-सी होती है। घीका उदाहरण लीजिये। बाजारमें रोज देखने जायं तो घीके भाव रोज अलग अलग पाये जाते हैं। लेकिन आजके असाधारण और अपवादरूप भावोंको छोड़ दें और दूसरे विश्वयुद्धके पहलेकी लगभग बीस बरसकी अवधिके घीके भाव देखें तो वे ५० रु० मनके आसपास जान पड़ेंगे। इसी तरह युद्धसे पहलेके लगभग दस वर्षके समयमें अहमदाबादमें गाढ़ भरोसे लायक दूधका भाव ढाई आना फी रतल देखनेमें आता है। प्रतिदिनके भाव या प्रचलित बाजार भाव इन सामान्य भावों या लम्बी अवधिके भावोंके आसपास घूमते रहते हैं।

९ इन सामान्य या लम्बी अवधिके भावोंका आधार अधिकतर उस चीजके उत्पादन-खर्च पर रहता है। किसी चीजके सामान्य भाव उत्पादन

खर्चसे अधिक रहें तो बहुतसे उत्पादक इस धंधेकी ओर खिंचेंगे और पुराने उत्पादक भी अपना उत्पादन बढ़ाने लग जायेंगे। इससे उस चीजकी पूर्ति बढ़ जायगी और उसके कारण सामान्य भाव नीचे गिर जायेंगे। दूसरी तरफ किसी चीजके सामान्य भाव उत्पादन-खर्चसे कम ही रहें तो कुछ उत्पादक कम काम करके अपना उत्पादन घटा लेंगे और कुछ अपना धंधा बंद कर देंगे। इससे मालकी पूर्ति कम हो जायगी और सामान्य भाव बढ़ जायेंगे।

१० ऊपर बताये अनुसार चीजके उत्पादनमें बढ़ती घटती करना तभी संभव होगा जब वह चीज ऐसी हो जिसका उत्पादन आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक मात्रामें बढ़ाया जा सके अथवा उत्पादककी इच्छानुसार उस चीजका उत्पादन आवश्यक मात्रामें घटाया जा सके या बिलकुल बंद किया जा सके। ऐसी चीजोंके भाव उत्पादन-खर्चसे बहुत अधिक या बहुत नीचे नहीं रहेंगे। यदि बढ़ी हुई मांगके अनुसार वस्तुकी मात्रा बढ़ानेमें बहुत देर लगे तो उतने समय तक उस वस्तुके भाव उत्पादन-खर्चसे बहुत अधिक रहेंगे। खेतीकी पैदावारकी पूर्ति सामान्यतः लचकहीन रहती है। क्योंकि मौसममें जितनी फसल पकी उतनी ही वह रहती है। उसकी मांग कितनी ही अधिक लचकदार क्यों न हो तो भी उस मौसममें तो नई फसल—नया उत्पादन हो ही नहीं सकता। पुरानी चीजोंमें तो मांग भी लचकहीन रहती है।* परन्तु कई तरकारियाँ आदि ऐसी चीजें हैं जिनकी मांग घटती-बढ़ती रहती है। दूसरी ओर कारखानेमें उत्पन्न होनेवाले मालके उत्पादनमें बढ़ती घटती करना खेतीकी पैदावारकी तुलनामें आसान है। उत्पादन बढ़ाना हो तो कारखानेमें रात-पाली शुरू की जा सकती है और उत्पादन घटाना हो तो थोड़ी मशीनें बंद रखी जा सकती हैं—यद्यपि इसमें भी तरह तरहकी कठिनाइयां तो खड़ी होती ही हैं। वास्तवमें शायद ही कोई ऐसी चीज होती है जिसका उत्पादन मांगके अनुसार अमुक समयके लिए घटाया अथवा बढ़ाया जा सके, जब कि मांग पर ऐसी वस्तु है जो थोड़ी थोड़ी करके बढ़ या घट जाती है। इसलिए थोड़े अर्सेके लिए तो बाजार भावका आधार मांग पर ही रहता है। मालकी पूर्ति कम हो या अधिक परन्तु उसकी मांग अथवा ग्राहकी जितनी है ग्राहक वहां तक उसकी कीमत देनेको तैयार हैं इसी परसे उसका बाजार भाव निश्चित होता है। परन्तु बहुत लम्बे समय तक

* हां चीजोंकी मांगका विशेष ऋतु भी होता है। जैसे दीवाली ईद होली इत्यादि।

किसी चीजका बाजार भाव उत्पादन-खर्चसे बहुत कम या बहुत अधिक नहीं रह सकता।

किसान और सरकारके बीचकी असमानता

११ लेकिन व्यवहारमें सभी उदाहरणोंमें ऐसा नहीं पाया जाता। उदाहरणके लिए हमारे किसानोंको अपने पैदा किये हुए मालका जो दाम मिलता है वह उसके उत्पादन-खर्चके बराबर नहीं कहा जा सकता। उनकी कंगाली और दिवालियापन बढ़ता हुआ कर्ज इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। फिर भी ये लोग खेतीका धंधा चालू रखते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि खेतीके सिवा दूसरा कोई धंधा उनके पास नहीं है। जब तक किसान खेती करता रहता है तब तक उसे चूसनेवाले लोगोंसे कोई न कोई पैसा उधार दिलवाता मिलता रहता है। इसके सिवा पैदा हुआ माल जब तक बिक नहीं जाता या साहूकार उसे ले नहीं जाता तब तक किसानको उसमें से कुछ न कुछ खानेको भी मिलता रहता है। लेकिन यह समझकर कि खेतीसे उत्पादन-खर्चके बराबर भी आमदनी नहीं होती अगर किसान खेतीका धंधा छोड़ दे तो दूसरे दिनसे ही उसका सब कारबार बंद हो जाय और उसके सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न खड़ा हो जाय कि खानेको कहांसे मिलेगा। इसलिए उत्पादन-खर्च न निकलने पर भी किसान खेतीका धंधा जारी रखता है। खेतीके धंधेमें उत्पादन-खर्च जितना भी क्यों नहीं मिलता इसके दो कारण हैं। एक कारण तो यह है कि अपने मालकी अच्छी कीमत मिलने पर भी माल बेचनेकी और अपनी मरजीके मुताबिक माल बेचने या न बेचनेकी उसे स्वतंत्रता नहीं होती। माल खलिहानमें पैदा होता है तभी लगान चुकानेका समय आ जाता है और लगान चुकानेके लिए किसानके पास पैसा नहीं होता। उधर सरकारी कारकुनके तकाजे पर तकाजे आते रहते हैं। इस समय किसानका माल खरीदनेवाले व्यापारी किसानकी इस समयकी गरजका लाभ उठाते हैं और उसके मालका बहुत कम भाव चुकाते हैं। गरजके कारण किसानको अपना माल कम भावमें बेच डालना पड़ता है। लगानकी किस्त जमा करनेके बाद जो माल बच रहता है उस पर साहूकारकी वक्र दृष्टि पड़ती है और वह बचा बचाया माल उठा ले जाता है और अपने बहीखातेमें कम आमद जमा करता है। इसमें किसानके अज्ञानसे भी ज्यादा उसकी गरज और मजबूरीका हाथ रहता है। उसे अपने मालकी बिक्री सौदे लाभकी दृष्टि रखकर अपनी इच्छाके अनुसार करनेकी स्वतंत्रता नहीं रहती। फिर किसके साथ यह सौदा करना

होता है उसकी और किसानकी स्थिति एकसी नहीं होती। किसान दबा हुआ, गरजका मारा और साधनहीन होता है और साहूकार या व्यापारी बलवान, साधन-सम्पन्न और प्रभाववाला होता है।

१२ यही बात तब होती है जब खरीदनेवाले लोग गरजमंद और लाचार होते हैं। खरीदनेवालेको जब उधार माल लेना पड़ता है तब उसे बहुत ज्यादा दाम देने ही पड़ते हैं। साथ ही वे गरजमंद हों तब तो उन्हें अतिशय ऊंचे भाव पर माल लेना पड़ता है। जैसे खेत जुतकर अच्छी तरह तैयार हो गया हो, बोनेका ठीक समय आ गया हो और उसी समय व्यापारीके यहांसे बीज खरीदना हो तो व्यापारी किसानकी गरजका लाभ उठाकर बीजके बहुत ही ऊंचे भाव ले लेता है। सामान्यतः बोनेके बीजका भाव सदा ऊंचा ही रहता है। इसलिए यह कहनेके साथ कि चीजोंके मामूली बाजार भाव उत्पादन-खर्चसे बहुत ऊंचे या बहुत नीचे नहीं रह सकते, यह शर्त रखनी चाहिए कि उत्पादक या बेचनेवाला अपना व्यवहार अपनी मरजीके मुताबिक चलानेके लिए पूरी तरह स्वतंत्र होना चाहिए और बेचनेवाले तथा खरीदनेवालेके बीच हर प्रकारसे समानताकी स्थिति होनी चाहिए। परन्तु इसके साथ यह भी कहना चाहिए कि आजके समाजमें बेचनेवाले और खरीदनेवालेके बीच इस तरहकी समानता और स्वतंत्रता बहुत ही कम पाई जाती है; इसलिए उत्पादन-खर्चका यह नियम भलीभांति काम नहीं कर सकता। यह कहनेके बजाय कि लम्बे समय तक किसी चीजके बाजार भाव उत्पादन-खर्चसे बहुत कम या बहुत अधिक नहीं रह सकते, हमें यह कहना चाहिए कि वे इससे कम या बहुत अधिक नहीं रहने चाहिए।

उत्पादन-खर्च : द्रव्य-खर्च तथा मानव-खर्च

१३ अब उत्पादन-खर्चके विषयमें हम अधिक विस्तारसे विचार करें। उत्पादन-खर्चका जब हिसाब लगाया जाता है तब सामान्यतः यही विचार किया जाता है कि किसी चीजके उत्पादनमें उत्पादकको कितना द्रव्य-खर्च करना पड़ा है। जो चीज तैयार करनी हो उसके लिए कच्चा माल खरीदनेमें कितना द्रव्य लगा, उसके लिए मजदूरी करनेवालोंको कितनी मजदूरी चुकानी पड़ी, उस चीजको बनानेके लिए औजार, मशीनें वगैरा खरीदनेमें लगाई हुई पूंजी पर कितना ब्याज देना पड़ा, इन सब साधनोंकी कितनी घिसाई हुई, कारखानेकी जमीनका कितना किराया देना पड़ा, मकानोंमें लगी हुई पूंजीका

कितना ब्याज हुआ और मकानकी कितनी घिसाई हुई — इन सब बातोंकी गिनती उत्पादन-खर्चमें होती है। साथ ही देखरेख करनेवाले और व्यवस्थापक काममें लगे हुए आदमियोंके वेतनकी और उत्पादक या प्रबंधकके पारिश्रमिककी, योजना-शक्ति और साहसकी कीमतका भी हिसाब लगाया जाता है। लेकिन हम कितना ही बारीक विवरणमें जायँ और उनकी कीमत द्रव्यके रूपमें रखें तो भी सच्चे उत्पादन-खर्चका अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। क्योंकि द्रव्यके गजसे सभी चीजोंकी सच्ची कीमत नहीं मापी जा सकती। उत्पादनके काममें लगे हुए मजदूरोंको बाजार भावसे मजदूरी चुका दी जाय तो हमें ऐसा लगता है कि उन्हें उनकी मजदूरीके पूरे दाम मिल गये। मजदूरोंको कारखानोंमें जो दिक्कतें उठानी पड़ती हैं, काम करते करते उनके शरीर और मनको जो हानि होती है, बीच बीचमें बेकारीके समय उन्हें जो शारीरिक और मानसिक यातना भुगतनी पड़ती है, उसकी कीमत इस मजदूरीमें कहां गिनी जाती है? इसके अलावा प्रबंधक या उत्पादकको भी उसका माल बिकने या न बिकने पर जो खतरे उठाने पड़ते हैं और एक-दूसरेके साथकी होड़में कभी कैसा घाटा हो जाना पड़ता है उसकी गिनती भी द्रव्यके रूपमें कम लगाई जा सकती है? गहरे उतरकर विचार करें तो इन सब बातोंका बोझा अन्तमें समाज पर ही पड़ता है। बाजारमें कोई चीज शायद सस्ती मिल जाय, परन्तु उस चीजके उत्पादनमें मनुष्योंको जो दिक्कतें उठानी पड़ी हों या बीचमें कुछ कारखाने बन्द हो जानेसे जो आर्थिक संकट आये हों उनके कारण समाजको आर्थिक कष्ट तो भोगने ही पड़ते हैं। यह भी एक तरहका खर्च ही माना जायगा। मनुष्यको इस तरह जो कष्ट भोगने पड़ते हैं उन्हें हम मानव-खर्चका नाम देंगे। उत्पादनके उचित अथवा न्यायसंगत खर्चमें इस सारे मानव-खर्चकी भी गिनती होनी चाहिये। परन्तु आजकी अर्थ-व्यवस्थामें द्रव्यके रूपमें होनेवाला उत्पादन-खर्च ही गिना जाता है, उत्पादनमें होनेवाले ऐसे मानव-खर्चका हिसाब नहीं लगाया जाता। किसी भी चीजको उत्पन्न करनेके लिए किसी न किसीको कुछ न कुछ तो मुसीबत उठानी ही पड़ती है, त्याग करना पड़ता है, चिन्ता करनी पड़ती है और साहस करना पड़ता है। परन्तु इन सबका माप द्रव्यके रूपमें निकालना बड़ा कठिन है, लगभग असंभव है। इसलिए प्रबंधकके नफेकी गुंजाइश रखकर यह कहा जाता है कि उसकी जिम्मेदारी और साहसका बदला तो नफेके रूपमें उसे मिल ही जाता है। यद्यपि मजदूरोंकी कठिनाइयों और यातनाओंके लिए, जिनका मानव-खर्च प्रबंधककी जिम्मेदारी और साहससे कहीं ज्यादा है

कोई गुंजाइश अभी तक उत्पादन-खर्चमें नहीं रखी गई है और इस एक बड़ी न्यूनता मानना चाहिये। यह न्यूनता तभी दूर हो सकती है जब किसी भी उत्पादनका विचार करते समय उसके संबंधमें हुए समूचे मानव-व्ययका विचार किया जाय और उत्पादनके कामका प्रबंध इस तरह किया जाय कि यह मानव-खर्च मिट जाय।

आवर्तक खर्च और पूंजी-खर्च

१४ उत्पादनके द्रव्य-खर्चके दो मुख्य विभाग किये जा सकते हैं (१) आवर्तक खर्च और (२) पूंजी-खर्च। आवर्तक खर्चमें कच्चे मालकी कीमत, यातायात-खर्च, मजदूरी और मुकादमोंके वेतन और कारखाना चलानेकी भौतिक शक्तिका खर्चा, इन सबका खर्च — ये खास बातें आती हैं। यह खर्च तैयार होनेवाली हर चीज पर सीधा डाला जाता है। माल जितना ज्यादा बनाया जाता है उतना ही यह खर्च अधिक बढ़ता है। कपड़ेके थानका उदाहरण लीजिये। जितने ज्यादा थान बनाये जायेंगे उतनी ही रुई ज्यादा लगेगी, पीजनेवालों, कातनेवालों, बुननेवालों और मुकादमी करनेवालोंकी मजदूरी ज्यादा होगी और भौतिक शक्तिका उपयोग किया जाता हो तो उसका खर्च भी ज्यादा होगा। इस तरह जितने ज्यादा थान तैयार किये जायेंगे उतना ही यह खर्च बढ़ेगा। दूसरी ओर पूंजी-खर्चमें कारखानेके मकान, मशीनें, इनके रखनेकी और काम आदिके खर्च आते हैं। यह खर्च ऐसा है कि कारखाना पूरे समय तक चले या थोड़े समय तक चले, उसमें माल ज्यादा बने या कम बने, यह खर्च तो रहेगा ही। इसमें बहुत फर्क नहीं पड़ता।

१५ यह निश्चित करना कठिन होता है कि किसी चीजकी बिक्री कीमत पर उसके आवर्तक खर्चके सिवा पूंजी-खर्च कितना लगाया जाय। लेकिन कोई उद्योग लम्बे समय तक चलता हो तो उसके अनुभव और आंकड़ों परसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कितना प्रतिशत पूंजी-खर्च लगानेसे उद्योगको हानि नहीं होगी। इसी अवधिका हिसाब लगाते समय तैयार मालकी बिक्री कीमतमें से यह दोनों खर्च — आवर्तक खर्च और पूंजी-खर्च — पूरी तरह निकल आने चाहिये। यद्यपि कभी कभी धंधा करनेवाले लोग उस समय तक उत्पादन जारी रखनेको तैयार हो जाते हैं जब तक उन्हें आवर्तक खर्च मिलता रहे। व्यापारमें बहुत मंदी आ गई हो और बाजारमें किसी चीजकी मांग कम हो गई हो तो बाजार भाव गिर जाते हैं और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि कुछ उत्पादन-खर्च न

निकल सके। ऐसे समय पर कारखाना बन्द करके और मजदूरोंको छुट्टी देकर उत्पादक यदि मकान और मशीनोंको बेच डाले तो एकदम उसे बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। इसके बजाय वह अच्छे अवसरकी राह देखते हुए जब तक आवश्यक खर्च निकलता रहे तब तक माल बनाना जारी रखता है। ऐसी मन्दी बहुत लम्बे समय तक नहीं रहती जिसमें उत्पादकोंको मालका उत्पादन-खर्च भी न मिल सके। इसलिए एकदम बन्द करके नुकसान उठाकर बरबाद होनेके बजाय उत्पादक थोड़े समय तक पूंजी-खर्चका नुकसान सह लेता है। अलबत्ता अनिश्चित समयके लिए कोई भी उत्पादक घाटा नहीं सह सकता। इसलिए अमुक समय तक राह देखनेके बाद भी यदि स्थिति न सुधरे तो उसे कारखाना बन्द ही कर देना पड़ता है। ऐसे समय कमजोर कारखाने जिनमें व्यवस्थाके दोषके कारण मशीनोंकी खराबीके कारण या और किसी दोषके कारण दूसरोंसे ज्यादा उत्पादन-खर्च आता हो बन्द हो जाते हैं। नतीजा यह होता है कि उत्पादनकी मात्रा या मालकी पूर्ति बाजारमें घटती है और भाव फिर चढ़ने लगते हैं।

१६ जिस कारखानेमें स्थावर पूंजीका खर्च विशेष प्रकारका होता है उसे यदि बन्द करना पड़े तो सारी पूंजी डूब जानेसे नुकसान खाते जाता है। जहां कारखानेके मकानों मशीनों आदिका उपयोग दूसरे काममें हो सकता हो वहां उनके खरीदार मिल जाते हैं। इसलिए ऐसा कारखाना बन्द होने पर उसमें कुछ न कुछ पैसा तो मिल ही जाता है। लेकिन जिस कामकी स्थावर पूंजीका और कोई उपयोग हो ही न सकता हो उसमें लगी हुई सारी पूंजी बरबाद हो जाती है। उदाहरणके लिए पनामाकी नहर खोदनेवाली पहली कम्पनी जब टूट गई तब उसके बनाये हुए मकान और जमा किया हुआ सब सामान उस समयके लिए तो बिलकुल बेकार ही हो गया। अथवा कोई रेलवे लाइन बनानेके लिए पुल बनाने पड़ते हैं या सुरंगें खोदनी पड़ती हैं लेकिन वहां रेल यदि जारी न हो या जारी होनेके बाद बन्द हो जाय तो यह सब खर्च पूरी तरह बेकार जाता है। जहां ऐसी स्थिति हो वहां काम बंद करनेसे पहले प्रबंधक बहुत सोचता है।

१७ एक और स्थितिमें भी उत्पादक कुल उत्पादन-खर्चसे कम भावमें अपना माल बेचनेको तैयार हो जाता है। जिस धंधेमें पूंजी-खर्च अधिक होता हो उसमें अधिक मात्रामें माल तैयार करनेमें उत्पादकको लाभ होता है। क्योंकि माल अधिक मात्रामें तैयार करनेके लिए पूंजी-खर्च बढ़ाना नहीं पड़ता। लगभग स्थिर रहनेवाला पूंजी-खर्च जैसे जैसे अधिक माल

पर बढ़ता जाता है वैसे वैसे माल सस्ता पड़ता है। लेकिन इतनी बड़ी मात्रामें मालकी मांग अपने देशमें न हो, तो उत्पादक लोग एक और तरकीब करते हैं। अपने देशमें जितना माल खपे उसी पर सारा स्थायी पूंजी-खर्च बांट देते हैं और अतिरिक्त तैयार किया हुआ माल सिर्फ आवर्तक खर्च चला कर अर्थात् अपने देशसे सस्ते भावों पर बेचनेके लिए विदेशी बाजारों पर लाद देते हैं। ऐसा करके वे विदेशी उद्योगोंको प्रतिस्पर्धामें मात देते हैं। फिर जब विदेशी बाजार पर अच्छी तरह उनका अधिकार हो जाता है अर्थात् उस बाजारमें दूसरा कोई उनका प्रतिस्पर्धी नहीं रहता तब वहां वे अपने मालके भाव चढ़ाने लगते हैं। ऐसा होने पर जिस देशमें माल उत्पन्न होता है वहां वह माल महंगा हो जाता है परन्तु दूसरे देशमें वही माल सस्ता हो जाता है। इस तरीकेको मालका पाटना (डम्पिंग) कहा जाता है।

१८ इसीसे मिलता-जुलता एक और तरीका इससे भिन्न परिस्थितिमें पैदा होता है। पहले महायुद्ध (सन् १९१४-१८) के बाद जर्मनोंसे युद्धदण्ड वसूल करनेके लिए इंग्लैण्डकी सरकारने जर्मनोंसे लिया हुआ माल बहुत सस्ते भाव पर बेचना शुरू किया और इंग्लैण्डके बाजारमें बिक्रीके लिए रखा। इंग्लैण्डके उत्पादक इस सस्ते मालकी प्रतिस्पर्धामें टिक न सके और उन्हें अपने कारखाने बंद कर देने पड़े।

बढ़ते, घटते या स्थिर उत्पादनके नियमका बाजार-कीमत पर असर

१९ जो माल उत्पन्न करना हो उस पर बढ़ते, स्थिर अथवा घटते उत्पादनके नियमोंमें से कौनसा नियम* लागू होता है यह देखना चाहिये। क्योंकि इस पर उस मालके उत्पादन-खर्च और उसकी बाजार-कीमतका आधार रहता है। मान लीजिये कि कोई चीज ऐसी है जिसके उत्पादन पर बढ़ते उत्पादनका नियम लागू होता है। इस मालकी मांग बढ़े और उत्पादक अधिक माल बनावें तो जितना माल वह ज्यादा बनाता जायगा उतना ही उस माल पर उत्पादन-खर्च कम होता जायगा। मालकी मांग बढ़ने पर उसका भाव भी बढ़ता है और मांग घटने पर उसका भाव भी घटता है इस सामान्य मान्यतासे यह उलटी बात होती है। मालकी मांग बढ़ने पर कीमत घटाई जा सकती है और मालकी मांग घटने पर दाम बढ़ाना पड़ता है।

* इस विषयके लिए देखिये पुस्तकका भाग-२ प्रकरण ९ पैरा १८-२०।

२० जिस माल पर स्थिर उत्पादनका नियम लागू होता हो उस मालकी मांगमें घटती-बढ़ती होने पर उसका असर उसके उत्पादन-खर्च पर और इस कारण उसकी कीमत पर कुछ भी नहीं होता।

२१ जिस माल पर घटते उत्पादनका नियम लागू हो उसकी मांग बढ़ने पर बढ़ी हुई मांगको पूरा करनेके लिए उत्पादन खर्च बढ़ जाता है। इसलिए मांग बढ़ने पर बाजार-कीमत बढ़ती है। यदि मांग कम हो जाय तो उत्पादन कम करना पड़ता है और असर हुए तक उत्पादन खर्चकी मात्रा घटती है। अतः मांग कम होने पर बाजार कीमत कम होती है।

उत्पादन-खर्चकी मर्यादा

२२ अब प्रश्न यह पैदा होता है कि उत्पादक तो बहुत होते हैं और प्रत्येक उत्पादकका उत्पादन-खर्च एकसा नहीं होता। तब बाजार-कीमत किस उत्पादकके उत्पादन-खर्चका अनुसरण करेगी? जिस उत्पादकने अपना धंधा पहले आरंभ किया हो उसे कुछ कुदरती सुविधायें मिल जाती हैं। धंधेका अनुभव उसे अच्छा हो जाता है, कारीगर भी पुराने अनुभवी और विशेष कुशल मिल जाते हैं, पड़ी जमा जानेसे कच्चे मालकी खरीद और तैयार मालकी बिक्रीके लिए ग्राहक बंध जाते हैं, विज्ञापनका अधिक खर्च नहीं करना पड़ता या बहुत कम खर्च करना पड़ता है तथा बाजारमें साख अच्छी जम जानेके कारण ब्याज बट्टेमें भी लाभ मिलता है। ऐसे उत्पादकको स्वाभाविक ही उत्पादन खर्च अपेक्षाकृत बहुत कम आता है। साथ ही कोई उत्पादक नया हो परन्तु उसने नयेसे नये ढंगकी मशीन लगाई हो और नयीसे नयी शास्त्रीय पद्धतिसे काम करता हो तो उसे भी उत्पादन खर्च कम आता है। इसके विपरीत कोई उत्पादक काफी होशियार न हो उसे आवश्यक कुदरती सुविधाएं न मिल सकी हों और उसके पास आवश्यक पूंजी भी न हो तो उसे उत्पादन-खर्च तुलनामें अधिक आता है। इस तरह उत्पादन-खर्च किसीको अधिक आता है और किसीको कम आता है। लेकिन बाजारके नियमके अनुसार तो सबको अपने मालकी कीमत एकसी ही मिलेगी। यह बाजार-कीमत किस उत्पादकके उत्पादन-खर्चके अनुसार होगी?

२३ इसका उत्तर यह दिया जाता है कि मांगको पूरा करनेके लिए जितने उत्पादकोंको काम करना पड़े उन सबमें जिस उत्पादकका उत्पादन खर्च अधिकसे अधिक हो उसके उत्पादनके उत्पादन-खर्चके अनुसार बाजार कीमत रहेगी। मान लीजिये कि कपड़ेके ५ लाख थानोंकी मांग है। और एक एक लाख थान तैयार करनेवाले पांच उत्पादक इतना माल मुहैया कर

सकते हैं। इनमें से पहले उत्पादकको प्रति थान ४ रुपया उत्पादन-खर्च आता है, दूसरेको ४-४-०, तीसरेको ४-८-०, चौथेको ४-१२-० और पांचवेंको ५-०-० रुपये आता है। इस स्थितिमें कपड़ेके थानकी बाजार-कीमत पांच रुपया रहेगी, क्योंकि आखिरी उत्पादकके प्रयत्नके बिना कपड़ेकी माग पूरी नहीं हो सकती और वह अपना माल ५ रुपयेसे कममें बेच नहीं सकेगा। इसी स्थितिमें पहले चार उत्पादकोंको अधिक नफा मिलेगा। परन्तु आखिरी उत्पादक थोड़ा नफा मिले तब तब तो वह काम करनेको तैयार होगा ही। इस उत्पादकको सीमान्त उत्पादक कहा जाता है।

२४. यदि कपड़ेके थानकी माग घटकर चार लाखकी हो जाय तो पहले चार उत्पादक अपना सारा माल खपा देनेके लिए थानकी कीमतमें कमी कर देंगे। ऐसा न करें तो पांचवें उत्पादकका माल भी खपता रहेगा और पहले चार उत्पादकोंका थोड़ा-बहुत माल पड़ा रहेगा। लेकिन ये चार उत्पादक आवश्यकतासे अधिक कीमत कभी नहीं घटायेंगे। इसलिए थानकी कीमत उतर कर ४॥। रुपये पर आयेगी। इस कीमत पर अंतिम अर्थात् पांचवें उत्पादकको कपड़ा बनाना पुसायेगा नहीं। अतः वह अपना काम बन्द कर देगा। उस स्थितिमें वह चौथा उत्पादक सीमान्त उत्पादक बनेगा।

२५. अब मान लीजिये कि कपड़ेकी माग बढ़ी और छह लाख थानोंकी हो गई। तो वे पांच उत्पादक अधिक उत्पादन-खर्च उठाकर भी अपना उत्पादन बढ़ायेंगे। वे न बढ़ा सकेंगे तो छठा उत्पादक मैदानमें आयेगा। उसे एक थानका उत्पादन-खर्च ५। रु० आता होगा तो छह लाख थानोंकी कीमत ५। रु० होगी। यह छठा उत्पादक सीमान्त उत्पादक बनेगा और उसका उत्पादन-खर्च इस उत्पादन-खर्चकी अंतिम सीमा होगी। उससे ज्यादा उत्पादन खर्च जिसे आयेगा वह कपड़ेके उत्पादनमें खड़ा नहीं रह सकेगा।

२६. इस उदाहरणकी केवल इतना ही समझनेके लिए कल्पना की गई है कि उत्पादन-खर्चकी मात्रा बढ़ा घटता है और कौनसे उत्पादकको सीमा पर रहना पड़ता है। वस साधारण व्यवहारमें तो ऐसा होना अधिक संभव है कि माग बढ़नेके साथ प्रत्येक उत्पादक अपना उत्पादन बढ़ानेका प्रयत्न करेगा। लेकिन इससे हमारे नियममें बाधा नहीं आती। मागको पूरा करनेके लिए बहुतसे उत्पादक काम करते हों तो अंतिम उत्पादकको अर्थात् जिसका माल लिये बिना माग पूरी नहीं हो सकती उस उत्पादकका जो उत्पादन-खर्च आयेगा उस पर मालकी बाजार-कीमतका आधार रहेगा। इस उत्पादन-खर्चको हम उत्पादन-खर्चकी अंतिम सीमा कह सकते हैं। यहां एक

बात ध्यानमें रखनी चाहिये। वह यह कि उत्पादन-खर्चकी यह सीमा स्थिर नहीं होती। मांगमें जिस तरह घटता बढ़ता होता है उसीके अनुसार उत्पादन खर्चकी सीमामें भी घटती बढ़ती होती रहती है।

सार

२७ हम देख चुके हैं कि मांग और पूर्तिके मेलके असरके फलस्वरूप बाजार-कीमत निश्चित होती है। मांगका वस्तुकी उपयोगिताके साथ सम्बन्ध है और पूर्तिका उत्पादन-खर्चके साथ सम्बन्ध है। हम यह भी देख चुके हैं कि व्यक्ति और समाजकी हर चीजसे सम्बन्ध रखनेवाली उपयोगिताकी एक सीमा होती है। आजकलके हमारे अर्थ-व्यवहारमें तो व्यक्तियों और समुदायको अपनी खरीदशक्तिके अनुसार अलग अलग चीजोंकी उपयोगिताकी सीमा बांधनी पड़ती है। इस तरह बंधी हुई उपयोगिताकी सीमा उत्पादन पर असर करती है। उपयोगिताकी सीमाका द्रव्य माप जितना होगा उस मापके अन्दर जब तक उत्पादन-खर्च आयेगा तभी तक उत्पादक अपना उत्पादन-कार्य करना चाहेगा। इसे हमने उत्पादन-खर्चकी सीमा कहा है। इस परसे हम यह कह सकते हैं कि

जब उपयोगिताकी सीमाके द्रव्य-मापका और उत्पादन खर्चकी सीमाके द्रव्य मापका एक-दूसरेके साथ मेल बैठ जाता है तब उस द्रव्य-मापके आधार पर बाजार कीमत निश्चित होती है।

२८ इसमें एक बात ध्यानमें रखनेकी है जो पहले कही जा चुकी है। वह यह कि अधिकतर चीजोंके बारेमें मांग या उपयोगिताकी सीमाका आधार कीमत पर रहता है। कीमतका असर जितना मात्रामें और जितनी जल्दी मांग पर हो सकता है उतनी मात्रामें और उतनी जल्दी पूर्ति पर नहीं हो सकता। कीमतमें घटा-बढ़ी होने पर मांगमें एकदम घटा-बढ़ी हो जाती है परन्तु पूर्तिमें घटा बढ़ी होनेमें देर लगती है यह बात हम पहले देख चुके हैं। दूसरी बात यह है कि मांगका सम्बन्ध मनुष्यकी आदतों रीति रिवाजों रुचियों और अरुचियों फैशन आदि अन्दरूनी अथवा मनोगत बातोंसे होता है जब कि पूर्तिका सम्बन्ध स्थूल पदार्थोंसे होता है। अब समाज तो परिवर्तनशील है। लोगोंकी आदतों रुचि अरुचियों आदिमें समय समय पर भारी फेरबदल हुआ ही करते हैं। ऐसी तरह पूर्तिके मामलेमें भी उत्पादनकी पद्धतियोंके कारण फेरबदल होते रहते हैं। फिर भी यह स्पष्ट है कि जितनी तेजीसे आदतें और फैशनें बदलती हैं उतनी तेजीसे उत्पादनकी

पद्धतियोंमें और उसके फलस्वरूप मालकी मात्रामें कमीबेशी नहीं की जा सकती। इसलिए बाजार-कीमतके लिए एक नियम तात्कालिक कीमतका और दूसरा लम्बी अवधि तक बनी रहनेवाली सामान्य कीमतका — इस तरह दो नियम बनाने पड़े।

(१) किसी भी चीजकी तात्कालिक बाजार-कीमत उस चीजकी पूर्तिके अनुपातसे इस बातसे निश्चित होगी कि उसकी माँग कितनी है अर्थात् खरीदनेवालोंके सामने पड़ी हुई मात्राकी उपयोगिता उनकी दृष्टिमें कितनी है।

(२) जो माल जरूरी मात्रामें नया बनाया जा सकता है उस मालकी सामान्य बाजार-कीमत लम्बी अवधिमें उसके सामान्य अथवा अन्तिम उत्पादकके उत्पादन-खर्चके आसपास रहेगी। अर्थात् उत्पादन-खर्चसे मामूली तौर पर बहुत ज्यादा या बहुत कम नहीं रह सकती।

९. परन्तु ये दोनों नियम तभी काम कर सकते हैं जब बाजारमें एक बेचनेवाले और दूसरे बेचनेवालेके बीच तथा एक खरीदार और दूसरे खरीदारके बीच और साथ ही बेचनेवालों तथा खरीदारोंके बीच परस्पर खुली और न्यायपूर्ण होड़ हो सकती हो और माल व पूर्तिके बारेमें किसी तरहका हस्तक्षेप न हो। आजकी अर्थ-रचनामें ऐसी खुली और न्यायपूर्ण स्पर्धा बहुतसी चीजोंके बारेमें नहीं होती। कुछ चीजोंके बारेमें उत्पादक लोग राज्यकी मददसे या अपने उद्योगोंको संगठित करके एकाधिकार जमा लेते हैं। वे अपने मालके मनमाने भाव ले सकते हैं। दूसरी ओर कुछ उत्पादक — जैसे हमारे देशके किसान और हमारे कारीगर — ऐसी लाचार हालतमें हैं कि उन्हें अपना माल बहुत सस्ते दामों अपनी लागत कीमतसे भी कम दाममें दे देना पड़ता है। इसके सिवा आजकी भयंकर आर्थिक असमानताके जमानेमें खरीदार भी एक तरफ धनी और दूसरी तरफ गरीब — इस तरहके दो वर्गोंमें बंट गये हैं। इन शर्तोंमें आपसकी प्रतिस्पर्धा किसी भी तरह खुली और न्यायपूर्ण नहीं होती।

१०. इसीलिए आजकलकी बाजार-कीमतमें न्याय अथवा औचित्य बहुत कम पाया जाता है। हमें इसका विचार करना चाहिये कि उचित कीमत किस तरह और किस सिद्धान्त पर निश्चित की जा सकती है। परन्तु उसकी चर्चा करनेसे पहले ऊपर जिस एकाधिकार जैसी स्थितिका उल्लेख किया गया है उस एकाधिकारका तथा एकाधिकार-कीमतका और बाजारमें चलनेवाले सट्टेके कारण चीजोंके भावोंमें जो अनुचित उतार-चढ़ाव होते रहते हैं उनका हम विचार करेंगे।

६

एकाधिकार कीमत

१ जब समाजके लिए उपयोगी किसी चीज या सेवाकी मात्रा पर किसी व्यक्ति या मण्डलका पूरा नियंत्रण होता है तब कहा जाता है कि उसके पास उस चीज या उस सेवाका एकाधिकार है। जब व्यापारी या उत्पादक अपना संगठन करके चीजों या सेवाओंके उत्पादन और बिक्री पर नियंत्रण करके उसकी कीमत पर अधिकार कर लेते हैं तब भी एकाधिकार जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एकाधिकारका अर्थ है प्रतिस्पर्धाका अभाव। जब किसी चीजका उत्पादन एक ही आदमीके हाथमें हो और उस चीजके बिना लोगोंका काम न चल सकता हो तब उत्पादक उस चीजके मनमाने भाव ले सकता है। इसी तरह मालकी सारी मात्रा या बहुत बड़ा हिस्सा एक ही व्यापारी कंपनीके पास आ जाय तो भी वह मनमाने भाव ले सकती है। जब एक चीजके बहुतसे उत्पादक या व्यापारी होते हैं तब हर उत्पादक या व्यापारीको यह चिन्ता रखनी पड़ती है कि मेरा प्रतिस्पर्धी उत्पादक या व्यापारी यदि कम भाव रखेगा तो मेरा माल नहीं खपेगा।

२ आम तौर पर नीचे बताई हुई स्थितिमें एकाधिकार उत्पन्न होता है:

(१) कुदरती एकाधिकार: कोई माल पृथ्वीके किसी विशेष देशमें ही मिल सकता हो तो वह देश उस चीजका एकाधिकार भोगता है। जैसे हीरे दक्षिण अफ्रीकामें मिलते हैं। हमारे देशमें गोलकुण्डाके पास हीरेकी खान है परन्तु उसमें से बहुत थोड़े हीरे निकलते हैं। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाकी हीरेकी खानकी मालिक कंपनी हीरेका एकाधिकार भोगती है। वह इतने ही हीरे खानमें से निकालती है जो बहुत ऊंचे भावसे बेचे जा सकें। अगर ज्यादा हीरे निकाले तो उन्हें खपानेके लिए उसे भाव घटाने पड़ें। यही बात कोयलेकी खानों और तेलके कुओंकी है। जिस जिस देशमें ये खानें हैं वे देश लोहे और तेलके बारेमें दूसरे देशों पर प्रभुत्व भोग सकते हैं। इसलिए ऐसे प्रदेशों पर अधिकार करनेके लिए बड़े बड़े राष्ट्रोंके बीच प्रतिस्पर्धा चलती है।

(२) सार्वजनिक सेवाओंका एकाधिकार: कितने ही उद्योग या सेवाके काम ऐसे होते हैं कि एक खास क्षेत्रमें वे उद्योग चलानेवाले या वे सेवाएं करनेवाले एकसे ज्यादा व्यक्ति अथवा मण्डल हों तो बहुत कठिनाई पड़ती

है और आर्थिक दृष्टिसे भी बड़ा नुकसान हो सकता है। किसी शहरको गैस, पानी, बिजली और ऐसी अन्य चीजें मुहैया करनेवाली संस्था एक ही हो तभी सुविधा रहती है। बिजली पहुंचानेके लिए तारकी रस्सियां लगानी पड़ती हैं और पानी पहुंचानेके लिए जमीनके अन्दर बड़े नल डालने पड़ते हैं। इस कामको एकसे अधिक संस्थायें करने लगें तो कितने तार और कितने पानीके नल लगाने पड़ें? उसमें सारा कठिनाई ही पैदा हो सकती है। वह शहरमें ट्राम और मोटर-बस एक ही मण्डलकी तरफसे चलती हों तभी सुविधा रहती है। एक ही रास्तेके लिए अगर अधिक कम्पनियां हों तो उनसे बिना कारण भारी खर्च होता है। इसी तरह बन्दरगाहके घाटकी बात है। प्रतिस्पर्धामें जो नुकसान अनिवार्य होता है वह इस तरहके काम एक ही मण्डलके हाथमें होनेसे सहज ही टल जाता है और लोगोंको भी ये सेवाएं सस्ती और सुविधासे मिल सकती हैं। लेकिन यह तभी हो सकता है जब इनका हेतु नफा कमानेका न हो बल्कि लोगोंको सुविधायें देनेका हो। इन कामोंके एकाधिकार खानगी आदमियों, कम्पनियों या मण्डलोंके पास हों तो बहुत संभव है कि उनका ध्यान नफा कमानेकी तरफ हो रहे। इसलिए यह वांछनीय है कि इन कामोंके लोकल बोर्डों और म्युनिसिपलिटियों जैसी कानूनके नियंत्रणवाली सार्वजनिक संस्थाओंके हाथमें हों या उनके नियंत्रणमें हों।

(३) कानूनसे मिलनेवाला एकाधिकार किसान नए यंत्रकी या नई ख्यालकी खोज करे तो वह उसका पेटेण्ट (विशेष अधिकारपत्र) ले सकता है। इसके फलस्वरूप दूसरा कोई व्यक्ति उसी तरहका यंत्र या वैसी ही दवा नहीं बना सकता। पुस्तकके लेखक और प्रकाशकको भी कानूनसे प्रकाशन-अधिकार (कापी राइट) मिलता है। इसका हेतु यह रखना होता है कि लेखकों और संशोधकोंको अपने परिश्रमका फल भोगनेमें कोई रुकावट न आये और मालकी झूठी नकल न हो सके। किसी शोधकने बहुत समय लगाकर और बड़ा परिश्रम करके कोई नई खोज की हो और वह इस चीजका व्यापार करनेमें कानूनसे अनुमति लेकर उसका पेटेण्ट ले ले तो ऐसी ही चीज दूसरा कोई नहीं बना सकता। अपनी खोजी हुई चीजकी बिक्रीमें से अपने लगाए हुए समयका अथवा किए हुए परिश्रमका बदला उसे मिलता रहेगा। यदि पेटेण्ट लेनेकी व्यवस्था न हो तो दूसरे लोग उसी चीजको बनाकर सस्ता बेचने लगें। इसी तरह कापी राइटसे लेखक और प्रकाशकको अपने परिश्रम या साधनका बदला मिलता रहता है।

इसके सिवा सरकार आयके साधनके रूपमें भी कितनी ही चीजोंका एकाधिकार अपने हाथमें रखता है। हमारे देशमें अफीम गांजा भांग तथा शराब ताडी वगैरा बेचनेका काम सरकारकी तरफसे परवाना लेकर ही किया जा सकता है। सरकार इस परवाने भारी कीमत लेकर बेचती है। शराब बनानेका काम तो हमारे देशके कुछ भागोंमें सरकारने अपने ही हाथमें रखा है। इसी तरह नमक भी सरकार स्वयं ही बनाती है और अपने निश्चित किये हुए भावों पर बेचती है।

कानूनी एकाधिकार सामान्यतः उन्हीं चीजों या सेवाओंके होने चाहिये जो बहुत ही उपयोगी हों और जिनमें प्रतिस्पर्धा होनेसे देशमें वे चीजें या सेवा समाजको अच्छी तरह मिल न सकें। उपरके उदाहरणमें सरकार अपना हेतु तो दुर्व्यसनों पर अंकुश रखना बताती है परन्तु प्रत्यक्ष व्यवहारमें वह आयके साधनमें ही पड जाती है।

(४) उद्योग धंधोंके संगठन द्वारा एकाधिकार — कुछ उद्योग धंधेवाले अपनी भीतरी प्रतिस्पर्धाको मिटा कर अपने मालके बारेमें एकाधिकार जैसी स्थिति पैदा कर देते हैं। एसोसिएशनों सिन्डिकेटों ट्रस्टों और कार्टेलों आदि द्वारा कारखानेदार या उद्योगपति जो संगठन करते हैं उसके बारेमें पहले कहा जा चुका है। हमारे देशमें अलग-अलग सीमेण्ट कंपनियोंने अपना एसोसिएशन बनाया है और सारी कंपनियां इस एसोसिएशनके मारफत सारे देशमें एक निश्चित भावसे सीमेण्ट बेचती हैं।

एकाधिकार-कीमत और बाजार कीमतकी तुलना

चूंकि एकाधिकारीको कोई प्रतिस्पर्धी नहीं होता इसलिए वह अपने मालकी कीमत अपनी इच्छानुसार रख सकता है। लेकिन सार्वजनिक सेवाओं जैसे गैस पानी बिजली ट्राम और बसकी व्यवस्थाके एकाधिकारके सम्बन्धमें म्युनिसिपैलिटी या सरकार इन सेवाओंके एकाधिकार देनेसे पहले भाव निश्चित करती है या भाव पर नियंत्रण लगानेकी सत्ता अपने हाथमें रखती है। वह इसकी भी देखरेख रखता है कि वे अधिक भाव न लें सबसे एक ही भाव लें और एक ग्राहकसे एक तथा दूसरेसे दूसरा भाव न लें। लेकिन खानगी उत्पादक या व्यापारी जब अपना संगठन करके एकाधिकारकी स्थिति प्राप्त कर लेते हैं तब वे अपनी इच्छाके अनुसार भाव रख सकते हैं। वे कह सकते हैं कि हमारे निश्चित किये हुए भावसे जिसे माल लेना

देखिये पुस्तकका भाग—२ प्रकरण ८ पृष्ठ १०—११।

हो जाय। फिर भी वे इतना खयाल तो रखते ही हैं कि अपने निश्चित किये हुए भावसे उनके पासका सारा माल खप जाय। यदि ऊँचे भाव रखनेके कारण माँग घट जाय और माल बिके बिना पड़ा रहे तो अधिक भाव रखनेमें लाभ नहीं। दूसरे उत्पादकों और व्यापारियोंकी तरह एकाधिकारी यह दृष्टि तो रखता ही है कि अपने धंधेमें उसे अधिकसे अधिक लाभ मिले। यह हम देख चुके हैं कि साधारण उत्पादकों और व्यापारियोंको अपने प्रतिस्पर्धियोंसे निपटना होता है, इसलिए कुल मिलाकर बाजार कीमतका रुख उत्पादन-खर्चके आसपास रहनेकी तरफ ही होता है। परन्तु एकाधिकारीको अपने उत्पादन-खर्चसे अधिक कीमत रखनेसे कोई रोक नहीं सकता। उसे ऐसा डर रखनेका कोई कारण नहीं होता कि दूसरे लोग भाव नीचा रखकर ग्राहकोंको अपने यहाँ खींच लें। जहाँ सच्ची और खुली प्रतिस्पर्धा होती है वहाँ कोई उत्पादक उत्पादन-खर्चसे अधिक नीचे या ऊँचे भाव ज्यादा समय तक नहीं रख सकते। लेकिन एकाधिकारकी स्थितिमें उत्पादन-खर्च भावको नियंत्रणमें रखनेवाला तत्त्व नहीं रहता।

एकाधिकार-कीमतकी मर्यादाएँ

४. तो भी एक बात याद रखनी चाहिये कि भाव बहुत ऊँचे रखनेमें एकाधिकारीको कुल मिलाकर बहुत लाभ होनेकी संभावना नहीं रहती। ऊँचे भावका असर माँग पर हुए बिना रहता ही नहीं। एकाधिकारीको ऊँचे भावका लाभ उठाना हो तो उसे बिक्रीका लाभ छोड़ना पड़ता है। वह या तो भाव ही अधिक ले या बिक्री ही अधिक करे। वह दोनों घोड़ों पर सवारी नहीं कर सकता।

५. एक बात निश्चित है कि किसी भी व्यापारीका — भले वह एकाधिकारी हो या सामान्य व्यापारी हो — ध्येय कुल मिलाकर ज्यादासे ज्यादा नफा कमाना होता है। लेकिन प्रस्तुत चीजकी माँग और पूर्तिका अच्छी तरह विचार किये बिना यह नहीं कहा जा सकता कि एकाधिकारीको ऊँचा भाव रखनेसे ज्यादा नफा होगा या नीचा भाव रखनेसे ज्यादा नफा होगा। कुछ स्थितियोंमें ऊँचा भाव रखनेसे अधिक नफा होता है और कुछ स्थितियोंमें नीचा भाव रखनेसे अधिक नफा होता है। प्रत्येक स्थितिकी हमें स्वतंत्र रूपसे जाँच करनी चाहिये।

(१) जिस चीजकी माँग लचकहीन हो उसके ऊँचे भाव पाये जा सकते हैं, क्योंकि भाव कितने ही बढ़ें तो भी उसके कारणसे उस चीजकी माँगमें कमी नहीं हो सकती। जैसे नमक।

(२) जिस चीजके उत्पादनका घटते उत्पादनका नियम लागू होता हो उसके भाव ऊँचे रखनेमें एकाधिकारीको लाभ होगा, क्योंकि ऊँचे भाव रखनेके कारण माँग घटेगी, माल कम बनाना पड़ेगा और उस पर उत्पादन-खर्च एक हद तक अपेक्षाकृत कम आयेगा। इसलिए उसे हानि नहीं होगी।

(३) जिस चीजकी माँग लचकदार हो उसमें भाव नीचे रखनेसे एकाधिकारीको अधिक लाभ होना संभव है। नीचे भावके कारण माँग बढ़ जायगी। उसे नफेकी दर या नफेका प्रतिशत कम मिलेगा परन्तु माल बहुत बड़ी मात्रामें बिकेगा। इसलिए नफा कुल मिलाकर अधिक होगा।

(४) जिस चीजके उत्पादनका बढ़ते उत्पादनका नियम लागू होता हो उसमें भी कम भाव रखनेसे नफेकी मात्रा बढ़ेगी। क्योंकि माँग बढ़नेके साथ साथ वह उत्पादन बढ़ायेगा, और जैसे जैसे उत्पादन बढ़ाया जायगा वैसे वैसे उत्पादन-खर्च घटता जायगा, इसलिए लाभ बढ़ता जायगा।

(५) जिस चीजके उत्पादनका स्थिर उत्पादनका नियम लागू होता हो उस चीजके बारेमें एकाधिकारीको एक ही बात सोचनी पड़ती है कि मालकी माँग लचकहीन है या लचकदार। माँगके प्रकारके हिसाबसे भाव ऊँचे या नीचे रखनेमें उसे अधिक लाभ होगा।

६ संक्षेपमें अपने मालके भाव निश्चित करते समय एकाधिकारी निम्नांकित दो बातोंका विचार करता है :

(१) वस्तुकी माँग किस प्रकारकी है? माँग लचकहीन है या लचकदार?

(२) वस्तुके उत्पादनको बढ़ते घटते या स्थिरमेंसे कौनसे उत्पादनका नियम लागू होता है?

एकाधिकारके हानि लाभ

७ सामान्यतः यह माना जाता है कि एकाधिकारसे ग्राहकोंको हमेशा हानि होती है, क्योंकि एकाधिकारीके भाव सभी प्रतिस्पर्धावालोंके भावसे ऊँचे रहना अधिक संभव है। लेकिन सदा ऐसा नहीं होता। एक-दूसरेके साथ प्रतिस्पर्धा करनेवाले छोटे छोटे उत्पादकोंको जो उत्पादन-खर्च पड़ता है उसकी अपेक्षा प्रतिस्पर्धा मिटाकर एक तन्त्रके नीचे बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाय या बड़े पैमाने पर उत्पादन करनेवाले बहुतसे कारखाने भी अधिक नहीं तो अपने मालके उत्पादन और बिक्रीके लिए एक खास नियमन स्वीकार कर लें तो उसमें उत्पादन-खर्च और बिक्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे खर्च कम पड़ते हैं। प्रतिस्पर्धा न हो तो मशीनों वगैरामें इस तरहके सुधार करनेकी गुंजाइश रहती है जिससे अच्छेसे अच्छा उत्पादन हो। माल या

काम एक ही तरहका रखा जा सकता है। क्योंकि एकाधिकारीको यह विश्वास होता है कि इन सारे सुधारका लाभ उसीको मिलेगा। उत्पादन-व्यय यथासंभव घटा देनेके बाद एकाधिकारी सोचता है कि भाव नीचे रखूंगा तो ग्राहकी और बिक्री बढ़ेगी जिससे लागत और कम होने पर भी कुछ नफा तो ज्यादा ही होगा। यह सब हिसाब एकाधिकारी निश्चिन्तताके साथ कर सकता है क्योंकि उसे दूसरेकी प्रतिस्पर्धाका डर नहीं रहता उसका ग्राहकोंमें कोई हिस्सा बटानेवाला नहीं रहता। परन्तु मान लीजिये कि प्रतिस्पर्धाका डर न होनेसे एकाधिकारी अपने तात्कालिक नफे पर ही नजर रखकर ऊंचे भाव रखे तो उसे ऐसा करनेसे रोकनेवाले कुछ अंकुश भी हैं :

(१) एकाधिकारी अपने मालका बहुत ऊंचा भाव रखे तो ग्राहक थककर उसके मालका उपयोग करना छोड़ देंगे और उसके बदलेमें ऐसा दूसरा माल ढूंढ लेंगे जिससे उनका काम चल सकता हो, और आज कलके वैज्ञानिक प्रगतिके जमानेमें ऐसा करनेमें वे सफल भी हो सकते हैं।

(२) एकाधिकारी बहुत ही बेपरवाह बन जाये तो आखिरमें ग्राहक उसके विरुद्ध संगठन करके उसके खिलाफ जिहाद छेड़ सकते हैं।

(३) और एकाधिकारके विरुद्ध लोकमत बहुत बढ़ता हो तो सरकार बीचमें पड़कर एकाधिकारी पर अंकुश लगा सकती है या उसका धंधा अपने हाथमें ले सकती है।

८ परन्तु इन अंकुशोंके असरमें आनेमें बहुत देर लगती है। इसके सिवा बहुत बार ऐसा होता है कि कम कीमत रखनेसे अधिक लाभ ज्यादा नफेकी सम्भावना हो तो भी एकाधिकारी इतना दूर तक नहीं सोचता और अपने मालकी कीमत ऊंची रखता है और ग्राहकोंकी तरफ लापरवाही दिखाता है। कभी-कभी तो एकाधिकारी इतने ज्यादा लापरवाह बन जाते हैं कि उद्योगके विकासके लिए जो सुधार हमेशा करते रहना चाहिये उन्हें करनेकी भी वे कोई परवाह नहीं करते। इसलिए उद्योग पुराने और ज्यादा खर्चीले ढंग पर ही चलता रहता है। इसके सिवा एकाधिकारी मालकी कीमतमें फरक भी कर सकते हैं। वे सरकारी ग्राहकोंसे ज्यादा और दूसरोंसे कम कीमत ले सकते हैं। खास त्योहारके समय भी वे अधिक कीमत ले सकते हैं। एक प्रदेशमें कीमत ज्यादा रख सकते हैं और दूसरे प्रदेशमें कम।

९ लेकिन आजकलके उद्योगपतियों और पूंजीवादी अर्थशास्त्रियोंकी दलील तो यह है कि एकाधिकारमें इस तरहकी जो बुराइयां बताई जाती हैं

ये व्यापक नहीं हैं और किसी जगह थोड़ी मात्रामें यदि पाये भी जायें तो वे आसानीसे दूर की जा सकती हैं। वे कहते हैं कि व्यापार उद्योगके बड़े संगठनोंके कारण प्रतिस्पर्धा मिट जानेसे लोगोंको चीजें और सुविधाएं पहलेसे अधिक सस्ती, अच्छी और बहुत बड़ी मात्रामें मिलने लगी हैं। यह भी कहा जाता है कि पूंजीवादी प्रथामें उत्पादनके बारेमें अराजकता या गड़बड़ फैली हुई है उसका एक बड़ा इलाज इन एकाधिकारकी स्थिति भोगनेवाले बड़े संगठन हैं। ऐसे संगठनोंके कारण उत्पादन नियंत्रित और व्यवस्थित रहता है और लोगोंको उपयोगकी चीजें अधिक मात्रामें तथा शुद्ध और सस्ती मिलनेसे उनकी सुख सुविधाओंमें वृद्धि होती है। लेकिन यह दलील बहुत टिकने लायक नहीं है। यह कहनेमें बहुत सार नहीं है कि व्यापार उद्योगके संगठनोंके कारण प्रतिस्पर्धा मिट गई है या मिट सकती है। पहले छोटे व्यापारी और उत्पादक एक दूसरेके साथ प्रतिस्पर्धा करते थे। उसके बजाय आज बड़े संगठन एक-दूसरेके साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं। उनके संगठनमें यदि सारे व्यापारी शामिल न हों तो संगठनवाले उन फुटकर दूकानका कोशिश करते हैं। राज्योंकी एक दूसरेके साथकी प्रतिस्पर्धा और झगड़ोंके साथ इस बातकी तुलना करें तो पहले छोटे छोटे रजवाड़े एक-दूसरेके साथ लड़ते थे, उसके बजाय अब बड़े बड़े राष्ट्र और साम्राज्य आपसमें लड़ते हैं। फिर जैसे बड़े राष्ट्रोंके बीच युद्ध तक मर्यादित मित्रता और संगठन होते हैं, परंतु जिनमें वे एक-दूसरेका जरा भी विश्वास नहीं करते, वैसा ही व्यापार उद्योगके इन संगठनोंका हाल होता है। आजके विश्वव्यापी और सर्वसंहारक युद्धोंकी तरह इन बड़े संगठनोंकी एक दूसरेके साथ चलनेवाली आर्थिक प्रतिस्पर्धा भी अधिक विश्वव्यापी और अधिक सर्वनाशक हो जाती है।

१० व्यापार उद्योगके ये संगठन राजनीतिक क्षेत्रोंमें भी घुस गये हैं और अपने अपने देशके राज्यतंत्रमें प्रभाव अथवा सत्ता जमाने लगे हैं। अपना स्वार्थ साधनेके लिए वे सरकारी नौकरों और पार्लियामेंट या सीनेटमें बैठनेवाले जनताके चुने हुए सदस्योंको भी रिश्वत देकर या अन्य प्रकारसे अपने हाथके खिलौने बना सकते हैं और सरकारको परेशानीमें डाल सकते हैं। अन्तमें लेखकने पुकार पुकार कर यह कहा है कि दूसरे विश्वयुद्धके जन्ममें उत्पादकों और व्यापारियोंके एकाधिकार भोगनेवाले ऐसे बड़े संगठन थे।

११ हम यह देख चुके हैं कि सारी जनताकी भलाईके खयालसे विचार किया जाय तो बड़े पैमानेका उत्पादन अनेक प्रकारसे हानिकारक है।

उसमें भी खानगी उत्पादकों और व्यापारियोंके ऐसे बहुत बड़े संगठन तो वांछनीय हैं ही नहीं। जब वे एकाधिकार भोगनेकी स्थितिमें आ जाते हैं तब जनताके लिए उनके भारी बोझ और खतरा बन जानेकी बड़ी संभावना रहती है। ऐसा नहीं मालूम होता कि उत्पादनका विकेंद्रित किये बिना दुनियाकी उलझी हुई समस्या हल हो सकेगी। फिर भी समाजके लिए जरूरी कुछ ऐसे उद्योग हैं जो बड़े पैमाने पर ही चलाये जा सकते हैं। ये उद्योग यदि ऐसे हों कि वे एक ही व्यक्ति या मण्डल द्वारा चलाये जा सकें यानी जो एकाधिकारकी स्थितिमें हो चलाये जा सकते हों और तभी उनसे समाजको लाभ हो तो ऐसे उद्योग राज्य सरकार म्युनिसिपलिटियां लोकल बोर्डों या जनताकी भलाईके लिए चलनेवाली दूसरी संस्थाओंके जरिये चलाये जाने चाहियें। खानगी एकाधिकार भले ही वह व्यक्तिका हो कंपनीका हो या कंपनियोंके मण्डलका हो जनताकी भलाईके खयालसे अच्छा नहीं है।

व्यापार चिह्न छाप और विज्ञापन

१२ मालकी कीमत सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातें ऐसी हैं जो एकाधिकार और प्रतिस्पर्धा दामोंकी सीमा पर रहती हैं। इनका विचार यहीं कर लेना ठीक है। व्यापारियोंके मार्कों (ट्रेडमार्कों) माल पर लगाई जाने वाली तरह तरहकी छापों और मालके विज्ञापनके कारण उस उस मालके बारेमें अर्ध-एकाधिकार जैसी स्थिति पैदा हो जाती है क्योंकि वह प्रतिस्पर्धाको रोकता है या मुश्किल बना देती है। ग्राहकोंकी पसन्दकी भी विचार निर्णायक हो जाती है। उनकी पसन्द बिलकुल स्वतंत्र नहीं रह सकती। बाजार कीमतका रुख उत्पादन-व्ययके आसपास रहनेका जो सामान्य नियम है उसके अमलमें ये बातें रुकावट डालती हैं। प्राय ऐसा होता है कि विज्ञापनोंके और ऐसे ही दूसरे प्रचारके कारण प्रसिद्ध हो चुकी छापवाले मालकी कीमत उत्पादन-व्ययसे बहुत ज्यादा होती है। और दूसरे उत्पादक गुणमें उसके जैसा ही माल बनाकर बाजारमें रखते हैं तो भी प्रसिद्ध हो चुकी छापवाले मालके सामने उसका टिकना नहीं हो पाता।

१३ रुई पटसन नाज और अनाज वगैरा कच्चे मालके बारेमें ऐसा नहीं होता। यह माल तो आमतौर पर नमूनेके आधार पर या उसके वर्णन परसे परख कर खरीदा जाता है। परन्तु कच्चे माल पर कई तरहकी क्रियाएं होनेके बाद जो माल बनावटी माल तैयार होता है उसके बारेमें ऐसा खास तौर पर होता है। साबुन सुगन्धित तेल, मिठाइयां मुरब्बे

बिस्कुट बनानेवाली कम्पनियाँ, जूते बनानेवाले, सुन्दर दागिने, तरह तरहके मंजन, तरह तरहकी दवाएं वगैरा मालके बारेमें ऐसा अधिक होता है। ऐसा माल बनानेवाले अपने मालको बहुत आकर्षक ढंगसे पैक करके उस पर अपनी खास छाप लगाकर और उसका खूब जोरशोरसे विज्ञापन करके बाजारमें उसे धकेलते हैं। ऐसा माल किस वस्तुसे बनता है, किस तरह बनता है, किन परिस्थितियोंमें उसका उत्पादन होता है आदि बातें और मालके गुण दोषोंके बारेमें ग्राहकको कुछ भी जानकारी नहीं होती। मालका उपयोग करनेवाले केवल नाम या छाप देखकर ही ग्राहक मालको पसन्द करता है। एक-दूसरेके देखादेखी कोई खास छापवाला माल समाजमें प्रसिद्ध हो जाता है, इसलिए सब उसी छापका माल खरीदते हैं। और उससे बनानेवालेको एकाधिकार या अर्धएकाधिकारकी स्थिति प्राप्त हो जाती है।

१४ ऊपर हमने व्यक्तिगत और सीधे उपयोगकी चीजोंकी बात की। लेकिन दूसरा माल बनानेके काममें आनेवाली चीजोंमें भी विज्ञापन द्वारा एक खास मार्के या छापका माल अधिक प्रसिद्ध हो जाता है। जैसे सुनार और लुहारके औजार और तरह तरहकी मशीनें भी लोग एक खास छापकी ही अधिक पसन्द करते हैं। लेकिन इन चीजोंमें सीधे उपयोगकी चीजों जितना छल या धोखा होनेकी गुंजाइश नहीं होती। लोग यदि एक खास मेकर का ही मशीनरी या खास छापके ही औजार ज्यादा काममें लेते हैं तो इसका कारण केवल उसकी छाप या विज्ञापन नहीं होता, बल्कि उसकी अच्छाईके बारेमें लम्बे समयका और बहुत लोगोंका अनुभव होता है। इसमें तो छाप या विज्ञापनका इतना ही असर होता है कि कोई नया उत्पादक उस प्रसिद्ध छापके औजार या मशीनसे अच्छा औजार या मशीन बनाये तो भी उसे बाजारमें प्रवेश पाने और अपनी जगह बनानेमें बहुत देर लगती है। यह नया उत्पादक अधिक साधन-सम्पन्न न हो तो उसका माल अच्छा होते हुए भी पुराने प्रसिद्ध मालको हटाकर वह अपने मालको बाजारमें नहीं रख सकता। कभी कभी ऐसा भी होता है कि प्रसिद्ध मालकी जाति हल्की हो जाने पर भी वह कुछ समय तक बाजारमें टिका रहता है, यद्यपि मालकी जाति बिगाड़ने या हल्की करनेमें उत्पादक आगे पीछे अपने नाशको ही निमंत्रण देता है। कोई भी समझदार उत्पादक अपने प्रसिद्ध हो चुके मालको इस तरह हरगिज हानि नहीं पहुंचायेगा। लेकिन जब उत्पादक पैसेकी तंगीमें आ जाता है तब जरूर ऐसा होता है। मान लीजिये उसने बैंकसे पैसा लिया हो और वह पैसा समय पर न लौटा सके तो उस स्थितिमें बैंक उसके कारखानेका कब्जा

अपने लाभमेंसे अपना इतना ऊँची कीमत रखनेके लिए उस कारखानेदारको मालको सस्ता बनाकर हल्की किस्मका सस्ता माल बनानेके लिए मजबूर करता है। बेचनेसे अपना पैसा जल्द ... वसूल करना होता है। लेकिन इसे इसकी परवाह नहीं होती कि इस मालकी प्रतिष्ठा या नाम जाती रहनेसे कारखानेको सदाके लिए नुकसान हो जायगा। हाँ, प्रथम उत्पादक तो यह समझता ही है कि यह दूरदर्शितावाली नीति नहीं है। इसलिए ऐसी घटनाएँ बहुत कम हो पाती हैं। ऐसे प्रसिद्ध मालको हटानेका तो एक यही उपाय है कि बिलकुल नये लोगों और इस प्रसिद्ध मालसे भी अच्छा काम देनेवाला माल कुछ सस्ता दामों पर या उतनी ही कीमत पर बाजारमें रखा जाय।

१ यह सोचनेकी बात है कि समाजके भलेकी दृष्टिसे हमारे अर्थ व्यवहारमें विज्ञापनोंका कितना स्थान है। विज्ञापनोंके हिमायती कहते हैं कि लोगोंको उनकी आवश्यकताकी चीजें कहाँ मिलेंगी यह बतानेके सिवा ग्राहकोंके लिए कौनसी चीज पसन्द करने जैसी है यह बात भी विज्ञापनोंके जरिये उन्हें बताई जाती है। साथ ही लोगोंको कैसी कैसी चीजें और सुविधायें मिल सकती हैं यह बतानेका अर्थात् नई आवश्यकतायें पैदा करनेका या आवश्यकतायें बढ़ानेका काम विज्ञापन करते हैं। परन्तु यह नये मालकी बात हुई। जो माल बहुत दिनोंसे चल रहा है उसका विज्ञापन किसलिए होना चाहिये? इसके लिए यह कहा जाता है कि माल प्रसिद्ध हो गया हो और लोग उसे खरीदते हों तो भी विज्ञापनके द्वारा उसका स्मरण लोगोंको सदा कराते रहनेसे ही उस मालकी बाजार पर धाक रहती है। यह बतानेके लिए कि कितने ही वर्षोंसे लोग हमारा ही माल काममें लेते हैं कुछ विज्ञापनोंमें कारखानेकी स्थापनाका वर्ष भी दिया जाता है। इन विज्ञापनोंको रक्षणात्मक विज्ञापन कहा जाता है। यह भी बताया जाता है कि दूसरा और नया माल बनानेवाले आक्रामक बनकर लोगोंको बाजारमें प्रवेश करानेके लिए ऐसे विज्ञापन दिये जाते हैं। व्यापार उद्योगमें विज्ञापनोंका महत्व बहुत माना जाता है। उत्पादक नई नई चीजें और नई नई सुविधायें पैदा करके लोगोंको उनका लाभ उठानेवाले बनायें, इसमें आर्थिक उन्नति मानी जाती है। इसलिए मालको मन लुभानेवाले और नई चीजें आजमानेकी प्रेरणा देनेवाले विज्ञापन देनेकी पद्धति एक विषयके रूपमें व्यापार विद्यालयों कॉलेजोंमें पढ़ाई जाती है। कुछ लोग तो आकर्षक भाषामें विज्ञापन लिख देनेका और विज्ञापनोंके लिए आकर्षक चित्र बना देनेका धंधा ही करते हैं। और यह भी कलाका एक अंग माना जाता है। लेकिन यदि सच्चे विज्ञापन दिये जाते हों तब तो हमें

उनके स्थानका विचार करना चाहिये। यदि हम इस सिद्धान्तको मान लें —और उसे मान लिये बिना कोई चारा ही नहीं—कि समाजको अपनी आर्थिक आवश्यकताओं पर अमल मर्यादा रखनी ही पड़ेगी तब तो सच विज्ञापनोंकी भी बहुत जरूरत नहीं रहती। परन्तु आजकल अधिकतर विज्ञापन तो झूठ ही होते हैं। हलके और कमजोर मालके ऊंचे गुणोंका बड़ा चढ़ा कर आकर्षक ढंगमें वर्णन करनेवाले झूठे विज्ञापनोंका क्या हो? आजकल अखबार सस्ते हो गये हैं और उनका लगभग पौना भाग विज्ञापनोंसे भरा होता है। और ये विज्ञापन क्या होते हैं? इन विज्ञापनोंकी अच्छी तरह छानबीन करके देखें तो अधिकतर विज्ञापन सिनेमाओंके नटियांके सुन्दर दिखनेके लिए लगाये जानेवाले पाउडरों और क्रीमोंसे बाल बनानेका दावा करनेवाले सुगन्धित तेलोंके चमड़ीको मुलायम बनानेका दावा करनेवाले साबुनोंके सफेद बालोंको काला करनेवाले और निकम्मे बालोंको उड़ानेवाले मरहमोंके सतति नियमनकी दवाइयों और साधनोंके गुप्त हुए मासिक धर्मको खोलनेके नाम पर परोक्ष रूपमें गर्भपातके उपाय बतानेवाली दवाओंके खोया हुआ पुरुषत्व फिर प्राप्त करानेकी और शक्ति बढ़ानेका दावा करनेवाली दवाओंके झूठे नकली गहनोंके फैन्सी कपड़ोंके और ऐसी तरहकी भोग विलासकी दूसरी चीजोंके होते हैं। इन विज्ञापनोंमें जो दावे किये जाते हैं वे शायद ही सच्चे होते हैं। परन्तु अर्थशास्त्री कहते हैं कि विज्ञापन अश्लील हों नीच वृत्तियां और अनीतिको उत्तेजन देनेवाले हों और धोखेबाजी करनेवाले हों तो उनके विरुद्ध कारवाई करनेका काम कानूनका है और उनके विरुद्ध प्रचार करनेका काम धर्म और नीतिका उपदेशकोंका है। ग्राहकोंको अच्छी तरह सावधान रहना चाहिये। वे क्या समझकर क्या ऐसी चीजें खरीदने जाते हैं? लेकिन अर्थशास्त्रीके लिए ऐसा कहकर अपनी जिम्मेदारीसे छूट जाना ठीक नहीं। समाजकी भलाई करनेकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक शास्त्रको ऐसी बातोंका विचार करना ही चाहिये और जो प्रथा समाजका अहित करनेवाली हो उसका विरोध करना ही चाहिये। अर्थशास्त्र इस विषयमें तटस्थ या उदासीन नहीं रह सकता।

१६ आजकल विज्ञापनों पर कितना अधिक खर्च होता है जिसके फलस्वरूप मालकी कीमत बढ़ती है और वह बोझा ग्राहकोंको उठाना पड़ता है इसके कुछ आंकड़े टण्ड आफ इकानामिक्स (सपादक आर० जी० टग्वेल) नामकी पुस्तकमें प्रकाशित दि आर्गेनिजेशन एण्ड कण्ट्रोल आफ इकानामिक एक्टिविटी नामक एस० एच० स्लिश्टरके लेखमें से नीचे दिये जाते हैं

फिलाडेल्फिया रिजर्व बैंकने अपने 'दि बिजनेस रिव्यू' नामक बुलेटिनमें इस बातके आंकड़े दिये हैं कि सन् १९२० में ३६ मुख्य अखबारोंमें छपे २५ प्रकारके मालके विज्ञापनों पर कितने डालर खर्च किये गये।

खान-पानकी चीजों पर १ करोड़ ४४ लाख, शरीर शृंगारके साधनों पर ९१ लाख, बिजलीके साधनों पर ८४ लाख, घरके साज-सामान पर ८० लाख, मोटरों तथा मोटरके सामान, टायर वगैरा पर २ करोड़, इमारती कामके सामान पर ६३ लाख, संगीतके बाजों पर ४१ लाख, दफ्तरकी चीजों पर २९ लाख, साबुन पर २८ लाख, जूतों पर २७ लाख, रंग रोगन पर २५ लाख, मशीनों और यन्त्रों पर २३ लाख, मोटर ट्रकों पर २२ लाख, जवाहरात पर २२ लाख, बनियान वगैरा पर २१ लाख, फर्नीचर पर १९५ लाख, पुरुषोंके कपड़ों पर १७५ लाख, स्त्रियोंके कपड़ों पर १६ लाख, ताजगी लानेवाले पेयों पर १४ लाख, खेतीके सामान पर १२५ लाख, खट्टी मीठी चीजों पर १२ लाख, कागज और स्टेशनरी पर १२ लाख और ट्रैक्टरों पर १२ लाख।

सन १९१५ से १९२० के बीचके समयमें विज्ञापनका खर्च कितना बढ़ता गया है यह बतानेके लिए कुल ७२ अखबारोंमें छपे विज्ञापनों पर खर्च हुई रकम इस प्रकार दी गई है :

१९१५	३८७	लाख	डालर
१९१६	५१८	"	
१९१७	५७३		
१९१८	६१३		
१९१९	९७२		
१९२०	१३२४		

इतना खर्च तो ७२ अखबारोंमें ही हुआ है। अमरिकामें तो हजारों अखबार चलते हैं और उनमें विज्ञापन छपते हैं। इसलिए यह सोचनेकी बात है कि विज्ञापनों पर कुल कितना अधिक खर्च हुआ होगा। फिर ये आंकड़े १९२० के हैं। उसके बाद तो यह खर्च बहुत ज्यादा बढ़ गया है। विज्ञापनोंमें इतना अधिक रुपया खर्च करनेके सिवा उनमें जो धोखेबाजी और झूठ रहता है वह अलग। जब तक मुनाफेके लिए और बड़े पैमाने पर उत्पादन होता रहेगा तब तक इस भयंकर बरबादीका समाज पर बोझ पड़ता ही रहेगा।

सट्टा

१ सट्टा बाजारका बहुत महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। सट्टे अनेक तरहके होते हैं और उनके अलग अलग अर्थ होते हैं। उसका मुख्य अर्थ यह किया जा सकता है: भावकी भविष्यमें होनेवाली तेजी या मन्दीके अनुमान पर वर्तमान और भविष्यके भावोंके बीचका फर्क मानकर किया हुआ वायदेका सौदा। अमुक मुद्दतके बाद भावकी तेजी होनेका अन्दाज हो तब उस मुद्दतके वायदेकी खरीदीका सौदा आजके भाव पर कर लेना या अमुक मुद्दतके बाद भावमें मन्दी आनेका अन्दाज हो तब उस मुद्दतके वायदेकी बिक्रीका सौदा आजके भावसे कर डालना और वायदेकी तारीख पर भावमें जो घटाबढ़ी हुई हो उसके अनुसार फर्ककी रकम देना या लेना — इसीका नाम सट्टा है। मान लीजिये कि रुईका भाव जनवरी महीनेमें २५० रु० खण्डी है। उस समय सौदा करनेवालेका अनुमान यदि यह हो कि इस वर्ष रुईकी फसल अच्छी नहीं होगी और इसलिए उसके भाव बढ़कर ३०० रु० तक पहुंचेंगे तो आज तय की हुई कीमत यानी २५० रु० के आसपासके भावसे तीन या चार महीनेके वायदे पर रुई खरीदनेका सौदा दूसरे असामी या सट्टेवालेके साथ वह कर लेगा। फिर अगर पहले सट्टेवालेकी धारणाके अनुसार रुईकी फसल अच्छी न हुई हो और वायदेकी मुद्दत पर भाव बढ़कर ३०० रु० खण्डी या उसके आसपास हो गये हों तो जिसके साथ २५० रु० या इसके आसपास रुई खरीदनेका सौदा कर रखा हो उससे रुईकी डिलीवरी लेकर बाजारके चढ़े हुए भावमें यानी ३०० रु० के आसपासके भावसे वह माल बेच डालेगा और दोनों भावोंके बीचके फर्क जितना नफा उसे मिल जायगा। *यदि पहले सट्टेवालेका अंदाज गलत निकले और फसल अन्दाजसे बहुत अच्छी* हो तो रुईके भाव घट जायेंगे। उस समय उसे तय किये हुए ऊँचे भाव पर रुईकी डिलीवरी लेकर वायदेकी तारीख पर बाजारमें चलनेवाले नीचे भाव पर रुई बेच डालनी पड़ेगी और दोनों भावोंके बीच रहे फर्क जितना नुकसान उसे होगा। लेकिन सट्टेके सौदोंमें इस तरह मालकी डिलीवरी लेकर फिर उसे बेचनेकी नौबत शायद ही कभी आती है। जिसके साथ

१ बंगाली मनकी एक खण्डी होती है।

वायदेका सौदा किया हो उस आदमीके साथ वायदेकी तारीख पर केवल भावका फरक लेनदेन कर लिया जाता है।

२ हमारे कल्पित उदाहरणमें यदि तेज मानेवाले इस तरह वायदेकी खरीदके लिए तैयार मालूम हों तो रुईका भाव फौरन बढ़ने लगता है याने कपासकी फसल कम होनेके बाद भाव एकदम बढ़ जायँ इसके बजाय फसल निकलनेके पहले ही भाव धीरे धीरे बढ़ने लगते हैं। इससे भावमें अचानक बढ़ने वाला फर्क नहीं होने पाता। इसके सिवा भाव बढ़ने जानेके कारण लोग रुई कम खरीदते हैं इसलिए फसल कम होनेसे रुईकी जो तंगी मालूम होनी चाहिये वह भी नहीं मालूम होती। इस तरह चढ़ते हुए भावका हिसाब लगाकर खरीद करनेवालोंको सट्टा बाजारमें तेजीवाले या तेजी करनेवाले (अंग्रेजीमें बुल्स कहते हैं क्योंकि सांड हमेशा ऊंचा सिर करके चलता है) कहा जाता है।

३ इसके विपरीत यों मान लीजिये कि सट्टेवालोंका ऐसा ख्याल कि फसल बहुत अच्छी होगी और इससे रुईके भाव गिर जायँगे तो वह अभीके चालू भावसे यानी २५० रु० खंडी या उसके आसपासके भावसे तीन चार महीनेके वायदे पर रुई बेचनेका सौदा दूसरे असामीके साथ कर डालेगा। अगर पहले सट्टेवालेकी धारणाके अनुसार कपासकी फसल खूब हो और तीन या चार महीने बाद रुईके भाव गिर कर २०० रु० खंडी पर आ जायँ तो जिसके साथ २५० रु० खंडी या उसके आसपास रुई बेचनेका सौदा किया हो उसे यह उतने दामों पर रुईकी डिलिवरी लेनेको कहेगा। परन्तु दूसरा आदमी डिलिवरी लिए बिना उस दोनों भावोंके बीचका फर्क ही चुका देगा। पहले सट्टेवालेका अन्दाज ठीक निकले तो उसे इस वायदेके सौदेसे फायदा होगा। बहुतसे सट्टेवाले इस तरह वायदेकी बिक्रीके लिए तत्पर मालूम हों तो भाव फौरन ही उतरने लगते हैं। इसलिए फसल अच्छी होनेके बाद भाव एकदम गिरें इसके बजाय इन सट्टेवालोंकी प्रवृत्तिके कारण भाव पहलेसे ही धीरे धीरे उतरने लगते हैं। इसके सिवा ज्यों ज्यों भाव उतरते जाते हैं त्यों त्यों लोग रुईकी खरीद ज्यादा करते जाते हैं और इससे अधिक उत्पन्न हुई रुईका माल पहलेसे ही खप जाता है। इस तरह उतरते हुए भावोंके हिसाबसे वायदेका बिक्री करनेवालोंको सट्टा बाजारमें मंदीवाले या मंदी करनेवाले (अंग्रेजीमें बीअर्स कहते हैं क्योंकि रीछ हमेशा नीचा सिर रखकर चलता है) कहा जाता है। इस प्रकारके सट्टे सामान्यतः उन चीजोंके किये जाते हैं, जिनके बाजार सर्वव्यापी होते हैं। तार और टेलीफोनके कारण इन सट्टोंके

लिए बहुत बड़ी सुविधा हो गयी है। लंदन, न्यूयॉर्क, बंबई, कलकत्ता आदिके टेलीग्राम द्वारा भावोंके उतार-चढ़ावके समाचार प्रतिदिन या प्रतिघंटे इन सारे बाजारोंमें घूम जाते हैं और उनके आधार पर सट्टे लग जाते हैं।

सट्टेका पूर्वपक्ष

४ सट्टेके बचावमें यह कहा जाता है कि उसके कारण मालकी पूर्ति और खपतके बीच मेल बैठाया जा सकता है और भावोंके उतार-चढ़ाव धीमे या क्रमिक बनाये जा सकते हैं। इसके कारण बाजारमें अचानक भारी उथल-पुथल नहीं होती और किसी व्यापारीका एकदम बड़ा घाटा नहीं होता। इसके सिवा ग्राहकों और उत्पादकों दोनोंको सट्टेबाजोंकी प्रवृत्तिसे लाभ होता है। सट्टेका व्यवस्थित और नियमित धंधा करनेवाले बुद्धिमान् व्यापारी दुनियाके अलग अलग हिस्सोंमें होनेवाली मालकी पैदावार और मालके उत्पादनके बारेमें पक्की जानकारी रखते हैं और ऐसे अनुभवी तथा निष्णात व्यापारी जो लिवाली या बिकवाली करते हैं, उससे बाजारका रुख और बाजारके भाव निश्चित होते हैं। इन सट्टेबाजोंकी प्रवृत्तिसे कारखानेदारोंको यह सूचना मिलती है कि उन्हें अपना जरूरी कच्चा माल कब खरीदना चाहिये और अपना तैयार माल कब बेचना चाहिये। इसके सिवा उनकी प्रवृत्तिके कारण भावोंमें एकदम उतार-चढ़ाव नहीं हो पाता, इससे ग्राहकोंको भी लाभ होता है।

५ आजकलके बड़े पैमानेके उत्पादनकी स्थिति यह है कि तैयार मालकी मांग होने और उस मालके बिकनेसे बहुत पहले ही उत्पादनका काम आरंभ हो जाता है। इसलिए उत्पादकोंके सिर पर भावके उतार-चढ़ावका खतरा तो स्वभावतः रहता ही है। सट्टेबाजोंकी दलील यह है कि ये खतरे हम उठा लेते हैं और उत्पादकोंको अपना काम निश्चित होकर करनेका मौका देते हैं। कपड़ेकी मिलवालोंको बड़ी मात्रामें रुई खरीदनी तो पड़ती ही है। रुई खरीद लेनेके बाद कपड़ा तैयार होने और बाजारमें बिकनेके लिए उसके जानेके बीच अमुक समय अवश्य जाता है। इतने समयमें अगर रुईके भाव चढ़ जायें तब तो मिलवालोंको बहुत फायदा हो, क्योंकि उनके कपड़ेके भाव रुईके चढ़े हुए भावके हिसाबसे निर्धारित होते हैं और रुई तो उनकी नीचे भावों पर खरीदी हुई होती है। परन्तु इतने समयमें रुईके भाव यदि घट जाय तो मिलवालोंको भारी हानि हो। क्योंकि रुईके गिरे हुए भावों पर ही कपड़ेके भाव निर्धारित होंगे। सट्टेबाज कहते हैं कि यह खतरा मिलवालोंके सिरसे उतार कर हम अपने सिर लेनेको तैयार होते हैं, क्योंकि आजके नियत किये हुए भाव पर आगेके वायदेका सौदा

करके उस समय उन्हें रुई इनके लिए हम बचत है। इस तरह भविष्यमें रुईका भाव कितना ही चढ या उतरे तो भी यदि मिलवालाने अपनी जरूरतकी रुईकी भविष्यकी खरीद भी आज ही भाव निश्चित करके कर ली हो तो इस भावके आधार पर वे कपडेके किसी भी थान व्यापारीके साथ अपना कपडा बचनका सौदा किसी तरहके खतरेके बिना अभीसे कर सकते हैं। क्योंकि भविष्यमें बने जानवाले कपडेमें कच्चे मालके रूपमें काम आनेवाली रुईका भविष्यका भाव भी उन्होंने अभीसे निश्चित कर लिया होता है। इसलिए इस कच्चे मालके भावमें आगे होनेवाले परजदरका असर उनके तैयार माल पर अर्थात उनके कपडे पर कुछ भी नहीं होता।

'हेजिंग कान्ट्रेक्ट'

६ मिलवाले अपने कच्चे मालके लिए इस तरहसे जो वायदेका सौदा कर लेते हैं उसे हेजिंग कान्ट्रक्ट कहते हैं। हेजिंग का अर्थ है बाड लगाना। खेतकी सुरक्षितताके लिए जैसे बाड लगाई जाती है वैसे ही अपने धंधेकी सुरक्षितताके खातिर इस तरहके वायदेके सौदेसे उत्पादक बाड लगा लेते हैं। मिलवाला जब अपने कपडेके लिए रुईकी खरीद करता है तभी कपडेके तैयार होकर बाजारमें बिकने जानेमें जितना समय लगनेवाला हो उतने समयके वायदेका रुईकी बिक्रीका सौदा भी वह कर रखता है। मान लीजिए कि यह मुद्दत चार महीनेकी हो और चार महीनेके बाद रुईके भाव बढ जायें तो उसकी सस्ते भावमें खरीदी हुई रुईसे बने हुए कपडेमें उसे हानि होगी। परन्तु इस हानिकी बराबरी उसके द्वारा किये रुईकी बिक्रीके सौदेसे उसे मिल जाती है। दूसरी ओर यदि रुईके भाव कम जायें तो रुईकी बिक्रीके सौदेमें तो उसे हानि होगी परन्तु इस हानिकी बराबरी उसके कपडेके ऊंचे भावों द्वारा मिल जाती है। इस तरह तैयार मालके उत्पादनके लिए आवश्यक कच्चे मालके भावमें होनेवाली उथल-पुथलसे मिलवालेके कार्यमें कोई बाधा नहीं पडती।

७ एक छोटेसे काल्पनिक उदाहरण द्वारा यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिए कि कपडेका एक छोटा कारखानेवाला उत्पादक १२००० रतल रुई ४ आने रतलके भावसे खरीदकर कपडा बनाना शुरू करता है। इस १२००० रतल रुईसे वह ४८००० वर्ग गज कपडा तैयार करता है। ऐसा करनेमें उसे चार महीने लगते हैं और अपने कपडेकी लागत कीमत उसे ४ आने गज पडती है। कपडेकी इस लागत कीमतमें १२००० रु० में से ५००० रु० तो रुईकी लागत कीमतके ही हैं। अब रुईके भावकी सम्भाव्य उथल-पुथलसे बचाव लिए इस उत्पादकको यदि हेजिंग करना हो तो उसे

१२००० रतल रुई चार महीनेके वायदेसे बेच रखना चाहिये। मान लीजिये रुईका वायदेका भाव ५ आना रतल है और इस भावसे वह सौदा कर रखता है। अब कपडा तयार होकर बाजारमें बिकने आये उस समय मान लीजिये रुईका भाव गिरकर ३ आने हो जाता है तो इसका असर कपडेके भाव पर होगा। मान लीजिये इस असरके कारण कपडेका भाव ३॥ आने गज हो जाता है। कारखानवालेको ४८००० गज कपडेकी लागत कीमत १२००० रु के बजाय ३॥ आनेके भावसे कुल १०५०० रु कीमत मिलेगी — यानी कपडेकी बिक्रीमें १५०० रु का घाटा होगा। इस घाटेके विरुद्ध उसने जो रुई ५ आने रतलके भावसे बेच रखी है उस पर उसे २ आने रतलका नफा होगा। यानी १२००० रतल रुई पर उसे १५०० रु नफा होगा। इस तरह उसका नफा और नुकसान बराबर हो जायगा।

८ अब इससे उल्टा परिस्थितिकी कल्पना करें। मान लीजिये कि रुईका भाव चढ़कर ६ आने रतल हो गया। तब उसने रुईका वायदेका जो सौदा ५ आनेसे कर रखा है उसमें उसे ७५० रु का नुकसान होगा। लेकिन रुईका भाव बढ़ जानेके कारण कपडेका भाव बढ़कर ४। आने या ४॥ आने गज होगा तो अपने कपडे पर उसे ७५० रु का या १५०० रु का नफा होगा। इस तरह उत्पादक सिर्फ कच्चे मालके बाजार भावोंकी उथल-पुथलके कारण नफा-नुकसानसे साफ़ बिना अपना धंधा अच्छी तरह चला सकेगा। बाजारमें सट्टेकी अर्थात् वायदेका सौदा करनेकी प्रथा हो तभी इस तरहके हेजिंग का लाभ उत्पादकको मिल सकता है।

सट्टेवालोंकी एक दलील यह भी है कि हम शेयरों और दूसरी तरह तरहकी जमानतों या सेक्युरिटियोंका सट्टा करते हैं इसीलिए नये नये उद्योग धंधोंमें पूंजी लगानेके लिए लोग आगे आते हैं। शेयरों और सेक्युरिटियोंके सट्टे होनेसे ही बाजारमें उनकी खरीद और बिक्री होती है और प्रतिदिन उनके भाव भी निकलते हैं। इससे किसी शेयर या सेक्युरिटी रखनेवालेको जब पैसेकी जरूरत हो तब उस शेयर या सेक्युरिटीको बेच कर वह अपनी रुकी हुई पूंजी निकाल सकता है। इस तरहकी सुविधा न हो तो एक बार शेयर या सेक्युरिटीमें पूंजी रोकनेके बाद पूंजीको निकालना बहुत कठिन हो जाय और पैसा हमेशाके लिए फंस जाय या जब जरूरत पड़े तब न मिल सके। उस हालतमें इस तरहके शेयर आदिमें सामान्य लोग पैसा रोकना पसन्द नहीं करेंगे। लोगोंके पास जो छोटी छोटी बचत होती है उनका प्रवाह भी आज जो उद्योगोंकी ओर मुड़ता है वह न मुड़ेगा।

सट्टेकी बुराइयां

९ ऊपरकी सब दलीलें लेखोंमें तो बड़ा सुन्दर मालूम होता है लेकिन दुनियाके किसी भी सट्टा-बाजारमें जाकर देखें तो वहां भाव नियमनके द्वारा या खपत और पूर्तिका मेल बठाकर जनताका भला करनेका वातावरण जरा भी नहीं पाया जायगा। वह बोलबाजी और जुएका ही बाजार दिखाई देगा। यह कहना कोई सार नहीं कि अलग अलग बाजार सट्टे उन उन चीजोंके बारेमें और पूर्ति व खपतके बारेमें संपूर्ण जानकारी रखनेवाले तथा बाजार पर उनके होनेवाले असरको पहचाननेवाले निष्णातों द्वारा होते हैं क्योंकि सट्टेवाले अधिकतर इन बातोंसे अनजान होते हैं। बिना विचारे साहस कर बैठनेकी वृत्ति उनका सबसे बड़ा गुण या दुर्गुण कहा जायेगा। उनमें कोई होशियार और जानकार होते हैं तो वे भी अधिकतर सही गलत या अच्छे-बुरेकी जांच करनेवाले और समाजके प्रति जिम्मेदारीका खयाल रखनेवाले नहीं होते। बाजारकी स्थिरता उनी रूई भावों पर नियमन हो और उत्पादकों तथा ग्राहकोंको सुविधा मिले इन सब विचारोंमें और उन लोगोंके कार्योंमें जमीन-आसमानका अन्तर रहता है। उनकी उडान भरी लालसा जल्दीसे जल्दी अधिकसे अधिक धन जमा करनेकी होती है और उनके सारे सौदोंमें इसी वृत्तिकी प्रेरणा होती है। इन सौदोंके पीछे जानकारी या परिपक्व विचार कभी काम नहीं करता बल्कि पूरी तरह जुआरीकी वृत्ति ही होती है। उनके सौदोंसे बाजारमें भावका किसी भी तरहका नियमन होनेके बदले बिना कारण भावमें उथल-पुथल होती है। अपनी अनुकूलताके अनुसार भावमें तेजी या मन्दी लानेके लिए वे तरह तरहकी अफवाहें बड़ी सिफतके साथ फैलाते हैं। गांधीजीने जल्दी उपवास शुरू किया है। 'सरकार उनके साथ समझौता करेगी। जर्मनी और रूसमें या जर्मनी और ब्रिटेनमें संधि हो जानेकी आशा है।' जर्मनकी बड़ी हार हुई है। युद्ध बन्द होनेवाला है। जापानका हमला होने ही वाला है —ऐसी ऐसी अनेक अफवाहें इन सट्टा बाजारोंमें उड़ाऊ दिमागसे निकलती रहती हैं। फिर एक आदमी गंभीर मुंह बना कर यह कह दे कि उसने समाचार सच है, तो सारे बाजारमें वह बात फैल जाती है और इससे फलस्वरूप भाव चढ़ जाते हैं या गिर जाते हैं। इन अफवाहोंसे भी बड़ी बुराई तो यह है कि भोले या अनजान मनुष्योंको जिन बातोंका जरा भी ज्ञान नहीं होता ऐसी बातें सुनाकर बाजारमें आनन्द मनानेका मौका दिया जाता है। ऐसा धन्धा अमरीकामें जारी रहता है। याद कीजिये कि बिना धन सट्टेबाजने गहरा धन सौदा

कर लिया है बाजारमें जितना गेहूं हो वह सब खरीद लिया है इसके अलावा वायदेका सौदा भी बडी मात्रामें कर रखा है। तो इस सट्टेवालेका स्वार्थ इसीमें है कि गेहूंके भाव तेजी पर रहें। परन्तु उसे पता चले कि गेहूंकी फसल बहुत अच्छा होनेकी संभावना है और अच्छी फसलके कारण बहुत बडी मात्रामें गेहूं बाजारमें आ जानेसे उसका भाव घट जायगा। तो ऐसे मौके पर यह सट्टेबाज गेहूंकी कुछ खडी फसल खरीद कर उसे नष्ट कर देता है जिससे अधिक गेहूं बाजारमें न आ सके और उसे अच्छा भाव मिल जाय। दूसरे बारेमें मेवेके बारेमें और रुईके बारेमें ऐसा होनेके कई उदाहरण सामने आ गये हैं। इसलिए सट्टेबाज और उनका पक्ष लेनेवाले अर्थशास्त्री सट्टेके कितने ही गुण गायें और समझायें कि उससे समाजको लाभ ही होता है फिर भी इसमें कोई शंका नहीं कि सट्टा किसी भी तरह समाजके लिए उपयोगी और आवश्यक धंधा नहीं है। वह निरा जुआ है।

१० सट्टेके बचावमें ऊपर जिस स्वरूपका वर्णन किया गया है वैसे शुद्ध रूपमें सट्टा चलता हो और उससे उत्पादकोंको हैजिंग करनेकी सुविधा मिलती हो तथा भावों पर नियंत्रण आदि भी रहता हो तो भी सट्टेकी प्रथासे भारी बिगाड या नुकसान है। क्योंकि भावका नियमन आदि होता हो तो भी वह बहुत लम्बी मुद्दतमें शायद हो सकता हो। परन्तु सट्टेकी प्रवृत्तिमें तो — वायदेके सौदेमें ही — जोखम या आकस्मिकताका तत्त्व बहुत अधिक होता है। फिर उसमें एक-दूसरेके अज्ञानका असावधानीका अविचारीपनका और कठिनाईका लाभ उठाकर अपना स्वार्थ साधनेका ही ध्येय रहता है। इसलिए लम्बी अवधिमें शायद कोई अच्छा परिणाम निकल आये तो भी उसके पहले बाधक कारण कई आदमी पिस जाते हैं और बरबाद हो जाते हैं। सट्टेका सारा कामकाज घातक प्रतिस्पर्धाके आधार पर चलता है और उससे समाजको उचित तथा आवश्यक अर्थप्रवृत्तिको जरा भी लाभ नहीं पहुंचता बल्कि उसमें रुकावट ही आती है।

८

उचित कीमत

१ एकाधिकार-कीमतवाले प्रकरणमें हमने देखा कि बड़े उत्पादक अपना संगठन खड़ा करके अपने मालके विषयमें एकाधिकार जैसी स्थिति पैदा करते हैं। वे अपने मालको उत्पादन-खर्चसे कहीं अधिक कीमत पर बेच सकते हैं। इसके अलावा मशहूर छाप और मार्कवाले मालकी कीमत भी उत्पादन-खर्चसे बहुत अधिक मिलती है। इसी तरह झूठे-सच्चे विज्ञापनोंसे लोगोंको जरूरी बनाये जानेवाले मालकी कीमत भी उत्पादन-खर्चसे बहुत अधिक मिलती है। इनमें तो ऐसी चीजें भी खूब खपती हैं जो सचमुच जीवनके लिए जरूरी न हों बल्कि हानि पहुंचानेवाली हों। सामान्यतः धनी लोगोंकी वस्तुओंमें और ज्यादा मौज-शौककी चीजोंमें खास तौर पर ऐसा होता है। दूसरी ओर लोगोंकी प्राथमिक आवश्यकताओंकी चीजोंके बाजार-भाव बहुत बार इतने ज्यादा नीचे रहते हैं कि उनके उत्पादकोंको यानी बहुत बड़े जन-समुदायको पेटभर खाना भी नहीं मिलता। इन दोनों उदाहरणोंमें खुला अन्याय है। हर चीजकी उचित कीमत आंकी जाय — यानी उसके उत्पादकको अधिक नफा तो न मिल सके लेकिन इतना जरूर मिल जाये कि वह अपने किये हुए परिश्रमके बदलेमें अपना जीवन अच्छी तरह बिता सके — तो ही आजकी आर्थिक असमानता, अन्याय और शोषण दूर हो सकता है। कौनसी कीमत उचित कही जाय और वह कीमत कैसे आंकी जाय इसकी चर्चा हम इस प्रकरणमें करेंगे।

२ हम देख चुके हैं कि चीजोंकी कीमत निश्चित होनेमें चीजकी उपयोगिता या आवश्यकता, चीजकी मांग, लोगोंकी खरीद-शक्ति और चीजके बनानेमें लगा हुआ उत्पादन-खर्च — ये सब तत्त्व काम करते हैं। पहले हम मांग और उपयोगिता या आवश्यकताका तत्त्व लें। मनुष्यको जब किसी चीजकी आवश्यकता या उपयोगिता होती है तभी वह उस चीजकी मांग करता है। परन्तु हम देख चुके हैं कि बाजारमें मांगका अर्थ कुछ दूसरा ही किया जाता है। मनुष्यको किसी चीजकी आवश्यकता चाहे जितनी हो और उस चीजकी मांग करनेकी उसकी इच्छा भी चाहे जितनी हो लेकिन वह चीज खरीदनेकी असली मांगको अमलमें लानेकी शक्ति उसमें हो तभी बाजारके व्यवहारमें वह मांग कहलाती है। पुराने अर्थशास्त्रियोंने मान लिया

था कि लोगोंके आर्थिक व्यवहारमें सरकारकी या समाजकी ओरसे किसी तरहका हस्तक्षेप न किया जाय तो अपनी आवश्यकताओंके अनुसार माग करनेकी शक्ति लोगोंमें अपने आप आ जायगी। समाजमें बिना किसी रोक टोकके आर्थिक प्रतिस्पर्धा होने दी जाय तो लोगोंकी सच्ची आवश्यकताओं और उनकी माग करनेकी शक्तिका —जिसे आर्थिक माग कहा जाता है— मेल अपने आप बैठ जायगा। यह तो जब होगा तब होगा यद्यपि खुली प्रतिस्पर्धासे या जैसा चल रहा है उस बरोकटोक चलने देनेकी नीतिसे ऐसा कुछ न होगा। फिर भी इन अर्थशास्त्रियोंने अपनी इमारत इस मान्यता पर खड़ी की है कि जिस चीजकी बाजारमें माग नहीं होती उसकी लोगोंको मानो आवश्यकता ही नहीं होती यह चीज लोगोंको चाहिये ही नहीं।

३ जैसे यह कहना या मानना भूल है कि जो आदमी किसी चीजकी आर्थिक माग नहीं कर सकता उसे वह चीज नहीं चाहिये उसी तरह यह मानना भी ठीक नहीं कि जो आदमी आर्थिक माग अधिक जोरसे कर सकता है उसे उस चीजकी बहुत तीव्र आवश्यकता होती है। कमजोर खरीद शक्तिवालोंकी आर्थिक माग जोरदार नहीं होती और किसी मनुष्यकी आवश्यकता बिलकुल मामूली होने पर भी यदि उसकी खरीद शक्ति अधिक हो तो बाजारमें उसकी मागका जोर अधिक होता है। गरीब और धनवान दोनों बाजारमें दस दस रुपये खर्च करें तो चीजोंकी बिक्री और उत्पादन पर तो उसका एकसा ही असर पड़ेगा परन्तु उन रुपयोंसे गरीब मनुष्य अपने सारे महीनेकी और खूब महत्त्वकी आवश्यक चीजें खरीदेगा जब कि धनी मनुष्य उनसे दसवें हिस्सेकी भी आवश्यक चीजें नहीं खरीदेगा। हा दोनों जो चीजें खरीदेंगे उनके दाम उन्हें एकसे ही देने पड़ेंगे। गरीब मनुष्य अपने बच्चेके लिए दूध खरीदना चाहता हो और धनी मनुष्य अपने कुत्तेके लिए दूध खरीदना चाहता हो तो भी दोनोंकी मागका असर दूधकी बाजार-कीमत पर तो एकसा ही होगा। ऐसा भी हो सकता है कि धनवान मनुष्यकी विशेष खरीद शक्तिके कारण दूधकी मागकी प्रतिस्पर्धामें कुत्तेके लिए की जानेवाली दूधकी माग बच्चेके लिए की जानेवाली दूधकी मागको पीछे ढकेल दे। गरीब मनुष्य अपने बच्चेके लिए दूध खरीदे बिना रह जाय और धनी अपने कुत्तेके लिए दूध ले जाय। जहा खरीद शक्तिमें इतनी असमानता हो वहा अमुक मनुष्योंकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओंको यानी उनकी सच्ची और अधिक तीव्र मागोंको दूसरे मनुष्योंकी फालतू आवश्यकताओं और अनावश्यक मागोंके साथ समान स्तर पर मुकाबला करना पड़ता है।

इसलिए मनुष्य किसी चीजकी कितना कीमत देनको तयार है इसके आधार पर उसकी माग या आवश्यकताकी तीव्रता माप न्यायी जाय तो वह भूल होगी। लेकिन बाजारमे यह भूलभरी पद्धति ही प्रचलित है और उसका असर उत्पादन पर भी होता है। समाजकी सच्ची और महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओंका उत्पादन काफी मात्रामे करनेके बजाय ऐसी चीजे बनानेकी तरफ ही उत्पादक झुकते हैं जिनकी माग बाजारमे अधिक होती है जिनकी कीमत अधिक मिल सकती है और जिनसे अधिक नफा हो सकता है। इससे समाजके बहुत लोगोको जीवनकी आधारभूत चीजोंकी भी तंगी भुगतनी पडती है और समाजके थोडेसे लोगोंके लिए ऐश-आराम और भोग विलासकी चीजोसे बाजार भरे हुए दिख जाते हैं।

४ अब हम दूसरे तत्त्वका यानी उत्पादन खर्चका विचार करें। ऊपर कहा जा चुका है कि हमारे देशमें किसानोंको अपनी फसलके बाजार भाव उनके उत्पादन खर्चके बराबर भी नही मिल पाते। जी-तोड श्रम करने पर भी किसानोंको कगाली और कर्जदारीका जीवन बिताना पडता है। यही स्थिति हमारे देशमें पशुपालकोंकी है। हमारे देशमें ढोरोंकी और उन्हे पालनेवाले ग्वालोंकी स्थितिको देखें तो स्पष्ट पता चलता है कि जिस भावसे बाजारमे घी बिकता है उस भावमें घी बनानेवाले पशुपालकोंका और उनके ढोरोंका अच्छी तरह निर्वाह नहीं होता। खादी उद्योगमें कातनेवालोंको कमसे-कम आठ आना रोज मजदूरी देना निश्चित किया। उससे पहले खादी मिलके कपडेसे महगी होने पर भी कातनेवालोंको मुश्किलसे १॥ आना रोज मिलता था। बाजार कीमतवाले प्रकरणमें हमने कहा है कि किसी भी चीजका बाजार-दाम लम्बे समय तक उसके उत्पादन-खर्चसे बहुत अधिक या बहुत कम नहीं रह सकती। इस नियमको मिल मालिक और बडे कारखानेदार अपने संगठनसे झुठलाते हैं और उत्पादन-खर्चसे बहुत अधिक भाव लेते हैं। दूसरी तरफ किसानों, पशुपालकों और ग्रामोद्योग करनेवालोंके बारेमें यह नियम दूसरी तरहसे झूठा सिद्ध होता है। उन्हे अपने श्रमसे पेटभर खानेको भी नहीं मिलता। अर्थशास्त्री तो कहते कि इन लोगोके लिए यह धंधा आर्थिक दृष्टिसे लाभप्रद सिद्ध नहीं होता हो इनमें से उन्हें पेट भर खानेको न मिलता हो तो वे इस धंधेको छोड दें और दूसरा धंधा करें। पर सच बात तो यह है कि वे लोग अपना धंधा छोड दें, तो उन्हें कोई दूसरा धंधा मिल भी नहीं सकता। धंधा छोडने पर अगर ही निराश उन्हें भूखा मरनेकी नौबत आ जाय। इसलिए निर्वाह न होने पर भी उन्हें वही धंधा जारी रखना पडता है।

५ फिर भी ऐसा नहीं लगता कि आजकी बाजार कीमतमें रहे इस अन्यायके बारेमें समाजकी आत्मा जाग उठी हो। शहरमें बहुत अच्छी स्थितिमें रहनेवाले लोग जिन्हें रुपये-पैसेकी कोई परवाह नहीं होती जब दूरके गांवोंमें जाते हैं तो वहां दूध, सागभाजी या वहींके पैदा हुए फल बहुत सस्ते मिलने देखकर खुश हो जाते हैं। या शहरमें भी जब घी-दूधके या अनाजके भाव उतर जाते हैं, सागभाजी बहुत सस्ती हो जाती है तो वे प्रसन्न होते हैं। लेकिन उन्हें यह विचार नहीं आता कि ऐसे नीचे भावमें इन चीजोंके उत्पादकोंको क्या मिलता होगा? उन्हें अपना माल इस भावमें बेचकर क्या फायदा होता होगा? क्या सचमुच इस भावसे उन्हें उत्पादन-खर्च जितना भी — किये हुए श्रम जितना भी मिल जाता होगा? जो लोग चाहे जैसी निकम्मी चीजोंमें केवल कौतुकके खातिर हजारों रुपये उड़ाते देखे जाते हैं, वे भी लाचारीमें फंसे हुए गरीब लोगोंसे घी, दूध, सागभाजी या अनाज सस्ते भावमें लेनेकी कोशिश करते हैं और सस्ता लेकर खुश होते हैं। ऐसे लोगोंके पास खादी या ग्रामोद्योगकी कोई चीज ले जायी जाती है तब वे कहते हैं कि यह तो मिलकी या मशीनकी बनी हुई चीजसे महंगी है। परन्तु जिसे दूसरा कोई काम नहीं मिलता उसने यह चीज बनाई है, इससे उसे मुश्किलसे साल भरको मिलता है — बस मिलना इतना चाहिये कि उसका जीवननिर्वाह अच्छी तरह हो सके — तब फिर उन्हें ऐसा क्यों लगना चाहिये कि इस चीजकी कीमत ज्यादा है, यह चीज महंगी है? आज दुनियाके सभी देशोंमें यदि कोई बड़ेसे बड़ा आर्थिक प्रश्न हो सकता है तो वह यह है कि प्रत्येक मनुष्यको काफी काम दिया जाय, समाजके लिए उपयोगी सिद्ध हो ऐसा काम दिया जाय। यह न्यायकी बात है कि काम करके समाजके उपयोगमें आनेवाली चीजें बनानेवालोंको निर्वाहके लिए पूरा पारिश्रमिक मिलना चाहिये। किसी चीजके बाजारमें सस्ती मिलनेसे खुश न होना चाहिये बल्कि यह देखना चाहिये कि इस चीजके बनानेवालेको पूरा पारिश्रमिक मिल जाता है या नहीं। चीजकी कीमत निश्चित करनेमें यह विचार मुख्य होना चाहिये। देखना यह नहीं है कि चीज महंगी है या सस्ती, बल्कि यह देखना है कि उसकी कीमत उचित है या नहीं। खादी और ग्रामोद्योगोंकी हिमायत करते हुए गांधीजीने उचित कीमतका और जीवननिर्वाह हो सके इतने पारिश्रमिकका सिद्धान्त समाजके सामने रखा था। हमारे देशके करोड़ों मनुष्यों पर जबरन लादी हुई बेकारी मिटानेके उपाय सोचते हुए गांधीजी इस सिद्धान्त पर पहुंचे थे। किसी भी उपयोगी चीजका

कीमत इतनी तो होनी ही चाहिये जिससे बनानेवालेको इतना पारिश्रमिक मिल जाये कि उसका निर्वाह अच्छी तरह हो सके।

कार्ल मार्क्सका श्रम-मूल्यका सिद्धान्त

६ वैज्ञानिक समाजवादके प्रणेता कार्ल मार्क्स पूंजीपति मजदूरोंका कैसे शोषण करते हैं इसकी छानबीन करते हुए इसी सिद्धान्त पर सौ वर्ष पहले पहुंचा था। उसने इस सिद्धान्तको दूसरी तरहसे रखा है। वह कहता है कि किसी भी चीजकी कीमत उस चीजके बनानेमें लगे हुए श्रम परसे आंकी जानी चाहिये। इसे श्रम-मूल्यका सिद्धान्त (लेबर थियरी आफ वैल्यु) कहा जाता है। इस सिद्धान्तका कार्ल मार्क्सने जो लम्बा विवेचन किया है उसमेंसे मुख्य और मूल बात ही थोड़ेमें यहां दी जाती है। उदाहरण कार्ल मार्क्सके लिये हुए ही लिये गये हैं।

७ मान लीजिये कि गेहूंका विनिमय लोहेके साथ करना है। गेहूंकी एक खास मात्राको लोहेकी एक खास मात्राके समान मूल्यका माना जाय तो इस आधार पर दोनोंका विनिमय हो सकता है। ऐसा करनेके लिए इन दो चीजोंमें कोई समान तत्त्व होना चाहिये, जिससे हम इन दोनों चीजोंका विनिमय-मूल्य निश्चित कर सकें। एक समान तत्त्व तो इन दो चीजोंके भीतर रहा है। वह तत्त्व है उनकी उपयोगिताका। परन्तु इन दो चीजोंकी उपयोगिता भिन्न प्रकारकी है। इसलिए इस तत्त्वके आधार पर दो चीजोंका मूल्य नहीं आंका जा सकता। इन दो चीजोंमें दूसरा एक समान तत्त्व है उनके उत्पादनमें लगे हुए श्रमका। एक टन गेहूं पैदा करनेमें जितना श्रम लगे उतने ही श्रममें जितने टन लोहा पैदा किया जा सकता हो उतने टन लोहेका एक टन गेहूंके साथ विनिमय होना चाहिये। मान लीजिये कि एक टन गेहूं पैदा करनेमें मनुष्यका जितना श्रम लगता है उतने श्रमसे दो टन लोहा पैदा हो सकता है, तो एक टन गेहूंका मूल्य दो टन लोहेके बराबर हुआ और इस हिसाबसे इन दो चीजोंका विनिमय किया जाय तो वह सबका न्यायसंगत होगा।

८ बिलकुल मूल और छोटे प्राथमिक स्थितिवाले समाजमें ऊपर बतायी हुई स्थिति ही होगी और बिलकुल न्यायपूर्ण ढंग पर विनिमय होगा। आज भी गृह-उद्योगों या ग्रामोद्योगोंकी उत्पादन-पद्धतिवाले समाजमें एक व्यक्ति या कुटुम्ब अपनी तैयार की हुई वस्तुका दूसरे मनुष्य या कुटुम्बकी बनाई हुई वस्तुके साथ इसी आधार पर यानी चीजके बनानेमें लगे हुए श्रमके

आधार पर विनिमय करता है। ऐसे समाजमें किसी चीजका उत्पादन करनेमें लगा हुआ श्रम उस चीजका मूल्य ठहरानेके साधारण माप या गजका काम दे सकता है। परन्तु कारखानोंकी उत्पादन-पद्धति और व्यापारिक पद्धति पर चलनेवाले समाजमें मजदूरकी बनाई हुई चीज उसके पास होती ही नहीं। उसके विनिमयका काम इस मजदूरको करना ही नहीं पड़ता। उत्पादनका काम करनेवाले और विनिमयका काम करनेवाले व्यक्ति या मंडल भिन्न होते हैं। इसके सिवा चीजें पैदा करनेमें अलग अलग प्रकारका काम करनेवाले अनेक लोगोंका सहयोग होता है। बहुतसे मनुष्योंके संयुक्त श्रमसे जो चीज बनती है उसमें जो कुछ विनिमय मूल्य होता है उस विनिमय मूल्यमें से किसने कितना विनिमय मूल्य उत्पन्न किया यानी किसके श्रमका कितना हिस्सा दिया यह तय करना कठिन होता है। क्योंकि श्रम भी अलग अलग प्रकारका होता है। कुछ अकुशल श्रम होता है कुछ कुशल श्रम होता है कुछ देखरेख रखनेका श्रम होता है और कुछ योजना बनानेवालेका श्रम होता है।

९ इस समस्याका जो हल पुराणपंथी अर्थशास्त्री बताते हैं उससे *उलटा ही हल कार्ल मार्क्स बताता है और सिद्ध करता है कि पुराणपंथी* अर्थशास्त्रियों द्वारा बताया हुआ हल मजदूरोंका शोषण करनेवाला है। पुराणपंथी अर्थशास्त्री चीजके उत्पादनमें लगे हुए श्रमका महत्त्व कच्चे माल और मशीनों औजारों मकानों वगैरा साधनोंके बराबर ही गिनते हैं। जैसे कच्चे मालकी कीमत और साधनोंकी घिसाई उत्पादन-खर्चमें गिनी जाती है वैसे ही श्रमकी कीमत भी वे उत्पादन-खर्चमें गिनते हैं। वे कहते हैं कि श्रमको भी दूसरी चीजोंकी तरह बाजारकी चीज मानना चाहिये और उसकी कीमत उसके उत्पादन-खर्च परसे आँकी जानी चाहिये। इसलिए मजदूरको टिके रहने और काम कर सकनेकी स्थितिमें जीनेके लिए जो खर्च होता है उतना पारिश्रमिक मजदूरको देना चाहिये। उत्पादनके काममें कुशल कारीगर और विशेषज्ञ लगे हों तो चूंकि उन्होंने कुशलता और ज्ञान प्राप्त करनेमें अधिक समय लगाया है और इसके लिए उन्होंने अधिक पैसा खर्च किया है इसलिए उनके कामकी कीमत ज्यादा मानी जानी चाहिये। और इस तरह कच्चा माल साधन श्रम आदिका सारा खर्च लगा कर चीजकी कीमत यदि इस खर्चसे ज्यादा मिले तो उस प्रबंधककी योजना शक्ति दूरदर्शिता चीजकी माँग कितनी होगी इसका अंदाज लगानेकी कुशलता, माँग काफी न हो तो माँग पैदा करनेके लिए की जानेवाली खटपट

और चीजके उत्पादनमें किया गया माहस इन सबके बदलेके रूपमें उसका नफा मानना चाहिये।

१० मार्क्स इस नफेको उचित या न्यायपूर्ण नहीं मानता परन्तु अनायास मिला हुआ मानता है और इस पूंजीपति प्रबन्धक द्वारा किया हुआ मजदूरोंका शोषण कहता है। उसकी विचारसरणीके अनुसार नफे जैसी कोई चीज ही नहीं होनी चाहिये। वह कहता है कि उत्पादनके कार्यमें प्रबन्धकने सचमुच कोई हिस्सा लिया हो तो अन्य लोगोंकी तरह उसे भी पारिश्रमिक मिलना चाहिये। वह बताता है कि इस नफेका कारण तो दूसरा ही है।

११ मार्क्सकी दलील यह है कि श्रम कच्चे माल या दूसरे साधनोंकी तरह कोई जड़ वस्तु नहीं है। कच्चे माल और साधनोंसे तो आप एक निश्चित परिणाम ही पैदा कर सकते हैं जब कि मजदूरोंका श्रम खरीदनेके बाद आप उसका अधिक उपयोग भी कर सकते हैं और थोड़ा उपयोग भी कर सकते हैं। पूंजीपति प्रबन्धक श्रमकी जो कीमत चुकाता है उससे अधिक काम मजदूरसे बराबर उसके श्रमसे अधिक उत्पादन कर ले तो उसे उतना नफा होगा और कम काम ले तो उसे उतना नुकसान रहेगा। परन्तु प्रबन्धक मजदूरोंसे उन्हें दिये गये पारिश्रमिकसे ज्यादा काम करा लेनेकी चिन्ता रखता ही है। उत्पादनके सब साधन उसके हाथमें होते हैं और मजदूरोंकी संख्या अधिक होनेके कारण उन्हें काम पानेकी बड़ी गरज होती है, इसलिए प्रबन्धक मजदूरोंसे अपनी शर्त पर काम करा सकता है। मजदूरको वह जितना पारिश्रमिक देता है उससे अधिक मजदूरके कामसे वह उत्पन्न कर ही लेता है। मजदूरके श्रमकी सच्ची कीमत इस बात परसे नहीं आंकी जा सकती कि उसे मुश्किलसे अपना जीवन निर्वाह करनेके लिए कितना चाहिये यह कीमत इस बात परसे आंकी जानी चाहिये कि उसके श्रमसे उत्पन्न हुई वस्तुकी बाजारमें क्या कीमत आती है। परन्तु पूंजीपति तो मजदूरके श्रमको मुश्किलसे चलनेवाले जीवन निर्वाहकी कीमत पर खरीद लेता है और उसे चीजकी कीमत तो बाजारमें इससे अधिक मिलती है। यह अधिक कीमत उसे बिना अधिकारके मिलती है। मार्क्सके अनुसार कहा जायगा कि पूंजीपतिने उतना मजदूरका शोषण किया है।

१२ पूंजीपति यह शोषण किस तरह करता है इसके लिए मार्क्सका दिया हुआ उदाहरण ही यहां लेंगे। मान लीजिये कि १० रतल रूईका सूत कता जाता है। रूईकी कीमत २½ डालर पड़ती है और कातनेकी क्रियामें मशीनों वगैराकी जो घिसाई हो उसकी कीमत पचास सेण्ट यानी ½ डालर मान लें।

इस तरह व ेचे मालकी कीमतर और मशीना वगराकी घिसाईके मिलाकर कुल ५ डालर हागे। मान लीजिय कि मशीन पर १$\frac{2}{3}$ रतल सूत प्रतिघण्टा कतता है। इस तरह दस रतल सूत कातनमें (६×१$\frac{2}{3}$=१०) ६ घण्टे लगते ह।

१३ माक्सन दूसरा अनुमान यह लगाया है कि कातनवाले मजदूरका निवाह ७५ सेण्टम चल जाता है। इसलिए उसका श्रमका उत्पादन-खच ७५ सेण्ट मानकर उसे इतना पारिश्रमिक दिया जाता है। २$\frac{1}{2}$ डालर रुईकी कीमत ५० सेण्ट तथा वगराकी घिसाईके और ७५ सण्ट कातनवालेके पारिश्रमिकके — इस तरह कुल मिलाकर १० रतल सूतका उत्पादन-खच ३ ७५ डालर और एक रतल सूतका ३७$\frac{1}{2}$ सण्ट होता है। अगर पूजीपति इसी भाव पर सूत बचे ता उसके हाथ कुछ भी न लगगा। लेकिन वह इतना भोला नहा होता कि लागाको सूत मुहैया करनकी सवावृत्तिसे अपनी पूजी इस कामम लगाय और सूत कतवान और बचनकी थझटमें पड़। इसलिए वह तो नफा कमानका प्रयत्न करता ही है। उसन तो उस कातनवाले मजदूरके सारे दिनके श्रमको खरीद लिया है। इसलिए वह उससे जितने अधिक घण्टे काम करा सकता है कराता है। मान लीजिय वह १२ घंटे काम कराता है। तो इतने समयमें १२×१$\frac{2}{3}$=२० रतल सूत मशीन पर कतवाया जा सकता है। २० रतल रुईकी कीमत ५ डालर तथा मशीन वगराकी घिसाई १ डालर और चूकि २ रतल सूत वह ७५ सेंटके पारिश्रमिकमें ही कतवा लेता है इसलिए पारिश्रमिकके ७५ सेंट मिलकर कुल ६ ७५ डालरमें पूजीपतिको २० रतल सूत मिलता है। और उसे वह ३७$\frac{1}{2}$ सेंट प्रति रतलके भावसे यानी कुल ७ ५ डालरमें बचता है। इस तरह एक मजदूरके कामसे उसे ७५ सेंट अतिरिक्त मिलते ह। २ रतल सूतका उत्पादन-खच ६ ७५ डालर था। उसमें बजाय पूजीपतिने उसके ७ ५० डालर उपजाय। इस अतिरिक्त कीमतको काल माक्स अतिरिक्त मूल्य (सप्लस वेल्यू) कहता है।

१४ या देखें तो हमने रुईकी कीमत ५ डालर गिनी है इसमें रुईका उत्पादक यदि पूजीपति हो तो इसमें उसे अतिरिक्त मूल्य मिला ही होगा। मान लीजिये कि २ रतल रुई पैदा करनमें ४० घंटेका श्रम लगता है। तो पूजीपति मजदूरको १२ घंटेके कामके ७५ सेंटके हिसाबसे $\frac{४० \times ७५}{१२}$ = २५० सेंट यानी २॥ डालर देगा। इसके सिवा जमीनका भाड़ा और औजारो वगराके खचके १५० सेंट मान ल तो कुल खच ४ डालर होता है। उसके वह ५ डालर पैदा करता है। इस तरह इसमें भी

उसे १ डालरका अतिरिक्त मूल्य मिला ही होगा। बात यह है कि दुनियामें इस समय जितनी सम्पत्ति है—उत्पादनके साधन कारखानाके तथा रहनेके मकान, साज-सामान पहनने-ओढनेके कपड़े कच्चा माल—वह सब किसी न किसी समय किये गये श्रमका ही फल है। परन्तु मजदूरको अपने निवाहके लिए और घरबार चलानेके लिए प्रतिदिन जितने घंटे श्रम करना चाहिये उससे अधिक घंटे उससे काम करवाकर या दूसरे शब्दोंमें जितने घंटे उससे काम करवाया हो उतने घंटेके उचित पारिश्रमिकसे कम देकर और अतिरिक्त आमदनी पूंजीपतिने बटोर कर सम्पत्ति या पूंजीके रूपमें अपने अधिकारमें कर रखी है। इसीलिए आज उत्पादनके सब तरहके साधन और दूसरी अनेक प्रकारकी सम्पत्ति थोड़ेसे पूंजीपतियोंके हाथमें है और मजदूरोंके पास अपने हाथ-पैरों और श्रम करनेकी शक्तिके सिवा कुछ भी नहीं रहा है। रोज जैसे जैसे मजदूर श्रम करता जाता है वैसे वैसे उसका शोषण होता जाता है क्योंकि उसका उत्पन्न किया हुआ अतिरिक्त मूल्य पूंजीपति हड़प करता जाता है।

१५ मार्क्सके इस सिद्धान्तके बारेमें एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये। वह इस बातको स्पष्टता नहीं करता कि इस सिद्धान्तसे आजकलकी अर्थ व्यवस्थाके अनुसार बाजार-कीमत कैसे निश्चित होती है। क्योंकि चीजको उत्पन्न करनेमें लगे हुए श्रम घंटों चीजकी कीमत आंकी जानी चाहिये इस सिद्धान्तके अनुसार तो उपरोक्त उदाहरणमें २० रतल सूतकी कीमत पौने पांच डालर ही होनी चाहिये थी। परन्तु मार्क्स चालू बाजार-कीमतकी स्पष्टता नहीं करता। वह तो उचित कीमतका सिद्धान्त पेश करके इतना ही बताता है कि पूंजीपति किस तरह मजदूरका शोषण करता है। उसके कहे अनुसार तो मजदूरसे कम घंटे काम लेना चाहिये। उसके श्रमकी कीमतके जितना उत्पादन जितने घंटोंमें हो सके उतने ही घंटे उससे काम कराना चाहिये अथवा उससे अधिक घंटे काम कराया जाय तो जो अतिरिक्त आय होती है वह पूंजीपतिको नहीं मिलनी चाहिये या तो वह मजदूरको मिलनी चाहिये अथवा पूंजीके रूपमें या बचतके रूपमें सार्वजनिक हितके लिए उसका उपयोग होना चाहिये।

१६ मार्क्सके श्रम सिद्धान्तके खिलाफ कुछ आपत्तियां उठाई जाती हैं। अब हम उन पर विचार करें। एक तो यह कहा जाता है कि इसमें श्रमका कोई निश्चित अर्थ नहीं किया गया है। मानसिक अथवा बौद्धिक श्रम और शारीरिक श्रम इन दोनोंकी तुलना किस तरह की जाय? बौद्धिक श्रममें भी

बढ़िया घटिया जैसे कई प्रकार होते हैं। शरीर-श्रम भी अकुशल मनुष्यका हो सकता है कुशल मनुष्यका हो सकता है शरीरसे बलवान मनुष्यका हो सकता है या निर्बल मनुष्यका हो सकता है। श्रमके इन भिन्न भिन्न प्रकारोंकी कीमत किस तरह आंकी जाय? सिर्फ कामके घंटे परसे कामकी कीमतका माप नहीं लगाया जा सकता। कोई मनुष्य कम घंटे श्रम करके भी समाजके लिए बहुत उपयोगी काम कर सकता है और कोई मनुष्य अधिक घंटे काम करके भी शायद उपयोगी काम न कर सके। दूसरी आपत्ति यह है कि इस सिद्धान्तमें गलत ढंगसे काममें लिये गये श्रमका कुछ भी विचार नहीं किया गया है। मान लीजिये कि एक कारखाना खड़ा किया गया लेकिन योजना और अन्दाजकी भूलसे यह कारखाना बेकार साबित हुआ तो इसमें लगे हुए श्रमका क्या किया जाय? तीसरी आपत्ति यह है कि चीज तैयार होनेके बाद फैशन बदल जानेके कारण या उसके उपयोगके बारेमें लोगोंके विचार बदलनेके कारण उस चीजकी मांग न रहे या बहुत घट जाय यानी उस चीजका उपयोग मूल्य कम हो जाय तो क्या किया जाय?

१७ *आज ऐसी कोई हानि हो तो उसे पूरा करनेकी जिम्मेदारी* पूंजीपति या प्रबंधक अपने सिर पर ले लेता है और इसीलिए वह अपनेको नफेका अधिकारी मानता है। लेकिन पूंजीपतियोंकी यह जिम्मेदारी समाजको भारी पड़ सकती है। क्योंकि उन्हें हानि तो कभी-कभार ही होती होगी परन्तु कुल मिलाकर नफा ही अधिक होता है और उस अधिक नफेकी कोई सीमा नहीं होती। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस छोटेसे वर्गके पास पूंजी और संपत्तिका इतनी अधिक मात्रामें एकत्र हो जाना है।

१८ *और ऊपर जो आपत्तियां बताई गई हैं वे तो आजकलके पूंजीवादी* अर्थोत्पादनमें ही पैदा होती हैं। मार्क्सकी विचारसरणीके अनुसार अर्थोत्पादन व्यक्तियोंके अपने लाभके लिए नहीं परन्तु समाजकी आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए होना चाहिये। पहले तो सारे उत्पादनको योजनापूर्वक व्यवस्थित बनाकर नियंत्रित करना चाहिये। समाजकी सारी आवश्यकताओंका ठीक ठीक अंदाज लगाकर उनके महत्त्वके अनुसार क्रमशः उनके उत्पादनकी योजना तैयार करनी चाहिये। इस तरह पहलेसे योजना बनाकर तैयारी की हुई चीजोंकी मांगके बढ़ने या घटनेका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। जो चीज तैयार हो उस चीजके लिए और उसके मूल्यके लिए सारे समाजकी जिम्मेदारी होगी। इसलिए भूलसे निकम्मी या कम उपयोगकी चीज तैयार हो गई हो तो उसकी हानि सारा समाज भुगत लेगा। इस व्यवस्थामें उत्पादक अपने नफे या स्वार्थके लिए

काम नहीं करते बल्कि समाजके जिम्मेदार लोगों द्वारा निश्चित की हुई योजनाके अनुसार सारे समाजके लिए काम करते हैं।

१९ अलग अलग प्रकारके श्रमकी कीमत आंकनेमें पैदा होनेवाली कठिनाइयोंका हल मार्क्स यह बताता है कि समाजकी नई रचनामें किसी चीजके उत्पादनके कार्यमें लगे हुए सब आदमी अपने अपने स्वार्थके लिए खींचतान करनेवाले अलग अलग मजदूर व्यक्ति नहीं होंगे परन्तु सारे समाजकी भलाईके लिए एक-दूसरेके साथ सहयोगसे काम करनेवाला एक विराट शरीर मजदूर-समुदाय होगा। मजदूर व्यक्ति इस विराट मजदूर-समुदायके विभिन्न अवयव जैसे होंगे। तैयार की हुई चीजमें जो मूल्य रहता है वह इस विराट मजदूर समाजके सहयोगी श्रमका सामुदायिक फल होगा। इसलिए इस मूल्यको या दूसरे शब्दोंमें कहें तो उत्पादनके पारिश्रमिकको यह मजदूर समाज अपने अंगभूत मजदूरोंमें बराबरीसे या उनकी आवश्यकताके अनुसार बांट देगा। दुनियामें आज तक अस्तित्वमें आई हुई सारी उत्पादन-पद्धतियोंका संपूर्ण इतिहास जांच कर कार्ल मार्क्सने यह सार निकाला है कि अब समाज इस ध्येय पर पहुंचनेवाला है कि सारे समाजके लिए आवश्यक सम्पत्तिका भण्डार उत्पन्न करनेके लिए सब अपनी अपनी शक्तिके अनुसार काम करें और सब अपनी अपनी आवश्यकताके अनुसार लें।

२० परन्तु जब तक समाज इस ध्येय तक नहीं पहुंचता तब तक क्या हो? अथवा समाजको इस ध्येय तक कैसे पहुंचना चाहिये? हम आगे देखेंगे कि कार्ल मार्क्सका उपाय हिंसक क्रांतिके द्वारा राज्यसत्ताको हाथमें लेकर उसके मारफत वैयक्तिक पूंजीका नाश करनेवाला है। उससे बचनेका एक उपाय समाजको गांधीजीने भी बताया है। इस पर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

९

द्रव्य

वस्तु विनिमय

१ समाजमें श्रम विभागका सिद्धान्त जैसे जैसे बढ़ता जाता है वैसे वैसे एक आदमी या कुटुम्बकी बनाई हुई चीजोंका दूसरोंकी बनाई हुई चीजोंके साथ विनिमय करनेके अवसर उत्पन्न होते हैं। एक वस्तुके बदलेमें दूसरी वस्तु देकर अदला-बदला किया जाय तो उसे वस्तु विनिमय कहते हैं। आज भी प्राथमिक दशामें रहनेवाले लोगोंमें वस्तु विनिमयके आधार पर अपनी आवश्यकताकी वस्तुओंका एक-दूसरेके साथ अदला-बदला होता है।

२ परन्तु इस सीधे वस्तु विनिमयमें कुछ कठिनाइयां होती हैं। पहली कठिनाई सौदेका मेल बैठानेकी होती है। मान लीजिये कि किसी कुटुम्बके पास अनाजका संग्रह अपनी आवश्यकतासे अधिक है और उसे कपड़ेकी आवश्यकता है। इस कुटुम्बको दूसरा ऐसा कुटुम्ब मिल जाना चाहिये जिसके पास कपड़ा अधिक हो और जिसे अनाजकी ही आवश्यकता हो। किसी कुटुम्बके पास कपड़ा अधिक हो लेकिन अनाज उतना ही हो जितना कि उसे चाहिये तो उसका सौदा अधिक अनाजवाले कुटुम्बके साथ नहीं पटेगा। यह भी हो सकता है कि उस अधिक कपड़ेवाले कुटुम्बको जूतेके लिए चमड़ेकी ही आवश्यकता हो। इसलिए वस्तु विनिमयवाले समाजमें अपने पासकी अतिरिक्त वस्तुके बदलेमें अपनी आवश्यकताकी ही वस्तु जुटानेके लिए बहुत समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। या सीधा विनिमय न करके बीचमें दूसरे आदमियोंको मिलाया जाय तभी इस तरह अदला-बदली हो सकती है कि सबकी आवश्यकतायें पूरी हो सकें। इस व्यवहारमें दूसरी कठिनाई अदला-बदली की जानेवाली वस्तुओंकी कीमत ठहरानेकी होती है। यह निश्चित करनेकी कठिनाई सदा बनी ही रहती है कि कितने अनाजके बदलेमें कितना कपड़ा लिया जाय कितने कपड़ेके बदलेमें कितना चमड़ा लिया अथवा दिया जाय या कितने चमड़ेके बदलेमें लकड़ीकी कौनसी वस्तुएं बदला किया जाय। तीसरी कठिनाई अदला-बदली की जानेवाली वस्तुओंका विभाग करनेकी है। अनाज जैसी वस्तुओंके तो विभाग किये जा सकते हैं। लेकिन धोती साड़ी सिले हुए कपड़े या जूते हों या लकड़ीकी बनी हुई कोई

वस्तु हो, तो उस पूरी वस्तुका ही अदला-बदला हो सकता है। संभव है कि उनमें से किसी वस्तुको तैयार करनेमें अधिक श्रम करना पड़ा हो और कोई वस्तु कम श्रमसे बनी हो। धोती तैयार करनेमें चार दिन लगे हों और जूते बनानेमें दो दिन लगे हों। ऐसी वस्तुओंका एक-दूसरेके साथ अदला-बदला करनेमें इस सिद्धान्तकी रक्षा करना स्वाभाविक रूपमें ही बड़ा कठिन होता है कि दोनों पक्षोंको समान लाभ मिले।

द्रव्यकी खोज

३. इन सब कठिनाइयोंसे बचनेके लिए बहुत पुराने जमानेसे ही विनिमयके एक सामान्य साधनके रूपमें और विनिमयकी वस्तुओंकी कीमत ठहरानेके एक निश्चित मापके रूपमें कोई एक वस्तु निर्धारित करनेकी बात मनुष्यको सूझी है। अलग अलग देशोंमें और अलग अलग समयमें विनिमयके साधनके रूपमें और कीमत ठहरानेके एक मापके रूपमें अलग अलग वस्तुओंका उपयोग हुआ पाया जाता है। विनिमयके साधनके रूपमें पसन्द की हुई वस्तुको हम द्रव्य कहें तो गाय, बैल, भेड़, बकरी, चमड़ा, सीप, कौड़ी, हाथीदांत, धातु, धान, नारियल आदि कई वस्तुएं अलग अलग देशोंमें और समयोंमें द्रव्यके रूपमें उपयोग की गई मालूम होती हैं। पर इसमें भी बहुत कठिनाइयां तो बनी ही रहती थीं। गाय-बैल या भेड़-बकरा सब एक ही प्रकारका और एकसे ही गुणोंवाली नहीं हो सकती। इसलिए जिस वस्तुके जरिये दूसरी सब वस्तुओंकी कीमत निश्चित करनी हो उसी वस्तुकी कीमत ठहरानेका प्रश्न उत्पन्न होता है। साथ ही ढोर मर जाता है, अनाज सड़ जाता है और नारियल जैसी चीज वजनमें इतनी भारी होती है कि एक जगहसे दूसरी जगह उठाकर उसे ले जाना कठिन होता है। इन सब कठिनाइयोंको दूर करनेवाली वस्तुकी खोज करते करते और प्रयोग करते करते दुनियाके सब लोगोंको सोने चांदीका द्रव्यके रूपमें उपयोग करना अधिक अनुकूल मालूम हुआ है।

अच्छे द्रव्यके विशिष्ट लक्षण

४. सोने चांदीमें नीचे बताये हुए विशेष गुण हैं जिनके कारण दुनियामें सब जगह उनका द्रव्यके रूपमें उपयोग हुआ है।

(१) ये धातुएं अपने पास रखनेको सब लोग तैयार होते हैं। दूसरी वस्तुओंकी तुलनामें ये धातुएं विरल होनेके कारण बहुत कीमती मानी जाती हैं। इनकी चमक और सुन्दरताके कारण गहनोंके रूपमें भी लोगोंका इनकी तरफ सदा आकर्षण रहता है।

(२) इन धातुओंको एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना बडा आसान है। थोडे वजनमें और छोटे कदमें सोने चांदीमें बहुत मूल्य समाया होनेके कारण एक जगहसे दूसरी जगह लिवाकर ले जाना हो तो भी ये धातुएं आसानीसे ले जाई जा सकती हैं। इनका यातायात-खर्च बहुत कम आनेसे अलग अलग जगहों पर इनके भावमें बहुत फर्क नहीं पडता। यह दूसरी बात है कि आज हम सोने चांदीके सिक्के जेबमें डालकर घूमना या साथ रखकर यात्रा करना पसन्द नहीं करते। आज तो लेन-देनका ज्यादातर काम कागजके नोटोंसे होता है। आज तक तो इन कागजके नोटोंके पीछे सोने चांदीका बल रहता था और इन कागजके नोटोंको दिखाने ही जब जरूरत हो सोने चांदीके सिक्के मिल जानेका विश्वास दिलाया जाता था। परन्तु प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) के दिनोंमें और उसके बाद कुछ वर्षों तक तथा दूसरे महायुद्धके दिनोंमें ऐसी नौबत आ गई थी कि जिनके पास यह कागजी द्रव्य हो वे जब चाहें तब उसे सोने चांदीके सिक्कोंमें नहीं भुना सकते थे।

(३) टिकाऊपन इन धातुओंका बहुत बडा गुण है। इनके सिक्के हाथों हाथ फिरें, बरसों तक पेटीमें बन्द रख जायें या गाड कर जमीनमें रख जायें तो भी जल्दी घिसते नहीं और बिगडते नहीं। इन्हें जंग नहीं लगता और दूसरी धातुओंकी तुलनामें घिसाई भी इनकी कम होती है। दो दो हजार वर्षके सोने चांदीके सिक्के आज भी जमीनमें से मिल जाते हैं। सोनेके पौंडके लिए यह हिसाब लगाया गया है कि बाजारमें साधारणतः फिरते रहनेवाले पौंडके सिक्केको पूरी तरह घिसनेमें आठ हजार वर्ष लगेंगे। चांदी सोनेसे अधिक जरूर घिसती है फिर भी वह काफी समय टिकती है और किसी तरहका बिगाड तो उसमें होता ही नहीं।

(४) इन धातुओंकी जाति और गुणमें कोई फर्क नहीं पडता। जिन वस्तुओंका द्रव्यके रूपमें उपयोग करना होता है वे अनेक तरहकी हों तो कठिनाई पडती है। उदाहरणके लिए गेहूं या चावल कई तरहके होते हैं और गाय बैल सब एकसे नहीं होते। लेकिन शुद्ध सोना और शुद्ध चांदी तो दुनियामें कहीं भी जाइये एक ही प्रकारके मिलते हैं। उनके इस गुणके कारण अलग अलग देशके सिक्कोंमें रहे शुद्ध सोने या चांदीकी मात्रा निश्चित रूपसे जान लेनेके बाद एक देशके सिक्केकी कीमतकी तुलना दूसरे देशके सिक्केके साथ की जा सकती है।

(५) सोने चांदीके कितने ही छोटे छोटे टुकडे किये जायं तो भी उनकी कीमतमें कोई फर्क नहीं पडता। इसीलिए अलग अलग वजन और आकारके

छोटी बडी कीमतके सिक्के गढे जा सकते है और इन अलग अलग कीमतके सिक्कोके द्वारा कम-अधिक मूल्यकी चीजोकी कीमत चुकाई जा सकती है। साथ ही इन धातुओके छोटे छोटे टुकडोको गलाकर आसानीसे और बिना किसी नुकसानके मिलाया जा सकता है। हीरे मोती वजनमें छोटे और वजनमें कम होने पर भी काफी कीमती होते है। परन्तु उनके छोटे टुकडे किये जाय तो वे बेकार हो जाते है।

(६) इन धातुओको बहुत आसानीसे परखा जा सकता है। द्रव्यके रूपमे काम आनेवाली वस्तु ऐसी होनी चाहिये जिसके खरी या खोटी होनेकी जाच आसानीसे हो सके नही तो जाली सिक्के चलने लगते है। सोने चादीके सिक्के अपने रग चमक और झनकारसे फौरन पहचाने जा सकते है कि ये खरे है या खोटे।

(७) दूसरी वस्तुओकी तुलनामे इन धातुओके मूल्यमे अधिक स्थिरता पाई जाती है। जिस वस्तुके द्वारा दूसरी सब वस्तुओके मूल्यका माप लगाया जाता हो उस वस्तुके मूल्यमें ही यदि स्थिरता न हो तो बडा कठिनाई पदा होती है। आज सब मनुष्योकी कमाई द्रव्यके रूपमें होती है। जो लोग बचत कर सकते है वे इसलिए द्रव्य बचाकर रखते है कि भविष्यमें जरूरत पडने पर यह काम आयगा। अब यदि आगे चलकर द्रव्यके मूल्यमे ही बडा फर्क पड जाय तो या तो उस आदमीको बिना मेहनतके बडा नफा हो जाये या बिना अपराधके भारी नुकसान हो जाये। अन्य सब वस्तुओकी कीमत स्थान और समयके अनुसार काफी बदलती हुई पाई जाती है। परन्तु सोनेकी कीमतमें काफी स्थिरता रहती है। इसका कारण यह है कि जितना सोना आज तक उत्पन्न हो चुका है उतना तो मौजूद हो है और हर साल जितना नया सोना उत्पन्न होता है उसकी मात्रा पहलेसे मौजूद सचित भण्डारकी तुलनामें इतनी कम होती है और उसे उत्पन्न करनेमें इतना अधिक खर्च लगता है कि सोनेके चालू भाव पर बढी हुई मात्राका कोई खास असर नहीं हो पाता। जो थोडासा असर होता है वह बहुत धीरे धीरे और लम्बे समयमें होता है। चादीकी बात बिल्कुल सोने जैसी नहीं है। सोनेकी तुलनामें चादीके भावमे ज्यादा उथल-पुथल होता है। लेकिन दूसरी वस्तुओकी तुलनामें तो यह उथल-पुथल थोडी ही होती है।

द्रव्यके लाभ

५ बाजारमें सब वस्तुओ और सेवाओके बदलेमें द्रव्य खुशीसे स्वीकार किया जाता है इसीलिए समाजमें कामका बटवारा करने हुए तब समव हुआ

है। हर आदमी द्रव्य देकर वस्तुएं बनाता है या दूसरे काम करता है और द्रव्यके जरिये अपनी आवश्यकताकी वस्तुएं खरीदता है। जिसके पास द्रव्य होता है उसे यह भरोसा रहता है कि उसकी आवश्यकताकी कोई भी वस्तु द्रव्यसे मिल सकेगी।

६ विनिमयकी प्रत्येक वस्तुकी कीमत द्रव्यकी मदद्से निश्चित रूपसे आंकी जा सकती है। द्रव्यके माप या गजसे हर वस्तुके मूल्यकी एक-दूसरेके साथ तुलना की जाती है। इसी कारणसे विनिमयका व्यवहार जगद्व्यापी बन सका है। परन्तु साथ ही यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि द्रव्यके द्वारा वस्तुओंका मूल्यांकन सदा सच्चा और न्यायपूर्ण हो नहीं होता। दो वस्तुओंकी कीमत द्रव्यके रूपमें एकसी मानी जाती हों तो भी मनुष्यके लिए उपयोगी होने और उसे सुखी करनेकी शक्ति दोनों वस्तुओंमें एकसी नहीं पाई जाती। यह भी नहीं कहा जा सकता कि दो देशोंके बीच द्रव्यके रूपमें एकसी कीमतका आयात निर्यात होता हो तो उससे दोनों देशोंके बीच सच्ची संपत्तिका एकसा अदला-बदला होता है। कोई देश कच्चा माल बाहर भेज कर विदेशोंसे तैयार माल उतनी ही कीमतका मंगाता हो तो भी वह देश अधिकतर नुकसानमें ही रहता है।

७ द्रव्यके कारण लेन-देनका व्यवहार बहुत आसान हो गया है और कम भी गया है। अपने बचाकर रखे हुए द्रव्यका उत्पादक कार्यमें उपयोग करना किसीको न आता हो या वैसा करनेकी उसे फुरसत न हो तो उस आदमीके द्रव्यका उपयोग दूसरा कुशल आदमी उत्पादक कार्यमें कर सकता है। इसमें स्पष्ट लाभ होते हुए भी एक बड़ी हानि यह है कि प्रबंधक या उद्योगपति ऐसे बहुतसे लोगोंके द्रव्यका उपयोग अपनी उत्पादक प्रवृत्तियोंमें करके उनके द्वारा समाजका शोषण कर सकता है।

८ असली प्रश्न तो यह है कि मनुष्यका बचत कर करके द्रव्य इकट्ठा करना ही उचित है या नहीं? फिर भी द्रव्यके कारण बड़ी मात्रामें द्रव्यका संचय करना संभव तो हुआ ही है। द्रव्यकी खरीद शक्तिमें एकदम कमी फरक नहीं होते। इसलिए उसका संग्रह करनेमें कोई हानि नहीं होती। आज हर समाजमें कुछ लोग जो बड़ी बड़ी जायदादोंके स्वामी बन बैठे हैं, वह द्रव्यके कारण ही संभव हुआ है। द्रव्यके कारण ही समाजमें एक अनुत्पादक आदमी वर्ग पैदा हो सका है। एक तरहसे कहें तो जिसके पास द्रव्य होता है उसे मानो अपनी आवश्यकताकी वस्तुओं और सेवाओंके लिए समाज पर आना चलानेका अधिकार मिल जाता है। द्रव्यवाले आदमीको

जिस समय और जिस रूपमें समाजको सेवा चाहिये उसी समय और उसी रूपमें वह समाजकी सेवाएं प्राप्त कर सकता है।

९ लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि द्रव्यके एसे जो कुछ खराब असर होते हैं वे द्रव्यके भीतर ही रहते हैं। अर्थ-व्यवहारके लिए द्रव्य एक प्रबल साधन है। उसके कारण आर्थिक उन्नति हो सकी है। परन्तु चूंकि यह एक प्रबल साधन है इसलिए उसके अनिष्ट परिणाम भी उतने ही प्रबल आये हैं। लेकिन ये बुराइयां द्रव्यकी नहीं उसके दुरुपयोगकी मानी जायगी। अर्थ-व्यवहारको सरल बनानेका उसका गुण स्वीकार करके उसके दुर्गुणोंसे किस तरह बचा जाय यह खोज करना अर्थशास्त्रियोंका काम है। अगले प्रकरणमें हम इसका विचार करेंगे।

नकद द्रव्य और प्रतिनिधि द्रव्य

१० अब तक हमने द्रव्यका जो वर्णन किया है वह नकद द्रव्यका — सोने चांदीके सिक्कोंको ध्यानमें रखकर ही किया है। परन्तु आजके जमानेमें तो नोट, हुंडियां और चेक ठीक सोने चांदीके सिक्के जैसा ही काम करते हैं। हमारे पास पचास रुपयेके नोट हों तो हम ऐसा ही कहते हैं कि हमारे पास पचास रुपये हैं। क्योंकि हमें भरोसा है कि जैसे हमें सिक्कोंके जरिये आवश्यकताकी वस्तुएं बाजारसे मिल सकती हैं वैसे ही नोटोंके जरिये भी मिल सकेंगी। नोट सिक्केका प्रतिनिधि है और यह निर्धारित हो चुका है कि व्यवहारमें सिक्का और नोट एक ही कीमत पर चलेगा। हुंडी और चेकका आधार उनके लिखनेवालेकी साख पर रहता है। उनके लिखनेवाले पर विश्वास हो तो लेन-देनमें उनका भी काफी उपयोग होता है। फिर भी जितनी सुगमतासे साधारण नोट चलते हैं उतनी सुगमतासे चेक और हुंडी नहीं चलती। इन सिक्कोंको नकद द्रव्य कहेंगे और नोट आदिको प्रतिनिधि द्रव्य कहेंगे, क्योंकि नोट आदि मुख्य या नकद द्रव्यके प्रतिनिधि हैं।

सिक्के और टकसाल

११ सोने चांदीका द्रव्यके रूपमें उपयोग होने लगा तब शुरूमें तो छड़, अंगूठी और कड़े आदिके रूपमें ही होने लगा। लोग पारखीके यहां जाकर उसकी कस, शिनाख्त और वजन करवाकर उसे स्वीकार करते थे। लेकिन इस पद्धतिमें हर समय पारखीके यहां जानेकी कठिनाई तो रहती ही थी। इसलिए हर देशमें सरकारने टकसालोंमें अपने सिक्के ढालना शुरू किया। हम सिक्केकी यह व्याख्या कर सकते हैं कि धातुके जिस टुकड़ेके पृष्ठभाग पर प

हुई छाप परसे उसका वजन, धम और कीमत जाना जा सके वह सिक्का है। सिक्के ढालनेकी यह कला दिन दिन विकसित होता चली गई है। बहुत पुराने सिक्के इतनी कुशलतासे ढले हुए नहीं मालूम होते कि जिससे उनके वजनमें कोई फरक न कर सके। हमारे यहां पहले जो बादशाही (गायरवाली) रुपया चलता था उसको ठीक ठीक परख धनवान आदमी ही कर सकते थे। लेकिन हालमें सिक्के ढालनेकी कलाका खूब विकास हुआ है। सिक्के ढालनेमें नीचे लिखी बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है :

(१) इसकी बहुत सावधानी रखी जाती है कि दूसरोंके लिए नकली सिक्के ढालना बहुत कठिन हो जाय। सिक्कोंकी धातुमें थोड़ी मिलावट इसलिए की जाती है कि उसका झनकार विशिष्ट तरहकी ही हो और सिक्का जल्दी घिस न जाय। छापके भीतर ऐसी गुप्त निशानियां रखी जाती हैं जिनका दूसरोंको जल्दी पता न लगे। इतना होने पर भी जाली सिक्कोंके अपराध तो होते ही रहते हैं। यह बताता है कि ऐसे सिक्के बनानेका काम बहुत कठिन है जिनकी नकल न हो सके।

(२) सिक्केमें से कोई आदमी बदमाशी करके धातु न काट सके, इसके लिए सिक्का बिलकुल गोल रखा जाता है और उसकी किनारी पर खड्डे कर दिये जाते हैं।

(३) यह भी प्रयत्न किया जाता है कि सिक्का राजा और प्रजाके इतिहास और कला-कौशलका स्मारक बने। पुराने सिक्कों परसे पुरातत्त्ववेत्ता इतिहासका संशोधन कर सकते हैं।

१२ ऊपर सिक्केकी जो व्याख्या दी गई है उसके अनुसार तो हर खरे सिक्केमें उस पर बताई हुई कीमतका सोना या चांदी होना ही चाहिये। वह सिक्का गलाया जाय तो उसमें से सिक्के पर बताई गई कीमतका सोना या चांदी मिलना चाहिये। फिर भी मध्यकालमें यूरोपके बहुतसे राजाओंने सिक्के ढालनेके अपने अधिकारका दुरुपयोग करके हलकी कीमतके सिक्के ढाले और अनुचित लाभ उठाया। यहां यह उल्लेखनीय है कि भारतके राजाओंने कभी ऐसा प्रयत्न नहीं किया। लेकिन सन १८९३ के बाद हमारे देशमें अंग्रेज सरकारने हलकी कीमतका रुपया ढालना शुरू किया और उसके असली मूल्यमें उत्तरोत्तर कमी करके लाभ उठाया। जो सरकार अपने सिक्केको प्रामाणिक या खरा रखना चाहती है वह कोई भी आदमी सोना या चांदी लेकर टकसालमें जाय तो उसके बराबर सोने चांदीके सिक्के ढाल देती है। कुछ सरकारें सिक्के ढाल देनेके बदलेमें टकसालका खर्च

अनुसार थोड़ा महनताना लेती हैं और कुछ सरकारें बिलकुल महनताना नहीं लेती। हमारे देशमें सन् १८८५ से १८९३ तक बंबई और कलकत्तेकी टकसालोंमें हम जितनी चांदी ले जाते उतनी चांदीके रुपये महनताना लेकर ढाल दिये जाते थे। सन् १८९३ से ये दोनों टकसालें लोगोंके लिए बन्द कर दी गई हैं। वहां सिर्फ सरकारके लिए सिक्के ढाले जाते हैं। इंग्लैण्डमें प्रथम महायुद्धके वर्षोंको छोड़ कर सन् १९२५ तक कोई भी आदमी सोना लेकर जाता तो उसे उतने सोनेकी कीमतके पौंड महनताना लिये बिना ढाल दिये जाते थे। टकसालका खर्च सरकार उठा लेती थी।

१३ टकसालका इस तरह खुला या मुक्तद्वार केवल मुख्य सिक्कोंके लिए ही रखा जाता है। फुटकर सिक्के (या रेजगारी) तो बाजारमें छोटे लेन-देनकी सुविधाके लिए ही ढाले जाते हैं, इसलिए यह काम सरकार अपने ही हाथमें रखती है। मुख्य सिक्के ढाल देनेके लिए टकसाल खुली रखी जाये, जिसे सिक्के गला डालना हो उसे गला डालनेकी स्वतंत्रता हो और चांदी-सोना परदेशसे मंगाने या परदेश भेजने पर सरकारकी ओरसे कोई प्रतिबन्ध न हो, तो सिक्केका सच्चा मूल्य यानी उसमें रहे सोने चांदीका मूल्य और उसका कानूनन निर्धारित हुआ मूल्य दोनों एकसे रहते हैं। आन्तरराष्ट्रीय भावोंमें फेरबदल होनेसे धातुका मूल्य बदले तो कानूनी मूल्य भी बदलना पड़ता है। ऐसे सिक्कोंको दुनियाके सब देशोंके लोग खुशीसे स्वीकार करते हैं।

प्रामाणिक द्रव्य, सांकेतिक द्रव्य और रेजगारी

१४ हर देशमें अधिकसे अधिक कीमतका एक सिक्का प्रामाणिक द्रव्यके रूपमें उपयोगमें आता है और दूसरे छोटे सिक्के रेजगारीके तौर पर उपयोगमें आते हैं। प्रामाणिक द्रव्यके रूपमें उपयोगमें आनेवाले सिक्केमें उस पर छपी हुई कीमतका सोना या चांदी होना चाहिये और कोई भी आदमी सोना चांदी लेकर टकसालमें जाय तो उसके सिक्के ढाल देनेके लिए टकसाल खुली होनी चाहिये। इसके सिवा, प्रामाणिक द्रव्यका मुख्य लक्षण यह है कि एक दूसरेके साथ कितनी ही बड़ी रकमके लेन-देनमें वे सिक्के स्वीकारना लोगोंके लिए कानूनन अनिवार्य होता है। हमारे देशमें रुपया और अठन्नी प्रामाणिक सिक्के माने जाते हैं। लेकिन इनमें ऊपर बताये हुए तीन लक्षणोंमें से एक ही लक्षण होता है। अमर्यादित मात्रामें इनका चलन कानूनन अनिवार्य कर दिया गया है। मान लीजिये कि आपको दस हजार रुपये या इससे भी बड़ी रकम किसीको देनी है और आप

इतने रुपये या इतनी रकमकी अठन्नियां लेकर जाते हैं तो सामनेवाले मनुष्यको गिननेमें समय लगे या वे सब रुपये या अठन्नियां परखनेकी तकलीफ उठानी पड़े तो भी वे लिये बिना इनकार नहीं कर सकता। किसी समय बैंक पर धावा बोला जाता है तब उसके पास नकद रुपये हों तो वह इस युक्तिको आजमा कर समय निकाल सकता है। लेकिन कानूनी चलनके रूपमें इस एक लक्षणके सिवा दूसरे दो लक्षण हमारे रुपयेमें नहीं हैं। उसमें पूरी कीमतकी धातु नहीं होती इसलिए स्वाभाविक रूपमें ही लोगोंके लिए टकसाल खुली नहीं है। हमारा रुपया प्रामाणिक द्रव्य माना जाने पर भी सांकेतिक द्रव्य जैसा है। सांकेतिक द्रव्य उसे कहा जाता है जिसमें छपी हुई कीमतकी धातु नहीं होती, लेकिन कानून या संकेतके द्वारा उसका उतना मूल्य निश्चित कर दिया जाता है। बाजारमें छोटे लेन देनकी सुभीतेके लिए फुटकर सिक्के यानी चवन्नी दुअन्नी पैसे वगैरा जो रेजगारी चाली जाती है वे सब सांकेतिक सिक्के होते हैं। इंग्लैण्डका शिलिंग ऐसा ही सांकेतिक सिक्का है। चालीस शिलिंग यानी दो पौंड तक ही वह कानूनी चलन माना गया है। लेन-देनकी रकमके बदलेमें कोई चालीस शिलिंगसे ज्यादा दे तो कानूनन उसे लेनेसे इनकार किया जा सकता है। हमारी रेजगारी एक रुपयेकी रकम तकके लेन देनके लिए ही कानूनी चलन है। अगर कोई हमसे पांच रुपये मांगता हो और हम उसे पांच रुपयेकी चवन्नी दुअन्नी और इकन्नी वगैरा रेजगारी देने लगें तो उसे अस्वीकार करनेका सामनेवाले आदमीको कानूनी अधिकार है।

१५ चलनी नोट या कागजी द्रव्य एक तरहका सांकेतिक द्रव्य कहा जायगा। उसमें उस कागजसे अधिक वास्तविक मूल्य नहीं है जिस पर वह छापा जाता है। लेकिन बड़ीसे बड़ी रकमके लिए वह कानूनी चलन है। सरकारके ऊपर रहे लोगोंके विश्वास और उसके कानूनके बल पर वह चलता है।

१६ जिसे स्वीकार या अस्वीकार करना द्रव्य लेनेवालेकी इच्छा पर निर्भर हो उसे द्रव्यका वैकल्पिक द्रव्य कह सकते हैं। हमारे देशमें पहले सरकार सोनेकी मुहर ढालती थी परन्तु वह वैकल्पिक द्रव्य था क्योंकि सोनेकी मुहर लेनेके लिए लोग कानूनसे बंधे हुए नहीं थे। चलनी नोट कानूनी चलन हैं परन्तु सराफी हुंडियां या बैंकके चेक — जिनका द्रव्यके लेन देनमें बहुत बड़ी मात्रामें उपयोग होता है — स्वीकार करना सबके लिए कानूनसे अनिवार्य नहीं है। इसलिए वह वैकल्पिक द्रव्य माना जाता है।

घटिया द्रव्य

१७ प्रामाणिक द्रव्यके रूपमें चलनेवाले सिक्केमें उस पर छपी हुई कीमतकी धातु न हो तो वह घटिया द्रव्य कहलाता है। रेजगारीके तौर पर काम आनेवाले सिक्के तो ऐसे घटिया होते ही हैं। और इसमें कोई खास हानि भी नहीं है। लेकिन जिस देशका प्रामाणिक द्रव्य घटिया हो उस देशको दूसरे देशोंके साथ होनेवाले व्यापार-सम्बन्धी लेन-देनमें बड़ी कठिनाई होती है। हमारा रुपया घटिया सिक्का होनेके कारण विलायतके साथके लेन-देनके लिए उसे स्टर्लिंगके पौंडके साथ कृत्रिम रूपसे जोड़ दिया गया है। इस कारण आयात-निर्यातके व्यापारमें हमारे देशको बहुत नुकसान होता है और हमारे किसानों और व्यापारियोंको बड़ी हानि उठानी पड़ती है। ऐसा क्यों होता है यह हम विनिमय-दरकी चर्चामें आगे देखेंगे।

ग्रेशमका सिद्धान्त

१८ प्रत्येक देशमें जितने सिक्के बाजारमें घूमते रहते हैं वे अलग अलग समय टकसालमें ढले होते हैं। सरकार अपनी नीति बदलकर कम कीमतकी धातु सिक्कोंमें डालने लगे तो बदली हुई नीतिके पहलेके और उसके बादके, इस तरह दो प्रकारके सिक्के बाजारमें घूमते हैं। इनके सिवा बहुत उपयोगके कारण घिसे हुए सिक्कोंमें भी कम कीमतकी धातु होती है। इस वास्तवमें कम ज्यादा कीमतके परन्तु कानूनी तौर पर एक ही कीमतके बहुतसे सिक्के बाजारमें चलते हों तब ये सभी सिक्के एकसे कानूनी चलन होनेके कारण आप किसी भी सिक्केसे लेन देन करें तो उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। लेकिन इन सिक्कोंके बीचका यह फरक लोगोंके ध्यानमें आये बिना नहीं रहता। अच्छे और पूरे वजनवाले जितने भी सिक्के उनके पास आते हैं उतनोंका वे संग्रह कर लेते हैं या उन्हें गला डालते हैं और घटिया या घिसे हुए सिक्के ही बाजारमें घुमाते रहते हैं। इस घटनाकी तरफ रानी एलिजाबेथके अर्थमंत्री सर टॉमस ग्रेशमका ध्यान गया और उन्होंने अपनी शोधको एक नियम या सिद्धान्तके रूपमें पेश किया : अच्छे अर्थात् पूरे वजनवाले और खराब अर्थात् घटिया दोनों तरहके सिक्के साथ साथ कानूनी चलन हों तो खराब सिक्के अच्छे सिक्कोंको बाजारके चलनमें से खदेड़ देंगे। इस सिद्धान्तको अर्थशास्त्रकी पुस्तकोंमें ग्रेशमका सिद्धान्त कहा जाता है। अगर दोनों तरहके सिक्कोंसे एकसा काम निकलता हो तो स्वाभाविक बात है कि मनुष्य अच्छे सिक्के अपने पास रख छोड़ेगा और खराब सिक्के वह दूसरोंको देगा और अच्छे

सिक्कोंका उपयोग गलाकर छड बनाने, गहने बनवाने, गाड कर रखने और विदेशोंके साथ लेन-देन करनेमें होगा। विदेशी व्यापारी दूसरे देशका सिक्का उस देशमें मानी जानेवाली उसकी कानूनी कीमतको देखकर नहीं लेता बल्कि उस सिक्केकी धातुकी कीमत देखकर ही लेता है। गहने बनाने और गाड कर रखनेके लिए भी सिक्कोंमें रही धातुका ही महत्व है।

१९ किसी देशमें सोने और चांदी दोनोंके सिक्के अमर्यादित मात्रामें कानूनी चलनके रूपमें प्रचलित हों और दोनोंमें से किसी एक धातुके भावमें बड़ा फर्क पड जाय तो दोनों सिक्कोंकी कानूनसे निर्धारित की हुई कीमत और दोनों सिक्कोंकी धातुकी कीमत — इन दोके अनुपातमें अंतर पड जायगा। ऐसे समय कानूनी कीमतकी अपेक्षा धातुकी दृष्टिसे कम कीमतवाला सिक्का अधिक कीमतवाले सिक्केको चलनमें से निकाल देता है। अधिक कीमत वाले सिक्केको गलाकर और उसकी छडें बनाकर लोग अधिक पैसा पैदा कर लेते हैं। नोटके चलनमें प्रसार (inflation) हो जाये और नोटके चलन परसे लोगोंका विश्वास डिग जाये तथा ऐसे समय नोटोंके साथ धातुके सिक्कोंका चलन भी जारी हो, तो धातुके सिक्कोंकी तुलनामें नोट खराब या घटिया द्रव्य बन जाते हैं। ऐसे समय नोट धातुके सिक्कोंको चलनमें से निकाल देते हैं।

२० फिर भी ग्रेशमके इस सिद्धान्तका अमल बिना किसी अपवादके हमेशा ही नहीं होता। नीचेके उदाहरणोंको अपवाद समझना चाहिये :

(१) अच्छे और बुरे सिक्कोंका अंतर मालूम पडनेमें कभी कभी बहुत देर लग जाती है। उस समय तक दोनों सिक्के समान रूपसे चलनमें रहते हैं।

(२) बाजारमें लेनदेनके लिए द्रव्यकी निश्चित मात्रा आवश्यक होती है। उससे कम द्रव्य हो तो लोगोंको अच्छे और बुरे दोनों तरहके सिक्के उपयोगके लिए बाहर निकालने ही पड़ते हैं।

(३) कमजोर या घटिया द्रव्यके बारेमें विशेषतः नोटोंके बारेमें लोगोंमें बहुत अविश्वास पैदा हो गया हो तो सरकारके कानूनकी भी परवाह न करके वे कमजोर द्रव्य लेनेसे इनकार कर देते हैं। जब लोग घटिया द्रव्य हाथमें लेनेसे ही इनकार कर देते हैं तब अच्छे द्रव्यके बिना लेन-देन या व्यवहार नहीं चल सकता। ऐसे समय ग्रेशमके सिद्धान्तसे उलटा ही नियम चलता है। अच्छा द्रव्य बुरे द्रव्यको चलनमें से निकाल देता है।

१०

चलनी नोट और सराफी द्रव्य

१ आजकल सभी सभ्य देशोंमें धातुके द्रव्यके बजाय नोट और चैक आदि कागजी द्रव्य ही उपयोगमें आता देखा जाता है। ऐसा लगता है कि अब धातुके सिक्कोंका उपयोग तो केवल रेजगारी तक ही सीमित रह गया है। स्टेशन पर प्लेटफार्म टिकट लेना हो या सार्वजनिक टेलीफोनका उपयोग करना हो तो वहां एक आने या दो आनेके रेजगारी सिक्केकी आवश्यकता पड़ती है। इसी तरह ट्राम और बसमें घूमनेके लिए फुटकर सिक्के जरूरी हो जाते हैं। बाजारमें छोटी खरीदके लिए भी रेजगारीकी आवश्यकता पड़ती है। लेनदेनके अन्य सारे व्यवहारमें तो लोग नोटोंको धातुके सिक्कों जितने विश्वाससे ही स्वीकार करते हैं। अब हम यह देखें कि इन नोटोंका जन्म कैसे हुआ।

बैंक-नोट

२ मान लीजिये हमने किसी सराफके यहां या बैंकमें अपना रुपया जमा कराया है। अब हम रकममें से थोड़ीसी रकम दूसरे किसीको देनी हो तो या तो हम उतनी रकम बैंकमें से निकाल लायें और उस आदमीको दे दें अथवा उतनी रकम देनेकी सूचना करनेवाला एक रुक्का बैंक पर लिख दें। अब यदि इस रुक्का लेनेवालेका हमारा और बैंकका नाम बाजारमें प्रसिद्ध हो तो उस आदमीको बैंकमें जाकर यह रुक्का भुनानेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। परन्तु यदि उस दूसरे किसी आदमीको पैसे देने हों तो उनके बदलेमें वह अपने पासका रुक्का ही उसे दे देगा। इस तरह यह रुक्का बाजारमें बहुतसे हाथोंमें घूमता रहेगा। और सचमुच नकद द्रव्यका उपयोग किये बिना बहुतसा लेन-देन इस रुक्केके जरिये हो जायगा। अन्तमें जिस आदमीको नकद पैसेकी आवश्यकता होगी वह बैंकमें जाकर उसका नकद पैसा ले आयेगा। बैंकोंने सोचा कि उनके यहां अमानत जमा करानेवाला व्यक्ति रुक्का लिखे और वह रुक्का लिखनेवालेकी और बैंककी साख पर बाजारमें घूमे, उसके बजाय क्या न लिखनेवाला स्वयं ही रुक्केमें लिखी हुई रकम जिसके नाम पर रुक्का हो उसके मांगने पर चुकानेका वचन देनेवाले अलग अलग रकमके रुक्के छापकर बाजारमें घुमायें? आजकलका कोई भी नोट देखें तो उस पर इस अर्थका लिखान होता है

ऐसे धारण करनेवालेके मांगने पर म रु० देनेका वचन देता हूं।

सही

यह सही करनेवाला व्यक्ति सरकारका या सरकारने जिस बैंकको नोट जारी करनेका अधिकार दिया हो उस बैंकका अधिकारी होता है। पहले जब बहुतसे बैंक ऐसे नोट जारी करते थे तब बैंकके मुख्य अधिकारीकी सही बैंकके नोटों पर होती थी। इन नोटोंकी प्रतिष्ठा और बाजारमें इनकी मान्यता नोट जारी करनेवाले बैंककी साख पर निर्भर करती थी। बैंक ऐसा सोचते थे कि वे जितने नोट जारी करेंगे वे सभी तो एकसाथ भुनवानेके लिए बैंकमें आयेंगे नहीं। मान लीजिये बैंकको यह मालूम हो कि पच्चीस प्रतिशत लोग बैंकमें नकद पैसा लेने आते हैं तो बैंक यह हिसाब लगा लेगा कि उसके जारी किये हुए नोटोंमें से पच्चीस प्रतिशत नोटोंका पैसा तिजोरीमें नकद रखनेसे काम चल जायगा। यह प्रथा बैंकोंके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुई। इस प्रथाके फलस्वरूप यह माना जाता था कि बैंकको जितनी रकम नकद रखनी जरूरी हो उससे अधिक जितनी रकमके नोट बैंक बाजारमें घुमाता है उतना ही नया पैसा बैंक खड़ा कर लेता है।

सरकारी चलनी नोट

३ यूरोपके आगे बढ़े हुए देशोंमें और अमरीकामें आरम्भमें अनेक बैंक ऐसे नोट छापते थे। समय पाकर उन देशोंकी सरकारोंको ऐसा लगने लगा कि इस प्रथाका दुरुपयोग होनेका डर है। इसलिए पहले तो इस तरहके नोट छापनेका अधिकार अधिक सावधानीसे कुछ बैंकों तक ही उन्होंने मर्यादित कर दिया। साथ ही बैंकोंको नोट जारी करनेका अधिकार देते समय यह भी निश्चित कर दिया कि वे कितनी रकमके नोट जारी करें और उनके लिए कितनी नकद रकम सुरक्षित रखें। फिर भी अनुभवने बताया कि बहुतसे बैंकोंको नोट जारी करनेका अधिकार देनेमें सलामती नहीं है और मितव्ययिता भी नहीं है। इसके अलावा बैंक नोट जारी करनेमें एक दूसरेके साथ प्रतिस्पर्धा करने लगे और इसमें वे अपनी शक्तिकी मर्यादाका पालन न कर सके। इसकी वजहसे द्रव्य बाजारमें झगड़े खड़े होने लगे और बैंकोंकी प्रगतिमें रुकावट पड़ने लगी। इसलिए यह काम सरकारने अपने हाथमें ले लिया। आज यह स्थिति है कि प्रत्येक देशमें या तो सरकार स्वयं ऐसे नोट जारी करती है या सरकार द्वारा मान्य किये हुए देशके किसी एक ही मुख्य बैंकको नोट जारी करनेकी सत्ता वह देती है।

४ नोट जारी करनेका काम इस तरह सरकारके नियंत्रणमें रहनेमें दो लाभ होते हैं। एक तो चाहे जितने बैंक बाजारमें अपने नोट रखें तब उन नोटोंको स्वीकार करनेके लिए सब लोगों पर कानूनका दबाव नहीं डाला जा सकता। इसके सिवा अनेक बैंक नोट जारी करते हों तब नोट जारी करने वाले प्रत्येक बैंकको अपने नोटोंके लिए नकद रकम बड़ी मात्रामें जमा रखनी पड़ती है क्योंकि हर बैंक और उसके ग्राहक दूसरे बैंकोंके नोट हाथमें आने पर उन्हें भुनाकर नकद पैसा अपने बैंकमें जमा करानेका प्रयत्न करते हैं। इसलिए यह हिसाब लगाना बैंकोंके लिए कठिन हो जाता है कि किस समय कितना नकद रकमकी माँग होगी। अब यदि अलग अलग बैंकोंके नोटोंके बजाय एक ही सरकारी बैंक या सरकार मान्य बैंकके नोट चलते हों, तो वे कानूनी चलनके रूपमें सबको मान्य होते हैं और इसलिए लोग बहुत कम मात्रामें नोट भुनवाने जाते हैं। इसलिए जारी किये हुए नोटोंके अनुपातमें बहुत कम नकद अमानत रखनेसे काम चल सकता है। इससे सरकार और समाज दोनोंको एक और लाभ होता है। जैसे जैसे व्यापार बढ़ता जाता है वैसे वैसे द्रव्यकी आवश्यकता और माँग भी बढ़ती जाती है। द्रव्यकी बढ़ती हुई माँगको सोने चाँदीके सिक्के अधिक मात्रामें ढालकर पूरा करनेकी अपेक्षा यदि जनताको नोटोंके व्यवहारकी आदत पड़ जाये तो थोड़े खर्चसे द्रव्यकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है। नोटोंके चलनके ये लाभ देखकर लगभग सभी देशोंकी सरकारें नोटोंका प्रचार करने लगी हैं। आज यूरोपके सारे देशोंमें धातुके सिक्कोंकी अपेक्षा नोटोंका चलन अधिक है। प्रथम महायुद्धके बाद हमारे देशमें भी नोटोंका चलन बहुत बढ़ गया है।

चलनी नोटोंके लिए नकद अमानत

५ कानूनके अनुसार तो चलनी नोट एक 'प्रामिसरी नोट' या हाथ उधारकी चिट्ठी ही है। जो मनुष्य चाहे वह नोट दिखाकर नोट निकालनेवाले बैंकसे उसमें बताये हुए द्रव्यकी माँग कर सकता है। इस तरह नोट नकद द्रव्यका प्रतिनिधि है। उसके पीछे सहारेके रूपमें सोने-चाँदीका सिक्का हो तभी नोट सबल चलन माना जा सकता है। किसी भी देशकी सरकारको या सरकार मान्य बैंकको अपने जारी किये हुए नोटोंके लिए एक खास मात्रामें सिक्के या खास कीमतका सोना चाँदी अमानतके रूपमें रखना ही पड़ता है। सिक्का या सोने चाँदीकी कितनी मात्रा अमानतके रूपमें (रिज़र्व) रखी जाय इसका आधार उस देशके लोगोंकी आस्था पर और व्यापारके स्वरूप पर रहता है। यदि देशका व्यापार इस प्रकारका हो कि छोटे छोटे बहुतसे उत्पादकोंसे माल खरीदना

पड़े तो नकद द्रव्यकी अधिक आवश्यकता पड़ती है। जैसे हमारे यहाँ छोटे किसान अधिक होनेसे और अब तक उन्हें नागरिक व्यवहारकी विशेष आदत न होनेसे नकद पैसेकी अधिक जरूरत होती थी। इसके सिवा छोटे-बड़े असाधारण अवसरों पर लोग नोटों परसे अपना विश्वास खो देंगे या नहीं और नकद पैसेकी माँग करनेके लिए उलट पड़ेंगे या नहीं इस बारेमें पहलेके अनुभवसे भी प्रत्येक देशकी सरकार यह निश्चित करती है कि कितना द्रव्य नकद रखा जाय। इसके सिवा परदेशसे आयात हुए मालके लिए भी कुछ परिस्थितियोंमें नकद रुपया या सोना विदेश भेजनेकी आवश्यकता होती है। इस प्रकारकी आवश्यकतायें हर देशकी अलग अलग होती हैं और उनका भी उस उस देशकी सरकारको ध्यान रखना पड़ता है। सामान्य व्यवस्था यह होती है कि हर देशकी सरकार या नोट जारी करनेकी सत्ता रखनेवाली मध्यवर्ती बैंक जितनी कीमतके नोट चलनमें रख गये हों उसका ४० प्रतिशत नकद द्रव्य या सोना चाँदी नोटोंके समर्थनके लिए अमानतके रूपमें रखती है।

न भुननवाले चलनी नोट

६ चलनी नोट बाजारकी आवश्यकताके अनुसार और उसके लिए पर्याप्त नकद अमानत रखकर ही जारी किये जायँ तो देशको लाभ है। लेकिन इसका क्या विश्वास कि सरकार इस मर्यादाका पालन करेगी ही? अपने बढ़ते हुए या बढ़े हुए खर्चको पूरा करनेके लिए वह आवश्यकतासे अधिक नोट जारी करे तो उसे कौन रोक सकता है? सरकार पर नियंत्रण तो तभी रह सकता है जब ये नोट सचमुच प्रामिसरी नोट हों और जो आदमी चाहे उसे सरकार फौरन वे नोट भुना दे। लेकिन जब वह संकटमें पड़ जाती है तब खास करके युद्धकालमें लगभग सभी सरकारें ऐसा वचन तोड़ देती हैं। प्रथम महायुद्धके समय युद्धमें शामिल हुई प्रत्येक सरकारने चलनी नोटोंके बदलेमें नकद माँगनेवालोंको पैसा देना बंद कर दिया था। दूसरे महायुद्धमें भी यही नौबत आई थी। प्रत्येक सरकारको युद्धके खर्चके लिए द्रव्यकी बड़ी आवश्यकता होती है। और विदेशोंसे तो सोना चाँदी दिये बिना माल बिलकुल मिल ही नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें वह अपने पासका अमानतका सोना चाँदी और सिक्के तो खर्च कर ही डालती है इसके अलावा देशमें जो सोने-चाँदीके सिक्के चलनमें होते हैं तथा लोगोंके पास जो सोना चाँदी होता है वह भी अधिक नोट छापकर उनके जरिये खींच लेती है और चालू नोटोंके बदलेमें सिक्के या सोना चाँदी न मिलनेका कानून बना देती है या आर्डिनन्स निकाल

देती है। ऐसे समय भी यदि चलनी नोटोंकी मात्रा बाजारकी आवश्यकताके अनुपातमें मर्यादित रखी जाये, सरकार पर लोगोंको विश्वास हो और देश भक्तिकी भावनासे लोग सरकारकी सहायता करनेको तैयार हों, तो ऐसे न भुननेवाले नोटोंसे भी व्यवहार अच्छी तरह चल सकता है।

७ लेकिन सभी सरकारें ऐसी मर्यादा नहीं पालतीं और उन पर प्रजाका ऐसा विश्वास भी नहीं होता। शायद ही कोई सरकार आवश्यकतासे अधिक नोट छापनेके लालचसे बच सकती है। प्रथम महायुद्धमें चलनी नोटोंके प्रसारकी बुराइयां जर्मनी, आस्ट्रिया और रूसमें बहुत भयंकर मात्रामें देखी गई थीं। हमारे देशका उदाहरण लें तो दूसरे महायुद्धसे पहले हमारा व्यवहार लगभग दो अरब रुपयोंके नोटोंसे चल जाता था। उसके बजाय अभी (अप्रैल १९६३ में) तेईस अरबसे ऊपरके नोट चल रहे हैं। रुपया तो देखनेको भी नहीं मिलता और नोट अधिकाधिक संख्यामें छपकर बाहर आते जा रहे हैं। नोटोंके इस भारी प्रसारके कारण देशभरमें अपूर्व महंगाई पैदा हो गई है और समाजके अर्थ-व्यवहारमें बड़ी उथल-पुथल मच गई है। इंग्लैण्ड और अमरीका तो सीधे युद्धमें पड़े हुए देश हैं, परन्तु वहां भी हमारे देशके जैसा हाल नहीं हुआ। हमारे देशकी तुलनामें वहां नोटोंका प्रसार कम हुआ और महंगाई भी कम बढ़ी। आजकी असाधारण परिस्थितियोंको छोड़ दें, तो प्रथम महायुद्धके बाद विशेषतः १९२८-३० की मंदीके बाद सोनेका चलन छोड़ देने पर भी और अपने नोटोंको न भुननेवाले बना देने पर भी इंग्लैण्ड और अमरीका अपना अपना अर्थ-व्यवहार भलीभांति चला सके थे। इस परसे द्रव्यशास्त्रियोंने यह सवाल खड़ा किया है कि द्रव्यके लिए सोने जैसी महंगी चीजका उपयोग करना छोड़कर कागजी द्रव्यसे ही क्यों न काम चलाया जाय? देशके भीतरका व्यवहार तो नोटोंसे अच्छी तरह चल ही सकता है और विदेशी व्यापारके सिलसिलेमें सोने चांदीकी जो आवश्यकता पड़ती हो उसकी व्यवस्था सरकार कर दे। हम इस सवालका विचार आगे 'भविष्यके चलनकी योजना' नामक प्रकरणमें करेंगे। यहां तो हम इस चर्चा तक पहुंचे हैं कि आज दुनियाके सभी देशोंमें सोने चांदीके सिक्के मुख्य द्रव्य नहीं रहे, परन्तु चलनी नोट मुख्य द्रव्य बन गये हैं।

सराफी द्रव्य

८ लेकिन द्रव्यका अर्थ केवल सरकारी सिक्के या चलनी नोट ही नहीं होता, बल्कि जिन जिन साधनोंसे अर्थ-व्यवहार हो सके वे सारे साधन

द्रव्य है ऐसा अर्थ करें — और द्रव्यका सच्चा अर्थ यही है — तो लेन-देनका व्यवहार चलनी नोटोंसे भी ज्यादा सराफोंकी हुंडियां और बैंकोंके चैक तथा ड्राफ्ट द्वारा होता है।

हुंडियां

९. जैसे जैसे व्यापार धंधा बढ़ता गया और देश विदेशोंमें फैलता गया वैसे वैसे व्यापारियोंको सोने चांदीका द्रव्य या सिक्के साथ लेकर विदेश जाना आना कठिन और खतरेसे भरा मालूम होने लगा। इसलिए विदेशोंमें द्रव्य ले जाना होता तब अपने देशके जिन सराफोंका हुंडी-व्यवहार विदेशके सराफोंके साथ चलता हो ऐसे अच्छे सराफोंके यहां नकद पैसा जमा करा कर व्यापारी हुंडी ले लेता था। विदेशके सराफके यहां जाकर व्यापारी यह हुंडी भुना लेता था और उसका पैसा लेकर अपना काम चलाता था। आज मालकी खरीद और बिक्रीके संबंधमें एक जगहसे दूसरी जगह पैसा भेजना हो तो लोग नकद रुपया लेकर देनेके लिए नहीं जाते-आते मनी-आर्डरसे भी नहीं भेजते परन्तु अपने गांवके सराफके यहां उतनी रकम जमा करा देते हैं और उसके बदलेमें दूसरी जगहके जिस आदमीको रकम देनी हो उसके नामकी हुंडी ले लेते हैं। जिस गांवको रकम भेजनी हो उस गांवमें यदि अपनी पेढ़ी हो तो उस पेढ़ीके नाम वर्ना अपनी पहचानके किसी दूसरे सराफके नाम — जिसके यहां उसका खाता हो — इस गांवका सराफ हुंडी लिखता है कि ...... यहां हमने ...... रुपये रख है। इसलिए आप ...... आदमीको यह हुंडी दिखाने पर उसका नाम-पता आदि जांच कर रुपये दे दीजिये। जो आदमी रुपये भेजना चाहता है वह यह हुंडी लेकर जिसे रुपये चुकाने हो उसके पास भेज देता है। और वह आदमी उपरोक्त सराफके यहां जाकर हुंडी दिखाता है और रुपया ले आता है। रुपये देकर हुंडी लिखनेवाला सराफ जिस सराफ पर हुंडी लिखी गई हो उसके खातेमें रुपया जमा करता है। और हुंडीका रुपया देनेवाला सराफ हुंडी लिखनेवाले सराफके खातेमें रुपया नामे लिखता है। सराफोंमें एक-दूसरे पर हुंडियां लिखनेका ऐसा व्यवहार चलता ही रहता है। वे समय समय अपने खाते आपसमें मिला लेते हैं। दोनों सराफोंको एक-दूसरे पर हुंडियां लिखनेके मौके आये हों तो दोनोंके खाते अधिकतर बराबर हो जाते हैं या लेन देनका अन्तर बहुत कम रहता है। परन्तु इस तरह नकद रुपया सराफके यहां दे जाकर हुंडी लिखवानेकी नौबत हमेशा नहीं आती क्योंकि सराफी बाजारमें अलग अलग जगहोंकी तैयार हुंडियां बिकती हैं।

अब यह देखें कि बाजारमें तयार हुंडिया कैसे मिलता है। मान लीजिये कि एक-दूसरेकी हुंडिया स्वीकारनेके सिलसिलेमें किसी सराफका लेना दूसरे गावके सराफ पर बढ गया है और उसे तुरन्त रुपयेकी जरूरत है। तो वह दूसरे गावके सराफ पर अपनी जरूरतकी रकमकी हुंडी लिखकर उस दूसरे सराफको दे देता है और उससे रुपया ले लेता है या उसे अपने जिस ग्राहकको रुपया देना हो उसे रुपयेके बजाय हुंडी दे देता है और सराफका साख अच्छा हो तो बाजारमें उस हुंडीका रुपया उस ग्राहकको तुरन्त मिल जाता है अथवा वह ग्राहक अपने लेनदारको नकद रुपया देनेके बजाय यह हुंडी ही दे देता है। किसी सराफके पास तुरन्त नकद रुपयेकी सुविधा न हो और एक दो दिनमें नकद रुपया आनेवाला हो तो वह उस हिसाबसे स्वयं ही अपनी पेढी पर या अपनी शाखा पर हुंडी लिखकर बाजारमें बेचता है अथवा जिसे रुपया देना हो उसे देता है। इसके अलावा जिनके पास बाहरसे हुंडी आई हो वे सभी बाजारमें सराफके यहा हुंडी भिजवाकर रुपया लेने नहीं जाते बल्कि अपने लेनदारको रुपयेके बजाय हुंडी ही देते है। इस तरह अच्छे सराफोकी हुंडिया एक हाथसे दूसरे हाथ बाजारमें बहुत समय तक घूमती है। सराफी बाजारमें हुंडियोके लेन-देनका काम करनेवाले दलाल भी होते है। वे अलग अलग गावोकी हुंडिया अपने पास इकट्ठी करते है और जिन्हें जरूरत हो उन्हें बेचते है। इस तरहकी हुंडियोके भावका आधार बाजारमें उनकी पूर्ति और माग पर रहता है। किसी गावकी हुंडीकी माग अधिक हो और पूर्ति कम हो तो उस हुंडीका भाव अधिक होता है। अलबत्ता यह बात तो स्पष्ट है कि मनी-आर्डरसे या दूसरी तरह रुपया भेजनेमें वस्तुत जितना खर्च होता है, उससे अधिक भाव किसी हुंडीका हरगिज नही हो सकता। दूसरी जगह पैसा भेजनेके लिए जो हुंडी खरीदना चाहता है उसे मामूली तौर भेजी जानेवाली रकमसे कुछ अधिक ही रकम हुंडीको देनी पडती है। परन्तु कभी कभी ऐसा भी होता है कि भेजनेकी रकमसे कम रकममें भी हुंडी मिल जाती है। किसी गावकी हुंडियाकी बाजारमें बहुतायत हो और जिसके पास ऐसी हुंडी हो उसे तुरन्त पैसेकी जरूरत हो तो वह थोडा घाटा उठाकर भी हुंडी बचनेको तयार हो जाता है। पर दूसरे गावसे पैसा मगानेमें वस्तुत जितना खर्च होता है उससे ज्यादा घाटा तो वह कभी नही उठायेगा। हुंडीके भावोके ये अन्तर बहुत कम एक प्रतिशतके भी अमुक अपूर्णांक जितने होते है। लेकिन रकम बहुत बडी होनेसे हुंडियोके व्यापारमें सराफो और दलालोको भावके इतने थोडे अतरसे भी बहुत बडा नफा होता है। जब पैसे लेकर

सराफ हुंडी लिख देता है तब तो तुरन्त पैसा मिल जानेके सिवा उसकी हुंडी स्वीकार हो और उसके खातेमें पैसा नामे लिखा जाय तब तकके बीचके दिनोंके ब्याजका लाभ भी उसे मिल जाता है।

१० एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पैसा भेजनेकी सुविधा कर देनेके लिए सराफ हुंडियां लिख देते हैं। लेकिन हमने देख लिया कि वास्तवमें पैसेका उपयोग किये बिना अलग अलग स्थानोंके बीच लेन-देनका निपटारा हुंडियोंके जरिये होता है। इस तरह हुंडियां द्रव्यका काम करती हैं। इसके सिवा अपनी साख पर पैसा खड़ा करनेके लिए भी सराफ हुंडियां लिखते हैं। ऐसी सब हुंडियां बाजारमें काफी संख्यामें हाथों-हाथ भी घूमती हैं और मर्यादित स्वरूपमें बैंकके नोटों जैसा काम करती हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि हुंडियां एक प्रकारसे अतिरिक्त द्रव्य ही खड़ा करती हैं।

दर्शनी हुंडी और मुद्दती हुंडी

११ हुंडियां दो तरहकी होती हैं: दर्शनी और मुद्दती। दर्शनी हुंडीका पैसा हुंडी मिलते ही तुरंत देना पड़ता है और मुद्दती हुंडीका पैसा उसमें बताई हुई अवधि बीतने पर देना होता है। दर्शनी हुंडीके भी दो प्रकार हैं धनी-जोग (Bill payable to bearer) और शाह-जोग (Bill payable to order)। धनी-जोग हुंडीका पैसा उसमें जिस आदमीका नाम लिखा हो उसीको दिया जाता है। उस पर सूचना लिखकर दूसरेको पैसा चुकानेके लिए वह हुंडी नहीं दी जा सकती। अतः बाजारमें वह हाथों-हाथ नहीं घूम सकती। शाह-जोग हुंडीका रुपया किसी भी शाहको अर्थात् प्रतिष्ठावाले व्यापारी अथवा साखवाले परिचित आदमीको दिया जाता है। उस पर सूचना लिखकर उसे दूसरे आदमीको लेन-देनके सिलसिलेमें भी दिया जा सकता है। इसलिए शाह-जोग हुंडी बाजारमें हाथों-हाथ घूम सकती है। दर्शनी हुंडियोंका उपयोग अलग अलग स्थानोंके बीचके लेन-देनके निबटारेके लिए और बाजारमें भी लेन-देनके व्यवहारमें होता है। मुद्दती हुंडियोंका उपयोग अधिकतर सराफ लोग अपनी सुविधाके खातिर थोड़ी अवधिके लिए पैसा खड़ा करनेको करते हैं। सराफको एक निश्चित समयके लिए रुपयेकी जरूरत हो तो वह अपनी ही पेढ़ी पर मुद्दती हुंडी लिखकर उसे बाजारमें बेच देता है। जिस सराफको पैसेकी अधिक छूट हो या जिस आदमीको थोड़ी मुद्दतके लिए पैसा रोकना हो वह उस मुद्दती हुंडीको अवधि पूरी होने तकका ब्याज पहलेसे काटकर खरीद लेता है। सराफोंकी मुद्दती हुंडियां पर—हुंडी लिखनेवाले सराफकी अकेलेकी साख पर अथवा उस पर अधिक साखवाले सराफकी सही लेकर—वह हुंडीकी अवधि

पूरी होनेके दिन तकके ब्याजकी रकमके बराबर कमीशन काटकर पैसा उधार देते हैं।

बैंक

१२ अब हम चेकका विचार करेंगे। बैंकमें लोग दो प्रकारसे पैसा जमा करते हैं। एक निश्चित अवधिकी अमानतके तौर पर और दूसरा चालू खातेमें। जो लोग अपनी बचतके पैसे रखनेके लिए और ब्याज कमानेके लिए बैंकमें रखते हैं वे निश्चित अवधिकी अमानतमें रखते हैं। उस पर ब्याज भी कुछ अधिक मिलता है क्योंकि अवधि पूरी होने पर ही पैसा निकाला जा सकता है इसलिए इस अवधिके भीतर बैंकको पैसेका जो उपयोग करना हो वह कर सकता है। लेकिन व्यापारी लोग और जिन लोगोंको पैसेके लेन-देनका व्यवहार प्रतिदिन अधिक करना पड़ता है वे बैंकका उपयोग केवल पैसेकी रक्षा करनेवाली संस्थाके रूपमें ही नहीं करते। वे बैंकमें अपना चालू खाता रखते हैं। रोजकी बिक्री या रोजकी आय उसमें जमा कराते हैं और जैसे जैसे आवश्यकता पड़ती है वैसे वैसे बैंकसे रकम निकालते रहते हैं। वे बैंकका उपयोग एक खजानचीके रूपमें करते हैं। किसीको पैसा देना हो तो बैंकमें से पैसा निकाल कर लाने और उसे देनेके बजाय वे उस आदमीको उतनी रकम देनेकी सूचना करनेवाली चिट्ठी बैंक पर लिख देते हैं। स्वयं उन्हें जब पैसा निकालना होता है तब वे भी इस तरहकी चिट्ठी लिखकर ही निकालते हैं। इस तरहकी खुद रुपया निकालनेकी या और किसीको रुपया देनेकी चिट्ठी चेक कहलाती है। सामान्यतः चेक पर यह लिखा रहता है :

क्रमांक ____________ ता० ____________

बैंकका नाम

स्थान

श्री ____________ को अथवा दिखानेवालेको अथवा लानेवालेको (शाहजोग)
उनके नामोंकी—सूचित धनीको (नामजोग)

रुपये ________________________ दे दें।

रु० ________ | सही ____________

१३ जिस आदमीको रकम देनी हो उसका नाम और रुपयेकी रकम शब्दोंमें और अंकोंमें खाली स्थान पर चेक लिख देनेवाला आदमी भरता है और नीचे अपनी सही करता है। जिस चेकमें दिखानेवालेको शब्द लिखे

होते हैं उसे चाबी रकम जो आदमी यह चैक लेकर बैंकमें दिखावे और रुपया मांगे उसे मिल सकती है। ऐसे चैकको बेअरर चैक (शाह-जोग चैक) या चैक रखनेवालेको पैसा दिलानेवाला चैक कहते हैं। जिस चैक पर उनके वास्ते नाम लिखे होते हैं उस चैकके रुपये बैंकसे लेनेके लिए चैकमें जिस आदमीका नाम लिखा हो उसके हस्ताक्षर चैक पर होना आवश्यक है। ऐसे चैकको आर्डर चैक या नाम-जोग चैक कहते हैं। इसके सिवा जिस चैक पर दो आडी लकीरें बीच दी गई हों उसे खाता चैक (खाता जोग चैक) कहते हैं। ऐसे चैकके पैसे किसीको नकद नहीं दिये जाते पर बैंकमें जिसका खाता हो उस असामीके खातेमें जमा किये जाते हैं। चाहे जिस आदमीके हाथमें चैक आ जाने पर वह बैंकसे रुपया निकालकर न ले जा सके इसके लिए यह व्यवस्था की गई है।

चैकका कार्य

१४ अब हम यह देखें कि यह चैक इनका काम किस तरह करता है। मान लीजिए कि एक व्यापारीने दूसरे व्यापारीको चुकानेकी रकमके बदलेमें बैंकके नाम चैक लिख दिया। जिस व्यापारीको यह चैक मिलता है वह सीधा उस बैंकके पास चैकमें लिखी रकम लेने नहीं जाता परन्तु अपने बैंकके अपने खातेमें यह चैक जमा कराता है। इन दो व्यवहारोंका परिणाम यह हुआ कि उन दो आदमियोंका एक दूसरेके साथका लेन देन निपट गया लेकिन एक बैंकको दूसरे बैंकसे अमुक रकम लेनी रही है। यदि पहला बैंक दूसरे बैंकको नकद पैसे दे तो रुपयेकी जरूरत पड़ेगी। परन्तु सामान्यतः जब जब बैंकोंको परस्पर लेन-देन करना होता है तब तब बैंक नकद पैसोंका लेन-देन नहीं करते। प्रत्येक बैंक अपने यहां रोज जमा होनेवाले चैक इकट्ठे करके रखता है और शामको या दूसरे नियत समय पर सब बैंकोंके कर्मचारी एक स्थान पर जमा होकर अपनी लेने और देनेकी रकमोंकी सूची बनाते हैं तथा इन दो सूचियोंके बीच जो अन्तर होता है उतनी ही रकमका लेन देन करते हैं। यह तो नहीं होता कि दिनके अन्तमें सभी बैंकोंके देने और लेनेके चैकोंका एक-दूसरेके साथ पूरी तरह मेल बैठ जाय। परन्तु यदि सभी बैंक एक बड़े या केन्द्रीय बैंकमें अपने खाते रखते हों— और वे रखते ही हैं—तो उन खातोंमें जमा-नामे करनेसे सभी चैकोंकी रकम बराबर हो जाती है और केवल मुख्य बैंकका ही हर बैंकके साथ देना या लेना रहता है। इस तरह चैकके उपयोगसे और इस तरहके निपटारेकी व्यवस्थासे बहुत बड़ी रकमका लेन-देन नकद पैसा दिये या लिये बिना ही हो

जाता है। अपने पास आए हुए अलग अलग बंकोंके चक आपसमें मिलानेके लिए अलग अलग बंकोंके कर्मचारी जिस स्थान पर एकत्र होते हैं उस स्थानको 'क्लिअरिंग हाउस' अथवा हुंडीलेखा-गृह कहते हैं। व्यापार उद्योगके हर बड़े केन्द्रमें जहां बहुतसे बंक काम करते हैं ऐसे क्लिअरिंग हाउस होते हैं।

१५ अलबत्ता यह तभी हो सकता है जब कोई भी आदमी बंकसे नकद पैसा न निकाले उसे जो भी पैसा देना हो वह चकसे ही दे और जिसे चक दिया जाय वह भी इस चकके पैसे बंकसे लेनेके लिए जानेके बजाय अपने बंकमें उस चकको ही जमा कराये। पूरी तरह तो ऐसा कहीं नहीं होता। प्रत्येक व्यापारीको ऐसे छोटे-छोटे बिल चुकाने पड़ते हैं जिनमें चकसे काम नहीं चल सकता। अपने मजदूरोंको वह चकसे मजदूरी नहीं चुका सकता और कुछ बड़े वतनदारोंको बंकसे वेतन दे तो भी वे तो अपने घरखर्चके लिए यह चक बंकमें भुनाकर नकद पैसा मांगेंगे ही। इसलिए चकके उपयोगसे नकद पैसेकी आवश्यकता बिलकुल तो नहीं मिट जाती। गांवोंमें और छोटे शहरोंमें भी चकका कारबार बहुत नहीं होता। चकका उपयोग बड़े शहरोंमें और व्यापारियोंके बड़े सौदोंसे संबंधित लेन-देनोंमें ही होता है। लेकिन बड़ी बड़ी रकमोंका लेन-देन तो बड़े सौदोंके सिलसिलेमें ही करना होता है इसलिए यह सच है कि चकके उपयोगसे नकद पैसेकी आवश्यकता बहुत बड़ी मात्रामें घट जाती है।

१६ जिस व्यापारीको अपना लेनदारी रकमके बदलेमें चक मिलता है वह इस चकको अपने बंकमें अपने खातेमें जमा न करा कर उसे बेच देते दूसरे व्यापारीको भी दे सकता है। इस चकको स्वीकार करना या न करना उस व्यापारीकी इच्छाकी बात है। परन्तु चक लिखनेवालेका नाम बाजारमें सुपरिचित हो तो उसका चक लेनेसे व्यापारी लोग इनकार नहीं करते। यह भी होता है कि ऐसा चक बहुत हाथोंमें घूमता रहे और बड़ी मात्रामें लेन-देन निपटानेका साधन बने। लेकिन सभी चक इस तरह बहुत हाथोंमें नहीं घूमते।

ड्राफ्ट

१७ जिसे बंक ड्राफ्ट कहा जाता है वह सराफोंकी हुंडीके जैसी ही एक वस्तु है। एक सराफ दूसरे सराफ पर लिखे वह हुंडी कहलाती है और एक बंक दूसरे बंक पर लिखे वह ड्राफ्ट कहलाता है। अन्तर इतना ही है कि सामान्यतः ड्राफ्ट हुंडियोंकी तरह हाथों-हाथ नहीं घूमता। एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पैसोंकी अदला-बदली करनेके लिए ही उसका

उपयोग होता है। बकाकी नागाए अन्य अजग शहरोंमें होती हैं और जिन्हें पसा एक स्थानसे दूसरे स्थान पर भजना हो उनसे पसा लेकर वह ड्राफ्ट लिख देते हैं और वह पसा भजनकी सुविधा कर देते हैं।

आयात निर्यातके बिल

१८ विदेशोंके साथ होनेवाले आयात निर्यातके व्यापारके सबधमें भी एक देशसे दूसरे देशको वास्तवमें नकद पसा या सोना चादी हमेशा नहीं भेजा जाता। हर देशको अपने आयात और निर्यातके अन्तर जितना ही सोना चादी किस्तमें भेजना पडता है। देश विदेशमें अपनी शाखाए रखनेवाले बडे बकोंके द्वारा आयात निर्यातके बिल आपसमें मिलाकर बराबर किये जाते हैं। लेकिन इस तरहके व्यवहारमें यह प्रश्न खडा होता है कि हर देशका द्रव्य अलग प्रकारका होनेके कारण विभिन्न प्रकारके द्रव्यका मूल्य एक-दूसरेके साथ कैसे निश्चित किया जाय। हम इसकी विस्तृत चर्चा आन्तर राष्ट्रीय व्यापार सबधी लेन-देनके प्रकरणमें करेंगे।

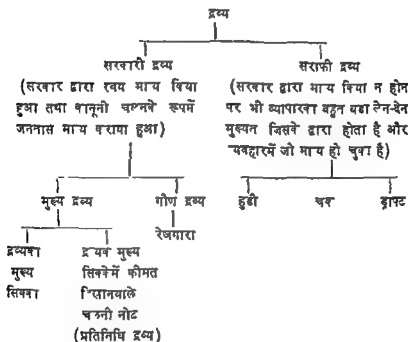
१९ इतनी चर्चा परसे मालूम होगा कि सोने चादीके सिक्के ही मुख्य द्रव्य नहीं हैं। लगभग सभी देशोंमें इनका स्थान चलनी नोटोंने ले लिया है। लेकिन सभ्य माने जानेवाले किसी भी देशके लेन-देनका व्यवहार देखें, तो जान पडेगा कि लेन-देनके साधनके तौर पर नोटका स्थान भी अब मुख्य नहीं रहा। यह स्थान अब हुडी चक और ड्राफ्टने ले लिया है। द्रव्य बाजारमें नोटका भी बहुत गौण स्थान है। यदि हम सोने चादीके सिक्कों और सरकारी चलनी नोटोंको सरकारी द्रव्य कहें और चक हुडी तथा ड्राफ्टको गैर सरकारी अथवा अधिक अच्छे शब्दोंमें सराफी द्रव्य कहें तो इस दो प्रकारके द्रव्यके कार्यकी दृष्टिसे सराफी द्रव्य अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। समाजका बहुत बडा विनिमय-व्यवहार इस सराफी द्रव्यसे ही चलता है। अलबत्ता सरकारी द्रव्य जैसा कानूनी चलन है वैसा सराफी द्रव्य कानूनी चलन नहीं है। सरकारके अथवा सरकार मान्य बकके चलनी नोट अपने लेन देनमें स्वीकारनेसे कोई इनकार नहीं कर सकता जब कि अपने पसेके बदले हुडी या चक लेनेसे इनकार करनेका हर किसीको अधिकार है। इसके सिवा जमीनके लगान अथवा अन्य किसी सरकारी कर वगैराके बदलेमें चक या हुडी नहीं स्वीकार की जाती। वहा तो हमें रुपये या नोट ही देने पडते हैं। इसका कारण यह है कि चक या हुडीके लेने या देनेसे लेन-देनका पूरा निपटारा नहीं होता। जिस बक पर चक लिखा गया हो या जिस सराफ पर हुडी लिखी गई हो वह बक या सराफ उस चक या हुडीको स्वीकारे

तभी अपना पैसा वसूल करनेके लिए जिसने चेक या हुंडी स्वीकार की हो उसका पैसा पूरी तरह वसूल होता है। जैसे रुपये या चलनी नोट देने या लेनेसे ही लेन-देन निपट जाता है वैसा चेक या हुंडीसे नहीं होता। उसमें एक सीढ़ी — चेक या सराफके स्वीकारनेकी — बाकी रह जाती है। इसीलिए सरकार अपने लेनदेनमें चेक या हुंडी नहीं स्वीकार करती। फिर भी, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं आपसके लेन-देनका बहुत बड़ा कामकाज एक दूसरेकी साख पर चलता है और इसीलिए चेक और हुंडी द्रव्यकी तरह काम दे सकते हैं। फिर भी चेक और हुंडी अंतमें तो सरकारी द्रव्यका प्रतिनिधित्व ही करते हैं और इसलिए बहुत ज्यादा काम करते हुए भी उन्हें अपना मूल्य तो सरकारी द्रव्यके रूपमें ही व्यक्त करना पड़ता है। इसलिए यह कहा जायगा कि उसकी जड़में तो सरकारी द्रव्य ही है। इन दो प्रकारके द्रव्यके बीचका भेद एक अर्थशास्त्रीने बहुत सुन्दर रूपक द्वारा समझाया है। वृक्षमें जैसे उसकी जड़ें और तना उसके आधार हैं, जड़ और तनेके बिना वृक्षकी डालियाँ और पत्ते टिक नहीं सकते, वैसे ही सरकारी द्रव्य विनिमय-व्यवहारके वृक्षकी जड़ और तनेके समान है। सराफी द्रव्य उसकी डालियों और पत्तोंके समान है। इसलिए सरकारी द्रव्यके सहारेके बिना सराफी द्रव्य टिक नहीं सकता। फिर भी जिस प्रकार वृक्षमें डालियों और पत्तोंका फैलाव अधिक होता है और समाजके लिए भी वे जड़ और तनेसे ज्यादा उपयोगी सिद्ध होते हैं, उसी प्रकार सराफी द्रव्यका फैलाव और उसकी उपयोगिता समाजमें अधिक होती है।

२० सरकारी द्रव्य और सराफी द्रव्यके अलग अलग स्वरूपोंको एक दूसरे रूपक द्वारा भी समझाया जाता है। हम द्रव्यका मुख्य उपयोग तो विनिमयके लिए ही करते हैं। द्रव्यका मुख्य काम एक आदमीके पासकी चीज दूसरे आदमीके अधिकारमें देना है। इस प्रकार द्रव्य एक पुल है, जिसके जरिये कोई चीज एक आदमीके हाथसे दूसरे आदमीके हाथमें जाती है। नदीके पुलकी हम कल्पना करें। लोग जिस समय नदी पार न भी करते हों उस समय भी पुल तो वहीं खड़ा रहता है। इसी तरह जिस समय सौदे न होते हों और उनके सिलसिलेमें द्रव्यका लेन-देन न होता हो, तब भी सरकारी द्रव्य तो मौजूद ही रहता है। इसलिए सरकारी द्रव्य लगभग नदीके पुलकी तरह है। लेकिन नदीके किनारे मेला भरा हो और आने-जानेके लिए पुल छोटा पड़े, तब हजारों आदमी अपनी नावोंमें बैठकर उनकी मददसे सामनेके किनारे पर पहुँचते हैं। सराफी द्रव्य इन नावोंके जैसा है। वह आवश्यकता पड़ने पर

ही खड़ा किया जाता है और जब आवश्यकता नहीं होती तब समेट लिया जाता है। मेलेके दूसरे दिन कोई आदमी उस पुल पर खड़ा होकर सोचे, तो उसे आश्चर्य होगा कि मेलेमें आये हुए सभी लोग इतने छोटे पुल परसे कैसे नदी पार कर सके?

पिछले प्रकरण और इस प्रकरणमें द्रव्यके कई प्रकारोंका वर्णन किया गया है। उनमें से मुख्य प्रकार नीचेके नक्शेमें बताये जा सकते हैं:



११

चलनके प्रकार

द्वि धातु चलन

१ विभिन्न देशोंके चलनके इतिहासको देखा जाय तो पता चलता है कि संसारके लगभग सभी देशोंमें सोना और चांदी — दोनों धातुओंके सिक्कोंका उपयोग मुख्य द्रव्यके रूपमें हुआ है। प्रत्येक देशकी सरकार सोने और चांदीके सिक्के अपनी टकसालमें ढालती थी और दोनों प्रकारके सिक्के असमर्यादित मात्रामें कानूनी चलनके रूपमें बाजारमें चलते थे। मनुष्य चाहे जिस धातुके सिक्कोंसे अपना कर्ज या देना चुका सकता था और कोई भी मनुष्य किसी भी धातुका सिक्का स्वीकारनेमें आनाकानी नहीं कर सकता था।

२ जब मुख्य द्रव्यके रूपमें दोनों धातुओंके सिक्के चलते हों तब इन सिक्कोंकी अदला-बदली किस अनुपातमें होनी चाहिये यह कानूनन यदि निश्चित न किया गया हो तो सोने और चांदीके बाजार भावके आधार पर यह बात निश्चित होती है। परन्तु जब तक धातुके बाजार भावके आधार पर प्रत्येक सिक्केका मूल्य निर्धारित करनेकी जरूरत पड़े तब तक यह चलन व्यावहारिक नहीं कहा जा सकता। द्वि धातु चलनकी पद्धति अपने सच्चे स्वरूपमें तभी व्यवहारमें आ सकती है जब दोनों धातुएं खुले रूपमें टकसालमें स्वीकार की जायें, देनदारको बिना भी खास तरह किसी भी धातुके सिक्के चुकानेका अधिकार हो और दोनों धातुओंके सिक्कोंकी कीमतका अनुपात कानून द्वारा निश्चित किया जा चुका हो। इसके सिवा कानूनन निर्धारित दोनों धातुओंके सिक्कोंका विनिमय-अनुपात तथा दोनों धातुओंके बाजार भावका अनुपात एक ही हो, तभी द्वि चलनकी पद्धति टिक सकती है। क्योंकि दोनों प्रकारके सिक्कोंमें उपयोग की गई धातुओंकी बाजार-कीमतमें थोड़ासा भी फर्क हो तो सराफ उसका लाभ उठानेकी घातमें ही बैठे रहते हैं। तुरन्त ही ग्रेशमका सिद्धान्त अपना काम करने लगता है। धातुके हिसाबसे अधिक कीमतवाले सिक्के बाजारसे गायब होने लगते हैं। अधिक कीमतकी धातुके सिक्के देशके बाहर जाने लगते हैं, गलकर धातुके रूपमें बदल जाते हैं अथवा जमीनके नीचे दब जाते हैं।

३ द्वि-धातु चलनकी यह पद्धति इंग्लैंडमें सन् १८१६ तक, हमारे देशमें १८३५ तक तथा यूरोपके अन्य देशोंमें १८७४ तक काफी प्रचलित रही।

इसका कारण यह है कि इससे पहले लगभग २०० वर्षके अरसेमें सोने और चांदीका भाव १ : १५½ के अनुपातमें बहुत-कुछ स्थिर रहा था। सन् १८५० में आस्ट्रेलिया तथा कैलिफोर्नियामें सोनेकी नई खानोंकी खोज हुई उसके बाद चांदीकी तुलनामें सोनेका भाव कुछ घट गया। फिर भी दोनों धातुओंके भावका अनुपात १ : १५का बना रहा। सन् १८७१ के बाद दोनोंके अनुपातमें भारी फर्क हो गया। उस वर्षमें चांदीका भाव गिरने लगा। १८७१ में दोनों धातुओंके भावोंके बीचका अनुपात १ : २० हो गया और १९वीं शताब्दीके अंत तक तो यह अनुपात १ : ३८ तक पहुंच गया।

लंगड़ा चलन

४ इसलिए यूरोपके जो देश द्वि-धातु चलनका आग्रह रखते थे उन्हें उसे टिकाए रखनेमें बड़ा कठिनाई पड़ने लगी। उन्होंने जनताके लिए अपनी टकसालोंमें चांदीके सिक्के ढालना बंद कर दिया। सोनेके सिक्कोंके लिए टकसालें खुली रखीं, परन्तु इसके साथ साथ प्रत्येक देशकी सरकारने स्वयं चांदीके सिक्के ढालना भी जारी रखा। इसके सिवा प्रत्येक देशकी सरकारने दोनों धातुओंके सिक्कोंकी कीमतका अनुपात कानून द्वारा निर्धारित कर दिया तथा दोनों धातुओंके सिक्कोंको अमर्यादित मात्रामें कानूनी चलनके रूपमें चलन दिया। परन्तु कानून द्वारा निर्धारित कीमतकी अपेक्षा चांदीकी बाजार कीमत कम थी, इसलिए चांदीके सिक्के कमजोर या बुरे थे। कमजोर सिक्कोंको बलवान सिक्कोंके साथ चलना पड़ता है तब कमजोर सिक्कोंको लंगड़ाना पड़ता है। इस कारणसे इस पद्धतिको लंगड़े चलनकी पद्धति कहा जाता है। इस पद्धतिमें जो धातु बाजार भावकी दृष्टिसे सस्ती हो उसीके सिक्के चलनमें रहते हैं। बाजार भावकी दृष्टिसे अधिक कीमती सिक्के बाजारसे लुप्त हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप लेन-देनके व्यवहारमें अनेक कठिनाइयां खड़ी हो जाती हैं।

स्वर्ण-चलन

५ इन कठिनाइयोंके कारण धीरे धीरे संसारके सारे ही देश सोनेके चलन पर आ गये। सोनेका चलन शुद्ध तब कहा जायगा जब सोना लेकर टकसालमें जानेवाले आदमीको उतनी कीमतके सोनेके सिक्के ढाल दिये जायं, जिस सिक्केको गला डालना हो वह बिना किसी प्रतिबंधके अपने पासके सिक्के गला सके और गलाने पर उनमें से पूरी कीमतका सोना निश्चित रूपमें निकले। इसके सिवा प्रत्येक मनुष्यको सोनेका आयात निर्यात करनेकी पूरी

स्वतन्त्रता होनी चाहिये। जिस देशमें कागजी द्रव्य प्रचलित हो उस देशमें कागजी नोट रखनेवाले आदमीको मागने पर नोटके बदलेमें नोट पर छपे अनुसार सोनके सिक्के मिलनेकी व्यवस्था होनी चाहिये।

६ सन् १९१४ तक इंग्लैंड फ्रान्स अमेरिका जर्मनी आदि देशोंमें शुद्ध सोनका चलन प्रचलित था। परन्तु प्रथम विश्वयुद्धके समयमें इन सब देशोंमें सोनके सिक्के चलने बन्द हो गये। युद्धके कारण विदेशोंसे कोई भी वस्तु खरीदनी हो तो सोना दिये बिना वह मिल नहीं सकती थी। अतः विदेशोंके साथ चलनवाले व्यवहारके लिए सोना रखकर देशके भीतरका सारा आर्थिक व्यवहार इन देशोंमें केवल कागजी नोटों पर चलने लगा। नोटके बदलेमें माग करनेवालेको सोनेके सिक्के पानेका जो अधिकार था वह स्थगित कर दिया गया। लोगोंको नोटोंसे अपना आर्थिक व्यवहार चलानेकी आदत हो गई इसलिए द्रव्यशास्त्री सोचने लगे कि शुद्ध सोनके सिक्कोंसे लेन-देन चलाना बहुत खर्चीला और अनावश्यक है। अतः एसी कोई पद्धति खोज निकालनी चाहिये जिससे सोनेके सिक्कोंका उपयोग किये बिना ही स्वर्ण चलनके सारे तत्त्व सुरक्षित रहे।

स्वर्ण-पाट चलन

७ सन १९२५ में इंग्लैंडने अपने यहा कानूनसे इस प्रकारका नया चलन आरंभ किया। इस प्रथाको शुद्ध स्वर्ण चलनसे अलग दिखानेके लिए स्वर्ण-पाट चलनका नाम दिया गया। अंग्रेजीमें इसे गोल्ड बुलियन स्टैण्डर्ड कहा जाता है। उसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं

(१) पहलेके समान लोगोंके लिए सोनके सिक्के टकसालमें ढाले नहीं जायगे। केवल बैंक आफ इंग्लैण्ड ही आवश्यकता होने पर सरकारी टकसालमें निश्चित कीमतका सोना देकर सोनेके सिक्के ढलवा सकेगा। इसके फलस्वरूप कानूनसे नहीं परन्तु व्यवहारमें सोनके सिक्कोंका बाजारमें उपयोग होना लगभग बन्द हो गया।

(२) बैंक आफ इंग्लैण्डके नोट किसी भी प्रकारकी मर्यादाके बिना कानूनी चलनके रूपमें मुख्य द्रव्य रहेंगे। परन्तु माग करने पर उनके बदलेमें सोनेके सिक्के मिलना बन्द हो गया।

(३) परन्तु बैंक आफ इंग्लैण्डके नोटोंकी साख मानके सिक्का जितनी ही है—इस बातका लोगोंमें विश्वास बनाये रखनेके लिए नीचेकी दो बातें बैंक आफ इंग्लैण्डके लिए अनिवार्य कर दी गई

स्वर्ण-चलनके दोष

१२ अच्छे द्रव्यका एक मुख्य लक्षण यह है कि बाजारकी जरूरतोंके अनुसार उसकी राशिमें घट-बढ़ करनेकी सुविधा होनी चाहिये। परन्तु स्वर्ण चलनका सबसे बड़ा दोष यह है कि व्यापारियोंके सट्टेसे बाजारके भावोंमें जब उथल-पुथल मच जाता है तब भावोंको स्थिर बनानेके लिए चलनकी राशिमें एकदम आवश्यक घटती-बढ़ती करना सरकारके लिए सभव नही होता। (चलनकी राशिका बाजारके सामान्य भावोंसे साथ क्या सम्बन्ध है इसकी चर्चा हमने द्रव्यके मूल्य तथा महगाईवाले अध्यायमें की है।) हमारे पास सोनेकी जो कुल राशि है उसकी तुलनामें सोनेकी खानोंसे जो सोना प्रतिवर्ष निकलता है उसकी राशि बहुत थोडी होती है। मान लीजिये कि बाजारमें मदी आ गई है और उसे दूर करनेके लिए स्वर्ण चलनकी राशिमें वृद्धि करना आवश्यक हो गया है। अब खानोंसे सोनेका उत्पादन बढानेका प्रयत्न *किया जाय तो भी उस अधिक उत्पादनकी राशि इतनी थोडी होती है कि* बाजारके गिरे हुए भावोको ऊचा चढानेके लिए चलन राशिमें आवश्यक वृद्धि नही की जा सकती। इसके अतिरिक्त सोनेका उत्पादन इतनी मन्द गतिसे होता है कि चलनकी आवश्यक वृद्धि बाजारमें बहुत देरसे पहुच पाती है। कभी कभी तो ऐसा भी होता है कि अतिरिक्त सोना बाजारमे इतनी दरसे पहुचता है कि उस समय तक उसकी आवश्यकता ही नही रह जाती। इस प्रकार देरसे आनेवाले सोनेके कारण कभीके बजाय बाजारमें आवश्यकतासे *अधिक पूर्तिकी समस्या खडी हो जाती है।*

१३ परन्तु बडी कठिनाई तो उस समय खडी होती है जब युद्धके समय अथवा ऐसे दूसरे सकटके समय लोग अपने पास कागजी नोट रखनेके बजाय सोना रखनेके लिए अधिक प्रेरित होते है। अपने पासके नोटोंके बदलेमें सोना पानेके लिए लोग ऐसे समय सरकारी बैंकके चलन विभाग पर धावा बोल देते है। लेकिन बैंकके पास सोनेकी राशि तो मर्यादित ही रहती है। ऐसे समय विशेषत कमजोर या गरीब देशोंमे नोटोंके बदलेमें लोगोको सोना दिया ही नहीं जा सकता। बलवान और धनी देश भी सोना लेनेके लिए बहुत बडी सख्यामें आनेवाले लोगोकी माग पूरी नही कर पाते। इस कारणसे सोनेका चलन टूट जाता है। प्रथम महायुद्धके समयमे इंग्लैण्ड जैसे धनी देशको भी सोनेका चलन छोड देना पडा था। १९२५ में वह बडी कठिनाईसे स्वर्ण-पाट चलन पर आया था। परन्तु १९३१ से तो सोनेका चलन उसे पूरी तरह

छोड देना पडा। १९३९ से १९४५ के दूसरे महायुद्धके बाद कोई भी देश स्वर्ण चलनको फिरसे अपना नही सका।

१४ सानके बारमें दूसरी कठिनाइ यह खडी हो गई है कि प्रथम महायुद्धके बाद एक देशसे दूसरे देशमें सोनेका हर फर स्वतत्रतासे होना बन्द हो गया है। जिस किसी देशके हाथमें सोना आता है वह सोनेको दबा कर बठ जाता है। अत बाजार भाव पर या विदेशी व्यापार पर उस सोनेका जो असर पडना चाहिय वह नही पड सकता। दूसरा विश्वयुद्ध आरभ हुआ उससे पहले ससारके स्वर्णकी कुल राशिका दो तिहाई भाग अमरिका तथा फ्रान्स दो ही देश इकट्ठा कर चुके थ। इस कारणसे अन्य सारे देशोंको सोनके एक तिहाइ भागसे ही अपना आर्थिक व्यवहार चलाना पडा।

१५ अनेक अर्थशास्त्रियोंने तो दुनियामें फिरसे स्वर्ण चलन आरभ होनेकी आशा ही छोड दी है। और वस्तुतमें अर्थशास्त्रियोंको स्वर्ण चलनकी आवश्यकता भी नही जान पडती। बात यह है कि ससारका विनिमय-व्यवहार आजकल इतना ज्यादा बढ गया है कि यदि सब शुद्ध स्वर्ण चलन प्रचलित करना हो, तो ससारमें उपलब्ध स्वर्णकी वर्तमान राशि इसके लिए पर्याप्त हो ही नही सकती।

१२

हमारे देशका चलन रुपये और नोट

१ विनिमयके साधनके रूपमें द्रव्यकी व्यवस्था अत्यन्त प्राचीन कालसे हमारे देशमें चली आइ मालूम होती है। उस प्राचीन कालमें द्रव्यके लिए ढोर डगरका — विशषत गायोंका उपयोग होता था। हमार प्राचीन ग्रन्थोंमें इस प्रकारके वाक्य उपलब्ध ह 'अमुक वस्तुओंका मूल्य अमुक गायें था' या 'अमुक पडितको अमुक गायें पारितोषिकमें मिली।' एसा लगता है कि सोन या चादीके चलनका प्रचार इ० स० पूव तीन सौ स भी अधिक वर्षोंस हो रहा था। इस कालके अनेक सिक्के प्राप्त हुए ह। सम्राट अशोकके समयमें तो सोना-चादीके सिक्कोंका प्रचार काफी व्यापक बन गया था।

२ हमारा देश एक महाद्वीपके समान है। उसमें अनेक स्वतत्र राज्य थ। इसलिए अलग अलग राज्योंमें सोना और चादी दोनों धातुओंके विभिन्न प्रकारके सिक्के चलते थे। एसा कहा जा सकता है कि हमारे यहा द्वि-चलन पद्धति थी। चादीके सिक्के रूपये कहे जाते थ और सोनके सिक्के मुहरें होन

दीनार तथा मुहर कहे जाते थे। उत्तर भारतमें मुहरका अधिक प्रचार था और दक्षिण भारतमें हुणका अधिक प्रचार था। ताम्र सिक्के दाम कहे जाते थे। टकसालें अधिकतर अकबरके लोगोंके हाथमें होती थीं, यद्यपि टकसाल चलानेके लिए सरकारकी इजाजत लेनी पड़ती थी। इस तरह सिक्कोंके विविध प्रकार होनेके कारण एक राज्यके सिक्के दूसरे राज्यमें तौल कर और धातुकी बनकी परीक्षा करके ही स्वीकार किये जाते थे।

कम्पनी रुपया १८३५ से १८९३

३ अंग्रेजी सत्ताकी स्थापनाके बाद ईस्ट इंडिया कम्पनीने टकसालमें रुपये ढालना आरम्भ किया। ये रुपये कम्पनी कहे जाते थे। इससे पहलेके रुपये बादशाहीके नामसे पहचाने जाते थे। कम्पनी सरकारके रुपयेको उसकी किनार वगैराके कारण पहचाननेमें आसानी होती थी इसलिए वह अधिक लोकप्रिय हो गया। सन १८३५ में कम्पनी सरकारने द्विचलनकी पद्धति हटा दी और ११/१२ शुद्ध चांदीवाले एक तोला (१८० ग्रेन) वजनके रुपयेको अमर्यादित मात्रामें कानूनी चलनका रूप दिया। इसके सिवा जो आदमी चांदी लेकर आये उसे उतनी कीमतके रुपये ढाल देनेके लिए कम्पनी सरकारने अपनी टकसालें खोल दीं। जिस व्यक्तिको जरूरत होती उसे पांच दस और तीस रुपयेवाली सोनेकी मुहर भी बाजार भावसे सरकार देती थी। सन् १८४१ में चांदी और सोनेके भावका अनुपात १५ : १ निश्चित करके उस भावसे सरकारके सारे खजानोंमें स्वर्ण मुहर स्वीकार करनेकी घोषणा की गई। परन्तु सन् १८४८–४९ में आस्ट्रेलिया तथा केलिफोर्नियामें सोनेकी नई खानें खोज निकाली गईं जिसके फलस्वरूप चांदीके अनुपातमें सोनेके भाव गिर गये। इसलिए ग्रेशमके सिद्धान्तके अनुसार रुपये चलनसे लुप्त होने लगे। सरकारका लगान वगैरा लोगोंने कम कीमतवाली मुहरोंमें चुकाना शुरू कर दिया। इससे सरकारको परेशानी होने लगी। और उसने १८५० में सोनेकी मुहरोंका चलन बन्द कर दिया। कुछ वर्ष बाद चांदीके उत्पादनकी तुलनामें चांदीकी मांग ज्यादा बढ़ गई। तब टकसालोंमें मेहनतसे ढाले हुए रुपयोंको लोग गलाने लगे। व्यापारी सोनेके चलनकी मांग करने लगे। इसके उपायके रूपमें सरकारने प्रान्तीय बैंककी मुहरवाले स्वर्ण पाटका चलन शुरू कर दिया। अमरिकाके गृहयुद्धके दिनोंमें अमेरिकासे रुईका निर्यात नहीं हो सका। उस समय भारतकी रुईके बहुत ऊंचे भाव मिले और रुईके निर्यातके बदलेमें बहुत बड़ी मात्रामें सोना भारतमें आया। इसलिए सन १८६८ में भारत-सरकारने पुनः घोषणा करके इंग्लैण्डके पौंड और आधे पौंडको क्रमसे रु० १० और रु० ५ भाव निर्धारित करके सरकारी

खजानामें उसका लेन-देन शुरू कर दिया। सन १८७४ के बाद यूरोपके अधिकांश देशोंने स्वर्ण चलन फिरसे आरंभ कर लिया। इससे पुनः सोनेकी माग बढ़ी और सोनेके भाव चढ़ने लगे। ये भाव यहां तक बढ़े कि रुपयेकी कीमत दो शिलिंग (१० रुपयेके एक पौंडके हिसाबसे) गिरते गिरते सन १८९२ में १४ पेंस तक पहुंच गई। भारतकी सरकार सदा ब्रिटिश व्यापारियों तथा अधिकारियोंका ही हित देखती थी। इसलिए भारतके रुपयेकी तुलनामें पौंड इतना महंगा हो जाय यह सरकारको पुसा नहीं सकता था। कारण जब पौंडकी कीमत १० रु० थी तब इंग्लैण्डका एक पौंडका माल भारतके बाजारमें १० रुपयेमें बिक सकता था। वही माल अब १४ पेंसके रुपयेके भावसे भारतमें १७ रुपयेमें बिकने लगा। भारतमें बने हुए तथा दूसरे देशोंसे आनेवाले मालकी तुलनामें इंग्लैण्डका माल लोगोंको बहुत महंगा पड़ता था और इस कारणसे भारतमें उसे बेचनेमें कठिनाई होती थी। इसके सिवा भारतमें नौकरी करनेवाले अंग्रेज अधिकारियोंकी स्थिति भी कठिन हो गई। अपने वेतनसे बचाये हुए रुपयोंके पौंड बनाकर इंग्लैण्ड भेजते समय जो पौंड पहले उन्हें १० रु० में मिलता था वह अब १७ रु० में मिलने लगा। इसलिए उन्हें भी नुकसान होने लगा। फिर कंपनी सरकारने जिस समय भारतका राज्यका हुकूमत ब्रिटिश सम्राट तथा पार्लमेंटको सौंपी उस समय भारतको जीतनेमें तथा १८५७ के भारतीय सिपाहियोंके विद्रोहको शांत करनेमें कंपनी सरकारका जो खर्च हुआ था वह सारा खर्च भारत-सरकारके नाम लिखा गया था। इसके अलावा अफगान युद्ध तथा ऐसे अन्य युद्धोंका खर्च भी भारत-सरकारके नाम लिख लिया गया था। इंग्लैण्डमें भारत-मंत्रीका जो आफिस रखा गया था उसका खर्च भी भारतके नाम लिखा जाता था। उसी अरसेमें भारतमें रेल चालू की गई। उसका कर्ज भी भारतके सिर आया। इसके सिवा भारतमें नौकरी करके इंग्लैण्ड लौटे हुए अंग्रेज अधिकारियोंको प्रतिवर्ष पेंशन भी इंग्लैण्ड भेजनी होती थी। भारत-मंत्री इंग्लैण्डमें भारत-सरकारके लिए आवश्यक फर्नीचर सामान वगैरा खरीदता था। ऐसा सब भारतके नामसे इंग्लैण्डमें होनेवाला खर्च तथा इंग्लैण्डमें भारत पर चढ़े हुए कर्जका ब्याज—यह सब पैसा भारतको प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड भेजना पड़ता था। इस रकमको होम चार्जेज कहा जाता था। हम इसे इंग्लैण्डको दिया जानेवाला खण्डियाना कह सकते हैं। यह खण्डियाना पौंडके रूपमें देना पड़ता था और पौंड बहुत महंगा हो गया था इसलिए भारत-सरकारको प्रतिवर्ष उतने ही कर्जके लिए अधिक रुपये देने पड़ते थे। इससे बजटमें भारी घाटा होता था। इन सब कारणोंसे

भारत-सरकारकी इच्छा किसी भी तरह रुपयेकी कीमत बढ़ानेकी हुई। भारत सरकारने इंग्लण्डमें भारत मन्त्रीको पत्र लिखे जिनमें लिखा कि लोगोंके लिए रुपये ढालनेवाली भारतीय टकसालें बन्द करनेकी सत्ता हमें दीजिये और किसी भी तरह स्वर्ण चलन जारी करनेकी सत्ता दीजिये। इस परसे एक कमेटी नियुक्त की गई जिसकी सिफारिशोंके आधार पर सन् १८९३ में भारत सरकारने एक कानून पास करके लोगोंके लिए रुपये ढालनेवाली टकसालें बन्द कर दीं और यह घोषणा की कि जो लोग सोनेके सिक्के या सोनेके पाट लेकर टकसाल पर जायेंगे उन्हें १६ पेंसका एक रुपयेके भावसे रुपये दिये जायेंगे। सरकारने कानूनसे रुपयेकी कीमत अधिक निर्धारित कर दी इसलिए बाजारमें भी धीरे धीरे रुपयेकी कीमत १६ पेंस मानी जाने लगी। सन् १८९८ में दूसरा कानून बनाकर सरकारने यह तय कर दिया कि रुपयेके साथ इंग्लण्डका पौंड भी १६ पेंसकी दर पर अर्थात् १५ रुपयेका १ पौंडके हिसाबसे कानूनी चलनके रूपमें अमर्यादित राशिमें चल सकेगा।

काउंसिल बिल और रिवर्स काउंसिल बिल

४ १६ पेंसकी (विनिमय) दरको टिकाये रखनेके लिए तथा इंग्लण्ड और भारतके बीच परस्पर इस दर पर पैसेका लेन-देन हो सके इसके लिए जो प्रथा डाली गई उस पर हम यहां विचार करेंगे। इंग्लण्डका जितना माल भारतमें आयात होता था उसकी अपेक्षा सामान्यतः अधिक कीमतके मालका भारतसे इंग्लण्डके लिए निर्यात होता था। इस आयात निर्यातकी रकमें दोनों देशोंके व्यापारी बैंकों द्वारा चुकाते थे उसके बाद भी इंग्लण्डके व्यापारियोंको काफी पैसा भारतमें भेजना पड़ता था। यह पैसा भारतके व्यापारियोंको रुपयेके रूपमें देना होता था। इस प्रकार पैसा लेने या भेजनेका काम भी व्यापारी लोग बैंकोंके द्वारा ही कर सकते थे। दूसरी ओर भारत-सरकारको इंग्लण्डको सालियाना पौंडके रूपमें भेजना पड़ता था। यह सालियाना भारत-सरकारसे वसूल करनेके लिए भारत-मंत्री भारत-सरकारके नामकी रुपयोंकी हुंडी इंग्लण्डमें बेचनेके लिए निकालता था। भारत और इंग्लण्डके बीच चलनेवाले आयात निर्यातके व्यापारके सम्बन्धमें जो अतिरिक्त रकम इंग्लण्डको भारत भेजनी होती उसके लिए इंग्लण्डके बैंक पौंड देकर ये हुंडियां खरीद लेते थे। ऐसी हुंडियोंको काउंसिल बिल कहते थे। भारत और इंग्लण्डके बीचका लेन देन पौंड और रुपयेकी हुंडियों द्वारा होता था। इसलिए ऐसी हुंडियोंकी खरीद बिक्रीके समय रुपये और पौंडके भावका जो अनुपात निश्चित होता उसे विनिमयकी दर कहते थे। काउंसिल बिलोंकी बिक्रीमें रुपये और पौंडके बीचके विनिमयका भाव

१६ पेंसके एक रुपयेके आसपास रहता था। निश्चित भावके अनुसार ठीक १६ पेंस न कहकर उसके आसपास इसलिए कहा गया है कि इस भावका आधार काउन्सिल बिलकी मांग और पूर्ति पर रहता था। इंग्लैण्डका व्यापारी यदि पौंड अथवा सोना ही भारतमें भेजे तो उसे भेजनेका खर्च लगता और उसके पहुंचनेमें जितने दिन लगते उतने दिनके ब्याजकी हानि भी उठानी पड़ती। इसलिए यदि बिल कम हो और उनकी मांग ज्यादा हो तो पैसे भेजनेमें वस्तुतः जितना खर्च लगता उतनी रकम अधिक देकर व्यापारी यह बिल खरीदनेके लिए तैयार हो जाता। इसी तरह यदि बिलोंकी मांग कम हो तो भारत-मंत्रीको भारतसे पैसे मंगानेमें जो खर्च होता उतनी रकम कम लेनेके लिए व्यापारी तैयार हो जाता। यह अंतर पैसे भेजनेमें वस्तुतः होनेवाले खर्चसे अधिक या कम तो कभी हो ही नहीं सकता था।

५ भारतको रुपये भेजना चाहनेवाला इंग्लैण्डका व्यापारी भारत-सरकार पर लिखी हुई हुंडिया भारत-मंत्रीसे खरीदकर डाक द्वारा अपने साहुकारको भेज देता या तारसे उसे सूचना कर देता था। भारतका व्यापारी यहांके सरकारी खजानेमें उन्हें दिखाता कि उसे रुपये मिल जाते थे। इस प्रथासे इंग्लैण्डकी सरकार भारत-सरकार पर निकलती रकम पौंडके रूपमें घर बैठे वसूल कर सकती थी और इंग्लैण्डके व्यापारीको भारत पैसे भेजनेकी सुविधा मिलती थी। भारत-सरकारका लेन-देनका खाता भारत-मंत्रीके यहां चालू रहता था इसलिए जरूरत पड़ने पर भारत-सरकार भारत मंत्री पर पौंडकी हुंडिया भी बेचनेके लिए निकालती। इस प्रकारकी पौंडकी हुंडियाको रिवर्स काउन्सिल बिल कहा जाता था। भारतके व्यापारी तथा यहां नौकरी करनेवाले अंग्रेज अधिकारी जो पौंडके रूपमें अपने पैसे इंग्लैण्ड भेजना चाहते थे, वे रिवर्स काउन्सिल बिल खरीदते थे। इसका भाव भी रुपयेके १६ पेंसके आसपास रहता था। भारत-मंत्रीको काउन्सिल बिल बेचनेके अवसर तो बहुत बार आते थे पर जब कि इंग्लैण्डकी सरकारके लिए रिवर्स काउन्सिल बिल बेचनेके अवसर बहुत कम आते थे। क्योंकि सामान्यतः भारतके आयातकी अपेक्षा मालका हमारा निर्यात अधिक रहता था। अकाल जैसे संकटके समय भारतका निर्यात घट जाता तभी 'रिवर्स काउन्सिल बिल' बेचनेकी आवश्यकता उत्पन्न होती थी।

रुपयेकी कीमतमें उथल-पुथल १८९३ से १९२७

६ व्यापारके लिए टकसाल बंद करनेके बाद केवल सरकार ही रुपये ढालनेका काम करती थी। इसलिए सरकारकी नीयत बिगड़ गई। वह धीरे

भारतको बड़े संकटका सामना करना पड़ता। भारतके विदेशी व्यापारका बहुत बड़ा भाग तो इंग्लैण्डके साथ होनेवाले उसके व्यापारका ही है। इसलिए भी स्टर्लिंगके साथ रुपयेको जोड़ना आवश्यक है।

१६ इसके विरुद्ध भारतीय नेताओंका तर्क इस प्रकार था :

(१) रुपयेका स्टर्लिंगके साथ जोड़नेसे स्टर्लिंगके भावमें जो परिवर्तन होंगे वे ही परिवर्तन रुपयेके भावमें भी होंगे। और स्टर्लिंगके भावमें होनेवाले परिवर्तन तो इंग्लैण्डकी आर्थिक और व्यापार-सम्बन्धी परिस्थितिके अनुसार होते हैं। इसलिए रुपयेका भारतकी परिस्थिति पर नहीं परन्तु इंग्लैण्डकी परिस्थिति पर आधार रखना होगा। रुपयेको उसके पैरों पर बाजारमें खड़ा रहने दिया जाय तो कुछ अस्थिरता अवश्य रहेगी, परन्तु वह भारतकी परिस्थितियोंके अनुसार होगी; उसमें भारतकी परिस्थिति प्रतिबिम्बित होगी।

(२) रुपयेका भाव सोनेके अनुपातमें अत्यधिक घट जानेके कारण सोनेका भाव खूब चढ़ गया। इस कारण स्वर्ण चलनवाले देशोंके सिक्कोंके — उदाहरणके लिए डालर और कुछ समय तक जापानके यनके भाव बहुत ज्यादा ऊंचे चढ़ गये। इससे उन्हें भारतसे कच्चा माल खरीदनेमें बड़ा लाभ हुआ। इंग्लैण्डने स्वर्ण-चलनका त्याग कर दिया, उसके बाद जापानने कुछ समय तक अपने यहां स्वर्ण-चलन जारी रखकर इस परिस्थितिसे बड़ा लाभ उठाया। जापानके १०० यनकी कीमत सामान्यतः रु० ८५ रहती थी। लेकिन इंग्लैण्डने स्वर्ण-चलन छोड़ दिया तथा जापानने चालू रखा, इससे जापानी १०० यनकी कीमत बढ़कर रु० १३५ तक पहुंच गई। उस समय उसने भारतसे खूब खरीद कर डाली। पहले उसे १०० यनके बदलेमें भारतीय बाजारमें रु० ८५ का माल मिलता था, उसके बदले अब उसे रु० १३५ का माल मिलने लगा। अपनी आवश्यक खरीद करनेके बाद जापानने स्वर्णका चलन छोड़ दिया। इसलिए पुनः यनका भाव गिरकर लगभग रु० ९० हो गया। उस समय जापानको अपना तैयार माल भारतके बाजारमें अन्य देशोंकी तुलनामें खूब सस्ता बेचनेकी सुविधा मिली। वह १०० यन देकर रु० १३५ का माल भारतसे खरीदकर ले गया। बादमें उसी कच्चे मालसे तैयार किया हुआ १०० यनका (उतरी हुई कीमतवाला यन) माल वह भारतके बाजारमें रु० ९० में बेचने लगा। दूसरे विश्वयुद्धसे पूर्व जापानी माल जो बेहद सस्ता मिलता था उसके पीछे यह रहस्य था। विनिमय-दरमें चालबाजी करके जापान जो खेल खेल गया वैसा खेल बार-बार नहीं खेला जा सकता। क्योंकि उसके फलस्वरूप दो राष्ट्रोंके बीच भयंकर बरबादी पैदा होनेकी संभावना रहती

है। दूसरा राष्ट्र भी यही प्रयोग पहले राष्ट्र पर कर सकता है अथवा उस देशका माल अपने देशमें आनेसे रोक सकता है। इस तरह दोनों देशोंके बीच युद्धकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

(३) सोनेके भाव बहुत ऊंचे चढ़ जानेके कारण भारतके लोग लालचमें फंसकर अपने पासका सारा सोना बेचने लगे। १९३१ से १९३६ के जून अन्त तक हमारे देशसे २७८ करोड़ रुपयेका सोना बाहर चला गया। यह सोना भारत पुनः वापस ले सकेगा इसमें शंका ही है। उस समयके महंगे भावसे बिका हुआ हमारा सोना आजके भावको देखते हुए बहुत सस्ता बिक गया।

१७. हमारे रुपयेके इतिहासकी यह बहुत स्थूल और अल्प-सी झांकी है। हम यहां उसकी सूक्ष्म और अधिक चर्चामें नहीं उतरे हैं। फिर भी जिन मोटी मोटी बातोंकी चर्चा हमने की है उससे इतना तो स्पष्ट मालूम होता है कि विदेशी राज्यमें हमारे रुपयेके चलनका परिवर्तन हमारे हितकी दृष्टिसे नहीं परन्तु ब्रिटिश व्यापारके हितकी दृष्टिसे होता था। दूसरे महायुद्धके दिनोंमें सरकारने सारे पुराने रुपये चलनसे खींचकर बहुत ही कम कीमतके रुपये बनाये। ऐसे ही रुपये आजकल चल रहे हैं। स्वराज्य-युगमें भी कागजी द्रव्य हमारे देशमें बहुत अधिक बढ़ गया है जिसे सोना-चांदीका लगभग कोई सहारा नहीं है।

हमारा नोटका चलन

१८. सन् १८०६, १८४० तथा १८४३ में क्रमशः बंगाल, बम्बई और मद्रास प्रेसिडेन्सीके बैंकोंको चलनी नोट छापनेकी सत्ता दी गई थी। ये नोट तीनों विभागोंके केवल शहरोंमें ही चलते थे। सन् १८६१ में पेपर करेन्सी एक्ट पास किया गया। इस एक्टके अनुसार कलकत्ता, बम्बई और मद्रास इन तीन स्थानोंसे नोट छापने शुरू किये। बादमें रंगून, कराची, कानपुर और लाहौरके चार केन्द्रोंको उनके साथ जोड़कर कुल सात केन्द्र बना दिये गये। ये नोट अपने अपने विभागमें कानूनी चलन माने जाते थे। ऐसा तय किया गया था कि जिस केन्द्रसे नोट छापे गये हों उस केन्द्रके करेन्सी आफिससे कोई व्यक्ति नोटके रुपये लेना चाहे तो उसे रुपये मिल सकते हैं। साथ ही रेलवे कंपनियों तथा यात्रियोंको किसी भी सरकारी खजानेसे नोटके रुपये देनेकी व्यवस्था की गई थी।

१९. इन नोटोंको सोने-चांदीका सहारा होना चाहिये। इसके लिए १८६१ के कानूनसे यह निश्चित किया गया कि जितने नोट छापे जायं उनके बदलेमें ४ करोड़ रुपये तककी भारत-सरकारकी जमानतें और बाकीके

नकद रुपये अमानतके रूपमें रखे जाने चाहिये। सरकारी जमानतें इस क्रममें बढ़ाई गई सन १८७१ में ६ करोड़की १८९० में ८ करोड़की १८९७ में १० करोड़की और १९०५ में १२ करोड़की। इसके सिवा १९०५ में यह तय किया गया कि २ करोड़ रुपये तककी ब्रिटिश जमानतें भी रखी जा सकती है। भारत-सरकारकी जमानतोंको रुपी सिक्युरिटीज कहा जाता है और ब्रिटिश जमानतोंको स्टर्लिंग सेक्युरिटीज कहा जाता है। स्टर्लिंग सेक्युरिटीज में नीचेकी चीजोंका समावेश होता है

(१) बैंक आफ इंग्लैण्डके नोट छापनेवाले विभागसे ली जानेवाली रकम (२) इंग्लैण्डके व्यापारियों पर लिखी हुई तथा ९० दिनमें सिकरनेवाली हुंडियां (३) पांच वर्षमें पकनेवाले ब्रिटिश सरकारके लोन बाण्ड आदि।

सन् १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा उससे पूर्व कुल ६६२२ लाखके नोट छापे गये थे और उनके विरुद्ध नीचेकी अमानतें रखी गई थी

२०५३ लाखकी चांदी भारतमें।
२२५४ लाखका सोना भारतमें।
९१५ लाखका सोना इंग्लैण्डमें।
१००० लाखकी रुपी सेक्युरिटीज।
४०० लाखकी स्टर्लिंग सेक्युरिटीज।

६६२२ लाखके कुल चलती नोट।

२० प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ते ही लोगोंके झुण्डके झुण्ड नोटोंसे रुपये लेनेके लिए करन्सी-आफिसों पर एकत्र होने लगे और युद्धके बादके पहले ८ महीनोंमें १० करोड़ रुपयोंके नोट करन्सी-आफिसोंमें वापिस आये। परन्तु कुछ ही समयमें लोगोंका विश्वास सरकार पर जम गया और नोट फिरसे पहलेकी तरह चलने लगे। सरकारको माल खरीदना था इसलिए वह अधिक नोट छापने लगी। उनके लिए सोना-चांदीकी अधिक मात्रामें अमानत रखना संभव न था। इसलिए सरकार अनेक कानून पास करके जमानतोंकी रकम बढ़ाने लगी। १९१९ के सितम्बर मास तक करन्सी विभागको १२० करोड़ रुपये तककी जमानतें रखनेकी सत्ता प्राप्त हुई। चलनके नोट बढ़ते बढ़ते १९१९ के अंत तक १८० करोड़के हो गये। उनके लिए दी गई जमानतोंमें १०० करोड़की स्टर्लिंग सेक्युरिटीज थी।

२१ सन १९२० में पेपर करन्सी एक्टमें सुधार किया गया और यह ठहराया गया कि जितने नोट छापे जायं उनके लिए ५० प्रतिशत सोना चांदी

अमानतके रूपमें रख जाय और ५० प्रतिशत जमानतें रखी जाय। द्रव्यकी तंगीके मौसमम — किसानोंकी फसल जब बाजारमें आती है तब बाजारम द्रव्यकी तंगी खडी हो जाती है — इसी कानून द्वारा इंपीरियल बैंककी जमानत पर ५ करोड रुपयेके अधिक नोट छापनेकी सत्ता करन्सी विभागको दी गई। १९२३ म इस आंकडेको बढाकर १२ करोड कर दिया गया।

२२ प्रथम महायुद्धके दिनोंमें चलनी नोटोंमें जो वृद्धि हो गई वह उसके बाद स्थायी बन गई। १९३१ म लगभग १६१ करोडके नोट चलनमें थे। अपवादके रूपम उस वर्षको छोडकर १९२० से १९३५ तकके वर्षोंमें कुल नोट १८० करोडके आसपास रहे। १९३५ में कुल १८६ करोडके नोट चलनमें थे।

२३ सन १९३५ म रिजर्व बैंक आफ इंडियाकी स्थापना हुई उसके बादसे नोट छापनेकी सत्ता रिजर्व बैंकको दे दी गई है।

२४ चलनी नोटोंके सिद्धान्तोंकी चर्चा करते हुए हमने कहा है कि जब किसी सरकार पर संकट आता है तब शायद ही कोई सरकार आवश्यकतासे अधिक नोट छापनेके प्रलोभनसे मुक्त रह सकती है। आज नोटोंका अति प्रसार (inflation) हो गया है और अभी वह बढता ही जा रहा है। दूसरे विश्वयुद्धसे पूर्व अर्थात १ सितम्बर १९३९ को चलनमें घूमनेवाले नोटोंका हिसाब इस प्रकार था

४४४१ लाखका सोना भारतमें।
५९५० लाखकी स्टर्लिंग सेक्युरिटीज।
७५८७ लाखका धातुका द्रव्य।
३७३९ लाखकी रुपी सेक्युरिटीज।

२१७१७ लाखके चलनी नोट।

नये स्वराज्य-युगमें ता० ३१-५-१९६३ के दिन चलनी नोटोंका हिसाब इस प्रकार था

११७७६ लाखका सोना भारतमें।
१०९०८ लाखकी स्टर्लिंग सेक्युरिटीज।
११८२२ लाखके सिक्के।
१९७७४४ लाखकी रुपी सेक्युरिटीज।
२,१८५० लाखके चलनी नोट छापे।
२२८१४४ लाखके चलनी नोट (चलनमें)।

२५ सन् १९४५ तक भारतीय सरकार इंग्लैण्डकी कर्जदार थी। परन्तु दूसरे महायुद्धके कारण इस स्थितिमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। इंग्लैण्डसे हमारे देशमें आनवाला माल लगभग बन्द जैसा हो गया। हमारे देशसे होने वाले निर्यातको थोड़ा धक्का तो पहुंचा परन्तु वह अधिकांशमें चालू रहा। दूसरी ओर, इंग्लैण्डकी सरकारको इस महायुद्धके सिलसिलेमें भारी खर्च करने पड़े। ये खर्च उसने भारतके मारफत किये। इनमें मुख्य खर्च था अफ्रीकामें इकट्ठी की गई सेनाओं तथा ईरान ईराक आदि देशोंमें सुरक्षित रखी हुई सेनाओंके लिए खुराक और दूसरी सामग्री पहुंचानेका खर्च। इंग्लैण्डकी सरकारके पास यह सब करनेमें समय नहीं थी इसलिए उसने यह सारा माल मुहैया करनेकी जिम्मेदारी भारत-सरकारको सौंप दी और भारत-सरकार इंग्लैण्डकी सरकारके मांगनेपर हमारे देशसे माल खरीदकर अन्य देशोंमें भेजने लगी। हमारे देशसे माल खरीदनेके लिए सरकार रिजर्व बैंकसे करन्सी नोट छपवाने लगी। इन नोटोंके लिए अमानतके रूपमें रिजर्व बैंकको इंग्लैण्डकी सरकारकी जमानतें—जो स्टर्लिंग सिक्युरिटीज कहलाती हैं—प्राप्त हुई। इस प्रकार हम इंग्लैण्डके कर्जदार मिटकर उसके साहूकार बन गये।

१३

द्रव्यका मूल्य और महंगाई-सस्ताई

१ यह कहा जा चुका है कि द्रव्यमें विनिमयका एक सर्वमान्य साधन बननेका गुण होनेके अलावा अन्य सब चीजोंके मूल्यका माप बननेका गुण भी होना चाहिये। द्रव्य इस तरहका माप या गज तभी बन सकता है जब उसके अपने ही मूल्यमें स्थिरता हो। जैसे घड़ीभरमें लम्बा और घड़ीभरमें छोटा होनेवाला गज कपड़े या दूसरी चीजोंकी लम्बाई नापनेके काम नहीं आ सकता वैसे ही द्रव्यके रूपमें काम आनेवाली चीजकी कीमतमें भी समय समय पर परिवर्तन हुआ करे तो लेन-देनका व्यवहार करनेमें बड़ी कठिनाइयां पैदा होती रहें। यहां समय समय का अर्थ जल्दी जल्दी और बार बार इतना ही समझना चाहिये। वैसे मनुष्यकी बनाई हुई किसी भी चीजमें बहुत अधिक स्थिरता तो कहीं भी देखनेमें नहीं आती। मनुष्य जातिने द्रव्यके लिए सोने चांदीको मान इसलिए पसन्द किया है कि अन्य सब चीजोंसे सोने चांदीके भावमें अधिक स्थिरता पाई जाती है। इतना ही नहीं बल्कि जो आंकड़े उपलब्ध हैं उनसे मालूम होता है कि सोने और चांदीके भावका तुलनात्मक अनुपात भी

१६८१ से १८७१ तकके लगभग दो सौ वर्षके समयमें — बीचके १७८१ से १८०० तकके बीस सालके अर्सेके अपवादको छोड़कर जब सोनेका भाव बहुत बढ़ गया था — १ : १५ के आसपास रहा है। सोने चांदीके तुलनात्मक भावोंमें बड़ी उथल-पुथल तो १८७१ के बाद हुई है। तबसे यूरोपके अधिकतर देशोंने अकेले सोनेका चलन आरंभ किया था।

द्रव्यका मूल्य

२. यह तो हुई धातुओंके भावोंकी तुलनाकी बात हुई। लम्बी अवधिमें सोने चांदीके भावोंकी तुलनामें अन्य सब चीजोंके भावोंमें भी परिवर्तन हुआ पाया जाता है। सोने चांदीको बीच यदि हम व्यक्त रूपमें कायम रख जायं तो। इस सोने चांदीके द्रव्य या सिक्कोंसे पुराने समयमें जितनी चीजें खरीदी जा सकती थीं उतनी आज नहीं खरीदी जा सकतीं। आइन-अकबरीमें दिये हुए अलग अलग चीजोंके भावों* और वहांके बाजारके आजके भावोंमें जमीन आसमानका अन्तर दिखाई देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उस समय उतने ही द्रव्यमें अधिक मात्रामें चीजें मिल सकती थीं। द्रव्यके मूल्यकी तुलनामें दूसरी चीजोंका मूल्य कम था। द्रव्य महंगा था और चीजें सस्ती थीं। आज उतने ही द्रव्यमें कम चीजें मिल सकती हैं। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि द्रव्यका मूल्य घट गया है या वह सस्ते हो गये हैं और उनकी तुलनामें चीजें महंगी हो गई हैं। द्रव्यके मूल्यका अर्थ है दूसरी चीजें खरीदनेकी द्रव्यकी

* आइन-अकबरीमें नीचे लिखी चीजें एक रुपयेमें कितनी मिलती थीं यह बताया गया है। इससे हमें यह कल्पना आ सकती है कि अकबरके जमानेमें कितनी ज्यादा सस्ती थी।

	सेर (८० तोला)		सेर (८० तोला)
घी	१० ३	गेहूं	९०४
तेल	१ ५	ज्वार	१०८५
शक्कर	१ २	बाजरा	१८०८
नमक	६७०	दाल	१३५६
जौ	१ ५६	चावल	५४२

आईन-अकबरी'में मजदूरोंकी दर भी दी हुई है। मामूली मजदूरको प्रतिदिन ३ से ४ पैसे मिलते थे। राज, लुहार वगैरा कारीगरोंको ९ से १०॥ पैसे मिलते थे। परन्तु इन पैसोंकी खरीदशक्ति अधिक होनेसे उतने पैसोंमें घर अच्छी तरह चल सकता था।

चलनका वेग

७ दूसरी बात यह है कि यदि चलनवाला अपनी चीज बेचकर उसका पैसा अपने घरमें न रखता हो परन्तु उसे बाजारमें घुमा देता हो तो उसके पास द्रव्यसे बहुतसे सौदे हो सकते हैं और थोड़े द्रव्यसे अधिक आर्थिक व्यवहार चल सकता है। यदि लोगोंका खर्च जो कुछ भी माल बेचना हो उसके करनेके बाद द्रव्य उनके पास ही पड़ा रहता हो तो बाजारमें होनेवाले सौदोंके लिए कुल मिलाकर अधिक द्रव्यकी जरूरत होगी। एक हाथसे दूसरे हाथमें जितनी तेजीसे द्रव्य फिरता रहता है उसे चलनका वेग कहते हैं। चलनका वेग जितना अधिक होगा उतने ही कम द्रव्यकी बाजारके कुल व्यवहारमें जरूरत होगी। चलनका वेग जितना कम होगा उतने ही अधिक द्रव्यकी जरूरत होगा।

८ चलनके वेगका आधार लोगोंकी आदतों और रीति रिवाजों पर तथा उत्पादनके स्वरूप पर होता है। जहां मजदूरी या वेतन वर्षमें एक बार चुकाया जाता है वहां अधिक द्रव्यकी जरूरत पड़ती है। क्योंकि जब मनुष्यको वर्षमें एक बार वेतन मिलता है तब वह अपने पास उसे रख छोड़ता है और जैसे जैसे जरूरत होती है वैसे वैसे खर्च करता रहता है। यदि वह अपने कामकी चीजें पूरे सालकी इकट्ठी खरीद ले तो अवश्य ही उतना द्रव्य अपने हाथसे जल्दी घूमने लगेगा। जहां सप्ताह या महीने भरमें वेतन चुकानेकी प्रथा होती है वहां पैसेके चलनका वेग अधिक रहता है और सारा व्यवहार कम द्रव्यसे चलता है। रोजगारी आदत द्रव्य घरमें न रखकर बैंकमें रखनेकी हो तो भी वह घूमता रहता है।

९ खेतीका धंधा ऐसा है कि जिसमें खर्च तो होता रहता है परन्तु फसल सालमें एक या दो बार पकती है तभी किसानके हाथमें पैसा आता है। जिस समय फसल तैयार होती है उस समय किसानके लेनदार साहूकार और अनाजके व्यापारी किसानकी फसल खरीदनेके लिए गांवोंमें जाते हैं। कपासके मौसममें रुईके दलाल गांठमें रुपया बांधकर गांव गांवमें पहुंच जाते हैं। उस समय बाजारमें से पैसा एकदम किसानोंके पास चला जाता है। उस समय बाजारमें द्रव्यकी मांग अधिक रहती है और यह कहा जाता है कि बाजारमें द्रव्यकी तंगी है। किसानके पाससे द्रव्यको बाजारमें फिरसे आनेमें देर लगती है। गरमीमें शादी-ब्याह शुरू होने पर किसान पैसा खर्च करता है। फिर चौमासेमें कामकी अधिकताके कारण और जाने-आनेकी कठिनाईके कारण वह बाहर नहीं जा पाता। इसलिए चौमासेमें उसे जिन चीजोंकी जरूरत होती है वे सब चीजें चौमासा शुरू होनेके पहले ही वह खरीद लेता है। इसलिए फसलके समय

बाजारमें उत्पन्न होनेवाली द्रव्यकी तंगी चालू समय द्रव्यकी अधिकतामें बदल जाता है।

१० ग्रामोद्योगी पद्धतिके उत्पादनमें भी द्रव्यका हेरफेर बहुत कम होता है। व्यापारिक मालके उत्पादनका उदाहरण लें। पहले तो रुईकी खरीदमें पैसा रुकता है फिर कत्तिनाकी बनाईके दाम चुकाये जाते हैं और सूत इकट्ठा होकर बुना जाय तब उसकी बनाई चुकानी पड़ती है। इस तरह बहुत लम्बे समय तक पैसा रुका रहता है। वह जब खादी बिकती है तब खुला होता है। इसलिए गावोंमें तथा ग्रामोद्योग और खेती प्रधान देशोंमें द्रव्यका चलन वेग बहुत कम होता है। और उद्योग प्रधान देशोंमें द्रव्यका चलन-वेग अधिक रहता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ग्रामोद्योग या खेती प्रधान देशोंको पैसेकी अधिक जरूरत नहीं होती क्योंकि वहां जैसे द्रव्यका चलन-वेग कम होता है वैसे ही मालका हेरफेरका वेग भी कम होता है। किसानके पैदा किये हुए मालका बड़ा हिस्सा तो उसके अपने ही खर्चके लिए होता है इसलिए वह बाजारमें उसे बेचने नहीं जाता। इसी तरह जो लोग अपने उपयोगके लिए खादी या ग्रामोद्योगकी चीजें बनाते हैं उन्हें भी पैसेकी जरूरत नहीं होती। द्रव्यके चलन वेगकी तरह मालके हेरफेरका भी वेग होता है। माल एक हाथसे दूसरे हाथमें जैसे जैसे अधिक जाता है वैसे वैसे द्रव्यकी अधिक जरूरत होती है। पर गावोंमें मालका हेरफेर भी अधिक नहीं होता।

११ मिलोद्योगके उत्पादनमें और शहरोंमें मालका हेरफेर अधिक होता है। माल उत्पादकके हाथसे ग्राहकके हाथमें माल पहुंचने तक मालका हाथ पर अधिक बार और अधिक तादादमें होता है। अलबत्ता वहां भी यह तो पाया ही जाता है कि मालके हेरफेरसे द्रव्यका चलन-वेग अधिक होता है। दूसरे शब्दोंमें यहां तो उपलब्ध द्रव्यका कुछ मात्रामें से अधिक द्रव्य बाजारमें घूमता रहता है और मौजूदा निकासमें अधिक द्रव्य उपयोगमें आता रहता है जब कि उपलब्ध मालका कुछ मात्रामें से अपेक्षाकृत कम माल बिकनेके लिए बाजारमें रखा जाता है।

१२ इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चलन-वेग और मालके हेरफेरका बाजारका द्रव्य-सम्बन्धी स्थितिके साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है। द्रव्यका तंगी या विपुलताका आधार उसी पर रहता है। और इसका असर सभी चीजोंके भावों पर पड़ता है। परन्तु वह थोड़े समयके लिए ही होता है। बाजारमें अमुक समय महंगाईका और अमुक समय सस्ताईका दौर ही रहता है। परन्तु लम्बे समयमें होनेवाले भावके उतार चढ़ावका आधार तो चलनकी कुल मात्रा पर

ही रहता है। और यह मात्रा जब जब बढ़ती जाती है तब तब महगाई होती जाती है। युद्धके समय जब सरकार चलनी नोटोंकी मात्रामें एकदम फुलावट कर देती है तब द्रव्यकी मात्राके भावों पर होनेवाले असरका सिद्धान्त अमलमें आता प्रत्यक्ष दिखाई देता है। युद्धके समय सरकारी खजाने पर बड़ा जोर पड़ता है। सरकारको बड़े बड़े खर्च करने ही पड़ते हैं और कर लगाकर या लोन (कर्ज) लेकर पैसा खड़ा करनेकी उसकी शक्तिकी सीमा आ जाती है। इसलिए अपने निरन्तर बढ़ते जानेवाले खर्चको पूरा करनेके लिए वह अधिक नोट छापनेके उपायका आसरा लेती है। अब हम देखें कि इसका क्या परिणाम होता है। जब जब नोट अधिक तेजीसे चलनमें रखे जाते हैं तब तब उतना ही ज्यादा उनकी कीमत घटती जाती है। फिर भी यदि नोटोंकी मात्रामें वृद्धि होती ही जाय तो मात्राकी वृद्धिके साथ साथ उनका चलन-वेग भी बढ़ता है। क्योंकि लोग देखते हैं कि पैसा उनके हाथमें थोड़ी देर भी रहता है तो उतनेमें ही उसका मूल्य और खरीद शक्ति घट जाती है। इसलिए पैसा हाथमें आते ही वे तुरन्त उसे मालमें बदल डालनेके लिए उत्सुक रहते हैं। इसलिए नोटोंकी मात्रा जितनी बढ़ती है उससे भी अधिक उनकी कीमत घट जाती है। इसके बाद भी यदि नोटोंका बढ़ना जारी रहे तो ऐसी स्थिति आ जाती है जब कोई व्यक्ति नोटोंको हाथमें रखनेके लिए भी तैयार नहीं होता। चलनका सारा तंत्र अस्तव्यस्त होकर टूट जाता है। चलनी नोटोंकी कुछ भी कीमत नहीं रह जाती। ऐसा इसलिए नहीं होता कि उनकी मात्रा और चलन वेग बहुत बढ़ जाते हैं बल्कि इसलिए होता है कि लोगोंका उस पर जरा भी विश्वास नहीं रहता और कोई मालके बदलेमें नोट लेनेको तैयार ही नहीं होते। द्रव्यकी मांग बिलकुल बन्द हो जाती है अर्थात् द्रव्यके बदलेमें कोई अपने पासका माल देनेको तैयार नहीं होता।

१३ प्रथम महायुद्धके बाद ऐसी नौबत जर्मनी और आस्ट्रियामें आई थी। हमारे देशमें १९४१–४२ में लोग अपने पास किसी भी रूपमें द्रव्य रखनेके बदले उससे मकान जमीन और दूसरा माल खरीदनेके लिए उलट पड़े थे। मुद्रा प्रसार होनेसे द्रव्यकी कीमत तो घट ही जाती है परन्तु जब तक लोगोंका सरकार पर विश्वास रहता है तब तक व्यापार धंधा चलता रहता है। भाव जरूर बढ़ जाते हैं परन्तु व्यवहार नहीं रुकता।

१४ चलनकी मात्रामें और वेगमें होनेवाली घट-बढ़के कारण जो महगाई या सस्ताई होती है उसका असर समाजके अलग अलग वर्ग पर

अलग अलग होता है। उसकी चर्चामें उतरनेसे पहले हम यह विचार करेंगे कि महगाई या सस्ताईका अन्दाज लगानेके लिए बाजार भावकी सूचीसंख्या किस पद्धतिसे निकाली जाती है।

भावोंकी सूचीसंख्या निकालनेकी रीति

१५ भाव किस अनुपातमें बढ़े या घटे हैं और कितनी तेजीसे बढ़ते या घटते हैं इसका माप लगा सकनेके लिए भावोंका सूचीसंख्या निकालनेकी पद्धति खोजी गई है। किसी भी एक वर्षको आधार मान लिया जाता है और उस वर्षके भावोंके साथ बाकीके दूसरे वर्षोंके भावोंकी तुलना की जाती है। सामान्य उपयोगकी कुछ महत्त्वपूर्ण चीजें पसन्द करके तय किये हुए आधारभूत वर्षमें जो भाव हों उन्हें १०० की सूचीसंख्या दी जाती है और दूसरे वर्षोंके इन्हीं चीजोंके भाव लेकर उनकी आधारभूत वर्षके भावोंके साथ तुलना की जाती है तथा उनकी घटती बढ़तीका प्रतिशत निकाला जाता है। नीचेके कोष्ठकसे ऊपरकी यह बात स्पष्ट हो जायगी।

भावोंमें घट-बढ़ बतानेवाला कोष्ठक

[१९१३–१९२०]

	बंगाली मनका भाव				कपड़ा २० गजके थानका भाव	औसत सूचीसंख्या
वर्ष	चावल	गेहूं	ज्वार	नमक		
	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा	
१९१३	५–३–०	५–११–६	–०–	०–८–७॥	५–४–०	१००
	(१००)	(१००)	(१००)	(१००)	(१००)	
१९१५	६–०–०	५–६–०	४–८–०	१–४–०	४–७–०	१२२
	(११६)	(१४४)	(१०८)	(२३२)	(७९)	
१९१७	५–१–०	४–१२–	–१–२	२–४–	७–२–०	१७५
	(९७)	(१२९)	(१०२)	(४२०)	(१३६)	
१९२०	८–६–०	७–०–०	५–८–०	१–८–२	१४–२–०	२१६
	(१६१)	(१८८)	(१८२)	(२८०)	(२६९)	

पांच चीजोंके भावका घटता-बढ़ताके प्रतिशतका योग १०८१ होता है। इसमें पांचका भाग देने पर २१६ की संख्या आती है। १९१३ के भावकी सूचीसंख्या हमने १०० माना है। उसकी तुलनामें १९२० के भावकी सूचीसंख्या २१६ होती है। इसलिए यह कहा जायगा कि महगाई इतने अनुपातमें बढ़ी।

१६ *भावकी सूचीसंख्या निकालनेके लिए अधिकतर सामान्य उपयोगकी* चीज चुननी चाहिये। इनके सिवा सब चीजें एक ही प्रकारकी नहीं होनी चाहिये। अलग अलग प्रकारकी होनी चाहिये। क्योंकि हो सकता है कि कुछ प्रकारकी चीजोंके भावोंमें अमुक अनुपातमें घटती-बढ़ती हुई हो और दूसरे प्रकारकी चीजोंके भावोंमें सर्वथा भिन्न और उल्टे ही अनुपातमें घटना बढ़ती हुई हो। एक ही प्रकारकी चीजोंके भावोंका औसत निकाला जाय तो उस परसे सर्वसामान्य भावोंकी सच्ची घटती-बढ़तीका खयाल नहीं आ सकता। बहुत बड़े जन-समुदायके दैनिक उपयोगकी ऐसी सब चीजें चुनना चाहिये जिनके बिना काम न चल सकता हो। भावोंके जीवन निर्वाह पर होनेवाले असरका हमें विचार करना हो तो मकान किराया काम पर जाने-आनेके लिए होनेवाला वाहन-खर्च त्योहारोंका खर्च वगैरा चीजें भी हमें गिनना चाहिये। स्थावर सम्पत्ति और उसकी कीमतका विचार हम करते हों तो जमीनके परिवर्तनोंको भी ध्यानमें रखना चाहिये। आम तौर पर भावोंकी सूचीसंख्या निकालनेके लिए तीससे लेकर साठ-सत्तर तक चीजें चुनी जाती हैं। अधिक निश्चितता लानेके लिए सैकड़ों चीजें लेकर भी भावोंकी सूचीसंख्या निकाली जाती है।

१७ दूसरा प्रश्न यह खड़ा होता है कि कौनसा भाव गिनतीमें लिया जाय? फुटकर भाव या व्यापारीका थोक भाव? फुटकर भावमें अलग अलग स्थानों पर अलग अलग भाव होते हैं। इतना ही नहीं अलग अलग ग्राहकोंके आधार पर भी भावोंमें फर्क पड़ता है। इसलिए फुटकर भावोंमें कोई निश्चितता नहीं रहती। व्यापारीके भाव भी अलग अलग बाजारोंमें अलग अलग होते हैं। फिर भी भावोंकी सूचीसंख्याके सामान्य हिसाबके लिए व्यापारीके भाव ही पसन्द किये जाते हैं। और देशमें जितने मुख्य बाजार होते हैं उन बाजारोंके भावोंका सूचीसंख्याका अलग अलग हिसाब लगाया जाता है। परन्तु जहां मजदूरोंके वेतनकी कमी बेशीके प्रश्नके लिए भावोंकी सूचीसंख्याका हिसाब लगाना हो वहां अलग अलग शहरोंके मजदूरोंके लिए वहांके मजदूर मुहल्लोंके फुटकर भावोंका हिसाब लगाना ही उचित है क्योंकि मजदूर लोग अपनी जरूरतकी चीजें फुटकर ही खरीदते हैं और उनके निर्वाह-खर्चका विचार करना हो तो उन्हें जो भाव देने पड़ते हैं उन्हींका हिसाब करना चाहिये।

१८ अब प्रश्न यह पैदा होता है कि समाजमें सभी चीजें एकसी मात्रामें काममें नहीं ली जाती और उपयोगिताके विचारसे एकसी महत्त्वकी भी नहीं होतीं। कुछ चीजोंमें समाजका आयका बहुत छोटा भाग खर्च होता है और कुछ चीजोंमें उसकी आयका बहुत बड़ा भाग खर्च होता है। दोनोंको एकसी समझें

तो हमारा भाव बिलकुल गलत निकलेगा। उदाहरणके लिए मान लीजिये कि नमकका भाव दस गुना बढ़े और अनाजका भाव दुगुना बढ़े। इन दो परिवर्तनोंको हम एकसा समझें तो हमें मानना पड़ेगा कि सामान्य भाव छह गुना बढ़ गया है। परन्तु नमक पर हमें इतना कम खर्च करना होता है कि उसके भाव दस गुने बढ़ने पर भी हमें इतने ज्यादा नहीं खटकते जितने अनाजके दुगुने भाव खटकते हैं। यही बात अनाज और कपड़े पर लागू होती है और कपड़ेमें भी मामूली कपड़े और फैन्सी कपड़े पर। इन सब चीजोंको एकसी समझकर यदि औसत निकाला जाय तो यह औसत हमें गलत रास्ते ले जानेवाला सिद्ध होगा। यह दोष दूर करनेके लिए हमें ऐसा करना चाहिये कि नमककी अपेक्षा हम अनाज पर सौगुना खर्च मानते हों तो नमककी सूचीसंख्या एक और अनाजकी सौ गिनकर रखना चाहिये। कपड़ेसे अगर अनाज पर हम दस गुना खर्च करते हों तो कपड़ेकी सूचीसंख्या एक और अनाजकी दस रखकर हिसाब लगाना चाहिये। नीचेके उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

आधारभूत वर्ष १९१३		बादका वर्ष १९२०	
अनाज (दस गुना) =	१०००	अनाज (दस गुना) वृद्धि २०५ प्रतिशत =	२०५०
कपड़ा (एक गुना) =	१००	कपड़ा (एक गुना) वृद्धि २६९ प्रतिशत =	२६९
	११००		२३१९
कुल ११ गुनेका औसत =	१००	कुल ११ गुनेका औसत =	२०१

१९ जिस चीजकी खपत अधिक होती है और जिस चीज पर खर्च अधिक होता है उसे जो विशेष सूचीसंख्या या प्रमाण दिया जाता है उसके लिए कहा जाता है कि उस पर इतना अधिक भार दिया गया और इस तरह गिने हुए भावकी सूचीसंख्याको भारवाली सूचीसंख्या कहा जाता है। भावकी सूचीसंख्या गिननेमें पूरी निश्चितता लानेके लिए और भी कुछ रीतियां आजमाई जाती हैं। लेकिन वे अटपटी होती हैं इसलिए हम उनके चक्करमें नहीं पड़ेंगे।

२० हमारे देशमें भावोंमें कितना उथलपुथल हुई है यह दिखानेके लिए भावकी सूचीसंख्याके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

वर्ष	भावकी सूचकसंख्या
१८७३	१००
१९००	११६
१९१३	१४३
१९२०	२८१
१९२१	२८१
१९२५	२३६
१९४०	१७१
१० ६	१२५

ऊपरके आंकड़े पूरे विश्वस्त नहीं माने जा सकते क्योंकि १८७३ से १८९७ तक लगभग ४९ चीजोंके जो भाव लिये गये हैं उनमें उपयोग और खपतके लिहाजसे जो भार देना चाहिये वह दिया नहीं गया है। इसके सिवा खानेकी चीजोंके भावोंका हिसाब रखनेकी प्रथा १८९० के बाद शुरू हुई है। फिर भी इन आंकड़ों परसे हम इतना तो कह ही सकते हैं कि १९०० से १९२५ तक द्रव्यकी कीमत घटती गई है। १९३० से १९३६ के बीचका समय भावोंकी भारी मन्दीका अर्थात् अतिशय सस्ताईका माना जाता है। फिर भी उस समयके भाव १९०० के भावोंसे तो ऊंचे ही हैं।

२१ अब थोड़ेसे आंकड़े १९२९ के वर्षको आधारभूत मान कर दें।

वर्ष	भावकी सूचकसंख्या
१९२९	१००
१९३८	७०
१९३९	७५
१९४	८१
१९४१	९४
१९४२	१५१

ऊपरके आंकड़े खास तौर पर जीवन निर्वाहकी चीजोंके हैं। उन चीजोंके भाव १९४२ से एकदम चढ़ने लगे और चढ़ते ही जा रहे हैं।

२२ नीचेके आंकड़े दूसरा महायुद्ध आरम्भ होनेसे कुछ ही पहलेके अर्थात् १९३९ के अगस्तके भावको १० मानकर लिये गये हैं।

वर्ष	खाद्य पदार्थोंके भावका सूचकसंख्या	सर्वसामान्य भावका सूचकसंख्या
१९३९	१००	१००
१९४०	११७	१२७
१९४१	१०८	११८
१९४२	[illegible]	१६५
१९४३	[illegible]	२७०
१९४७ (दिसम्बर)	४०६	४२५

उपर्युक्त आंकड़े यह बताते हैं कि जैसे जैसे नोटोंके चलनमें प्रसार होता गया वैसे वैसे बाजार भाव बढ़ते गये।

२३ इन सूचकसंख्याओंका उपयोग मजदूरी और वेतनकी दर निश्चित करनेमें और यह तय करनेमें किया जाता है कि असाधारण महंगाईकी स्थितिमें महंगाई भत्ता कितना दिया जाय। परन्तु जितनी तेजीसे भाव बढ़ते हैं उतनी तेजीसे मजदूरोंकी दर नहीं बढ़ायी जाती। इसके सिवा जहां मजदूरोंका संगठन बहुत मजबूत होता है वहीं ऐसे परिवर्तन कराये जा सकते हैं। जिन गरीबोंकी आमदनी तेजीसे नहीं बढ़ सकती उन्हें तो ऐसी महंगाईमें भारी मुसीबत ही उठानी पड़ती है। व्यापारियोंमें भी भावकी तेजीसे होनेवाली उथल पुथलसे कुछ व्यापारी तो कमा लेते हैं और कुछ गवां बैठते हैं।

महंगाई-सस्तीका समाजके अलग अलग वर्गों पर असर

२४ भारी महंगी या मन्दी सारे क्रय-व्यवहारको अस्तव्यस्त कर देती है। कुछ लोगोंको बिना कारण और अनुचित लाभ होता है और कुछ लोगोंको निर्दोष होते हुए भी अनुचित नुकसान उठाना पड़ता है। अलग अलग वर्गों पर होनेवाले इस तरहके असरके कुछ उदाहरण यहां देखें:

(१) साहूकार और कर्जदार जब बाजारमें भाव चढ़ जाते हैं और महंगाई हो जाती है तब साहूकारोंको नुकसान होता है और कर्जदारोंको फायदा होता है। दूसरे विश्वयुद्धके पहलेके भावोंकी तुलनामें १९४८ के अन्तमें चीजोंके भाव लगभग तिगुने हो गये थे। अब यदि युद्धके पहलेके कर्जकी रकम साहूकारको १९४८ में वापस मिले तो उतने ही रुपये मिलने पर भी युद्धके पहले उन रुपयोंसे वह जितनी चीजें खरीद सकता था उनके तीसरे हिस्से जितनी चीजें ही वह १९४८ में खरीद सकता था। जब महंगाई हो जाती है तब कर्जदारके कर्जका बोझ कम हो जाता है। अनाजके भाव बहुत चढ़ जानेके कारण

और जमींदार भाव बढ़ जानेके कारण हमारे बहुतेरे किसान कर्जसे मुक्त हो गये हैं। दूसरी तरफ जब सस्ताई हो जाती है तब कर्जदारोंका कर्जा भार बढ़ जाता है। १ के बाद जब छः-सात वर्ष मन्दी छायी तब हमारे कर्जदार किसान बड़ी मुसीबतमें फंस गये थे। एक तरफ तो उनको भाव उतने कम मिलते थे कि लगान तक भी नहीं निकल सकता था और दूसरी तरफ कर्जकी रकम चुकानेके लिए पहलेसे बहुत अधिक फसल बेचनी पड़ती थी।

भावोंकी उथल-पुथलका असर लम्बी अवधिमें पूरे होनेवाले ठेकों पर भी प्रकट होता है। यदि किसी ठेकेदारने कोई बड़ी सड़क बनानेका ठेका लिया हो और बीचमें ईंट चूना सीमेन्ट लोहा और लकड़ी आदिका भाव बढ़ जाय तो ठेकेदारको नुकसान उठाना पड़ता है। किसी गोवालाने एक साल तक या इससे भी किसी लम्बी अवधिके लिए किसी छात्रालयको या अस्पतालको निश्चित भावसे दूध देनेका ठेका लिया हो और बीचमें गायकी खुराक और घास चारेके भाव बढ़ जायं और दूधका लागत खर्च महंगा पड़ने लगे तो गोवालेको नुकसान उठाना पड़ता है।

जिन लोगोंने सरकारके या स्थानीय संस्थाओंके लम्बी अवधिके लोन या बांड लिये हों उन्हें भी भावकी उथल-पुथलसे अनायास लाभ या बिना कारण नुकसान हो जाता है।

(२) उत्पादक और व्यापारी वर्ग — उत्पादक और व्यापारी हमेशा महंगाईको पसन्द करते हैं। भावकी तेज उथल-पुथल होनेके कारण उत्पादन खर्च और बाजार-कीमतके बीच बड़ा अन्तर पड़ जाता है। लेकिन बाजार भाव जितनी तेजीसे बढ़ते हैं उतनी तेजीसे उत्पादन-खर्च — मजदूरीकी दर आदि — नहीं बढ़ता। भावकी वृद्धिके साथ इस दरको बढ़नेमें देर लगती है। कच्चे मालका भाव बढ़नेके साथ ही उत्पादक लोग तैयार मालका भाव भी बढ़ा देते हैं यद्यपि उनका कच्चा माल भाववृद्धिसे पहले और सस्ते भावसे खरीदा हुआ होता है। इसलिए जब तक सभी प्रकारके भाव समान रूपसे बढ़ें उस बीच उत्पादकोंको खूब नफा होता है। फिर जब भाव बढ़ते जाते हैं तब व्यापारियोंको भी अधिकाधिक नफा मिलता जाता है। खास तौर पर पुराने व्यापारियोंकी तो पांचों अंगुलियां घीमें होती हैं। सामान्यतः उत्पादक और व्यापारी भावकी मन्दीको पसन्द नहीं करते। भावकी तेजी मन्दीमें मानसशास्त्रका एक विशेष व्यापार भी काम करता है। जब भाव बढ़ते हैं तब सभी व्यापारी तेजी ही तेजी देखते हैं और जब भाव गिरने

लगते हैं तब सभी व्यापारी मंदी देखा करते हैं। ऐसे समय कुशलतापूर्वक हिसाब लगानेवाला और धीरज रखनेवाला आदमी फायदेमें रहता है। वैसे महगाईमें खूब नफा कमानेका आनन्द और सस्ताईमें नफा कम होनेका दुःख भी एक मानसिक घटना ही है। क्योंकि महगाईमें पैसे अधिक मिलने पर भी उनकी खरीद-शक्ति घट जानेके कारण तथा सस्ताईमें पैसे कम मिलने पर भी उनकी खरीद-शक्ति अधिक होनेके कारण सच्चा आर्थिक स्थितिमें बहुत बड़ा अन्तर नहीं पड़ता।

उत्पादक और व्यापारिक कंपनियाँ सामान्यतः कर्जदार होती हैं इसलिए भी महगाईमें उन्हें लाभ होता है। यह दूसरी बात है कि इन कंपनियोंके हिस्सेदारोंमें बहुतसे वैयक्तिक रूपमें लेनदार भी होते हैं।

महगाईके समय मालका आयात अधिक और निर्यात कम होता है। आयातके मालकी कीमत चुकानेके लिए सोना चांदी देशसे बाहर जाता है। कागजी द्रव्य तो विदेशोंमें किसी कीमतका नहीं होता इसलिए सोना चांदी ही बाहर भेजना पड़ता है। अलबत्ता युद्धके कारण होनेवाली महगाईमें तो आयात निर्यात दोनों ही कम हो जाते हैं। परन्तु उसका कारण महगाई या सस्ताई नहीं बल्कि युद्धके कारण आयात निर्यात करनेकी असुरक्षित स्थिति होता है।

(३) ब्याजकी दरों पर असर सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि महगाई मरमत तो चलनकी मात्रा बढ़ जानेके कारण पैदा होती है और द्रव्यकी मात्रा यदि बढ़ गई हो तो पूर्ति और मांगके सामान्य नियमके अनुसार ब्याजकी दर घट जाना चाहिये। परन्तु देखा यह जाता है कि तेजीके समय ब्याजकी दर ऊंची होती है और मंदीके समय ब्याजकी दर नीची होती है। इसका कारण यह होता है कि तेजीके समय द्रव्यकी पूर्ति बढ़ी हुई होने पर भी द्रव्यकी मांग बढ़ी हुई पूर्तिसे अधिक होती है। क्योंकि तेजीमें उत्पादकों और व्यापारियोंको बड़ा नफा होता है जिससे उनकी प्रवृत्ति अपने उद्योग-धंधे बढ़ानेकी तरफ होती है और वे अधिकाधिक पूंजी लगानेको तत्पर होते हैं। ग्राहक सीधा नहीं पैसा मिले उसे तो वे दे ही देते हैं परन्तु बैंकसे भी अधिक पैसा निकालते हैं। इसलिए ब्याजकी दर बढ़ती है। जब मंदी होती है और नफेकी आशा घट जाती है तब उद्योग-धंधे भी मंद पड़ जाते हैं पूंजीकी आवश्यकता कम होती है और धंधेवालोंको बैंकसे रुपया निकालनेकी आवश्यकता नहीं होती। इसलिए मंदीके समय ब्याजकी दर गिर जाती है। हां मंदीके समय उत्पादक भविष्यमें अधिक नफा कमानेकी आशामें माल जमा करके भी रखते हैं और जमा करके रखनेके लिए उन्हें अधिक पूंजीकी आवश्यकता पड़ती

है और उनके लिए ब्याज देनेको तैयार भी रहते हैं। इसलिए तेजीके समय ब्याजकी दर बढ़नेकी जितनी सम्भावना होती है उतनी सम्भावना मन्दीमें ब्याजकी दर घटनेकी नहीं होती।

(४) मजदूर-वर्ग: यह कहा जा चुका है कि महंगाईके अनुपातमें मजदूरीकी दर बढ़नेमें हमेशा देर लगती है। इसी तरह जब सस्ताई होने लगती है तब मजदूरीकी दरमें कमी भी तुरन्त नहीं हो सकती। कुछ विशेष परिस्थितियोंको छोड़ दें तो साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि महंगाईसे मजदूरोंको लाभ नहीं होता क्योंकि महंगाईके कारण मजदूरोंकी दर एकदम नहीं बढ़ जाती और दर बढ़नेके बाद भी रुपयेकी खरीद-शक्ति घट जानेसे मजदूरोंको विशेष लाभ नहीं मिलता। परन्तु सस्ताई होनेसे उन्हें जरूर लाभ मिलता है क्योंकि मजदूरोंकी दर घटनेमें देर लगती है और इतने अरसेमें वे कुछ तो बचत कर सकते हैं।

पर महंगाई होने पर उत्पादनकी प्रवृत्ति और व्यापार ज्यादा बढ़ते हैं। इसलिए मजदूरोंको काम अधिक मिलता है। उस समय बेकारी बिलकुल नहीं रहती। सस्ताईके समय व्यापार धन्धेमें मन्दी होनेसे बेकारी बढ़ जाती है।

(५) बंधी आयवाला वर्ग: पेंशन पर, ब्याज पर या भाड़ेकी आय पर रहनेवाले और सरकारी या दूसरी कोई नौकरी करनेवाले बंधी हुई आयवाले वर्गको महंगाईके समय बहुत मुसीबत उठानी पड़ती है और सस्ताईके समय बहुत लाभ होता है। क्योंकि महंगाईमें उनकी आयमें अधिक अन्तर नहीं पड़ता और खर्च बढ़ जाता है। ब्याज या भाड़ेकी दर जरूर थोड़ी बढ़ जाती है या महंगाई भत्ता थोड़ा मिल जाता है। लेकिन वह बढ़ी हुई महंगाई जितना अधिक नहीं मिलता। सस्ताईमें खर्च कम होता है। इसलिए रुपये आने-पाईमें आयकी रकम उतनी ही रहने पर भी वास्तवमें इस रकमकी खरीद-शक्ति बढ़ जानेके कारण उस आयमें वृद्धि ही कही जायगी।

(६) सर्वसामान्य प्रभाव: महंगाईसे एक सामान्य नुकसान यह होता है कि उस समय लगभग सभी वर्गोंके हाथमें पैसा अधिक आता है और पैसेकी कीमत बहुत घट जानेसे उन्हें खुले हाथों खर्च करनेकी आदत हो जाती है। इस तरह पड़ी हुई आदत बनी रहती है और परिस्थिति बदलने पर यह आदत एकदम छूट नहीं सकती। दूसरा नुकसान यह है कि कुछ लोगोंकी आय बढ़ी हुई महंगाईके कारण जितनी बढ़नी चाहिये उससे कहीं ज्यादा बढ़ जाती है और कुछ लोगोंकी आय बिलकुल नहीं बढ़ती अथवा जितनी बढ़नी चाहिये उतनी नहीं बढ़ती। इसलिए समाजमें भारी आर्थिक असमानता पैदा होती है।

सच तो यह है कि सारे समाजकी दृष्टिसे देखें तो भावोंकी भारी और तेज उथल-पुथल आर्थिक प्रगति और सुख-शान्तिके लिए बिलकुल अच्छी चीज नहीं है। दुनियाका अर्थ-व्यवहार शान्ति और सरलताके साथ चले इसके लिए यह बहुत ही जरूरी है कि भावोंमें काफी स्थिरता रहे।

२५ प्रथम विश्वयुद्धके बाद भावोंमें जो बड़ी उथल-पुथल होती रही है उसके कारण इस बड़े प्रश्न पर बहुतेरे अर्थशास्त्रियों और विचारकोंका ध्यान गया है। द्रव्यशास्त्रके अनेक जानकारोंका यह मत है कि किसी भी देशके चलनके दूसरे देशोंके चलनके साथ होनेवाले विनिमयकी दर स्थिर रहना विदेशी व्यापारके लिए आवश्यक है परन्तु देशके अन्दरके भावोंमें स्थिरता रहना उससे भी अधिक आवश्यक है। मुख्यतः हमारे रुपयेको ब्रिटिश व्यापारके हितको ध्यानमें रखकर स्टर्लिंगके साथ जोड़ा गया था और विनिमयकी दर भी अंग्रेज व्यापारियोंके हितकी दृष्टिसे ही समय समय पर बदली गई थी। इस कारणसे हमारी भारतीय अर्थ-व्यवस्थामें अनेक कठिनाइयां खड़ी हो गई थीं और हमारे किसानों तथा दूसरे उत्पादकों और व्यापारियोंको बहुत नुकसान उठाना पड़ा था। देशके भीतर द्रव्यके मूल्यका स्थिर रहना और उसके कारण भावोंका भी स्थिर रहना विदेशी व्यापारसे भी देशकी आर्थिक प्रगतिके लिए अधिक आवश्यक है। इसलिए हर देशको अपने चलनकी मात्रा पर सावधानीसे अंकुश रखकर अपनी द्रव्य-सम्बन्धी नीतिका नियमन करना चाहिये। सभी देश इस प्रकार नियमन करें तो फिर एक देशका दूसरे देशके साथ होनेवाला व्यापार अपने-आप नियंत्रणमें आ जाय।

२६ ऐसा नियमन किस तरह हो सकता है, यह एक बड़ा और टेढ़ा प्रश्न है। इस बारेमें काफी सहायक हो सके इस हेतुसे भविष्यके चलनकी योजना अगले प्रकरणमें दी गई है।

१४

भविष्यके चलनकी योजना

१ द्रव्यकी खोज मूलतः तो विनिमयके एक साधनके रूपमें हुई और अनुभवने यह बताया कि एक अच्छा साधन बननेके लिए द्रव्यके मूल्यमें काफी स्थिरता रहनी चाहिये। सोना चांदीके द्रव्यमें और उनके सहारे चलनेवाले चलनमें आरंभमें तो अच्छी स्थिरता रही। लेकिन प्रथम महायुद्धके बाद द्रव्यके मूल्यमें बहुत बड़ी उथल-पुथल हो गई है। सोनेके चलनके दावोंमें हम यह देख चुके हैं कि चलनके आधार रूप सोनेका बहुत बड़ा हिस्सा दूसरे विश्वयुद्धके पहले अमरीका और फ्रांस ये दोनों देश ही दबाकर बैठ गये थे। चलनके आधारके रूपमें सोना चांदीका रखना भी तो आखिर एक साधन ही है। साध्य तो भावोंका स्थिर रहना है। और उसमें भी विशेषकर शायद व्यवहारमें भावोंका स्थिर रहना जितना महत्त्वपूर्ण है उससे अधिक महत्त्वपूर्ण देशके भीतर भावोंका स्थिर रहना है। परन्तु इस तरहकी स्थिरता लानेमें पूरी सफलता नहीं मिली।

२ दूसरे तात्त्विक दृष्टिसे हम देखें तो द्रव्य कोई सम्पत्ति नहीं है। कागजी नोट तो सिर्फ धातुके सिक्केके प्रतिनिधि हैं और सिक्केकी धातु भी उपयोगकी दृष्टिसे देखें तो कोई बहुत महत्त्वकी या आवश्यक सम्पत्ति नहीं है। लेकिन चूंकि ऐसी अर्थ-व्यवस्था स्थापित हो गई है कि मनुष्यके पास द्रव्य हो तो उससे जरूरतकी हर चीज कभी भी मिल सकती है इसलिए द्रव्यको ही सम्पत्ति मानकर लोग अपना सब व्यवहार करते हैं। अपने भविष्यके उपयोगके लिए अन्य कोई उपभोग-योग्य सम्पत्ति न रखकर लोग द्रव्यको बचाकर उसीका संग्रह करते हैं। यह दूसरी बात है कि यह संग्रह किया हुआ द्रव्य वे घरमें रख छोड़ें, बैंकमें जमा करें या किसी उद्योग धंधेमें लगा दें। हमारी चर्चाके विषयसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रस्तुत प्रश्न यह है कि द्रव्य कहीं भी रखा हो परन्तु उस पर रहे स्वामित्व-अधिकारका अर्थ-व्यवस्था पर क्या असर पड़ता है। इस समय द्रव्यकी बहुत बड़ी मात्रा पर तो समाजके बहुत छोटे वर्गका ही अधिकार है। द्रव्यसे जो चाहिये सो मिल सकता है इसका अर्थ यही है कि जिनके पास द्रव्य होता है वे जिन लोगोंको द्रव्यकी गरज या तंगी हो — और बहुत बड़े जनसमुदायको द्रव्यकी गरज या तंगी सदा रहती ही है अथवा ऐसी स्थिति पैदा कर दी जाती है जिससे उन्हें द्रव्यकी गरज रहे — उन लोगों पर उनके पासकी

चीजें तथा सेवाएं लेनेके लिए आना चलनकी शक्ति रखते हैं। ऐसी परिस्थितिमें इस न्यायकी रक्षा नहीं होती कि कोई आदमी यदि समाजमें अलग अलग वर्ग आदमियोंके सहयोगसे उत्पन्न होनेवाली चीजों या लोगोंकी सेवाओंसे लाभ उठाता है तो बदलेमें उस समाजके उत्पादनमें अपना हिस्सा देना चाहिये अथवा किसी न किसी रूपमें समाजकी सेवा करनी चाहिये। जब तक मनुष्य केवल उपभोग-योग्य सम्पत्तिका ही स्वामी रह सकता था तब तक वह उतनी ही सम्पत्ति अपने पास रख सकता था जितनी वह स्वयं उपभोग कर सके और यदि वह उससे भी अधिक सम्पत्ति रखने जाता तो उसे ठीक तरहसे सभाल कर रखनेके लिए उसे कुछ न कुछ श्रम करना पड़ता था। लेकिन द्रव्य तो अनोखी वस्तु है। उसे सभालकर रखनेके लिए कोई खास श्रम नहीं करना पड़ता। इतना ही नहीं बैंकमें अमानतके रूपमें रखनेसे उसकी रक्षा होनेके साथ साथ उस पर ब्याज भी मिलता है। इसलिए जब तक मनुष्यके पास द्रव्य है तब तक वह चाहे जितने समय तक समाजके लिए कोई भी काम किये बिना केवल स्वामित्वका अधिकार भोगनेके कारण वह समाजसे अपना जरूरतकी चीजें और सेवाएं ले सकता है। जब उत्पत्तिके साधनों पर स्वामित्व अधिकार होनेसे दूसरे अनेक लोगोंका शोषण करनेका अवसर मिलता है, बस तो यह पर स्वामित्व-अधिकारके कारण मनुष्यको मनमाना आलसी रहकर समाज पर बोझ बननेका अधिकार मिलता है।

स्वयंपर्याप्त अर्थ-व्यवस्थामें द्रव्यकी इतनी अधिक जरूरत ही नहीं पड़ती थी। खेती और उसके पूरक धन्धे उद्योगों पर निर्वाह करनेवाला समाज — ग्राम या थोड़ेसे ग्रामोंके समूहवाला प्रदेश — पैसेके बिना अथवा बहुत थोड़े पैसेसे अपना कामकाज चला सकता था। लेकिन आजकी विशाल पैमानेवाली और विशेष केन्द्रित स्वरूपकी अर्थ-व्यवस्थामें शायद ही कोई आदमी द्रव्यके उपयोगसे बच सकता है। इसलिए आदमीको आज पग पग पर पैसेकी जरूरत पड़ती है। ठेठ भीतरके और छोटे छोटे गांवोंमें भी शहरों और विदेशोंके कारखानोंमें बननेवाली चीजें पहुंच गई हैं। उन्हें खरीदनेके लिए ग्रामवासियोंको द्रव्यकी जरूरत होती है। फिर जमीन-महसूल भरनेके लिए भी उन्हें द्रव्यकी आवश्यकता होती है। यह द्रव्य जुटानेके लिए उन्हें अपनी पैदावार बाहरके व्यापारियोंको बेचनी पड़ती है। यह सब व्यवहार उनके लिए इतना नुकसानदेह होता है कि आज ये ग्रामवासी साहूकारोंके कर्जमें फंस गये हैं। उनको कर्जका ब्याज चुकानेके लिए उन्हें पैसेकी जरूरत होती है। इसके सिवा इन गांवोंमें सरकारने शराबकी दुकानें खोल दी हैं

और नराबकी बुरी ल्तमें य लोग इतन अधिक फस गय ह कि उनका जीवनका बरबाद किया करते ह। कई कुटुम्ब या गाव रुपया जोर पर चलनवाली गावाकी इस टूटस बचाकर विचार करे आर्थिक बातामें अन्न पैदा कर नगा हाना चाह वाहरकी चीजें खरीदना बन्द कर और नराबकी लत छोड़ द तो भी जब तक सरकारी लगान और साहूकारका कर्ज चुकाना बाकी रहता है तब तक वह द्रव्यक चगुलस निकल ही नहीं सकता। द्रव्यके लिए उसे अपना पैदा किया हुआ माल या अपना श्रम बचना ही पड़ता है और यह सौदा उसके लिए घाटका होता है।

४ आजकल द्रव्यका व्यवहार इतना अटपटा हो गया है कि सामान्य जनता यह समझना भी कठिन होता है कि द्रव्यके व्यवहारमें निष्णात व्यक्ति लोगोको उसके जालमें कहा फसा लेते ह। उत्पत्तिके साधना पर स्वामित्व अधिकार रखनेवाले पूजीपतियाकी अपेक्षा द्रव्यके व्यवहारमें चालाक धनपति आजकलकी अर्थ-व्यवस्थामें बड़ महत्त्वका स्थान रखते हं और समाजके उत्पादनका सिंहभाग (बहुत बड़ा हिस्सा) स्वय हडप करते ह।

५ आजकी द्रव्य-व्यवस्थाके कारण होनेवाले इन सब अन्यायोको दूर करनेक लिए इस व्यवस्थाको सुधारनेवाली कई योजनाए पश की जाती ह। अलबत्ता यह ध्यानमें रखना चाहिये कि जब तक वतमान अर्थ-व्यवस्था बनी रहेगी तब तक सिर्फ द्रव्यके सम्बन्धमें इस या उस योजना पर अमल करनेसे आजके आर्थिक अन्याय दूर नहीं हो सकते। इसके लिए तो उत्पादनकी सम्पूर्ण पद्धतिको ही जडमूलसे बदलनेकी जरूरत है। और इस नई अर्थ रचनाके साथ द्रव्यकी नई योजनाका भी मेल बठाना चाहिये। फिर भी यहा द्रव्य या चलनके बारेमें जो योजना पेश की गई है वह नई अर्थ रचनाके अनुकूल साबित होगी। इस योजनामें यह सुझाया गया है कि चलनके आधार या सहारेके रूपमें सोना चादीको मान्य करनेके बजाय प्राथमिक आवश्यकताकी और अधिक मात्रामें काम आनेवाली अमुक चीजें इसका आधार मानी जाय। इस तरह चलना नोट अमुक वजन और कसवाले सोनका प्रतिनिधि माना जानेके बदले प्राथमिक आवश्यकताके अमुक कच्चे मालका प्रतिनिधि माना जाय।

६ कुछ अमरीकन अर्थशास्त्रियोन यह सूचना की है और कुछ तो सयुक्त राज्य अमरीकाके लिए यह बात सुझाते ह कि डालरको चुनी हुई २४ चीजोंके एक खास मापके समूहका प्रतिनिधि माना जाय और कुछ लोग डालरको इससे अधिक चीजोंके समूहका प्रतिनिधि माननेकी बात सुझाते ह। डालर एक निश्चित वजन और कसवाले सोनका माना जाय इसके बजाय वह

अमुक निश्चित की हुई वस्तुओंके समूहको माना जाय। ये चीजें जिस मात्रामें उपयोग की जाय उसी मात्रामें उन्हें ऊपरके समूहमें स्थान दिया जाय। उदाहरणके लिए १० डालरका नोट ऐसी २४ चीजोंके समूहका जिनका कुल वजन मान लीजिये २४ मन होता हो प्रतिनिधि माना जाय तो उसमें दो मन गेहूं एक मन रुई पाव मन शक्कर इस प्रकार उपयोगके महत्त्वके अनुसार कम अधिक मात्रा रखकर कुल जोड़ २४ मन लिया जाय।* सब चीजें एक ही मात्रामें ली जाय तो न्यायकी रक्षा नहीं हो सकेगी और कठिनाई भी पैदा हो जायगी। किन्तु इस तरह व्यवस्था की जाय तो १० डालरका नोट कुल २४ मन वजनवाली २४ चीजोंके समूहका प्रतिनिधि माना जायगा। सरकारका चलन विभाग ऐसे वस्तु समूहको अमयादित मात्रामें निश्चित भावों पर अपने स्थान या कहीं अन्यत्र गोदाम रूपमें रखनेके लिए कोई बचा आय तो उससे यह वस्तु-समूह खरीदनेके लिए और कोई खरीदने आय तो इस वस्तु-समूहको बचनेके लिए वैसे ही बंधा होना चाहिये जैसे चलनके नाते वह बदलेमें सोना देने या लेनेको वह बंधा रहता है। इसमें खरीदने और बेचनेका भाव एक ही रखा जाय या दोनोंमें थोड़ा फर्क रखा जाय यह तफसीलका प्रश्न है। फर्क इसलिए कि इस वस्तु समूह रूपी कच्चे मालको अपने भण्डाराम ले जाने और सम्भालकर रखनेमें सरकारका खर्च पड़ेगा। यह खर्च पाव-आध प्रति शतसे अधिक नहीं जायगा और यदि सरकार इसे उठा ले तो भी कुछ विशेष सरकारका खर्च बहुत नहीं बढ़ जायगा। अथवा जैसे टकसालमें सिक्के ढालनेका खर्च लिया जाता है वैसे बिक्री भावसे खरीद भाव एकाध प्रतिशत कम रखा जाय तो भी कोई आपत्ति नहीं करेगे। चलनी नोटोंके बदलेमें उनके अमुक प्रतिशतके बराबर जो सोना चांदी अमानतके रूपमें रखा जाता है उसके बजाय इस योजनामें जीवनकी आधारभूत वस्तुएं उतने निश्चित कीमतकी अमानतके रूपमें रखा जाय ताकि सरकारको आवश्यकतासे अधिक नोट छापनेका लालच ही कभी पैदा न हो।×

---

* ऊपर दो मन गेहूं एक मन रुई आदि वस्तुओंकी जो मात्रा रखी गई है वह यह बतानेके लिए नहीं रखी गई है कि वास्तविक खर्च इतना है बल्कि केवल कल्पनाके खातिर ही रखा गया है।

× अमरीकी योजनाकी यह रूपरेखा प्रसिद्ध डा० आर० गिनायर ता० २९-४-४४ के क्रिश्चियन इकानामिस्ट में छपे एक कमाण्डिटी रिजर्व करेंसी नामक लेखसे ली गयी है।

७ ऐसा लगता है कि हमारे देशके लिए ऐसी योजना बनानी हो तो घल्लनके आधारके रूपमें नाव लिखी चीजें रखना अनुकूल पड़ेगा

गहूं	घी	हाथकता सूत
चावल	तिलका तेल	खादी
जौ	सरसोंका तेल	गन
अलसी	शक्कर	टाट
सरसों	चाय	पकाया हुआ चमड़ा
तिल	गुड़	कोयला
खोपरा	रूई	नमक
मूंगफली	बिनौले	घास

यह सूची बनाई या घटाई जा सकती है। जवार और बाजरा मुख्य उपयोगकी और बहुत जरूरी चीजें होने पर भी इस सूचीमें इसलिए नहीं गयीं कि वे जल्दी सड़ जाती हैं। यदि उन्हें लम्बे समय तक अच्छी तरह सम्भाल कर रखनेकी सरल पद्धति ढूंढ निकाली जाय तो इस सूचीमें उनका नम्बर बहुत ऊंचा आयगा।

८ अमरीकी योजनामें द्रव्यके आधारभूत अमानतके रूपमें चीजोंके पूरे समूहको रखनेका सुझाव दिया गया है। उसके अनुसार सरकार भले ही सभी चीजें अमानतके रूपमें उचित मात्रामें जटाकर रखे परन्तु लोगोंके लिए तो निश्चित की हुई सूचीमें से किसी भी चीजके रूपमें लगान चुकानेकी आजादी होनी चाहिये और सूचीमें दी हुई कोई भी चीज नियत भाव पर बेचने और खरीदनेके लिए सरकार बंधी होनी चाहिये। इस तरहकी छूट रखनेका मुख्य कारण यह है कि जिस प्रदेशमें जो चीज पैदा होती हो या कर चुकानेवाला खुद जो चीज पैदा करता हो उसी चीजके रूपमें कर भरनेकी लोगोंको सुविधा मिले। इस योजनाका सबसे बड़ा लाभ यही है। आज तो कर चुकानेवालोंसे पैसा मांगा जाता है जो न तो वे पैदा करते हैं और न उनके पास होता ही है। पैसा बनाती है सरकार और वह होता है थोड़ेसे सेठ साहूकारोंके पास। इस कारणसे उत्पादक लोग कर चुकाते समय कठिनाईमें पड़ जाते हैं। चूंकि एक खास तारीखके पहले कर चुकानेके लिए उनके पास पैसा होना जरूरी है इसलिए अपना माल उन्हें सस्ते भावसे बेच डालना पड़ता है और फिर यही माल जब जरूरत होती है तब उन्हें महंगे भावसे खरीदना पड़ता है। प्रस्तुत योजनाके फलस्वरूप नियत भावों

पर भी वे अपनी पैदा की हुई चीजें सरकारको देंगे और जरूरत पड़ने पर ये चीजें लगभग उसी भाव पर सरकारी भण्डारसे ले सकेंगे। यह सोचना होगा कि सरकार ये भाव किस सिद्धान्तके आधार पर नियत करे। दूसरे विश्वयुद्धसे पहलेके कुछ वर्षोंके भावोंका औसत निकालकर उसके आधार पर हर चीजके भाव नियत किये जा सकते हैं। और सरकार इन्हीं भावों पर ये चीजें बेचने और खरीदनेके लिए बंधी रहेगी अतः इन चीजोंके भाव स्थिर रहेंगे।

९ इस योजनाका दूसरा बड़ा लाभ यह है कि प्राथमिक आवश्यकताकी और महत्त्वकी चीजोंके भावोंमें स्थिरता आ जायगी। चलनका आधार मानी हुई चीजोंके भाव नियत और स्थिर रहेंगे तो उसके फलस्वरूप अन्य सभी वस्तुओंके भाव स्थिर रहेंगे। आधारभूत मानी हुई कुछ चीजें कच्चे मालके रूपमें होती हैं। तैयार मालके भावके आधार खास तौर पर कच्चे माल पर होनेके कारण उससे बननेवाले तैयार मालके भावोंमें भी स्थिरता आयेगी। लेकिन ये चीजें अगर किसी वर्ष कम या अधिक पैदा या उत्पन्न हुई हों तो क्या उनसे इनके भावोंमें फर्क नहीं पड़ जायगा? फर्क जरूर पड़ेगा। परन्तु सरकारके पास इन चीजोंका बहुत बड़ा भण्डार होनेके कारण सरकारी भाव हमेशा बाजार भाव पर एक प्रबल अंकुशका काम करेगा। मान लीजिये कि अनेक आधारभूत चीजोंमें से कुछका उत्पादन किसी वर्षमें बढ़ गया और उसके कारण बाजार भावमें मंदी आ गई। उस समय बाजार भावसे सरकारका नियत किया हुआ भाव अधिक होनेसे लोग अपनी चीजें सरकारको बेचने जायेंगे। लोगोंके पास चलनी नोट अधिक आ जायेंगे और चीजोंकी मात्रा घट जायगी। चलनकी यह बढ़ी हुई मात्रा भावोंको गिरनेसे रोकेगी इतना ही नहीं यह भावोंको ऊंचा भी चढ़ायेगा। इसके विपरीत हम यह मानें कि आधारभूत मानी हुई चीजोंमें से कुछका उत्पादन पिछले वर्षकी अपेक्षा कम हुआ और इससे भावमें तेजी आ गई। ऐसी स्थितिमें सरकारी भाव कम होनेके कारण लोग नोट लेकर सरकारके पास उनको खरीदने जायेंगे। इस तरह बाजारमें चीजोंकी मात्रा बढ़ेगी और चलनकी मात्रा घटेगी। फल यह होगा कि तेजी घट जायगी और भाव एकसम हो सकेंगे। दूसरी बात यह है कि चलनके बदलेमें माल-प्रतिनिधान अमानत रखनेका नियम होनेके कारण सरकारको मनमाने ढंगसे चलनका प्रसार या संकोच करनेमें कोई स्थान नहीं होता। इसलिए चलनके प्रसार या संकोचके कारण भावोंमें उथल-पुथल होनेको इस योजनामें गुंजाइश ही नहीं रहती।

१० इस योजनाका बहुत बड़ा लाभ तो यह है कि समाजकी प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओंके रूपमें रखा हुआ अमानत भंडार युद्धके समय या दूसरी किसी आफतके समय बड़ा काम आता है। साधारण समय पर सरकारके पासका यह संग्रह व्यापारियोंके गोदामों पर बड़ा अंकुश रखता है। यह सही है कि चलनके रूपमें अमानतके रूपमें रखा हुआ सोना दूसरे देशोंसे चीजें खरीदनेमें काम आता है परन्तु युद्धके समय तो विदेशोंसे माल लानेकी गुंजाइश ही बहुत कम होती है। सबको मालूम है कि पिछले महायुद्धके आरंभमें जर्मनीने जब इंग्लैण्डके आसपासके समुद्रमें सुरंगें बिछा दी थीं तब अमरीका और दूसरे देशोंसे खाद्य सामग्री तथा अन्य चीजें मंगानेमें इंग्लैण्डको कितनी कठिनाई उठानी पड़ी थी। इस प्रथामें तो सरकारी भंडारोंमें ही प्रतिदिनके उपयोगकी मुख्य मुख्य चीजें विपुल मात्रामें मौजूद रहता है।

११ इस योजनामें दो कठिनाइयां हैं। पहली कठिनाई तो इन सब चीजोंको लाने तथा ले जानेकी खर्चकी और उन्हें अच्छी तरह संभाल कर रखनेकी है। यातायात-खर्चका उपाय यह है कि सरकार जगह जगह अपने भंडार रखे। अलग अलग प्रदेशोंके भंडारोंमें उन प्रदेशोंका ही माल अधिकतर रहे। और संभालकर रखनेके बारेमें तो जब व्यापारी अपना माल बारह बारह महीने गोदामोंमें भरकर रखते हैं तब सरकार क्यों नहीं रख सकती? लेकिन व्यापारीकी तो व्यक्तिगत सम्पत्ति होनेके कारण वह मालको सड़ने न देने या अन्य किसी तरह बिगड़ने न देनेकी बहुत सावधानी रखता है। क्या सरकारी विभाग इतनी चिन्ता रख सकता है? सरकार प्रजाकी हो और सरकारी नौकर जिम्मेदारीका खयाल रखनेवाले और अपने काममें कुशल हों तो सरकार भी इतनी सावधानी जरूर रख सकती है। इस योजनामें लोगोंका इतना बड़ा हित समाया हुआ है कि चीजोंकी अच्छी सार-संभाल करनेकी अच्छी पद्धतियां हमें खोजनी ही चाहिये। हर प्रदेशकी स्थानीय पैदावारको सुरक्षित रखनेकी पद्धतियां उन उन प्रदेशोंके लोग जानते हैं। अगर भंडार वैज्ञानिक ढंगसे बने हों और ये भंडार चीजोंकी रक्षाकी वैज्ञानिक रीति जाननेवाले तथा सावधान भंडारियोंके हाथमें हों तो जरूर उनकी अच्छी संभाल हो सकती है।

१२ दूसरी कठिनाई यह है कि विदेशोंके साथके व्यापारमें एक देशके चलनके साथ दूसरे देशके चलनकी तुलना कैसे की जाय और दोनों चलनोंके बीच विनिमयकी दर किस तरह निर्धारित की जाय। दोनों देशोंमें सोनेका चलन

प्रचलित हो तो यह कठिनाई नहीं होगी। परन्तु इस योजनामें तो अलग अलग देशोंके चलनका स्टैण्डर्ड बहुत भिन्न रहेगा। फिर भी विनिमयके साधन व्यापारकी इतनी ज्यादा चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। एक तो आजकल अलग अलग देशोंके बीच जो व्यापार होता है उसके बारेमें बड़ा प्रश्न यह है कि वह दोनों देशोंके लिए हितकारी है या नहीं। विनिमयका अधिकतर व्यापार तो पिछड़े हुए देशोंके शोषणका ही रूप ले लेता है। इस तरहका व्यापार बन्द हो जाय तो कोई नुकसान नहीं होगा। जो चीजें हमारे या किसी भी देशको दूसरे देशसे मंगाना नितान्त आवश्यक होगी उनकी व्यवस्था सम्बन्धित देशोंकी सरकारें अपने व्यापारी मंडलों द्वारा करा लेंगी। एक देशके व्यापारियोंका प्रतिनिधि-मंडल दूसरे देशमें जाकर दूसरे देशके व्यापारियोंके प्रतिनिधि मंडलसे सलाह मशविरा कर लेगा कि कौनसी चीज देना है और कौनसी लेना है और फिर चीजोंके विनिमयका सौदा कर लेगा। असलमें तो आज भी अलग अलग देशोंके बीच होनेवाले व्यापारमें चीजोंका विनिमय ही होता है। केवल विनिमयके साधनके रूपमें मालकी कीमत द्रव्यमें तय की जाती है। यह द्रव्य एक-दूसरेको दिया या लिया नहीं जाता। प्रस्तुत योजना अमलमें आवे तो दोनों देशोंके चलनकी चीजोंके समूहके रूपमें निश्चित की हुई खरीद-शक्ति परसे इन दोनों चलनोंकी एक-दूसरेके साथ तुलना हो सकती है। आज भी न भुनने वाला कागजी चलन लगभग सभी देशोंमें चलता है और अलग अलग चलनोंके बीच विनिमयकी दर उन चलनोंकी अपने अपने देशोंमें जो खरीद-शक्ति होती है उसके आधार पर ही तय होती है। यह किस तरह तय की जाती है इसका विवेचन 'व्यापार-सम्बन्धी लेन-देनका निपटारा' नामके प्रकरणमें आगे किया गया है।

१५

उधार-व्यवहार और सराफी (बैंकिंग)

उधार-व्यवहार और पैसा

१ हम देख चुके हैं कि सभ्य समाजोंमें एक-दूसरेके साथ लेन-देनका व्यवहार नकद पैसेसे नहीं चलता बल्कि आपसके विश्वास पर या एक-दूसरेकी साखके कारण चलता है। उधार-व्यवहारके द्वारा नकद पैसेका उपयोग किये बिना मालके लेन-देनका या विनिमयका बड़ा व्यवहार निपट सकता है। कोई दुकानदार अपने बंधे हुए और भरोसेके ग्राहकसे नकद पैसा लिये बिना उसके नाम लिखकर माल बेचे और अन्तमें निश्चित तारीख पर हिसाब चुकता कर दे, तो उस समय नकद पैसेके बिना उस ग्राहकका काम चल जाता है। इसी तरह दुकानदार बड़े व्यापारीके यहांसे अपनी साख पर माल ले आवे और माल बिक जाने पर उसका पैसा चुका दे तो इतने समय तक उसका काम भी पैसेके बिना चल जाता है। कुछ व्यापारियोंके बीच आपसमें मालकी बिक्री और खरीद होती हो और वे अपने अपने बहीखातोंमें लिखकर एक-दूसरेको माल देते-लेते रहें तो अन्तमें भी पैसेकी जरूरत पड़ेगी नहीं और पड़ेगी भी तो बहुत थोड़े पैसेकी पड़ेगी। मालकी हर बिक्री और खरीदके समय नकद पैसा लेनेके बजाय उधार लिख लिया जाता है और वर्षके अन्तमें जमा-उधारका हिसाब करके जितना जिसका बाकी निकलता हो उतना उसे दे दिया जाता है। और ऐसा भी न किया जाय तो उतनी बाकी रकम नये वर्षके खातेमें ले जाते हैं। इस तरह व्यवहारमें लाखों रुपयेकी खरीद और बिक्री होती है और नकद पैसा काममें लिये बिना जमा-नामेके व्यवहारसे व्यापारी अपना काम चलाते रहते हैं। इसके लिए खास जरूरी चीज है साख। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि साख एक तरहका पैसा ही है। देशके भीतर और बाहरके दूसरे देशोंके साथ करोड़ों रुपयेका व्यापार इस तरह साख पर उधार — नकद पैसा काममें लिये बिना — चलता है।

२ उधार-व्यवहारके लिए नामके साधनके सिवा दूसरे भी बहुतसे साधन काममें लिये जाते हैं। प्रामिसरी नोट, बैंक नोट, हुंडी, चेक, ड्राफ्ट आदि सब उधार-व्यवहारके साधन हैं। सरकारी द्रव्य धातुका हो या नोटोंका, उसके जरिये जितना लेन-देन और मालकी खरीद-बिक्री होती है उससे कहीं ज्यादा

न मानतासे जाता है। इसलिए हम इन्हें भाव पर चलनेवाला द्रव्य या मगरा द्रव्य कहते हैं। बाजारमें घूमनेवाले द्रव्यकी मात्रा जितनी बाजार भाव पर असर होता है तब कलमें इस सराफी द्रव्यका बहुत हाथ होता है।

उधार-व्यवहार और पूजा

उधार-व्यवहारको इसकी पूजा पर अनेक पत्नके कारण कुछ लोग इसकी उन्न ज्यादा तारीफ कर देते हैं और इसे एक अद्भुत शक्ति बनाते हैं। परन्तु एक बात हमेशा ध्यानमें रखना चाहिये कि उधार-व्यवहारसे नई पूजा पैदा नहीं होती। उधार-व्यवहारसे नई सम्पत्ति का निर्माण नहीं होता। परन्तु जिसके पास पूजी न हो और यदि उस आदमीकी साख अच्छी हो तो दूसरेकी पूजा काममें लेनेके लिए उसे मिल सकती है। इससे समाजकी वर्तमान पूजाकी मात्रा बढ़ती नहीं परन्तु एक आदमीके अधिकारसे पूजा दूसरेके अधिकारमें जाती है। पहला आदमी इस पूजाका उपयोग उत्पादक कार्यमें नहीं कर सकता था। अब उसके बजाय दूसरा आदमी अपनी कुशलता और शानके कारण उसे उत्पादनके काममें लगा सकता है। इस तरह उधार-व्यवहारसे इतनी पूजी नहीं बढ़ती परन्तु इसकी पूजाका उपयोग अधिक सफल होता है। किसी उत्पादन-कार्यके लिए बड़ी रकमकी जरूरत हो परन्तु जिस उस उत्पादन प्रवृत्तिकी व्यवस्था करना आता हो उसके पास बड़ी रकम न हो तो वह व्यक्ति लोगोंसे छोटी-छोटी रकमें लेकर इकट्ठा कर सकता है और उनका उपयोग कर सकता है। इस तरह जो पूजा बेकार पड़ी रहती वह पूर्ण उपयोगमें आ जाती है। इतना ही नहीं यह एस आदमीके हाथमें जाती है जो उसका अच्छेसे अच्छा उपयोग कर सकता है। कुछ आदमी धनवान होते हैं लेकिन अपने धनको उत्पादक कार्यमें लगानेकी कुशलता या अवकाश उनके पास नहीं होता जब कि कुछ आदमियोंके पास यह कुशलता और अवकाश होता है परन्तु पूजा नहीं होती। उधारके व्यवहारसे इन दोनों कमियोंकी पूर्ति हो सकती है। इसके लिए सबसे बड़ी जरूरत यह है कि दूसरेके धनका पूजीके तौर पर उपयोग करनेवाले आदमियोंकी साख अच्छी होनी चाहिये। छोटी छोटी रकमवाले लोगोंको भरोसा हो जाना चाहिये कि जो पैसा हम देंगे वह सुरक्षित रहेगा और जरूरतके समय या नियत समयमें हमें वापिस मिल सकेगा। फिर यह प्रश्न पैदा होता है कि ऐसी योग्यता और अच्छी साखवाले आदमीको खोजा कैसे जाय जिसके द्वारा छोटी रकमवाले हर आदमी अपने पैसेका उपयोग कर सकें। ऐसे आदमियोंका योग मिला देनेका और बिखरी हुई पूजाको उपयोगमें लानेका काम सराफी

१५

उधार-व्यवहार और सराफी (बैंकिंग)

उधार-व्यवहार और पैसा

१ हम देख चुके हैं कि सभ्य समाजोंमें एक-दूसरेके साथ लेन-देनका व्यवहार नकद पैसेसे नहीं चलता, बल्कि आपसके विश्वास पर या एक-दूसरेकी साखके कारण चलता है। उधार-व्यवहारके द्वारा नकद पैसेका उपयोग किये बिना मालके लेन-देन या विनिमयका बहुतसा व्यवहार निपट सकता है। कोई दुकानदार अपने बंधे हुए और भरोसेके ग्राहकसे नकद पैसा लिये बिना उसके नामे लिखकर माल बेचे और अन्तमें दिवाली पर हिसाब चुकता करे, तो उस समय तक पैसेके बिना उस ग्राहकका काम चल जाता है। इसी तरह दूकानदार बड़े व्यापारीके यहांसे अपनी साख पर माल ले आवे और माल बिक जाने पर उसका पैसा चुका दे, तो इतने समय तक उसका काम भी पैसेके बिना चल जाता है। कई व्यापारियोंके बीच आपसमें मालकी बिक्री और खरीद होती हो और वे अपने अपने बहीखातोंमें लिखकर एक-दूसरेको माल देते-लेते रहें, तो अन्तमें भी पैसेकी जरूरत पड़ेगी नहीं और पड़ेगी भी तो बहुत थोड़े पैसेकी पड़ेगी। मालकी हर बिक्री और खरीदीके समय नकद पैसा देनेके बजाय उधार लिख लिया जाता है और वर्षके अन्तमें जमा-उधारका हिसाब करके जितना जिसका बाकी निकलता हो उतना उसे दे दिया जाता है। और ऐसा भी न किया जाय तो उतनी बाकी रकम नये वर्षके खातेमें ले जाते हैं। इस तरह व्यवहारमें लाखों रुपयोंकी खरीद और बिक्री होती है और नकद पैसा काममें लिये बिना जमा-नामेके व्यवहारसे व्यापारी अपना काम चलाते रहते हैं। इसके लिए खास जरूरी चीज है साख। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि साख एक तरहका पैसा ही है। देशके भीतर और बाहरके दूसरे देशोंके साथ करोड़ों रुपयोंका व्यापार इस तरह साख पर उधार — नकद पैसा काममें लिये बिना — चलता है।

२ उधार-व्यवहारके लिए नामेके साधनके सिवा दूसरे भी बहुतसे साधन काममें लिये जाते हैं। प्रामिसरी नोट, बैंक नोट, हुंडी, चेक, ड्राफ्ट आदि सब उधार-व्यवहारके साधन हैं। सरकारी द्रव्य धातुका हो या नोटोंका, उसके जरिये जितना लेन-देन और मालकी खरीद-बिक्री होती है उससे कहीं ज्यादा

इन साधनासे होती है। इसीलिए हम इन्हें साख पर चलनेवाला द्रव्य या सराफी द्रव्य कहते है। बाजारमें घूमनेवाले द्रव्यकी मात्रा जिसका बाजार भाव पर असर होता है उस कारणमें इस सराफी द्रव्यका बडा हाथ होता है।

उधार-व्यवहार और पूंजी

३ उधार व्यवहारका देशकी पूंजी पर असर पडनेके कारण कुछ लोग इसकी बहुत ज्यादा तारीफ कर देते है और इसे एक अद्भुत शक्ति बताते है। परन्तु एक बात हमेशा ध्यानमें रखनी चाहिये कि उधार-व्यवहारमें नई पूंजी पैदा नही होती। उधार-व्यवहारसे नई सम्पत्ति भी निर्माण नही होती। परन्तु किसीके पास पूंजी न हो और यदि उस आदमीकी साख अच्छी हो तो दूसरेकी पूंजी कायम लेनेके लिए उसे मिल सकती है। इससे समाजकी वर्तमान पूंजीकी मात्रा बढती नही परन्तु एक आदमीके अधिकारसे पूंजी दूसरेके अधिकारमें जाती है। पहला आदमी इस पूंजीका उपयोग उत्पादक कार्यमें नही कर सकता था। अब उसके बजाय दूसरा आदमी अपनी कुशलता और ज्ञानके कारण उसे उत्पादनके कार्यमें लगा सकता है। इस तरह उधार-व्यवहारसे देशकी पूंजी नही बढती परन्तु देशकी पूंजीका उपयोग अधिक सफल रूपसे होता है। किसी उत्पादन-कार्यके लिए बडी रकमकी जरूरत हो परन्तु जिसे उस उत्पादन प्रवृत्तिकी व्यवस्था करना आता हो उसके पास बडी रकम न हो तो वह व्यक्ति लोगोंसे छोटी छोटी रकमें लेकर इकट्ठी कर सकता है और उनका उपयोग कर सकता है। इस तरह जो पूंजी बेकार पडी रहती वह पूर्ण उपयोगमें आ जाती है। इतना ही नही वह ऐसे आदमीके हाथमें आती है जो उसका अच्छेसे अच्छा उपयोग कर सकता है। कुछ आदमी धनवान होते है लेकिन अपने धनका उत्पादन कार्यमें लगानेकी कुशलता या अवकाश उनके पास नही होता जब कि कुछ आदमियोंके पास यह कुशलता और अवकाश होता है परन्तु पूंजी नही होती। उधारके व्यवहारसे इन दोनो कमियोंकी पूर्ति हो सकती है। इसके लिए सबसे पहली जरूरत यह है कि दूसरेके धनका पूर्णरूपसे उपयोग करनेवाले आदमीकी साख अच्छी होनी चाहिये। छोटी छोटी रकमवाले लोगोंको भरोसा हो जाना चाहिये कि जो पैसा हम देंगे वह सुरक्षित रहेगा और जरूरतके समय या नियत समयमें हमें वापिस मिल सकेगा। फिर यह प्रश्न पैदा होता है कि ऐसी योग्यता और अच्छी साखवाले आदमीको खोजा कैसे जाय जिससे सारा छोटी रकमवाले हर आदमी अपने पैसेका उपयोग कर सकें। इन आदमियोंका योग मिला देना और बिखरी हुई पूंजीको उपयोगमें लानेका काम सराफी

पेढ़िया और वह करते है। सराफ और बँकोंमें द्रव्यका व्यापार करनेवाली पेढ़िया यह काम करती है। जिनके पास पैसा जरूरतसे अधिक हो उनका पैसा वे अपने पास जमा कर लेते है और जिन्हें उस पैसेका उपयोग करना हो उन्हें वह पैसा उधार दे देते है।

सराफ और बँक

४ सराफ पेढ़िया और बँकोंके कामकाजका मूलभूत सिद्धान्त एक ही होने पर भी उनके कामकाजकी पद्धतिमें थोड़ा भेद है। सराफ सामान्यतः अपने यहा पराई पूजी जमा नहीं रखते और यदि कुछ लोग रखते भी है तो काम सम्बन्धवालोंका ही रखते है। परन्तु ऐसे लोगोंको वे चेक लिखनेका अधिकार नहीं देते। उनका मुख्य काम हुडिया लिखना और हुडिया लेना-बेचना होता है। हुडियोंके बारेमें कुछ सराफ बड़े बहुत महत्वका काम करते है। हुडी लिखनेवाले सब सराफ पूरी साखवाले और दृढ़ आर्थिक स्थितिवाले नहीं होते। ऐसे सराफकी हुडी पर दूसरे किसी प्रसिद्ध सराफका नाम आ जाय तो वह हुडी आसानीसे हाथोहाथ घूम सकती है। कुछ सराफ अपनी साखका उपयोग करनेके बदलेमें थोड़ी फीस जिसे सिकराई कहते है लेकर उस पर स्वीकारी लिख देते है। इस तरहकी हुडिया दूसरे सराफ और बँक बिना संकोच खरीद लेते है।

५ हमारे देशके व्यापार उद्योगमें हमारे सराफोंका स्थान बहुत महत्वका है। अहमदाबाद और बम्बईमें जो कपड़े मिलें और बहुतसे कारखाने चलते है वे जब आरंभ हुए तब उनके लिए प्रारंभिक पूजी अधिकतर सराफी पेढ़ियोंने ही मुहैया की थी। पुरानी सराफी पेढ़ियोंके मालिकोंमें से ही आजके बहुतेरे उद्योगपति और पूजीपति पैदा हुए है। हम आगे देखेंगे कि बँक तो थोड़े समयके लिए ही पैसा उधार देनेका काम करते है जब कि सराफी पेढ़िया उद्योगोंके लिए लम्बी अवधिका उधार देती है। कोई नई मिल या नया बड़ा कारखाना खोलना हो तब हमारी सराफी पेढ़िया उसके शेयर या डिबेंचर खरीद कर उसका आरंभ करती है। बँक इस तरहके काममें नहीं पड़ते। उनका मुख्य काम नये व्यापार उद्योग खड़े करना नहीं बल्कि उनके चालू काममें द्रव्यकी सुविधा कर देना है। इसके सिवा सराफोंकी पद्धति बहुत सादी और कम खर्चवाली होती है। सराफोंका सम्बन्ध अपने ग्राहकोंके साथ सिर्फ धंधे तक ही सीमित और धंधेकी पद्धतिवाला ही नहीं होता बल्कि विश्वस्त मित्र और सयाने सलाहकारका होता है। सराफ अपने ग्राहकके साथ कामकाजका आरंभ निजी

विश्वासके आधार पर करता है और बैंक कामकाजका आरम्भ करते समय ग्राहकको अविश्वासकी दृष्टिसे ही देखता है और इसलिए बैंकसे पैसा लेते समय ग्राहकको कई तरहकी कानूनी विधियोंमेंसे गुजरना पड़ता है। सराफोंका बहुतसा कामकाज सिर्फ मुंहके वचन पर चलता है। सराफका वचन अन्तिम माना जाता है। कितनी ही हानि क्यों न हो तो भी सराफ अपने वचनके खातिर उसे सहन कर लेगा। सराफके साथ ग्राहकके व्यवहारमें निजी सम्बन्धकी प्रधानता रहती थी और आज भी रहती है। परन्तु यह पद्धति उस समयके लिए अनुकूल मानी जा सकती थी जब द्रव्यका व्यवहार मात्रामें और व्यापकतामें बहुत अधिक नहीं था। आज तो उत्पादन और विनिमय दोनोंका काम बहुत विशाल और व्यापक हो गया है। उसमें व्यक्तिगत सम्बन्धकी गुंजाइश थोड़ी रहती है। सारा लेन-देन निजी विश्वास पर नहीं बल्कि नकद पैसे और सामानवाले लोगोंकी जमानत पर किया जाता है। हम आगे चलकर देखेंगे कि बैंकोंके कामकाजकी पद्धतिका विकास बड़े पैमानेके उत्पादन और विदेशी व्यापारको ही ध्यानमें रख कर किया गया है। अब हम देखेंगे कि बैंक मुख्यतः क्या क्या काम करते हैं।

बैंकके मुख्य कार्य

६ **(१) लोगोंकी अमानतें रखना** — बैंकमें पूंजी दो तरहसे जमा की जाती है (क) चालू खातेमें और (ख) निश्चित अवधिके अमानत-खातेमें।

चालू खातेमें जमा की हुई रकम लेनदार मांगे तब बैंकको उसे लौटा देनी पड़ती है। रुपया निकालनेके लिए लेनदारको पहलेसे कोई सूचना नहीं देनी पड़ती। इस कारण चालू खातेमें ब्याजकी दर सामान्यतः बहुत कम होती है। इतना ही नहीं बल्कि अमुक रकमसे नीचेकी रकम पर बैंक बिलकुल ब्याज नहीं देता। चालू खातेमें से पैसा जब चाहिये तब चैकके जरिये निकाला जा सकता है। धंधादारी लोग और सार्वजनिक संस्थायें अपनी तिजोरियोंमें कभी रकम न रखकर अच्छे बैंकोंमें अपने चालू खाते रखते हैं। जिनके कामकाजमें किसीको पैसा देना हो तो उस तरह पैसा न देकर वे अपने बैंकके नाम चैक लिख देते हैं। ऐसी तरह अपने यहां प्रतिदिन जो आय हो — नकदके रूपमें पैसे द्वारा या चैक द्वारा — उसे वे अपने खातेमें जमा कराते हैं। चालू खाते और चैकके जरिये पैसेका उपयोग किये बिना बड़ी बड़ी रकमोंका लेन-देन किस तरह निपटाया जा सकता है यह हम सराफी द्रव्यके विवेचनमें देख चुके हैं।

पन्यिा और बक करत ह। सराफा और बराका न्म द्रव्यका व्यापार करनवाली पन्यिा मह सना हं। जिन पाम पमा जरूरतम अधिक हो उनका पमा य अपन पाम जमा कर लन ह और जिन्ह उम पमका उपयोग करना हो उन्हें यह पसा उधार दे देते ह।

सराफ और बक

४ *सराफी पेढिया और बका कामकाजका मूलभूत सिद्धान्त एक ही* होन पर भी उनके कामकाजकी पद्धतिमें थोडा भद है। सराफ सामायत अपन यहा पराई पूजी जमा नहा रखते और यदि कुछ लाग रखत भी ह ता खास सम्बन्धवालोंकी ही रखते ह। परन्तु एम लागोका वे चक लिखनका अधिकार नहा दते। उनका मुख्य काम हुडिया लिखना और हुडिया लेना-बचना हाना है। हुडियोंके बारेमें कुछ सराफ एक बन्त मह त्वका काम करत ह। हुडी लिखनवाले सब सराफ पूरी साखवाले और दूर अधिक स्थितिवाले नही हात। एम सराफकी हुडी पर दूसरे किसी प्रसिद्ध सराफका नाम आ जाय तो वह हुडी आसानीसे हाथाहाथ घूम सकती है। कुछ सराफ अपनी साखका उपयोग करनके बदलेमें थोडी फीस जिसे सिकराई कहते ह लकर उस पर स्वीकारी लिख देते ह। इस तरहकी हुडिया दूसरे सराफ और बक बिना सकोच खरीद लेते ह।

५ हमारे देशके व्यापार उद्योगमें हमारे सराफोका स्थान बहुत महत्वका है। अहमदाबाद और बम्बईमें जा कपडे मिलें और बहुतसे कारखान चलते ह वे जब आरभ हुए तब उनके लिए प्रारंभिक पूजी अधिकतर सराफी पेढियान ही मुहैया की थी। पुरानी सराफी पेढियोंके मालिकोंमें से ही आजके बहुतेरे उद्योगपति और पूजीपति पदा हुए ह। हम आग देखेंगे कि बक तो थोडे समयके लिए ही पसा उधार देनका काम करत ह जब कि सराफी पेढिया उद्योगोंके लिए लम्बी अवधिका उधार देती ह। कोई नई मिल या नया बडा कारखाना खोलना हो तब हमारी सराफी पेढिया उसके शेयर या डिबेंचर खरीद कर उसका आरभ करती ह। बक इस तरहके काममें नहा पडते। उनका मुख्य काम नये व्यापार-उद्योग खडे करना नही बल्कि उनके चालू काममें द्रव्यकी सुविधा कर दना है। इसके सिवा सराफाकी पद्धति बहुत सादी और कम खर्चवाली होती है। सराफोका सम्बध अपन ग्राहकोंके साथ सिर्फ धधे तक ही सीमित और धधकी पद्धतिवाला ही नहा होता बल्कि विश्वस्त मित्र और सयाने सलाहकारका होता है। सराफ अपन ग्राहकके साथ कामकाजका आरभ निजी

विश्वासके आधार पर करता है और बैंक कामकाजका आरंभ करते समय ग्राहकको अविश्वासकी दृष्टिसे ही देखता है और इसलिए बैंकसे पैसा लेते समय ग्राहकको लंबी लंबी कानूनी विधियोंमें से गुजरना पड़ता है। सराफोंका बहुतसा कामकाज सिर्फ मुंहके वचन पर चलता है। सराफका वचन अन्तिम माना जाता है। कितनी ही हानि क्यों न हो तो भी सराफ अपने वचनके खातिर उसे सहन कर लेगा। सराफके साथ ग्राहकके व्यवहारमें निजी सम्बन्धकी प्रधानता रहती थी और आज भी रहती है। परन्तु यह पद्धति उस समयके लिए अनुकूल मानी जा सकती थी जब द्रव्यका व्यवहार मात्रामें और व्यापकतामें बहुत अधिक नहीं था। आज तो उत्पादन और विनिमय दोनोंका काम बहुत बिगड़ा और व्यापक हो गया है। उसमें व्यक्तिगत सम्बन्धका गुंजाइश थोड़ी रहती है। सारा लेन-देन निजी विश्वास पर नहीं बल्कि नकद पैसे और साखवाले लोगोंकी जमानत पर किया जाता है। हम आगे चलकर देखेंगे कि बैंकोंके कामकाजकी पद्धतिका विकास बड़े पैमानेके उत्पादन और विदेशी व्यापारको ही ध्यानमें रख कर किया गया है। अब हम देखेंगे कि बैंक मुख्यतः क्या क्या काम करते हैं।

जिस द्रव्यकी तुरन्त जरूरत न पड़नेवाली हो उस द्रव्यको व्यक्ति और सार्वजनिक संस्थाएं बंधी हुई अवधिके अमानत-खातेमें जमा कराते हैं। यह अवधि एकसे बारह महीनेकी और कभी कभी कुछ वर्षोंकी भी होती है। इन अमानतों पर ब्याज अधिक दिया जाता है। अवधि जितनी लम्बी होती है ब्याजकी दर उतनी ही अधिक होती है। इसका कारण यह है कि इनमेंसे रकम लौटानेकी निश्चित तारीख बैंकको मालूम होनेसे इन अमानतोंकी रकमोंका बैंक उतने समयके लिए निश्चित होकर दूसरोंको उधार दे सकते हैं।

इसके सिवा कुछ बैंक अपने यहां बचत या सेविंग खाता रखते हैं। इस खातेमें छोटी छोटी रकम भी जमा की जाती है और उन पर ब्याज दिया जाता है। इस खातेमें से सप्ताहमें एक या दो बार ही पैसा निकाला जा सकता है। मध्यम और गरीब वर्गके लोगोंको इस व्यवस्थासे बड़ा लाभ होता है। वे अपने खर्चमें किफायत करके बचाई हुई रकम इस खातेमें जमा करा देते हैं। हमारे देशमें डाक विभाग भी इस तरहके सेविंग्स बैंक चलाता है। इससे जिन गांवोंमें बैंक नहीं होते वहां भी लोगोंको अपनी छोटी रकमें बचत-खातेमें रखनेकी सुविधा मिल जाती है।

(२) पैसे उधार देना या पैसे लगाना — अपने यहां जमा की हुई अमानतोंमें से बंधी हुई अवधिकी अमानतोंके बारेमें तो उन्हें लौटानेकी निश्चित तारीख बैंकको मालूम रहती है। बचत-खातेमें जमा करानेवाले लोग सामान्यतः बहुत कम रकम निकालते हैं। और चालू खातेमें जमा रहनेवाली रकमोंमें से भी पूरी रकम एकसाथ कभी नहीं निकाली जाती। बैंकको यह अन्दाज हो जाता है कि कितने प्रतिशत रकमके चेक उसके पास आनेवाले हैं। यह अन्दाज भी बैंकको होता है कि इन चेकोंमें से भी नकद पैसे तो अमुक प्रतिशत चेकोंके ही चुकाने पड़ेंगे। इसलिए इस अंदाजके अनुसार या कानूनसे यदि यह निश्चित कर दिया जाय कि हर बैंकको अपने यहां जमा रहनेवाली अमानतोंका अमुक भाग नकद द्रव्यके रूपमें अपनी तिजोरीमें रखना ही होगा, तो उतनी नकद रकम तिजोरीमें रखकर बाकीकी रकम बैंक दूसरोंको उधार दे देते हैं। क्योंकि बैंक व्यापारिक पेढ़ी होती है और नफा कमानेके लिए लेन-देनका धंधा करता है। कम ब्याज पर पैसा लेना और अधिक ब्याज मिले इस तरह पैसा धंधेमें लगाना उसका मुख्य काम है। इसलिए जितनी रकम रखना अनिवार्य हो उतनी रकम रखकर बाकी रकम वह इस तरह उद्योग-धंधेमें लगानेकी कोशिश करता है जिससे अच्छा ब्याज मिले। अब हम यह देखेंगे कि बैंक किस क्रमसे अपना यह पैसा लगाता है।

लगानेके लिए जितना पैसा बैंकके पास होता है उसका अमुक भाग तो वह ऐसी सरकारी जमानतों और उनमें भी खासकर ट्रेजरी बिलों* में रखता है जिन्हें किसी भी समय बाजारमें बेचकर पैसा खड़ा किया जा सकता है। ट्रेजरी बिल सरकारके करेन्सी नोटों जैसे हैं। दोनोंमें अंतर इतना ही है कि करेन्सी नोट अपने पास रखनेसे कुछ ब्याज नहीं मिलता और ट्रेजरी बिल पर थोड़ासा ब्याज मिल जाता है। ट्रेजरी बिलोंकी अवधि पूरी होनेसे पहले बैंकको यदि एकाएक

* सरकार ऐसा जो बड़ा खर्च उठाती है जिसका लाभ आगेकी सन्तानोंको मिलता है उसके लिए वह लम्बी अवधिके लोन या कर्ज लेती है और अपनी वार्षिक आयमें से थोड़ी थोड़ी बचत करके ये कर्ज चुकाती है। लेकिन चालू खर्चके लिए भी सरकारको कभी-कभी पैसेकी तंगी होती है। जमीनके लगान और दूसरे करोंकी आय बरसके एक निश्चित समयमें ही होती है जब कि सरकारका खर्च तो प्रतिदिन होता ही रहता है। इस चालू खर्चको पूरा करनेके लिए सरकार थोड़ी अवधिके सामान्यतः तीन महीनेकी अवधिके लोन लेती है। इन लोनोंको ट्रेजरी बिल कहा जाता है। इनमें यह शर्त होती है कि इस लोनके खरीदनेवालेको खरीदकी तारीखसे तीन महीनेके भीतर लोनकी पूरी रकम मिलेगी। इन लोनोंको खरीदना चाहनेवालोंसे सरकार टेण्डर मांगती है। लोन खरीदना चाहनेवाले तीन महीनेका अपना सोचा हुआ ब्याज पहलेसे काटकर टेण्डर भरते हैं। जिसने कमसे कम दर पर ब्याज मांगा हो, उसका टेण्डर सरकार पास करती है। यह बात एक उदाहरणसे अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिये कि बम्बई सरकारको तीन महीनेकी अवधिके लिए एक करोड़ रुपये चाहियें। वह घोषणा करती है कि अमुक महीनेकी पहली तारीखको सौ सौ रुपयेवाले एक करोड़ रुपयेके ट्रेजरी बिल बेचे जायंगे इसलिए जो खरीदना चाहें वे टेण्डर भरकर भेजें। मान लीजिये कि पहली अप्रैलको ये ट्रेजरी बिल बेचे जाते हैं। तो जूनकी ३० तारीखको सरकार खरीदनेवालोंको पूरे सौ रुपये चुकानेके लिए बंध जाती है। मान लीजिये कि सौ सौ रुपयेके ट्रेजरी बिलोंके लिए रु० ९९-१२-० के बहुतसे टेण्डर आते हैं और इस भावसे सरकार एक करोड़ रुपयेके ट्रेजरी बिल बेचती है तो सरकारको एक रुपये प्रतिशत वार्षिक ब्याजसे तीन महीनेकी अवधिके लिए एक करोड़ रुपया मिलता। लगभग सभी देशोंकी सरकारोंको निकट भविष्यमें होनेवाली आयके आधार पर अपने चालू खर्चके लिए इस तरह ट्रेजरी बिल जारी करने पड़ते हैं। हमारे देशमें ट्रेजरी बिल बेचनेका और अवधि पूरी होने पर रुपया चुका देनेका काम सरकारके बदले रिज़र्व बैंक करता है।

पैसेकी जरूरत पड़े, तो बाजारमें उन्हें तुरन्त ही बेचकर उनसे पैसे खड़े किये जा सकते हैं। इसी तरह सरकारकी दूसरी जमानतें भी तुरन्त बेची जा सकती हैं।

रुपया लगानेके क्रममें दूसरा नंबर व्यापारियों तथा सराफोंको मांगते ही लौटानेकी शर्त पर दिये हुए द्रव्यका होता है। ऐसे द्रव्यको कॉल मनी — बुलाने पर आ खड़ा होनेवाला द्रव्य — कहते हैं। ऐसा द्रव्य सरकारी दस्तावेजों तथा स्थानीय संस्थाओंके खातों या डिबेंचरों अथवा अच्छी आर्थिक स्थितिवाली मिलों या कारखानोंके शेयरोंकी जो किसी भी समय बाजारमें बेचे जा सकते हैं जमानत पर दिया जाता है। व्यापारी या सराफको थोड़े समयके लिए पैसेकी तंगी हो तो वह ऐसे दस्तावेजोंको बैंकमें रखकर उन पर पैसा लेता है। दस्तावेजोंकी बाजार-कीमतका ७५ या ८० प्रतिशत पैसा बैंक देता है। देशके केन्द्रीय बैंककी ब्याजकी जो प्रचलित दर होती है उससे कुछ अधिक दर दूसरे बैंकोंको इस तरह द्रव्य लगानेमें मिलती है।

इसके बाद सुदृढ़ आर्थिक स्थितिवाले सराफोंकी मीयादी हुंडियां और विदेशी व्यापार-सम्बन्धी विनिमय-पत्र आते हैं। इस व्यवहारमें बैंकको ब्याज न मिलकर बट्टा मिलता है। मान लीजिये कि सुदृढ़ आर्थिक स्थितिवाले सराफका स्वीकारी लिखी हुई ६० से ९० दिनमें पकनेवाली हुंडी पर किसी व्यापारीको पैसा चाहिये तो बैंक इस हुंडीके पकनेमें जितने दिन बाकी रहे हों उतने दिनका ब्याज पहलेसे ही काट लेता है और बाकीका पैसा उस व्यापारीको देता है। इस तरह पहलेसे काटे हुए ब्याजकी रकमको बट्टा कहते हैं। ब्याज अवधि पूरी होने पर चढ़ता है और मूल रकमके सिवा दिया जाता या लिया जाता है जब कि बट्टा मूल रकममें से पहले ही काट लिया जाता है और उतनी कम रकम दी जाती है। यही हाल विदेशी विनिमय-पत्रोंका है। हमारे देशके किसी व्यापारीने अपना माल विदेश भेजकर उसका विनिमय पत्र बनाया होगा तो उसका पैसा उस विदेशी व्यापारीके पास माल पहुंचे तब यहांके व्यापारीको मिल सकता है। इसकी मीयाद अधिकतर ९० दिनकी होती है। लेकिन यहांके व्यापारीको तुरन्त पैसेकी जरूरत हो तो वह अपने बैंकको यह विनिमय-पत्र बेच डालता है। इस विनिमय पत्रकी मीयाद पूरी होने तकके ब्याजकी और विनिमय-पत्रका पैसा वसूल करनेके मेहनतानेकी थोड़ी रकम बट्टेके तौर पर विनिमय-पत्रकी रकममें से बैंक काट लेता है और बाकी पैसा उस व्यापारीको दे देता है। बैंकको इस तरह थोड़ी मुद्दतके लिए पैसा लगानेका एक अच्छा अवसर मिल जाता है।

क्योंकि इस तरह पैसा लगानेकी जमानतके तौर पर जो विनिमय-पत्र बैंकके पास होता है उसके द्वारा उसमें बताये हुए माल पर बैंकका अधिकार रहता है। विदेशमें उस बैंककी शाखा हो तो उस शाखाको और शाखा न हो तो अपने आढ़तिया बैंकको वह अपना यह विनिमय-पत्र भेज देता है और मालके विदेश पहुंचते ही इस बैंककी शाखा या दूसरा आढ़तिया बैंक इस विनिमय-पत्रका पैसा वहांके व्यापारीसे वसूल करके विनिमय पत्र उसे दे देता है। और इस विनिमय-पत्रकी मददसे परदेशी व्यापारी अपना माल छुड़ा लेता है। बैंकको यदि बीचमें ही पैसेकी जरूरत पड़ जाय तो वह विनिमय-पत्र वह दूसरे बैंकको बेच भी डालता है। यह बात हमने नियातके विनिमय पत्रकी की। इसी तरह आयात मालके विनिमय-पत्र भी बाजारमें बिकते हैं और उनमें भी बैंक अपना पैसा लगाते हैं।

इन विनिमय पत्रोंकी तरह ही बैंक बचे हुए मालकी हवाला रसीद (डिलीवरी रिसीट) पर भी पैसा लगाते हैं। मान लीजिये कि क एक खास अवधिके भीतर मालका हवाला देनेकी शर्त पर ख को माल बेचता है। बिक्रीका सौदा करनेके बाद क तुरन्त ख पर मालकी कीमतकी हुंडी लिखता है। इस हुंडीके साथ नियत अवधिके भीतर मालका हवाला देनेकी रसीद मालकी तफसील और कीमतका बीजक — इस तरह तीन कागज वह तैयार करता है। क को यदि तुरन्त पैसेकी जरूरत हो तो ये तीनों कागज ग को देकर उससे वह पेशगी पैसे ले लेता है और ग हवाला रसीदकी अवधि पूरी होने तकका ब्याज काट कर क को पैसे दे देता है। यदि ग इस तरह पैसा देनेको तैयार न हो तो क ये कागज बैंकको बेच देता है। ये कागज खरीदते समय बैंक हवाला रसीदकी अवधि पूरी होने तककी तारीखका ब्याज और उस तारीख पर ख से पैसा वसूल करनेका मेहनताना काट कर क को पैसा चुका देता है। हवालेकी अवधि पूरी होने पर बैंक ख से इस लिखी हुई हुंडीका पूरा पैसा लेकर उसे ये कागज सौंप देता है। इस व्यवहारमें बैंकका पैसा अधिकसे अधिक तीन महीने तक रुकता है और इतनी अवधिमें बट्टेका लाभ उसे मिल जाता है।

इसके सिवा कारखानेदारों और व्यापारियोंको विश्वस्त जमानत पर खास तौर पर गोदाममें पड़े हुए उनके माल पर थोड़ी अवधिके या माल बिक जाय उस समय तकके लोन भी बैंक देता है। गोदाम पर बैंक अपना ताला और मुहर लगाता है और व्यापारी या कारखानेदार जैसे जैसे पैसा चुकाता जाता है वैसे वैसे उस गोदाममें से माल निकाल कर दिया जाता है।

इस सारे व्यवहारमें बैंक एक करामात करते हैं जो ध्यानमें रखने जैसी है। जिन असामियोंको बैंक ऊपर बताये हुए ढंग पर पैसा उधार देते हैं उन्हें बैंक शायद ही कभी नकद पैसा देते हैं। बैंक उनसे कहते हैं आप नकद पैसा किसलिए ले जाते हैं? आपको जरूरत पड़े तब इतनी रकम तकके चैक आप हम पर लिख दीजिये। इसका अर्थ यह हुआ कि पैसा उधार देते समय बैंक नकद पैसा देनेके बजाय अमानत जमा करानेवाले या चालू खाता खोलनेवाले व्यक्तिकी तरह उस देनदारको बैंक पर उतनी रकमके चैक लिखनेका अधिकार देते हैं। बैंक नकद पैसा उधार नहीं देता बल्कि अपनी साख उस असामीको उधार देता है अर्थात् अपनी साखका उपयोग करनेकी छूट देता है। पैसा उधार देनेकी यह क्रिया एक नया चालू खाता खोलनेके बराबर ही होती है। कहा जाता है कि इस क्रियासे बैंक एक नई अमानत खड़ी कर लेता है। जितने पैसे उधार देना तय हुआ हो उतने पैसे उस असामीके खातेमें एडवान्सके रूपमें नाम लिख कर उसके चालू खातेमें अमानतके तौर पर बैंक जमा करता है। वह आदमी जैसे जैसे चैक लिखता जाता है वैसे वैसे यह रकम उसके चालू खातेमें नामे लिखी जाती है। उधारकी अवधि पूरी हो जाने पर इस खातेका हिसाब कर लिया जाता है। उधारका सौदा करते समय ब्याजकी दरके बारेमें जो दर तय हुई हो उसके मुताबिक ब्याज जोड़ लिया जाता है। सामान्यतः चैक लिखकर जितनी रकम निकाली गई हो उतनी ही रकमका उतनी अवधिका ब्याज जोड़ लिया जाता है परन्तु कभी कभी ऐसी बात भी होती है कि इस तरहका खाता खोलनेके बाद देनदार बहुत देरसे चैक लिखना आरम्भ करे तो भी उसे कमसे कम अमुक रकमका निश्चित किया हुआ ब्याज तो चुकाना ही पड़ता है।

जिस असामीको पैसा उधार दिया गया हो उसे नकद पैसा न देकर सिर्फ उतनी रकम तकके चैक लिखनेकी जो सत्ता बैंक देता है उसमें बैंकको एक और लाभ भी होता है। वह असामी जिस मनुष्यको बैंकके नाम चैक लिखकर देता है वह आदमी भी बैंकसे नकद पैसा नहीं ले जाता। वह आदमी भी यदि व्यापारी हो तो बैंकमें उसका खाता होता है और वह अपने खातेमें चैक जमा कराता है। अब जिस बैंकने उस असामीको पैसा उधार दिया है उसी बैंकमें यदि उस व्यापारीका खाता हो तब तो बैंकको एक खातेमें पैसा नामे लिखकर दूसरे खातेमें पैसा जमा करनेका ही काम रह जाता है। और पहला असामी दूसरा व्यापारी तथा तीसरा बैंक—इन तीनोंके बीच पैसेका

व्यवहार नकद रकमका उपयोग किये बिना केवल जमा-नामे लिखनेसे ही निपट जाता है। परन्तु उस व्यापारीका खाता यदि दूसरे बैंकमें हो तो वह अपने खातेमें वह दस चैकको जमा कराता है और इस दूसरे बैंकको पहले बैंकसे चैकका पैसा वसूल करना होता है। उसमें भी नकद पैसेका उपयोग किये बिना हवाला-गृह (क्लिअरिंग हाउस) के मारफत चैकोंका हिसाब आपसमें मिलाकर कैसे बराबर कर दिया जाता है यह हम देख चुके हैं।

नई अमानत खड़ी करनेकी रीतिका उपयोग करनेके बजाय कुछ बैंक जिन लोगोंको पैसा उधार देनेका निश्चय करते हैं उन्हें केवल अपने पर उतनी रकम तकके चैक लिखनेका अधिकार देते हैं। उनके खातेमें वस्तुतः कोई रकम जमा नहीं होती इसलिए इस तरह लिखे जानेवाले चैकको 'ओवर ड्राफ्ट' कहते हैं। हमारे देशमें बैंक अपने जाने हुए ग्राहकोंको उनके चालू खातेमें जमा हुई रकमके सिवा शेयरों, डिबेंचरों, मालकी हुंडी, रसीदों और सोने चांदीकी जमानत पर ओवर ड्राफ्ट लिखने देते हैं।

यह सारा व्यवहार किस तरह होता है इसकी विस्तृत चर्चा 'व्यापार सम्बन्धी लेन-देनका निपटारा' नामक प्रकरणमें की गई है।

(३) अलग अलग स्थानों पर रहनेवाले असामियोंके बीचके लेन देनके निपटारेका काम पहले कहा जा चुका है कि यह काम सराफ हुंडियोंके द्वारा करते हैं। बैंक भी यह काम करने लगे हैं। एक देशके दूसरे देशके साथ होनेवाले व्यापारके सम्बन्धमें जो लेन-देन होता है उसका निपटारा एक्सचेंज बैंकोंके द्वारा होता है। सामान्य बैंकोंको हम सराफी बैंक और एक्सचेंज बैंकोंको विनिमय-बैंक कहेंगे।

(४) नोट छापनेका काम यूरोप और अमरिकामें साधारण सराफी बैंक अपने अपने कम्पनी नोट छापकर चलनमें रखते थे। परन्तु यह काम बहुत ही महत्वका होनेसे हर देशकी सरकारने कानून बनाकर इस कामको अपने अंकुशमें ले रखा है। अपने देशके केन्द्रीय बैंकको सरकार कम्पनी नोट छापनेका अधिकार देता है और कानूनसे यह निश्चित करती है कि कितने नोट छापे जायें और उनके बदलेमें नकद अमानत कितनी रखी जाय। हमारे देशमें नोट छापनेका अधिकार आरम्भमें बंबई, मद्रास और कलकत्तेके तीन प्रान्तिक बैंकोंको था। सन् १८६१ में पेपर करंसी एक्ट पास करके सरकारने यह अधिकार अपने हाथमें ले लिया। सन १९३४ में रिजर्व बैंक आफ इंडिया एक्ट पास हुआ और उसके अनुसार सन् १९३५ में

रिज़र्व बैंक स्थापित हुआ। तबसे चलनी नोट छापनेका काम रिज़र्व बैंक करता है यह पहले कहा जा चुका है।

७ इसके सिवा कुछ बैंक 'एग्ज़िक्यूटर' (प्रबंधक) के नाते व्यक्तिगत और सार्वजनिक संपत्तिकी व्यवस्थाका और 'लैटर ऑफ क्रेडिट' देनेका काम करते हैं। मनुष्य जब यात्रामें जाता है तब खर्चके लिए सारा पैसा अपने पास ही रखनेमें उसे खतरा मालूम होता है। इसलिए वह बैंकमें पैसा जमा कराकर उतने पैसेका 'लैटर ऑफ क्रेडिट' (साख-पत्र) ले लेता है। जिस जिस शहरमें इस बैंककी शाखा होती है उस उस शहरकी शाखामें जाकर उस साख-पत्रमें नाम लिखा कर वह व्यक्ति पैसे ले सकता है। अगर किसीने इम्पीरियल बैंकसे एक हजार रुपयेका साख-पत्र लिया हो तो दिल्लीमें सौ, अलाहाबादमें पचास और बनारसमें दो सौ इस प्रकार जब तक एक हजार रुपये पूरे न हो जायें तब तक जहां जहां इम्पीरियल बैंककी शाखा हो वहांसे रुपया निकाला जा सकता है। जिस शाखासे जितने रुपये निकाले जायं उतने रुपये देनेकी बात उस शाखावाले साख-पत्रमें लिख देते हैं। इसलिए दूसरी शाखावालोंको मालूम हो जाता है कि कुल कितने रुपये बाकी रहे हैं। विदेशोंकी यात्रा करनेवाले लोग अपने सुभीतेके लिए विनिमय-दरों पर लिखे गये साख-पत्र साथ लेकर घूमते हैं।

लंबी अवधिके लिए पैसा उधार देना अथवा पूंजी लगाना

८ अब तककी चर्चामें हमने देखा कि बैंक सामान्यतः थोड़ी अवधिके लिए पैसा उधार देनेका काम करते हैं। उत्पादनके काममें दो तरहकी पूंजीकी जरूरत पड़ती है। एक अचल पूंजी जो स्थायी रूपमें लगी रहे जैसे कि मकानोंमें और मशीनोंमें और दूसरी चल पूंजी जैसे कि कच्चे मालकी खरीदमें, मजदूरी चुकानेमें आदि आदि। तैयार मालके बिकने पर कच्चे मालमें तथा मजदूरीमें लगी हुई पूंजी तो लौट आती है। उत्पादनके स्थायी साधनोंकी घिसाई जितना खर्च भी तैयार मालके बिकने पर मिल जाता है। लेकिन स्थायी साधनोंमें लगी हुई पूंजी उनमेंसे वापिस नहीं मिल सकती। इसलिए साधारण बैंक इस तरहके स्थायी या लंबी मीयादके काममें लगानेके लिए अपना पैसा उधार नहीं देते। लेकिन जैसे जैसे नये नये उद्योग धंधे बढ़ते जाते हैं और पुराने उद्योग धंधोंमें नई नई खोजोंके कारण परिवर्तन होते जाते हैं वैसे वैसे इन कामोंमें लगानेके लिए पैसेकी जरूरत तो पड़ती ही है। उनमें भी लोगोंकी बचतका पैसा लगना तो चाहिये ही। लेकिन यह निश्चित नहीं होता कि नई खड़ी होनेवाली कंपनीको सफलता मिलेगी

या नहीं, इसलिए साधारण बैंक ऐसे साहसके कामोंमें पड़ नहीं सकते। तब लोगोंसे उनकी बचतका पैसा इकट्ठा करके ऐसे स्थायी कामोंमें उसे लगानेका काम कौन करता है और यह काम किस तरह होना है?

९ ऐसे उद्योग-धंधे चलानेके लिए मर्यादित जिम्मेदारीवाली कंपनियां खोली जाती हैं और उनके लिए शेयरों द्वारा आवश्यक पूंजी जुटाई जाती है। यह कहा जा चुका है कि विपुल पूंजी खड़ी करके ऐसी कंपनियां खोलनेका काम हमारे देशमें पुरानी सराफी पेढ़ियोंके मालिकान ही अधिकतर किया है। कम्पनीके अधिकतर शेयर वे ही खरीद लेते हैं और बाकी शेयर खुले तौर पर बेचनेके लिए बाजारमें रखते हैं। नई कंपनी खड़ी करनेवाले व्यक्तियों या पेढ़ीको जिसे मैनेजिंग एजेंट्स कहते हैं खास पर बाजारमें कंपनीके शेयर बिक जाते हैं। यदि कंपनी चल पड़े और सफलता प्राप्त करके अच्छे डिविडेंड देने लगे तब तो इस कंपनीके शेयर लेनेवाले बहुत लोग निकल आते हैं। उस समय कंपनीके संस्थापकगण बहुतसे शेयर खरीद रखे हों तो उनमें से कुछ वे बेच भी डालते हैं।

१० यूरोपमें ऐसी नई कंपनियोंके लिए पूंजी खड़ी करनेका काम करनेवाले विशेष बैंक होते हैं। वे इंडस्ट्रियल बैंक कहलाते हैं। इंग्लैण्डमें पूंजी खड़ी करनेवाली पेढ़ियोंको इश्युइंग हाउसेज कहते हैं। नई कंपनीकी आर्थिक स्थितिके बारेमें और उसकी सफलताकी संभावनाओंके बारेमें गहरी जांच करके ऐसी कंपनीके शेयर पूंजी लगाना चाहनेवाले लोगोंके सामने रखनेका काम ये इश्युइंग हाउसेज करते हैं। उन्हें द्रव्य-बाजारका गहरा ज्ञान होता है और पूंजी खड़ी करनेकी इच्छा रखनेवालोंको वे इस बारेमें सलाह देते हैं कि किस समय और किस तरह बाजारमें शेयर बेचनेका काम सफल हो सकता है। दूसरी ओर पूंजी लगानेकी व्यवस्था कर देनेवाली खास कंपनियां भी स्थापित हैं। इन कंपनियोंको इन्वेस्टमेण्ट ट्रस्ट कहा जाता है। ये कंपनियां स्थायी या अचल पूंजी खड़ी कर देनेमें बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं। वे पूंजी लगानेकी इच्छा रखनेवालोंको अपने ग्राहक बना लेती हैं। उनका पैसा वे लम्बी अवधिकी अमानतके तौर पर अपने यहां जमा रखती हैं और उसे सुदृढ़ आर्थिक स्थितिवाले उद्योग-धंधोंमें लगाती हैं। वे एक जगह बड़ी रकम न लगाकर अलग अलग उद्योग-धंधोंमें और अलग-अलग कंपनियोंमें विवेकके साथ उसे बांट देती हैं जिससे जिम्मेदारी बंट जाय और मर्यादित भी हो जाय। ये ट्रस्ट इस विषयका विशेष अध्ययन कर लेते हैं कि किन उद्योगोंमें और किन कंप

नियामें पूंजी रखनी चाहिये और नियमें नहीं रोकनी चाहिये। इसलिए साधारण और इक्वाटीमें पूंजी लगानेवालोंका जितना ब्याज या डिविडेन्ड मिल सकता है उससे ज्यादा ब्याज और डिविडेन्ड ये ट्रस्ट उपजा सकते हैं। उन्होंने यदि बड़ी कंपनियोंके शेयर खरीदे रखे हों या जमानतों पर बड़ी पूंजी लगा रखी हो तो शेयरोंमें या दूसरी लगाई हुई पूंजीमें अच्छे भाव आने पर वे उन्हें बेच डालते हैं और नये शेयरों तथा नये धंधोंमें पैसा उधार देते हैं। और इस तरहका बेचने-खरीदनेमें ये वे बीचका नफा निकाल लेते हैं। इन ट्रस्टोंका मुख्य काम तो अधिक आय करानेवाले तथा न डूबनेवाले कर्ज देनेका ही है। लेकिन बीच बीचमें इस तरह जो नफा वे कमा लेते हैं वह उनकी अतिरिक्त आय होती है। इस तरहकी आयको अपने ग्राहकोंमें न बांटकर ये ट्रस्ट कभी कभी अपने उधारके काममें होनेवाली हानिकी पूर्तिके लिए जमानतके तौर पर रख छोड़ते हैं। अपने ग्राहकोंको नियमित रूपमें ब्याज देना तो उनके लिए अनिवार्य ही होता है।

११ ऐसा कह सकते हैं कि इश्युइंग हाउसेज पूंजी खर्च करनेकी इच्छा रखनेवाली औद्योगिक अथवा व्यापारिक कंपनियोंके लिए अनुकूलता पैदा करनेकी दृष्टिसे काम करते हैं और इन्वेस्टमेण्ट ट्रस्ट पूंजी लगानेकी इच्छावाले वर्गके लिए सुविधा पैदा करनेकी दृष्टिसे काम करते हैं।

यह स्पष्ट है कि लोगोंका पैसा जमा करके थोड़ी अवधिके लिए दूसरोंको उधार देना और नये खड़े होनेवाले उद्योग-धंधोंमें स्थायी (अचल) पूंजी लगाना ये दो उधार देनेके बिलकुल अलग अलग रूप हैं। जहां पहले ढंगका काम करनेवाले सराफ या बैंकरमें सावधानी विवेक और कार्यकुशलता तथा निश्चितता आदि गुण होना और व्यापारियोंकी आर्थिक स्थितिसे परिचित रहना आवश्यक है वहां दूसरे प्रकारके काममें यह परखनेकी तीव्र दूरदर्शिता होनी चाहिये कि कोई खास नया धंधा या उद्योग सफल होगा या नहीं और साथ ही साहसिकता भी होनी चाहिये।

१२ लोगोंको अपनी बचत इस तरह स्थायी रूपमें लगानेकी प्रेरणा देनेमें शेयर बाजार भी कुछ हद तक जो हिस्सा लेते हैं उसका यहां उल्लेख करना चाहिये। हम देखते हैं कि शेयर बाजारमें अलग अलग कंपनियोंके शेयर खरीदने-बेचनेका काम रोज हुआ करता है। इस कारणसे किसी भी कंपनीका शेयर खरीदते समय खरीदारके मनमें यह धीरज रहता है कि रुपयेकी जरूरत पड़ेगी तब शेयर बेचा जा सकेगा। शेयर बेचकर जब चाहिये तब पैसा खड़ा न किया जा सके तो साधारण आदमी शेयर

खरीदनेमें अपनी बचत न लगायगा क्योंकि कंपनी कितनी भी सफल क्यों न हो जाय तो भी उसे तो केवल डिविडेंड ही मिलता रहेगा। उसे पूरी रकमकी जरूरत पड़े तब उस कम्पनीसे तो नियमके अनुसार वह रकम कभी नहीं मिल सकती। शेयर बाजार न हो खड़ी होनेवाली कंपनियोंके शेयर निकालनेमें भी बैंकोंकी सहायतासे काफी काम करते हैं। गुणमें ही जानकर वाले नियमित डिविडेंड देनेवाली कंपनियोंके शेयरोंकी ही खरीद बिक्री शेयर बाजारोंमें अधिक होती है।

केन्द्रीय बैंक

१३. जहां पश्चिमी ढंगकी बैंक-पद्धति प्रचलित हो गई है ऐसे प्रत्येक देशमें बैंकोंका नियंत्रण करनेके लिए जो एक केन्द्रीय बैंक होता है उसके स्वरूपको समझ लेना आवश्यक है। इंग्लैण्ड फ्रांस और जर्मनीमें ऐसे केन्द्रीय बैंक वर्षोंसे चलते हैं। अमेरिकामें प्रथम महायुद्धके बाद अर्थात सन १९१८ के बाद फेडरल रिजर्व सिस्टमके नामसे केन्द्रीय बैंकिंग मण्डलकी स्थापना हुई। उसमें लगभग तेरह रिजर्व बैंक शामिल हैं। हमारे देशमें रिजर्व बैंककी स्थापना सन १९३५ में हुई। दूसरे बैंकोंकी तरह यह केन्द्रीय बैंक भी शेयर-होल्डरोंकी मर्यादित जिम्मेदारीवाली एक कंपनी ही थी और उसका कामकाज डाइरेक्टरों द्वारा होता था। लेकिन हर देशमें कानूनसे अथवा रिवाजसे सरकार और केन्द्रीय बैंकके बीच बहुत गहरा सम्बन्ध होता है यहां तक कि केन्द्रीय बैंकको सरकारी बैंक ही माना जा सकता है। १९४९ से तो रिजर्व बैंक पूरी तरह सरकारी बना लिया गया है।

१४. केन्द्रीय बैंकके दो विभाग होते हैं। एक चलन विभाग होता है जिसके हाथमें धातुके सिक्के और नोट चलनमें रखनेका काम होता है। इस बारेमें कोई मर्यादा नहीं होती कि कितने नोट चलनमें रखे जायें। लेकिन यह कानूनसे निश्चित कर लिया जाता है कि नोटोंके पीछे सोने चांदीके पाट या सोने चांदीके सिवा अमुक मात्रामें अमानतके रूपमें रखने चाहिये। कुछ देशोंमें यह भी होता है कि एक विशेष रकम तकके नोट तो सोने-चांदीकी इस तरहकी अमानतके बिना भी बैंक छाप सकता है। जैसे बैंक आफ इंग्लैण्ड २६ करोड़ पौण्ड तकके नोट सोने-चांदीकी किसी भी अमानतके बिना छाप कर चलनमें रख सकता है। परन्तु इससे अधिकके नोटोंके लिए उसे पूरी अमानत रखना पड़ता है। हमारे देशमें रिजर्व बैंकके लिए अमुक अमानत रखना अनिवार्य कर लिया गया है यह हम हमारे देशके चलन वाले प्रकरणमें देख चुके हैं। सोने चांदीके सिवा

सरकारी जमानतोंकी भी अमानत मान लेनेकी प्रणाली लगभग प्रत्येक देशमें स्थापित हो गई है।

१५ दूसरे विभागको हम सराफा (बैंकिंग) विभागका नाम दे सकते हैं। यह विभाग सराफीका काम तो जरूर करता है परन्तु लगभग सभी देशोंमें यह सामान्य जनताके साथ सम्बन्ध नहीं रखता। यह विभाग सरकारी खजानेका पैसा अपने यहां रखनेका और सरकारको जब जरूरत हो तब पैसा उधार देनेका काम करता है। इसके सिवा उसका बड़ा काम तो दूसरे सराफी बैंकोंके कामकाज पर देखरेख और अंकुश रखना होता है। कोई बैंक यदि अधिक ब्याज कमानेके लालचमें इस तरह पूंजी लगा बैठे कि पैसा जल्दी न छूट सके तो वह कठिनाईमें पड़ जाता है। किसी भी बैंकके बारेमें यदि अविश्वासका वातावरण पैदा हो जाय तो उसके सारे लेनदार एकदम अपनी अमानतें निकाल लेनेके लिए बैंक पर टूट पड़ते हैं। इसका असर दूसरे अच्छे और मजबूत आर्थिक स्थितिवाले बैंकों पर भी होता है और सारे द्रव्य-बाजारमें संकट पैदा हो जाता है। बैंक वास्तवमें भले एक निजी व्यापारिक कंपनी ही हो लेकिन एक बैंककी अव्यवस्था दूसरे सारे बैंकों और सारे द्रव्य-बाजारको नुकसान पहुंचाती है। इसलिए प्रत्येक बैंकका काम एक सार्वजनिक ट्रस्टकी तरह चलना चाहिये और इसी तरह उसका नियंत्रण होना चाहिये। एक नियंत्रण तो यह है कि हर बैंकको अपनी अमानतोंका अमुक प्रतिशत भाग तिजोरीमें नकद रखना चाहिये। दूसरा यह कि बैंकको अमुक विशेष कामोंके लिए ही कर्ज देनेका अधिकार होना चाहिये और इस तरहके कर्जोंकी अधिकसे अधिक अवधि भी निश्चित होनी चाहिये। उसके आडिट किये हुए ब्योरेवार हिसाब समय समय पर प्रकाशित किये जाने चाहिये और सुरक्षितताके लिए निश्चित किये हुए नियमोंका भलीभांति पालन होता है या नहीं यह देखनेके लिए बैंकके बहीखातेकी समय समय पर जांच-पड़ताल होनी चाहिये। यह काम केन्द्रीय बैंकके जरिये होनेकी आशा रखी जाती है। हर प्रमाणित बैंकको केन्द्रीय बैंकके पास लेनदेनका अपना साप्ताहिक हिसाब भेजना पड़ता है। साथ ही बैंककी अमानतों पर अंकुश रहनेकी दृष्टिसे हर प्रमाणित बैंकके लिए यह अनिवार्य माना जाता है कि वह अपनी अमानतोंका अमुक प्रतिशत भाग केन्द्रीय बैंकमें अमानतके रूपमें रखे। इस प्रतिशत भागकी मात्रा अलग अलग देशोंमें अलग अलग होती है। हमारे देशमें प्रमाणित बैंक उसे माना जाता है जिसकी जमा हुई पूंजी और रिज़र्व फण्ड मिलाकर पांच लाख रुपयेसे ऊपर हो जाते हों। इन्हें अपने चालू खातेकी जिम्मेदारियोंकी

५ प्रतिशत रकम और निश्चित अवधिकी जिम्मेदारियोंकी २ प्रतिशत रकम रिज़र्व बैंकमें अमानतके रूपमें रखनी पड़ती है। सामान्यतः कोई भी केन्द्रीय बैंक इस तरह अमानत रखी हुई रकम पर ब्याज नहीं देता। इसके साथ ही केन्द्रीय बैंकका यह फर्ज माना जाता है कि वह दूसरे बैंकोंको जरूरत पड़ने पर ब्याजसे पैसे उधार दे और संकटके अवसर पर उनकी मदद करे। विदेशी विनिमयकी दरका नियंत्रण करना भी केन्द्रीय बैंकका मुख्य काम है।

द्रव्य-बाजारका नियंत्रण

१६ साधारण तौर पर केन्द्रीय बैंक सरकारी जमानतोंके दस्तावेजों पर या कमसे कम दो सराफों अथवा बैंकोंके हस्ताक्षरवाले विनिमय-पत्रों पर पैसे उधार देते हैं। इस तरहके कर्ज देनेमें ब्याजकी जो दर गिनी जाती है उसे 'बैंक रेट' अर्थात् केन्द्रीय या सरकारी बैंकके ब्याजकी दर कहा जाता है। बैंक रेटके घटने-बढ़नेका बाजारके ब्याजकी दर पर और द्रव्य-बाजारकी साधारण स्थिति पर असर होता है। दूसरे बैंक अपने चालू खाते और बंधी हुई अवधिकी अमानतोंके ब्याजकी दर बैंक रेटके बढ़नेके साथ बढ़ाते हैं और घटनेके साथ घटाते हैं। इसलिए बैंक रेटके बढ़नेसे ऐसा रंग पैदा हो जाता है कि लोग बैंकोंमें अधिक पैसा जमा कराते हैं और बैंकोंसे कर्ज कम मात्रामें लेते हैं। अधिक भाव खानेकी आशासे जो लोग पैसा बैंकोंसे उधार लेकर भी मालका संग्रह करके रखना चाहते हैं वे अपना माल कम नफा लेकर भी बेच डालना पसन्द करते हैं, क्योंकि एक तरफ यदि अधिक नफा कमानेकी इच्छा वे रखते हैं तो दूसरी तरफ उन्हें ब्याज अधिक चुकाना पड़ता है। इसलिए जब ब्याजकी दर ऊंची होती है तब थोड़े नफेमें माल बेचकर भी उनके पैसे वसूल कर लेनेमें व्यापारीको अधिक लाभ होता है। थोड़ेमें कहा जाये तो बैंक रेट ऊंचा होता है तब लोग बैंकोंसे पैसा लेनेके बजाय पैसे अधिक मात्रामें बैंकोंमें जमा कराने जाते हैं। इसके फलस्वरूप बाजारमें पैसेकी तंगी दिखाई देने लगती है। इसके विपरीत यदि बैंक रेट नीचा हो तो दूसरे बैंक भी अपने ब्याजकी दर घटा देते हैं। इसलिए लोग बैंकोंमें अमानत रखनेके बजाय बैंकसे कर्ज लेना अधिक पसन्द करते हैं। बाजारमें पैसेकी बहुतायत होनेके कारण लोग कर्ज लेकर अधिक नफेकी आशासे मालका संग्रह करते हैं। इसलिए महंगाई पैदा होती है।

१७ बाजारमें आवश्यकतासे अधिक द्रव्य घूमने लगा हो और उससे भाव ऊंचे चढ़ गये हों तो केन्द्रीय बैंक अपनी ब्याजकी दर चढ़ा देता है और यदि बाजारमें द्रव्यकी तंगी हो गई हो और उसे मिटाकर द्रव्यकी मात्रा बढ़ानी हो तो केन्द्रीय बैंक अपनी ब्याजकी दर उतार देता है।

१८ द्रव्यकी विपुलता और कमीका नियंत्रण करके आवश्यक द्रव्य हा बाजारमें घूमने देनेके लिए बक रेट बदलनेमें या बक रेटके उपायको अधिक मन्द पहुचानेके लिए केन्द्रीय बक और भी कुछ उपाय काममें लाता है। हर देशमें केन्द्रीय बक सरकारके साथ गहरा सम्बन्ध रखकर काम करता है। हम देख चुके ह कि सरकारको अपने चालू खर्चके लिए बहुत बार ट्रेजरी बिल जारी करने पडते ह। ट्रेजरी बिलोंका कामकाज केन्द्रीय बकके द्वारा ही होता है। जब बाजारमें द्रव्यका बहुतायत हो जाती है और बाजारमें से द्रव्य खींच लेना होता है तब केन्द्रीय बक सरकारसे ट्रेजरी बिल जारी कराता है। इसके आगे बढकर कभी कभी केन्द्रीय बक अपने पासकी सरकारी जमानतके दस्तावेज बेचता है और इस तरहसे बाजारमें से पसा खींचता है। यह जमानतके दस्तावेज बचना जाता है और उनके बदलेमें चलनी नोट रद्द करता जाता है। इसलिए बाजारमें से केवल द्रव्य ही नहा जाता बल्कि बक जिस नकद द्रव्य मानते हैं उसकी भी कमी होने लगती है। बाजारमें द्रव्यकी तगी हो गई हो और अधिक द्रव्य घुमानेकी जरूरत हो तो केन्द्रीय बक नोट छापकर उनकी मददसे सरकारी जमानतके दस्तावेज बाजारसे खरीदना शुरू कर देता है। इस तरह केन्द्रीय बक खुले बाजारमें सरकारी जमानतके दस्तावेजोंकी खरीद और बिक्रीमें पडकर द्रव्य-बाजारका नियंत्रण करता है।

१९ लेकिन ये उपाय दलीलमें जितने सीधे-सादे लगते ह उतने व्यवहारमें परिणामकारी सिद्ध नहीं हुए ह। सामान्यत केन्द्रीय बककी तुलनामें दूसरे बक बहुत बडे होते ह। और हम देख चुके ह कि बक एडवान्स देकर उसके द्वारा नई अमानतें खडी करनेकी करामातसे नकद पसेका उपयोग किये बिना ही बहुत काम कर सकते ह। इसलिए दूसरे बकोंको केन्द्रीय बकका आश्रय लेनेकी जरूरत नहीं पडती। बहुत बार बकोंके पास पसा इतना बढ जाता है कि बक रेटसे कम दर पर देनेको वे तयार हो जाय तो भी कोई लेनेवाला नहीं मिलता। और कभी कभी एसा भी हो जाता है कि ब्याजकी दर बढनेके पर भी बकमें लोग काफी पसा जमा नहीं कराते। एसा होनेके कारण इतने पेचीदा ह कि उनकी चर्चा इस पुस्तककी मर्यादाके बाहर मानी गई है। हमारे देशमें रिजर्व बकका कामकाज अभी थोडे ही वर्षका माना जायगा। एसा कहनेमें भी हर्ज नहीं कि अभी तक तो वह द्रव्य बाजारका नियंत्रण करनेके काममें पडा ही नहीं है। लेकिन यह सही है कि सारे देशमें अपनी एकसी ब्याजकी दरके कारण बम्बई और कलकत्ते जसे बडे द्रव्य-बाजारोंमें पाइ

जानेवाला ब्याजकी दराके अन्तरको मिटानेकी दिशामें और ब्याजकी दराको एक स्तर पर लानेमें उसका कुछ असर होने लगा है। दूसरे देशोंमें भी केन्द्रीय बंकोंके बारेमें ऐसा मत बनने लगा है कि जब तक दूसरे बंक केन्द्रीय बंकको पूरा सहयोग न दें तब तक केन्द्रीय बंकके लिए द्रव्य बाजारका नियंत्रण करना कठिन काम है।

ब्याजकी दरें

२० अन्य चीजोंके बाजार भावकी तरह ब्याजकी दराके बारेमें भी हम कह सकते हैं कि उसका आधार द्रव्यकी पूर्ति और मांग पर रहता है। परन्तु द्रव्यकी पूर्तिके विषयमें हम देख चुके हैं कि सरकारी द्रव्यसे ही बाजारका सारा कामकाज नहीं चलता। उत्पादनकी कई मंजिलोंमें मालकी खरीद और बिक्री होती है और अच्छा भाव लेनेकी आशासे उत्पादक और व्यापारी माल तयार हो जानेके बाद भी उपभोग्य वस्तुओंका संग्रह करके रखते हैं। इन सब बातोंके लिए द्रव्यकी जो जरूरत पड़ती है उसे सराफ और बंक अपना द्रव्य—सराफी द्रव्य खड़ा करके पूरा करते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि द्रव्यकी पूर्ति लचकदार होती है। सराफ और बंक बाजारकी जरूरतके अनुसार इसे काफी मात्रामें घटा और बढ़ा सकते हैं।

२१ द्रव्यकी मांगका विचार करने पर मालूम होता है कि उसके भी कई प्रकार हैं। एक तो उत्पादनके स्थायी साधनोंमें पैसा लगानेके लिए लम्बी अवधिकी मांग होती है और दूसरी कच्चे मालकी खरीद और मजदूरीके पैसे चुकानेके लिए छोटी अवधिकी मांग होती है। इसके सिवा अच्छा भाव मिलनेकी आशामें मालका संग्रह करके रखनेके लिए एक खास अवधिकी पैसेकी मांग होती है। कई बार अपने पासका माल बिक सके उससे पहले पैसेकी जरूरत होने पर मालके बिकने तकके लिए पैसेकी मांग होती है। पैसा उधार देनेवाला इसका भी बारीकीसे विचार करता है कि उसकी मांग किस हेतुके लिए की जा रही है। और इसका विचार तो पैसा उधार देनेसे पहले वह करता ही है कि उसका पैसा किस तरह और कितने समयमें लौट सकेगा। मशीनों जैसे स्थायी साधनोंमें लगानेके लिए पैसेकी जरूरत होगी तो वह जान ही लेगा कि पैसा लंबी अवधि तक रुका रहेगा। कच्चा माल खरीदनेके लिए पैसेकी जरूरत होगी तो वह जान लेगा कि पैसा थोड़े समयमें वापस मिल सकेगा। इसके सिवा माल तयार होनेमें आया हो और उसके बिक जानेके तकके लिए पैसा चाहिये तो वह समझ लेता है कि इससे भी कम समयमें उसका पैसा वापिस मिल सकेगा। फिर सारी परिस्थितियों पर ध्यान देनेके बाद पैसा उधार

देनेवालेको इतना भी विचार करना पड़ता है कि इनकारके पास निश्चित अव धिम पैसा आ सकेगा या नहीं लिया हुआ कर्ज वह निश्चित रूपसे वापिस कर सकेगा या नहीं और उनके धंधेमें कोई ऐसे अनिश्चित तत्त्व तो नहीं है जिनके कारण निश्चित अवधिमें वह पैसा वापस न दे सके। सार यह है कि पैसा उधार देनेवाला तीन बातोंका विचार करता है (१) उसके पैसेके लिए जमानत क्या है? (२) कितनी अवधिमें पैसा वापस मिल सकेगा? और (३) पैसा वापस आनेकी निश्चितता कितनी है?

२२ ऊपरकी हर परिस्थितिका असर ब्याजकी दर पर पड़ता है और उस परिस्थितिके अनुसार ब्याजकी दर अलग अलग रहती है। हम बैंक रेट की बात कर चुके हैं। यदि हम यह मानें कि पैसा उधार देनेके लिए बैंक रेट ब्याजकी नीचीसे नीची दर है तो उसके बाद विनिमय-पत्र अथवा मालकी हवाला रसीदोंके बट्टेकी दर आती है। यह पहले कहा जा चुका है कि बट्टेका अर्थ है पैसे लौटानेकी अवधि पूरी होने तकका ब्याज पहलेसे काट लेना। विनिमय-पत्र और मालकी हवाला रसीद पर पैसा उधार देना सबसे अच्छा माना जाता है। एक तो विनिमय-पत्र मालकी बिक्रीके सिलसिलेमें पैदा होता है। इसलिए यह लगभग निश्चित होता है कि सामनेवाला अवधि पूरी होने पर विनिमय-पत्रका पैसा देगा ही। दूसरे पैसा उधार देनेवालेके हाथमें माल भले ही न हो तो भी मालका स्वामित्व-अधिकार — जहाजमें माल चढ़ानेकी रसीद या मालकी हवाला रसीद — उसके पास होता है। तीसरे पैसा वापस मिलनेकी अवधि निश्चित होती है। इन कारणोंसे पैसा उधार देनेके लिए बैंकोंमें ऐसे विनिमय पत्रोंकी माग रहा ही करती है। इसलिए किसी बैंक या सराफने विनिमय पत्रोंमें पैसा लगाया हो और उनकी अवधि पूरी होनेसे पहले उसे पैसेकी जरूरत पड़े तो बहुत ही नाममात्रकी हानिसे विनिमय-पत्र बाजारमें बेचे जा सकते हैं। यह हानि कितनी कम होती है इसका अनुमान इस परसे हो जायगा कि विनिमय-पत्रोंके सौमेंसे एक प्रतिशतके भी अमुक भाग जितना ही फर्क होता है।

२३ विनिमय-पत्रोंके बाद जमानता पर थोड़ी अवधिके लिए दिये गये उधारकी दर आती है। इनमें मुख्य जमानत सरकारी दस्तावेजोंकी होती है। यह उधार भी विनिमय-पत्र जैसा ही अच्छा माना जाता है। फिर भी इसमें इतना फर्क है कि विनिमय-पत्रोंकी अवधि तो एक निश्चित समय पर अपने आप ही पूरी हो जाती है जब कि इसमें निश्चित की हुई अवधि पूरी होने पर पैसेका भुगतान न हो तो बैंकको जमानतें बेचनेके लिए बाजारमें जाना पड़ता

है। लेकिन क्योंकि सरकारी जमानत किसी भी समय बिक सकती है इसलिए सरकारी जमानतों पर लिये हुए उधार पसकी दर लगभग विनिमय-पत्रोंके बराबर ही होती है। ये दोनों दरें बैंक रेट के बहुत नजदीक होती हैं और जैसे बैंक रेटमें परिवर्तन होता है वैसे ही इनमें भी परिवर्तन होता है। विनिमय-पत्रोंकी दरमें और सरकारी जमानतों पर लिये गये उधारकी दरमें एक भेद ध्यानमें रखने लायक है। वह यह कि विनिमय-पत्रोंकी दरें बाजारमें रोज खुले तौर पर बोली जाती हैं और दूसरे उधारोंकी दर बैंक तथा कर्ज लेनेवाले असामियोंके बीच करारसे निश्चित होती है।

२४ इसके बाद नम्बर आता है सरकारी जमानतोंके सिवा दूसरी जमानतों पर लिये हुए लोनका। इसकी दर सामान्यतः बैंक रेटसे बहुत ऊंची होती है। वे कितनी ऊंची होंगी इसका आधार जमानतोंके प्रकार और असामीकी साख पर रहता है। वे एक-दो प्रतिशत ऊंची भी हो सकती हैं और इससे बहुत ज्यादा ऊंची भी हो सकती हैं। भावोंमें मंदी आ जाय तब घाटेमें न उतरनेके लिए कारखानेदार और व्यापारी मालके स्टाकको रोक रखते हैं। इनमें से जिनके पास पैसा नहीं होता उन्हें बैंकसे कर्ज लेना पड़ता है। उनके पास दूसरी मिल्कियतें शायद हों तो उनको और न हों तो उनके पास जो भी माल हो उसकी जमानत पर वे कर्ज लेते हैं। किसी व्यापारीने विदेशसे माल मंगाया हो और वह माल यहां आकर पड़ा हो पर उसे छुड़ानेके लिए उसके पास विनिमय-पत्रके बदलेमें चुकानेको काफी पैसा न हो तो व्यापारी इस मालको बैंकके गोदाममें रखकर मालके बदले पैसा उधार लेता है और माल छुड़ाता है। कभी कभी छोटे कारखानेदार अपना सारा तैयार माल बैंकको सौंपकर उस पर पैसा लेते हैं। ऐसे व्यवहारमें ब्याजकी दर काफी ऊंची होती है।

२५ ऊपरके संपूर्ण विवेचनमें हमने देखा कि आजकलकी सराफी या बैंकिंग पद्धति खेती या ग्रामोद्योगोंकी जरूरतोंके लिए पैसा मुहैया करनेका काम बिलकुल नहीं करती। वह मुख्यतः व्यापारियोंके — परदेशी व्यापारके और भीतरी व्यापारके सम्बन्धमें — पैसा मुहैया करनेका काम करती है। कुछ हद तक कारखानेवालोंको थोड़ी अवधिके लिए पैसा जुटा देनेका काम भी करती है। इसके अलावा, सरकारको थोड़ी अवधिकी जरूरतोंके लिए भी वह पैसा देती है। खेती और ग्रामोद्योगोंके लिए पैसा देनेका काम तो गांवोंके साहूकार ही करते हैं। सहकारी समितियोंने और लैण्ड मार्गेज बैंकोंने यह काम करना शुरू किया है, परन्तु अब तक उनके द्वारा बहुत कम काम हो सका है।

१६

हमारे देशकी सराफी और हमारे बैंक

देशी सराफी

१ हमारे देशमें तरह तरहके उद्योग धंधोंके साथ साथ भीतरी और बाहरी व्यापारका विकास बहुत पुराने जमानेमें हुआ है। व्यापार धंधेके साथ सराफीका धंधा भी बढ़ा हुआ पाया जाता है। यूरोपमें सराफीकी पद्धति आरम्भ होनेके वर्षों पूर्व यह पद्धति हमारे यहां प्रचलित थी। उधारीके व्यवहारके मुख्य साधन हुंडीकी प्रथा हमारे यहां सदियों पुरानी है। मुगलशाही राज्य स्थापित होनेके प्रारम्भिक वर्षोंमें देशमें राजनीतिक अव्यवस्था फैल गई थी और बादमें भी देशमें एकछत्र राज्य तो स्थापित हुआ ही नहीं था। उस समयमें भी देशके भीतर और परदेशोंके साथ हिन्दुस्तानी सराफोंका हुंडी-व्यवहार चलता था। सराफ लोगोंकी अमानतें रखते, व्यापार-उद्योग और दूसरे कामोंके लिए रुपया उधार देते, अलग अलग राज्योंके सराफोंके रूपमें काम करते, राजाओं और बादशाहोंकी ओरसे टकसालें चलाते, अलग अलग प्रकारके सिक्कोंकी अदला-बदली कर देते और हुंडियोंके जरिये अलग अलग स्थानोंके बीचका लेन-देन निपटा देते। ईस्ट इंडिया कंपनी भी अपना द्रव्य व्यवहार यहांके देशी सराफोंके द्वारा ही चलाती थी।

२ जब अंग्रेजी राज्य भारतमें अच्छी तरह जम गया और सारे देशमें उसने अपना नकद द्रव्य प्रचलित कर दिया, उसके बाद हमारे सराफोंका सिक्के बनानेका काम बन्द हो गया। कलकत्ता, बम्बई और मद्रासमें यूरोपीय पद्धतिके प्रान्तीय बैंक क्रमशः सन १८०६, १८४० और १८४३ में स्थापित होनेके बाद कंपनी सरकारका कामकाज इन बैंकोंको मिलने लगा। उसके बाद तो आज तक हमारे देशमें अनेक बैंक खुल गये हैं। फिर भी देशी सराफोंने अभी तक अपनी जगह बना रखी है। हर कस्बे और हर शहरमें ये सराफ पाये जाते हैं। गांवोंमें भी उधारीका धंधा अच्छा चलता है। गांवोंमें उधारीका काम करनेवालोंको इन सराफोंसे अलग बतानेके लिए साहूकार या महाजन कहा जाता है। सराफोंमें और इन साहूकारों या महाजनोंमें भेद यह है कि सामान्यतः साहूकार न तो लोगोंकी अमानतें जमा करते हैं और न हुंडीका कामकाज करते हैं। वे किसानों, कारीगरों और छोटे

व्यापारियोंको पैसा उधार देते हैं। किसानोंका माल गांवसे नगर तक पहुंचानेमें तथा देशके अंदर एक जगहसे दूसरी जगह मालका व्यापार करनेमें इनका बहुत बड़ा हाथ होता है।

३. परन्तु इतना तो कहना ही पड़ेगा कि सराफोंकी ईमानदारी और साखके लिए आज भी उनका जो नाम है वह नाम साहूकारोंका अब नहीं रहा। उनका नाम हल्का पड़ गया है, क्योंकि उनके काम भी हल्के हो गये हैं। किसी किसी साहूकारको छोड़ दें तो दूसरोंका किसानोंके साथ स्पष्ट और सीधा व्यवहार नहीं रहा। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि गांवकी खेती और गांवोंका कमाईके धंधे नहीं रह बल्कि घाटेके धंधे बन गये हैं। इसलिए किसान या कारीगरको उधार दिया हुआ पैसा पूरा पूरा वसूल होनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है या वह मुश्किलसे ही पूरा वसूल होता है। इसलिए अच्छे साहूकार तो गांव छोड़कर शहरोंमें चले गये हैं या अपना पैसा शहरोंके उद्योग धंधोंमें लगाने लगे हैं। इस तरह पैसा गांवोंसे खिंचकर शहरोंमें चले जानेके कारण गांवके उद्योगोंमें आवश्यक पैसा नहीं लगता और इस कारण भी खेती गिरती जाती है। अब तो किसानोंको बहुत ही थोड़े लोग ऐसा उधार देनेके लिए तैयार होते हैं जो अपना पैसा वसूल करनेमें कोई भी उपाय आजमानेमें संकोच नहीं करते। गांवोंके पुराने और प्रतिष्ठित साहूकारोंका स्थान आज गंदे तरीकोंसे किसानोंको नाच नचानेवाले और उनका शोषण करनेवाले ब्याजखोरोंने ले लिया है। उनका अब करज गांवोंकी उधारीका काम मजबूत पाये पर रखनेकी कोशिश अब सहकारी समितियां और सहकारी बैंकों द्वारा हो रही है जिसका विचार हम आगे करेंगे।

४. फिर तो हम शहरके सराफोंकी ओर वापस लौटें। यूरोपीय पद्धतिके मर्यादित जिम्मेदारीवाले शेयर-होल्डरोंके (ज्वाइन्ट स्टाक) बैंकोंके साथ उनके सम्बन्ध अच्छी तरह बंध गये हैं। उन्हें पैसेकी जरूरत होती है तब उनके प्रामिसरी नोटों और हुंडियों पर उन्हें बैंकोंसे पैसा मिल सकता है। इसी तरह कुछ सराफोंको उनके चालू खातेमें जितनी रकम हो उससे अधिक रकमकी हुंडियां लिखने पर लिखनेका अधिकार बैंक दे देते हैं। हां, रिजर्व बैंकने अभी तक हमारे इन सराफोंको मान्यता नहीं दी है। इसका एक और मुख्य कारण यह है कि अपने प्रमाणित बहीखातोंका हिसाब देखनेका अधिकार रिजर्व बैंक रखता है परन्तु हमारे सराफ अपना बहीखाता और लेनदेनका हिसाब उस बैंकके लिए तैयार नहीं होते। अपने यहां किसका पैसा जमा है और उन्होंने किसको पैसा उधार दिया है, यह बताना और इस

तरह दूसरेका सासको मुल कर दत य लाग अपन सराफा व्यवहारक खिलाफ समझते ह। इसके सिवा हुडी और विनिमय-पत्र पर पसा उधार देते समय रिजव बक दो हस्ताक्षर मागता है जब कि कुछ सराफ अपन दस्तावेजोको अधिक साखवाले बनानके लिए दूसरोंके हस्ताक्षरोंकी जरूरतको अपनी साख पर बट्टा लगानवाली बात समझते हैं। फिर सराफी पेढ़िया सराफी कामकाजके सिवा दूसरा व्यापार धधा भी करती ह जिसे रिजव बक करनकी इजाजत नही देता। इस कारणसे रिजव बकके साथ हमारे सराफोका मेल नहा बठता।

यूरोपीय पद्धतिके बकोंका प्रारभ

५ कलकत्तेमें यूरोपियनोकी जो कोठिया थी वे अपने दूसरे व्यापारके साथ सराफीका काम भी करती थी। ये कोठिया हमारे देशके बड़े बड़े व्यापारियोंके साथ पसेका लेनदेन करती थी और बड़े बगीचेवालोको नीलके कारखानो पर तथा समुद्री यात्रा करनेवाले व्यापारियोंको उनके मालसे लदे हुए जहाजो पर पसा उधार देती था। ईस्ट इण्डिया कपनीके नौकर और दूसरे यूरोपियन लोग अपनी पूजी इन कोठियोंमें जमा रखते थ। ये ब्याजकी दर भी अच्छी देती थीं। परन्तु आगे चलकर इन कोठियोकी सराफी शाखाए खतम पड गइ और सन १८२९ से १८३२ के अर्सेमें उन पर आर्थिक सकट आ पड़ा। यूरोपियन पद्धतिका पहला पहल स्थापित हुआ बक आफ हिन्दुस्तान नामक बक इस सकटमें टूट गया। उसके बाद कलकत्तेके कुछ प्रमुख यूरोपियन व्यापारियोंने यूनियन बक नामका बक खोला। उसका अत १८४८ में आया।

६ तीन मुख्य प्रान्तोमें तीन प्रातीय बक स्थापित होनेकी बात ऊपर कही जा चुकी है। इन बकोको अपने नोट जारी करनेका अधिकार दिया गया था। सरकारका सारा कामकाज भी ये ही बक करते थ। सन १८६१ में नोट जारी करनेका अधिकार सरकारने इन बकोंसे वापस लेकर अपने हाथमें कर लिया। ये प्रान्तीय बैंक सरकारी तो नहा थ परन्तु सरकारके साथ सम्बन्ध होनेके कारण उनकी प्रतिष्ठा सरकारी बकों जसी ही थी।

७ सन् १८६० में इस विचारने जोर पकड़ा कि शेयर-होल्डरोंकी मर्यादित जिम्मेदारीवाले कई बक देशमें स्थापित होने चाहिए। इसके फलस्वरूप छोटे बड़े बहुतसे बक अलग अलग नामोंसे खुले। लेकिन १८६५ में रुईके भावोंमें आये हुए उछालके कारण देशमें द्रव्यका बहुत बडा सकट आया और उसमें ये सारी कपनिया खतम हो गइ और बकोंके सम्बन्धमें कोई प्रगति

न हुई। १९०५–०६ के स्वदेशी आन्दोलनकी वजहसे भारतमें बहुतसे देशी बैंक स्थापित हुए। परन्तु १९१३–१४ के संकटमें इनमें से अनेक बैंक टूट गये। फिर महायुद्ध आया। उसमें नये बैंकोंको प्रोत्साहन मिला। परन्तु १९२३ में फिर कुछ बैंक टूट गये। १९२९ से १९३१ तक जाँच करके बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटीने एक बड़ी रिपोर्ट प्रकाशित की। उसमें देशके बैंकों पर देखरेख और अंकुश रखने तथा संकटके समय बैंकोंकी मदद करनेके लिए सब बैंकोंका एक बैंक रिजर्व बैंक आफ इण्डियाके नामसे स्थापित करनेकी उस कमेटीने सिफारिश की। उसके आधार पर १९३५ में रिजर्व बैंककी स्थापना हुई।

इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया

८ कलकत्ता बम्बई और मद्रासके तीन प्रेसिडेन्सी बैंकोंको एकत्र करके १९२० के इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया एक्टके अनुसार यह बैंक अस्तित्वमें आया था। १९३५ में रिजर्व बैंककी स्थापना हुई तब तक वह अपने अन्य कामकाजके सिवा सरकारी बैंकके तौर पर भी काम करता था। जुलाई १९५५ से उसे स्टेट अर्थात् राज्यका सरकारी बैंक बना दिया गया है। आज हमारे देशमें यह सबसे बड़ा सराफी बैंक है। पहले यह सरकारी कामकाज करता था और अब भी यह रिजर्व बैंकका 'सोल एजण्ट' है, इसलिए इस पर कानूनके कुछ विशेष प्रतिबंध हैं। वह छह महीनेसे अधिक अवधिके लिए पैसा उधार नहीं दे सकता। साथ ही जमीन और स्थावर सम्पत्ति पर पैसा उधार देनेका उसे अधिकार नहीं है। सरकारी जमानतों स्टेट रेलवेके बांडों तथा म्युनिसिपलिटी और लोकल बोर्डोंके डिबेंचरों पर अपने ताले और मुहरमें रखे हुए माल पर तथा दो मजबूत आर्थिक स्थितियोंके सराफों या बैंकोंके हस्ताक्षरवाले प्रामिसरी नोटों पर यह पैसा उधार दे सकता है। इसके सिवा उसे हुंडियां लिखने और विदेशनकी विनिमयपत्र (बिल्स आफ एक्सचेंज) खरीदने और बेचनेकी, साखपत्र (लेटर्स आफ क्रेडिट) देनेका और एक्जिक्यूटरके नाते जायदादोंका प्रबन्ध करनेका सत्ता है।

सारे देशमें इसकी कुल ८०० शाखाएं हैं (१९५९–६०) और वे बढ़ती जा रही हैं। इस नये बैंककी अधिकृत पूंजी २० करोड़ रुपयेकी है। और चुकता पूंजी रु० ५.६२५ करोड़की है। चुकता पूंजीका ५५ प्रतिशत रिजर्व बैंकके पास है तथा ४५ प्रतिशत निजी शेयरहोल्डरोंके हाथमें है। पुराने शेयरहोल्डरोंको इसमें तरजीह दी जाती है।

दूसरे सराफी बैंक

९ उपरोक्त स्टेट बैंकके सिवा मगफीका कामकाज करनेवाले दूसरे कई बैंक हमारे देशमें हैं। ये सब बैंक शेयर-होल्डरोंकी मर्यादित जिम्मेदारी वाले बैंक हैं। वे मुख्यतः छोटी अवधिके लोन या कर्ज देनेका काम करते हैं। वे चालू खातेकी और निश्चित अवधिकी अमानतें रखते स्थानीय हुंडिया वगैरा स्वीकारते हैं, गारंटी देते हैं और वचन देते हैं, अच्छी आर्थिक स्थितिवाले असामियोंको चालू खातेमें एक निश्चित रकम तक उधार भी लेने देते हैं, घरों पर और अनाज, रूई या दूसरे माल या गोदामों पर पैसा उधार देते हैं और शेयर खरीदने-बेचनेके काममें भी पड़ते हैं। जिन बैंकोंकी चुकता पूंजी और रिजर्व फण्डको मिलाकर पांच लाखसे अधिक जायगा हो जाती है उन बैंकोंको प्रमाणित बैंक माना जाता है। उन पर रिजर्व बैंककी देखरेख रहती है। सन् १९५९–६० में प्रकाशित रिजर्व बैंकको रिपोर्टके अनुसार ऐसे प्रमाणित बैंकोंकी कुल संख्या ९४ थी और उनकी कुल शाखाएं ३९९६ थीं। उनके चालू खातोंकी और निश्चित अवधिकी कुल अमानतोंका आंकड़ा १७८७ करोड़ रुपयेका था।

१० इनके अलावा हमारे देशमें १९५९–६० में २७६ बैंक ऐसे थे जिनके नाम रजिस्टर्ड नहीं थे और जिनकी ८९६ शाखायें थीं।

११ स्टेट बैंकको छोड़कर नीचे लिखे पांच बैंक हमारे देशमें बड़े माने जाते हैं: (१) सेण्ट्रल बैंक आफ इंडिया (२) बैंक आफ इंडिया (३) पंजाब नेशनल बैंक (४) बैंक आफ बरोडा और (५) इलाहाबाद बैंक।

विदेशी विनिमय बैंक

१२ जैसे जैसे परदेशोंके साथ हमारे देशका व्यापार बढ़ा वैसे वैसे इस व्यापारके संबंधमें होनेवाले पैसेके लेन-देनको निपटानेवाले बैंकोंकी आवश्यकता हुई। इस लेन देनका भुगतान हुंडिया द्वारा होता है। लेकिन अलग अलग देशोंका चलन अलग अलग होनेके कारण इन हुंडियोंकी खरीद बिक्रीके समय अलग अलग चलनोंके एक-दूसरेके साथ तुलनात्मक भाव निश्चित करने पड़ते हैं। इन भावोंको विनिमयकी दर कहा जाता है और इस प्रकारका काम करनेवाले बैंकोंको विदेशी विनिमयका काम करनेवाले बैंक कहा जाता है। सराफी बैंकोंसे अलग पहचाननेके लिए हमने इन्हें विनिमय बैंकका नाम दिया है। क्योंकि इनका मुख्य काम अलग अलग देशोंकी मुद्राओंका अदल-बदल कर देना यानी अलग अलग देशोंके सिक्के भुना देना होता है।

१३ हमारे देशके बैंकोंके हिस्सेमें यह काम बहुत ही थोड़ा आता है। आजकल तो यह काम विदेशी बैंकोंका एकाधिकार-सा हो गया है। इन बैंकोंके केन्द्रीय दफ्तर विदेशोंमें हैं। यहां वे अपनी शाखाओं द्वारा काम करते हैं। आजकल इस तरहके लगभग १८ बैंक हमारे देशमें काम करते हैं। इनमें आठ बैंक ब्रिटिश हैं और बाकी अमेरिका, जापान, हालैण्ड और पुर्तगाल आदि देशोंके बैंकोंकी शाखाएं हैं।

१४ व्यापारके सम्बन्धमें होनेवाले लेन-देनका निपटारा सराफों और बैंकों द्वारा किस तरह होता है इसका एक अलग प्रकरण आगे दिया गया है। इसलिए यहां हम उसकी चर्चा नहीं करेंगे। व्यापारके कामकाजके सिवा अन्य सुविधाएं भी इन बैंकों द्वारा मिलती हैं। विदेश जानेवाला आदमी यहांके विनिमय बैंकमें यदि पैसा जमा करा दे तो उसके बदलेमें विनिमयकी प्रचलित दरके अनुसार उस देशके बैंक पर उस देशकी मुद्रामें यह बैंक ड्राफ्ट देता है। विदेशमें पढ़नेवाले विद्यार्थीको पैसे भेजना हो तो भी इसी तरहसे उस देशके चलनका ड्राफ्ट प्राप्त किया जा सकता है।

विनिमय बैंकोंके विरुद्ध शिकायतें

१५ इंग्लैण्डमें और दूसरे देशोंमें अपना भारी प्रभाव होनेके कारण ये बैंक हमारे देशके बैंकोंको विदेशी विनिमयके काममें हाथ ही नहीं डालने देते थे। इसके अलावा ये बैंक हमारे देशके व्यापारियोंको हानि पहुंचा कर अपने अपने देशके व्यापारियोंको अधिक सुविधायें देते थे। इस तरहकी कितनी ही शिकायतें इन बैंकोंके विरुद्ध थीं। इनके सिवा एक शिकायत यह भी है कि दूसरे सराफी बैंकोंकी तरह इन बैंकोंने भी हमारे देशमें कुछ समयसे सराफी काम करना शुरू कर दिया है और इस प्रकार ये हमारे देशके सराफी बैंकोंके साथ प्रतिस्पर्धा करने लगे हैं। सन् १९५९–६० में इन विनिमय बैंकोंकी हिन्दुस्तानकी अमानतोंका कुल जोड़ २२९ करोड़ था। विनिमय बैंकोंमें हिन्दुस्तानकी अमानतें रहनेका अर्थ यह होता है कि इतना पैसा देशके भीतरी भागमें न रह कर देशके बन्दरगाहोंमें खिंचकर चला जाता है और उनके द्वारा व्यापार किये जानेवाले पैसेकी सुविधायें आयात और निर्यातके व्यापारियोंको मिलती हैं। परदेश भेजे जानेवाले मालका साधारण तौर पर बीमा कराया जाता है। इस बारेमें एक शिकायत यह है कि विनिमय बैंक विदेशी होनेके कारण हमारे देशकी बीमा-कम्पनियोंके प्रति मित्रताका रुख नहीं रखते। वे अपने देशकी बीमा कम्पनियोंको अधिक सुविधाएं देते हैं। यह सब होनेका एक कारण यह

भी बताया जाता है कि इन विदेशी बकोंके प्रतिनिधियोंका हमारा बडी व्यापारिक पेढियोंके प्रतिनिधियोंके साथ कोई सामाजिक सम्पर्क नही होता। हिन्दुस्तानके व्यापारिक रीति रिवाजोसे अपरिचित होनेके कारण स्वभावत वे जरूरतसे ज्यादा सावधान रहना चाहते है।

१६ इन सब शिकायतोका इलाज करनेके लिए और हमारे देशके बक विदेशी विनिमयका काम कर सकें इसके लिए सेंट्रल बकिंग इन्क्वायरी कमेटीने यह सिफारिश की थी कि किसी भी विदेशी विनिमय बकको हमारे देशमें शाखा खोलनेसे पहले सरकारकी इजाजत (लाइसेंस) लेना अनिवार्य कर दिया जाय। साथ ही स्टेट बकको जिसे विदेशी विनिमयका काम करनेकी इजाजत दी गई है यह काम आरभ कर देना चाहिए और दूसरे निजी बकोंको यह काम करनेमें सरकारकी ओरसे मदद मिलनी चाहिए।

स्वराज्य मिलनेके बाद अब हमारे बक यह काय यथाशक्ति कर सकते है।

रिजर्व बक आफ इण्डिया

१७ द्रव्यशास्त्रियोको अनेक वर्षोसे एक ऐसे बककी आवश्यकता मालूम हो रही थी जो देशके सारे बकोंके बकका काम कर सके और सारे सराफी व्यवहार पर तथा देशके चलन पर समान रूपसे अपना अकुश रख सके यह बक या तो सरकारी बक हो या इस पर सरकारका पूरा नियत्रण हो। इम्पीरियल बक अमुक अश तक सरकारी नियत्रणवाला जरूर था परन्तु उसका दूसरा व्यापार बहुत बडा होनेके कारण स्वभावत उसे दूसरे बकोंके साथ स्पर्धामें उतरना पडता था और इसलिए वह तटस्थ ताका पालन नही कर सकता था। इसलिए बकिंग इन्क्वायरी कमेटीने इस तरहका एक अलग बैंक ही स्थापित करनेकी सिफारिश की। इस सिफारिशको राउण्ड टेबल कान्फरेन्सने भी स्वीकार कर लिया। नया गवर्नमेण्ट आफ इडिया एक्ट पास होनेके बाद सन १९३४में रिजर्व बक आफ इडिया एक्ट पास किया गया और सन १९३५में रिजर्व बककी स्थापना हुई। एक्टमें बककी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य इस तरह बताया गया है

हिन्दुस्तानमें रिजर्व बककी स्थापना करना इसलिए जरूरी है कि चलनी नोट जारी करनेके कामका नियत्रण किया जाय ब्रिटिश भारतमें द्रव्य-सम्बन्धी स्थिरता बनाये रखनेके लिए अमानतका सग्रह रखा जाय और ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे देशके चलन और सराफी व्यवहारकी व्यवस्था देशके हितके लिए हो।

१८ यह बैंक भी पहले शेयर-होल्डरोंका ही बैंक था। लेकिन १९४९ के बाद इसे पूरी तरह सरकारी बना लिया गया है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्लीमें इसके आफिस हैं और लन्दनमें भी इसकी शाखा है। इसके सिवा अन्यत्र भी इसकी शाखाएं खोली गई हैं।

रिज़र्व बैंकके मुख्य काम

१९ रिज़र्व बैंकके मुख्य काम तीन माने जाते हैं (१) कागजी नोट जारी करना (२) बैंकोंके बैंकका काम करना और (३) सरकारके सराफका काम करना।

कागजी नोट जारी करनेके कामके बारेमें विस्तृत जानकारी हमारे देशका चलन वाले प्रकरणमें चलनी नोटोंके विभागमें दी जा चुकी है।

यह एक बैंकोंका बैंक इसलिए कहा जाता है कि उसका सारा काम काज रजिस्टर्ड बैंकोंके साथ ही होता है। वह स्वयं किसी भी प्रकारका व्यापार नहीं कर सकता और न किसी भी व्यापार या उद्योगकी पूंजीमें अपना कोई स्वार्थ रख सकता है। वह व्यापारी-वर्गके साथ सीधा सराफी व्यवहार भी नहीं रखता। दूसरे बैंकोंके साथ प्रतिस्पर्धाका प्रश्न खड़ा न होने देनेके लिए उसे ब्याज पर अमानतें रखनेकी भी मनाही है। उसका काम तो देशके सारे बैंकों पर देखरेख और अंकुश रखना है। इसके लिए सब प्रमाणित बैंकोंको अपना साप्ताहिक हिसाब रिज़र्व बैंकके पास भेज देना पड़ता है। इसके सिवा हर प्रमाणित बैंकको अपने चालू खातेमें जमा रकमोंका ५ प्रतिशत और निश्चित अवधिकी जमा रकमोंका २ प्रतिशत रिज़र्व बैंकमें अमानतके रूपमें रखना पड़ता है। बैंक बहुतसे बैंक इस कानूनी आवश्यकतासे भी ज्यादा रकमें रिज़र्व बैंकमें अमानतके रूपमें रखते हैं। क्योंकि नई खड़ी की हुई अमानतोंके सम्बन्धमें और अपना कारबार विस्तारके बारेमें उत्पन्न होनेवाली जिम्मेदारियोंको पूरा करनेमें ये अमानतें उपयोगी सिद्ध होती हैं।

सरकारके सराफके रूपमें रिज़र्व बैंक केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंके खजानेकी रोकड़ रकम अपने यहां जमा रखता है और जब जब जरूरत पड़ती है तभी उन्हें देता रहता है। जब करकी वसूली आती है तब यह रोकड़ बढ़ जाती है और फिर ज्यों ज्यों खर्च होता जाता है त्यों त्यों रोकड़ घटती जाती है। कभी रोकड़ समाप्त हो जाय तो रिज़र्व बैंक सरकारको पैसा उधार भी देता है। फिर जब सरकारकी आय होती है तब वह सारा पैसा बैंकमें जमा हो जाता है। बहुत बार तो जब सरकारको थोड़े समयके

लिए पैसेकी तात्कालिक जरूरत होती है तब रिज़र्व बैंक सरकारके ट्रेजरी बिल्स जारी कराता है और उन्हें बेचनेका और अवधि पूरा होने पर पैसा चुकानेका काम भी स्वयं ही करता है। इसके अलावा सरकारके सराफी हैसियतसे सरकारकी ओरसे सरकारी जमानतें और सोना चांदी खरीदने और बेचनेका काम भी रिज़र्व बैंक ही करता है।

रिज़र्व बैंक क्या क्या काम कर सकता है?

२० रिज़र्व बैंक कितने काम कर सकता है और कितने नहीं कर सकता इसकी कानूनमें जो सूची दी गई है उनमें से मुख्य मुख्य काम यहां हम गिनायेंगे

(१) ऊपर कहा जा चुका है कि बैंक बिना ब्याजकी अमानतें (जमा) रख सकता है।

(२) विनिमय-पत्र और प्रामिसरी नोट खरीदने-बेचनेका काम वह कर सकता है। ये शुद्ध व्यापारके लेनदेनके सम्बन्धमें लिखे हुए होने चाहिये और उन पर दो विश्वसनीय असामियोंके हस्ताक्षर होने चाहिये इन दो हस्ताक्षरोंमें से कमसे कम एक तो किसी भी प्रमाणित बैंकके ही होने चाहिये। इनके सिवा ये दस्तावेज यदि दूसरे व्यापार उद्योगके सम्बन्धमें हों तो उनकी पकनेकी अवधि ९० दिनमें पूरी होनी चाहिये और यदि खेतीकी पैदावारसे सम्बन्ध रखनेवाले हों तो उनकी अवधि नौ महीनेमें पूरी होनी चाहिये।

(३) प्रमाणित बैंकोंसे स्टर्लिंग खरीदनेका और उन्हें स्टर्लिंग बेचनेका काम कर सकता है।

(४) भारतकी स्थानीय संस्थाओंको प्रमाणित बैंकोंको और प्रान्तीय सरकारों बैंकोंको इंडियन ट्रस्ट एक्टके अनुसार जिनमें पैसा लगाया जा सकता हो ऐसी विश्वसनीय जमानतों पर सोने चांदी पर अथवा जो प्रामिसरी नोट और विनिमय-पत्र खरीदने-बेचनेका रिज़र्व बैंकको अधिकार होता है उन प्रामिसरी नोटों और विनिमय पत्रों पर रिज़र्व बैंक ऐसे लोन या एडवान्स दे सकता है जिनकी अवधि ९० दिनोंसे ज्यादा न हो।

(५) प्रान्तीय सरकारोंको भी तीन महीनेकी अवधिके लिए एडवान्स दे सकता है।

(६) भारत-सरकार और विदेशी सरकारकी जमानतोंकी खरीद बिक्री कर सकता है।

(७) प्रमाणित बैंकोंसे एक महीनेकी अवधिके लिए पैसे उधार ले सकता है।

रिज़र्व बैंक क्या क्या काम नहीं कर सकता?

(१) किसी भी प्रकारका व्यापार नहीं कर सकता और न व्यापार उद्योगकी किसी संस्थामें अपना स्वार्थ या हिस्सा रख सकता है।

(२) अपने और किसी दूसरे बैंकके अथवा किसी दूसरी कंपनीके शेयर नहीं खरीद सकता तथा ऐसे शेयरों पर लोन या कर्ज भी नहीं दे सकता।

(३) स्थावर संपत्तिकी जमानत पर पैसे उधार नहीं दे सकता। अपने दफ्तरों, अपने अफसरों और नौकरोंके रहनेके मकानोंके सिवा कोई और स्थावर संपत्ति नहीं रख सकता।

(४) जमानतके बिना कर्ज या एडवांस नहीं दे सकता।

(५) जो हुंडियाँ दर्शनी न हों उन्हें लिख या स्वीकार नहीं सकता।

(६) अमानत (जमा) पर अथवा चालू खातेमें ब्याज नहीं दे सकता।

रिज़र्व बैंकके बारेमें कुछ और जानकारी

२१ रिज़र्व बैंक पर एक कर्तव्य यह डाला गया है कि उसे लन्दनमें तुरन्त मिल सकें ऐसे स्टर्लिंग खरीदने और बेचने चाहिये — जिनकी दर न तो १८$\frac{३}{१६}$ पेंससे ऊँची हो और न १७$\frac{४९}{६४}$ पेंससे नीची हो। ऐसे स्टर्लिंगकी बिक्रीके लिए जो टेण्डर रिज़र्व बैंकमें पेश किये जायँ वे एक लाख रुपयेसे कम रकमके नहीं होने चाहियें।

इम्पीरियल बैंकके साथ करार करके उसे पन्द्रह वर्षके लिए रिज़र्व बैंकका खास एजेण्ट बनाया गया है। जब रिज़र्व बैंककी स्थापना हुई उस समय इम्पीरियल बैंककी जितनी शाखायें थीं उन सब शाखाओंमें, वहाँ रिज़र्व बैंकके सराफी विभागकी कोई शाखा न हो तो रिज़र्व बैंकका एजेण्ट माना जाता है। और सरकारी खजानेका काम रिज़र्व बैंककी तरफसे इम्पीरियल बैंक करता है। इम्पीरियल बैंक इस प्रकार सरकारके लेन-देनका जो काम करता है उसकी वार्षिक रकम २५० करोड़ रुपये तक हो तब तक उस पर $\frac{१}{१६}$ प्रतिशत और उससे ऊपर जितनी हो उस पर $\frac{१}{३२}$ प्रतिशतके हिसाबसे रिज़र्व बैंक उसे कमीशन देता है।

रिज़र्व बैंकको अपने जारी किये हुए चलनी नोटों और अपने तमाम जमा-नामेका हिसाब प्रति सप्ताह सरकारके पास भेज देना पड़ता है और वह अखबारोंमें प्रकाशित किया जाता है।

रिज़र्व बैंक एक्टमें एक बात यह भी रखी गई है कि वह यथासंभव जल्दी ही खेती-सम्बन्धी लेन-देनका विभाग खोले। यह विभाग खेतीसे सम्बन्धित

लिए पैसेकी तात्कालिक जरूरत होती है तब रिज़र्व बैंक सरकारसे ट्रेजरी बिल्स जारी कराता है और उन्हें बेचनेका और अवधि पूरी होने पर पैसा चुका देनेका काम भी स्वयं ही करता है। इसके अलावा सरकारके सराफकी हैसियतसे सरकारकी ओरसे सरकारी जमानतें और सोना चांदी खरीदने और बेचनेका काम भी रिज़र्व बैंक ही करता है।

रिज़र्व बैंक क्या क्या काम कर सकता है?

२० रिज़र्व बैंक कितने काम कर सकता है और कितने नहीं कर सकता इसकी कानूनमें जो सूची दी गई है उनमें से मुख्य मुख्य काम यहां हम गिनायेंगे

(१) ऊपर कहा जा चुका है कि वह बिना ब्याजवाली अमानतें (जमा) रख सकता है।

(२) विनिमय-पत्र और प्रामिसरी नोट खरीदने-बेचनेका काम वह कर सकता है। वे शुद्ध व्यापारके लेन-देनके सम्बन्धमें लिखे हुए होने चाहिये और उन पर दो विश्वसनीय असामियोंके हस्ताक्षर होने चाहिये इन दो हस्ताक्षरोंमें से कमसे कम एक तो किसी भी प्रमाणित बैंकके ही होने चाहिये। इसके सिवा ये दस्तावेज यदि दूसरे व्यापार उद्योगके सम्बन्धमें हों तो उनकी पकनेकी अवधि ९० दिनमें पूरी होनी चाहिये और यदि खेतीकी पैदावारसे सम्बन्ध रखनेवाले हों तो उनकी अवधि नौ महीनेमें पूरी होनी चाहिये।

(३) प्रमाणित बैंकोंसे स्टर्लिंग खरीदनेका और उन्हें स्टर्लिंग बेचनेका काम कर सकता है।

(४) भारतकी स्थानीय संस्थाओंके प्रमाणित बैंकोंके और प्रान्तीय सहकारी बैंकोंके इंडियन ट्रस्ट एक्टके अनुसार जिनमें पैसा लगाया जा सकता हो ऐसी विश्वसनीय जमानतों पर सोने चांदी पर अथवा जो प्रामिसरी नोट और विनिमय-पत्र खरीदने-बेचनेका रिज़र्व बैंकको अधिकार होता है उन प्रामिसरी नोटों और विनिमय पत्रों पर रिज़र्व बैंक ऐसे लोन या एडवान्स दे सकता है जिनकी अवधि ९० दिनोंसे ज्यादा न हो।

(५) प्रान्तीय सरकारोंको भी तीन महीनेकी अवधिके लिए एडवान्स दे सकता है।

(६) भारत-सरकार और विदेशी सरकारकी जमानतोंकी खरीद बिक्री कर सकता है।

(७) प्रमाणित बैंकोंसे एक महीनेकी अवधिके लिए पैसे उधार ले सकता है।

रिजर्व बैंक क्या क्या कार्य नहीं कर सकता ?

(१) किसी भी प्रकारका व्यापार नहीं कर सकता और न व्यापार उद्योगकी किसी संस्थामें अपना स्वार्थ या हिस्सा रख सकता है।

(२) अपने और किसी दूसरे बैंकके अथवा किसी दूसरी कंपनीके शेयर नहीं खरीद सकता तथा ऐसे शेयरों पर लोन या कर्ज भी नहीं दे सकता।

(३) स्थावर संपत्तिकी जमानत पर पैसा उधार नहीं दे सकता। अपने दफ्तरों अपने अफसरों और नौकरोंके रहनेके मकानोंके सिवा कोई और स्थावर संपत्ति नहीं रख सकता।

(४) जमानतके बिना कर्ज या एडवांस नहीं दे सकता।

(५) जो हुंडियां दर्शनी न हों उन्हें लिख या स्वीकार नहीं सकता।

(६) अमानत (जमा) पर अथवा चालू खातेमें ब्याज नहीं दे सकता।

रिजर्व बैंकके बारेमें कुछ और जानकारी

२१ रिजर्व बैंक पर एक कर्तव्य यह डाला गया है कि उसे लन्दनमें तुरन्त मिल सकें ऐसे स्टर्लिंग खरीदने और बेचने चाहिये — जिनकी दर न तो १/६ $\frac{३}{१६}$ पेंससे ऊंची हो और न १/५ $\frac{४९}{६४}$ पेंससे नीची हो। ऐसे स्टर्लिंगकी बिक्रीके लिए जो टेण्डर रिजर्व बैंकमें पेश किये जायें वे एक लाख रुपयेसे कम रकमके नहीं होने चाहिये।

इम्पीरियल बैंकके साथ करार करके उसे पन्द्रह वर्षके लिए रिजर्व बैंकका सोल एजेंट बनाया गया है। जब रिजर्व बैंककी स्थापना हुई उस समय इम्पीरियल बैंककी जितनी शाखायें थीं उन सब शाखाओंमें जहां रिजर्व बैंकके सराफी विभागकी कोई शाखा न हो तो रिजर्व बैंकका एजेंट माना जाता है। और सरकारी खजानोंका काम रिजर्व बैंककी तरफसे इम्पीरियल बैंक करता है। इम्पीरियल बैंक इस प्रकार सरकारके लेन-देनका जो काम करता है उसकी वार्षिक रकम २५० करोड़ रुपये तक हो तब तक उस पर $\frac{१}{१६}$ प्रतिशत और उससे ऊपर जितनी हो उस पर $\frac{१}{३२}$ प्रतिशतके हिसाबसे रिजर्व बैंक उसे कमीशन देता है।

रिजर्व बैंकको अपने जारी किये हुए चलनी नोटों और अपने तमाम जमा-नामेका हिसाब प्रति सप्ताह सरकारके पास भेज देना पड़ता है और वह अखबारोंमें प्रकाशित किया जाता है।

रिजर्व बैंक एक्टमें एक बात यह भी रखी गई है कि वह यथासंभव जल्दी ही खेती-संबंधी लेन-देनका विभाग खोले। यह विभाग खेतीसे सम्बन्धित

लेन-देनके सारे प्रश्नोंका अध्ययन करे और इस बारेमें सरकारको और प्रांतीय सहकारी बैंकोंको अपनी निष्पक्ष सलाह दे।

सहकारी बैंक

२२ हम ऊपर कह चुके हैं कि गांवोंमें कर्ज और दूसरे ग्रामोद्योगोंसे सम्बन्धित लेन-देनका काम गांवके अच्छे साहूकारों या महाजनोंके हाथमें नहीं रहा है और उचित-अनुचितका विचार न करनेवाले व्याजखोर लोगोंके हाथमें जा पड़ा है। इस काममें तुरन्त बड़ा सुधार होनेकी आवश्यकता है। इस कामको अच्छी तरह चलानेके लिए गांवोंमें सहकारिताके ढंग पर लेन-देन करनेवाली समितियोंका संगठन प्रारम्भ किया गया है। गांवोंकी इन सहकारी समितियोंको पैसा देनेका काम करनेके लिए जिला सहकारी बैंकोंकी योजना की गई है और जिला सहकारी बैंकोंकी मदद प्रान्तीय सहकारी बैंक करते हैं। गांवोंकी सहकारी समितियोंका लेन-देनका सारा व्यवहार जिला सहकारी बैंकके साथ रहता है क्योंकि जिला सहकारी बैंकोंको उनके बारेमें ब्योरेवार सारी जानकारी होती है। जहां जिला सहकारी बैंक नहीं होते वहां प्रान्तीय सहकारी बैंक अपनी शाखाएं खोलकर उनके द्वारा गांवोंकी सहकारी समितियोंके साथ कामकाज करते हैं।

२३ प्रान्तीय बैंक लोगोंकी अमानत रखते हैं और उन्हें प्रान्तीय सरकारसे भी कर्ज मिल सकता है। इसलिए वे जिला बैंकोंको और जहां जिला बैंक न हों वहां अपनी शाखाओंके जरिये प्रारंभिक सहकारी समितियोंको पैसा उधार देनेका काम करते हैं और समितियोंके पास पैसा अधिक हो तो उसका उचित प्रबन्ध भी करा देते हैं। सब जिला बैंक अपने अपने प्रान्तीय बैंकोंमें अपने खाते रखते हैं। इसलिए प्रान्तीय बैंक जिला बैंकोंके हुंडावन गृह (क्लियरिंग हाउस) का काम भी करते हैं।

२४ जिला बैंक भी लोगोंकी अमानतें अपने पास जमा रखते हैं और अपने अधीन सहकारी समितियोंको पैसा उधार देते हैं। इन समितियोंकी देखरेख करने और उन्हें सलाह देनेका काम भी ये बैंक करते हैं।

भूमि-बंधक बैंक

२५ दूसरे सराफी बैंक जिस तरह थोड़ी अवधिका ही कर्ज देते हैं, उसी तरह ये सहकारी बैंक भी ज्यादासे ज्यादा एक वर्षसे अधिक लम्बी अवधिके लिए उधार नहीं देते। और अनुभवने यह बताया है कि वे लम्बी अवधिके लिए पैसा उधार दे भी नहीं सकते। थोड़ी अवधिके लिए दिया

हुआ बैंक किसी भी धंधेके लिए कामचलाऊ पूंजी जुटा सकता है लेकिन दूसरे उद्योग धंधोंकी तरह खेतीके उद्योगके लिए स्थायी (अचल) पूंजाकी आवश्यकता होती है। हमारी खेतीके सुधारके लिए उसमें कुछ स्थायी स्पये और ऐसे खर्च करनेकी जरूरत होती है जिनका बदला बहुत लंबे समयके बाद मिलता है। जैसे कुए खोदना जमीन सपाट करना बांध बांधना आदि। साथ ही किसानोंको ब्याजखोरोंके पंजेसे छुड़ानेके लिए भी उन्हें लम्बी अवधिके कर्ज देनेकी जरूरत है। यह काम साधारण सहकारी बैंकों और सहकारी समितियोंके बूतेका नहीं है। इसलिए लम्बी अवधिके उधारके लिए भूमि-बंधक बैंकोंकी योजना की गई है। ये बैंक किसानोंकी जमीन पर पैसा उधार देते हैं। जमीन पर किसानका अधिकार क्या है और कितना है उससे कितनी आय हो सकती है और अपना खर्च निकालकर कर्ज चुकानेकी उसमें कितनी शक्ति है ये सब बातें सोचकर कुछ नियत वर्षोंके लिए उसे कर्ज दिया जाता है और उसका पैसा सालाना किस्तोंमें वसूल किया जाता है।

२६ इस तरह लंबी अवधिके लिए उधार देनेके लिए भूमि-बंधक बैंकके पास ऐसा पैसा होना चाहिये जिसकी मांग चाहे जिस समय न की जाय। इसके लिए प्रान्तके मुख्य भूमि-बंधक बैंकको एक निश्चित अवधि पर किस्तोंसे भुगतान किया जा सके ऐसे डिबेंचर जारी करनेका अधिकार दिया जाता है। फिर बैंक जितना रकमके डिबेंचर लोगोंसे भरवा सकता है उतना रकमके डिबेंचर सरकार भर देता है। डिबेंचर पर दिये जानेवाले ब्याजकी दरमें और किसानोंसे लिये जानेवाले ब्याजकी दरमें जो फर्क होता है उससे ज्यादा लाभ प्रतिशतका अन्तर रख सकते हैं।

२७ सबसे पहला ऐसा भूमि-बंधक बैंक सन १९२९ में मद्रासमें सण्ट्रल लैण्ड मार्गेज बैंकके नामसे स्थापित हुआ। ३० जून १९४० तक मूल धन और ब्याजके लिए सरकारी आश्वासनवाले २.६४ करोड़के डिबेंचर भर गये थे और उस तारीख तक किसानोंको दिये हुए कर्जोंकी रकम २ करोड़का था। सन १९४० के अन्त तक बंगालमें ऐसे पांच बैंक स्थापित हुए थे। बम्बईमें पहला सण्ट्रल लैण्ड मार्गेज बैंक सन १९२५ में स्थापित हुआ। हमारे यहांकी सहकारी कार्यकी रिजर्व बैंकने जो समालोचना की है उसमें बताया गया है कि ये बैंक किसानोंको उनके पुराने कर्जोंसे छुड़ानेकी ओर अधिक ध्यान देते हैं और खेतीके सुधारकी ओर कम ध्यान देते हैं। इसके सिवा कुछ प्रान्तोंमें सरकारकी ओरसे जो कर्ज निवारण समितियां स्थापित की गई हैं उनके साथ इन बैंकोंको मिलकर काम करना चाहिये।

२८ परन्तु जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, हमारी गांवों धान्य धंधा हो गई है। वह जब तक कमाऊ न बन जाय और समृद्ध न हो जाय तब तक सिर्फ थोड़े ब्याज पर पैसा उधार देनेके सरकारी कायसे हमारे किसानोंका आर्थिक प्रश्न हल नहीं हो सकेगा। किसानोंको खुशहाल बनानेके लिए तो उनकी बदहालीके मूल कारणोंकी जांच करके यथासंभव अधिकसे अधिक मोरचों पर सुधारकी प्रवृत्ति आरंभ करना जरूरी है।

पोस्टल सेविंग्स बैंक

२९ गांव गांवमें बचतकी सलाह नहीं भेजी जा सकती। अतः मध्यम वर्गके लोगोंको अपनी छोटी बचतें ब्याज पर रखनेकी सुविधा मिले इस उद्देश्यसे ये बैंक सन १८८२–८३ से खोले गये थे। पहले इन बैंकोंमें साढ़े तीन प्रतिशत ब्याज दिया जाता था। बीचके कालमें वह घटा दिया गया था। परन्तु १९६२ के अगस्तसे ३ प्रतिशत ब्याज कर दिया गया है। इनमें कमसे कम चार आने भी ब्याजसे रखे जा सकते हैं। एक असामीकी कुल अमानत १५००० रु. से अधिक नहीं होने दी जाती। अपने खातेमें से सप्ताहमें दो ही बार पैसा निकाला जा सकता है। १९६०–६१ में इन बैंकोंमें जमा की गई कुल रकम ४२१ करोड़ थी।

३० सन १९१७ में सरकारी डाकघरकी ओरसे पोस्टल कैश सर्टिफिकेट जारी करनेकी प्रथा शुरू हुई है। ये सर्टिफिकेट १० रु० से १० ० रु० तक के अलग अलग दामकी रकमके और पांच वर्षकी अवधिके होते हैं। किसीको १० रुपयेका एक सर्टिफिकेट लेना हो तो उसे इतनी रकम देना पड़ती है जो पांच बरसमें ब्याज सहित १ रुपये हो जाय। अर्थात पांच वर्षके ब्याजके बराबर कम रकम आज उसे देनी पड़ती है और पांच वर्षमें इस सर्टिफिकेटके पूरे १० रुपये मिलते हैं। ये सर्टिफिकेट अब नेशनल सेविंग सर्टिफिकेटके नामसे दिये जाते हैं जो १२ वर्षके या इससे कम अवधिके भी होते हैं। सन १९६०–६१ में ऐसे सर्टिफिकेटोंकी कुल रकम ४६३ करोड़ रुपये थी। गांवोंमें और अन्यत्र गरीब वर्ग और मध्यम वर्गके लोगोंके लिए अपनी बचत लाभके साथ जमा रखनेकी यह अच्छी सुविधा मानी जाती है। परन्तु एक बातकी ओर ध्यान खींचनेकी जरूरत है कि गांवोंके और गरीब वर्गके लोगोंकी छोटी छोटी बचतोंसे खड़ी होनेवाली इन बड़ी अमानतोंका उपयोग सहकारी समितियों द्वारा और अन्य साधनों द्वारा खेती और ग्रामोद्योगोंके आवश्यक सुधारके लिए होना चाहिये।

१७

आंतर-राष्ट्रीय व्यापार

१ जैसे जैसे समाजमें कार्य विभागका तत्त्व अधिकाधिक फैलता गया वैसे वैसे समूह समूहके बीच, कुटुम्ब कुटुम्बके बीच और फिर गांव गांवके बीच तथा आगे चलकर देशके अलग अलग कुदरती प्रदेशोंके बीच और उससे भी आगे बढ़कर देश देशके बीच व्यापार होने लगा है। पुराने जमानेमें हमारे देशका व्यापार समुद्र मार्गसे पूर्वमें जावा-सुमात्रा और चीनके साथ होता था और पश्चिममें अरबस्तान, एबिसीनिया और अफ्रीकाके पूर्वी किनारेके साथ होता था। स्थलमार्गसे पश्चिममें ईरान और ईराक तक और वहांसे समुद्र मार्गसे इटलीके वेनिस और जिनोआ आदि शहरोंके साथ हमारा व्यापार होता था। यूरोपके लोग हमारे देशका और पूर्वके दूसरे देशोंका माल इटलीके इन शहरोंके मारफत खरीदते थे। इस व्यापारके कारण ये शहर बहुत धनी हो गये थे। इस लाभप्रद व्यापारको अपने हाथमें लेनेके लिए स्पेन और पुर्तगालने हिन्दुस्तान पहुंचनेका सीधा जलमार्ग ढूंढनेके महान प्रयत्न किये। उनके फलस्वरूप पन्द्रहवीं शताब्दीके अंतमें अमरीका महाद्वीपकी खोज हुई और हिन्दुस्तान पहुंचनेका जलमार्ग भी ढूंढ निकाला गया। इन खोजोंके बाद स्पेन और पुर्तगालकी सम्पत्ति बहुत बढ़ गई और उससे दुनियामें यह विचार प्रचलित हुआ कि विदेशोंके साथ व्यापार करनेसे देशकी सम्पत्ति बढ़ती है।

उस कालमें अर्थशास्त्रियोंका एक ऐसा सम्प्रदाय था जिसने सम्पत्तिके रूपमें सोने चांदीको ही बहुत ज्यादा महत्त्व दिया और यह विचारसरणी फैलाई कि जिस देशमें सोने चांदीकी खानें न हों उस देशमें सोना चांदी लानेका मुख्य साधन विदेशोंके साथका व्यापार ही है। स्पेन और पुर्तगालके साथ इंग्लैण्ड, फ्रांस और हालैण्ड भी विदेशी व्यापारकी स्पर्धामें पड़े। पूर्वके देशोंके साथ व्यापार करनेके लिए इन देशोंमें बड़ी बड़ी व्यापारिक कंपनियां बनीं और इन देशोंके राजाओंने अपने देशकी इन व्यापारिक कंपनियोंको प्रोत्साहन देनेके लिए पट्टे लिख दिये और दूसरी मदद देना भी आरंभ किया। इस व्यापारिक प्रतिस्पर्धामें राजसत्ताका तथा सैन्य बलका भी उपयोग होने लगा। इस प्रतिस्पर्धामें अन्तमें इंग्लैण्डकी विजय हुई। इस प्रकार जिस जिस देशके हाथ अवसर लगा उस देशका व्यापार बढ़ा और वह समृद्ध हुआ।

२ कुछ अर्थशास्त्री ऐसा कहते हैं कि अलग अलग देशोंके साथ होने वाला ऐसा व्यापार विभिन्न व्यक्तियोंके बीच अथवा विभिन्न प्रान्तोंके बीचके व्यापारका विस्तृत रूप है। अर्थात् विदेशोंके साथ होनेवाला व्यापार समाजमें प्रचलित कार्य विभागका विस्तृत रूप है इस प्रकार सैद्धांतिक दृष्टिसे ये अर्थशास्त्री हमें समझाते हैं। इसका एक उदाहरण हम लें।

मान लीजिये कि भारत और चीनमें अमुक पूंजी तथा श्रमसे अमुक मात्रामें सूती कपड़ा और रेशमी कपड़ा उत्पन्न होता है।

	रेशमी कपड़ा	सूती कपड़ा
चीन	८ गज	६ गज
भारत	८ गज	१० गज

इस उदाहरणके अनुसार दोनों देश यदि अलग अलग चीजें उत्पन्न करें तो कुल १६ गज रेशमी कपड़ा और १६ गज सूती कपड़ा तयार होगा। इसके बदले यदि चीन सूती कपड़ेमें लगनेवाला श्रम रेशमी कपड़के उत्पादनमें एकसाथ लगाये और भारत अपना रेशमी कपड़के उत्पादनमें लगनेवाला श्रम एकसाथ सूती कपड़के उत्पादनमें लगाये तो दोनोंके संयुक्त श्रमसे कुल १६ गज रेशमी कपड़ा और २० गज सूती कपड़ा उत्पन्न होगा। अतः इस प्रकारके कार्य विभागसे कुल ४ गज कपड़ा अधिक तयार होगा। भारतकी रेशमी कपड़ा उत्पन्न करनेकी शक्ति चीनसे कम नहीं है। परन्तु भारतकी सूती कपड़ा उत्पन्न करनेकी शक्ति रेशमी कपड़ा उत्पन्न करनेकी शक्तिसे अधिक है। अर्थात भारतको सूती कपड़ा उत्पन्न करनेमें और चीनको रेशमी कपड़ा उत्पन्न करनेमें अधिक लाभ होगा। इस कारणसे यह कहा जाता है कि अलग अलग देश इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टिसे अपनी शक्तिका उपयोग करें तो अन्तमें कुल मिलाकर अधिक माल उत्पन्न होगा और समाजकी संपत्ति बढ़ेगी। ऐसा माननेमें कोई हर्ज नहीं कि यह व्यक्ति और व्यक्ति अथवा प्रांत और प्रान्तके बीचके व्यवहारका विस्तृत रूप है। अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि जब प्रांत और प्रांतके बीच जकातके बंधन नहीं होते तो विभिन्न देशोंके बीच जकातके बंधन किसलिए रखे जाते हैं?

दो प्रांतों और दो देशोंके बीचका व्यापार

३ जिस प्रकार किसी देशके दो प्रान्तोंके बीच बिना किसी प्रतिबंधके व्यापार होता है उसी प्रकार दो देशोंके बीच भी व्यापार हो सकता है। यह बात एक सिद्धान्तके रूपमें सही है परन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे सही नहीं है।

हम दो भाइयोंका उदाहरण लें। दो भाई जिस प्रकार एक-दूसरेको आर्थिक अथवा दूसरी कोई मदद करते हैं उसी प्रकार दो अलग अलग मनुष्य एक-दूसरेको आर्थिक अथवा अन्य प्रकारकी मदद क्यों नहीं करते? इसका कारण यह है कि दोनों भाइयोंके बीच जो विशिष्ट प्रकारका सम्बन्ध है वह अलग अलग दो मनुष्योंके बीच नहीं होता। इसका अपवाद हो सकता है। दो मित्र एकसाथ रह सकते हैं। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि सब मनुष्य एकसाथ रह सकते हैं। दो भाई आपसमें लड़ते-झगड़ते हों तो भी दोनोंमें एक-दूसरेके प्रति जो भावना होती है वह अन्य लोगोंमें नहीं हो सकता। यह सगपनका एक गुण है। इसके पीछे सामाजिक और आर्थिक कारण हैं। यही वजह है कि अलग अलग मनुष्योंके बीच ऐसा सम्बन्ध दुर्लभ होता है। कुछ इसी प्रकारका भेद दो प्रान्तों और दो देशोंके बीच होता है। दो प्रान्त दो भाइयोंके समान हैं जब कि दो देश दो अनजान मनुष्योंकी तरह हैं। दो प्रान्तोंके बीच यदि उद्योगोंका विकास हो तो पैसा अपने देशमें ही रहता है और यदि दूसरे देशके उद्योगोंका विकास हो तो पैसा दूसरे देशमें चला जाता है। अतः कुल मिलाकर देखा जाय तो ऐसा लगता है कि दो प्रान्तोंके बीच उद्योगोंका विकास होना वाछनीय है। इससे लेन-देनका व्यवहार देशमें ही होगा और देश समृद्ध बनेगा।

४ सम्भव है दो प्रान्तोंके बीच व्यापार हो तो पैसेका लेन-देन दो प्रान्तोंके बीच होता है और यदि दो देशोंके बीच व्यापार हो तो पैसेका लेन-देन दो अलग देशोंके बीच होता है। हम दो देशोंका एक उदाहरण लें। मान लीजिये कि जर्मनी और इंग्लैण्ड दोनों सहयोगसे परस्पर व्यापार करते हैं। परन्तु यदि इंग्लैण्ड अधिक धन कमायेगा तो वह जर्मनीमें नहीं जायगा। और यदि जर्मनी अधिक धन कमायगा तो वह इंग्लैण्डको कभी नहीं मिलेगा। इस प्रकार कोई एक देश अधिक धन कमाये और उसका लाभ किसी दूसरे देशकी प्रजाको मिले ऐसा नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त दोनों देशोंकी सरकारें भिन्न होनेसे दोनों देशोंमें वहाँकी सरकार जो धन खर्च करेगी उसका लाभ एक-दूसरेको नहीं मिलेगा। दोनों देशोंमें करोंका और जनताका स्तर अलग अलग होगा। दोनोंके चलन (मुद्रा) में तो भेद होगा ही। पूंजी और श्रमका परिवहन भी दोनोंके बीच आसानीसे नहीं हो सकता। इसके सिवा, अमुक प्रकारका ही उद्योग किसी देशमें चले तो उस देशकी प्रजाका नसीबका विविध रूपमें सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। और युद्धकालमें माल आने जानेमें भी कठिनाई पड़ती है। फिर, भाषाके भेद, रीत रिवाजके भेद—ऐसे

अनेक भेदोंके कारण देशका भीतरी और बाहरी व्यापार एक ही स्तर पर नहीं चल सकता।* आजकी परिस्थितिमें देश और देशके बीचके अन्तरका भेद जिस प्रकार स्वीकार करके चलना पड़ता है उसी प्रकार ऊपरके भेद भी ध्यानमें रखने चाहिये।

५ इस परसे यह कहना भी ठीक नहीं कि आन्तरराष्ट्रीय व्यापार होना ही नहीं चाहिये। परन्तु हमें उसकी मर्यादा समझनी चाहिये। लाभा लाभकी दृष्टिसे आन्तरराष्ट्रीय व्यापारके कुछ उदाहरण ये हैं:

(१) किसी देशमें जो वस्तुएं होती ही न हों और जिनके उत्पन्नकी संभावना भी न हो वे वस्तुएं परस्पर साथ व्यापार होने पर ही उस देशको मिल सकती हैं। जैसे उष्ण कटिबन्ध देशोंमें पैदा होनेवाले मिर्च मसाले शीत कटिबन्धके देशोंमें रहनेवाले लोगोंको आन्तरराष्ट्रीय व्यापारके कारण ही मिल सकते हैं। इंग्लैण्डको आज यदि खानगीनकी चीज चाय शक्कर आदि काफी मात्रामें मिल सकती है तो उसका कारण आन्तरराष्ट्रीय व्यापार ही है।

(२) जो चीजें जिस देशमें अच्छीसे अच्छी और कम मेहनत तथा कम साधनोंसे बन सकती हों वे चीजें उसी देशमें बनाई जायं और अलग अलग देशोंके बीच एक-दूसरेकी आवश्यक चीजोंका विनिमय किया जाय तो दुनियाकी उत्पादक साधन सम्पत्तिका अधिकसे अधिक और अच्छेसे अच्छा उपयोग किया जा सकता है। उदाहरणके लिए स्पेन और इटलीमें अंगूर खूब हो सकते हैं। अब यदि कांचके घर बनाकर कृत्रिम गरमी पहुंचाई जाय तो स्काटलैण्ड जैसे ठंडे देशोंमें भी अंगूर पैदा किये जा सकते हैं। लेकिन ऐसा करनेमें बिना कारण बड़ी भारी झंझट उठानी पड़ेगी और खर्च बहुत बढ़ जायगा। ऐसा करनेके बजाय जो चीज स्काटलैण्डमें आसानीसे पैदा हो सकती हो उसी पर स्काटलैण्डके लोग श्रम करें और उसके बदलेमें स्पेन या इटलीके अंगूर मंगायें तो ज्यादा अच्छा होगा।

(३) किसी देशमें उसकी आवश्यकतासे अधिक कोई चीज कुदरती सुविधाके कारण ही बहुत अधिक उत्पन्न होती हो तो आन्तरराष्ट्रीय व्यापारके द्वारा उस चीजका लाभ दूसरे देशोंको मिल सकता है। जैसे हमारे देशमें सन और चाय हमारी आवश्यकतासे अधिक पैदा होते हैं।

* हमारे देशके हिंदुस्तान और पाकिस्तान जैसे सर्वथा स्वतंत्र विभाग हो जानेके कारण दोनोंके बीचका व्यापार भी दो स्वतंत्र देशोंके व्यापार जैसा हो गया है। उपरोक्त कारणोंसे अब दोनोंका व्यापार आंतरिक व्यापारकी तरह नहीं हो सकता।

अत जिन देशोंमें मन और चाय पैदा ही नही होते और फिर भी जिन्हें इन चीजोंकी जरूरत हो उन्हें आन्तरराष्ट्रीय व्यापारके जरिये ये चीजें उपयोगके लिए मिल सकती हैं।

(४) स्विटजरलैण्डने घडियां बनानेके उद्योगमें खूब प्रगति की है। उनके अत्यन्त नाजुक पुरजे बनानेके लिए वहांकी आबहवा अनुकूल मानी जाती है और वहांके कारीगरोंके हाथमें परम्परासे विकसित हुई कई वर्षोंकी कुशलता भी है। अत हम अपने देशमें घडियां बनानेका उद्योग खडा करनेके बजाय वहींकी घडियां काममें लें तो इसमें कोई बुराई नहीं है। पुस्तकोंके मुद्रण-कार्यमें प्राचीन भाषाओंके टाइप कम्पोज करनेमें जर्मन कम्पोजिटरोंने कितने ही वर्षोंके अभ्याससे बडी कुशलता और त्वरित गति प्राप्त कर ली है। अत ऐसी पुस्तकोंके जर्मनीमें ही छपनेमें क्या बुराई है? इसी तरह संगीतके वाद्य बनानेमें जर्मन कारीगरोंकी कुशलता अत्यन्त विकसित हो गई है। इसलिए वहांके बने हुए वाद्य सारे यूरोपमें बिकें तो यह भी गलत नहीं समझा जा सकता। इन उदाहरणोंमें एक बात ऐसी है जिसकी ओर ध्यान खींचनेकी जरूरत है। जिस देशमें मजदूरोंकी दर सस्ती हो उसी देशमें माल बनाना सस्ता पडता है ऐसा कोई नियम नहीं है। स्विटजरलैण्डमें घडियोंके कारीगरों और जर्मन कम्पोजिटरोंको मजदूरीकी दर अधिक मिलती होगी परन्तु क्योंकि ये अधिक तालीमवाले और कुशल होते हैं इसलिए जो काम वे करते हैं उसमें उनकी उत्पादक शक्ति अधिक विकसित होती है और इसलिए यदि उन्हें मजदूरीकी भारी दर देनी पड़े तो भी अतमें कुल मिला कर उनका बनाया हुआ माल ज्यादा अच्छा होता है और सस्ता पडता है। परन्तु इस वस्तुस्थितिका उलटा अर्थ लगाकर सूती कपडेके बारेमें इंग्लैण्ड एक दलील देता है, जो जानने लायक है। उसके यहां रुई पैदा नहीं होती और वह जो सूती कपडा बनाता है उसकी भी उसे जरूरत नहीं होती। फिर भी वह सूती कपडा बनाता है। इसके समर्थनमें वह यह ख्याल देता है कि यह माल बनानेकी विशेष कुशलता हमने वर्षोंकी तालीमसे विकसित की है। इसलिए वास्तवमें देखा जाय तो आन्तरराष्ट्रीय बाजारमें हम अपना सूती कपडा नहीं रखते बल्कि हमारे कारीगरोंकी विशेष कुशलता रखते हैं। यह कुशलता दूसरे देशोंमें नहीं है क्योंकि हमारे सूती कपड़ेका व्यापार आन्तरराष्ट्रीय व्यापारके सिद्धान्तके अनुसार उचित ही है।

६ अब हम वर्तमान आन्तरराष्ट्रीय व्यापारकी कुछ हानियों पर नजर डालें

(१) किसी देशमें कुदरती तौर पर किसी खास उद्योगके चलनेकी सब अनुकूलताएं हों तो भी जब तक वह चीज परदेशसे आया करती है तब तक उस उद्योगके विकासके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं होती। जैसे, हमारे देशमें शक्करके उद्योगके लिए सारी अनुकूलताएं मौजूद थीं फिर भी जब तक परदेशी शक्कर आती रही तब तक इस उद्योगका विकास नहीं हो सका। हमारे शक्करके उद्योगको संरक्षण देनेके बाद अब वह ऐसी स्थितिमें पहुंच गया है कि संरक्षणके बिना भी विदेशी शक्करकी स्पर्धामें टिक सकता है। हमारे देशके सीमेन्टके उद्योगका भी यही हाल हुआ है।

(२) हमारे देशमें हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके द्वारा कपड़ेका उद्योग अच्छी तरह चलता था और समाजके साथ इतनी अच्छी तरह गुंथ गया था कि यह धंधा हमारी आर्थिक सुस्थितिका आधार माना जाता था। लेकिन मैंचेस्टर और लंकाशायरकी कपड़की मिलोंने इस उद्योगको नष्ट कर दिया। इसी तरह दूसरे बहुतसे ग्रामोद्योग भी परदेशी मालके आयातसे नष्ट हो गये हैं। इसके फलस्वरूप हमारे देशमें बेकारी और कंगाली पैदा हो गई है और दिनोंदिन बढ़ती जाती है।

(३) आन्तर राष्ट्रीय व्यापारके कारण कुछ सस्ती और आकर्षक परन्तु वास्तवमें निकम्मी और कभी कभी स्वास्थ्यको नुकसान पहुंचानेवाली विदेशी चीजोंका भी आयात होता है। जैसे रबरके तलेके बूट, रबरकी टोटीवाली छोटे बच्चोंको दूध पिलानेकी शीशियां, शरीरको सुन्दर बनानेका दावा करनेवाले तरह तरहके पदार्थ और कई तरहकी नकली दवाएं आदि।

(४) आन्तर राष्ट्रीय व्यापारके कारण कुछ देश बहुत बार अपनी प्राथमिक आवश्यकताकी चीजोंके लिए भी दूसरे देशों पर निर्भर रहने लग जाते हैं। फिर जब युद्ध या कुदरती संकटके कारण परदेशसे ये चीजें आनी बंद हो जाती हैं तब ये पराश्रयी बने हुए देश बहुत बड़ी मुसीबतमें फंस जाते हैं। उदाहरणके लिए इंग्लैण्ड खाद्य पदार्थोंके लिए दूसरे देशों पर आधार रखता है, इसलिए युद्धके समय उसकी स्थिति बहुत ही कठिन हो जाती है।

(५) विदेशी व्यापारके कारण देशका आर्थिक विकास बहुत बार एकांगी बन जाता है। जैसे इंग्लैण्डने खेतीका धंधा छोड़ दिया और हिन्दुस्तानके बहुतसे उद्योग नष्ट हो गये। यह स्थिति दीर्घ दृष्टिसे दोनों देशोंके लिए हानिकारक थी। हर देशके प्राथमिक महत्त्वके अथवा राष्ट्रीय उद्योगोंमें अमुक विविधता तो होनी ही चाहिये, तभी उसके आर्थिक जीवनमें स्थिरता

और सुरक्षितता आती है और दूसरी तरह भी राष्ट्रका जीवन समृद्ध और विकसित होता है।

मुक्त व्यापार बनाम संरक्षण

७ आन्तर राष्ट्रीय व्यापारके सम्बन्धमें अर्थशास्त्रियोंमें इस बात पर बड़ा विवाद खड़ा हो गया था कि मुक्त व्यापार और संरक्षण इन दोमें से कौनसी नीति अच्छी है। अलबत्ता अब यह प्रश्न विवादास्पद नहीं रहा है। आर्थिक तथा राजनीतिक कारणोंसे भी सब देश संरक्षणकी नीतिको अपनाने लगे हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह विवाद सदाके लिए मिट गया है। हम यहां उसके मुख्य मुख्य अंगोंकी चर्चा करेंगे।

८ मुक्त व्यापार वह होता है जिसमें किसी भी तरहकी बाधा या नियंत्रणके बिना देश विदेशके बीच उन्मुक्त व्यापार होने दिया जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि आयात निर्यातके माल पर कोई जकात (कर) ही नहीं होती। सरकार अपने सामान्य खर्चको पूरा करनेके लिए जरूरी आयके एक साधनके तौर पर देशके आयात निर्यातके माल पर थोड़ी-बहुत जकात लगाये, तो उस पर मुक्त व्यापारके समर्थकोंको कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु परदेशसे आनेवाले माल पर उसे रोकनेके हेतुसे ही जकात लगाना या देशसे बाहर जानेवाले मालको दूसरे देशोंमें सस्ता बेच सकनेके लिए निर्यात करनेवालोंको मदद करना मुक्त व्यापारकी नीतिके विरुद्ध है।

९ संरक्षणकी नीति वह कही जाती है जिसमें परदेशी माल सस्ता आये तो भी तथा वह माल देशमें बनाने पर बहुत महंगा तैयार हो तो भी स्वदेशी उद्योगकी रक्षाके लिए परदेशी माल पर इतनी अधिक जकात लगा दी जाय कि देशमें आने पर वह माल महंगे स्वदेशी मालसे भी अधिक महंगा हो जाय। इसके सिवा भी संरक्षणके कई प्रकार हैं, जैसे (१) स्वदेशी मालको प्रोत्साहन देनेके लिए उसका जितना उत्पादन हो उस पर अमुक प्रतिशत मदद देना ताकि देशमें वह माल सस्ता बिक सके। जो स्वदेशी उद्योग देशके लिए खास तौर पर जरूरी हों उनके विकासके लिए ऐसी मदद दी जाती है। इसके सिवा स्वदेशी मालका अधिक उत्पादन होता हो तो इसलिए भी यह मदद दी जाती है कि परदेशमें वह माल सस्ता बिक सके। (२) परदेशसे आनेवाले मालकी मात्रा निश्चित करके उससे ज्यादा परदेशी माल देशमें आने ही न देना। स्वदेशी उद्योगके जरिये देशकी जरूरतका पूरा माल उत्पन्न न किया जा सकता हो तब कम पड़नेवाला माल परदेशसे आयात करनेके लिए यह नीति अपनाई जाती है। (३) दो देशोंके बीच

व्यापार-उद्योग-सम्बन्धी समझौते करके एक-दूसरेको ऐसी राहत और सुविधाएं देनेका निश्चय करना जिससे दूसरे देश इस तरहके समझौतोंमें बंधे हुए देशोंमें अपना व्यापार न कर सकें।

१० ऊपर कहा जा चुका है कि आजकल दुनियाके सभी देश थोड़े बहुत अंशमें संरक्षणकी नीति अपनाने लगे हैं। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियोंमें यूरोपके सारे देश संरक्षणकी नीतिको अपनाते थे। हमारे देशमें विदेशी व्यापारियोंको अपनी कोठी डालने और व्यापार करनेके लिए राज्यकी इजाजत लेनी पड़ती थी। लेकिन अठारहवीं सदीके अंतमें और उन्नीसवीं सदीके आरंभमें इंग्लैण्डमें औद्योगिक क्रांति हुई, तबसे अंग्रेज उद्योगपति व्यापारी और अर्थशास्त्री मुक्त व्यापारकी नीतिकी जोरोंसे हिमायत करने लगे। और इंग्लैण्डने अपने देशके और हिन्दुस्तानके लिए भी मुक्त व्यापारकी नीति अपनाई, यद्यपि अब कुछ वर्षोंसे इंग्लैण्ड भी संरक्षणकी नीति अपनाने लगा है।

मुक्त व्यापारकी हिमायत

११ हम पहले कह चुके हैं कि किसी भी मालकी बाजार-कीमत उस मालके उत्पादन-खर्चके आसपास घूमा करती है। लेकिन यह नियम किसी देशके अन्दरके उद्योगोंका उस देशके भीतरकी बाजार-कीमत तक ही लागू होता है। एक चीज बहुत सस्ती बन सकती हो, परन्तु उसकी मांग ज्यादा हो तो शुरूमें उसकी बाजार-कीमत अधिक रखी जा सकती है। लेकिन उसमें होनेवाले बड़े नफेको देखकर दूसरे उत्पादक भी उस धंधेमें पड़ेंगे और उस चीजकी पूर्तिके बढ़नेसे उसकी बाजार-कीमत घट जायेगी। लेकिन यह नियम परदेशमें खूब सस्ती बननेवाली और दूसरे देशमें खूब महंगी बिकनेवाली चीजोंको लागू नहीं होता। क्योंकि एक देशके भीतर ही भीतर पूंजी और मजदूरोंका परस्पर जितनी हद तक हो सकता है उतनी हद तक देश और देशके बीच नहीं हो सकता। परदेशमें कोई धंधा बहुत नफेका हो तो भी एक देशकी पूंजी और मजदूर जल्दी दूसरे देशमें नहीं जाते। राजनीतिक रुकावटोंके सिवा भाषाके भेद, रीति-रिवाजके भेद, आचार-विचारके भेद, दूर परदेशमें मजदूरोंकी जानेकी अनिच्छा तथा दूरके देशमें पूंजी लगानेका साहस — इन सब कारणोंसे प्रतिस्पर्धाका तत्त्व एक देश और दूसरे देशके बीचके नफे और मजदूरीकी दर पर असर नहीं डाल सकता। और

* देखिये पुस्तकका प्रकरण ५ भाग–३ पृष्ठ १७१–८५।

इस कारणसे मालकी कीमतमें भी अंतर रहता है। देशके भीतरके उद्योगोंमें और बाहरके उद्योगोंमें यह बडा अन्तर है। लेकिन मुक्त व्यापारके हिमायती इस तरहका कोई भेद मानते ही नहीं। वे यह मानकर चलते हैं कि देश देशके बीच भी प्रतिस्पर्धाका तत्त्व अपना काम किये बिना नहीं रह सकता। और वे यह दावा करते हैं कि मुक्त व्यापारसे हर देशको अच्छेसे अच्छा और सस्तेसे सस्ता माल मिलना ही है। वे कहते हैं कि आन्तर राष्ट्रीय व्यापार श्रम विभागके तत्त्वका ही एक विस्तृत प्रकार है। जो आदमी जिस धंधेके लिए अधिक योग्य हो वह आदमी वही धंधा करे यह जैसे सामाजिक श्रम विभाग है, वैसे ही जिस देशमें जो धंधा या उद्योग चलानेके लिए अधिकसे अधिक कुदरती अनुकूलताएं हों वह देश उस उद्योगको चलाये यह भौगोलिक श्रम विभाग है। पूंजी और मजदूर अपने आप वहां पहुंच ही जायंगे और उनका ऐसा उपयोग हो सकेगा जिससे अधिकसे अधिक लाभ हो। इस भौगोलिक श्रम विभागका आश्रय लेनेसे हर देशका कुदरती साधन-संपत्तिका अधिकसे अधिक उपयोग हो सकता है और एक देशकी न्यूनता दूसरे देशकी विशेषतासे पूरी हो जाती है।

१२. अठारहवीं सदीके अन्त तक तो इंग्लैण्डने संरक्षणकी नीति ही अपना रखी थी। लेकिन यंत्रोद्योगोंकी स्थापनामें उसने यूरोपमें पहल की और वहांके किसान खेतीका धंधा छोड़कर कारखानोंमें काम करने लगे। इंग्लैण्ड अपना जरूरतका अनाज और दूसरे खाद्य पदार्थ विदेशोंसे मंगाने लगा और सारी दुनियाका कारखाना बनकर दुनियाके बाजारों पर अधिकार करने लगा। उस समय उसका नौकादल सर्वश्रेष्ठ था और परदेशसे अनाज मंगाने और अपना तैयार माल दूसरे देशोंमें बेचनेमें उसे कोई खतरा मालूम नहीं होता था। इसलिए इंग्लैण्डके राजनीतिक पुरुषों और अर्थशास्त्रियोंने अपने ही लिए नहीं बल्कि सारी दुनियाके लिए मुक्त व्यापारकी हिमायत की।

१३. इस मुक्त व्यापारकी हिमायतमें सामाजिक दृष्टिसे भारी अन्याय पूर्ण समझी जानेवाली एक विचित्र दलील कुछ अंग्रेज अर्थशास्त्रियोंने प्रस्तुत की है जो जानने लायक है। वे कहते हैं कि किसी भी देशके समाजमें जैसे ऊंचे और नीचे स्तर होते हैं — जैसे अनाड़ी मजदूर कुशल कारीगर निष्णात वकील अथवा डाक्टर या डाक्टर प्रतिभाशाली कवि अथवा कलाकार होते हैं — वैसे ही अलग अलग देशोंमें भी ऊंचे और नीचे स्तर होते हैं। गरम देशोंमें रहन-सहनका स्तर नीचा होता है और वहां सस्ता दरवाजे अकुशल मजदूर खूब मिल जाते हैं। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस जैसे देशोंमें रहन-सहनका स्तर ऊंचा

है और वहां कुशल कारीगर तथा निष्णात कलाविद बहुत हैं। इसलिए जैसे ऊंचे प्रकारके काम कर सकनेवाले प्रतिभा-सम्पन्न और बुद्धिशाली लोग अपने ऐसे काम जिनमें अधिक बुद्धि या होशियारी खर्च करनेकी जरूरत न हो नौकरोंसे करा लेते हैं और कुल मिलाकर उससे अधिक आर्थिक लाभ होता है उसी प्रकार इंग्लैण्ड और फ्रांस जैसे ऊंचे रहन-सहनवाले देश गरम देशोंके अकुशल मजदूरोंके श्रमसे सस्ता दर पर पैदा होनेवाला अनाज चाय कहवा मिर्च-मसाला और दूसरा कच्चा माल खरीदें और अपने यहांके कुशल और निष्णात कारीगरों द्वारा कारखानोंमें तैयार कराया हुआ माल ऐसे देशोंको दें तो इससे दुनियाको अधिकसे अधिक आर्थिक लाभ होगा। इस दलील पर कोई टीका करना अनावश्यक है।

संरक्षणकी हिमायत

१४ अंग्रेज अर्थशास्त्रियोंने मुक्त व्यापारकी इस हिमायतका विरोध सबसे पहले जर्मन अर्थशास्त्रियोंने किया। उनकी मुख्य दलील यह थी कि इंग्लैण्ड कुछ उद्योगोंमें आगे बढ़ गया है और अमुक माल अच्छा तथा सस्ता बना सकता है परन्तु इसका कारण यह नहीं कि उस मालको बनानेकी कुदरती सुविधायें इंग्लैण्डमें विशेष हैं और दूसरे देशोंमें नहीं हैं बल्कि उसका कारण इतना ही है कि कुछ खास उद्योग उसने दूसरे देशोंसे पहले आरंभ किये हैं। औद्योगिक विकासके शिखर पर पहुंचनेके लिए तो उसे भी संरक्षणकी सीढ़ीका उपयोग करना पड़ा था। लेकिन अब शिखर पर पहुंचनेके बाद यह सीढ़ी बेकार है ऐसा कहकर मुक्त व्यापारकी हिमायत करनेमें ही उसे फायदा है। लेकिन जिस देशके उद्योग बाल्यावस्थामें हों उनका क्या? ऐसे देशोंके पास सभी कुदरती सुविधाएं होने पर भी कुशलताके अभावमें पूंजीके अभावमें अथवा अन्य किसी कारणसे इन उद्योगोंका पूरा विकास न हुआ हो तो क्या उन्हें अपने यहां ये उद्योग कभी आरंभ ही न करने चाहियें? ऐसे उद्योग यदि वे आरंभ करें तो जब तक ये उद्योग बाल्यावस्थामें रहें तब तक उन्हें सरकारकी मददकी और प्रजाकी ओरसे प्रोत्साहनकी जरूरत पड़ेगी ही। यदि मुक्त व्यापारकी नीति स्वीकार करके ऐसे बाल उद्योगोंकी रक्षा न की जाय तो वे दूसरे देशोंके बढ़े हुए उद्योगोंकी प्रतिस्पर्धामें खड़े हो नहीं रह सकते। दूसरी ओर यह संभव है कि बाल्यावस्थामें यदि ऐसे उद्योगोंको संरक्षण दिया जाय तो आगे चलकर दूसरे देशोंसे वे विकासके अधिक ऊंचे दर्जे पर पहुंच जायं। हमारे देशके शक्करके उद्योगका उदाहरण ऊपर दिया गया है। संरक्षणकी नीतिसे ही वह अपने पैरों पर खड़ा हो पाया

है। कपड़ेके उद्योगका उदाहरण लीजिये। यह निश्चित बात है कि हमारे यहाँ कपास पैदा होनेके कारण कपड़ेके धंधेके लिए इंग्लैण्डसे अधिक कुदरती सुविधाएं हमारे देशमें हैं। इसलिए इंग्लैण्डकी प्रतिस्पर्धा होते हुए भी और विदेशी सरकारका आरंभ कालमें या प्रोत्साहन न मिलने पर भी हमारे देशमें कपड़ेके उद्योगका विकास हुआ है और वह अपने पैरों पर खड़ा हो सका है। इस उद्योगको यदि आवश्यक संरक्षण मिला होता तो वह बहुत पहले अपने पैर जमा लेता। लेकिन हमारे देशमें कपड़ेके उद्योग पर एक दूसरी ही दृष्टिसे विचार करना चाहिये। करघोंका उद्योग हमारे किसानोंके सहायक गृह उद्योगके रूपमें और बुनकरोंका उद्योग हमारी जनताको वस्त्र पहुँचानेवाले एक ग्रामोद्योगके रूपमें चलता था और आज भी उसी तरह चलना चाहिये। परन्तु विदेशी राज्यमें मुक्त व्यापारकी नीतिके अनुसार किसी भी तरहकी रुकावटके बिना आनेवाले विदेशी कपड़े और सूतने इस गृह-उद्योग और ग्रामोद्योगको तोड़ दिया और देशको अपार नुकसान पहुँचाया। आजकल स्वदेशी मिलोंने विदेशी कपड़ेको तो निकाल बाहर कर दिया है। लेकिन यदि किसानोंको खुशहाल बनाना हो तो हमें स्वदेशी मिलोंके खिलाफ भी खादीको संरक्षण देने और आगे बढ़ानेकी नीति अपनानी चाहिये।

१५. संरक्षणके पक्षमें दूसरी बड़ी दलील यह है कि प्रत्येक देशमें उद्योगोंकी विविधता होनी चाहिये और जहाँ तक हो सके प्रत्येक देशको अपनी मुख्य जरूरतोंके बारेमें स्वयंपूर्ण और स्वावलम्बी होना चाहिये। उद्योगोंकी विविधताके कारण जनताका सांस्कृतिक और सर्वांगीण विकास हो सकता है। एक ही तरहका उद्योग रखकर बैठ रहनेसे किसी देशकी जनताकी बुद्धिके भी एकांगी हो जानेका डर रहता है। इसके सिवा समाजके जीवनाधार उद्योगों — जैसे कि अनाज और कपड़ा — तथा मुख्य उद्योगों — जैसे लोहेका उद्योग — के बारेमें कोई भी देश दूसरों पर निर्भर रहे तो उसमें बहुत बड़ा खतरा है। ऐसी चीजें विदेशोंसे बाजारमें सस्ती पड़ती हों और अपने देशमें बनानेमें महँगी भी पड़ती हों तो भी ये चीजें हर देशको अपने यहाँ बनानी चाहिये। आर्थिक दृष्टिसे किसी चीजका महँगा या सस्ता होना देशके जीवनमें मुख्य वस्तु नहीं है, क्योंकि दूसरे देशकी चीजें भले ही सस्ती पड़ती हों, लेकिन बाहरसे यह चीजें तैयार लेनेमें उन चीजोंको बनानेवाले हमारे देशके लोग यदि बेकार होते जाते हों और उन्हें दूसरा कोई काम दिया न जा सकता हो तो सस्तेपनके उस सस्ते लाभकी तुलनामें बेकारोंकी यह निश्चित हानि बहुत बढ़ जाती है।

साम्राज्यके अंगभूत देशोंको तरजीह — 'इम्पीरियल प्रिफरेंस'

१६ आजकी परिस्थितियोंमें मुक्त व्यापार और संरक्षणकी नीति विवादका विषय नहीं रही। प्रत्येक देश संरक्षणकी आवश्यकताको मानने लगा है। मुक्त व्यापारका कट्टर समर्थक इंग्लैण्ड भी पहले महायुद्धके बाद संरक्षणकी नीतिको धीरे धीरे अपनाने लगा और गत १९३२ में इम्पोर्ट ड्यूटीज ऐक्ट पास करके उसने स्पष्ट रूपसे मुक्त व्यापारकी नीति छोड़ दी। परन्तु उसके बजाय उसने एक नई नीति निकाली है जिसमें साम्राज्यके भीतरी देशों द्वारा एक-दूसरेको तरजीह देनेकी बात कही गई है। इसे इम्पीरियल प्रिफरेंस कहा जाता है। इसमें दलील यह दी जाती है कि हम भले ही ब्रिटिश साम्राज्यके बाहरके देशोंके माल पर संरक्षणकी भारी जकात लगायें परन्तु साम्राज्यके भीतर एक-दूसरेके साथ मुक्त व्यापार करें और यदि संरक्षणकी जकात लगायें भी तो दूसरे देशोंकी अपेक्षा साम्राज्यके अंगभूत देशोंके माल पर कम जकात लगायें। इसमें साम्राज्यको स्वयंपूर्ण बनानेका विचार समाया हुआ है। लेकिन एक राष्ट्रको स्वयंपूर्ण बनानेमें जो राजनीतिक सुरक्षितताका ध्येय है वह साम्राज्यको स्वयंपूर्ण बनानेमें सिद्ध हो नहीं सकता, क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य तो दुनियाके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक फैला हुआ है। मान लीजिये कि इंग्लैण्ड अथवा हिन्दुस्तान कुछ खास चीजोंके लिए कनाडा पर निर्भर करता हो तो युद्धके समय जब समुद्री मार्ग अरक्षित हो जाय तब कनाडासे माल लाना भी कठिन हो जायगा। साम्राज्यके अंगभूत देशोंको तरजीह देनेमें एक और दोष भी है। मान लीजिये कि हमें अपने यहांके कुछ खास उद्योगोंको तो संरक्षण देना ही है। लेकिन संरक्षणकी जकात लगाते समय हम जापानकी अपेक्षा आस्ट्रेलियाके साथ पक्षपात करते हैं। एक ही जातिके जापानी माल पर हम अधिक कर लगाते हैं और उसी तरहके आस्ट्रेलियाके माल पर कम कर लगाते हैं। यदि हिन्दुस्तानमें उस मालके भाव जापानके माल पर लगाये हुए भारी करके हिसाबसे तय किये जायं तो हिन्दुस्तानके खरीदारोंको उतना ज्यादा बोझा उठाना पड़ेगा। उसका लाभ या तो हिन्दुस्तानके उत्पादकों या व्यापारियोंको मिलेगा अथवा आस्ट्रेलियाके व्यापारियोंको मिलेगा लेकिन हिन्दुस्तानकी सरकारको यानी हिन्दुस्तानके कर देनेवाले सामान्य लोगोंको उस मालके खरीदारोंके रूपमें अपने पर पड़े हुए बोझके बदलेमें जो लाभ मिलना चाहिये वह नहीं मिलेगा।

१७ इसके सिवा साम्राज्यके अंगभूत देशोंके साथ पक्षपात करनेमें व्यर्थ ही दूसरे देशोंके साथ शत्रुता होती है। मान लीजिये कि कनाडा या

आस्ट्रेलियाकी अपेक्षा अमेरिका जर्मनी या जापानके साथ व्यापारिक संबंध रखनेमें हमें ज्यादा लाभ हो तो भी इस शर्तके कारण हम यह लाभ नहीं उठा सकते। ऐसा होते हुए भी ब्रिटिश शासन-कालमें सन् १९३२ में साम्राज्यके देशोंने मिलकर कनाडाके मुख्य शहर ओटावामें परस्पर करार (ओटावा पैक्ट) किये। उनमें भारतको भी सम्मिलित माना गया और तत्कालीन केन्द्रीय धारासभा द्वारा अल्प बहुमतसे उन करारोंको स्वीकार भी कराया गया। नवम्बर १९३६ में उन करारोंका अन्त आ गया था। अब हम स्वतन्त्र हो गये हैं इसलिए हम अपनी इच्छानुसार करार करके किसी भी देशके साथ व्यापार कर सकते हैं।

संरक्षणके प्रकार

१८ अब हम यह देखें कि किसी भी देशमें विकसित हो रहे उद्योगोंको संरक्षण देना हो तो वह किस तरह दिया जा सकता है (१) विदेशी माल पर आयात-कर (जकात) लगाकर विदेशी मालको देशी मालसे महंगा बनाना (२) देशी मालके कारखानोंको मदद देकर देशी मालको विदेशी मालसे सस्ता बनाना (३) विदेशी माल पर आयात-कर लगाना और देशी मालकी सहायता करना — इस प्रकार दोनों रूपोंमें संरक्षण देना। संरक्षणके इन प्रकारोंकी हम संक्षेपमें यहां चर्चा करेंगे।

विदेशी माल पर आयात-कर लगाकर देशके उद्योगोंको संरक्षण देनेसे अन्य देशोंके साथ कर-युद्ध चलेगा और युद्ध होगा। दूसरे देश हमारे माल पर आयात-कर लगायेंगे और देशमें ऐसा माल महंगा बिकेगा। अतः कुछ लोगोंका कहना है कि ऐसा माल उपयोगमें लेनेवालोंको नुकसान होगा।

देशी मालको आर्थिक सहायता देकर संरक्षण प्रदान करनेसे देशके भीतर ही झगड़े बढ़ेंगे, अनुचित प्रतिस्पर्धा होगी और कुछ लोगोंको तो ऐसा भी डर है कि उत्पादक नफा होने पर भी झूठा शोरगुल मचाकर या झूठे बहीखाते दिखाकर कहेंगे कि उन्हें माल तैयार करनेमें नुकसान होता है।

ऐसी स्थितिमें किसे मदद दी जाय और किसे न दी जाय यह प्रश्न खड़ा होता है। कोई उत्पादक कहे कि उसे मालके उत्पादनमें घाटा आता है, तो इन बातोंकी जांच करानी पड़ेगी। और इस तरह जांच करानेका खर्च बहुत बढ़ जायगा। यह खर्च और सहायताकी रकम राज्यको खजानेसे देना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि उतनी रकम जनताके हितके लिए खर्च करनेको नहीं मिलेगी। संरक्षणकी रीतियोंके विरुद्ध ये महत्त्वपूर्ण आपत्तियां हैं। किसी भी प्रकारसे संरक्षण देनेमें कठिनाइयां तो हैं ही। फिर भी उचित

विचार करके देशी मालका संरक्षण किया जाना चाहिए। यह बात परिस्थिति पर निर्भर करती है कि ऊपर बताई गई रीतियोंमें से संरक्षणकी कौनसी रीति अपनाई जाय। यदि देश अन्य देशोंके सामने टिका रहनेमें समर्थ हो तो विदेशी माल पर आयात-कर लगाना सबसे अच्छा बात होगा। इसमें खर्च कम आयगा। केवल चोरी रोकनेका ही खर्च होगा।

यदि देशमें यह शक्ति न हो तो उसे अपने उद्योगोंको आर्थिक सहायता देनी चाहिए और अपने उद्योगोंका विकास करना चाहिए। और जब जब देशी उद्योग स्वावलम्बी बनते जायं वैसे वैसे आर्थिक सहायता या संरक्षण कम करते जाना चाहिए।

मालका लादना (डम्पिंग)

१९ यहां इस बातका भी उल्लेख करना चाहिए कि अपने देशका व्यापार जमानेके लिए एक देश अपना बनाया हुआ माल दूसरे देशोंके बाजारों पर लाकर वहांके प्रचलित भावोंको गिरानेके लिए लागत कीमतसे भी सस्ता बेचता है। किसी देशमें उसकी जरूरतसे अधिक माल बनता हो और उस मालके लिए दूसरे देशोंके बाजार अधिकारमें करने हों तो उस देशकी सरकार उस मालके निर्यात पर कुछ खास मदद देती है जिससे परदेशमें वह माल सस्ता बेचा जा सके। परदेशके स्थानीय उद्योगको नष्ट करनेके हेतुसे उस देशके बाजारमें अपना माल लागतसे भी सस्ता बेचना उस देश पर मालका लादना या उस देशके साथ भावकी प्रतिस्पर्धा करना कहलाता है। उत्पादक या व्यापारिक कंपनी बहुत बड़ी हो तो सरकारकी मददके बिना भी थोड़े समय तक स्वयं हानि सहकर वह मालका डम्पिंग कर सकती है। उसके पास पर्याप्त रुपया होनेसे वह एकाध साल तक घाटा सह लेती है और परदेशके उद्योगको तोड़ देती है। इसके फलस्वरूप जब प्रतिस्पर्धा मिट जाती है तब वह अपने मालके भाव बढ़ाने लगती है और शुरूमें उठाया हुआ घाटा पूरा कर लेती है। माल लादनेका एक दूसरा प्रकार भी है। किसी उद्योगको बढ़ते उत्पादनका नियम लागू होता हो लेकिन अपने देशमें अमुक मात्रासे ज्यादा उसके मालकी खपत न हो सकती हो तो उत्पादक बढ़ते उत्पादनके नियमका लाभ उठानेके लिए माल तो अधिक मात्रामें बनाता है परन्तु अपने देशमें जितना माल खपता हो उतना ही बनाने पर जो उत्पादन-खर्च आये उसका हिसाब लगाकर उस भावसे अपने देशमें वह माल बेचता है और जो जरूरतसे ज्यादा माल बनाया हो उसे वह सस्ते भाव पर परदेशमें बेचता है। एक उदाहरण देकर हम यह बात स्पष्ट करेंगे। किसी चीजके ५ हजार नग

पन्न करनेमें प्रतिनग ४ रु० खर्च आता है। परन्तु इस उद्योगको बढ़ने उत्पादनका नियम लागू होनेसे उसके १० हजार नग तैयार किये जाय तो प्रतिनग ३ रु० खर्च आता है। अब उसको जरूरत तो ५ हजार नगकी ही है। फिर भी उत्पादक १० हजार नग बनाता है और उनका कुल लागत खर्च ३० हजार रुपये आता है। यह उत्पादक अपने देशमें तो ५ हजार नग ४ रुपये प्रतिनगकी दरसे ही बेचेगा और ऐसा करके वह २० हजार रुपये खड़े कर लेगा। इस तरह बाकीके ५ हजार नग उसे १० हजार रुपयेमें अर्थात प्रतिनग २ रुपयेके हिसाबसे पड़े। परदेशमें वह २॥ या २। रुपयेमें एक नग बेचे तो भी उसकी मूल लागत कीमत — प्रति नग रुपये — से यह भाव कम हुआ। इस तरह लागतसे कम भावमें अपना माल बेचकर भी परदेशके उद्योगको वह नष्ट कर सकता है। इस उदाहरणसे ऐसी विचित्र बात होती है कि जिस देशमें माल बनता है उस देशकी अपेक्षा परदेशमें वह बहुत सस्ता बिकता है।

व्यापारकी तुला और लेन-देनकी तुला

२० अन्तर राष्ट्रीय व्यापारके सिलसिलेमें एक महत्वकी बातका विवेचन करके हम यह प्रकरण पूरा करेंगे। यह बात व्यापारकी और लेन-देनकी तुलासे सम्बन्ध रखती है।

२१ कोई भी देश दूसरे देशोंके साथ लम्बे समय तक तभी व्यापार कर सकता है जब वह जितनी कीमतका माल आयात करे उतनी ही कीमतका माल निर्यात कर सके। क्योंकि निर्यातसे अधिक जितना माल वह आयात करेगा उतनेकी कीमत उसे सोना चांदीके रूपमें देशसे बाहर भेजनी पड़ेगी। जितना अधिक माल वह आयात करेगा उतना अधिक सोना चांदी उसे बाहर भेजना पड़ेगा। हमेशा इस तरह करते रहनेके लिए शायद ही किसी देशके पास पर्याप्त सोना चांदी होता है। इसलिए प्रत्येक देश अपने आयात और निर्यातको हमेशा सतुलित रखनेकी कोशिश करता है और इस तरह अन्तर राष्ट्रीय व्यापार विस्तृत स्वरूपमें वस्तु विनिमयका रूप ले लेता है। आयात किये हुए मालकी कीमत हर देश निर्यात किये हुए मालके रूपमें चुकाता है।

२२ फिर भी किसी देशका निर्यात आयातसे अधिक हो तो उस देशके लोग खुश होते हैं और ऐसा मानते हैं कि हमने जितना अधिक माल निर्यात किया उतना हमारे देशका धन बढ़ा। जिस देशका निर्यात आयातसे अधिक हो उस देशके व्यापारकी तुला उसकी ओर झुकी हुई मानी जाती है और यह कहा जाता है कि व्यापारकी तुला उस देशके अनुकूल है। यदि निर्यातसे आयात अधिक हो तो कहा जाता है कि व्यापारकी तुला उसके प्रतिकूल है।

२३ लेकिन आयात निर्यातके जो सरकारी आंकड़े प्रकाशित होते हैं उन परसे यह कहनेमें भूल हो सकती है कि व्यापारकी तुला किसी देशके अनुकूल है या प्रतिकूल। विभिन्न देशोंके बीच माल और सेवाओंका जो लेन-देन होता है वह सबका सब सरकारी या सार्वजनिक आंकड़ोंमें दर्ज नहीं होता। ऐसी अनेक चीजोंका आयात निर्यात होता है जिनके आंकड़े कहीं भी दर्ज हुए नहीं मिलते। *जिस आयात निर्यातके आंकड़े दर्ज होते हैं उसे हम दृश्य या सार्वजनिक आयात निर्यात कहेंगे और जिसके आंकड़े दर्ज नहीं होते उसे हम अदृश्य या व्यक्तिगत आयात निर्यात कहेंगे।* किसी भी देशके बाहरकी दुनियाके साथ सम्पूर्ण व्यापार और लेन-देनका पूरा आंकड़ा निकालना हो, तो सार्वजनिक और व्यक्तिगत दोनों ही प्रकारका आयात निर्यात हिसाबमें लेना होगा।

२४ आन्तरराष्ट्रीय लेन-देनके पूरे हिसाबमें सामान्यतः नीचे लिखी बातें शामिल की जाती हैं :

(१) मालका आयात निर्यात (२) द्रव्य अर्थात् सोने चांदीका आयात निर्यात (३) एक देश द्वारा दूसरे देशको व्यापारके सम्बन्धमें दी हुई सेवाएं अथवा किये हुए काम, जैसे स्टीमरोंका भाड़ा, बीमा-खर्च, बैंकोंका ब्याजबट्टा और विनिमय-दर (४) एक देशने दूसरे देशको पैसा उधार दिया हो तो उसका ब्याज (५) दूसरे देशमें कोई पूंजी लगाई हो तो उसका नफा (६) दूसरे देशमें रहनेवाले दूतावास पर होनेवाला खर्च (७) पराजित राष्ट्रकी ओरसे विजेता राष्ट्रको दिया जानेवाला दंड (८) परदेशमें नौकरी या व्यापार धंधेके लिए गये हुए लोग वहांसे जो धन कमाकर लायें वह धन या वहीं रहते हों तो अपने सगे-सम्बन्धियोंको वे जो पैसा भेजते हों वह पैसा (९) एक देशके यात्री दूसरे देशमें जाकर जो पैसा खर्च करते हैं वह पैसा (१०) परदेशमें पढ़ने गये हुए विद्यार्थी दूसरे देशमें जो खर्च करें वह पैसा और (११) एक देश दूसरे देशको शिक्षा, कष्ट-निवारण, धर्मप्रचार या ऐसे ही दूसरे कामोंमें मदद करनेके लिए जो पैसा भेजता है वह पैसा।

२५ ऊपरकी सूचीमें दिये गये कुछ विषयोंके आंकड़े सरकारी दफ्तरोंसे मिल सकते हैं और कुछ नहीं मिल सकते। लेकिन इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि सिर्फ मालके आयात निर्यातके अंतर परसे यह कहना ठीक नहीं कि एक देशसे दूसरे देशमें कम या अधिक धन जाता है। यह हिसाब सिर्फ व्यापारकी तुला परसे नहीं परन्तु ऊपरकी सूचीमें बताये हुए सारे लेन-देनकी तुला परसे लगाया जाना चाहिये। इंग्लैण्डको दृश्य या

सार्वजनिक व्यापार-तुला देखें तो उसका निर्यात आयातसे बहुत कम होता है अर्थात् व्यापार-तुला उसके विरुद्ध है। फिर भी दूसरा विश्वयुद्ध शुरू होनेसे पहले वह देनदार नहीं बल्कि लेनदार देश था। क्योंकि उसकी सार्वजनिक आंकड़ोंमें दर्ज न होनेवाली आय बहुत अधिक थी। देश विदेशमें उसके बैंक और बीमा कंपनियां थीं जिनका नफा उसे मिलता था। इसके अलावा उसने परदेशोंमें खूब पैसा उधार दे रखा था और पूंजी भी लगा रखी थी जिसका ब्याज और नफा उसे मिलता था। और उसकी बड़ीसे बड़ी आय तो उसके जहाजोंके किरायेकी थी। इसलिए आयातसे कम माल निर्यात करने पर भी लेनदेनकी तुला उसके अनुकूल रहती थी और प्रतिवर्ष अधिक धन इंग्लैण्डमें खिंचकर चला आता था।

१८

व्यापार-सम्बन्धी लेन देनका निपटारा

१ देशके भीतरी और बाहरी व्यापारके सम्बन्धमें द्रव्यका जो लेन-देन होता है वह किस तरहसे निपटाया जाता है इस विषयमें पिछले प्रकरणोंमें यहां वहां प्रसंगवश उल्लेख किया गया है। फिर भी इस व्यवहारकी समग्र रूपमें कल्पना हो सके इसके लिए थोड़ा-बहुत पुनरुक्तिका दोष करके भी उसका एक साथ सम्बद्ध वर्णन इस प्रकरणमें कर देना उचित समझा गया है।

२ भिन्न भिन्न स्थानोंके बीच होनेवाले मालके लेन-देनका निपटारा सराफों और बैंकों द्वारा होता है यह पहले कहा जा चुका है। यह काम वे लोग पैसा ले या देकर नहीं करते परन्तु हुंडियोंके द्वारा करते हैं यह भी हम जानते हैं। जिस आदमीको दूसरी जगह पैसा भेजना होता है वह पैसा लेकर अपने सराफके पास या अपने बैंकमें जाता है। सराफ वह पैसा लेता है और जिस जगह पैसा भेजना हो वहांके जिस सराफके साथ उसका खाता चलता है उसके नाम पर हुंडी लिखकर उस आदमीको देता है। इस हुंडीमें जिस आदमीको पैसा देना हो उसका नाम बताया जाता है और लिखा जाता है कि यह आदमी या इसकी तरफसे जो आदमी हो उसे दिये उतने पैसे दे दीजिए। बैंकके पास हम जायें तो वह अपनी शाखा पर या दूसरे बैंक पर हुंडी लिख देता है। एक बैंककी दूसरे बैंक पर लिखी हुई हुंडियोंको ड्राफ्ट कहते हैं।

देशके भीतरका लेन देन

३ देशके भीतर ही अगर कहीं मालका लेन-देन हुआ हो तो उससे सम्बन्धित लेन-देनका निपटारा भी ऐसी हुंडियों द्वारा होता है। मान लीजिये कि अहमदाबादकी एक व्यापारिक पेढ़ीको कलकत्तेकी एक व्यापारिक पेढ़ीको माल भेजना है। अब हम देखें कि इसका पैसा किस तरह चुकाया जाता है। या तो कलकत्तेका व्यापारी मालके कलकत्ता स्टेशन पर पहुंचते ही तुरन्त अहमदाबादके व्यापारीके पास पैसा भेज दे या पहलेसे ही अहमदाबादके व्यापारीके यहां अपनी रकम जमा रखकर मालके रेलमें चढ़ते ही उसकी रकम नाम लिखवा दे। अथवा अहमदाबादका व्यापारी कलकत्तेके व्यापारीके यहां हिसाब रखता हो तो मालके अहमदाबादसे रवाना होते ही या कलकत्ते पहुंचते ही कलकत्तेका व्यापारी अहमदाबादके व्यापारीके खातेमें मालकी कीमतकी रकम जमा करे। परन्तु इस तरहसे मालकी कीमत देने या वसूल करनेका मौका बहुत कम आता है। अधिक प्रचलित रीति तो यह है कि मालको रेलमें चढ़ानेकी रसीद और मालकी कीमतकी माल खरीदनेवाले व्यापारी पर लिखी गई हुंडी अहमदाबादका व्यापारी अपने कलकत्तेके आढतियेका सराफको या अपनी तरफसे काम करनेवाले कलकत्तेके बैंकको भेज देता है। यह आढतिया सराफ या बैंक माल खरीदनेवाले उस व्यापारीको खबर देता है और वह व्यापारी हुंडीको स्वीकार करके या तो नकद पैसा देता है या अपना खाता चलता हो तो उसमें नाम लिखा देता है और रेलवे रसीद लेकर उसकी मददसे माल छुड़ा लेता है।

४ अब एक और क्रिया बाकी रहती है। इस तरह कलकत्तेके माल खरीदनेवाले व्यापारीसे जो पैसा वसूल हुआ उसे अहमदाबादके व्यापारीके पास पहुंचानेका काम रह जाता है। इसके लिए कलकत्तेका सराफ या बैंक अपनी अहमदाबादकी शाखा पर या अहमदाबादमें जिस सराफ या बैंकके साथ उसका हुंडापनीका खाता चलता हो उस सराफ या बैंक पर उतने रुपयेकी हुंडी लिखकर अहमदाबादके व्यापारीके पास भेज देता है। अहमदाबादका व्यापारी इस हुंडीको भुनवा कर या तो उसका नकद पैसा ले लेता है अथवा इस हुंडीको अपने सराफके यहां या अपने बैंकमें अपने खातेमें जमा करा देता है।

५ कलकत्तेसे अहमदाबाद माल आया हो तो भी ऊपर बताई हुई विधि ही होती है। अन्तमें कुल मिलाकर परिणाम यह आता है कि सराफोंके यहां या बैंकोंमें आमने-सामने जमा-नामे लिखी गई रकमें अधिकतर बराबर हो जाती

ह और वास्तवमें नकद पैसा अहमदाबादसे कलकत्ता और कलकत्तेसे अहमदाबाद भेजना नहीं पड़ता। मालके बदलेमें मालका आना जाना होना रहता है और नकद पैसा भेजे बिना आमने-सामने कीमत बराबर हो जाती है। सराफोंके यहाँ और बैंकोंके तथा व्यापारियोंके यहाँ जमा-नामेके हवाले डाल जाते ह और हवाला गृह (क्लिअरिंग हाउस) का थोड़ासा कामकाज करना पड़ता है। दो स्थानोंके बीच आमने-सामने आने-जानेवाले मालकी कीमतमें अन्तमें कुछ मिलाकर जितना फर्क रहता है उतना ही पैसा वास्तवमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजना रह जाता है।

६ हालमें ही ऐसी प्रथा शुरू हुई है कि अहमदाबादकी व्यापारी पेढ़ी रेलवे रसीद और मालकी कीमतकी हुंडी अहमदाबादके ही बैंकको जिसकी शाखा कलकत्तेमें भी काम करती हो थोड़ासा कमीशन चुकाकर बेच देती है और अहमदाबादके बैंकसे पैसा तुरन्त ले लेती है। अहमदाबादका बैंक अपनी कलकत्तेकी शाखाको वह रेलवे रसीद और हुंडी भेज देता है और कलकत्तेके व्यापारीसे पैसा वसूल करके उसे रेलवे रसीद सौंप देता है। यह व्यवहार ऐसा ही है जैसा कि हम आगे विदेशी व्यापारके सम्बन्धमें होनेवाले विनिमय-पत्रों (बिल्स आफ एक्सचेंज) का व्यवहार देखेंगे। विनिमय-पत्रमें रसीद और हुंडीके सिवा मालका ब्यौरा और कीमतका बीजक भी होता है। किन्तु व्यापारियों और सराफोंके बनिस्बत देशके भीतरके सराफ और व्यापारी एक-दूसरेको अधिक जानते ह इसलिए उन्हें ऐसे बीजकवाले विनिमय-पत्रकी जरूरत नहीं मालूम होती। मानो हुंडी पर्याप्त रूपमें सुरक्षित मानी जाती है। बैंक देशके भीतरके ऐसे विनिमय-पत्रोंका कामकाज करनेमें बैंकोंको बहुत दिलचस्पी नहीं होती। इसका कारण यह है कि जहाँ परदेशी विनिमय-पत्रोंकी अवधि सामान्यतः तीन महीनेकी होती है वहाँ देशके भीतर तो एक जगहसे दूसरी जगह मालके पहुँचनेमें छह-सात दिनसे ज्यादा नहीं लगते। इसलिए इतने थोड़े समयके विनिमय-पत्रोंमें पैसा रोकनेमें बैंकोंको कामकाज जितना करना है उतना उन्हें लाभ नहीं होता। विदेशी विनिमय-पत्र मुद्दतमें अधिक लम्बे समय तक पड़े रहते ह फिर भी उनकी अवधि अनिश्चित न होनेसे पैसेका विश्वसनीय व्यवहारमें लगानेके लिए बैंक इस बहुत अच्छा साधन मानते ह। इसके सिवा विनिमय-पत्रोंकी खरीद बिक्रीका व्यापार होता है और वे कई हाथोंमें से निकलते ह इसलिए उनमें बैंकोंको अच्छा लाभ मिल जाता है।

७ देशके भीतरके विनिमय-पत्रोंके बनिस्बत विदेशके विनिमय-पत्र अधिक लम्बी अवधिके होते हैं। इसके सिवा, विदेशी व्यापार-सम्बन्धी

लेन-देनमें एक बड़ा अन्तर यह होता है कि इनका दायरा ज्यादा अलग अलग होता है और अकसर माल खरीदनेवाले व्यापारीका माल भेजनेवाले व्यापारीसे परिचय नहीं होता। यह भी एक बात है कि विदेशी लेन-देनकी बातचीत अक्सर बैंक आदिके मार्फत होती है। इन दो भेदोंके सिवा विदेशोंके साथ होनेवाले लेन-देनके निपटारेकी रीति तकरीबन वही होती है जो देशके भीतर लेन-देनकी होती है।

विदेशोंके साथ होनेवाला लेन-देन

८ विदेशोंके साथके लेन-देनके निपटारेका सारा व्यवहार समझनेके लिए आरम्भ हम एक सादा उदाहरण लेंगे। मान लीजिये कि बम्बईके माधवजीभाई लन्दनके लॉरेंस नामक व्यापारीको रुईकी सौ गाँठें सौ रुपये प्रतिगाँठके भावसे बेचते हैं और उन लॉरेंससे १० हजार रुपये लेने हैं। अब हम यह मानें कि लन्दनके डविड नामक व्यापारीने बम्बईके चतुर्भुजको कपड़े कुछ थान बेचे हैं जिनकी कुल कीमत ७५० पौंड होती है। प्रति रुपया १८ पैंसकी चालू विनिमय-दरसे दस हजार रुपये पूरे ७५० पौण्डके बराबर हुए। लन्दनका लॉरेंस बम्बईके माधवजीभाईको १० हजार रुपये देनेके लिए ७५० पौंड भेजे और बम्बईका चतुर्भुज १० हजार रुपयेके ७५० पौण्ड लन्दनके डविडको भेजे तो पैसेकी दुगुनी आवा-जाई हो। इसके बजाय बम्बईका चतुर्भुज बम्बईके ही माधवजीभाईको १० हजार रुपया दे दे और लन्दनका लॉरेंस लन्दनके डविडको ७५० पौंड दे दे तो रुपये या पौण्ड भेजे बिना एक-दूसरेके लेन-देनका निपटारा हो जाता है। लेकिन बम्बईका चतुर्भुज यह कैसे जाने कि उसीके शहरके माधवजीभाईको लन्दनके व्यापारीसे रुपये लेने हैं और लन्दनका लॉरेंस भी यह कैसे जाने कि उसीके शहरके डविडको बम्बईके व्यापारीसे पौंड लेने हैं। इस तरह यह प्रश्न खड़ा होता है कि दोनों व्यापारियोंको इकट्ठा कैसे किया जाय और उनका मेल कैसे बैठाया जाय। इसके सिवा इस कल्पित उदाहरणमें तो हमने एक-दूसरेको समान रकम देनेकी ही कल्पना की है परन्तु सब सौदे थोड़े ही एकसी रकमके होते हैं। फिर सब उदाहरणोंमें पैसे चुकानेकी अवधि भी समान नहीं होती और सब व्यापारी भी तो एकसी साखवाले नहीं होते। ये सब कठिनाइयाँ विनिमय (एक्सचेंज) का काम करनेवाली पेढ़ियों और बैंकोंके द्वारा दूर हो सकती हैं। बम्बईका माधवजीभाई बम्बईके विनिमय-बैंकमें जाता है और अपने निर्यात किये हुए मालसे सम्बन्धित कागजात—अर्थात् जहाजमें माल चढ़ानेकी रसीद, मालकी तफसील और कीमतका बीजक तथा लन्दनके लॉरेंसके नाम लिखी १० हजार रुपयेकी हुंडी—बम्बईके विनिमय बैंकको बेच देता है और

उससे रुपये ले लेता है। बम्बईका बैंक अपनी लन्दनकी शाखा या मुख्य दफ्तरको वे कागजात भेज देता है और वहाँका बैंक लन्दनके लॉरेंससे उन कागजोंमें से हुंडीका पैसा पौण्ड रुपमें वसूल करके सारे कागजात उसे सौंप देता है। उनके आधार पर लन्दनका व्यापारी जहाजी कंपनीसे माल छुड़ा सकता है। इस तरह हुंडीका पैसा वसूल होने ही लन्दनका बैंक अपनी बम्बईकी शाखाको सूचना कर देता है। इसी तरह लन्दनका व्यापारी डेविड अपने निर्यात किये हुए मालके कागजात बनाकर लन्दनके बैंकको बेच डालता है। लन्दनका बैंक अपनी बम्बईकी शाखाको ये कागजात भेज देता है और बम्बईका बैंक बम्बईके चतुर्भुजसे पैसे वसूल करके उसे कागजात सौंप देता है।

९ इस सारे व्यवहारमें एक बात और होती है। मान लीजिये कि लन्दनकी कपड़ेके थान बेचनेवाला व्यापारी डेविड अपने हाथमें पैसे आये बिना जहाज पर माल चढ़ानेको तैयार नहीं होता। तब वह अपने मालका बिल बनाकर थान खरीदनेवाले बम्बईके चतुर्भुजको भेज देता है और चतुर्भुज बम्बईके विनिमय-बैंकमें जाकर उस बिलकी रकमके बराबर कीमतकी दर्शनी हुंडी (डिमाण्ड ड्राफ्ट) खरीदता है और उसे डाकसे या तारसे डेविडको भेज देता है। और डेविड लन्दनके बैंकमें जाकर उसे दिखाता है और पैसे वसूल करनेके बाद माल जहाज पर चढ़ाता है। इस तरह पैसा डाकसे हुंडीके जरिये भेजा जाता है तब उसे डिमाण्ड ड्राफ्ट या डी० डी० कहा जाता है और यदि तारसे भेजा जाता है तो उसे टेलिग्राफिक ट्रान्सफर या टी० टी० कहा जाता है। इस तरह आयात निर्यातके लेन देनका निबटारा विनिमय-पत्रों द्वारा दर्शनी हुंडी (डिमाण्ड ड्राफ्ट) द्वारा या तार अर्थात् टेलिग्राफिक ट्रान्सफर द्वारा किया जाता है।

विनिमय-पत्रोंका भाव

१० अब यह प्रश्न खड़ा होता है कि आयात निर्यात सम्बन्धित ये अलग अलग तरहके कागजात खरीदने-बेचनेका काम जो बैंक करते हैं वे किस भावसे इन्हें खरीदते हैं और बेचते हैं? ये कागजात खरीदते-बेचते समय बैंक नीचे लिखी बातोंका हिसाब लगाते हैं (१) एक देशसे दूसरे देशमें सोना भेजना हो पड़े तो भेजनेका खर्च कितना आता है? (२) हुंडीकी अवधि कब पूरी होती है? (३) जहाँ बैंक पैसे लेता है वहाँ और जहाँ पैसे वसूल करने हों वहाँ ब्याजकी चालू दर क्या है? और (४) आयात और निर्यातके कागजातकी पूर्ति और माँग बाजारमें कितनी है

११ यदि दो देशोंके बीच आयात और निर्यातका व्यापार समान कीमतका हो तो जितना पैसा परदेश भेजना होता है उतना ही पैसा परदेशसे लाना होता है। ऐसे मामलेमें लेन-देनका सारा निपटारा विनिमय-पत्रोंके जरिये ही पूरा हो जाता है। एक देशसे दूसरे देशमें नकद पैसा भेजना ही नहीं पड़ता। विनिमय-पत्रोंकी पूर्ति और मांग बराबर होती है इसलिए विनिमय-पत्र जितनी रकमके होते हैं उसी मूल्यमें वे बिकते हैं। बैंक सिर्फ विनिमय-पत्र खरीदकर पैसा देने समय विनिमय-पत्रकी अवधि पूरी होने तकका ब्याज काट लेता है और पैसा वसूल करनेकी अपनी मेहनतके बदलेमें कुछ फीस लेता है। विनिमय-पत्रका एक भावका संतुलित भाव कहते हैं। लेकिन मान लीजिये कि देशमें से जितना माल निर्यात हुआ है उससे अधिक माल देशमें आयात हुआ है। तब इतना तो निश्चित है कि किसी भी आयात-व्यापारीको इन दोनोंके फर्ककी रकम नकद पैसेके रूपमें परदेश भेजनी होगी। लेकिन परदेशमें पैसा भेजना खर्चीला और झंझटका काम है। *परिवहन करना पड़ता है बीमा कराना पड़ता है* इस तरह कई झंझटें करनी पड़ती हैं। इसलिए हर व्यापारी ऐसे मौकेको टालता है। बैंकवाले आयात निर्यातके कामकाज व्यापार रूपसे हमेशा अच्छी तरह परिचित रहते हैं। इसलिए बैंक आयात-व्यापारियोंको अपने पासके विनिमय-पत्र बेचते समय विनिमय-पत्रकी रकमसे कुछ अधिक रकम चढ़ा कर बेचते हैं। इस विनिमय-पत्रके लिए बट्टा या कमीशन चुकाना कहा जाता है। लेकिन इस कमीशनकी एक सीमा होती है। आयात-व्यापारी इसीलिए विनिमय-पत्र खरीदनेको तैयार होता है कि ऐसा करनेसे नकद पैसा भेजनेकी अपेक्षा उसे कम खर्च पड़ता है। कमीशनकी रकम नकद पैसा भेजनेके खर्चसे हमेशा कम ही होती है। यदि अधिक कमीशन मांगा जाय तो व्यापारी नकद पैसा ही भेजना पसन्द करेगा।

१२ अब ऐसा मान लीजिये कि आयातसे अधिक माल देशसे निर्यात हुआ है और देशमें अधिक पैसा आनेवाला है। निर्यात करनेवाले व्यापारी अपने निर्यातके विनिमय-पत्र बैंकके पास बेचने जायंगे उस समय बैंक विनिमय-पत्रोंमें लिखी हुई रकमसे कुछ कम रकम निर्यात करनेवाले व्यापारीको देंगे। निर्यात व्यापारियोंको इतना घाटा सहना पड़ेगा। लेकिन घाटेकी यह रकम नकद पैसा मंगानेके खर्चसे तो कम ही रहेगी, क्योंकि घाटा यदि उससे अधिक हो तब तो निर्यात-व्यापारी विदेशसे नकद पैसा मंगाना ही पसन्द करेगा।

१३ अलग अलग देशोंका चलन अलग अलग होनेके कारण इस तरहके लेन देनमें कुछ और प्रश्न भी पैदा होते हैं। हिन्दुस्तान और इंग्लैण्डके चलन भिन्न अवश्य हैं लेकिन रुपये और पौण्डका भाव या इन दोनोंके बीचके विनिमयकी दर कानूनसे निश्चित की हुई है। पहले कुछ बरसों तक १६ पेंसकी एक रुपयेकी दर जारी रही। सन १९२७ से १८ पेंसकी एक रुपयेकी दर कानून द्वारा निश्चित कर दी गई। इसलिए यहाँके विनिमयके सम्बन्धमें विनिमय पत्रोंके भावमें खास अन्तर नहीं पड़ता। इसी तरह जहाँ दो देशोंमें शुद्ध सोनेका चलन हो यानी चलनके सिक्के बदलेमें समान निश्चित भावसे शुद्ध सोना मिल सकता हो वहाँ भी विनिमयकी दरोंमें बहुत उथल-पुथल नहीं होती। प्रथम महायुद्धके पहले इंग्लैण्डके एक पौण्डका ११३ ग्रेन शुद्ध सोना मिल सकता था। इसी तरह अमरिकाके डालरका २३ २२ ग्रेन शुद्ध सोना मिल सकता था। इसलिए एक पौंडके ४ ८६ डालर होते थे। पौण्ड और डालरके इस भावको टकसाली भाव (मिण्टपार एक्सचेंज) कहा जाता था। फ्रांसमें जब शुद्ध सोनेका चलन था तब एक पौण्डका टकसाली भाव २५ २२ फ्रैंकके हिसाबसे निश्चित होता था।

१४ इंग्लैण्डसे अमरीका या अमरीकासे इंग्लैण्ड सोना भेजना हो तो पैकिंग जहाजका किराया बीमा-खर्च ब्याज-बट्टा सब मिलाकर १ पौंड भेजनेका खर्च ०३ डालर आता है। इसलिए इंग्लैण्डके जिस आयात-व्यापारीको अमरीका रकम भेजना होता है वह अमरीकाके विनिमय-पत्र खरीदते समय कभी ४ ८३ डालर प्रति पौंडसे अधिक भाव देगा ही नहीं। क्योंकि विनिमय-पत्र इससे महँगा मिलता हो तो वह विनिमय-पत्र खरीदनेके बजाय पौण्डमें रकम भेजनेके लिए ०३ डालर प्रति पौंड खर्चनेको तैयार हो जायगा। इसी तरह इंग्लैण्डके जिस निर्यात-व्यापारीको अमरीकासे पैसा लेना है वह अपना विनिमय-पत्र ४ ८० डालर प्रति पौंडसे सस्ता नहीं बेचेगा। क्योंकि इससे कम भाव लेनेकी अपेक्षा अमरीकासे डालर मँगवानेमें उसे लाभ है। विनिमय-पत्रोंकी खरीद बिक्रीके भावके ये दो सिरे सोना या पौण्ड या डालर भेजनेमें होनेवाले खर्चकी मर्यादासे निर्धारित होते हैं। अंग्रेजीमें इन दो सिरोंको गोल्ड अथवा स्पीशी पाइंट कहते हैं। जब मालका आयात अधिक किया गया हो और अधिक रुपया अमरीका भेजना हो तब पौण्डका भाव ४ ८ डालर तक उतरता है और उसे सुवर्ण निर्यातका सिरा कहा जाता है। और जब अमरीकासे अधिक पैसा इंग्लैण्ड लाना हो तब पौंडका भाव ४ ८९ डालर तक चढ़ता है और उस

सुवर्ण-आयातका सिरा कहा जाता है। हमारे देशमें विनिमयकी मर्यादाके दो सिरे १८ ३/१६ पैंस और १७ ४९/६४ पैंस प्रति रुपयेके हिसाबसे रखे हैं।

१५ डालर और पौण्डके तुलनात्मक भावको क्रास रेट कहा जाता है। दोनों देशोंके आयात और निर्यात व्यापारकी मात्रामें होनेवाले फेरबदलके कारण यह क्रास रेट समय समय पर बदलता रहता है। लन्दनमें बेचने वालोंके लिए एक और खरीदनेवालोंके लिए दूसरा क्रास रेट तथा न्यूयार्कमें बेचनेवालोंके लिए एक और खरीदनेवालोंके लिए दूसरा क्रास रेट अखबारोंमें रोज छपता है। बम्बई और लन्दन तथा बम्बई और न्यूयार्कके रुपये और पौंडके बीचके अमुक पैंसका एक रुपयेके हिसाबसे और रुपये तथा डालरके बीचके सौ डालरके अमुक रुपयेके हिसाबसे क्रास रेट अखबारोंमें रोज छपते हैं। इनमें समय समय पर जो अन्तर पड़ता है वह अमुक दशांश या बहुत छोटे अपूर्णांकके बराबर ही होता है।

१६ विनिमय-पत्रोंके भावमें इस कारणसे भी फर्क पड़ता है कि उनका पैसा तुरन्त चुकाया जानेवाला है या देरसे। टेलिग्राफिक ट्रांसफरके भावोंको केबल रेट कहा जाता है। वे हमेशा ऊंचे होते हैं। जिन विनिमय-पत्रोंकी अवधि तीन महीनेमें पूरी होती हो उनके भाव नीचेसे नीचे होते हैं। दर्शनी हुंडी या कम अवधिकी हुंडियोंके भाव इन दोनोंके बीचमें रहते हैं।

चलनकी खरीद-शक्तिके आधार पर उसके मूल्यकी तुलना

१७ परन्तु आजकल तो किसी देशमें सोने या चांदीका चलन प्रचलित ही नहीं है। चलनी नोटोंके बदलेमें सरकार सोना या चांदी देनेके लिए वचनबद्ध नहीं होती। प्रत्येक देशकी सरकार पर प्रजाके विश्वासके आधार पर ही हर देशमें कागजी द्रव्य चलता है। ऐसी स्थितिमें एक देशके चलनकी दूसरे देशके चलनके साथ टकसाली भावसे अथवा सोने चांदीके बाजार भावसे तुलना करनेका प्रश्न ही नहीं रहता। ऐसी स्थितिमें अलग अलग देशोंके बीच लेन देनका निपटारा किस ढंगसे किया जाता है? एक देशसे खरीदे हुए मालके बदलेमें दूसरे देशको अंतमें तो नकद सोना या चांदी ही देनी पड़ती है। लेकिन खरीदके सौदे तो चालू चलनके मापसे ही करने पड़ते हैं। इसलिए क्या एक चलनकी दूसरे चलनके साथ तुलना करनेके लिए कोई माप है? अर्थशास्त्री हर देशके चलनकी खरीद शक्ति परसे इस तुलनाका माप निकालनेकी सूचना करते हैं और मित्रदेशोंके बीच इस तरहकी तुलना पद्धतिसे व्यवहार भी होता है। इस पद्धतिको चलनकी खरीद शक्तिकी तुलनाकी पद्धति (पर्चेज़िंग पावर परिटी) कहते हैं। मान लीजिये कि १०० रुपयेके नोटस हमारे देशमें

दस मन गेहूं खरीदे जा सकते हैं, इंग्लैण्डमें दस मन गेहूं खरीदनेके लिए ५ पौंडका नोट देना पड़ता है और अमरिकामें दस मन गेहूं खरीदनेके लिए २० डालरका नोट देना पड़ता है तो सौ रुपये, पांच पौण्ड और बीस डालर तीनोंको हम समान मूल्यके मान सकते हैं और इस आधार पर लेन-देनके निबटारेके लिए विनिमयकी दर निश्चित की जा सकती है। लेकिन इस तरह एक ही वस्तु खरीदनेकी शक्ति परसे चलनका मूल्य ठहराना ठीक नहीं माना जायगा। इसलिए हर देशकी खास खास चीजोंके भावकी सूचीसंख्याके आधार पर उस देशके चलनकी खरीद शक्तिको नापा जा सकता है। अलबत्ता भावकी सूचीसंख्या परसे तुलना करनेमें पूरी निश्चितता हमेशा नहीं रह सकती। क्योंकि सम्भव है अलग अलग देशों द्वारा अपने भावोंकी सूची संख्या निकालनेके लिए लिया हुआ आधारभूत वर्ष एक न हो; भावकी सूचीसंख्या निकालनेके लिए चुनी हुई चीजें भी अलग अलग हों और भावकी सूचीसंख्या निकालनेकी पद्धति भी भिन्न भिन्न देशोंकी भिन्न हो। ऐसी विषम परिस्थितिमें भी विनिमय-बैंक कई तरहके हिसाब लगाकर अलग अलग चलनोंके बीचके विनिमयकी दर निर्धारित करते हैं। लेकिन चलनका मूल्य निश्चित करनेके लिए कोई माप न मिलने पर भी दो देशोंमें मालका विनिमय करना ही हो, तो किसी मालकी अमुक देशकी जरूरतके आधार पर दोनों देशोंको शुद्ध वस्तु विनिमयके स्तर पर ही काम करना पड़ता है। अलग अलग देशोंके व्यापारियोंके प्रतिनिधि मण्डल आपसमें मिलकर और एक जगह बैठकर यह तय करते हैं कि एक देश अमुक माल दे बदलेमें दूसरा देश अमुक माल दे।

१८ आजकल पैसेके रूपमें मालकी कीमत लगाकर विभिन्न देशोंके बीच आयात निर्यातका व्यापार होता है। फिर भी अंतमें इस व्यापारका स्वरूप वस्तु विनिमयका ही हो जाता है। हम जिस मालका आयात करते हैं उसकी कीमत हम पैसा देकर नहीं चुकाते, बल्कि उस मालके बदलेमें दूसरा माल निर्यात करके चुकाते हैं। अथवा व्यापारके सिवा दूसरा लेन-देन हो तो उस हिसाबमें पकड़कर जमा-नाम बराबर करनेकी कोशिश करते हैं। परन्तु हर साल जमा-नाम बिल्कुल बराबर नहीं हो सकते, इसलिए जो रकम बाकी रहती है वह दूसरे सालको चुकानी पड़ती है।

१९

तेजी-मदीका चक्र और आर्थिक संकट

१ इस प्रकरणको किस भागमें रखा जाय यह एक प्रश्न है। हम इस प्रकरणमें देखेंगे कि एक खास निश्चित समयके क्रममें लगातार आनेवाले आर्थिक संकटोंका मूल और मुख्य कारण आजकलकी दोषपूर्ण उत्पादन-पद्धति है। इस तरह यह प्रकरण उत्पादन विभागमें जाना चाहिये। परन्तु इस दोष युक्त उत्पादन-पद्धतिको गलत बनानेवाली तो बकाकी व मुनिमिया ही है जो व आजकलकी सराफी और उधार-व्यवहारकी करामातसे कृत्रिम रूपमें द्रव्यकी मात्रा घटाने-बढानेके लिए करते है। इसलिए आवश्यक द्रव्य-व्यवहार और सराफीके बारेमें जाननेके पहले इस विषयकी चर्चा करना संभव नहीं था। इसलिए इस विभागके अंतमें यह प्रकरण जोड़ दिया गया है।

२ आजकलका अर्थतंत्र अत्यन्त अटपटा और पेचीदा हो गया है। लेकिन उसे कठिनाईके बिना चलानेकी शक्ति अभी तक मनुष्यने अपनेमें बढाई नहीं है। इसलिए यह तंत्र मनुष्यकी शक्ति और अंकुशके बाहरकी चीज बन गया है। यह एक बडी समस्या है कि एक-दूसरेके विरोधी स्वार्थ रखनेवाले भिन्न भिन्न वर्गों और राष्ट्रोंमें बटा हुआ मानव-समाज इस तरह दुनियाभरमें फैले हुए और अत्यन्त अस्पष्ट अर्थतंत्रको भविष्यमें सही-सलामत चला सकेगा या नहीं। सयाने लोग तो कहते है कि हमारे सारे अर्थ-व्यवहारको विकेन्द्रित बनाये बिना दुनियाको आर्थिक उत्पातोंके चक्रसे और समय-समय पर फूट निकलनेवाले युद्धोंकी आगसे बचानेका और कोई उपाय नहीं है।

उद्योग धंधोंका एक दूसरे पर असर

३ आजकलके उत्पादनमें अनगिनत चीजें उनके लिए माग होनेसे पहले ही माग पैदा करनेकी आशामें तयार की जाती है। मांगकी यह आशा दूर दूरके कई प्रदेशोंसे रखी जाती है। उसके लिए कल्पित ग्राहक भी तरह तरहके होते है। फैशन और रहन-सहनके ढंग आज ऐसे कल्पनामें भी न आ सके ऐसे मनमाने ढंगसे बदलते रहते है। भौगोलिक और औद्योगिक कार्य विभागका इस हद तक विकास किया गया है कि कई बार तो ऐसा देखा जाता है कि उपभागकी एक मामूली-सी चीजके बननेमें सारी दुनियाके उत्पादकोंका कुछ न कुछ हाथ रहता है। ऐसी व्यवस्थामें सारी शृंखलाकी एक कडी

भी कमजोर हो, तो पूरी शृंखलाकी शक्ति कम हो जाती है। जिस कच्चे मालके बिना या आधे तैयार किये हुए मालके बिना काम ही नहीं चल सकता, उसके लिए आजका समाज इतना ज्यादा एक-दूसरे पर निर्भर रहने लगा है कि उसका एकाध चक्र टूट जाय तो उसका असर दूर दूरके बहुत लोगों पर होता है। एकाध धंधा संकटमें आ पड़े तो उसका बुरा असर कई धंधों पर होता है। एक धंधेकी मंदी देखकर दूसरे धंधेवालोंके दिलमें भी मंदीका डर घुस जाता है और उनका रुख भी अपना कामकाज समेट लेनेकी ओर हो जाता है। इसका असर उस धंधेसे सम्बन्धित कच्चा माल पैदा करनेवालों पर, उसके लिए मशीनें बनानेवालों पर, यातायातका काम करनेवालों पर, मामूली मजदूरों और फुटकर दुकानदारों पर — इस तरह अनेक वर्गों पर होता है।

४ जैसे एकाध धंधेमें मंदी आने पर उसका असर दूसरे बहुतसे धंधों पर पड़ता है, वैसे ही एकाध धंधेमें तेजी आने पर उसका असर दूसरे कई धंधों पर पड़ता है। किसी भी एक चीजकी मांग बढ़ जाय तो उस चीजके बनानेमें जरूरी अन्य बहुतसी चीजोंकी मांग भी बढ़ जाती है। मान लीजिये कि कपड़ेकी मांग बढ़ जाय तो बनकरोंका धंधा तेजीसे चलता है, कातने-पीजनेवालोंको खूब काम मिलने लगता है। इतना ही नहीं, रूईकी आवश्यकता अधिक होनेसे कपासकी खेती भी बढ़ जाती है। और यंत्रोत्पादनमें कपड़ेकी मिलोंके लिए मशीनोंकी मांग बढ़ती है, मिलोंके लिए मकानोंकी मांग बढ़ती है, मजदूरोंके रहनेके मकानोंकी मांग बढ़ती है और मजदूरोंको अधिक रोजी मिलनेसे वे दूसरी कई चीजोंका भी अधिक मात्रामें उपयोग करते हैं। इस तरह कई धंधोंमें तेजी आती है।

उत्पादनका लंबा क्रम

५ आजकलके यंत्रोत्पादनका क्रम बहुत लम्बा है। इतना लम्बा है कि उसकी शृंखलाके एक सिरेकी कड़ियां घिसकर टूटनेको आ गई हों, तब यहां दूसरे सिरेकी कड़ियां तैयार होती हैं। हम कपड़ेके उत्पादनका ही उदाहरण लें। कपड़ेकी मांगके बढ़ते ही तुरन्त नया कपड़ा तैयार करके बाजारमें नहीं रखा जा सकता। इससे कपड़ेके भाव बढ़ते हैं। और कपड़ेके उद्योगमें बहुत नफा होते देखकर उद्योगपतियों और पूंजीपतियोंको इस उद्योगमें अपनी पूंजी लगानेकी प्रेरणा होती है। वे नई मिलें खड़ी करने लगते हैं। सब मिलें एकसाथ खड़ी नहीं हो सकतीं। कोई जल्दी बनती है, कोई देरसे बनती है। पुरानी मिलवालोंको तो सब लाभ होता ही रहता है और जो नये

जल्दी इस क्षेत्रमें आते हैं उन्हें भी अच्छा नफा मिलता है। नई मिलें खड़ी होने लगती हैं इसलिए उनकी मशीनें बनानेवाले भी अपने कारखाने बढ़ाने लगते हैं। इनमें भी पुरानोंको और जल्दी जागनेवालोंको अच्छा लाभ होता है। लेकिन नई मिलें खड़ी करना और उनकी मशीनोंके कारखाने बढ़ाना — यह सब एक दिनमें नहीं होता। इसमें महीने ही नहीं किन्तु बरसों लग जाते हैं। इसलिए ऐसा हो सकता है कि एक सिरे पर कपड़ेकी मिलोंकी नई मशीनें बनानेकी तैयारी होती हो तब दूसरे सिरे पर कपड़ेकी मांग घटने लगी हो। क्योंकि किसी भी चीजकी मांग एकसी तो बनी हुई नहीं रह सकती। अकाल पड़ जाय, भूकंप आये, महामारी फैले, युद्ध छिड़ जाय — इस तरह कई अनसोची आफतें आ पड़ती हैं। इस प्रकार किसी भी कारणसे कपड़ेकी मांग घट जाय तो कपड़ेके उद्योगके सिलसिलेमें जिन्होंने अपना धंधा बढ़ा दिया हो — मशीनरीके कारखानोंने मशीनें बनाना शुरू कर दिया हो, मिलोंके लिए नये मकान बन रहे हों, मकानोंकी रचनाके लिए ईंटें सीमेण्ट आदिके धंधे बढ़े हों, किसानोंने कपासकी खेती बढ़ा दी हो, रेल्वेवालोंने यातायातकी व्यवस्था बढ़ा दी हो और उसके लिए सामग्री बनानेवाले कारखाने जारी हुए हों — उन सभीके धंधेमें मंदी आती है। इतना ही नहीं कई धंधे तो बिलकुल बरबाद हो जाते हैं। कई पेढ़ियां टूट जाती हैं और लिमिटेड कंपनियोंका दिवाला निकल जाता है। इस तरह तेजीके बाद मंदीकी लहर फैल जाती है।

६ परन्तु ऐसी मंदी स्थायी नहीं होती। कुछ समय बाद लोगोंका मन स्थिर और शांत होने लगता है। बाजारमें भी विश्वासका वातावरण जमता जाता है। जिनका दिवाला निकल गया है ऐसी कंपनियां पूरीकी पूरी या उनका माल फुटकर बिकने लगता है। जिनके पास पैसा होता है वे इन कंपनियोंको या इनके सामानको बहुत थोड़े दामोंमें खरीद लेते हैं, इसलिए थोड़ी पूंजी लगाकर वे अपना उत्पादन कर सकते हैं। मंदीके कारण मजदूर बेकार हो जाते हैं और मजदूरीकी दर भी सस्ती होती है। इसलिए उन्हें मजदूरीका खर्च भी कम लगता है। इस तरह उत्पादनका खर्च कम आनेसे उस धंधेके पैर फिरसे जम जाते हैं, वह स्वावलंबी हो जाता है। और एक धंधेके पैर जमने लगे कि उसका असर दूसरे धंधों पर भी पड़ता है। फिरसे सारे व्यापार धंधे तेजीकी तरफ चल पड़ते हैं। इस तरह मंदीके बाद तेजी और तेजीके बाद मंदीका चक्र चलता रहता है।

तेजी-मदीका नियमित पुनरावर्तन

७ इस तरहकी तेजी मदीके पिछले डेढ सौ वर्षके इतिहासकी जाच पड़ताल करके यूरोपके अर्थशास्त्रियान एसा अनुमान लगाया है कि तेजी मदीका चक्र एक नियमित क्रममें चला करता है। मन्दीके समयमें व्यापार धधे ठप हो जाते ह और बेकारी फल जाती है। जिनके पास पसा होता है वे धीरे धीरे हिम्मत करके फिर धधा शुरू करने लगते ह और अच्छा समय आने लगता है भाव बढते जाते ह नफकी मात्रा भी कुछ बढ़ने लगती है और उत्पादन बढानेकी ओर प्रवृत्ति चलता है। कच्चे मालके और कोयला तथा लोहे जसी बुनियादी चीजोके भाव पर बाजारका फौरन असर होता है। बाजार भाव बढनेके साथ ही उनके भाव भी बढने लगते ह। लेकिन मजदूरी और ब्याजकी दर झटसे नहा बढती। इसलिए मदीके बाद साहसी प्रबधकोंको थोडे ब्याज पर ली हुई पूजीकी मददसे नये धधे बढानेकी बडी अनुकूलता मिल जाती है। मजदूरीकी दर कम होनसे भी उन्हे उत्पादन-खर्च कम आता है। बढते हुए उद्योग धधोकी जरूरतें पूरी करनेके लिए बक अपना उधारीका काम बढाते जाते ह। अच्छे समय का लाभ उठा लेनके लिए सभी उत्सुक हो जाते ह।

८ लेकिन इस अच्छे समय में से ही उसे और ज्यादा अच्छा समय बननेसे रोकनेवाले अकुश उत्पन्न हो जाते ह। बढते हुए नफेको देखकर मजदूर मजदूरीकी दर बढानेकी माग करते ह और उनकी दरें बढानी पडती ह। इतना ही नहा उत्पादन बढानेके लिए खास तौर पर दर बढाकर मजदूरोंसे अतिरिक्त समयमें काम लिया जाता है और अकुशल मजदूरोंको भी इस काममें लगा लिया जाता है। इसलिए उत्पादन-खर्च बढने लगता है। कच्चे मालके भाव तो बढ ही जाते ह। मजदूरीकी दरोंके साथ ब्याजकी दर भी बढने लगती ह। इससे नफकी मात्रा घट जाता है और तेजीका अन्त आने लगता है। सामान्यत कोई न कोई बडी आकस्मिक घटना हो जाती है तब लोगोंमें डर और अधीरताकी भावना फल जाती है और उस समय एकदम मदीकी लहर दौड जाती है। जसा ऊपर कहा गया है अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टिके कारण फसल पकी न हो बडा भूचाल आ जाय बडी बाढ आ जाय सारे प्रदेश पर भारी आधी-तूफान आ जाय महामारी फूट निकले या युद्ध छिड जाय तो बडे बडे व्यापारियों और उद्योगपतियोंको या तो सोचे हुए नफे नहीं मिलने या कल्पनातीत नफा हो जाता है। उस समय भी एसे आर्थिक उत्पात होते ह।

९ जैसे अच्छा समय या तेजी उन खराबवाले अकालोंका बीज अपने गर्भमें ही लेकर आती है वैसा ही मन्दीका भी होता है। मन्दी भी उसे दूर करनेवाली परिस्थितियोंके बीज लेकर आती है। मन्दीके समय मजदूरी और ब्याजकी दर घट जाती है। मजदूरोंमें बेकारी फैली हुई होनेके कारण अनाडी और अकुशल मजदूर कारखानोंसे निकाल दिये जाते हैं। साथ ही उत्पादनकी सीमा पर काम करनेवाले कमजोर कारखाने बन्द हो जाते हैं। इसलिए उत्पादन-खर्च घटने लगता है। और जब जैसे यह बाजार भावमें अधिकाधिक नीचे आता जाता है वैसे वैसे नफेकी मात्रा बढ़ती जाती है। सारा चक्र इस तरह चलता रहता है। सतुलन और स्थिरता — नये नये सुधार — बढ़ती हुई हिम्मत — पैसेका बहुतायत और हल्का ब्याज — उन्नति और समृद्धि — तेजीका उभार — बेतहाशा साहस और खाबकी कंपनियाँ — धक्के लगनेकी शुरुआत — पैसेकी तंगी और भारी ब्याज — उत्पादन खर्चका बढ़ना और नफेका बन्द होना — व्यापार रोजगारमें मन्दी — कमजोर पेढ़ियाँ और कारखानोंके दिवाले — मजदूरोंकी बेकारी और सस्ती मजदूरी — कम खर्चमें उत्पादनकी संभावना — बाजारमें विश्वासका वातावरण — फिर वापस सतुलन और आगेका क्रम। इस तरह यह चक्र चलता ही रहता है।

पिछले आर्थिक संकट

१० ऐसा कहा जाता है कि खुशहाली और पामालीके चक्रका यह समय नियमित रूपमें ७ से १० वर्षका होता है। तेजी मन्दीके चक्रके सन १८१४ से लेकर आज तकके इंग्लैण्डके इतिहास परसे यह अनुमान लगाया गया है। इतनी तफसीलमें न जाकर हम अपने देशका ही बिलकुल ताजा इतिहास देखें तो उसमें भी यही बात मालूम होती है। सन १९१४ से १९१८ का महायुद्ध आरंभ हुआ उससे पहले १९१३-१४ में हमारे देशमें एक बड़ा आर्थिक उत्पात आया था और उस समय बहुतसे बैंक और मिलोंका दिवाला निकल गया था। यह आर्थिक उत्पात दुनिया भरमें फैला हुआ था और लन्दनका बाजार भी बड़ी डावाडोल स्थितिमें पहुंच गया था। शेयर और स्टाक एक्सचेंज तथा बैंक कई दिनों तक बंद रख गये थे। शेयर और स्टाक बाजार इसलिए बंद रखे गये थे कि लोग अपनी जमानतें बेच डालनेमें स्पर्धा न करें और बैंक इसलिए बन्द रखे गये कि लोग अपना पैसा निकालनेके लिए उन पर धावा न करें। साथ ही बैंककी ब्याजकी दर बढ़ाकर दस प्रतिशत कर दी गई ताकि लोग बैंकसे कर्ज लेने न आवें। युद्ध छिड़ जानेके बाद मंदी घटने लगी। युद्धके कारण नये नये धंधे और रोजगार

पड़ा हुए मिलें और कारखाने जोरोंसे चलने लगे। लोग काफी कमाने लगे सरकारने चलनमें प्रसार करना शुरू किया — यद्यपि दूसरे महायुद्धसे वह बहुत कम था। और सेनासे होनेके बाद लौटे हुए सिपाही दिल खोलकर पैसा खर्च करने लगे। इन सबका फल यह हुआ कि भाव तेजीसे चढ़ने लगे। सन १९२० में दुनियाभरमें तेजी चरम सीमा पर पहुंच गई। जुलाई १९१४ के भावोंकी सूचीसंख्याकी तुलनामें मार्च १९२० के भावोंकी सूचीसंख्या २६३ प्रतिशत अधिक ऊंची थी। मध्य यूरोपके हारे हुए देशोंमें तो मुद्रा प्रसारकी हद ही हो गई और वहांकी सारी आर्थिक व्यवस्था टूट गई।

११. फिर ज्यों ही इंग्लैंड और अमरीकाने चलनका संकोचन करनेकी नीति आरंभ की त्यों ही बाजारमें भाव गिरने लगे। इस आशासे कि भाव और ज्यादा गिरेंगे लोग खरीदी करना मुलतवी रखने लगे। इसमें जमनीसे युद्धदण्डके रूपमें बहुतसा माल मित्रराज्योंके पास आने लगा तब मित्रराज्योंके उत्पादकोंकी स्थिति कठिन हो गई। युद्धसे पहलेके भावोंकी सूचीसंख्याकी तुलनामें १९२१ के दिसम्बरमें भावोंकी सूचीसंख्या केवल ८२ प्रतिशत ही अधिक रह गई। १९२४ के बाद भावोंमें स्थिरता आने लगी। परन्तु १९२९ में सारी दुनियामें जबरदस्त मंदीकी लहर फिर फैली। यह मंदी लगभग १९३५ तक बनी रही। फिर वापस स्थिरता आई। दूसरे महायुद्धके छिड़ने पर मुद्रा प्रसार हुआ और तेजी आई। आज युद्ध बंद होनेको लगभग १८ वर्ष हुए फिर भी यह स्थिति चालू है।

आर्थिक संकटका स्पष्टीकरण

१२. साधारण लोग तेजी मंदीके इस नियमित चलनेवाले चक्रको केवल आकस्मिक मानते हैं। परन्तु अर्थशास्त्री उसका निश्चित स्पष्टीकरण देते हैं। अलबत्ता इस बारेमें उन लोगोंमें अलग अलग मत प्रचलित हैं और अलग अलग वाद या स्पष्टीकरण प्रस्तुत किये जाते हैं। उनमें से मुख्य मतोंकी हम यहां चर्चा करेंगे।

कुदरती संकट

१३. पुराने अर्थशास्त्रियोंने तो इन आर्थिक संकटोंका मुख्य कारण कुदरती संकटोंको ही माना है। कच्चे मालके बिना कोई उद्योग धंधे नहीं चल सकते। और अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकंप, बाढ़ या आंधी-तूफान जैसे कुदरती संकटोंके कारण फसलको हानि पहुंचे अथवा फसल न पके तो उस माल पर आधार रखनेवाले उद्योग धंधोंको धक्का लगता है। मान लीजिये किसी कारण

हमारे देशमें अनाज कम पैदा हो या अमरीकाकी रुईकी फसल पर संकट आवे तो सहज ही उसका असर इंग्लैण्डके उद्योग धंधों पर होगा। रुईकी कमीके कारण इंग्लैण्डको कपड़ा बनानेमें कठिनाई होगी। फिर हिन्दुस्तानमें अनाज कम पैदा हुआ हो तो हिन्दुस्तानके किसान इंग्लैण्डका जो माल खरीदते हों वह नहीं खरीद सकेंगे और इस तरह भी इंग्लैण्डके कितने ही उद्योगोंको धक्का पहुंचेगा। एक देश पर या एक वर्ग पर संकट आ पड़े तो उसका आर्थिक प्रभाव दूसरे देशों और दूसरे वर्गों पर होना ही है।

१४ कुदरती संकटोंके कारण आर्थिक क्षेत्रमें संकट पैदा हों और मंदी आवे यह तो अच्छी तरह समझमें आ सकता है। परन्तु तेजी-मन्दीका चक्र मानो नियमित चलता रहता है और आर्थिक संकट अमुक निश्चित वर्षोंके बाद आ खड़े होते हैं इसका स्पष्टीकरण कुदरती संकटोंवाले कारणोंसे नहीं मिल सकता। क्योंकि कुदरती संकट नियमसे आनेवाले नहीं होते। हां यह साबित करनेके लिए कि कुदरती संकट भी एक खास क्रमसे ही आते हैं एक ऐसा वाद प्रस्तुत किया गया था कि सूर्यकी सतह पर कुछ निश्चित वर्षोंके अन्तरसे अधिक दाग दिखाई देते हैं और उनका हानिकारक असर हिन्दुस्तानके चौमासे पर और सारी दुनियाकी खेती पर होता है। यह कहा जाता था कि सूर्यकी सतह पर दाग अधिक होनेसे जमानेको गरमी कम मिलती है और उससे फसलकी मात्राको और उसके गुणको नुकसान पहुंचता है। आजके वैज्ञानिक सूर्यके दागोंवाली बातको इतना महत्त्व नहीं देते परन्तु यह जरूर मानते हैं कि पृथ्वीके ऊपरके वायुमंडलमें एक निश्चित समयके बाद परिवर्तन होता है और उसका असर खेती पर और उसके कारण हमारे उद्योग धंधों पर भी होता है। इसलिए इस कारणको आर्थिक संकटोंके बहुतसे कारणोंमें से एक कारण अवश्य माना जा सकता है।

उत्पादनकी पूंजीवादी रचना

१५ परन्तु इन संकटोंका बड़ा कारण तो उत्पादनकी पूंजीवादी रचना ही है। यंत्रोत्पादनकी पद्धतिमें ग्राहकके काममें आने लायक माल तैयार होकर बाजारमें आये उसके बीच और यह माल जिस कच्चे मालसे तैयार होता है उसके बीच जो उत्पादनकी क्रियाएं की जाती हैं उनका क्रम दिनोंदिन लम्बा होता जाता है और उत्पादनके साधनोंका आडंबर बढ़ जानेसे अधिकाधिक पूंजीकी जरूरत पड़ती है।

१६ ग्रामोद्योगोंकी पद्धतिमें कच्चे माल और तैयार मालके बीच ऐसा भारी फर्क नहीं होता। बहुत बार तो ऐसा होता है कि कच्चा माल पैदा

करनेवाले ही उस पर सारी क्रियाएं करके तैयार माल बनाते हैं। इसके अलावा इसके साधन भी घरेलू या देहाती होते हैं जो थोड़े समयमें और कम खर्चमें बन सकते हैं जब कि यंत्रोत्पादनमें बीचकी प्रत्येक क्रियाके लिए बड़े कारखाने होते हैं। कुछ कारखाने आखिरका तैयार माल ही बनाते हैं कुछ आखिरी दर्जेसे पहलेकी क्रिया करनेवाले होते हैं कुछ उससे भी पहलेकी क्रिया करनेवाले होते हैं कुछ उसके लिए औजार बनानेवाले होते हैं कुछ उसके लिए मशीनें बनानेवाले होते हैं और कुछ कच्चा माल ही देनेवाले होते हैं। इसके सिवा ये सब क्रियाएं अलग अलग स्थानों पर — एक-दूसरेसे बहुत दूर दूरके स्थानों पर होनेसे रेल जहाज आदि यातायातके साधनोंका बड़ा भारी प्रबंध और संगठन खड़ा करना पड़ता है। कारखानोंके लिए बड़े बड़े मकान बनाने पड़ते हैं और मजदूरोंके रहनेके लिए भी मकानोंकी व्यवस्था करनी पड़ती है। कच्चे माल और तैयार मालके बीचकी इन सब क्रियाओंमें बहुत बड़ी पूंजीकी जरूरत पड़ती है। उपभोग्य मालके एक घटक पर एक ओर कच्चे मालकी कीमत और आदमीकी मजदूरी तथा दूसरी ओर यंत्रों, औजारों मकानों यातायात-व्यवस्था आदि उत्पादनके साधनोंके लिए पूंजी — इन दोनोंकी कीमतकी तुलना करें तो इसकी कल्पना हो सकती है कि यह पूंजी उस पूंजीसे कितने प्रतिशत अधिक है। जैसे जैसे यंत्रोद्योगोंका विकास होता जाता है वैसे वैसे उपभोग्य मालमें जितने प्रतिशत वृद्धि होती है उससे कहीं ज्यादा वृद्धि उसे तैयार करनेके लिए आवश्यक पूंजीके प्रतिशतमें करनी पड़ती है। इसलिए इस उत्पादनको उत्पादनकी पूंजीवाली रचनाका नाम दिया गया है।

१७ इस तरहकी अधिक पूंजीके लिए समाजकी कुल वार्षिक आयमें से अधिक बचत होनी चाहिये। मिलों और कारखानोंकी आयमें से मजदूरोंके हिस्सेमें आनेवाली मात्रा बहुत थोड़ी होती है। तेजी या खुशहालीके समय होनेवाली अधिक आयमें से मजदूरोंके हाथमें बहुत थोड़ी आय आती है। और तेजीके समय महंगाई होनेके कारण वे ज्यादा बचत तो कर ही नहीं सकते। अधिक आयका बहुत बड़ा भाग उद्योगपतियों और उनके साथियोंके पास ही जाता है। और वे ही बड़ी बड़ी रकमें बचा सकते हैं। इस बचतको वे नये साहस आरंभ करनेमें लगाते हैं। इसके फलस्वरूप एक बड़ी विषमता पैदा होती है। ये नये कारखाने पैदा हो जानेसे उपभोग्य सम्पत्तिका उत्पादन बढ़ जाता है। दूसरी ओर आजकी अन्यायपूर्ण आर्थिक असमानताके कारण कुल सम्पत्तिका बहुत बड़ा हिस्सा मुट्ठीभर आदमियोंके हाथमें रहनेसे

बहुजन-समाजमें यह अधिक माल खरीदनेकी शक्ति नहीं होता। समाजका सच्चा जरूरतसे कहीं अधिक कारखान पैदा हो जाते हैं और जितनी मात्रामें माल तयार होता है उतनी मात्रामें उसकी खपत न होनेके कारण भाव गिरने लगते हैं और बाजारमें मन्दी आती है। जैसा हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं यह चक्र घूमता घूमता फिर नजी पर आता है। परन्तु इस तरह निरंतर नहीं चलता रहता। यह चक्र ज . . या . . . . . . होना ही चाहिए। लेकिन अभी तक यह चक्र . . . नहीं . . . कारण य है नये नये प्रदेशोंकी खोज हुई वहां नई आबादियां बसीं वहांके मूल निवासी आधुनिक सभ्यताके जालमें फंसा लिये गये और हिन्दुस्तान और चीन जैसे प्राचीन देशोंके ग्रामोद्योगोंको नष्ट करके वहां भी पश्चिमके देशोंने अपने बाजार खड़े किये — इन सब कारणोंसे पश्चिमके देशोंके कारखानोंमें पैदा होनेवाले अधिक मालके लिए गुंजाइश निकलती रही। उनका अतिरिक्त माल इन बाजारोंमें खपने लगा। परन्तु अब नये प्रदेशोंकी खोजकी और पुराने देशोंके बाजारों पर अधिकार करनेकी मर्यादा आ गई है और इसके कारण एक प्रकारकी आर्थिक खिंच ही पैदा हो गई है। १९१४का महायुद्ध और कुछ वर्ष पूर्व समाप्त हुआ दूसरा महायुद्ध इस संकटको दूर करनेके पश्चिमी जनताके मिथ्या प्रयत्न ही थे। और अभी तक भी समस्या सुलझी तो है ही नहीं।

सराफी प्रथाकी करामात

१८ . . . निक उपयोगका माल बनानेकी पूर्व-तयारीके रूपमें उत्पादनके विविध प्रकारके साधन बनानेवाले कारखाना आदिके लिए सभीके पास नकद पैसेकी बचत हो यह जरूरी नहीं है। ऐसे कोई साहस आरम्भ करनेवाले प्रबंधकोंको पैसा ब्याजसे मिले तो भी उनका काम चलता है। इसके सिवा बैंकोंमें लोगोंकी बचत अमानतके रूपमें जितनी जमा होती है उतना ही रुपया उधार देकर बैंक बैठ नहीं जाते। बैंकोंके पास साख पर नया पैसा पैदा करनेकी भी करामात होती है यह हम पहले देख चुके हैं। किसी भी साहस — नये उद्योगमें जितना प्रतिशत मुनाफा होनेकी आशा हो उससे कम दर पर पैसा मिले तो प्रबंधक ऐसा साहस आरंभ करनेको तैयार ही रहते हैं। . . . बचत हो सके एसे नये नये यंत्र खोजकर उन्हें बनानेके कारखाने खड़े करनेको वे तैयार होते हैं रेल यदि भापके एंजिनसे चलती हो तो उसे बिजलीसे चलनेवाली बनाते हैं जहां बिजली और गैसकी सुविधा न हो वहां उस जुटानकी योजना बनाते हैं बिजली उत्पन्न करनेकी

कोशिश करते हैं — ऐसी अनेक योजनाएं और साहस आरंभ करनेके लिए वे तैयार होते हैं। इन सब प्रयत्नोंमें अंतिम उद्देश्य तो यही होता है कि उपभोगका माल और सुख-सुविधाके सामान अधिक मात्रामें पैदा किये जायं। लेकिन इन सब साधनों द्वारा उपभोगका माल उत्पन्न होना आरम्भ हो उसके पहले अपने पासके या बैंकोंसे मिले हुए पैसेके बल पर ये साहस आरंभ हो जाते हैं, इसलिए उपभोगकी वस्तुओंके भाव बढ़ जाते हैं और उनके कारखाने दारोंको बड़ा मुनाफा होने लगता है। यह देखकर उन कारखानेदारोंका उत्साह बढ़ता है जो उपभोगका तैयार माल पैदा होनेसे पहलेकी क्रियाएं पूरी करते हैं। और ऐसे कारखानोंकी संख्या भी बढ़ने लगती है। ब्याजकी दर कुछ बढ़ानेकी जरूरत हो तो उसे बढ़ाकर भी पैसा उधार देनेकी व्यवस्था तो बैंक करते ही हैं। अलबत्ता यह सब पैसा कृत्रिम रूपमें खड़ा किया हुआ सराफी द्रव्य ही होता है। इसलिए द्रव्यकी मात्रामें प्रसार होने लगता है और जैसे जैसे द्रव्यका प्रसार होता है वैसे वैसे बाजार भाव बढ़ने जाते हैं। भाव हमेशा बढ़ते ही रहनेके कारण व्यापारी भविष्यमें बेचनेके लिए माल खरीदने लगते हैं या अपने पास माल हो तो उसे जमा करके रखते हैं। और इसके लिए पैसा उनको वे बैंकोंके पास जाते हैं। बैंक इस तरह पैसा उधार देकर बाजारमें पैसेकी मात्रा जितनी बढ़ाते हैं उतना मालका उत्पादन भी बढ़ता जाय तब तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन बैंक जितनी आसानीसे पैसेकी मात्रा बढ़ा सकते हैं उतना आसानीसे मालका उत्पादन नहीं बढ़ता। इसलिए फिर बाजारमें मालका वास्तविक लेन-देन होनेके बजाय सट्टा बढ़ने जाने लगता है। और बाजार सट्टे पर चलने है इसलिए बैंक स्वभावतः पैसा उधार देनेके मामलेमें सावधान हो जाते हैं। वे ब्याजकी दर बढ़ा देते हैं। और ब्याज और मजदूरीकी दर बढ़नेसे उत्पादन-खर्च बढ़ जाता है इसका असर उपभोगका माल बनाने पर और उत्पादनकी मात्रा पर काम करनेवाले कमजोर कारखानों पर जल्दी होने लगता है। जब ये कारखाने टूटने लगते हैं तो उनका धक्का यंत्र बनानेवाले कारखानोंको इमारती सामान तैयार करनेवाले कारखानोंको और लोहे तथा उनका सामान बनानेवाले सब कारखानोंको भी लगता है। कुछ कारखाने तो आधे तैयार हो चुकने पर भी पैसा न मिलनेके कारण बीचमें ही बन्द करने पड़ते हैं। इसमें आर्थिक संकटकी स्थिति उत्पन्न होती है।

भूलें कैसे होती है?

१९ यहां सवाल यह पैदा होता है कि यदि बैंकें पैसा उधार देनेके कारण अर्थात ब्याजकी कुदरती या संतुलित दर* से भी कम दर पर पैसा उधार देनेके उनके कामसे यदि ऐसे आर्थिक संकट खड़े होते हैं तो बैंक ऐसा करनेके लिए क्यों प्रेरित होते हैं? एक समय संकटसे सबक लेकर बैंक समझदार क्यों नहीं बनते और बार बार वही भूल क्यों करते हैं? इसका कारण आजके व्यापारियों और सरकारों तथा दूसरे अर्थशास्त्रियोंके एक तरहके मानसमें रहता है। उन्हें ऐसा लगता है कि किसी भी तरह ब्याजकी दर घटानेसे समाजकी आर्थिक उन्नति ज्यादा आसानीसे और अच्छी तरह की जा सकती है। तेजी मंदीके चक्रकी स्पष्टता जितने सादे सरल रूपमें यहां की गई है उतनी सादी वह व्यवहारमें नहीं होती। सरकारकी लम्बी अवधिके खर्चवाली कुछ योजनाएं बनानी होती हैं, उद्योगपति और प्रबंधक लोग भी बड़े बड़े साहस आरंभ करनेकी धुनमें होते हैं और बैंकों पर भी उनका असर और अधिकार होता है। इसके सिवा ये सब किसी सामुदायिक हितकी दृष्टिसे विचार नहीं करते। प्रत्येक अपना अपना स्वार्थ देखता है। और उनमें भीतर ही भीतर भयंकर प्रतिस्पर्धा चलनेके कारण प्रत्येक अपने प्रतिद्वंद्वीको गिराकर खुद ही सारा लाभ कमा ले जानेकी इच्छा रखता है। इस

---

* ब्याजकी जिस दर पर कर्जके लिए व्यापारियोंकी मांग और समाजकी बचतें बैंकके पास अमानतके रूपमें आती हैं उस दरको अर्थात पैसेकी मांग और पूर्ति बराबर रहे ऐसी दरको ब्याजकी कुदरती दर कहते हैं। बैंक इस कुदरती या संतुलित दरसे ब्याजकी दर नीची कर दें तो कर्जकी मांग बैंकोंमें आई हुई बचतकी अमानतसे ज्यादा बढ़ जाय। उस समय बैंक बनावटी ढंगसे खड़े किये हुए धन द्वारा इस कर्जकी मांगको पूरा करते हैं। यदि बैंक इस कुदरती या संतुलित दरसे ब्याजकी दर ऊंची कर दें तो बैंकोंसे कर्ज लेनेकी मांग घट जायगी और बैंकोंमें आई हुई अमानतें उनकी तिजोरीमें पड़ी रहेंगी। जब बाजारमें ब्याजकी दर इस कुदरती और संतुलित दरसे नीची होती है तब बाजारमें चीजोंके भाव बढ़ते हैं, क्योंकि लोग बैंकोंसे पैसा ब्याज पर लाकर माल जमा कर सकते हैं। जब बाजारमें ब्याजकी दर कुदरती या संतुलित दरसे ऊंची होती है तब चीजोंके भाव गिरने लगते हैं, क्योंकि ऊंचा ब्याज देकर माल जमा रखनेके बनिस्बत लोग नीचे भावसे भी माल बेच डालना ज्यादा पसन्द करते हैं।

तरह उत्पादनके सारे क्षेत्रमें एक प्रकारकी घातक स्पर्धा और अराजकता फैली हुई रहती है। इसके सिवा यह सारा यंत्र इतना अधिक अस्पष्ट हो गया है कि एक योजना या साहसका असर दूसरे पर क्या पड़ेगा यह नहीं कहा जा सकता। उपभोगकी चीजोंकी मांगका सच्चा अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। फिर बदलती हुई परिस्थितियोंके अनुसार उत्पादन एकदम घटाया बढ़ाया भी नहीं जा सकता। उत्पादन बढ़ानेके लिए नये कारखाने खड़े करनेमें वर्षों लग जाते हैं। और नये कारखाने चालू हो जानेके बाद उत्पादन घटानेकी जरूरत पड़ी हो तो ये कारखाने बाजारको धक्का पहुंचाये बिना एकदम बन्द नहीं किये जा सकते। उपभोगके मालकी मांग बढ़ जाय और उसका उत्पादन बढ़ाना पड़े, तो भी उसके लिए बहुत लम्बा समय चाहिये। ठेठ कोयला और लोहा अधिक मात्रामें जुटानेसे इसकी शुरुआत करनी पड़ती है। फिर मशीनें बनानेके कारखाने खड़े करना, रेलों और जहाजोंके सामानके लिए कारखाने खोलना, मकानोंकी रचनाके सामानके लिए कारखाने खड़े करना — इन सब कामोंमें बहुत समय लग जाता है। फिर ये तरह तरहके कारखाने इतने ही खड़े करने चाहिये कि वे एक-दूसरेकी कमीको पूरा कर सकें। परन्तु उनके बीचका अनुपात निश्चित करना बड़ा कठिन होता है क्योंकि किसी समग्र योजनाके अनुसार यह काम नहीं होता। प्रत्येक प्रबंधक या उत्पादक अपने स्वार्थके अनुसार ही काम करता है। अलग अलग प्रकारके मालके उत्पादनके बीच योग्य अनुपात रहे तो ही अर्थतंत्र एकसा चलता है। हम सारे मालके मुख्य चार विभाग करेंगे:

(१) दैनिक उपयोगका माल (अनाज, कपड़ा आदि)

(२) दैनिक उपयोगका होते हुए भी कम अधिक टिकनेवाला माल (रहनेके मकान, उनका साज-सामान, मोटर गाड़ियां, पानीके नल, बिजली या गैसका सामान और दूसरी सार्वजनिक सेवाओंसे सम्बन्धित सामान)

(३) नये उत्पादनके टिकाऊ साधन (लोहेके कारखाने, ईंट और सीमेण्टके कारखाने, कपड़ा मिलें, यंत्र बनानेवाले कारखाने, रेलें, बिजली घर आदि)

(४) टिकाऊ मालके उत्पादनके लिए जरूरी कच्चा माल (लोहा, फौलाद, सीमेण्ट, लकड़ी, ईंटें, चूना, कोयला आदि)।

२०. इन सब प्रकारके मालके उत्पादनमें एक-दूसरेके साथ मेल खानेवाला अनुपात कायम न रहे तो विषमता उत्पन्न होती है। तेजीके समयमें हमेशा यह अनुपात भुला दिया जाता है। जिस धंधेमें ज्यादा नफा मिलता है उसीको

तैयार करानेमें सब लोग लग जाते हैं। परन्तु ये सब प्रकारके माल एक-दूसरेकी कमीको पूरा करनेवाले होते हैं इसलिए इस प्रकारके मालकी पूर्तिकी मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती और आगे चलकर उसे पूरा मालका तैयार हो जाता है। इस चक्करके जोशमें न पड़कर यदि ज्यादा न जाय तो दूसरी किस्मी हो जाता है यही ही यह बात है। टिकाऊ मालका उत्पादन सबसे आवश्यकतासे अधिक हो जाता है। नया उत्पादन न होता हुआ रहता है और माल टिकाऊ होनेके कारण उसकी माग अधिक नहीं रहती इसलिए इस मालको बनानेके लिए आवश्यक कच्चा माल जैसे लोहा फौलाद सामान आदि पड़ा रहता है। फिर जैसा ऊपर कहा जा चुका है कारखाना खड़ा करनेमें शुरुआत होनेके समयसे लेकर उसमें से माल तैयार होकर बाजारमें आनेतकका समय बहुत लम्बा होता है इसलिए भी यह अनुमान कायम नहीं रखा जा सकता। इसके सिवा कारखाने और यन्त्र तो लम्बे समय तक टिकनेवाले होते हैं अत उनमें से पैदा होनेवाले मालकी माग घट जाय तो वे फालतू और भाररूप हो जाते हैं।

२१ उत्पादनके साधनोंका और उपभोगके टिकाऊ मालका अतिरिक्त उत्पादन यदि पास रह जानेवाली एक चक्कर है तो फिर खोई हुई चक्कर क्या है? दैनिक उपभोगका जिन टिकाऊ माल विज्ञापन खान-पीनकी चीजें और कपड़ा वह खोई हुई चप्पल है। नये उत्पादनके लिए कारखाने खड़े किये जाय उनके लिए कच्चा माल पैदा किया जाय और दैनिक उपभोगका टिकाऊ माल भी पैदा किया जाय तो भी काम नहीं चलता। इन सब कामोंमें लगे हुए मजदूरोंके लिए खान-पीनका सामान चाहिये पहननेके लिए कपड़े चाहिये और इसी तरह दैनिक उपभोगकी दूसरी कई चीजें चाहिये। उपभोगका माल बनानेकी पूर्व-तैयारीके रूपमें ये कारखाने खड़े होते हैं तब उपभोग्य मालका उत्पादन तो बढ़ा ही नहीं होता। इसमें भी खाने-पीनेकी चीजोंका उत्पादन बढ़ानेके लिए जितनी चाहिये उतनी कोशिश नहीं होती। इस खोई हुई चप्पलके बिना वह पासकी चप्पल बेकार और भाररूप हो जाती है। और इसीमें से आर्थिक उत्पात या आर्थिक संकट पैदा होते हैं।

वाजारका रुख

२२ तेजी मन्दीके चक्रको गति देनेमें और इसके फलस्वरूप आर्थिक संकट खड़े करनेमें बाजारका रुख भी बहुत बड़ा काम करता है। किसी भी कारणसे मालकी माग बढ़ने लगे और बाजारमें तेजी आये तो सभी व्यापारी अपने सामने तेजी ही देखा करते हैं और एकदम धनवान बन जानेके हवाई किले बांधने लगते

जाते हैं। सम्पूर्ण परिस्थितिका समग्र दर्शन तो किसीके सामने होता ही नहीं। प्रत्येक झट झट अपना स्वार्थ साध लेनेकी जल्दीमें होता है और इसलिए अविचारपूर्ण साहसके काम कर बैठता है। जी० वी० हबलर नामके लेखकने अपनी प्रास्परिटी एण्ड डिप्रेशन (तेजी और मन्दी) पुस्तकमें इस घटनाको समझाने वाला एक बहुत बढ़िया रूपक दिया है। कमरेको गरम करनेके लिए आपके चूल्हेमें आग सुलगानी हो तो आगके अच्छी तरह सुलगने और कमरेमें जरूरी गरमी पैदा होनेके लिए आपको थोड़ी देर राह देखनी पड़ती है। लेकिन ठंड लगती है और बैरोमीटरमें पारा नीचे ही उतरता जाता है। तब जिसे अनुभव नहीं होता और जो उतावला होता है वह चूल्हेमें कोयले डालता ही चला जाता है। यहां तक कि आवश्यक गरमीके लिए जितना कोयला चाहिये उससे अधिक कोयला वह चूल्हेमें भर देता है। फिर जब यह सारा कोयला सुलगता है तब कमरा असह्य मात्रामें गरम हो जाता है। अब किसी एक क्षणमें ठंड लगती हो और बैरोमीटरका पारा नीचे जाता हो तब उसे देखकर जो लोग उतावलीमें कमरा गरम करने जाते हैं वे उसे बहुत अधिक और असह्य मात्रामें गरम बना देते हैं। आजके बाजारोंमें व्यापारियोंका मानस इसी तरह काम करता है। और इस तरहके मानसको प्रोत्साहन देनेवाले दुष्ट सट्टेबाज और रिश्वतखोर राजनीतिक लोग और पूंजीपति तो मौजूद रहते ही हैं। वे झूठे लालच और भय खड़े करके व्यापारियों और कारखानेदारोंको उल्टे मार्ग पर ले जाते हैं। इस तरह इन सारे आर्थिक संकटोंके कारण सिर्फ आर्थिक नहीं होते। हम भले ही यह मानें कि हम बहुत प्रगति कर रहे हैं लेकिन जिस तरह हम समय समय पर बरबादीको न्योता देते हैं उससे यह सिद्ध होता है कि हम बुद्धि या समझदारीमें और नीतिमें आगे नहीं बढ़े हैं।

२३ थोड़ेमें कहें तो समाजकी आवश्यकताओं अथवा उपभोग्य वस्तुओं की मांगके बारेमें गलत अन्दाज उत्पादनमें पूंजीका प्रारम्भ आर्थिक असमानताके कारण जनसमाजकी घटती हुई खरीद शक्ति, कृत्रिम ढंगसे खड़े किये गये पैसेकी मन्दी तथा द्वारा दिया जानेवाला आवश्यकतासे अधिक उधार कारखानेदारों और व्यापारियोंमें एक-दूसरेको नुकसान पहुंचाकर अपना अपना स्वार्थ साधनेकी स्पर्धा उत्पादनके क्षेत्रमें अराजकता इसके फलस्वरूप विभिन्न प्रकारके मालके उत्पादनका एक-दूसरेसे मेल खानेवाला अनुपात स्थापित करनेकी अशक्यता और उत्पादन तथा उपभोग-सम्बन्धी टिकाऊ मालका आवश्यकतासे अधिक उत्पादन राजनीतिक पुरुषों तथा पूंजीपतियोंकी सट्टेबाजी और रिश्वतखोरी धनवानों और सामान्यकी बुद्धि और नीतिका दिवालियापन

—ये सब कारण अलग अलग और समग्र रूपमें भी आर्थिक संकट खड़े करनेमें सहायक होते हैं।

इसके उपाय

२४ समाजवादी अर्थशास्त्री इसका उपाय यह बताते हैं कि एक-दूसरेके साथ होड़ करनेवाले पूंजीपतियोंके हाथोंमें से सारा उत्पादन छीन कर उसे सामाजिक नियंत्रणमें ले आना चाहिये तथा पहलेसे समाजकी आवश्यकताओंका ठीक अन्दाज तयार करके और उतनी ही वस्तुओंके उत्पादनकी सारी योजना बनाकर उसीके अनुसार उत्पादनके कामकी व्यवस्था करनी चाहिये। संकटों पर तो अपने-आप अंकुश लग ही जायगा। ऐसा होने पर ही उद्योगपतियों और पूंजीपतियोंके स्वार्थके कारण, लालचके कारण और भूलोंके कारण खड़े होनेवाले आर्थिक संकटोंसे दुनिया बच सकती है। इस समय तो उद्योगपति और पूंजीपति भी योजनाबद्ध अर्थ रचनाकी बातें कर रहे हैं, यद्यपि वे उत्पादनके कुछ काम तो आज भी निजी पूंजीपतियोंके हाथमें ही रखनेकी सूचना करते हैं। लेकिन अर्थ रचनाकी ये योजनाएं उत्पादनके बारेमें कुछ अंकुश लगानेसे आगे नहीं बढ़तीं। आप भले ही उत्पादनका काम निजी पूंजीपतियोंके हाथसे छीन लीजिये और पहलेसे निश्चित की हुई मात्राके अनुसार अमुक प्रकारका माल ही बनाइये। परन्तु इससे उत्पादनके तंत्रमें फर्क नहीं पड़ता और उसके दोष भी दूर नहीं किये जा सकते। उत्पादनमें से पूंजीपतियोंकी सत्ता आप दूर कर सकते हैं, परन्तु जब तक उसकी रचनामें पूंजीका प्राबल्य रहेगा, तब तक इस पूंजीकी व्यवस्था करनेके लिए आपको किसी न किसी आदमीके हाथमें सत्ता रखनी ही पड़ेगी। यह आदमी पूंजीपति न होकर राज्यका अधिकारी होगा और राष्ट्रका सेवक कहलाता होगा, परन्तु उसके हाथमें सत्ता तो रहेगी ही। साधारण लोगोंको तो इन सरकारी या राष्ट्रीय प्रबन्धकों और व्यवस्थापकोंकी सत्ताके नीचे ही रहना पड़ेगा। इसके सिवा जब तक दैनिक उपभोगका माल तयार करनेकी अंतिम क्रिया और उसके लिए उत्पादनके साधन बनानेकी पहली क्रियाके बीच देश और कालका बहुत लम्बा अंतर भी रहेगा, तब तक समाजकी जरूरतोंके पहलेसे लगाये हुए अनुमानों और तत्सम्बन्धी उत्पादनकी योजनाओंका मेल नहीं बैठेगा और भूल होनेकी भारी संभावनाएं भी रहेंगी ही। उत्पादनके साधन तयार करनेकी आवश्यकतासे अधिक कितनी ही प्रवृत्तियां आजकी तरह ही चलती रहेंगी और उपभोगका भी कितना ही अतिरिक्त माल तयार होता रहेगा और उसके बिगड़ जानेके मौके भी आते ही रहेंगे।

२५ परन्तु हमारे कहनेका मतलब यह नहीं कि कोई योजना बनाई ही न जाय। ऊपर कहा जा चुका है कि आजका अर्थ-व्यवहार विश्वव्यापी हो गया है और उसे सुनियन्त्रित रूपमें चलानेका काम एक-दूसरेके साथ झगड़नेवाले अलग अलग वर्गों और अलग अलग राष्ट्रोंके मानव-समाजकी शक्तिसे बाहरका है। इस विश्वव्यापी व्यवहारकी जड़में ही अन्याय और शोषणके तत्त्व निहित हैं। उनके प्रचंड पाशसे बचनेका उपाय मनुष्यके लिए यह है कि उत्पादनकी समस्त प्रवृत्ति विकेन्द्रित कर दी जाय। फिर मनुष्यकी लोभी वृत्तिके कारण उत्पन्न होनेवाले संकटोंके लिए अवकाश नहीं रहेगा। इतना होने पर भी समाजके लिए आवश्यक कुछ उद्योग बड़े पैमाने पर चलाने पड़ेंगे। उनके लिए राष्ट्रके हितचिन्तकोंको अवश्य कुछ आयोजन करने पड़ेंगे। परन्तु अपनी प्राथमिक आवश्यकताओंके विषयमें तो मानव समाजके छोटे छोटे घटकोंका स्वावलम्बी और स्वयंपर्याप्त होना ही इन आर्थिक संकटोंसे बचनेका एकमात्र उपाय मालूम होता है।

मानव अर्थशास्त्र

चौथा भाग

बटवारा या वितरण

१

प्रास्ताविक

१ समाजमें जो सारी सम्पत्तिका उत्पादन होता है उसका वितरण — बटवारा इस उत्पादनमें जिन लोगोंका हिस्सा माना जाता है उन लोगोंमें से हर व्यक्तिको मिलनेवाली आयके रूपमें होता है। सम्पत्तिका उत्पादन कई मनुष्योंके सहयोगसे होता है। कुदरती साधन-सम्पत्ति पर बहुतसे मनुष्य श्रम करके उससे मनुष्यके उपभोगके लायक सम्पत्ति निर्माण करते हैं। इस सम्पत्तिके निर्माणमें जिसका जितना हाथ रहा हो उसके अनुसार उस सम्पत्तिका बटवारा उत्पादकोंके बीच होना चाहिये। इस भागमें हम बटवारे अथवा वितरणकी पद्धतिकी चर्चा करेंगे।

२ सम्पत्तिका उत्पादन अब वैयक्तिक स्वरूपका नहीं रहा है बल्कि सामाजिक हो गया है। इसी कारणसे बटवारेका प्रश्न समाजमें पैदा हो गया है। जब प्रत्येक कुटुम्ब या समूह अपनी अपनी जरूरतकी चीजें स्वयं उत्पन्न कर लेता था उस समय सम्पत्तिके विनिमयके मूल्य और कीमतके तथा बटवारेके प्रश्न खड़े ही नहीं होते थे। प्रत्येक कुटुम्ब एकसाथ मिलकर उत्पादन करता था और तैयार की हुई सम्पत्तिका मिलजुलकर ही उपभोग करता था। पुराने जमानेके सबसे प्राथमिक समाजमें यह प्रश्न ही खड़ा नहीं होता था कि मिली-जुली सम्पत्तिमें से किसके हिस्सेमें कितनी सम्पत्ति मानी जाय और कौन कितनी सम्पत्ति काममें ले। उत्पादनकी पद्धति ज्यों ज्यों बदलती गई और समाजकी अर्थ रचना जैसे जैसे जटिल बनती गई वैसे वैसे ये प्रश्न पैदा होने लगे कि उत्पन्न हुई सम्पत्तिमें से किसे कितना भाग दिया जाय अथवा कौन कितना भाग ले। गुलामीकी प्रथामें मजदूरीका दरका प्रश्न सामने ही नहीं आता था। गुलामसे जितना काम हो सकता था उतना वह करता था अथवा यह कहना अधिक सही होगा कि मालिक गुलामसे जितना काम ले सकता था उतना लेता था और इसलिए उसका पालन-पोषण करता था कि गुलाम जीवित रहे और अच्छी तरहसे काम कर सके। जब अर्थोत्पादन कुटुम्ब और गांवकी जरूरत पूरी करनेके लिए ही होता था तब कच्चा माल औजार और मकान आदिका — जिन्हें हम पूंजी कहते हैं — जो मालिक होता था वही स्वयं परिश्रम भी करता था और उसे जो कुछ मिलता था उसे मजदूरी समझा जाय या मुनाफा यह

प्रश्न ही खड़ा नहीं होता था। इसी तरह अन्य किसीसे पूंजी उधार लिये बिना मनुष्य जब अपनी ही पूंजीसे धंधा करता था तब अलग ब्याजका प्रश्न पैदा नहीं होता था। लेकिन आजकी उत्पादन-प्रथामें कुदरती साधन सम्पत्ति — उदाहरणके लिए जमीनका मालिक एक आदमी होता है, पूंजी लगानेवाला वर्ग दूसरा ही होता है, परिश्रम करनेवाला वर्ग तीसरा होता है और सारे उत्पादन-कार्यकी व्यवस्था करनेवाला वर्ग चौथा होता है। इसलिए इन सबके समग्र प्रयासोंसे उत्पन्न सम्पत्तिका बंटवारा करते समय अर्थशास्त्रको यह विचार करना पड़ता है कि उत्पादन-कार्यमें हाथ बंटानेवाले सब भागोंमें से किसे कितना हिस्सा दिया जाय। बंटवारेके विचारका अर्थ है मुख्यतः उत्पादनके विविध अंगोंको कितना बदला दिया जाय इसका विचार। परिश्रम करनेवालोंको जो बदला मिलता है उसे मजदूरी कहते हैं। उत्पादनके लिए जो पूंजी लगाई जाती है उसके बदलेको ब्याज कहा जाता है। उत्पादनके कुदरती साधनोंके बदलेको भाड़ा या किराया कहते हैं। जमीनको इन कुदरती साधनोंका प्रतीक मानकर अर्थशास्त्रियोंने जमीनमें सारे कुदरती साधनोंको शामिल कर लिया है। परन्तु जमीनके सिवा और भी कई तरहकी जायदादें होती हैं जो किराये पर दी जाती हैं। यह 'भाड़ा' शब्द अर्थशास्त्रमें एक विशेष अर्थमें प्रयुक्त होता है, जिसे हम भाड़ा-सम्बन्धी प्रकरणमें देखेंगे। अब रह जाता है प्रबंधक, जो योजना बनाता है और साहस या उद्योग आरंभ करता है। उसके बदलेको मुनाफा कहते हैं। उत्पादन-कार्यमें भाग लेनेवाले सारे मनुष्योंकी आय इन चार नामोंमें से किसी एकके नीचे आ जाती है।

३. आज तो दुनियाके हर देशमें यह देखा जाता है कि इस आयका बंटवारा न्यायके आधार पर नहीं होता। उत्पादनके काममें अपनी बुद्धि और श्रमसे सहायता करनेवाले सारे मनुष्योंको जितना भाग सामुदायिक आयमें से मिलना चाहिये उतना नहीं मिलता। प्रत्येक समाजमें थोड़ेसे व्यक्ति — या एक छोटासा वर्ग — ऐतिहासिक घटनाओंसे उत्पन्न परिस्थितिका लाभ उठाकर उत्पादनके साधनों और द्रव्य पर अधिकार किये बैठे हैं और उनके बल पर सारे समाजके श्रम और सहयोगसे उत्पन्न होनेवाली आयमें से वे सिंह-भाग हड़प लेते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि उत्पादनके साधनों पर और द्रव्य पर उनका स्वामित्व-अधिकार है। अपने पासके उत्पत्तिके साधनों तथा पैसेको वे अपनी शर्त पर ही समाजको उपयोग करने देते हैं और ये शर्तें इतनी कड़ी होती हैं कि यह अधिकार रखनेके सिवा उनके और कुछ काम न करने पर भी आयका बड़ा हिस्सा उन्हें मिलता है। इसलिए वितरणके

प्रश्नका विचार करते करते यह महत्त्वपूर्ण चर्चा खड़ी हुई है कि उत्पादनके साधनों पर व्यक्तिका स्वामित्व-अधिकार रहना वांछनीय है या नहीं।

४ इसी तरहकी दूसरी चर्चा करार-स्वातंत्र्य और प्रतिस्पर्धाकी है। उत्पादनके जो चार मुख्य अंग हैं उन अंगोंका स्वामित्व अलग अलग वर्गोंका है। जमींदारोंके पास जमीन है, उद्योगपतियों और पूंजीपतियोंके पास कारखाने और पैसा है, मजदूरोंके पास श्रम है और प्रबंधकोंके पास योजना-शक्ति और साहस है। प्रत्येक वर्ग अपने पास जो अंग है उसका उत्पादनके कार्यमें उपयोग होने देनेके पहले आयमें से बड़ा हिस्सा मांगता है। जमींदार अधिक लगान मांगता है, पूंजीपति और सराफ अधिक ब्याज चाहता है, प्रबंधक अधिक मुनाफा चाहता है और मजदूर अधिक मजदूरी मांगते हैं। सब वर्गोंके बीच भयंकर प्रतिस्पर्धा चलती है। यह कहा जाता है कि इन सब वर्गोंको इस बातकी स्वतंत्रता है कि वे उत्पादन-कार्यमें भाग लेनेसे पहले अपनी इच्छानुसार अपनी शर्तें पेश करके एक-दूसरेके साथ करार करें या न करें। परंतु कहना पड़ेगा कि ऐसी स्वतंत्रता केवल तर्क या कल्पनामें ही है। वास्तवमें तो ऐसी कोई स्वतंत्रता कभी नहीं होती। प्रतिस्पर्धा और करारकी स्वतंत्रता समान बराबरकी शक्तिवाले व्यक्तियों या वर्गोंके बीच ही कभी न्यायी मानी जाती है। लेकिन धनवान और निर्धनके बीचकी करार-स्वतंत्रता या स्पर्धामें से तो अन्याय और शोषणका ही जन्म होगा। जमींदार और पूंजीपति वर्गकी स्थिति ऐसी है कि उनके पासके साधन अमुक समय तक बिना उपयोगके रह जायं तो भी उन्हें कोई भारी असुविधा नहीं होती। उनके पास इतना धन जमा रहता है कि थोड़े दिन तक उन्हें कोई नई आय न हो तो भी उस बारेमें वे बेपरवाह रह सकते हैं। आय बंद होने पर उन्हें भूखों मरनेकी नौबत नहीं आती। लेकिन मजदूर-वर्गका, जो समाजका बहुत बड़ा वर्ग है, आय या रोजीके बिना थोड़े दिन भी टिकना कठिन है। अपने कामका उचित दर प्राप्त करनेके लिए जब तक वे लड़ें तब तक उन्हें कामके बिना रहना पड़ता है और भूखा मरना पड़ता है। इसलिए भूखों मरनेके बजाय वे उचितसे कम दर पर भी मजदूरी करना लाचारीसे पसन्द कर लेते हैं। इसके सिवा जमींदार और पूंजीपति वर्ग संख्यामें छोटा है और मजदूर-वर्ग संख्यामें बड़ा है। इसलिए मजदूरोंके बीच काम पानेके लिए स्पर्धा अधिक है। इस कारणसे भी उन्हें कम दर पर काम करना पड़ता है।

५ इस प्रकार आज जिस ढंग और सिद्धान्त पर सम्पत्तिका बंटवारा होता है उसमें असमानता और अन्याय है, इसे सब कोई स्वीकार करते हैं।

इस असमानता और अन्यायको दूर करनेके लिए तरह तरहकी योजनाएँ और उपाय भी सुझाये गये हैं। उनकी चर्चा हम आगे करेंगे। अभी तो हम इसी बातकी चर्चा करेंगे कि आजके अर्थतन्त्रमें विभिन्न प्रकारकी आय कैसे निश्चित होती है और वह आय उचित है अथवा अनुचित।

२

भाडा

१ किसी भी स्थावर या जंगम वस्तुका स्वामित्व-अधिकार रखनेवाला आदमी उस वस्तुको निश्चित समयके लिए दूसरे आदमीको उपयोगके लिए दे और उसके बदलेमें उससे कोई निश्चित की हुई रकम ले तो उस रकमको भाडा कहते हैं। भाडा शब्द सामान्य व्यवहारमें इसी अर्थमें उपयोग किया जाता है। इस तरहसे बहुतसी वस्तुएँ भाडे पर ली जाती हैं और दी जाती हैं। मकान मालिक अपना मकान दूसरोंको रहनेके लिए भाडे पर देते हैं। हम एक जगहसे दूसरी जगह जानेके लिए बग्घी, घोडागाडी या मोटर भाडेसे ले जाते हैं। रेलगाडीमें यात्रा करनेके लिए हम जो टिकट लेते हैं वह रेलका भाडा ही है। इसी तरह बाजारमें बरतन भाडे फर्नीचर और सजावटका सामान भी भाडेसे मिलता है। बिक्रीमें बेचनेवाला मनुष्य अपनी मालिकीकी वस्तु उसकी कीमत लेकर हमेशाके लिए दूसरेको दे देता है। भाडेसे देनेवाला मनुष्य उस वस्तुको नियत किये हुए समयके लिए दूसरेको उपयोगके लिए देता है और उसका भाडा लेता है। यह भाडा मालिक इसलिए लेता है कि उस वस्तुके बनानेमें या तो उसने कुछ श्रम खर्च किया है या उसे प्राप्त करनेमें पूंजी लगाई है। इसलिए जब यह दूसरेको काममें लेनेके लिए वह वस्तु देता है और इस उपयोगके कारण हीं उस वस्तुकी कुछ घिसाई भी होती है तो उसके बदलेके रूपमें उपभोग करनेवाले मनुष्यसे वह थोडा-बहुत मुआवजा लेता है। यह मुआवजा अपने श्रम या पूंजीके फलस्वरूप प्राप्त वस्तुको दूसरेके उपभोगके लिए देनेका बदला है। इसमें दो पक्षोंके बीच करार होना है और भाडेकी रकम तथा वस्तुके उपयोगकी दूसरी शर्तें करारसे तय होती हैं। इस भाडेको करारसे तय किया हुआ भाडा अथवा करार भाडा (कॉण्ट्रैक्ट रेण्ट) कहते हैं।

२ अर्थशास्त्रमें भाड़ेका विचार सिर्फ इस सामान्य या प्रचलित अर्थमें ही नहीं बल्कि एक विशेष अर्थमें किया जाता है। हमने ऊपर जो वस्तुएं गिनाईं—जैसे घर, घोड़ागाड़ी, फर्नीचर, बरतन-भांडे आदि—उनका तात्त्विक स्वरूप देखें, तो ये सब वस्तुएं मनुष्यके श्रमसे बनी हुई होनेके कारण कुदरती सम्पत्तिसे भिन्न प्रकारकी हैं। ये वस्तुएं उपयोगके लिए देनेका जो बदला लिया जाता है उसे भले ही हम भाड़ा कहें, परन्तु आगे चलकर हम देखेंगे कि वास्तवमें यह उन वस्तुओंमें लगाई हुई पूंजीका ब्याज है। भाड़ेका विचार हमें कुदरती सम्पत्तिके सम्बन्धमें करना है।

३ हमने कुदरतको अथवा कुदरतकी दी हुई साधन-सम्पत्तिको उत्पादनका एक अंग माना है। कुदरतकी दी हुई विपुल साधन-सम्पत्तिमें जमीन, खानें और जंगल मुख्य माने जाते हैं। उनके भाड़ेका इस प्रकरणमें हमें विचार करना है। यह समझनेके लिए कि इन तीन वस्तुओंके भाड़ेका प्रश्न किस तरह पैदा होता है, इन तीनोंकी मुख्य विशेषताओंका यहां उल्लेख करना पड़ेगा। एक तो पूंजी और श्रमकी तरह इन वस्तुओंकी मात्रा बढ़ाई घटाई नहीं जा सकती। मांगको ध्यानमें रखकर पूंजी और श्रममें वृद्धि करनी हो तो की जा सकती है। यद्यपि मजदूरोंकी संख्या हम जितनी चाहें उतनी नहीं बढ़ा सकते, परन्तु उसके बजाय भौतिक शक्तियोंका उपयोग करके और नई नई मशीनोंकी खोज करके अर्थात् पूंजीमें वृद्धि करके हम मजदूरोंकी तंगीका उपाय कर सकते हैं। परन्तु जमीनकी मात्रा तो परिमित ही है। कोई नये खोज हुए प्रदेशमें नई बस्ती बसाई जाय तो वहांकी जमीन हम काममें ला सकते हैं और इस तरह जमीनकी मात्रामें वृद्धि हो सकती है, परन्तु जहां तक हमारा आजका ज्ञान पहुंचता है वहां तक तो पृथ्वी पर मनुष्यके बसने लायक सारे प्रदेशोंकी खोज हो चुकी है और नई जमीन हमें मिले इसकी संभावना नहीं लगती। इसलिए विभिन्न कामोंके लिए जमीनके उपयोगका सारा खेल हमारे पास जितनी जमीन है उसकी मर्यादामें रहकर ही हमें खेलना है। खानोंके भीतरके खनिज पदार्थों और जंगलोंके उत्पादनकी मात्राके लिए भी यही कहा जा सकता है। खनिज पदार्थों और जंगलोंके उत्पादनकी परिमित मात्रासे ही हमें अपना काम चलाना है।

४ उत्पादनके इन तीन अंगोंके बारेमें दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि सारी जमीन, सारी खानें और सारे जंगल उत्पादनकी दृष्टिसे एकसे कम एकसी शक्ति या एकसे गुणवाले नहीं होते। अधिक उपजाऊ जमीनमें अमुक मात्रामें पूंजी और श्रम लगाने पर जितना उत्पादन होता है उतना उत्पादन

इस असमानता और अन्यायको दूर करनेके लिए तरह तरहकी योजनाएं और कार्यक्रम सुझाये गये हैं। इनकी चर्चा हम आगे करेंगे। अभी तो हम इस बातकी चर्चा करेंगे कि आजके अर्थतंत्रमें विभिन्न प्रकारकी आय कैसे निश्चित होती है और वह आय उचित है अथवा अनुचित।

२

भाडा

१ किसी भी स्थावर या जंगम वस्तुका स्वामित्व-अधिकार रखनेवाला आदमी उस वस्तुको निश्चित समयके लिए दूसरे आदमीको उपयोगके लिए दे और उसके बदलेमें उससे कोई निश्चित की हुई रकम ले तो उस रकमको भाडा कहते हैं। भाडा शब्द सामान्य व्यवहारमें इसी अर्थमें उपयोग किया जाता है। इस तरहसे बहुतसी वस्तुएं भाडे पर ली जाती हैं और दी जाती हैं। मकान मालिक अपना मकान दूसरेको रहनेके लिए भाडे पर देते हैं। हम एक जगहसे दूसरी जगह जानेके लिए बैलगाडी घोडागाडी या मोटर भाडेसे ले जाते हैं। रेलगाडीमें यात्रा करनेके लिए हम जो टिकट लेते हैं वह रेलका भाडा ही है। इसी तरह बाजारमें बरतन भांडे फर्नीचर और सजावटका सामान भी भाडेसे मिलता है। बिक्रीमें बेचनेवाला मनुष्य अपनी मालिकीकी वस्तु उसकी कीमत लेकर हमेशाके लिए दूसरेको दे देता है। भाडेसे देनेवाला मनुष्य उस वस्तुको नियत किये हुए समयके लिए दूसरेके उपयोगके लिए देता है और उसका भाडा लेता है। यह भाडा मालिक इसलिए लेता है कि उस वस्तुके बनानेमें या तो उसने कुछ श्रम खर्च किया है या उसे प्राप्त करनेमें पूंजी लगाई है। इसलिए जब वह दूसरेको काममें लेनेके लिए वह वस्तु देता है और इस उपयोगके कारण ही उस वस्तुकी कुछ घिसाई भी होती है तो उसके बदलेके रूपमें उपभोग करनेवाले मनुष्यसे वह थोडा-बहुत मुआवजा लेता है। यह मुआवजा अपने श्रम या पूंजीके फलस्वरूप प्राप्त वस्तुको दूसरेके उपभोगके लिए देनेका बदला है। इसमें दो पक्षोंके बीच करार होता है और भाडेकी रकम तथा वस्तुके उपयोगकी दूसरी शर्तें करारसे तय होती हैं। इस भाडेको करारसे तय किया हुआ भाडा अथवा करार भाडा (काण्ट्रैक्ट रेण्ट) कहते हैं।

२ अर्थशास्त्रमें भाडेका विचार सिर्फ इस सामान्य या प्रचलित अर्थमें ही नहीं बल्कि एक विशेष अर्थमें किया जाता है। हमने ऊपर जो वस्तुएं गिनाई — जैसे घर घोडागाडी फर्नीचर बरतन भाडे आदि — उनका तात्विक स्वरूप देखें तो ये सब वस्तुएं मनुष्यके श्रमसे बनी हुई होनेके कारण कुदरती सम्पत्तिसे भिन्न प्रकारकी हैं। ये वस्तुएं उपयोगके लिए देनेका जो बदला लिया जाता है उसे भले ही हम भाडा कहें परन्तु आगे चल कर हम देखेंगे कि वास्तवमें यह उन वस्तुओंमें लगाई हुई पूंजीका ब्याज है। भाडेका विचार हमें कुदरती सम्पत्तिके सम्बन्धमें करना है।

३ हमने कुदरतको अथवा कुदरतकी दी हुई साधन सम्पत्तिको उत्पादनका एक अंश माना है। कुदरतकी दी हुई विपुल साधन-सम्पत्तिमें जमीन खान और जंगल मुख्य माने जाते हैं। उनके भाडेका इस प्रकरणमें हमें विचार करना है। यह समझनेके लिए कि इन तीन वस्तुओंके भाडेका प्रश्न किस तरह पैदा होता है इन तीनोंकी मुख्य विशेषताओंका यहां उल्लेख करना चाहिए। एक तो पूंजी और श्रमकी तरह इन वस्तुओंकी मात्रा बढाई घटाई नहीं जा सकती। मांगको ध्यानमें रखकर पूंजी और श्रममें वृद्धि करनी हो तो की जा सकती है। यद्यपि मजदूरोंकी संख्या हम जितनी चाहें उतनी नहीं बढा सकते परन्तु उसके बजाय भौतिक शक्तिका उपयोग करके और नई नई मशीनोंकी खोज करके अर्थात् पूंजीमें वृद्धि करके हम मजदूरोंकी तंगीका उपाय कर सकते हैं। परन्तु जमीनकी मात्रा तो परिमित ही है। कोई नये खोजे हुए प्रदेशमें नई बस्ती बसाई जाय तो वहांकी जमीन हम काममें ला सकते हैं और इस तरह जमीनकी मात्रामें वृद्धि हो सकती है परन्तु जहां तक हमारा आजका ज्ञान पहुंचता है वहां तक तो पृथ्वी पर मनुष्यके बसने लायक सारे प्रदेशोंकी खोज हो चुकी है और नई जमीन हमें मिले इसकी संभावना नहीं दीखती। इसलिए विभिन्न कामोंके लिए जमीनके उपयोगका सारा खेल हमारे पास जितनी जमीन है उसकी मर्यादामें रहकर ही हमें खेलना है। खानोंके भीतरके खनिज पदार्थों और जंगलोंके उत्पादनकी मात्राके लिए भी यही कहा जा सकता है। खनिज पदार्थों और जंगलोंके उत्पादनकी परिमित मात्रासे ही हमें अपना काम चलाना है।

४ उत्पादनके इन तीन अंगोंके बारेमें दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि सारी जमीन सारी खानें और सारे जंगल उत्पादनकी दृष्टिसे एकसे कम एकसी शक्ति या एकसे गुणवाले नहीं होते। अधिक उपजाऊ जमीनमें अमुक मात्रामें पूंजी और श्रम लगाने पर जितना उत्पादन होता है उतना उत्पादन

उतनी ही पूंजी और श्रम लगाने पर भी कम उपजाऊ जमीनोंसे नहीं होता। इसी तरह कुछ खानोंमें से खनिज पदार्थ अधिक आसानीसे और अच्छी जातिके मिल सकते हैं जब कि दूसरी कुछ खानोंमें से उतनी ही पूंजी और श्रम लगाने पर भी बहुत कम और घटिया खनिज पदार्थ मिलते हैं। जंगलोंकी भी यही बात है।

५ इसके अलावा ये तीनों वस्तुएं सम्पूर्णतः स्थावर हैं। पूंजी या मजदूरोंको एक जगहसे दूसरी जगह ले जा सकते हैं, परन्तु जमीन, जंगल या खानोंका उपयोग करना हो तो वे जिस जगह हों वहां मनुष्यको जाना पड़ता है। इसलिए उनकी उपयोगितामें स्थानका बहुत बड़ा हाथ रहता है। उनकी पैदावारका उपयोग आसपासके भागमें जितना किया जा सकता है उतना बहुत दूरके भागमें नहीं हो सकता। क्योंकि उसमें यातायात-खर्चका विचार करना पड़ता है। जितने दूर हम जायंगे उतना यातायात-खर्च बढ़ेगा। फिर किसी जमीनकी सतह बहुत उपजाऊ होने पर भी यदि वह किसी ऐसे जंगलके बीच आ गई हो जहां हिंस्र पशु रहते हों और जहांकी हवा-पानी मनुष्यके रहने योग्य न हो तो ऐसी जमीनको काममें लेनेमें मनुष्यको बहुत डर लगती है। इसलिए जमीनके गुणमें उसके कसके सिवा आबादी और बाजारका सान्निध्य, हवा पानीकी अनुकूलता और जान मालकी रक्षाके तत्त्वोंका भी हिसाब लगाना पड़ता है।

भाड़ेका विशेष अर्थ

६ जमीनके स्वरूपके बारेमें इतनी छानबीन करनेके बाद उसके भाड़ेका प्रश्न समझना बहुत आसान हो जायगा। जब तक किसी देशमें मनुष्यको खेतीके लिए जितनी जमीन चाहिये उतनी हो और ऐसी स्थिति हो कि अपनी पसंदसे जो भी जमीन वह जोतना चाहे उसे जोत सके, तब तक जमीनके उपयोगके लिए किसीको भाड़ा नहीं देना पड़ेगा। जैसे असीम मात्रामें मिलने वाली हवा और पानीके लिए या इसी प्रकारकी दूसरी कुदरती चीजोंके लिए भाड़ा नहीं देना पड़ता, वैसे ही जमीनके लिए भी किसीको भाड़ा नहीं देना पड़ेगा। यदि सम्पूर्ण देशकी सारी जमीन एकसी उपजाऊ होती, बाजारसे समान अंतर पर होती, मात्रामें अमर्यादित होती और दूसरे सब गुणोंमें भी समान होती तो भाड़ेका प्रश्न पैदा नहीं होता। परन्तु क्योंकि जमीन मात्रामें अमर्यादित नहीं है और उपजाऊपन तथा दूसरे गुणोंमें समान नहीं है, इसलिए देशमें जैसे जैसे आबादी बढ़ती जाती है वैसे वैसे खेतीकी जमीन पसंद करनेमें स्पर्धा होती है। हर मनुष्य अच्छीसे अच्छी जमीनमें खेती करना

पसन्द करता है। अच्छी अच्छी जमीनों पर कुछ मनुष्योंका कब्जा और स्वामित्व अधिकार स्थापित हो जाता है। फिर भी अधिक जमीन जोतनेकी आवश्यकता तो होती ही है। इसलिए दिनोदिन कम गुण और कम कसवाली हल्की जमीनमें खेती करना पड़ता है। हल्की जातिकी जमीनको जोतते ही मालूम पड़ जाता है कि एकसी मेहनत और पूजी खर्च करने पर भी ऊंची जातिकी जमीनसे अधिक आय होती है और हल्की जमीनसे कम आय होती है। इन दो प्रकारकी जमीनोंसे उत्पन्न फरकको अर्थशास्त्रमें भाड़ा कहते हैं। भाडा शब्दको हमें जिस विशेष अर्थमें उपयोग करना है वह अर्थ यह है।

७ इस चीजको हम एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे। मान लीजिये कि किसी गांवमें तीन प्रकारकी जमीन है। क प्रकारकी जमीन अत्यन्त उपजाऊ है ख प्रकारकी जमीन उससे कम उपजाऊ है और ग प्रकारकी जमीन उससे भी कम उपजाऊ है। पहले तो लोग क प्रकारकी जमीन जोतना शुरू करेंगे। जब आबादी बढ़ेगी और अधिक अनाजकी आवश्यकता होगी तब लोग ख प्रकारकी जमीन भी जोतने लगेंगे। आबादी और भी बढ़ जाय और अनाजकी जरूरत भी बढ़ जाय तो लोग ग प्रकारकी जमीन भी जोतने लगेंगे। अब मान लीजिये कि १००० रुपयेकी पूजी और श्रम खर्च करनेसे क प्रकारकी जमीनमें १००० मन गेहूं पैदा होता है। परन्तु आबादी बढ़ने पर अनाजकी आवश्यकता बढ़नेके कारण ख प्रकारकी जमीन खेतीके काममें लेनेकी जरूरत पड़ती है। परन्तु घटिया होनेसे १००० रुपयेकी ही पूजी और श्रम खर्च करने पर भी उसमें ७५० मन गेहूं पैदा होता है। आबादी और ज्यादा बढ़ती है और लोगोंको और अधिक अनाजकी आवश्यकता होती है। इसलिए वे ग प्रकारकी जमीन भी जोतने लगते हैं। परन्तु यह जमीन और भी घटिया होती है। इसलिए उसमें १००० रुपयेकी पूजी और श्रम खर्च करने पर भी ५०० मन गेहूं पैदा होता है। इस गेहूंकी भी समाजमें जरूरत तो है ही। अब इन तीनों प्रकारकी जमीनके गेहूं एक ही जातिके होनेके कारण बाजारमें उनका भाव तो एक ही रहेगा। पहले प्रकारकी जमीनवालोंको गेहूंकी लागत कीमत एक रुपया प्रतिमन आती है दूसरे प्रकारकी जमीनवालोंको गेहूंकी लागत कीमत एक रुपया प्रति पौने मन आती है और तीसरे प्रकारकी जमीनवालोंको गेहूंकी लागत कीमत एक रुपया प्रति आधे मन आती है। तीसरे प्रकारकी जमीनवालोंको अपना गेहूं जिस भावमें पैदा होगा उससे सस्ता वे नहीं बेच सकते और उनके गेहूंकी

नहरन तो है ही। इसलिए बाजारमें गहूका भाव तीसरे प्रकारकी जमीन वालोंकी लागत खर्चके अनुसार रहेगा। इस भावसे बचनेमें ग प्रकारकी जमीनवालोंको उनकी लागत हुई पूजी और श्रमका मुआवजा तो मिल जायगा परन्तु भाई नफा नहीं रहेगा। क और ख प्रकारकी जमीनवालोंको गहूका भाव तो ग प्रकारकी जमीनवालेके बराबर ही मिलेगा परन्तु क प्रकारकी जमीनवालोंको १००० रुपयेकी और ख प्रकारकी जमीनवालोंको ५०० रुपयेकी अतिरिक्त आय होगी। ग प्रकारकी जमीनको हम खेतीके लिए पहले की जानेवाली अंतिम या सीमा परकी जमीन कहेंगे। यदि इन तीनों प्रकारकी जमीनोंके कुल उत्पादनसे भी अधिक गहूकी जरूरत पड़ रही हो तो उनसे भी हल्की चौथे प्रकारकी जमीन खेतीके काममें लेनी पड़ेगी। उस समय चौथे प्रकारकी जमीन खेतीकी सीमा परकी जमीन मानी जायगी। और इस जमीनमें पैदा होनेवाले गहूकी जो लागत कीमत आयगी उसी भावसे सारे गहू बिकेंगे। जब ऐसा होगा तब तीसरे प्रकारकी जमीनवालोंको भी कुछ मुनाफा रहेगा। लेकिन यदि गहूकी जरूरत कम हो जाय और उसकी माग घट जाय तो ऐसा भी हो सकता है कि तीसरे ग प्रकारकी जमीनवालोंको भी खेती करना आर्थिक दृष्टिसे लाभकारी न हो। क्योंकि गहूकी माग कम होनेसे और यह माग क और ख प्रकारकी जमीनमें उत्पन्न होनेवाले गहूसे पूरी हो जानेके कारण ग प्रकारकी जमीनवालोंको गहूकी जो लागत कीमत पड़ी हो उस कीमत पर कोई गेहू खरीदनेको तैयार नहीं होगा। ऐसे समय पर दूसरे प्रकारकी अर्थात ख प्रकारकी जमीन खेतीकी सीमा परकी जमीन बन जायगी। उसे जोतनेवालोंको अपनी लागत कीमतके बराबर ही मिलेगा। कोई नफा उन्हें नहीं होगा। खेतीकी सीमा परकी जमीनसे अधिक ऊंची जितनी जमीन होगी उस जमीनमें खेती करनेसे नफा रहेगा। इस नफेको जमीनका भाड़ा या लगान कहा जाता है। खेतीकी सीमा परकी जमीनको भाड़ा या लगान न उपजानेवाली जमीन कहते हैं।

८ इस परसे जमीनके भाड़ेकी व्याख्या यह निश्चित की जा सकती है

भिन्न भिन्न कस और गुणवाली जमीनोंमें खेती करने पर हल्कीसे हल्की जमीनमें उत्पन्न होनेवाले मालकी जो लागत कीमत आवे और उससे अधिक अच्छी जमीनमें उत्पन्न होनेवाले मालकी जो लागत कीमत आवे उन दामोंके बीचका अन्तर जमीनका भाड़ा या लगान होता है।

९ हमारे उदाहरणमें क जमीनका भाडा १००० रुपये माना जायगा, ख जमीनका भाडा ५०० रुपये और ग जमीनका भाडा शून्य माना जायगा। ग जमीनवाले इसीलिए खेती करते हैं कि उनको लगाई हुई पूजी और श्रमका बदला उन्हें मिल जाता है। क और ख जमीनवालोंको जो नफा या भाडा मिलता है वह उन्हें जमीनके मालिक होनेके बदलेमें ही मिलता है। इसके लिए उन्हें न तो कोई अधिक श्रम करना पडा और न अधिक पूजी लगानी पडी। इसी तरह विशेष कुशलता भी उन्हें नही दिखानी पडी। इसलिए उन्हें मिले हुए नफे या भाडेको बिना परिश्रमके मिला हुआ नफा अथवा अनुपार्जित नफा कहते हैं। इससे यह साफ हो जाता है कि हम भाडेका जो प्रचलित अर्थ करते हैं और जिसके लिए हमने करार भाडा शब्दका उपयोग किया है उससे अर्थशास्त्रके भाडेका अर्थ बिलकुल भिन्न है। करार भाडेसे अलग करनेके लिए हम इसके लिए आर्थिक भाडा शब्दका उपयोग करेंगे।

१० हम देख चुके हैं कि कारखानोंके उत्पादनकी तुलनामें जमीनके उत्पादनमें घटते उत्पादनका नियम जल्दी अमलमें आता है। घटते उत्पादनका नियम अमलमें आनेके कारण ही यह भाडा या लगान जो बिना परिश्रम किये मिला हुआ नफा है सभव होता है।

११ काल्पनिक उदाहरण लेकर ऊपर किये गये विवेचनमें हम तीन बातें मान कर चलते हैं (१) देशमें जमीन उत्तम उत्पादनवालीसे शुरू होकर उतरते उत्पादनवाली जमीनके क्रमसे जोती जाती है (२) कम उत्पादनवाली जमीनमें खेती करनेका कारण आबादीका बढना है और (३) आबादी जैसे जैसे बढती जाती है वैसे वैसे अनाजकी माग बढनेके कारण उस जमीनकी कीमत भी बढती जाती है और कम उपज देनेवाली जमीनमें खेती होती जाती है वैसे वैसे ऊची जमीनके मालिकोंका भाडा या लगान बढता जाता है।

१२ परन्तु इस उदाहरणकी कल्पना यह समझानेके लिए की गई है कि अर्थशास्त्रमें विशिष्ट अर्थमें भाडा किसे कहते हैं। असलमें खेतीकी जमीन इस किसी क्रमसे नहीं जोती जाती। देशमें जब लोग नई बस्ती बसाते हैं तब जो जमीन पहले उन्हें दीखती है उसीको वे काममें लेते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि यह जमीन हल्की जातिकी हो और फिर ज्यों ज्यों आबादी बढती जाय और लोग आगे बढते जाय वैसे वैसे अच्छी जमीन

प्रदेशमें अधिक उपजाऊ जमीन उनके हाथ लगे। इस तरह कभी कभी तो एसा भी हो सकता है कि आबादीके बढनेके साथ साथ लोग ज्यादा अच्छी जमीन जोतने लगें और इससे अनाजकी कीमत कम हो जाय तथा पुरानी जमीनोंके भाड घटे। इसलिए यह कहना ठीक नहीं कि जमीनका भाडा हमेशा चढता ही जाता है। देशमें ही अधिक उपजाऊ जमीन मिल जानेके सिवा दूसरे देशमें नई बस्ती बसी हो और वहा पराया हुआ सस्ता अनाज पुराने देशमें आये तब भी पुराने देशमें जमीनका भाडा घट जाता है। अमरीकाका सस्ता अनाज जब इंग्लैण्ड जाने लगा तब इंग्लैण्डमें जमीनका भाडा घट गया था। हमारे देशमें सूडानकी सस्ती कपास और आस्ट्रेलियाका सस्ता गेहू आनेके कारण कपास और गेहूके भाव घट गये थे और उसका असर इन चीजोंकी पैदावार करनेवाली जमीनोंके भाडे पर होने लगा था।

१३ इस तरह छुटपुट उदाहरणो पर विचार करें तो कई तरहके अपवाद मिल जाते हैं। परन्तु सब बातोंको देखते हुए इतना निश्चित है कि अधिक अच्छे गुण वस तथा अनुकूलतावाली जमीन और उतरते गुण वस और दूसरी प्रतिकूलतावाली जमीन — इन दोनोंके भाडेमें अन्तर हुए बिना नहीं रहता। और देशकी सारी खेतीके लायक जमीन खेतीके काममें आने लग जाय उसके बाद अधिक उपजाऊ और अनुकूलतावाली जमीनके मालिकोंको अनुपार्जित नफा मिलता ही है।

१४ खेतीके भी मकान बनाने लायक जमीनकी कीमतमें इस तरहका अनुपार्जित नफा बहुत बार एकाएक होने लगता है। किसी गाव या शहरमें कोई मुहल्ला अंतिम सिरे पर हो और वहा प्रतिष्ठित लोगोंकी आबादी भी न हो तो उस समय एसी जमीनकी कीमत कम होती है। परन्तु बस्ती बढनेके कारण या इस मुहल्लेकी अन्य कोई अनुकूलता ध्यानमें आनेके कारण उस भागमें आबादी बढने लगे तो वहाकी जमीनके भाव एकदम बढ जाते हैं। शहरोंमें तो नये रास्ते बन जानेसे भी रास्ते पर पडनेवाली जमीनके भाव बढ जाते हैं। एसे मौका पर उन जमीनोंके मालिकोंको बहुत बडा अनुपार्जित नफा मिल जाता है। यही न्याय जगलो पर और खानो पर भी लागू होता है। जैसे जैसे उनकी पैदावारकी माग बढती जाती है वैसे वैसे कम उपजाऊ जगल और खानें काममें ली जाती हैं और अधिक उपजाऊ जगलो तथा खानोंके मालिकोंको अनुपार्जित नफा मिलने लगता है।

१५ ऊपरकी विचारसरणीके अनुसार हमें यह मानना पडेगा कि हर देशमें बिना भाड की कुछ जमीन तो होनी ही चाहिये। क्योंकि किसानको

अपनी लगाई हुई पूंजी और श्रमका बदला मिल जानेके बाद कुछ बचे तभी तो वह भाड़ा देगी? परन्तु हमारे देशमें वस्तुस्थिति कुछ और ही है। किसानोंके बड़े भागको खेतीमें लाभ नहीं होता अर्थात् उन्हें अपनी जमीनसे निर्वाहके लायक आय भी नहीं मिलती। फिर भी वे खेती करते हैं क्योंकि खेती करें तो ही उन्हें कोई रुपया उधार देनेवाला मिलता है। यह समझकर कि उनकी मेहनत मजदूरीका जितना शोषण हो सके उतना ही सही पैसा उधार देनेवाले लोग निकल आते हैं, और किसान सोचते हैं कि बिल्कुल भूखा मर जानेसे तो आधे पेट रहकर भी यदि जी सकें तो जीना चाहिये। यह समझकर वे खेती करते रहते हैं। यदि उनकी अपनी जमीन न हो तो वे आर्थिक दृष्टिसे लाभकारी सिद्ध न होनेवाली जमीनका भी भाड़ा या लगान देकर खेती करते हैं। इससे हमारे देशमें जो जमीन आर्थिक दृष्टिसे भाड़े या लगानके लायक नहीं होती उसका भी लगान मिल जाता है। जमीनमें भाड़ेके लायक वस या गुण न होने पर भी और स्वयं कोई श्रम न करने पर भी जमीन पर स्वामित्वका अधिकार होनेके कारण ही ऐसे जमींदारोंको भाड़ा या लगान मिलता है। ऐसे जमींदारोंको जो आय होती है वह जमीनके उपजाऊपनके कारण नहीं होती परन्तु जमीनकी तंगीके कारण ही होती है। इसलिए यह आय अनुपार्जित होनेके अलावा शोषणकारी भी होती है।

१६ इससे उलटे यह कहना भी ठीक नहीं कि आज जितने जमींदारोंको भाड़ा या लगान मिलता है उन सबके लिए वह अनुपार्जित आय ही है। आज जितनी जमीन भाड़े या लगान पर दी जाती है वह सारी आरंभमें कुदरती उपजाऊपनवाली नहीं थी। उस जमीनको सुधारनेमें काफी पूंजी लगाई गई तब कहीं वह उपजाऊ बनी है। आज बहुत थोड़ी जमीन अपने मूल कुदरती स्वरूपमें होगी। लगभग सारी जमीनको सुधारनेमें श्रम और पूंजी खर्च करनी पड़ी है। जमीनकी सतह शायद उपजाऊ हो परन्तु वह झाड़-झंखाड़से भरी हो या अच्छी समतल न हो, तो उस पर श्रम और पूंजी लगानेसे ही उसके उपजाऊपनका लाभ मिलता है। कुछ जमीनोंकी सतह बिल्कुल हल्की होती है जिससे उसमें खाद दे देकर उसे उपजाऊ बनाया जाता है। ऐसी जमीनका जो भाड़ा या लगान मिलता है वह हमने भाड़ेका जो अर्थ किया है उस अर्थमें भाड़ा नहीं होता बल्कि उसके मालिक द्वारा खर्च की हुई पूंजीका ब्याज होता है। जमीनका भाड़ा सच्चा आर्थिक भाड़ा नहीं बल्कि पूंजीका ब्याज हो, इसके कुछ बिल्कुल स्पष्ट उदाहरण भी हैं। मान लीजिये कोई

जमीन उसके उपजाऊपन अथवा दूसरे गुणों जैसे बाजारका नजदीक होना बढ़िया मुहल्ला आदि परसे लगाई हुई बाजार कीमत पर किसी मनुष्यने लगाई है। तो उसे जो आय होती है वह तो उस जमीनमें लगाई हुई पूंजीका ब्याज ही होती है। आबादी बढ़नेके साथ या दूसरे कारणोंसे जमीनकी जो अधिक आय होती है और कीमत बढ़ती है उसका लाभ जब बहुत पुराने समयसे जमीनके मालिक बने हुए जमींदारोंको मिलता है तब अवश्य वह अनुपार्जित नफा होता है। लेकिन इस नफेके कारण जमीनकी कीमत उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है और बढ़ी हुई कीमत पर जो जमीन खरीदता है उसे अनुपार्जित लाभ नहीं मिलता।

भाड़ेका अनौचित्य

१७ जमीनों जगहों या खानोंके मालिकोंको जो अनुपार्जित नफा मिलता है उस पर उचित रूपमें किस हद तक उनका अधिकार माना जा सकता है इस प्रश्नके विचारमें सब अर्थ शास्त्री नहीं जाना चाहते हैं। हम भी इस प्रकरणके लिए उसे अलग रखकर ब्याजके प्रकरणमें उसका विचार करेंगे। क्योंकि ब्याज खानेके बारेमें भी अनुपार्जित नफे जैसा ही प्रश्न सामने आता है। आर्थिक भाड़ेका या अनुपार्जित नफेका ऊपर जो पृथक्करण हमने किया है उससे इतना तो अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि जिन लोगोंको अनुपार्जित नफा मिलता है उनका इन जमीनों जगहों और खानोंके मालिक होनेके सिवा उत्पादनके कायम किसी तरहका हाथ नहीं होता। उत्पादन बढ़ानेके लिए वे कोई श्रम करते हों बुद्धि या कुशलताका उपयोग करते हों और अच्छी योजना बनाते अथवा व्यवस्था करते हों तब तो उसके बदलेमें भी उनका कुछ मेहनताना गिना जा सकता है। परन्तु वे लोग तो बड़े मुफ्तखोर होते हैं। उनमें से अधिकतर तो अपनी जमीन पर रहते तक नहीं। शहरमें रहकर बैठे बैठे जो आय उन्हें जमीनमें से मिल जाती है उसी पर गुलछर्रे उड़ाते हैं। बहुतेरे अपनी जमीन कभी देखी भी नहीं होती। ऐसोंको अनुपस्थित जमींदार (एब्सेण्टी लैण्डलार्ड) कहते हैं। जमीनकी अच्छी सभाल होती है या नहीं उस पर काम करनेवाले किसान कैसा जीवन बिताते हैं उनको और उनके बाल बच्चोंको पेट भर अन्न मिलता है या नहीं और इन किसानोंको उनके साहूकार कैसे सताते हैं — इनमें से एक भी बात देखनेकी उन्हें चिन्ता नहीं होती। उनमें से बहुतोंको तो अपनी ही सभाल करनेकी अक्ल नहीं होती तब वे किसानोंकी क्या सभाल करेंगे? मुफ्तकी आय मिलनेसे वे आलसी बन जाते हैं तथा उड़ाऊ दुराचारी और

व्यसनी जीवन बिताते हैं और कर्जमें डूबे रहते हैं। उन्हें जो भाड़ा मिलता है वह हमारे देशमें तो सच्चे अर्थमें अनुपार्जित नफा भी नहीं होता। किसानों पर वह एक बोझ ही होता है। अनुपार्जित नफा वह तभी कहलाये जब किसानोंको अपनी मजदूरीका पूरा पूरा बदला मिल जाय और उसके बाद कुछ बचे। किसानोंकी कंगाल और ऋणग्रस्त स्थिति यह बताती है कि उन्हें अपनी मेहनतका बदला नहीं मिल पाता। इसीलिए यह भाड़ा या लगान किसानों पर एक बोझ होता है। जमींदार मुफ्तखोर न रहकर अपनी जमीनका उत्पादन बढ़ानेके लिए किसानोंके साथ मिलकर काम करें तो इस कामके मेहनतानेके रूपमें उन्हें जरूर कुछ मिल सकता है। परन्तु इस तरह काम करनेको वे तैयार न हों तो जमीन पर उनका स्वामित्व-अधिकार अनुचित है और यह अधिकार उनसे छीन लिया जाना चाहिये ऐसा कहना गलत नहीं होगा। उत्पादनके साधनोंमें जमीन बहुत बड़ा साधन है और कोई काम किये बिना केवल उस पर स्वामित्व अधिकार रखनेके कारण उसकी आयका बड़ा हिस्सा वे लोग हड़प लें यह भारी सामाजिक और आर्थिक अन्याय है। इसीलिए समाजवादी लोग जो यह मानते हैं कि उत्पादनके सारे साधनोंका स्वामित्व-अधिकार मिट जाना चाहिये ऐसा कहते हैं कि जमीनका स्वामित्व-अधिकार जल्दीसे जल्दी मिट जाना चाहिये। गांधीजी भी 'सब भूमि गोपालकी' यह वचन उद्धृत करके कहते हैं कि जो मेहनत करे उसकी जमीन होनी चाहिये यही सच्चा न्याय है। फिर भी वे कहते हैं कि जमींदार यदि अपनी जमीनके मालिक रहना चाहें तो मालिकके कर्तव्य पूरे करके ही वे मालिक रह सकते हैं। उन्हें अपनी जायदादके ट्रस्टी बन जाना चाहिये। उन्हें यह अनुपार्जित नफा तो नहीं मिलेगा लेकिन ट्रस्टीके नाते उनकी सेवाका जो उचित मेहनताना होगा वह मिलेगा। हमारी खेतीकी उन्नतिके लिए किसानोंको विविध प्रकारकी सहायता और मार्गदर्शनकी जरूरत है। यह काम यदि जमींदार अपनी जायदादके ट्रस्टी बनकर करने लगें तो फिर भले वे अपनेको जमीनके मालिक मानें या मनवायें। परन्तु इस जमीनकी आयमें से कुछ भी लेनेके अधिकारी तो वे उसी हालतमें माने जायेंगे जब उन्होंने उसके उत्पादनके काममें अपनी सेवाका कुछ हिस्सा दिया होगा। इस सेवाका उचित मेहनताना ही उन्हें मिलेगा। परन्तु आज उन्हें जो भाड़ा मिलता है उसके अधिकारी तो वे हैं ही नहीं। इस अनुपार्जित नफे या आर्थिक भाड़े पर किसी व्यक्तिका नहीं बल्कि सारे समाजका अधिकार होना चाहिये।

जमीन उसके उपजाऊपन अथवा दूसरे गुणो, जैसे बाजारका नजदीक होना बढ़िया मुहल्ला आदि परसे लगाई हुई बाजार कीमत पर किसी मनुष्यने खरीदी ह। तो उसे जो आय होती है वह तो उस जमीनमें लगाई हुई पूजीका ब्याज ही होती है। आबादी बढ़नके साथ या दूसरे कारणोंसे जमीनसे जो अधिक आय होती है और कीमत बढ़ती है उसका लाभ जब बहुत पुराने समयसे जमीनके मालिक बने हुए जमीदारोंको मिलता है तब अवश्य वह अनुपार्जित नफा होता है। लेकिन इस नफेके कारण जमीनकी कीमत उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है और बढ़ी हुई कीमत पर जो जमीन खरीदता है उसे अनुपार्जित लाभ नही मिलता।

भाड़का अनौचित्य

१७ जमीनो जगलो या खानोंके मालिकोको जो अनुपार्जित नफा मिलता है उस पर उचित रूपमें किस हद तक उनका अधिकार माना जा सकता है इस प्रश्नके विचारमें स य नय खरीदार बरी होना चाहते हैं। हम भी इस प्रकरणके लिए उन्हे अलग रखकर ब्याजके प्रकरणमें उनका विचार करेंगे। क्योकि ब्याज खानेके बारेमें भी अनुपार्जित नफे जैसा ही प्रश्न सामने आता है। आर्थिक भाड़का या अनुपार्जित नफेका ऊपर जो पृथक्करण हमने किया है उससे इतना तो अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि जिन लोगोको अनुपार्जित नफा मिलता है उनका इन जमीनो जगलो और खानोके मालिक होनेके सिवा उत्पादनके कार्यमें किसी तरहका हाथ नही होता। उत्पादन बढ़ानेके लिए वे कोई श्रम करते हो बुद्धि या कुशलताका उपयोग करते हो और अच्छी योजना बनाते अथवा व्यवस्था करते हो तब तो उसके बदलेमें भी उनको कुछ मेहनताना गिना जा सकता है। परन्तु वे लोग तो बड़े मुफ्तखोर होते ह। उनमें से अधिकतर तो अपनी जमीन पर रहते तक नहीं। शहरमें रहकर बैठे बैठे जो आय उन्हे जमीनमें से मिल जाती है उसी पर गुलछर्रे उड़ाते ह। बहुतोने अपनी जमीन कभी देखी भी नही होती। ऐसोको अनुपस्थित जमीदार (एबसेण्टी लैण्डलार्ड) कहते ह। जमीनकी अच्छी सभाल होती है या नही उस पर काम करनेवाले किसान कैसा जीवन बिताते है उनको और उनके बाल बच्चोको पेट भर अन्न मिलता है या नही और इन किसानोको उनके साहूकार कैसे सताते ह — इनमें से एक भी बात देखनेकी उन्हे चिन्ता नही होती। उनमें से बहुतोको तो अपनी ही सभाल करनेकी अक्ल नही होती तब वे किसानोकी क्या सभाल करेंगे? मुफ्तकी आय मिलनेसे वे आलसी बन जाते ह तथा उड़ाऊ दुराचारी और

व्यसनी जीवन बिताते हैं और कर्जमें डूबे रहते हैं। उन्हें जो भाड़ा मिलता है वह हमारे देशमें तो सच्चे अर्थमें अनुपार्जित नफा भी नहीं होता। किसानों पर वह एक बोझ ही होता है। अनुपार्जित नफा वह तभी कहलाये जब किसानोंको अपनी मजदूरीका पूरा पूरा बदला मिल जाय और उसके बाद कुछ बचे। किसानोंकी कंगाल और ऋणग्रस्त स्थिति यह बताती है कि उन्हें अपनी मेहनतका बदला नहीं मिल पाता। इसीलिए यह भाड़ा या लगान किसानों पर एक पाप होता है। जमींदार मुफ्तखोर न रहकर अपनी जमीनको उत्पादक बनानेके लिए किसानोंके साथ मिलकर काम करें तो इस कामके मेहनतानेके रूपमें उन्हें जरूर कुछ मिल सकता है। परन्तु इस तरह काम करनेको वे तैयार न हों तो जमीन पर उनका स्वामित्व-अधिकार अनुचित है और यह अधिकार उनसे छीन लिया जाना चाहिये ऐसा कहना गलत नहीं होगा। उत्पादनके साधनोंमें जमीन बहुत बड़ा साधन है और कोई काम किये बिना केवल उस पर स्वामित्व अधिकार रखनेके कारण उसकी आयका बड़ा हिस्सा ये लोग हड़प लें यह भारी सामाजिक और आर्थिक अन्याय है। इसीलिए समाजवादी लोग जो यह मानते हैं कि उत्पादनके सारे साधनोंका स्वामित्व-अधिकार मिट जाना चाहिये ऐसा कहते हैं कि जमीनका स्वामित्व-अधिकार जल्दीसे जल्दी मिट जाना चाहिये। गांधीजी भी 'सब भूमि गोपालकी' यह वचन उद्धृत करके कहते हैं कि जो खेती करे उसकी जमीन होनी चाहिये यही सच्चा न्याय है। फिर भी वे कहते हैं कि जमींदार यदि अपनी जमीनके मालिक रहना चाहें तो मालिकके कर्तव्य पूरे करके ही वे मालिक रह सकते हैं। उन्हें अपनी जायदादके ट्रस्टी बन जाना चाहिये। उन्हें यह अनुपार्जित नफा तो नहीं मिलेगा लेकिन ट्रस्टीके नाते उनकी सेवाका जो उचित मेहनताना होगा वह मिलेगा। हमारी खेतीकी उन्नतिके लिए किसानोंको विविध प्रकारकी सहायता और मार्गदर्शनकी जरूरत है। यह काम यदि जमींदार अपनी जायदादके ट्रस्टी बनकर करने लगें तो फिर भले वे अपनेको जमीनके मालिक मानें या मनवायें परन्तु इस जमीनकी आयमें से कुछ भी लेनेके अधिकारी तो वे उसी हदतकमें माने जायंगे जब उन्होंने उसके उत्पादनके काममें अपनी सेवाका कुछ हिस्सा दिया होगा। इस सेवाका उचित मेहनताना ही उन्हें मिलेगा। परन्तु आज उन्हें जो भाड़ा मिलता है उसके अधिकारी तो वे हैं ही नहीं। इस अनुपार्जित नफे या आर्थिक भाड़े पर किसी व्यक्तिका नहीं बल्कि सारे समाजका अधिकार होना चाहिये।

३

ब्याज

बचत

१ मनुष्यको जो आय होता है उसमें से थोड़ी-बहुत रकम बचानेकी इच्छा वह रखता ही है। मनुष्य जानता है कि अमुक उमरके बाद वह अच्छी तरह काम नहीं कर सकेगा और उसकी आय या रोजी आगे-पीछे बन्द होनेवाली है। इसलिए वह बीमारी, दुर्घटना और बुढ़ापेमें काम आनेके लिए थोड़ा-बहुत बचाकर रखनेकी कोशिश करता है। खास करके मजदूरी और नौकरी करनेवाले लोगोंको ऐसी बचत करनेकी ज्यादा जरूरत होती है। परन्तु पूंजीपति और जमींदार भी ऐसा विचार न करते हों सो बात नहीं। जो लोग इस हेतुसे बचाना चाहते हैं उन्हें बचत करनेके लिए और किसी विशेष लालचकी जरूरत नहीं होती। भविष्यमें परेशान न होना पड़े इसी हेतुसे वे बचत करनेके लिए प्रेरित होते हैं। लेकिन जितने लोग बचत करना चाहते हैं उतने सब बचत नहीं कर पाते क्योंकि कुल आबादीके बहुत बड़े हिस्सेकी दशा तो ऐसी होती है कि उनका रोजका गुजारा भी कठिनाईसे होता है। इनसे ऊपरका कुछ भाग ऐसा होता है जो काट-कसर करके कुछ बचा सकता है। और प्रत्येक समाजमें ठेठ ऊपरका वर्ग ऐसे लोगोंका भी होता है जिन्हें बचत करनेके लिए कोई किफायत नहीं करनी पड़ती। वे खुले हाथों जितना खर्च करना चाहते हैं करते हैं फिर भी उनकी आय इतना अधिक होती है कि वे पूरीकी पूरी आय खर्च नहीं कर सकते। ऐसे लोग जरा भी तंगी भोग बिना बहुत बड़ी बचत कर सकते हैं।

२ मनुष्य अपनी बचत घरमें नहीं रख छोड़ते। समाजमें उद्योग धंधे चलानेके लिए जो पूंजी चाहिये उसमें वे अपनी बचत लगाते हैं। लोग युगोंसे जो बचत करते आये हैं वह सब पूंजीके रूपमें इकट्ठी हो गई है और प्रतिदिन जो नई बचत होती जाती है वह उस एकत्र पूंजीमें जुड़ती जाती है।

३ फिर समाजमें जितना उत्पादन होता है वह सब उपभोगके लिए नहीं होता। कुछ उत्पादन तो उपभोगकी चीजें बनानेका साधन ही होता है जिसे हम उत्पादन-संपत्ति कह चुके हैं। यह उत्पादन भी आज तककी एकत्र पूंजीमें जुड़ता जाता है। जो लोग इस पूंजीके मालिक हैं और जो नई बचत

करके उसे पूजीके रूपमें उपयोग करनेके लिए दूसरोंको देते हैं व अपनी पूजीके उपयोगका बदला मांगते है। इस बदलेका ब्याज कहा जाता है। आजकल सारी पूजीकी कीमत पैसेके रूपमें गिनी जाती है और लोग अपनी बचत भी पैसेके रूपमें करते है इसलिए ब्याजकी गिनती पैसे पर की जाती है।

४ ऐसा भी होता है कि जिनके पास अतिरिक्त पैसा रहता है वे हमेशा उसे किसी उत्पादक काममें ही नहीं लगाते। किसी आदमीको विवाह या मृत्यु जैसे सामाजिक प्रसंगों पर खर्च करनेके लिए पैसेकी जरूरत होती है या अपना घरखर्च चलानेके लिए पैसेकी जरूरत होती है या किसी धनवान आदमीको उड़ाऊ ढंगका ऐश-आराममें उड़ानेके लिए पैसेकी जरूरत होती है। इस तरहके कामोंमें खर्च करनेको भी पैसा लिया जाता है। उसका भी पैसेका मालिक ब्याज तो लेता ही है। किसी चीजका मालिक अपनी चीज एक निश्चित समयके लिए दूसरेको उपयोग करनेके लिए देता है तब जैसे वह उसका भाड़ा लेता है वैसे ही पैसा देते समय उसके भाड़ेके रूपमें पैसेके उपयोगके बदलेके रूपमें ब्याज लिया जाता है। यह पैसा उत्पादक काममें लगता है या अनुत्पादक काममें यह प्रश्न ब्याज पर रुपया देनेवालेके सामने गौण होता है।

५ इस तरह पैसेका ब्याज मिलनेके कारण जो व्यक्ति कुछ भी बचत कर सकता है वह बचत करके अपने बचाये हुए पैसेका ब्याज पैदा करना चाहता है। इस प्रकार एक हद तक ब्याज भी बचत करनेकी प्रेरणा देनेवाला कारण हो जाता है। कुछ लोग यह विचार भी करते है कि इतना पैसा बचा कर रखा जाय कि जिससे ब्याज चलकर ब्याजमें उनका निर्वाह हो सके। कुछ लोग अपने बचाये हुए पैसेको पैसेके रूपमें ब्याज पर न देकर उससे मकान या जमीन खरीद लेते है। यह इसलिए कि जायदाद उनके अधिकारमें रहे और उससे भाड़ेकी आय भी हो। हम पिछले प्रकरणमें कह चुके है कि वास्तवमें इस तरहका भाड़ा ब्याज ही है।

बचतके स्थानमें खतरे

६ बचतका तात्त्विक अर्थ यह है कि जो रकम हम आज खर्च कर सकते है उसे भविष्यमें खर्च करनेके लिए रख छोड़ते है। ऐसा करनेमें लाभ है, उनके साथ कुछ खतरे भी जुड़े रहते है। संभव है आज पैसेका जो मूल्य है वह भविष्यमें न रहे। यह भी हो सकता है कि बचाये हुए पैसेसे आज हमने जो मकान या जमीन खरीदी हो उसका दाम भविष्यमें कम हो जाय। कई बार अकस्मात लाभ भी हो जाता है। संभव है पैसेका मूल्य

भविष्यमें घट जाय अथवा खरीदे हुए घर या जमीनकी कीमत घट जाय। इसी तरह यह भी सभव है कि जिन उद्योगोंमें पैसा लगाया हो व टूट जाय या और ज्यादा विकसित हो जाय। इस तरह बचाये हुए पैसेको किसी उद्योग या जायदाद आदिमें लगानेमें अनुमान लाभ या हानिकी सभावना रहती है। बचत करने और उसे लगानेमें खतरा तो पूरा पूरा रहता है। पैसा लगानेवाला इस तरहका खतरा उठाता है यह ब्याजके बचावमें एक जोरदार तर्क है।

७ मनुष्य अपने पासका पैसा लगाते समय ब्याजके रूपमें होनेवाला आयका लाभ और पैसा लगानेमें समाया हुआ खतरा—दोनोंकी तुलना करके पैसा लगाता है। लगाया हुआ पैसा जब इच्छा हो तब वापस लिया जा सके तो खतरा कम रहता है और पैसा किसी नियत अवधिके लिए लगाया जाय तो खतरा ज्यादा रहता है। इसमें भी अवधि जितनी लम्बी होगी खतरा उतना ही ज्यादा होगा। मनुष्यके सामने बहुत ज्यादा ब्याजका प्रलोभन न हो तो वह दस वर्षकी अवधिके लिए पैसा उधार देनेके बजाय पाच ही वर्षके लिए पैसा उधार देना पसन्द करेगा। लेकिन अधिक ब्याजके लोभमें मनुष्य लम्बी अवधिके लिए पैसा उधार देता है। खतरा और आयका लाभ इन दो चीजोंका विचार करके मनुष्य विभिन्न प्रकारसे अपनी बचतका पैसा लगानेको प्रेरित होता है। इनमें से मुख्य प्रकार यहा गिनाये जाते है (१) मकान और जमीन जैसी स्थावर जायदाद खरीदनेमें जिससे भाडा मिले (२) सराफके यहा अथवा बैंकके चालू खातेमें (३) सराफके यहा या बैंकमें नियत अवधिके खातेमें (४) सरकारी लोन या म्युनिसिपलिटी या लोकल बोर्डके डिबेंचरोंमें (५) कारखानोंके शेयरोंमें (६) स्थावर जायदादकी जमानत पर लिये जानेवाले उधारमें।

८ पूर्ण सुरक्षितताकी दृष्टिसे देखें तब तो मनुष्यके लिए अधिकसे अधिक सुरक्षित मार्ग यही है कि वह अपना पैसा अपनी पेटी या तिजोरीमें बन्द करके रखे। इसमें भी चोर डाकुओंका डर तो रहता ही है। परन्तु इस तरह पैसा रखनेवाले लोग भी है। कुछ लोग घरमें पैसा रख छोडनेके बजाय चादी-सोने अथवा हीरे मोतीके गहने रखते है। इससे अपनी बचतको सुरक्षित रखनेके साथ ही अपनी अमीरी दिखानेका मौका भी उन्हें मिलता है। परन्तु यह प्रथा अब अधिक प्रचलित नहीं है। धनी लोग भी बहुत कीमती गहने नहीं रखते क्योंकि ये लोग भी यह हिसाब तो करते ही है कि इसमें ब्याजका नुकसान होगा। बिल्कुल छोटी बचत कर सकनेवाले साधारण स्थितिके

लोग सेविंग बैंककी सुविधाके कारण अपना पैसा घरमें रख छोड़नेके बजाय व्याजके लोभसे सेविंग बैंकमें रखना ज्यादा पसन्द करते हैं। इससे पैसा चोरी जानेका डर नहीं रहता और व्याजकी आय भी होती है।

९. व्याजकी दरकी दृष्टिसे देखें तो बैंक अथवा सराफके चालू खातेमें कमसे कम व्याज मिलता है क्योंकि बैंक या सराफके यहां जमा कराया हुआ पैसा हम जब चाहें तब निकाल सकते हैं। नियत अवधिका व्याज स्वभावतः ज्यादा होता है। उसमें भी अवधि जितनी लम्बी होती है व्याजकी दर उतनी ही ज्यादा मिलती है। सरकारी लोनमें सराफी खातेसे ज्यादा व्याज मिलता है, क्योंकि यद्यपि लोन बाजारमें जब चाहें तब बिक सकता है फिर भी बहुत बार लोन बेचने जाने पर बट्टा या कमीशन देना पड़ता है। कारखानोंके शेयरोंमें यह निश्चित नहीं होता कि कितना व्याज मिलेगा। शेयरोंके भावोंमें फेरबदल होनेकी संभावना रहती है और सब कारखानोंके शेयर बाजारमें तुरन्त बिक नहीं सकते। इसलिए हम जब चाहें तब उनका पैसा नहीं मिल सकता। इस तरह इन शेयरोंमें पैसा लगाना सुरक्षितताकी दृष्टिसे अच्छा नहीं माना जाता। परन्तु इसमें यह प्रलोभन होता है कि कारखानेका अच्छा नफा हो तो बड़े डिविडेंड मिलते हैं और शेयरोंके भाव भी बढ़ जाते हैं। स्थावर जायदाद पर भी अधिक व्याज मिलता है, परन्तु इसमें भी जब चाहें तब पैसा निकल नहीं सकता। पैसा वसूल करनेके लिए मकान बेचनेका मौका आये तो मकान बेचनेमें देर लगती है, साथ ही इसमें कानूनकी विधियां पूरी करनी पड़ती हैं। सार यह कि खतरा और असुविधा जितनी अधिक होती है उतनी ही व्याजकी दर अधिक मिलती है।

व्याजके कारण

१०. अब हम इस प्रश्नका विचार करेंगे कि व्याज पर पैसा लेनेवाला मनुष्य किसलिए व्याज देनेको तैयार होता है। ऐसे कुछ उदाहरण होते हैं जिनमें लोग फिजूलखर्ची और ऐश आराम करनेके लिए कर्ज लेते हैं। ऐसे लोग अविचारी होते हैं और उन्हें पैसा उधार देना बड़े खतरेका काम है। ऐसे लोग बिना सोच-समझे चाहे जितना व्याज देते हैं। परन्तु अधिकतर कर्ज अधिक लाभके खातिर सोच-समझकर लिया जाता है। हम देख चुके हैं कि हर तरहके उत्पादनके काममें श्रमके साथ साथ पूंजीकी जरूरत होती ही है। छोटे पैमाने पर उत्पादन हो तो थोड़ी पूंजी चाहिये और बड़े पैमाने पर उत्पादन हो तो अधिक पूंजी चाहिये। जमीनसे सारा काम श्रम करनेवाले किसानको भी हल के लिए, गाड़ीके लिए, बैलोंके लिए, बीजके लिए और मौसमके लिए

इसलिए मजदूरोंकी मजदूरी चुकानेके लिए पूंजीकी जरूरत पड़ती ही है। कारखानेदारोंको मशीनें खरीदनेके लिए पूंजीकी जरूरत पड़ती है। पूंजीकी बहुलताके कारण वे अच्छे साधन काममें लें तो अन्तमें उन्हें अधिक मुनाफा होता है। परन्तु पूंजीके उपयोगकी भी सीमा होती है। उद्योग-धंधेमें पूंजी बढ़ाते ही जायं तो एक खास सीमा तक अधिक नफा मिलेगा, परन्तु वह सीमा पार करनेके बाद पूंजी बढ़ानेसे अधिक नफा नहीं होता। ऐसा हो सकता है कि पूंजीका जो ब्याज देना पड़े उससे भी नफा कम मिले। इसलिए अमुक मंजिल पर पहुंच चुकनेके बाद पूंजी लगानेकी सीमा आ जाती है। उससे आगे पूंजीकी मांग नहीं रहती। जब तक ब्याजकी दरकी अपेक्षा नफेका प्रतिशत अधिक हो तब तक उत्पादक लोग ब्याज पर पैसा लेते हैं। इससे आगे वे पैसा लेना बन्द कर देते हैं।

११ जो लोग डाकखानेके बैंकों या बैंकोंमें अपना पैसा अमानतके रूपमें ब्याजसे रखते हैं या सरकारी लोनमें अथवा म्युनिसिपल डिबेन्चरमें पैसा लगाते हैं, उनके बारेमें यह कहा जा सकता है कि उन्हें जो ब्याज मिलता है वह पैसे पर उनके स्वामित्व-अधिकारके भाड़ेके रूपमें मिलता है। लेकिन जो लोग उद्योगमें पैसा लगाते हैं वे उद्योगमें होनेवाले नफेका भी कुछ हिस्सा लेना चाहते हैं। और इसलिए उन्हें खतरे भी अधिक उठाने पड़ते हैं। सामान्यतः ऐसा कहा जाता है कि लिमिटेड कंपनियोंके शेयर रखनेवालोंको ब्याज मिलता है, लेकिन सच पूछा जाय तो उसमें भाड़ेका तत्त्व कम और नफेका तत्त्व ही अधिक होता है।

१२ हमारे साहूकार किसानोंको जो पैसा उधार देते हैं उसमें एक ओर साहूकारोंको खतरा ज्यादा होता है और दूसरी ओर किसानकी गरज भारी होती है, इसलिए उस ब्याजमें भी नफेका तत्त्व अधिक होता है। किसानकी गरीबीको देखें तो उसे पैसा उधार देनेमें कुछ भी सुरक्षितता नहीं मानी जा सकती। लेकिन जब तक किसानके पास उसकी मालिकीकी थोड़ी भी जमीन होती है तब तक साहूकारको अपने पैसेकी सुरक्षितता मालूम होती है और किसानकी गरजका लाभ उठाकर वह उसे चूस सकता है, इसलिए साहूकार उसे पैसा उधार देता रहता है। इसके सिवा कुछ असामी कच्चे निकल जायं और उनका पैसा वसूल न हो सके तो इसकी पूर्तिके लिए साहूकार सब किसानोंसे ब्याजकी भारी दर लेता है, और बारह महीनेमें जितना नुकसान रहे वह निकालकर शुद्ध ब्याज अमुक प्रतिशत मिला ऐसा हिसाब वह लगा लेता है।

१३. इतने विवेचनसे यह स्पष्ट समझमें आ जायगा कि पैसेका ब्याज इसलिए मिलता है कि पूंजीके रूपमें पैसेकी जितनी जरूरत है अर्थात् पूंजीकी जितनी मांग होती है उसकी तुलनामें पूंजीकी यानी बचत पैसेकी तंगी होती है। हर देशमें उद्योग-धंधे चलानेके लिए और उनका विकास करनेके लिए पूंजीकी जरूरत बनी रहती है। और इसीलिए उस देशके अथवा परदेशके पैसेकी बचत करनेवाले लोगोंको ब्याज मिलता है।

ब्याजकी मीमांसा

१४. जगतके लगभग सभी धर्मों और धर्मशास्त्रोंने ब्याजकी निन्दा की है। इस्लाममें ब्याज लेना हराम माना गया है और ब्याजखोर धंधेका विशेष रूपसे निषेध किया गया है। हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें ऐसा वचन नहीं है कि ब्याज लिया ही न जाय। फिर भी समाजमें श्रेष्ठ माने जानेवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णोंके लिए तो ऐसा कठिन नियम था ही कि वे ब्याजका धंधा न करें। स्मृतियोंमें ऐसे वचन मिलते हैं कि ब्याज-बट्टेका धंधा करना ब्राह्मणके लिए महापाप है। यूरोपमें मध्यकालमें ब्याज-बट्टेका धंधा नीचा समझा जाता था। इसका मुख्य कारण यह मालूम होता है कि उस जमानेमें उत्पादन अधिकतर छोटे पैमाने पर होता था और इसलिए उद्योग चलानेके लिए आजकी तरह बड़ी पूंजीकी जरूरत नहीं पड़ती थी। अतः पैसा उधार लेनेकी घटनाएं किसी अनसोचे संकटके समय अथवा विशेष कठिनाईके अवसर पर ही होती थीं। ऐसे समय उधार लिये हुए पैसेका ब्याज लेना संकट-ग्रस्त मनुष्यकी कठिनाईका अनुचित लाभ उठानेके बराबर समझा जाता था। जिस धनकी हमें जरूरत न हो उसका दूसरेको उपयोग करने देना एक नैतिक कर्तव्य समझा जाता था। इसके बजाय पैसेका ब्याज मांगनेमें एक प्रकारकी नीच भावना और अन्याय माना जाता था। इसके सिवा यूरोपमें उधारीका धंधा यहूदी लोग करते थे। ईसाई लोग यहूदियोंको अपने कौमी दुश्मन तो मानते ही थे। उस पर ईसाई लोग ही अधिकतर उनके कर्जदार होते थे इसलिए भी यह धंधा घृणाकी दृष्टिसे देखा जाने लगा। आज भी शहरोंमें जो लोग अमीरोंके आवारा और दुराचारी लड़कोंको भारी ब्याज पर पैसा उधार देनेका धंधा करते हैं या मिल-मजदूरों तथा भंगी जैसे कम वेतनवाले म्युनिसिपल नौकरोंको रुपये पर आना या आधा आना माहवारी ब्याज लेकर पैसा उधार देनेका धंधा करते हैं या गांवोंमें किसानोंकी लाचार स्थितिका लाभ उठाकर उन्हें भारी ब्याज पर पैसा उधार देकर उनकी मेहनतका फल लिया करते

४

मजदूरी

मजदूरीका व्यापक अर्थ

१ संपत्तिके उत्पादनमें मानव-श्रमका बहुत बड़ा हाथ होता है। अब हम यह विचार करेंगे कि यह श्रम करनेवाले मजदूरोंको उनके श्रमके बदलेमें क्या मिलता है और क्या मिलना चाहिये। मानव-श्रममें हर तरहकी महनतको गिन लिया जाता है। फिर भले यह महनत सिर्फ शरीरकी हो या बुद्धि चातुर्यकी हो, चाहे महनतके लिए निशान रूपमें पूर्व-तैयारीकी जरूरत हो या केवल बताया हुआ काम ही करना पड़े; यह महनत कलाकारकी हो या यंत्रकुशल इंजीनियरकी हो। इस प्रकार वकीलों, डॉक्टरों, अलग अलग सरकारी विभागोंके अधिकारियों, कारखानों और व्यापारिक पेढ़ियोंके मजदूरों आदि सबकी महनत इसमें शामिल कर ली गई है। और इन सबको अपनी अपनी महनतके बदलेमें जो रोजी, वेतन, फीस आदि मिलते हैं उन सबको महनताना या मजदूरी ही माना गया है।

२ जमीन आदि कुदरती साधन-संपत्ति और भूतकालके मानव-श्रमसे उत्पन्न पूंजीके मालिकोंको जैसे उत्पादनमें से भाड़े और ब्याजके रूपमें बदला मिलता है, वैसे ही श्रम या महनतके मालिकोंको उनकी रोजी, वेतन या फीसके रूपमें उनके श्रमका बदला मिलता है। लेकिन उत्पादनके अंगोंके रूपमें एक ओर जमीन और पूंजी तथा दूसरी ओर मजदूर — इन दोनोंमें बहुत फर्क है। पहली दो चीजें निर्जीव हैं। उनका उपयोग करना या न करना हमारी इच्छाकी बात है। हम देख चुके हैं कि उनके उपयोगके बदलेमें जो भाड़ा या ब्याज लिया जाता है उसमें अन्याय भरा है। इसके सिवा ब्याज या भाड़ा बिलकुल ही न दिया जाय तो भी काम चल सकता है। परन्तु मजदूरको तो जीना है। वह आर्थिक उत्पादनमें मदद करे या न करे, उसे खाना तो चाहिये ही। परन्तु जब वह आर्थिक उत्पादनमें हाथ बंटाता है तब तो यह देखना समाजका कर्तव्य हो जाता है कि उसे जीवनकी जरूरतें पूरी करने लायक मेहनताना अधिकारपूर्वक मिल जाय। भाड़ा या ब्याज घटते घटते शून्य तक पहुंच सकता है, परन्तु मनुष्यको मिलनेवाली मजदूरी उसके जीवन-निर्वाहके लिए आवश्यक अल्पतम रकमसे नीचे नहीं जा सकती।

श्रम बाजारकी वस्तु माना जा सकता है?

४. इस बातका विचार करते समय कि मजदूरीकी दर किस तरह तय की जाती है और वह दर कितनी होनी चाहिये अर्थशास्त्रियोंने दूसरी सब चीजोंकी तरह श्रमको भी बाजारकी चीज माना है। वे कहते हैं कि दूसरी चीजोंकी कीमत जैसे मांग और पूर्तिके एक-दूसरे पर पड़नेवाले असरोंसे निश्चित होती है वैसे श्रमकी दर भी इसी ढंगसे निश्चित होती है। परन्तु श्रमको बाजारकी चीज मानना हो तो भी उसे सजीव प्राणीसे अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए यह ध्यानमें रखना चाहिये कि वह दूसरी बाजारकी चीजोंसे कई बातोंमें भिन्न हो जाता है। एक तो बाजारकी चीजोंका उत्पादन उपभोगके लिए अर्थात मनुष्यकी जरूरतें पूरी करनेके लिए होता है। मनुष्यके लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता। मनुष्यकी आबादीमें जो कमी या वृद्धि होती है उसके पीछे समाजके उपभोगका या समाजकी जरूरतोंका हेतु नहीं होता। दूसरी बात यह है कि बाजारकी चीज एक बार उत्पन्न हुई कि वह मनुष्यकी जरूरत पूरी करनेका काम अपने-आप करती है। मनुष्यकी यह बात नहीं है। वह काम करे या न करे और क्या काम करे यह उसकी इच्छा पर निर्भर रहता है। इसके सिवा उन निर्जीव चीजोंको आराम नहीं चाहिये और न वे विरोध करके हड़ताल पर जाती हैं। मनुष्य तो आरामके लिए छुट्टी चाहता है और अपने अधिकारोंके लिए लड़ता है। उससे अच्छा काम लेना हो तो उसके साथ सद्भावपूर्ण और मानवतावाला व्यवहार भी रखना ही चाहिये। तीसरी बात यह है कि निर्जीव वस्तुओंको खुराककी जरूरत नहीं पड़ती। मनुष्यको तो अपने निर्वाहके लिए श्रम करना ही पड़ता है। पूंजीपतियों और मजदूरोंको एक-दूसरेकी आवश्यकता जरूर होती है परन्तु पूंजीपति अपना कारखाना बन्द करके लम्बे समय तक बैठा रह सकता है। साधन और मशीनें पड़ी रहती हैं वे कोई झगड़ा नहीं करतीं और मानवता भी नहीं मांगतीं। पूंजीपतिके पास अपना जमा किया हुआ धन होता है। उससे वह अपना निर्वाह लम्बे समय तक आसानीसे कर सकता है। परन्तु मजदूरके पास कोई संग्रह नहीं होता। इसलिए पूंजीपतिको लोगोंसे काम लेनेकी जितनी गरज होती है उससे ज्यादा गरज मजदूरको काम जुटानेकी होती है। चौथी बात यह है कि दूसरी बाजारू चीजोंको उनका स्वामी जब चाहे तब बेच सकता है और दूसरी दिशाओंमें भेज सकता है। मजदूर भी अपनी श्रमशक्तिका स्वामी जरूर है परन्तु वह अपनी मेहनतको अपनेसे अलग नहीं कर सकता। बाजारू चीजोंको

७ इस वाक्यमें यह बात भूल गये हैं कि इसमें ऐसा मान लिया गया है कि मजदूरी पहलेसे निश्चित की हुई रकममें से ही चुकाई जाय। परन्तु स्थिति इससे उलटी है। यह बात सच है कि उत्पन्न हुए मालके बिकनेके पहले मजदूरी चुकाई जाती है परन्तु मजदूरी निकलती तो है उत्पन्न हुए मालकी कीमतमें से ही। जब माल बिकता है और अनाज तो उत्पन्न हुए मालकी कीमतमें से ही निकलता है वैसे ही मजदूरी भी निकलती है। जो पूंजी पहलेसे लगाई जाती है वह उत्पादनसे होनेवाली आमदनीके आधार ही लगाई जाती है। और पूंजी लगानेमें भी निश्चितता जैसा कुछ नहीं होता। जब मजदूरोंकी संख्या घटाई-बढ़ाई जा सकती है तब पूंजी भी घटाई-बढ़ाई जा सकती है। इसके सिवा इस वाक्यमें यह बात भी भुला दी जाती है कि मजदूर अपने श्रमसे उत्पादनमें कमी-बेशी करके मजदूरोंमें बांटी जानेवाली रकममें कमी-बेशी कर सकते हैं।

उत्पादनके अनुसार मजदूरीकी दर

८ इस प्रकार हम एक दूसरे वाद पर आते हैं। वह यह है कि मजदूरीकी दर मजदूरों द्वारा किये हुए उत्पादन पर निर्भर करती है। मजदूरोंको मजदूरी इसीलिए दी जाती है कि वे अपने श्रमसे ऐसी चीजें उत्पन्न करते हैं जिनकी बाजारमें कीमत मिलती है। जैसे और सब चीजोंका मूल्य उनकी अन्तिम उपयोगिता परसे लगाया जाता है वैसे ही श्रमका मूल्य भी इस परसे लगाया जाता है कि अन्तिम मजदूर उत्पादनमें कितनी अंतिम वृद्धि करता है। यह अन्तिम वृद्धि क्या है इसे हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे। मान लीजिये कि जमीन जितनी चाहिये उतनी पड़ी है। जितनी जमीन चाहिये हो वह जोत सकता है। इस जमीनका कुछ भी भाड़ा नहीं देना पड़ता और इस जमीन पर जो श्रम करेगा उसे इसमें पैदा हुआ सारा माल अपनी मजदूरीके रूपमें मिलेगा। अब इस जमीनमें एकसे अधिक आदमी काम करें तो संभव है कि एक आदमी अपने श्रमसे जितनी फसल पैदा कर सकता है उसकी अपेक्षा अधिक आदमियोंके श्रमके कारण अधिक फसल पैदा हो। क्योंकि जमीन तो बड़ी मात्रामें है ही इसलिए सहयोगसे काम करनेसे अच्छा फल मिल सकता है। अकेले आदमीको उसके श्रमका जो फल मिलता उसके बजाय अनेक मनुष्य सहयोगसे काम करें तो प्रत्येकके हिस्सेमें अधिक माल आयगा। पर इस तरह मजदूरोंकी संख्या मर्यादासे अधिक बढ़ाते जानेमें लाभ नहीं क्योंकि एक खास मर्यादा पार कर जानेके बाद घटते उत्पादनका नियम लागू हो जायगा और मजदूरोंकी संख्या जितनी बढ़ाई जायगी उतना ही लाभ घटता जायगा। और

ऐसा करते करते एक स्थिति ऐसी आयगी जब नये मजदूरोंको लगानेसे मालमें बिल्कुल वृद्धि नहीं होगी। लेकिन इस हद तक कोई मजदूरोंको लगाता नहीं जाता कि अधिक मजदूरोंके काममें लगनेसे थोड़ा भी माल न बढ़े क्योंकि मनुष्य जो श्रम करता है वह इसीलिए करता है कि कुछ न कुछ लाभ हो। अगर अधिक आदमियोंके श्रमसे कुछ भी लाभ न होता हो तो फिर अधिक आदमियोंका श्रम किसलिए करना चाहिये? इस परसे इतना समझमें आ जायगा कि किसी भी काममें मजदूरोंकी संख्या बढ़ाते जानेसे एक समय ऐसी स्थिति आती है कि अमुक संख्याके आगे यदि संख्या बढ़ाई जाय तो उत्पादनकी मात्रामें जरा भी वृद्धि नहीं होगी। इस निकम्मे अतिरिक्त मजदूरके पहलेका मजदूर ऐसा है जिसके कामसे उत्पादनमें थोड़ी वृद्धि तो भी होती है। इस अंतिम उपयोगी मजदूरके श्रमसे होनेवाली वृद्धिको अंतिम वृद्धि कहा जाता है। इस मजदूरको हम उत्पादनमें अंतिम भाग लेनेवाला अंतिम मजदूर कहेंगे। इसके बादके मजदूरके श्रमसे उत्पादनमें कुछ भी वृद्धि नहीं होगी। अब मान लीजिये कि यह अंतिम वृद्धि होने तक किसी उत्पादन कार्यमें मजदूरोंको लगाया जाता है। इस उदाहरणमें यदि और किसी तरहकी असमानता नहीं हो और हर मजदूरने उसे सौंपा हुआ काम पूरी ईमानदारीसे किया हो तो सारे उत्पादन-कार्यमें उस अंतिम मजदूरने अन्य सब मजदूरोंके बराबर ही श्रम या काम किया होगा इसलिए उस अंतिम मजदूरको भी अन्य मजदूरोंके बराबर ही मेहनताना मिलेगा। यह मेहनताना उतना ही गिना जायगा जितना अंतिम मजदूर द्वारा उत्पादनमें की गई अंतिम वृद्धिका अथवा अंतिम उत्पादनका मूल्य होगा।

* हमारे गढ़े हुए उदाहरणमें हमने खेतीका धंधा लिया है। परन्तु किसी और धंधेको सामने रखें तो भी परिणाम यही निकलेगा। लेकिन उद्योग-व्यवसायमें लगें तो उन मजदूरोंकी संख्या निश्चित नहीं होती, न जमीन और पूंजीकी मात्रा ही निश्चित रहती है। इसलिए उत्पादनके काममें केवल इतना ही विचार नहीं होता कि अधिक लाभ ज्यादा या कम मजदूरोंको लगानेमें है या नहीं बल्कि यह भी विचार करना पड़ता है कि उत्पादनके दूसरे अंग जैसे जमीन और पूंजी बढ़ाये जायं या घटाये जायं। खेतीमें कभी कभी ऐसा होता है कि किसी निश्चित जमीन पर अधिक मजदूर लगानेके बजाय अधिक जमीनमें खेती करानेसे अधिक लाभ होता है। ऐसे उदाहरणमें अधिक उत्पादनका हिस्सा जमीनके भाड़ेके खातेमें जाता है। कारखानोंमें भी मजदूरोंकी संख्या बढ़ानेके बजाय मशीनें बढ़ानेसे अधिक

लाभ होनेकी संभावना है। फिर भी इस नियममें कोई खास गलती नहीं क्योंकि देखा यह जाता है कि मजदूरोंका स्तर तय करनेमें उत्पादन-व्ययमें लगे हुए सारे मजदूरोंमें से अंतमें लगाये हुए मजदूरके कारण जितना उत्पादन बढ़ा होगा उतने उत्पादनका ही निर्णायक हाथ होता है।

जीवन निर्वाहका स्तर निश्चित करनेकी जरूरत

१० अब प्रश्न यह पैदा होता है कि किसी भी उत्पादन-व्ययमें अंतिम मजदूर द्वारा किये हुए कामकी कीमतके बराबर मजदूरोंका स्तर देनेसे मजदूर काम पर आनेको तैयार होंगे या नहीं? इसका आधार मजदूरोंकी कमी और बहुतायत पर रहता है। और मजदूरोंकी कमी और बहुतायतका आधार इस बात पर रहता है कि मजदूरको उत्पादन-खर्च — अर्थात् उसके और उसके कुटुम्बके निर्वाहका खर्च — उसे मिल जाता है या नहीं। इस तरह हम पुनः जीवन निर्वाहके स्तर पर आते हैं। किसी भी सभ्य समाजमें मजदूरीकी दर इतनी तो होनी ही चाहिये जिससे सामान्य मनुष्यकी उचित जरूरतें पूरी हो जायँ। उचित जरूरतें उन्हें कहना चाहिये कि जो उसके योग्य विकासके लिए आवश्यक हों। इस स्तर या स्टैण्डर्डके अनुसार मजदूरके जीवन निर्वाहमें जो खर्च आये उतनी कीमत उस वृद्धिकी मिलना चाहिये जो अंतिम मजदूरने उत्पादनमें की हो। अंतिम वृद्धिकी कीमत और जीवन निर्वाहके हमारे निश्चित किये हुए स्तरके अनुसार खर्च — इन दो चीजोंका मेल बैठ जाय तो मजदूरको उचित दर मिले। परन्तु आज तो उत्पादनकी अंतिम वृद्धिकी बाजारमें जो कीमत मिलती है उसी परसे मजदूरीकी दर निश्चित होती है। मजदूरकी बनाई हुई चीजकी बाजारमें मिलनेवाली कीमतको अधिक बलवान तत्त्व माना जाता है और उसके आधार पर मजदूरीकी जो दर मिले उस दरके अनुसार मजदूरको अपने रहन-सहनका स्तर बनाना चाहिये ऐसा कहा जाता है। इसके बजाय जीवन निर्वाहका स्तर निश्चित करके उसके अनुसार कमसे कम अमुक मजदूरी प्रत्येक मजदूरको दी जानी चाहिये।

११ ऐसा भी होता है कि बाजार-कीमत अधिक मिलने पर भी उसका लाभ भाड़ा, ब्याज और नफेके रूपमें जमींदार, पूंजीपति और प्रबन्धक लोग हड़प लेते हैं और मजदूरोंको उसके उचित और सुघड़ जीवन निर्वाहके लायक भी नहीं मिलता। इसका कारण यही है कि उत्पादनके सारे अंगोंके अलग अलग मालिकोंके बीचकी स्पर्धामें मजदूर कमजोर पड़ता है।

मजदूरीकी ऊंची दरका स्पष्टीकरण

१० परन्तु इंग्लैण्ड और अमरीका जैसे देशोंमें तो मजदूरीकी दरें काफी ऊंची हैं और रहन-सहनका उनका स्तर भी अच्छा है। इसका कारण हम अभी बता चुके हैं कि इंग्लैण्ड दूसरे देशोंका शोषण करके बहुत धनी बना हुआ देश है और अमरीकामें उसकी विपुल कुदरती साधन-सम्पत्तिके प्रमाणमें आबादी कम है। फिर भी इन दोनों देशोंमें दूसरे महायुद्धसे पहले काफी बेकारी थी। इसके सिवा ये दोनों देश अपना माल दूसरे देशोंके बाजारोंमें बेचकर वहांकी आबादीमें भी बेकारी पैदा करते थे। वे मजदूरीकी दरें ज्यादा दे सकते हैं और मजदूरोंके रहन-सहनका स्तर भी ऊंचा रख सकते हैं। परन्तु हमारे देशमें या अन्य देशोंमें बेकारी पैदा करके ही वे ऐसा कर सकते हैं।

११ इस कानूनको अच्छी तरह समझनेके लिए हमें आजकी परिस्थिति समझना पड़ेगा। अब पूंजीपतियों और मजदूरोंके बीच अनियंत्रित स्पर्धा नहीं रही। मजदूरोंके प्रबल संघ बन गये हैं और वे अपने-अपने देशोंमें राज्यतंत्र पर कुछ न कुछ असर डाल सकते हैं, जिसके फलस्वरूप हर सभ्य माने जानेवाले राज्यमें मजदूरोंके हितोंकी रक्षा करनेवाले थोड़े-बहुत कानून भी बने हैं। इस जमानेमें हर देशमें वातावरण उत्पन्न हो गया है कि मजदूरोंको इतनी मजदूरी जरूर मिलनी चाहिये जिससे वे रहन-सहनका अमुक स्तर कायम रख सकें और कामके घंटे भी अमुक निश्चित घंटोंसे अधिक कभी न रखे जायं। फिर भी अर्थोत्पादनके काममें बोलबाला तो पूंजीपतियोंका ही है। राज्यतंत्रमें पूंजीपतियोंका प्रभाव अधिक है। अर्थोत्पादनकी सारी प्रगति पूंजीवादी ढंगसे है। इसलिए उसका ध्यान इसी तरफ रहता है कि उत्पादन कम खर्चसे और माल ज्यादासे ज्यादा सस्ता कैसे बने। फिर जैसे जैसे अर्थोत्पादनमें भौतिक शक्तिका उपयोग बढ़ता जाता है वैसे वैसे मानव-शक्तिका उपयोग कम होता जाता है। अलबत्ता भौतिक शक्तिके उपयोग और यंत्रोंमें निरन्तर होनेवाले सुधारोंसे कुछ काम जरूर ऐसे हैं जो मानव-शक्तिके द्वारा कभी नहीं हो सकते थे और अनेक मानव-शक्तिसे आज भी नहीं हो सकते। लेकिन ऐसे कामोंमें भी जो मानव-शक्तिसे हो सकते हैं भौतिक शक्तिका उपयोग बढ़ता जा रहा है इसलिए मानव-शक्ति अर्थात् मनुष्य बेकार होते जा रहे हैं। जिसे रेशनलाइजेशन —अर्थात् [illegible] कामसे ज्यादा जल्द अधिक [illegible] होता [illegible] पैसा [illegible] घटाना— कहा जाता है उसके कारण भी ऐसा दुनिया

गोजी जा रही है कि मजदूरकी मस्या तो घट जाय, परन्तु काम उतना ही हो। ऐसा जाना कुशलताम किया जाय तो उसम सफलता सुधार इस तरह किया जा सकता है कि मजदूरकी जगह कम हो और काम अधिक अच्छा हो। दूसरे लिए यह भी विचार किया जाता है कि यन्त्र माल्का अधिकम अधिक उपयोग किस तरह किया जाय और यह योजना भी की जाती है कि मजदूरका किसी तरहका नुकसान पहुंचाये बिना और उनको परेशान किये बिना उनसे अधिकसे अधिक काम किस तरह लिया जाय। कुशल पूजीपतिका ध्यान मजदूरीकी दर घटानेका और बिल्कुल नहीं रहता बल्कि मजदूरसे अधिक उत्पादन करानेका ओर रहता है। इसलिए वह अधिक दर देकर भी कुशल मजदूरको काममें लगाना ज्यादा पसन्द करता है। पहले कम मजदूरी पर मजदूर रखनेकी प्रतिस्पर्धा होती थी। अब अधिक मजदूरी देकर भी कुशल मजदूर जुटानेकी प्रतिस्पर्धा होती है। पूजीपति सस्ती मजदूरी लेनेवाले मजदूरको पसन्द नहीं करता बल्कि अधिक काम करनेवाले अधिक कुशल मजदूरको पसन्द करता है। इसलिए आज मजदूरोंकी दर घटी नहीं है उलटे यह कहा जा सकता है कि मजदूरीकी दर दिनोदिन बढ़ती जाती है। लेकिन भौतिक शक्तिका ज्यों ज्यों अधिक उपयोग किया जाता है त्यों त्यों पहलेसे मजदूरोंकी जरूरत कम होती जाती है। इसलिए मजदूरोंकी दर घटनेके बजाय मजदूरोंकी मांग घटी है। अधिक कुशल मजदूरोंको ही काम मिलता है और बाकीको बेकार रहना पड़ता है।

१४ बेकारीके कारण लोगोंमें असन्तोष न फैले इसके लिए इंग्लैण्ड और अमरीका जैसे धनी देशोंमें बेकार मजदूरोंको बेकारीका भत्ता (डोल) दिया जाता है। बेकारीका भत्ता लेनेवाले मजदूर जनता पर बोझ और सरकारके आश्रित बनकर रहते हैं इसलिए उनका स्वाभिमान तो नष्ट होता ही है इसके सिवा कोई काम किये बिना आलसी होकर भत्ता लेते रहनेसे उनमें और भी कई बुराइयां पैदा हो जाती हैं। इन बेकार मजदूरोंका भार तो सारे करदाताओं पर पड़ता है जब कि जिन परिस्थितियोंके कारण यह बेकारी पैदा होती है उसका लाभ अकेले पूजीपति ही उठाते हैं। इसके सिवा ये बेकारी भत्ते धनी देश ही दे सकते हैं। बेकारी भत्तेके सिवा इन धनी देशोंमें मजदूरोंको अन्य कई प्रकारकी राहत भी मिलती है। लेकिन यह तो इन देशोंने दूसरे देशोंके उद्योग धंधोंका विकास रोककर या विकसित धंधोंको नष्ट करके वहां बेकारी और बेकारी पैदा करके तथा कई तरहसे उन देशोंका शोषण करके जो धन बटोरा है उसमें से अपने यहांके मजदूरोंको दिया हुआ कुछ भाग जैसा ही

है। सार यह कि मजदूरोंकी दर एक धनी धंधोंमें और दूसरे देशोंके कुछ कारखानोंमें भी जरूर बढ़ी है; लेकिन अधिकतर यंत्रोंवाले कारखानोंके सिवा दूसरे धंधोंमें खास तौर पर खेती और हाथ-कारीगरीके धंधोंमें, तो दर घटी ही है। हमारे देशमें खेती और दूसरे हाथ-उद्योगोंमें मजदूरोंको मुश्किलसे पेट भरने जितना भी नहीं मिलता।

दिखाई देती ऊंची दर और सच्ची दर

१५ राज और बढ़ईकी रोजकी दर जरूर अधिक दिखाई देती है लेकिन उन्हें स्थायी काम नहीं मिलता, इसलिए वास्तवमें तो उनकी दर कम ही है। किसी आदमीको प्रतिदिन डेढ़ रुपया मिलता हो तो हमेशा ऐसा नहीं होता कि उसे महीनेमें ४५ रु० मिल ही जाते हैं। क्योंकि महीनेमें जितने दिन उसे काम मिलता है उतने ही दिन डेढ़ रुपया मिलता है, और हमारे शहरोंमें राज और बढ़ईके कामका औसत निकालें तो महीनेमें काम दिन भी उन्हें मुश्किलसे काम मिलता होगा।

१६ इसके सिवा उसे मजदूरी अधिक मिलती है या कम, इसका अनुमान इस परसे लगाना भी ठीक नहीं कि प्रतिदिन उसे कितने रुपये मिलते हैं। मान लीजिये कि किसी आदमीको वर्तमान (दूसरे) युद्धसे पहले बारह आने रोज मिलते थे और आज उसे रुपया या डेढ़ रुपया रोज मिलता है, तो इस परसे यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी सच्ची दर बढ़ी है। क्योंकि उसकी मजदूरी तेतीस प्रतिशत या सौ प्रतिशत बढ़ी है, वहां मजदूरके उपयोगके लिए अनाज आदि जो चीजें चाहिये उनके भावमें तो सौ या दो सौ प्रतिशत तक वृद्धि हुई है। मजदूरोंकी सच्ची दर तो इस परसे आंकी जानी चाहिये कि मजदूरको जो दाम मिलते हैं उनकी खरीद-शक्ति कितनी है। आज हमारे मजदूरोंको मिलें उद्योगोंमें महंगाई भत्ता जरूर मिलता है परन्तु दूसरे बहुतसे उद्योग धंधोंमें ऐसे महंगाई भत्ते नहीं मिलते। मजदूरीकी दर थोड़ी-बहुत जरूर बढ़ी है, परन्तु महंगाईके अनुपातमें वह नहीं बढ़ी। इसके अलावा उस दर पर स्थायी काम नहीं मिलता। आज खेतोंमें मजदूरको रुपया रोज मिलता होगा। परन्तु उसे बारहों महीने इस दर पर कौन काम देता है?

१७ सब कमानेवाले लोग दो तरहके हैं: एक अपनी शक्ति तथा श्रम बेचनेवाले मजदूर हैं और दूसरे अपने श्रम बेचनेवाले जैसे दुकानदार, जमींदार आदि हैं। इन दो पक्षोंमें सामान्यतः मजदूरोंका पक्ष बहुत कमजोर है। वह अपना और सहायक है। मजदूरोंको कम कमाईका मुख्य कारण यह होता कि मौजूदा उद्योग या धंधेमें कितना मुनाफा होता है। वह अच्छी दर पानेके लिए

राह देखता बैठा नहीं रह सकता, क्योंकि उसका पेट तो रोटी माँगता ही है। मशीन और औजार बेकार पड़े रहें तो वे एकदम बिगड़ नहीं जाते, लेकिन मजदूर आलसी रहे तो वह भूखा मरता है। और मजदूर भूखा मरे तो इसकी कारखानेदार या जमींदारको कोई चिंता नहीं होती। वे अपने साधनोंकी रक्षाकी चिंता करते हैं। मशीन बिगड़ जाय या टूट जाय तो नई लानेमें उन्हें पैसा खर्च करना पड़ता है परन्तु मजदूर बीमार पड़ जाय या मर जाय तो इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं होती। क्योंकि एक मजदूरकी जगह दूसरा मजदूर लानेमें उन्हें कुछ विशेष खर्च नहीं करना पड़ता। रोजी पानेकी उम्मीदवारी करनेवाले मजदूरोंका तांता सदा लगा ही रहता है।

सबको काम पाने और अच्छी तरह जीनेका अधिकार

१८ सारे समाजके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे देखें तो यह स्थिति बड़ी ही बुरी है। सुखी और स्वस्थ समाजमें

(१) प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुषको उसके लायक समाजोपयोगी काम जरूर मिलना चाहिये।

(२) स्वस्थ सुघड़ और प्रगतिशील जीवन निबाहनेका एक खास स्तर हमें निश्चित करना चाहिये (हो सकता है कि यह स्तर देश और कालके अनुसार अलग अलग हो) और जो आदमी अपनी शक्तिके अनुसार समाजकी भलाईका काम करे उसे कमसे कम इस स्तरके अनुसार जीवन बिता सकने जितना मेहनताना तो मिलना ही चाहिये।

ऊंचेसे ऊंचे पारिश्रमिककी मर्यादा निश्चित की जाय

१९ यहां तक हमने मामूली मजदूरोंकी मजदूरीकी दरका विचार किया। हम यह कहते हैं कि उन्हें कमसे कम अमुक पारिश्रमिक तो मिलना ही चाहिये। इसके साथ यह भी निश्चित होनेकी जरूरत है कि अधिकसे अधिक पारिश्रमिक भी एक खास सीमासे अधिक नहीं होना चाहिये। दूसरे महायुद्धसे पहले मजदूरी करनेवालेको आठ आने भी नहीं मिलते थे। चरखा-संघने यह तय किया कि कारीगरको कमसे कम तीन आने तो देने ही चाहिये। उधर कुछ वकीलों और डाक्टरोंकी फीस रोजकी हजार रुपये होती है या पराधीन भारतमें वाइसरायको बीस हजार रुपयेका मासिक वेतन मिलता था और उनकी कार्यकारिणी सभाके मेम्बरोंको पांच या छह हजार रुपये वेतन मिलता रहा होगा। व्यापार उद्योगमें तो लोग लाखों रुपये कमाते हैं। अलग अलग धंधे करनेवालोंके पारिश्रमिकमें जो बहुत बड़ा अन्तर है उसके कारण

प्रत्येक समाजमें घोर आर्थिक असमानता पाई जाती है और इस असमानताके फलस्वरूप बहुतसी बुराइयां पैदा होती हैं। जब जीवन निर्वाहका स्तर एक खास सीमासे नीचा होने से जीवनके विकासमें बाधा पड़ती है वैसे ही जीवन निर्वाहका स्तर मर्यादासे अधिक ऊंचा हो तो वह भी जीवनके विकासमें रुकावट बन जाता है।

२० जिन्हें बहुत बड़ा पारिश्रमिक मिलता है वे इसके बचावमें अनेक दलीलें पेश करते हैं। वकील या डाक्टर यह कहते हैं कि हमें अपना पेशा सीखनेमें बहुत वक्त लगा और बहुत खर्च हुआ और उसके बाद भी हम धंधेमें सब सफल नहीं होते। हममें बुद्धि चातुर्य विशेष होनेके कारण हमें अधिक पारिश्रमिक मिलता है। सरकारी अधिकारी कहते हैं कि अपने कामकी विशेष योग्यता प्राप्त करनेके लिए हमें भी बहुत समय लगाना पड़ा है और रुपया खर्च करना पड़ा है और बादमें भी हमें काफी मेहनत करनी पड़ती है। इसके सिवा हम बहुत बड़ी जिम्मेदारी अपने सिर लेते हैं इसलिए हमें अधिक पारिश्रमिक मिलना चाहिये। कुछ लोग कहते हैं कि हम बहुत विश्राम और खतरेके काम करते हैं और समाजके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं हमारे एक एक कामसे समाजकी सारी सूरत बदल जाती है इसलिए हमें अधिक पारिश्रमिक मिलना चाहिये। मुख्यतः ऐसी दलील नई मशीन नई दवाएं और नये आविष्कार आदि खोजनेवाले देते हैं। वे यह दावा करते हैं कि हमारे काम कितने निराले और अद्भुत होते हैं कि और किसीसे हो ही नहीं सकते। कवियों चित्रकारों और दूसरे कलाकारोंका भी ऐसा दावा होता है। यह दूसरी बात है कि आजकलकी पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्थामें इन संशोधकों और कलाकारोंको हमेशा ही बहुत नहीं मिलता। किसी वस्तुके संशोधकसे उस वस्तुके कारखानेदार कहीं अधिक कमाते हैं और कवियों तथा चित्रकारोंसे बनियें उनके प्रकाशक बहुत अधिक कमाते हैं।

२१ इन सब बड़े पारिश्रमिक मांगनेवालोंसे कहा जा सकता है कि आप बड़े पारिश्रमिक लेकर समाजमें जो असमानता पैदा करते हैं वह ठीक नहीं है। आपके काम यदि समाजके लिए बहुत लाभकारी हों और दूसरे किसीसे नहीं हो सकते हों तो उनके बदलेमें आपको समाजमें कीर्ति और प्रतिष्ठा मिलती है। क्या यह मुआवजा काफी है कि आपको बदलेमें अधिक धन भी मिलना चाहिये? आप हों, आपके काम ऐसे होते हैं कि जो सामान्य हो आनन्द आपको मिल जाता है। आपको अपने कामका इतना अधिक ख्याल होता है कि धनके रूपमें उसका बदला आपको न मिले तो भी ... आपको

जो आनन्द मिलता है उसके खातिर भी आप यह काम किये बिना नहीं रह सकेंगे। क्या संशोधक और कलाकार पैसेके लिए अपना काम करते हैं? बड़े राजनीतिज्ञ पुरुष जो सारे देशका राजकाज चलाते हैं यदि उन्हें वेतन न मिले तो क्या अपना राजनीतिक काम छोड़ देंगे? जो महाविद्वान हैं और सच्चा विचारशील भी हैं वे क्या उन्हें वेतन मिलता तभी पढ़ानेका काम करेंगे या पुस्तकें लिखेंगे? इस विशेष प्रकारके कार्योंके लिए जिनमें असाधारण शक्तिकी जरूरत होती है बड़े बड़े पारिश्रमिक देने और मांगनेकी जो प्रथा पड़ गई है वह पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाका ही एक परिणाम है। आज तक इतिहासकी जांच करें तो ऐसा लगेगा कि असाधारण व्यक्तियोंने बिना ही लाभ हो गये हैं जो समाज पर स्थायी उपकारके बड़े बड़े कार्य कर गये हैं। लेकिन ये कार्य उन्होंने बड़े पारिश्रमिक लेकर नहीं किये।

२२ फिर भी जिन कामोंके लिए विशेष कुशलताकी जरूरत हो और जिनके लिए लम्बी तैयारी और तालीमकी जरूरत हो उन कामोंके लिए सामान्य मजदूरसे अधिक पारिश्रमिक देना स्वीकार कर लिया जाय तो फिर उसे हम यह कहते हैं कि कमसे कम अमुक पारिश्रमिक तो हर मजदूरको मिलना ही चाहिये वैसे ही अधिकसे अधिक पारिश्रमिक भी निश्चित हो जाना चाहिये। उससे अधिक किसीको भी नहीं मिलना चाहिये। इस कमसे कम और अधिकसे अधिकके बीचका अंतर इतना बड़ा नहीं होना चाहिये जिससे समाजमें अन्यायपूर्ण असमानता उत्पन्न हो।

२३ कुछ काम ऊबानेवाले अच्छे न लगनेवाले और शरीरको नुकसान पहुंचानेवाले होते हैं इसलिए कोई भी उन्हें करनेको तैयार नहीं होता। कुछ काम ऐसे भी होते हैं जो आनन्द देनेवाले और चित्तको प्रसन्न करनेवाले होते हैं। ऊबानेवाले काम करनेवालोंको अधिक पारिश्रमिकका लालच देनेके बजाय ज्यादा अच्छा तो यह है कि ऐसे कामोंके घंटे ही कम कर डाले जायं और दूसरी सुविधाएं दी जायं ताकि कम घंटों और दूसरी सुविधाओंके लोभसे भी कुछ लोग उन्हें करनेको तैयार हो जायं। इसके सिवा ऐसी तरकीबें ढूंढ निकालनी चाहिये जिनसे वे काम ऊबानेवाले न रहें। अथवा ऐसे कामोंका बटवारा इस ढंगसे किया जाय कि उनका थोड़ा थोड़ा भाग सबको करना पड़े। आम रास्तों पर झाड़ू लगानेका काम नालियां साफ करनेका काम पाखाने साफ करनेका काम कोयलेकी खानोंमें मजदूरी करनेका काम—ऐसे कुछ काम गिनाये जा सकते हैं जिन्हें एक धंधेके तौर पर करनेको कोई तैयार न होगा। इनमें शरीरकी घिसाई भी ज्यादा हो

सकती है। इस कामोंमें जितने सुधार हो सकें उतने कर डालना चाहिये और कामका घाटा बहुत कम कर देना चाहिये।

५

मुनाफा या लाभ

१ उत्पादनका चौथा अंग हमने प्रबंधकको माना है। कच्चा माल, पूंजी और श्रम इन तीन अंगोंको एकत्र करके प्रत्यक्ष सम्पत्ति उत्पन्न करनेकी व्यवस्था यह प्रबंधक करता है। सम्पत्ति उत्पन्न होनेके बाद उसे उपभोगके लिए ग्राहकोंके पास पहुंचानेकी क्रियाको भी हमने उत्पादनका ही एक अंग माना है। प्रबंधक और व्यापारी दोनोंको उनकी मेहनतके बदलेमें जो कुछ मिलता है उसे मुनाफा कहा जाता है।

मजदूरी और मुनाफा

२ लेकिन प्रबंधक और व्यापारीको जो कुछ मिलता है वह उनकी मेहनतका बदला ही हो तो यह प्रश्न सामने आता है कि उसे मजदूरी न कहकर मुनाफा किसलिए कहा जाय। उत्पादनकी सम्पूर्ण क्रियामें मजदूरका जो स्थान है — फिर भले वह मजदूर किसीका भी हुक्म माननेवाला हो, बताया हुआ काम करनेवाला मामूली मजदूर हो या सारे कारखानेकी व्यवस्था करनेवाला बड़ा मैनेजर हो — उसके स्थानमें और प्रबंधक तथा व्यापारीके स्थानमें एक भेद है। सभी श्रेणीके मजदूर — साधारण मजदूर या बड़े मैनेजर — निश्चित की हुई शर्तोंके अनुसार पारिश्रमिक लेकर काम करते हैं। उनकी मजदूरी एक दिनकी ठहराई हुई हो, एक महीनेकी ठहराई गई हो या एक वर्षकी, परन्तु वह एक निश्चित रकम होती है और सम्पत्तिके उत्पादन और बिक्रीका नतीजा कुछ भी हो वह रकम उन्हें मिल जाती है। उनकी जिम्मेदारी उन्हें सौंपे हुए काम तक ही सीमित रहती है और सौंपा हुआ काम पूरा किया कि वे अपना वेतन मांगनेके अधिकारी हो जाते हैं। परन्तु प्रबंधक और व्यापारीकी स्थिति दूसरी होती है। इन्हें तो जब नई सम्पत्ति बिक जाय तभी उसपर लगे हुए कुल उत्पादन-व्ययसे अधिक जो कुछ बचता है वही मिलता है। मजदूर तो करारके अनुसार काम करके पारिश्रमिक पानेका हकदार हो जाता है जब कि प्रबंधकको बादमें यदि मुनाफा हो तो मिलता है और घाटा रहे तो वह भी भोगना पड़ता है। मालका भाव उसकी धारणासे कम हो जाय

या और किसी कारणसे उसकी बाजार-कीमत उत्पादन-लागत भी घट जाय तो प्रबंधकको कुछ भी नहीं मिलता। उल्टा घाटा होता है। इसलिए प्रबंधक एक तरहका साहस करता है। इसी तरह व्यापारी अपनी दुकानमें बेचनेका माल खरीदता है और उसे इस तरह बेचता है कि कुछ मुनाफा रह जाय। परन्तु किसी भी कारणसे भाव गिर जायें तो उसे कुछ नहीं मिलता और घाटेमें भी उतरना पड़ता है। उसने कितनी ही मेहनत क्यों न की हो परन्तु वह निष्फल जाती है। इसलिए मुनाफा मेहनतका बदला नहीं होता बल्कि योजना-शक्ति दूरदर्शिता और साहस अथवा खतरेका बदला होता है। उसमें अनिश्चितताका अंश तो रहता ही है। उसमें मुनाफा होनेके बजाय घाटा होनेकी भी संभावना रहती है।

ब्याज और मुनाफा

३ कुछ लेखक ब्याज और मुनाफेके बीच भी इसी तरहका घोटाला करते हैं। परन्तु हम देख चुके हैं कि ब्याज पूंजीका उपयोग करनेके लिए उसके मालिकको मिलनेवाला बदला है जब कि मुनाफा किसी भी कारखाने व्यापारिक पेढ़ी या दुकानके संचालनका बदला है। ब्याज खानेवालेकी पूंजी डूबनेका खतरा रहता है फिर भी करारसे यह निश्चित रहता है कि उसे ब्याज कितना मिलेगा। परन्तु यह बिल्कुल अनिश्चित रहता है कि कारखानेके संचालनमें कितना मुनाफा मिलेगा। ब्याजको सम्पत्तिके उत्पादन-साधनमें गिना जाता है जब कि मुनाफेको उत्पादन-खर्चमें नहीं गिना जाता। मुनाफा उत्पादन खर्च और बाजार कीमतके बीचका भेद है।

मुनाफेका स्वरूप

४ अब हम मुनाफेके स्वरूपकी जांच करेंगे। जमीनके भाड़ेकी चर्चामें हम देख चुके हैं कि जब अधिक उपजाऊ और कम उपजाऊ दोनों तरहकी जमीन खेतीके काममें लेनी पड़ती है तो दोनों पर एकसा खर्च करने पर भी अधिक नमीके कारण अथवा अधिक उपजाऊपनके कारण दूसरी जमीनसे पहली जमीनमें ज्यादा फसल होती है। इस अधिक उत्पादनको उसे भाड़ा कहा जाता है वैसे ही कारखाना नया अथवा पुराना होनेके कारण अथवा प्रबंधकका विशेष कुशलताके कारण एक ही माल बनानेवाले दो कारखानोंके मालिक उत्पादन खर्च और बाजार-कीमतके बीच जो कम ज्यादा अंतर रहता है उसे मुनाफा कहा जाता है। जिस प्रकार अलग अलग प्रकारकी जमीनोंमें एक विशेष जमीनको उत्पादनके लिए हमने सीमाकी जमीन माना था उसी

प्रकार कारखानोंका भी है। अमुक कारखाने उत्पादनकी सीमा पर खड़े होते हैं। उनमें मालका उत्पादन-खर्च और मालकी बाजार-कीमत लगभग समान होते हैं। इस सीमा परके कारखानोंसे ऊपरके जितने कारखाने होंगे उन्हें अपने उत्पादन-खर्चसे बाजार-कीमत थोड़ी-बहुत अधिक मिलती है। यही अधिक प्राप्ति मुनाफा है। यहां यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि बाजार-कीमतके निश्चित होनेमें मुनाफा कारण नहीं होता। बाजार-कीमत यह सोचकर निश्चित नहीं होती कि प्रबन्धकको अमुक मुनाफा मिलना ही चाहिये। बाजार-कीमतके निश्चित होनेमें दूसरे कारणोंका हाथ रहता है। उसका आधार चीजकी साधारण उपयोगिता और उसका उत्पादन-खर्च इन दो बातों पर बहुत होता है। बाजार-कीमत बड़ी रहे और उत्पादन खर्च कम आये तो मुनाफा होता है। इसलिए मुनाफा बाजार-कीमतका फल है। उत्पादन-खर्च कम आता होगा और यदि खुली स्पर्धा चलती होगी तो बाजार-कीमत उतर कर उत्पादन खर्चके नजदीक आ जायगी और मुनाफा कम हो जायगा या बिल्कुल नहीं रहेगा। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मुनाफा बनाये रखना हो तो बाजारमें जो कीमत हो उससे उत्पादन-खर्च हमेशा नीचा रखनेके लिए नई नई युक्तियां ढूंढते ही रहना चाहिये।

मुनाफेके प्रकार

५. **उद्योग धंधेमें होनेवाला मुनाफा** : समाजके लिए उपयोगी चीजोंका उत्पादन करनेमें कच्चे मालका दाम, भाड़ा, ब्याज, मजदूरी, सरकारी टैक्स, बीमेका प्रीमियम, विज्ञापनोंका खर्च, यातायात-खर्च आदि सारे खर्च गिन लेने पर उनके जोड़ और बाजार-कीमतके बीच जो अन्तर रहता है वह प्रबन्धकको मुनाफेके रूपमें मिलता है। लोगोंको कौन कौनसी चीजें कितनी मात्रामें चाहिये इसका अनुमान लगाकर उसके अनुसार उन्हें तैयार करानेकी व्यवस्था करना, इन चीजोंके उत्पादनके लिए आवश्यक ऊपर बताये हुए सभी तत्त्वोंको इकट्ठा करना, जब उत्पादनका काम चलता हो तब उसकी देखरेख रखना और उसका संचालन करना — इन सारे कामोंके पारिश्रमिक या बदलेके रूपमें उद्योग धंधा चलानेवाले प्रबन्धकको मुनाफा मिलता है। यह सच है कि इसमें अनिश्चितता और जोखिमका तत्त्व होनेके कारण यह सारा पारिश्रमिक नहीं है। परन्तु ऐसा कहा जा सकता है कि यह मुनाफा उत्पादक अपना समाजके लिए किसी न किसी तरह उपयोगी सिद्ध होकर कमाता रहता है। ऐसे मुनाफे पर तभी आपत्ति की जा सकती है जब समाजमें अन्य

सार उत्पादक-वर्गको जो पारिश्रमिक मिलता है उसमें यह मुनाफा बहुत अधिक हो। इसके सिवा प्रबन्धकको अधिक मुनाफा मिल सके इसके लिए उत्पादन-खर्च कम करनेके खातिर मजदूर-वर्गका शोषण किया जाय तब भी इस मुनाफेका विरोध किया जा सकता है। प्रबन्धक यह दलील देते हैं कि परिश्रम करनेके अलावा और परिश्रम करनेके बावजूद धंधेमें नुकसान आये तो वह खतरा भी हम उठाते हैं इसलिए हमारे मुनाफेकी कोई मर्यादा नहीं बांधनी चाहिए। स्पर्धाकी मर्यादा तो हमारे मुनाफे पर है ही क्योंकि किसी भी धंधेमें अधिक मुनाफा होता दिखेगा तो दूसरे लोग उस धंधेमें घुसकर स्पर्धा करेंगे ही और उसके फल-स्वरूप मालकी मात्रा बढ़ेगी और बाजार-भाव नीचे उतरेगा ही। इसलिए जहां खुली स्पर्धा होती है वहां मुनाफा कम होनेकी या घटनेकी तरफ ही रहता है और फिर तो हमें अपनी मेहनतके बराबर ही मुनाफा मिलता है। यह दलील थोड़ी तो सच्ची है परन्तु समाजके दूसरे वर्गोंको जो पारिश्रमिक मिलता है उसमें इन प्रबन्धकों अथवा उद्योगपतियोंको मिलनेवाला मुनाफा स्पष्ट ही इतना अधिक होता है कि कितना ही बचाव क्यों न किया जाय फिर भी उसके पीछे रहा अन्याय छिपता नहीं।

६ **पूंजी लगानेसे होनेवाला मुनाफा** जिनके पास बचतका पैसा खास तौर पर बड़ी रकमोंमें होता है वे अपना पैसा अलग अलग जगह लगाकर उससे मुनाफा कमाते हैं। जैसे कोई मिलके शेयर खरीदें और उनके भाव बढ़ने पर उन्हें बेच डालें और फिर उसी पैसेसे दूसरी मिलके शेयर खरीद लें। शेयरोंके डिविडण्डके अलावा बाजारका रुख देखकर इस तरह उनकी खरीद और बिक्री करनेमें बीचका अन्तर उसे मुनाफेके रूपमें मिल जाता है। शेयरोंकी तरह ही डिबेंचरों और बांडों आदिका भी होता है।

इसी तरह कुछ लोग जमीन और मकान खरीदने-बेचनेका धंधा करते हैं। उनकी मुख्य आय ही इस तरहके मुनाफेकी होती है। जो लोग विवेक दूरदर्शिता और समझदारीसे बाजारका रुख पहचान सकते हैं जो कहींसे भी जानकारी हासिल करके यह अन्दाज ठीक ठीक लगा सकते हैं कि फलां मिलके शेयरोंके भाव बढ़ेंगे या घटेंगे जो आबादीके फैलावके निश्चित रूपसे यह जान सकते हैं कि अमुक मुहल्लेकी जमीन या मकानोंके भाव बढ़ेंगे या घटेंगे वे लोग इस तरहके धंधेमें सफल होते हैं और बड़ा मुनाफा कमाते हैं। कुछ लोगोंको अकल्पित मुनाफा भी होता है। और कुछको कितना ही प्रयत्न और जांच करने पर भी नुकसान होता है। परंतु मुख्य प्रश्न यह है कि ये लोग इस तरह जो मुनाफा खाते हैं उसके बदलेमें क्या वे सचमुच

समाजकी कोई सेवा करते हैं? क्या वे सचमुच समाजके लिए कोई उपयोगी काम करते हैं? उनके पास अतिरिक्त पैसा होता है। इस पैसेसे वे कोई उद्योग-धंधा नहीं चलाते। दूसरोंके उद्योग-धंधोंमें वे जो पैसा पूंजीके रूपमें लगाते हैं उसका उन्हें स्थिर ब्याज मिलता रहता है। हम तो यह प्रश्न भी उठाते हैं कि इस ब्याजके भी वे कहां तक उचित रूपसे अधिकारी हैं? परन्तु उन लोगोंको सिर्फ ब्याजसे ही मुनाफा नहीं होता। वे जमीनोंमें, मकानोंमें, शेयरोंमें या कभी कभी सोनेमें और हीरे-मोतियोंमें अपना पैसा लगाकर और उनकी बिक्री करके भावके परिवर्तनका लाभ उठाते हैं। कभी कभी तो इन लोगोंकी प्रवृत्तियोंके कारण ही भावोंमें अधिक परिवर्तन हो जाता है और उस हद तक ये लोग सेवाके बजाय कुसेवा करते हैं। ऊपरसे यह नुकसान और होता है कि ऐसे मुनाफे पर वे आरामकी जिन्दगी बिताकर समाज पर बोझ बन जाते हैं।

७ सट्टेका मुनाफा—ऊपरकी इस तरह अलग-अलग होनेवाले मुनाफेमें संयोग और भाग्यका तत्त्व होनेके कारण कुछ हद तक यह धंधा सट्टे जैसा जरूर है परन्तु वस्तुतः सट्टा दूसरी ही चीज है। पूंजी लगानेके धंधेमें मनुष्यके पास लगानेके लिए पूंजी तो होती है और असली इस पूंजीसे वह जो जायदाद खरीदता है उसे फिर निश्चित अवधिके भीतर ही बेच देना उसके लिए आवश्यक नहीं होता। जब अच्छा भाव आये तब बेचना चाहे तो वह बेच सकता है। सट्टेमें इस प्रकारसे सौदे और बिक्री की जाती है कि अमुक अवधिके बाद माल खरीदेंगे और उसमें मुनाफा लेंगे और नियत की हुई अवधि पर—लिया सौदा चुकाया जाता है—यानी सौदेकी तारीख पर उस भावसे बाकीका फर्क लेना या देना पड़ता है। सट्टेवालेके पास पूंजी न हो तो भी काम चल सकता है क्योंकि किए हुए सौदेके अनुसार मालकी डिलिवरी सचमुच देना या लेना नहीं पड़ता। इस तरह जो माल अपने अधिकारमें न हो उसे बेचनेका और जिसका अपने अधिकारमें न आना निश्चित है उसे खरीदनेका सौदा किया जाता है। हम सट्टा प्रकरणमें (देखिए भाग २ प्रकरण ७) कह चुके हैं कि सट्टेवाले बाजारके लिए उपयोगी होनेका कितना ही दावा क्यों न करते हों, तो भी उसमें जुआका तत्त्व ही अधिक होता है और सट्टेवाले कुल मिलाकर समाजको नुकसान ही अधिक पहुंचाते हैं।

८ सट्टेका एक प्रकार यह है जिसे बाजारमें बदला करना (कॉरिंग) कहा जाता है। जब एक आदमी ऊंचे भावकी धारणासे बाजारसे माल उधार खरीद कर उसे भावमें बेच देता है, तब यह कहा जाता है कि

उसने स्थान लिया है। किसी मिलके मजदूरोंका हक या मालदारोंका ख्याल किया जाता है। ऐसे व्यापारी रातोंरात घड़ीभरमें करोड़पति बन जाते हैं और घड़ीभरमें दर दरके भिखारी हो जाते हैं। परन्तु सफल होनेके बनिस्बत उनके निष्फल होनेके मौके ज्यादा आते हैं। जिसके पास बहुत अधिक पैसा हो और ऐसा मौका आने पर सौदेका सारा माल भारी डिलीवरी लेकर उसे माल अमुक अवधि तक अपने हाथमें रखनेका साहस और साधन उसके पास हों तो उसे इसमें सफलता मिल सकती है। परन्तु इस व्यापारीके विरुद्ध दूसरा व्यापारी भी जिद पर चढ़ जाय तो दोनोंमें जो ज्यादा ताकतवर होगा वही दूसरेको गारतमें मिला देगा। सामाजिक दृष्टिसे सोचें तो सट्टे और व्यापारसे लाभ कुछ नहीं और नुकसान अपार है। सुनियोजित अर्थ रचनावाले समाजमें सट्टे और दलालोंके लिए कोई भी स्थान नहीं हो सकता।

९. **ठेकेदारोंका मुनाफा** — यह कहा जाता है कि हमारा वर्तमान अर्थव्यवहार खुली स्पर्धाके सिद्धान्त पर होता है। परन्तु असलमें खुली स्पर्धा बहुत थोड़ी होती है। बिजली पहुंचानेके लिए, शहरोंमें ट्राम और बस चलानेके लिए, रेलोंके लिए और सार्वजनिक उपयोगिताके ऐसे ही दूसरे कामोंके लिए कानूनसे कुछ सार्वजनिक संस्थाओंको ठेके दिये जाते हैं। इन ठेकों पर कानूनका अंकुश होता है और उनमें किसीका निजी स्वार्थ नहीं होता। इसलिए ऐसे कामोंके ठेके होने पर भी उनमें नफा कमानेका नहीं बल्कि लोगोंके लिए उपयोगी बननेका हेतु ही प्रधान होता है। शोधकोंको पेटेण्ट दिये जाते हैं और लेखकोंको कापी राइट दिया जाता है। उसमें भी ठेकेका तत्त्व है। फिर भी उसमें उद्देश्य यह रहता है कि शोधक या लेखकने जो कड़ा परिश्रम किया है उसका लाभ दूसरे न उठा लें और वह खुद अपने परिश्रमका फल भोग सके। इसके सिवा यह ठेके जैसा संरक्षण उसे अमुक मर्यादित समयके लिए ही दिया जाता है। कुछ वर्षोंके बाद तो पेटेण्ट या कापी राइट रद्द हो जाता है और शोधककी खोज और लेखककी रचना सार्वजनिक सम्पत्ति बन जाती है। इसलिए ऐसे शोधकों और लेखकोंको मिलनेवाला विशेष मुनाफा सीमासे अधिक न बढ़ जाय तो उस पर कोई आपत्ति नहीं करता।

१०. परन्तु आजकल बड़े बड़े उद्योगपति अपने कारखानोंका संगठन बनाकर अपनी भीतरी स्पर्धाको खतम कर देते हैं और जो कोई उनके संगठनमें शरीक नहीं होते उनकी स्पर्धाको तोड़ देते हैं। ऐसा करके अपने उद्योग-धंधेमें ठेकेदारी अथवा एकाधिकारकी जो स्थिति वे प्राप्त कर लेते हैं वह कहां

तक ठीक है यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसे संगठनोंका जिन्हें कम्बाइन्स ट्रस्ट्स या सिंडिकेट्स कहा जाता है मुख्य हेतु अधिकसे अधिक मुनाफा कमाना ही होता है। इनके मुनाफे पर मुख्य अंकुश यही होता है कि अगर वे अपनी चीज बहुत महँगी कर डालें तो उसके बदलेमें चल सके ऐसी सस्ती चीज ढूँढ निकालनेके लिए दूसरे उत्पादक प्रेरित होते हैं। और वे लोगोंको दूसरी चीज बदलेमें दे सकें तो लोग महँगी चीजका उपयोग करना छोड़ देते हैं और इन सस्ती चीजोंको काममें लेने लग जाते हैं। इसलिए वे संगठन अपने धंधेको टिकाये रखनेके लिए बहुत ज्यादा मुनाफा न लेकर चीजकी कीमत उचित ही रखते हैं। दूसरी बात यह है कि मुनाफेका आधार इस बात पर रहता है कि चीज कितनी मात्रामें खपती है। मुनाफेका प्रतिशत बहुत अधिक रखनेसे चीजकी खपत यदि बिलकुल कम हो जाती हो और मुनाफेका प्रतिशत कम रखनेसे चीजकी खपत बहुत बढ़ सकती हो तो मुनाफेका प्रतिशत थोड़ा रखनेमें ही एकाधिकारीको लाभ है। क्योंकि खपत बहुत हो तो मुनाफेका प्रतिशत थोड़ा रखने पर भी कुल मुनाफा बहुत अधिक होता है। फिर भी बदलेमें दूसरी चीजके स्पर्धामें उतर जानेका भय न रहनेकी स्थितिमें अथवा उन चीजोंके सामने न आने तक तो एकाधिकारी काफी मुनाफा कमा ही सकता है। इसके सिवा कोई चीज लोगोंकी अनिवार्य जरूरतकी होती है तब तो एकाधिकारी जितना ही दाम रखे तो भी लोगोंको वह लेना ही पड़ता है। इसलिए सब बातोंको देखते हुए अच्छा तो यही है कि निजी व्यक्तियोंको एकाधिकारकी स्थिति प्राप्त न करने दी जाय। और ऐसे सामाजिक अंकुश होने चाहिये जिनसे कोई निजी व्यक्ति ऐसी स्थिति प्राप्त करके भारी मुनाफा न कमा सके।

मुनाफे पर नियंत्रणकी जरूरत

११ अलग अलग प्रकारके मुनाफेका विचार करते समय ही हम मुनाफेके औचित्यके विषयमें और उस पर नियंत्रण रखनेके विषयमें कुछ विचार कर चुके हैं। मुनाफेका विरोध तीन कारणोंसे किया जाता है
(१) साधारण उद्योग धंधोंमें जो भारी मुनाफा हो सकता है उसका सारा कारण उत्पादनके साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्वका अधिकार है।
(२) पूँजी बाजारमें और सट्टा बाजारमें अधिकतर सट्टेबाजीसे ही मुनाफा होता है।
(३) एकाधिकारका मुनाफा समाज पर बोझरूप है। इन तीनों कारणोंकी जाँच हम अब क्रमसे करेंगे।

(१) एकाधिकारमें भी उत्पत्तिके साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्वका तत्व तो होता ही है। इसलिए यह उचित नहीं कि समाजकी अनिवार्य उपयोगकी चीजें बड़े पैमाने पर बनानेवाले सब लोग अपना संगठन करके चीजोंके मनमाने भाव लें और बड़ा मुनाफा कमायें। जहाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन होता हो वहाँ उत्पत्तिके साधनों परसे व्यक्तिगत स्वामित्व मिटा दिया जाय, तो बड़े एकाधिकारोंकी गुंजाइश नहीं रहेगी। छोटे पैमानेके उत्पादनमें एकाधिकारकी स्थिति पैदा होनेकी बहुत कम संभावनाएं हैं। फिर भी ऐसी स्थिति पैदा हो तो भावों पर नियंत्रण करके और अधिक मुनाफा कमानेवालों पर विशेष कर लगाकर उन पर अंकुश रखा जा सकता है।

(२) पैसेका फरजन्द करके और सट्टा खेलकर जो लोग मुनाफा कमाते हैं वे तो समाजकी कोई भी उपयोगी सेवा किये बिना यह मुनाफा कमाते हैं। सट्टा और ब्याज तो कानूनसे बन्द होना ही चाहिये और पैसेके फरजन्दसे होनेवाले मुनाफे पर भारी कर लगाना चाहिये ताकि केवल मौकेके फायदेसे लोग मेहनत किये बिना जो लाभ उठा लेते हैं वह न उठा सकें।

(३) उद्योग-धंधोंमें भी हमने देख लिया कि उत्पादनके सीमावाले कारखानेदारोंको अपनी देखरेख और संचालनकी मेहनतके बदलेके सिवा अधिक मुनाफा नहीं मिलता। अधिक मुनाफा तो सामान्यसे ऊपरवाले कारखानेदारोंको ही मिलता है। यदि सभी बड़े कारखानों पर समाजका स्वामित्व स्थापित कर दिया जाय तो उनके प्रबन्धकोंको नुकसानका कोई खतरा न उठाना पड़े और उन्हें अपने संचालनका पारिश्रमिक मिल जाय। इसके साथ यह भी जरूरी है कि सारा उत्पादन योजनाबद्ध तथा पहलेसे समाजकी जरूरतोंका विचार करके किया जाय। इससे मुनाफेके बचावमें अनिश्चितता और साहसकी जो दलील दी जाती है उसके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहेगा। और उत्पादनका सारा हेतु ही बदल जायगा।

६

मजदूर-संघ

संघकी आवश्यकता

१ मजदूर-संघोंकी प्रवृत्ति एक नई चीज नहीं है यद्यपि मध्यकालमें कारीगरों, व्यापारियों आदि के धंधेवालोंके संघ थे। हमारे देशमें तो अब भी कारीगरों और व्यापारियोंके संघ मौजूद हैं। परन्तु एक खास तरहके मजदूर-संघोंकी प्रवृत्ति तो औद्योगिक क्रान्तिके बाद उद्योगोंका काम केन्द्रित होने और बड़े कारखाने कायम होनेका ही परिणाम है। एक एक कारखानेमें एक ही कारखानेदारके अधीन हजारों आदमी काम करते हैं। और जैसे जैसे कारखाने बड़े होते जाते हैं वैसे वैसे एक एक कारखानेमें काम करनेवाले मजदूरोंकी संख्या बढ़ती जाती है। इसलिए मालिक और मजदूरके बीच पहले जो व्यक्तिगत संबंध रहता था और एक-दूसरेके लिए जो प्रेम और सहानुभूति पाई जाती थी उसकी अब संभावना नहीं रही। कारखानेमें बड़े बड़े मशीनोंकी तरह मालिक और मजदूरके बीचका संबंध भी जड़ और यांत्रिक हो गया है। इसके साथ ही मजदूर एक ही कामके लिए एक ही स्थान पर बड़ी संख्यामें इकट्ठे होते हैं, इसलिए उनका संगठन आसान हो गया है। मजदूरोंमें अपनी पराधीन और लाचार स्थितिके बारेमें असंतोष दिनोंदिन बढ़ता जाता है। जब तक कि मजदूरोंको दो वक्त खाना-कपड़ा लायक मिलता रहता उन्हें संतोष नहीं होता। वे तो कारखानेदारके बराबर ही होना चाहते हैं। उनकी मांग यह है कि मजदूरोंकी दर और कामकी शर्तें अकेले कारखानेदारकी इच्छाके अनुसार नहीं बल्कि मजदूरोंकी सम्मतिसे निश्चित होनी चाहिये। यह दूसरी बात है कि हमारे देशमें मजबूत मजदूर-संगठन अभी बहुत थोड़े हैं। अधिकतर मजदूर अभी तक असंगठित दशामें ही हैं। क्योंकि हमारे मजदूर अभी अज्ञान हैं और उनमें एकता नहीं है। फिर जो लोग आगे बढ़कर भी रहे हैं उन्हें मालिक अपना दुश्मन समझकर नौकरीसे निकाल देते हैं जिससे बाकी लोग डर जाते हैं।

२ यह तो कहा जा सकता है कि अपनी मजदूरीकी दर निश्चित कारखानेदारके साथ अपनी इच्छाके अनुसार मोल करनेकी स्वतंत्रता हर मजदूरको है। परन्तु यह स्वतंत्रता नामकी ही है। मजदूरसे यह कहना कि तुम्हें

गौण मतलबकी व्याख्या है, स्वतन्त्रता नाममात्र हुआ करती है। यह दलील दी जा सकती है कि यदि कारखानेदार मजदूरी न चुकाये तो उसको कारखाना छोड़कर दूसरे कारखानेमें काम करनेकी मजदूरको स्वतन्त्रता है। परन्तु यह दलील गलत है क्योंकि दूसरा कारखानेवाला भी पहलेके जैसा ही होगा। दूसरे कारखानेमें जगह न भी खाली हो, यह तो मामूली बात ही है। फिर दूसरा, तुरन्त आदमी अपना घरबार-स्थान भी नहीं छोड़ सकता। यदि एक कारखाना छोड़कर चला जाय और दूसरी जगह उसे तत्काल मजदूरी न मिले तो उसे सपरिवार कितने दिन तो भूखा मरना ही पड़ जाता है। यदि मजदूर कुछ और सुविधाएँ माँगे और कारखानेदारको यह न सुहाय तो वह उस मजदूरको नौकरीसे अलग कर सकता है। ऐसा जितने दिन उसे दूसरा काम नहीं मिलता उतने दिन उसे भूखे रहनेकी नौबत आती है। एक कारखानेदारके यहाँ जो हजारों आदमी काम करते हैं उनमेंसे स्वतन्त्रताकी खुमारीवाले और अपने अधिकारके लिए लड़नेको तैयार जो थोड़े मजदूर होते हैं उन्हें वह अलग कर दे तो उसका कुछ भी नुकसान नहीं होता। लेकिन उन निकाले हुए मजदूरोंका हाल बड़ा बुरा हो जाता है। इस तरह मजदूरको कारखानेसे अलग करनेका अधिकार कारखानेदारके हाथमें एक जबरदस्त हथियार है और अलग होकर बेकार हो जानेका डर मजदूरपक्षकी सबसे बड़ी कमजोरी है। परन्तु यदि कारखानेके सभी मजदूर संगठन कर लें तो कारखानेदारका नौकरीसे अलग कर देनेका या अलग कर देनेकी धमकीका हथियार भोथरा पड़ जाता है। एक-आधको निकाल देने पर यदि सब मजदूर एकसाथ काम छोड़ दें तो कारखानेदारको भी सोचना पड़ता है। उसे भी फिर दूसरे मजदूर पूरी संख्यामें तुरन्त नहीं मिलते। इसके सिवा नये आनेवाले मजदूरोंको कारखानेके सारे कामकाजसे परिचित होनेमें भी कुछ दिन लगते हैं। इस तरह कारखानेदारको भी काफी दिन बेकार बैठने और नुकसान उठानेकी नौबत आ जाती है।

३ इक्के-दुक्के मजदूर कारखानेदारके सामने कमजोरी और लाचारी अनुभव करते हैं। इसके उपायके रूपमें संगठन करके अपनी शक्ति बढ़ानेकी कोशिशमेंसे मजदूर-संघोंकी प्रवृत्तिका जन्म हुआ है। अपने हितों और अधिकारोंकी रक्षाके लिए तथा आपसमें एकता, परस्पर सहायता और सहयोगकी वृत्तिका विकास करके अपनी शक्ति बढ़ानेके लिए मजदूर अपना जो मण्डल बनाते हैं अथवा संघ कायम करते हैं उसे मजदूर-संघ कहते हैं। ऐसे संघका सदस्य बना हुआ मजदूर कारखानेदारके साथ स्वतन्त्र व्यक्तिके नाते किसी भी तरहका व्यवहार नहीं करता, वह कारखानेदारके साथ अपना सारा व्यवहार अपने

संघके जरिये करता है। संघ अपना विधान तैयार कर लेता है और अपने सदस्योंके व्यवहारके नियम भी निश्चित कर देता है। संघका सदस्य होनेवाला मजदूर प्रतिमाह या प्रतिवर्ष अपने वेतनके अनुसार अमुक रकम सदस्यताकी फीस या शुल्कके रूपमें देता है। इस आयसे संघका सब खर्च चलता है। अपनी शिकायतें पेश करनेके लिए सबके सब सदस्य अपने प्रतिनिधि चुन लेते हैं। ये प्रतिनिधि समय समय पर एकत्र होकर अपने सामने आये हुए प्रश्नों पर विचार करके प्रस्ताव पास करते हैं और वे प्रस्ताव सबके लिए बंधनकारक होते हैं। मजदूर-संघोंकी आय नियमित और निश्चित हो तो वे अपने तरह तरहके कामोंके लिए वेतनिक कार्यकर्ता भी रख सकते हैं।

४ इन मजदूर-संघोंके कार्यकी सफलताका आधार इस बात पर होता है कि उन्हें पथप्रदर्शक और नेता कैसे मिलते हैं। हमारे देशमें और दुनियाके दूसरे देशोंमें भी अभी तक मजदूरोंमें से ही इस कार्यके नेता बननेवाले लोग नहीं निकले हैं। इसलिए मजदूरोंका नेतृत्व ऐसे लोगोंके हाथमें है जो स्वयं मजदूर नहीं हैं। इनमें से कुछ तो मजदूरोंकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति सुधारनेका कार्य सिर्फ दयाकी भावनासे करते हैं और कुछ लोग इस भावनासे काम करते हैं कि मजदूर स्वयं अपने अधिकारोंका समर्थन करें और राजनीतिक मामलोंमें भी अधिकार भोगने लगें। कुछ ऐसे भी होते हैं जो स्वयं आगे आनेके लिए अथवा अपने राजनीतिक विचारोंको आगे बढ़ानेके लिए मजदूरोंकी मदद लेनेके खातिर इस काममें पड़ते हैं। अंतिम प्रकारके लोग बहुत बार मजदूरोंका भला करनेके बजाय उनका बुरा करनेवाले साबित होते हैं।

मजदूर-संघके उद्देश्य

५ मजदूर-संघके दो कार्य मुख्य माने जा सकते हैं (१) अपने अधिकारों और हितोंकी रक्षा और वृद्धिके लिए लड़ना और (२) अपने भीतर भ्रातृभाव एकता और सहयोगकी भावना पैदा करके अपनी शक्ति बढ़ाना और अपनी सर्वांगीण उन्नति साधना। पहले कार्यको हम लड़ाईका कार्य कहें तो दूसरेको रचनात्मक कार्य कह सकते हैं। यह रचनात्मक कार्य बड़ा महत्त्वका होता है। इसमें बीमारीके समय एक-दूसरेकी व्यक्तिगत रूपमें मदद देना रुपये पैसेकी तरहसे दवादारूकी व्यवस्थाके लिए दवाखाने और अस्पताल चलाने जैसा काम होता है। शिक्षाके विषयमें मजदूरोंकी स्थिति और तरह तरहके विषयोंकी जानकारी रखनेवाले व्याख्यान पुस्तकालय और शिक्षाके लिए पाठशालाएं और वाचनालय आदि सब काम किये

जाते हैं। मजदूर शराब और दूसरे हानिकारक व्यसनोंमें न पड़ें इसके लिए ऐसे होटल और क्लब खोले जाते हैं जहां खाने-पीनेकी और मनोरंजनकी अच्छी सस्ती चीजें मिल सकें और दूसरे मनोरंजक खेल और ज्ञान बढ़ानेवाले कार्यक्रम चलाये जाते हैं। इसके सिवा निरक्षरोंको साक्षर करना, कुछ लोगोंको संयमकी तरफ ले जाना, सफाई और सुघड़ताकी आदत डालना, नागरिकता और नैतिकताके आचार विचार सिखाना — संक्षेपमें उन्हें अच्छा समाजोपयोगी जीवन बिताने योग्य बनानेके लिए तरह तरहकी प्रवृत्तियां मजदूर-संघोंकी तरफसे चलाई जाती हैं। जो मजदूर-संघ ऐसे रचनात्मक कामोंकी ओर ध्यान देते हैं वे ही अधिक उपयोगी होते हैं और मजदूरोंके लिए अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं।

६ फिर भी मजदूर-संघोंका मुख्य और महान कार्य तो मजदूरोंके हितों और अधिकारोंके लिए लड़ना ही माना जाता है। इस कार्यक्रममें मजदूरोंकी दर यथासंभव ऊंची करवाना और कामके घंटे यथासंभव कम करवाना — ये दो मुख्य हेतु माने जाते हैं। कामकी परिस्थितियोंमें सुधार करानेके प्रयत्न करना और इस सिलसिलेमें पैदा होनेवाली शिकायतें दूर करानेके लिए जरूरी उपाय करना भी मजदूर-संघोंका महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके अलावा कारखानेमें हवा और रोशनी पेशाब-पाखाने नहाने-धोने और खानेके स्थान आदिकी सुविधाएं प्राप्त करानेके लिए भी मजदूर-संघोंको लड़ना पड़ता है। मजदूर-संघ इसका भी ध्यान रखते हैं कि कारखानेदार और उनके मुकादम आदि लोग मजदूरोंके साथ अच्छा बरताव करें उनका अपमान न करें उन्हें गाली न दें और उनके साथ मारपीट न करें। संघ यह भी कोशिश करता है कि मालिकोंके सामने सम्मान और दूसरे लोगोंमें मजदूरोंके स्वाभिमानकी रक्षा हो और वे भी दूसरे नागरिकोंकी तरह ही प्रतिष्ठा प्राप्त करें। कोई मजदूर स्वतंत्र विचारका हो और कारखानेदार उसे सहन न कर सकें और अनुशासनके नाम पर उसे निकाल दें तो उस समय पर मजदूर संघ इस बातकी अच्छी तरह जांच करता है कि कारखानेदारने मजदूरको उचित कारणसे अलग किया है या केवल अपनी तानाशाही चलानेके लिए ऐसा किया है। और यदि उसे गलत तरीकेसे अलग किया गया हो तो उसके लिए भी संघ लड़ता है।

मजदूर-संघकी प्रवृत्तिका आरंभ

७ हम कह चुके हैं कि बड़े कारखानोंके खड़े होने पर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि मजदूर संगठित हों तो ही कारखानेदारोंके सामने

प्रतिस्पर्धामें टिक सकते थे। फिर भी औद्योगिक क्रांतिके आरंभमें अनेक वर्षों तक मजदूरोंको असंगठित दशामें रहना पड़ा था। इंग्लैण्डमें १८ वीं सदीके अन्तमें और १९ वीं सदीके आरंभमें जब बड़े बड़े कारखाने बनने लगे, तब वहां संपूर्ण व्यक्ति-स्वातंत्र्य और अनियंत्रित प्रतिस्पर्धाकी हवा जोरोंसे चल रही थी। ऐसी फिलासफी चल रही थी कि हरएक मनुष्य अपने स्वार्थकी रक्षा करनेमें तत्पर रहता ही है और राज्य या समाज लोगोंके व्यवहारमें बिलकुल हस्तक्षेप न करें तो अपने-आप सबकी भलाई हो जाती है। इसलिए जैसा चलता है वैसा चलने दिया जाय और सरकार अथवा समाज लोगोंके आपसके व्यवहारमें मानवताकी खातिर या निर्बलोंकी रक्षा करनेके लिए अथवा अन्य किसी भी कारणसे बीचमें न पड़े। इस फिलासफीके अनुसार तो मजदूर-संघ बनाना भी मजदूरोंकी व्यक्तिगत स्वतंत्रतामें रुकावट डालना समझा जाता था। एक पुराना कानून तो ऐसा था जिसके अनुसार कुछ आदमी एकत्र होकर कोई नियम बनावें, सबके लिए उन्हें बंधनकारक मानें तथा उनके अनुसार व्यवहार करनेका प्रस्ताव करें तो उसे षड्यंत्र कहा जाता था। इस कानूनके अनुसार आठ-दस मजदूर जमा होकर अपना वेतन बढ़वाने अथवा दूसरे अधिकार पानेके लिए कोई भी कदम नहीं उठा सकते थे। इस तथाकथित स्वतंत्रतामें मजदूरोंकी दशा दिनोंदिन दूर बिगड़ती गई। धीरे धीरे लोकमत जाग्रत होने लगा। अन्तमें सन् १८२४ में इंग्लैण्डमें मजदूरोंको अपने संघ बनानेकी स्वतंत्रता मिली। बादमें दूसरे देशोंमें भी ऐसी स्वतंत्रता मिलने लगी। आज किसी भी देशमें मजदूरोंका संगठन करनेमें किसी भी तरहकी रुकावट नहीं है। लगभग प्रत्येक उद्योग-धंधेमें काम करनेवाले मजदूर अपने संघ बनाने लगे हैं। यह दूसरी बात है कि अभी कुल मजदूरोंकी संख्या देखते हुए संगठित मजदूरोंकी संख्या बहुत थोड़ी है।

८. जब ऐसे संघ नहीं थे और कारखानेदार प्रत्येक मजदूरके साथ अलग अलग करार कर लेता था, उस समयका कड़वा अनुभव ऐसा है कि मजदूरीकी दरें बहुत नीची रहती थीं। मजदूरोंका इस बारेमें शिकायतोंका उपरोक्त [illegible] कानून ही चलता था। लेकिन मजदूरोंके संगठनोंके कारण अब स्थिति बदली है। एक स्थानके सारे कारखानोंके अलग अलग विभागोंमें एक ही प्रकारके कामके लिए मजदूरोंकी दरें समान होती हैं और मजदूर-संघ इस बातकी सावधानी रखता है कि वे कमसे कम अमुक सतहसे नीची न जाने पायें। मजदूरीकी दरें समान होने पर भी ऐसा नहीं होता कि सब मजदूरोंको

कमाई भी कमाता हो। जिस काममें मालिक बहुत कुछ बचा हुआ हो वह काम करनेवाले तमाम मजदूरोंकी कमाई होती है। परन्तु कुछ विभागोंमें जितना काम हुआ हो उसके आधार पर मजदूरी दी जाती है। जहां इस तरह कामके आधार पर मजदूरी दी जाती है वहां स्वभावतः जो मजदूर अधिक अनुभवी कुशल और तेज होगा वह अधिक कमायेगा। बहुतसे विभागोंमें मजदूर इसी पद्धतिसे काम करना पसन्द करते हैं क्योंकि मशीनोंमें सुधार होनेसे कामकी जो मात्रा बढ़ती है उसका थोड़ा-बहुत लाभ तो उन्हें मिलता ही है। इस तरह कामका प्रत्यक्ष कामकी दर बंधी हुई होती है। परन्तु धंधेमें मन्दी आने पर कारखानेदार मजदूरोंका उस धंधेकी विचार करते हैं और धंधेमें तेजी आई हो और महंगाई चलती हो तब मजदूर अधिक लेना चाहते हैं। मजदूरोंके वेतनमें अन्यायपूर्ण कटौती न होने देना और उसमें उचित वृद्धि करवा देना मजदूर-संघका बहुत ही महत्त्वका काम माना जाता है। संघ इस बातका आग्रह रखता है कि जीवन निर्वाहके लिए जरूरी वेतन मजदूरोंको मिलना ही चाहिये और इसके लिए संघ लड़नेको भी तैयार रहता है।

बोनस और मुनाफेमें हिस्सा

९ किन्तु वेतनमें अमुक वृद्धि करवा लेना ही संगठनका उद्देश्य नहीं होता। कारखानेमें होनेवाले मुनाफेमें से भी मजदूर हिस्सा मांगते हैं। जैसे कारखानेदार पूंजीका मालिक होनेके कारण अपने पारिश्रमिकके उपरांत मुनाफा मांगता है वैसे ही मजदूर भी अपनी मजदूरीके मालिक हैं या उनकी मजदूरी ही उनकी पूंजी है और उसे वे कारखानेमें लगाते हैं इसलिए उसके बदलेमें कारखानेदारके साथ वे भी अपनको मुनाफेके अधिकारी समझते हैं। अच्छा काम करनेके बदलेमें उन्हें जो अधिक पारिश्रमिक मिलता है उसे बोनस कहते हैं। यह बोनस कोई मुनाफेका भाग नहीं है। क्योंकि यह बोनस तो नफा टोटेका हिसाब लगानेसे पहले ही दे दिया जाता है। इसका हिसाब मुनाफे परसे नहीं लगाया जाता बल्कि मजदूरोंके किये हुए काम परसे लगाया जाता है। असाधारण अच्छा मुनाफा हुआ हो तब तो मजदूर अधिकारपूर्वक बोनस मांगते हैं। लेकिन मुनाफेमें मजदूरोंको सच्चा हिस्सा तो तब मिला समझा जाय जब कारखानेसे हुए असली नफेमें से निश्चित किये हुए वेतनके अलावा उनका भाग अधिकारपूर्वक उन्हें दिया जाय। इस प्रथाको मुनाफेमें मजदूरोंका साझा (प्राफिट शेयरिंग) कहा जाता है। अमरीकामें बहुत थोड़े कारखानोंमें यह प्रथा शुरू हुई है। मजदूरोंको चालू वेतनके अलावा वर्षके अंतमें मुनाफेमें से अमुक भाग नकद बांट दिया जाता है या प्रोविडेण्ट फण्डमें जमा कर

दिया जाता है, या कारखानेके मालिक स्वयं शेयर उन्हें दिये जाते हैं जिनसे मजदूर भी कारखानेके हिस्सेदार बन सकते हैं। जहां यह प्रथा होती है वहां मजदूरोंको कारखाना अपना लगता है। वे अधिक लगनसे काम करते हैं और औद्योगिक शान्ति अच्छी तरह बनी रहती है। यह प्रथा तभी सफल होती है जब कारखानेदार बहुत उदार हृदयवाला और ईमानदार हो। नहीं तो मजदूरोंको दरअसल कितना मुनाफा मिलना चाहिये इसका हिसाब करनेका एक नया झगड़ा पैदा हो जाता है। इसके सिवा मजदूर भी एक ही कारखानेमें टिककर नहीं रहते। अगर उनसे लम्बे समय तक स्थायी तौर पर उसमें काम करवाया न हो तो जितने दिन उन्होंने काम किया हो उतने दिनका उनके हिस्सेका मुनाफा उनके लिए रख छोड़ना पड़े। फिर किसी आदमीको किसी अपराधके कारण कारखानेसे निकाला गया हो, वह भी मुनाफेमें हिस्सा मांगने आये तो एक नया झगड़ा खड़ा हो जाय। ये सब कठिनाइयां होने पर भी जब तक कारखानों पर समाजका स्वामित्व नहीं स्थापित हो जाता तब तक यह प्रथा लागू करने लायक है। ऊपर बताई हुई कठिनाइयोंका इलाज जरूर हो सकता है।

मजदूरोंका कल्याण

१० आज हर देशमें मजदूरोंके कामके घंटे पहलेसे घट गये हैं और मालिकोंकी तरफसे मजदूरोंको अनेक सुविधाएं भी दी जाती हैं। इसमें मजदूरोंकी खास मांगों या कानूनोंकी बनिस्बत मानवताकी दृष्टिसे काम करनेवाले समाज-सुधारकों और कार्यकर्ताओंका ज्यादा हाथ है। मजदूरोंके हकके मामलेमें तो मजदूरोंका अपना स्वार्थ होता है। मालिकों द्वारा सुविधाएं भी उन्हें अधिकारपूर्वक मिलनी चाहिये इस बातका भान तो मजदूरोंको अभी अभी होने लगा है। स्त्रियों और किशोरोंकी मजदूरीके बारेमें कानूनके प्रतिबन्ध हालमें ही लगे हैं। शुरू शुरूमें मजदूरोंने इसका कुछ विरोध भी किया था क्योंकि अपनी स्त्रियों और किशोरोंकी मजदूरी घट जानेसे उन्हें नुकसान मालूम होता था। कारखानोंके भीतर काम आनेवाले साधनोंमें जो सुधार हुआ वह मजदूरोंकी मांगसे नहीं हुआ है। यह तो इन बातोंको ध्यानमें रखकर हुआ है कि कारखानेको किस तरह सुरक्षित बनाया जाय। ऐसा तरह मालिक स्थिति पर ध्यान रखनेका नतीजा था जिससे मजदूरोंके शरीर पर कामसे न आ जाय ऐसा मानकर सुधारका नतीजा है, फल है। लेकिन अब ज्यों ज्यों मजदूर शिक्षित होता जाता है त्यों त्यों मनुष्य-नातेसे उसे कुछ स्वाभाविक अधिकारोंके बारेमें वह जाग्रत होता जाता है। और ह

बातकी सावधानी रख अपना सदा ध्यान रखता है कि उसके भलेके लिए बने हुए कानूनोंका असर अच्छा पड़ रहा है या न।।

हड़ताल

११ अपना हक पूरा करानेके लिए और अपनी मांगें पूरी करानेके लिए मजदूरोंके पास सबसे बड़ा हथियार हड़ताल है। जब उनकी वाजिब मांग कारखानेदार मंजूर न करें, किसी मजदूरके साथ अन्याय हुआ हो और वह दूर न किया जाय अथवा किसी मजदूरको गलत कारणसे निकाल दिया जाय तब मजदूर हड़ताल करते हैं। अलग अलग मजदूर यदि इस तरह विरोध करें तो उन्हें निकाल दिया जाय और उनकी कोई सुनवाई न हो। इसलिए वे सब मिलकर काम करना बन्द कर देते हैं और यह निश्चय कर लेते हैं कि जब तक उनकी मांग कारखानेदार पूरी नहीं करेगा तब तक वे काम पर वापस नहीं जायेंगे। हड़तालका हेतु अधिक अच्छी शर्तों पर अपनी नौकरी चालू रखना होता है। मजदूर अपनी नौकरी छोड़े बिना अपनी मांगें मंजूर कराना चाहते हैं इसलिए वे दूसरे मजदूरोंको भी अपनी जगह काम पर जानेसे रोकते हैं।

१२ पहले तो ऐसी कोई हड़ताल करना कानूनन विरुद्ध माना जाता था और हड़ताल करनेवालोंको सजा दी जाती थी। बादमें जिनकी शिकायत उचित हो उनकी हड़ताल कानूनी समझी जाने लगी। फिर भी अपने किसी कारणके बिना दूसरेकी सहानुभूतिमें हड़ताल करना या खुद हड़ताल करके दूसरोंको कारखानेमें काम पर न जाने देनेके लिए धरना देना या पिकेटिंग करना गैरकानूनी माना जाता रहा। किन्तु जैसे जैसे मजदूरोंके पक्षमें लोकमत तैयार होता गया वैसे वैसे कानूनमें परिवर्तन हुए और आज तो मजदूरोंको हड़ताल करनेका अधिकार और अपनी हड़तालको टिकाये रखनेके लिए शान्तिमय धरना देनेका अधिकार सब स्थानोंमें कानून द्वारा मान लिया गया है। अलबत्ता हड़ताल करवाने या जारी रखनेके लिए जबरदस्ती की जाय तो सरकार बीचमें पड़ती है और जबरदस्ती करनेवालोंको सजा देती है। बहुत बार कारखानेदारोंकी तरफसे यह बताकर कि हड़तालमें जबरदस्ती होती है हड़ताल तोड़नेके लिए गुंडोंको रखा जाता है और उनके द्वारा या मजदूरोंमें से ही कुछको फोड़कर उनके द्वारा मजदूरोंमें उत्तेजना फैला कर मजदूरोंमें दंगा करवानेकी कोशिश की जाती है। इसके अलावा छोटे छोटे पुलिसके आदमियोंसे लगाकर बड़े बड़े सरकारी अफसरों तक बहुतसे कारखानेदारोंके पक्षमें होते हैं। इसलिए थोड़ासा भी बहाना मिलने पर स्थानीय सरकारी अफसर

पुलिसकी शक्ति और जरूरी हो तो मिलिट्री शक्तिका भी उपयोग करनेके लिए तैयार हो जाते हैं। इसीलिए हड़ताल छोटी हो या बड़ी, मजदूरोंको चुपचाप रहकर शान्ति कायम रखना हड़तालकी सफलताकी अनिवार्य शर्त है। मजदूर जरासा भी दंगा-फसाद कर दें, तो उनका मामला कितना ही न्यायसंगत क्यों न हो वे हार जाते हैं। जो मजदूर-नेता हड़तालमें शान्तिका महत्त्व नहीं समझते, वे मजदूरोंकी कुसेवा या हानि करते हैं। हड़तालकी सफलताके लिए दूसरा आवश्यक बात यह है कि मजदूरोंको अपना न्यायपूर्ण और उचित मांगें बहुत ही विनय और विवेकके साथ अत्यन्त स्पष्ट और निश्चित शब्दोंमें पेश करनी चाहिये। इसके सिवा उन्हें हड़ताल करनेसे पहले मालिकके साथ समझौतेकी बातचीत करके झगड़ा निपटानेकी तैयारी बतानी चाहिये। मालिक समझौता करनेसे इनकार कर दें, पंचके द्वारा न्याय करानेसे इनकार न करें और यह बात मान ही न लें कि मजदूरोंको भी भिन्न राय रखनेका अधिकार है, तो हड़ताल अनिवार्य हो जाती है। ऐसा हड़ताल करनेसे पहले व्यवस्थित मजदूर-संघ मजदूरोंका मत ले लेते हैं और यदि अधिकतर मजदूर हड़तालके लिए तैयार हों तो ही हड़ताल घोषित की जाती है। हड़तालसे पहले और हड़तालके दौरानमें मजदूरोंको अपने पक्षमें लोकमत तैयार करनेका प्रयत्न करना भी चाहिये। लोगोंकी सहानुभूति जीतना हड़तालका अन्त लानेमें बहुत मददगार होती है। अगर हड़तालके पीछे जनता और लोगोंका हड़तालके साथ सहानुभूति हो, तो हड़तालकी सफलताके लिए जिस कारखानेके विरुद्ध हड़ताल हो उसके साथ मालिकका लेन-देन बन्द करने अथवा अन्य प्रकारसे भी उसका बहिष्कार करनेकी लोगोंसे अपील की जा सकती है। तीसरी बात यह है कि हड़तालके दिनोंमें मजदूरोंको बेकार न बैठे रहना चाहिये, बल्कि कोई न कोई कामधन्धा ढूंढ़कर उसमें लग जाना चाहिये। इस धन्धेसे मिलनेवाली आयका योगदान आर्थिक सहारा देता है और जब समझौता होगा, तब समझौता होगा, इस प्रकारकी मनकी निराश करनेवाली चिन्ता नहीं बनी रहती। इसलिए गांधीजी तो बड़े कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंको सलाह देते हैं कि एक सहायक धन्धेके तौर पर उन्हें कोई गृह-उद्योग सीख लेना चाहिये। यदि उद्योग संघोंकी ओरसे द्वारा कोई गृह-उद्योग न मिले तो हर मौके पर और हर स्थान पर चल सकनेवाला धन्धा तो है ही। चौथी बात समझदारी और धीरजकी है। पक्षमें मान लो कारखानेवालोंका पारा शायद जरूरतसे ज्यादा चढ़ गया हो और बेकारीके कारण दूसरे लोग हमारी जगह लेनेको तैयार हों, तो ऐसे समय हड़ताल

बरताव किए शुरू नहीं होता। क्योंकि इस सम्बन्धमें थोड़े दिन कारखाना बन्द रहनेसे कारखानेदारका बहुत नुकसान नहीं होता और यदि वह आपसका काम पर आनेको तैयार हो तो वह अपना कारखाना चालू भी रख सकता है।

१ यह तो सामान्य कारखानोंमें हड़ताल करनेकी बात हुई। परन्तु जो कारखाने लोगोंके जीवनकी दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हैं, उनमें या ऐसी संस्थाओंमें मजदूरोंका हड़ताल करना कहां तक उचित और न्याययुक्त है यह सोचनेकी बात है। बिजली या गैसके कारखानेमें हड़ताल हो तो सारे शहरमें अंधेरा हो जाय और बिजली तथा गैससे दवाखानोंमें, खाना बनानेमें और दूसरे जिन कामोंमें उपयोग होता है वे काम भी सब बन्द हो जायं। म्युनिसिपैलिटीके भंगी हड़ताल कर दें तो शहरमें गन्दगी फैल जाय और महामारी फैल जानेका भी खतरा पैदा हो जाय। डाक और रेलवेमें हड़ताल हो तो डाक-तारका व्यवहार और यातायातका व्यवहार रुक जाय। यही तरह ट्राम, बस या तांगेवालोंकी बात है। सामान्यतः तो इस तरह दैनिक सेवाका काम करनेवाले कारखाने और संस्थायें व्यक्तिगत स्वामित्वकी नहीं होतीं, परन्तु सरकारी या सार्वजनिक नियंत्रणमें रहती हैं। फिर भी अनेक स्थानों पर बिजली और गैसके कारखाने और रेलवे तथा ट्राम कम्पनियां व्यक्तिगत स्वामित्वकी भी होती हैं। जो कारखाने और संस्थायें सार्वजनिक स्वरूपकी होती हैं, उनके संचालकोंके समक्ष मुनाफेका हेतु नहीं होता। फिर ऐसी सार्वजनिक संस्थाओंमें एकाध व्यक्तिकी इच्छासे मजदूरोंको अलग भी नहीं किया जा सकता, अथवा अलग किया जाय तो आगे उसकी अपील हो सकती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ऐसे कारखानों और संस्थाओंमें मजदूरोंके साथ अन्याय होनेकी कम संभावना रहती है। लेकिन ऐसा नहीं होता कि हमेशा उन्हें न्याय ही मिले। हमारी बहुतेरी म्युनिसिपैलिटियोंमें भंगियोंकी स्थिति जैसी चाहिये वैसी नहीं है। उसमें अनेक सुधारोंकी गुंजाइश है और म्युनिसिपैलिटीका संचालन करनेवालोंका कोई निजी स्वार्थ न होने पर भी वे जरूरी सुधार करनेके लिए जितने होने चाहिये उतने तैयार नहीं होते। इसके सिवा उनके द्वारा नियुक्त सदस्य और अधिकारी भी मजदूरोंके साथ मनमाना बरताव करनेका दोष कभी कभी कर बैठते हैं। यह सच है कि ऐसे कारखानों और संस्थाओंमें हड़ताल करनेसे लोगोंको बड़ी परेशानी होती है, फिर भी यह नियम बनाना ठीक नहीं कि मजदूरोंको न्याय न मिले तो भी वे हड़ताल नहीं

कर सकते। लेकिन ऐसे कारखाने भले ही खानगी हों या सार्वजनिक, उनमें हड़तालोंको रोकनेके लिए ऐसा नियम होना आवश्यक है कि जब मजदूरों और संचालकोंके बीच मतभेद हो तब अचानक हड़ताल करने जैसा अन्याय हुआ मजदूरोंको लगता हो तब हड़ताल न करके उन्हें अपना मामला एक पंचके सामने पेश करना चाहिये जो दोनों पक्षोंको मंजूर हो अथवा ऐसे मामलोंका निपटारा करनेके लिए ऊँचे दरजेका एक स्वतंत्र न्यायाधीश होना चाहिए और वह जो भी निर्णय दे उसे दोनों पक्षोंको स्वीकार करना चाहिए। सार्वजनिक उपयोगके काम करनेवाली संस्थाओंमें मजदूरों पर यह प्रतिबंध रहता है कि वे हड़ताल करनेसे पहले नोटिस दें ताकि संचालकोंको उचित मालूम हो तो वे बीचमें पड़ सकें।

१८ हड़ताल चाहे जो हो, ऐसा है कि वह कितनी ही अनिवार्य और उचित क्यों न हो तो भी उससे नुकसान तो होता ही है। यह दूसरी बात है कि कारखानेदार अधिक साधन-सम्पन्न होनेके कारण आर्थिक नुकसानकी परवाह न करें। परन्तु हड़ताल बार बार पड़ती ही रहें तो कारखानेदारोंको भी काफी नुकसान हो। हड़तालसे सिवाय दूसरे लोगोंको भी कठिनाइयाँ भोगनी पड़ती हैं। मजदूरोंकी आय बन्द हो जानेसे वे पहलेकी तरह खर्च नहीं कर सकते और इससे ग्राहकों पर निर्भर रहनेवाले छोटे दुकानदार भी बेकार बनते हैं या नुकसानमें पड़ते हैं। हड़तालियोंके क्षेत्रमें शांति भंग होनेका डर तो बना ही रहता है। सबसे बड़ा नुकसान हड़तालियोंका ही होता है। उनके पास पैसा बचत नहीं होती और संघका फंड कितना ही बड़ा हो तो भी वह इतना बड़ा नहीं हो सकता कि हजारों-लाखों आदमियोंको वह बहुत समय तक निभा सके। इसलिए जब हड़ताल लम्बी चलती है तब तो मजदूर और उनके बाल-बच्चे भूखों ही मरने लगते हैं। भूख बच्चोंकी चिड़चिड़ाहट और असमर्थ हड़तालियोंके चेहरोंका दृश्य बहुत करुण होता है। इसलिए हड़ताल जहां तक हो सके टालने लायक चीज है। इस हथियारका उपयोग तभी करना चाहिए जब और कोई उपाय बाकी न रहे।

समझौता और पंच-फैसला

१९ अब सारे देशमें हड़तालोंको टालनेके लिए नये कदम उठाये जाने लगे हैं। आजकल मजदूरोंके संगठन लगभग सभी उद्योग-धंधोंमें हो गये हैं। कारखानेदारोंने तो इससे भी पहले अपने संगठन बना लिये थे। इसलिए ऐसा प्रबंध कर दिया गया था और अब तो उसे कानूनका रूप दे दिया है कि हड़ताल करनेसे पहले मजदूरोंके प्रतिनिधि और कारखानेदारोंके प्रतिनिधि

एकत्र होकर झगड़ेके प्रश्नों पर समझौता करनेकी कोशिश करें। आरंभमें कारखानेदार मजदूरोंके प्रतिनिधियोंके रूपमें बाहरके आदमियोंको हरगिज स्वीकार नहीं करते थे और यह आग्रह रखते थे कि मजदूरोंमें से ही कोई उनका प्रतिनिधित्व करे। इससे मजदूरोंको यह डर रहता था कि हममें से ही कोई प्रतिनिधि बनेगा तो उसे हुज्जती समझकर उसे अलग करवाया जायगा। इस डरके मारे मजदूरोंकी मांग मजदूरोंके नायक तक न भी जानेकी भी संभावना रहती थी। इसलिए मजदूरोंने इस बातका आग्रह रखा है कि बाहरके लोगोंको उनके प्रतिनिधि माना जाय और कारखानेदारोंने इसे स्वीकार करना शुरू किया है। कम दरजेकी शिकायतोंका निबटारा तो दोनों ओरके प्रतिनिधियोंके आपसी समझौतेसे हो ही जाता है। परन्तु जब ऐसा निबटारा नहीं हो पाता तब समझौता करानेके लिए अनेक देशोंमें सरकारकी तरफसे समझौता अधिकारी (कन्सिलियेटर) नियुक्त किया गया होता है और दोनों ओरके प्रतिनिधियों और एक तटस्थ व्यक्तिके बने हुए समझौता मंडलकी भी रचना की गई होती है। इन समझौता-अधिकारियों तथा समझौता मंडलोंके मत अथवा निर्णय पक्षोंमें से किसी भी पक्षके लिए बंधनकारक नहीं माने जाते लेकिन वे लोगोंके सामने दोनों पक्षोंका मामला पेश करनेमें बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। फिर हड़ताल करनेसे पहले या हड़ताल शुरू होनेके बाद दोनों पक्षोंकी शिकायतोंका निबटारा करनेके लिए पंचफैसलेकी प्रथा भी काममें लाई जाती है। अब तो बहुतसे देशोंमें औद्योगिक झगड़ोंके सम्बन्धमें समझौते और पंचफैसलेके कानून भी बन गये हैं।

हमारे देशके मजदूर-संघ

१६ हमारे देशमें मजदूरोंने पहले-पहल संयुक्त कार्य करनेका उदाहरण यह है जिसमें १८८४ में मजदूरोंकी परिषदने फैक्टरी-कमीशनको एक बड़ा प्रार्थना-पत्र भेजा था। उसके बाद १८९७ में रेलवेके नौकरोंकी एक सोसायटी स्थापित हुई। १९०७ में पोस्टल यूनियन (डाक कर्मचारियोंका संघ) बना और १९१० में बम्बईमें कामगार हितवर्धक सभा स्थापित हुई। परन्तु हमारे देशमें मजदूर संघकी प्रवृत्तिका व्यवस्थित आरंभ प्रथम महायुद्धके समय महगाई बढ़ने और युद्धके बाद भावोंमें बहुत तेजी आनेके कारण १९१८ में हुआ। १९१८ से १९२२ के बीच अपना वेतन बढ़वानेके लिए मजदूरोंको जगह-जगह हड़तालें करनी पड़ीं। इससे जगह जगह मजदूर-संघ बने। १९२० में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस इस हेतुसे स्थापित हुई कि आन्तर राष्ट्रीय मजदूर परिषदमें हिंदुस्तानी मजदूरोंके प्रतिनिधि भेज जा सकें। सन १९२९ में इस

आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर कम्युनिस्ट दलके उग्र कार्यकर्ताओंने अधिकार जमाया। और उसके बाद तो अखिल भारतीय नामवाले तीन चार संगठन अस्तित्वमें आये हैं।

१७ हमारे मजदूरोंकी गरीबी निरक्षरता जातपातके भेदभाव मजदूरोंके सच्चे हितकी लगनवाले कार्यकर्ताओंकी कमी आदि कारणोंसे हमारे देशमें मजदूर-संघोंका कार्य अभी तक बहुत व्यवस्थित और बलवान नहीं बन पाया है। मालिक-संघोंमें से भी बहुत कम मजदूर-संघोंको मान्यता देते हैं और उनके प्रतिनिधियोंके साथ समझौतेकी बातचीत करनेको तैयार होते हैं। सारे देशमें अकेला अहमदाबादका मजदूर संघ ही इस स्थितिको पहुंचा है कि अलग अलग मालिकोंके साथ और मिल-मालिक मंडलके साथ समझौतेकी बातचीत कर सके। सन् १९१८ में अहमदाबादके मिल मजदूरोंकी गांधीजीके नेतृत्वमें जो सुप्रसिद्ध हड़ताल हुई उसके बाद यह संघ स्थापित हुआ है। इस हड़तालके समय गांधीजीने मिल मालिकोंसे पंच फैसलेका तत्त्व स्वीकार कराया तबसे मिल मालिकोंके एक प्रतिनिधि और मजदूर-संघके एक प्रतिनिधिके पंच द्वारा छोटे मोटे झगड़े निबटानेकी प्रथा लगभग बीस वर्ष तक चली। लेकिन बम्बई प्रान्तमें औद्योगिक झगड़ोंके बारेमें कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलने जबसे कानून बनाया तबसे मालिकोंने पंचकी प्रथा छोड़ दी है और हड़तालकी संभावना पैदा हो तब या सरकार मजबूर करे तब वे कानूनसे स्थापित अदालतका पंच स्वीकार करते हैं। पंच फैसलेकी प्रथा जब प्रचलित थी तब कोई भी प्रश्न खड़ा होता तो पहले मजदूर-संघ और मिल मालिक मंडल आपसमें समझौता करनेकी कोशिश करते थे और वे समझौता न कर पाते तब उनका मामला पंचोंके सुपुर्द किया जाता था। पंचोंमें मतभेद होने पर सरपंच नियुक्त किया जाता था और उसका निर्णय दोनों पक्ष स्वीकार करते थे। गांधीजीके नेतृत्वका लाभ मिलनेसे अहमदाबादका मजदूर-संघ आज सारे देशमें सबसे बड़ा और सबसे अधिक संगठित मजदूर-संघ है।

अहमदाबादका मजदूर-संघ मजदूरोंके हित और स्वाभिमानकी रक्षा करते हुए प्रसंग आने पर मिल मालिकोंके साथ सहयोग भी करता है और ऐसे मौकोंको देखते हुए उसके अच्छे परिणाम भी आये हैं। यह व्यवस्थित ढंगसे बड़ा कार्यालय चलाता है और उसमें प्रतिवर्ष पांच छह हजार व्यक्तिगत और सामूहिक शिकायतें दर्ज होती हैं। अधिकतर शिकायतें दूर करानेमें सफलता मिलती है। इसके सिवा यह संघ मजदूरोंके लिए पाठशालाएं दवाखाने प्रसूति-गृह वाचनालय व्यायामशाला आदि चलाता

है। संघकी सफल कार्यवाहीके कारण आज अहमदाबादके मजदूरोंको दूसरे शहरोंके मजदूरोंसे अधिक वेतन मिलता है। इतना होने पर वे राजनीतिक मामलोंमें भी भाग लेते हैं और नगरकी म्युनिसिपालिटीमें वे अपने सदस्य चुनकर भेज सकते हैं।

१८ मार्च १९२६में भारत सरकारने ट्रेड यूनियन एक्ट पास किया। उस कानूनके अनुसार दर्ज हुए मजदूर-संघोंकी कुल संख्या सन् १९५०में २०७ थी तथा संघोंके कुल सदस्योंकी संख्या १८६,२०० थी। अहमदाबादके मजदूर-संघके सदस्योंकी संख्या १ लाखके आसपास रहती है।

इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूटस एक्ट

१. औद्योगिक झगड़ोंको रोकने और झगड़े उत्पन्न होने पर उन्हें मिटानेके बारेमें अब तक हमारे देशमें भी अनेक कानून बने हैं। इन कानूनोंमें बम्बई प्रान्तकी सरकार द्वारा पास किया गया सन् १९३८का बाम्बे इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट्स एक्ट, उसके बाद १९४६ और १९५ में उसमें किया गया सुधार और १९४७ में केन्द्रीय सरकार द्वारा पास किया गया इससे सम्बन्ध रखनेवाला कानून — ये सब महत्त्वपूर्ण औद्योगिक कानून हैं। इसलिए उनकी मुख्य बातें यहाँ दी जाती हैं।

बम्बईके कानूनके अनुसार मजदूर-संघोंको तीन वर्गोंमें बाँट दिया गया है (१) दर्ज हुए (रजिस्टर्ड) संघ (२) प्रतिनिधित्ववाले (रिप्रेजेण्टेटिव) संघ और (३) योग्यतावाले (क्वालिफाइड) संघ। मजदूरोंकी कुल संख्याका ५ प्रतिशत सदस्य-संख्यावाला और मालिकों द्वारा मान्य किया हुआ अथवा मालिकों द्वारा मान्य किया हुआ हो या न हो परन्तु जिसके सदस्य मजदूरोंकी कुल संख्याके कमसे कम २५ प्रतिशत हों वह मजदूर संघ दर्ज हुआ (रजिस्टर्ड) कहलाता है। यदि सदस्य-संख्या सिर्फ ५ प्रतिशत हो और मालिक उसे मान्य न करें तो वह संघ योग्यतावाला (क्वालिफाइड) माना जाता है। जिस मजदूर संघकी सदस्य-संख्या लगातार छह महीने तक २५ प्रतिशत या उससे ऊपर रहे उसे प्रतिनिधित्ववाला (रिप्रेजेण्टेटिव) संघ कहा जाता है। दर्ज किये हुए और प्रतिनिधित्ववाले संघोंके प्रतिनिधि मजदूरोंकी तरफसे उनका मामला पेश कर सकते हैं, परन्तु संघ केवल योग्यतावाला ही हो तो मजदूर अपना मामला पेश करनेके लिए अपनेमें से ही पाँच सदस्योंको नियुक्त कर सकते हैं।

२. दोनों कानूनोंके अनुसार हड़ताल अथवा तालाबंदी (लॉक आउट) आरंभ करनेसे पहले दोनों पक्षोंको तीन क्रमोंमें से गुजरना पड़ता है। पहले तो एक दूसरेको नोटिस (सूचना) देनी पड़ती है। नोटिस देने पर समझौतेकी

बातचीत आरंभ होती है। उसके फलस्वरूप यदि समझौता हो जाय तो वह दर्ज कर लिया जाता है। यदि समझौता न हो तो शिकायत करनेवाले पक्षको अपना सारा मामला सरकार द्वारा नियुक्त समझौता अधिकारी (कन्सीलियेटर) के सामने पेश करना पड़ता है। वह दोनों पक्षोंका मामला दर्ज करता है और यदि समझौता न करा सके तो सारे ब्यौरेकी रिपोर्ट सरकारके पास भेज देता है। वह रिपोर्ट सरकारी गजटमें छप जाती है। उसके बाद दोनों पक्ष कोई भी कारवाई करनेके लिए स्वतंत्र होते हैं। परन्तु यदि दोनों पक्ष मांग करें तो सरकार इस मामलेको समझौता मण्डल (बोर्ड ऑफ कन्सीलियेशन) के पास भेज देती है जिसमें एक प्रतिनिधि मजदूर-संघका एक प्रतिनिधि मालिक मंडलका और एक न्यायाधीश होता है। समझौता मण्डल दोनों तरफके प्रमाण लेकर और दलीलें सुनकर अपना निर्णय देता है। समझौता मण्डलका निर्णय माननेके लिए कोई भी पक्ष बंधा नहीं होता। परन्तु उसके विरुद्ध जाकर दोनोंमें से एक भी पक्षके लिए बहुत सबल कारणोंके बिना कोई कदम उठाना कठिन हो जाता है। क्योंकि लोकमत समझौता मंडलका निर्णय न माननेवाले पक्षके विरुद्ध हो जाता है।

२१ इसके सिवा, इन कानूनोंके अनुसार एक स्थायी औद्योगिक पंच अदालत (इंडस्ट्रियल आर्बिट्रेशन कोर्ट) की स्थापना भी की गई है। उसके पास जाना किसी भी पक्षके लिए अनिवार्य नहीं होता। दोनों पक्ष सहमत होकर उसका लाभ उठाना चाहें तो उठा सकते हैं। परन्तु यदि दोनों पक्ष पंच अदालतके सामने जायं तो उसका फैसला दोनोंके लिए अनिवार्य माना जाता है। विशेष परिस्थितियोंमें सरकारको उचित लगे तो वह दोनों पक्षोंको पंच अदालतके सामने जानेको बाध्य भी कर सकता है।

२२ ये कानून औद्योगिक शांति कायम रखनेके लिए बनाये गये हैं। लेकिन कुछ लोगोंकी ऐसी राय है कि समझौतेके लिए जो लम्बी चौड़ी विधि पूरी करनी पड़ती है वह मजदूरोंके हितके विरुद्ध जाती है, क्योंकि समझौतेमें तीन चार महीने लग जाते हैं और इस बीच हड़तालके लिए अनुकूल समय निकल जानेकी संभावना रहती है। इसके सिवा इतने समयमें मजदूरोंका उत्साह भी ठंडा पड़ जाता है। लेकिन मजदूरोंका संगठन मजबूत हो और उसे व्यवस्थित तथा शक्तिशाली नेतृत्व मिले, तो मजदूर हड़तालकी तैयारी कर सकते हैं और उसे याद दिलाते रहते हैं। अन्यथा जो लोग हड़तालों एवं तालाबंदियोंको सम्पूर्ण समझकर शान्तिसे लगातार

[illegible]

[illegible]

२० [illegible] अथवा [illegible] ([illegible])
[illegible] है । [illegible]
[illegible] (मुद्रा) [illegible] है । [illegible]

बातचीत आरम्भ होती है। उसके फलस्वरूप यदि समझौता हो जाय तो वह दर्ज कर लिया जाता है। यदि समझौता न हो तो शिकायत करनेवाले पक्षको अपना सारा मामला सरकार द्वारा नियुक्त समझौता अधिकारी (कन्सिलियेटर) के सामने पेश करना पड़ता है। वह दोनों पक्षोंका मामला दर्ज करता है और यदि समझौता न करा सके तो सारे मामलेकी रिपोर्ट सरकारके पास भेज देता है। वह रिपोर्ट सरकारी गजटमें छप जाती है। इसके बाद दोनों पक्ष कोई भी कार्रवाई करनेके लिए स्वतन्त्र होते हैं। परन्तु यदि दोनों पक्ष माँग करें तो सरकार इस मामलेको समझौता मण्डल (बोर्ड आफ कन्सिलियेशन) के पास भेज देती है जिसमें एक प्रतिनिधि मजदूर-संघका, एक प्रतिनिधि मालिक मण्डलका और एक न्यायाधीश होता है। समझौता मण्डल दोनों तरफके प्रमाण लेकर और दलीलें सुनकर अपना निर्णय देता है। समझौता मण्डलका निर्णय माननेके लिए कोई भी पक्ष बाध्य नहीं होता। परन्तु उसके विरुद्ध जाकर दोनोंमेंसे एक भी पक्षके लिए बहुत सबल कारणोंके बिना कोई कदम उठाना कठिन हो जाता है। क्योंकि लोकमत समझौता मण्डलका निर्णय न माननेवाले पक्षके विरुद्ध हो जाता है।

२१ इसके सिवा इन कानूनोंके अनुसार एक स्थायी औद्योगिक पंच अदालत (इन्डस्ट्रियल आर्बिट्रेशन कोर्ट) की स्थापना भी की गई है। उसके पास जाना किसी भी पक्षके लिए अनिवार्य नहीं होता। दोनों पक्ष सहमत होकर उससे लाभ उठाना चाहें तो उठा सकते हैं। परन्तु यदि दोनों पक्ष पंच अदालतके सामने जायँ तो उसका फैसला दोनोंके लिए अनिवार्य माना जाता है। विशेष परिस्थितियोंमें सरकारको उचित लगे तो वह दोनों पक्षोंको पंच अदालतके सामने जानेको बाध्य भी कर सकती है।

२२ ये कानून औद्योगिक शान्ति कायम रखनेके लिए बनाये गये हैं। लेकिन कुछ लोगोंकी ऐसी राय है कि समझौतेके लिए जो लम्बी-चौड़ी विधि पूरी करनी पड़ती है वह मजदूरोंके विरुद्ध जाती है; क्योंकि समझौतेमें काफी समय लग जाता है और इस बीच हड़तालके लिए अनुकूल समय निकल जानेकी सम्भावना रहती है। इसके सिवा इतने समयमें मजदूरोंका उत्साह भी ठंडा पड़ जाता है। यदि मजदूरोंका संगठन मजबूत हो और उन्हें व्यवस्थित तथा अधिकारपूर्ण नेतृत्व मिले तो मजदूर हड़तालकी तारीखको टाल सकते हैं और [illegible] मिल सकता है। अन्ततः तो सदा हड़तालको एक अनिवार्य शस्त्र समझकर [illegible] दारोमदार

[illegible]

(१) [illegible]

(२) [illegible]

(३) [illegible]

(४) [illegible]

(५) [illegible]

(६) [illegible]

(७) [illegible]

(८) [illegible]

मजदूरोंकी भलाईके कानून

१ प्राचीनपंथी अर्थशास्त्रियोंका कहना था कि सारे उद्योग-धंधे खुली और अनियंत्रित स्पर्धाके सिद्धान्त पर चलें इसीमें समाजका आर्थिक लाभ है। उस समयकी फिलासफीने इस कथनकी पुष्टि की। परन्तु समाजकी नैतिक बुद्धिने तुरन्त देख लिया कि कारखानेदार मनुष्यताको ताकमें रखकर स्पर्धा करने लगे हैं और मजदूरोंकी कमजोरियोंका लाभ उठा रहे हैं। इसलिए मजदूरोंकी रक्षा करनेका विचार पहले-पहल दयाधर्मी लोगोंके हृदयमें पैदा हुआ। पहले तो यह देखा कि कारखानोंकी चक्कियोंमें पिसनेवाली स्त्रियों और बच्चोंकी तुरन्त रक्षा करना चाहिये। यौन्त्रिक शक्तिसे चलनेवाले यंत्रोंके कारण कितने उद्योग-धंधोंमें नाजुक शरीर और थोड़ी शक्तिवाले आदमियोंसे भी काम चल सकता था। इसलिए कारखानेदार सस्ता श्रम पानेके लिए स्त्रियों और बच्चोंको काम पर लगानेके लिए तैयार हुए। और अपनी गरीबीके कारण ये लोग भी काम पर जानेको तैयार हो गये। १८वीं सदीके अन्तिम और १९वीं सदीके आरंभके वर्षोंमें इंग्लैण्डके कारखानोंमें आठ, नौ और दस सालके बच्चोंसे ग्यारह बारह और कभी कभी तो चौदह चौदह घंटे तक काम लिया जाता था। किसीमें रात पाली चलती थी। अतः उनसे रातको भी काम लिया जाता था। स्त्रियोंसे भी इतने ही समय तक काम लिया जाता था। इतना ही नहीं उनसे ऐसे भारी परिश्रमके काम भी लिये जाते थे जिनसे शरीरकी बरबादी हो जाय और वे हैवान जैसे बन जायं। इस प्रकार धंधोंका आरंभ इंग्लैण्डमें हुआ और बादमें जर्मनी, फ्रांस, इटली इत्यादि सब देशोंमें भी यही हुआ। नार्वे स्वीडन और डेनमार्क जैसे देश उद्योगोंके नुकसान अत्याचारसे बच गये क्योंकि वहां छोटे पैमाने पर उद्योग सहयोगी पद्धति पर अच्छी तरह जम गये थे।

२ इस अत्याचारके विरुद्ध आन्दोलनकी आवाज उठना इंग्लैण्डमें स्वाभाविक था। पहला कानून सन् १८०२ में पास हुआ। परन्तु पार्लमेन्टियनों द्वारा बना कानून होता था। उन कारखानोंके मालिक विरोधमें निरंकुश जो होता इसमें आता था। इस व्यवस्थाकी राजनीतिक पुरुषोंका आदर्श जोड़िया जाती था और धनी सज्जन प्रजातियोंसे जबमें हो जाता था परन्तु लोगोंका यह सबमाया जाता

[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] कानून [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] हुआ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] १८४७ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] अधिक काम [illegible] [illegible] [illegible] १८४४ [illegible] [illegible] [illegible] अनुसार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कारखानोंमें काम करें और आधे दिन [illegible] [illegible] पूरे दिन वह काम करें और दूसरे पूरे दिन छुट्टी पायें।

मीलोंमें [illegible] प्रारम्भमें यह आन्दोलन [illegible] हुआ है कि कामके घंटे कम हो जाय। मजदूरोंकी इस मांग [illegible] कामके घंटे घटानेके विरुद्ध कुछ लोग यह दलील देते हैं कि कामके घंटे घटानेसे कामकी उत्पत्ति कम हो जायगा। परन्तु अनुभवसे यह मालूम हुआ है कि आदमी [illegible] दस-बारह घंटे काम करनेके बजाय यदि शक्ति और उत्साहसे वह [illegible] काम करे तो काम जरा भी कम नहीं होता। बल्कि काम अधिक होनेकी संभावना है। इसलिए इस मामलेमें जरा भी ध्यान रहता है कि प्रतिदिन ८ घंटे और सप्ताहमें कुल ४८ घंटे काम हो और एक दिनकी छुट्टी रहे—इससे ज्यादा भी काम न कराया जाय। हमारे देशमें १९४८ में बने कारखानोंसे सम्बन्धित कानूनके अनुसार वयस्क स्त्री-पुरुषोंके लिए सप्ताहमें एक छुट्टी होना ही चाहिये और एक सप्ताहमें कामके घंटे ४८ से अधिक न होने चाहियें। इस हिसाबसे कामके घंटोंका औसत ८ घंटे आता है। कोई भी कारखाना लगातार ७२ घंटेसे ज्यादा नहीं चलाया जा सकता। इसलिए नियम यह है कि ९ दिनके बाद छुट्टी होनी ही चाहिये। बच्चों याने १२ से १५ वर्षकी उम्रवालोंसे प्रतिदिन ५ घंटेसे ज्यादा काम करानेकी मनाही है। और १५ से १७ वर्षकी उम्रवालोंको डाक्टर प्रमाणपत्र दे तो वह बड़ा माना जाता है वर्ना उन्हें भी बालक ही गिना जाता है। मजदूरोंसे अधिक काम लिया जाय तो उनके अधिक घंटोंके लिए उन्हें दुगुना

वेतन देना पड़ता है। लेकिन इस अतिरिक्त कामके लिए कोई बड़ी उम्रका मजदूर बीचके आरामके समयको मिलाकर १३ घण्टे अधिक और वर्षमें ७।। घण्टे अधिक समय कारखानेमें नहीं रह सकता। साथ ही सुबह छह बजेसे पहले और शामके सात बजेके बाद कोई स्त्री या बालक कारखानेमें नहीं रखा जा सकता।

४ अमरिकामें १९३८के फेअर लेबर स्टैण्डर्ड्स एक्ट द्वारा कामके घंटे सप्ताहमें ४० घंटोंका ध्येय निर्धारित किया गया है। इस ध्येय तक धीरे धीरे पहुंचना तय हुआ है। ४८ घंटे सप्ताहके बजाय १९३९ में ४४ घंटे उसके बादके वर्षमें ४२ घंटे और फिर ४० घंटे निश्चित किये गये हैं। कोयलेकी खानोंमें सन् १९३०के कानून द्वारा फ्रांस और इंग्लैण्डमें दैनिक कामके [illegible] घंटे निश्चित किये गये हैं।

५ लेकिन कामके घंटे कम कर देनेसे ही मजदूरोंकी सारी समस्याएं हल नहीं हो जातीं। जो स्थानें खतरनाक हों और जिनमें मनुष्य थोड़ासा भी लापरवाही करने पर फंस सकता हो उनको अच्छी तरह बन्द कर रखनेके लिए, खानोंमें हवा रोशनी और उचित सफाईकी व्यवस्था करनेके लिए और कारखानोंमें हवा और रोशनीके सिवा पाखाने-पेशाबखानोंकी ठीक व्यवस्थाके लिए कानून बनाये गये हैं। कारखानेकी बनावटमें जिन पदार्थोंका उपयोग करनेसे मजदूरोंकी तन्दुरुस्तीको नुकसान पहुंचे उनके उपयोगका निषेध कर दिया गया है। उदाहरणके लिए तमाम सभ्य देशोंमें सफेद फास्फोरससे जो दियासलाइयां बनाई जाती थीं और जिससे मजदूरोंको नाक और गलेके रोग हो जाते थे उनका उपयोग बन्द कर दिया गया है। इंग्लैण्डमें कारखानेका काम कितने बजे शुरू हो और कितने बजे बन्द हो, बीचमें कब कब आरामके लिए छुट्टी और खानेका समय रहे आदि बताने वाली तारीखें और स्थान, मजदूरोंकी गैरहाजिरी और उनके द्वारा किये हुए नुकसानके लिए जुर्माना करनेकी कारखाने वालोंकी सत्ताकी मर्यादा, ठेकेका काम करने पर उनकी मजदूरी गिननेकी रीति आदि बहुत छोटी छोटी बातोंके लिए कानून बने हैं। इसके सिवा मजदूरके साथ कोई दुर्घटना हो जाय तो उसके हर्जानेके बारेमें और स्त्रियोंको प्रसूतिके समय अमुक अवधिके साथ छुट्टी देनेके बारेमें भी कानून बने हैं। सामान्य मजदूरको भी कामके २८ दिनके बाद १ छुट्टीका पानेका अधिकार दिया गया है और कपड़े आदि बड़े उद्योगोंमें सन् १९५२के कानून द्वारा प्राविडेण्ट फंड रखनेकी व्यवस्था भी की गई है। इसके अतिरिक्त बीमारीमें मदद देनेकी और गर्भावस्थाकी व्यवस्था भी कर दी गई है।

६ [illegible] सन् १८८१ में [illegible]। [illegible] १८० [illegible] कारखानोंमें [illegible] [illegible] कारखाना [illegible] [illegible] [illegible] परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] हुए हैं। [illegible] और [illegible] [illegible] कानून बनाये [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] और [illegible] १९१८ [illegible] [illegible] [illegible] १०० [illegible] [illegible] [illegible] — [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

७ कारखानोंमें काम करनेवाली स्त्रियोंके लिए कुछ विशेष कानून बनाये गए हैं। ऊपर हम कह चुके हैं कि [illegible] और [illegible] स्त्रियोंको [illegible] कारखानोंमें [illegible] जा सकता। [illegible] अथवा [illegible] [illegible] उसमें स्त्रियोंको [illegible] है। [illegible] हो। उसमें स्त्रियों और १८ वर्षसे कम [illegible] लगाये जा सकते। सन् १९२ में [illegible] खानोंमें स्त्रियोंकी संख्या घटानेका निश्चय किया गया और अक्तूबर १९३५ [illegible] खानोंमें स्त्रियोंसे काम कराना बिलकुल बन्द कर दिया गया।

८ स्त्रियोंको प्रसूतिके समय कुछ न कुछ राहत या सुविधा देनेके कानून सन् १९२९ के बाद अलग अलग प्रान्तोंमें अलग अलग वर्षमें पास हुए हैं। वर्तमान कानूनमें स्त्रियोंको प्रसूतिके आठ सप्ताहकी छुट्टी मिलती है। छुट्टीके दिनोंमें उन्हें [illegible] या प्रतिदिन आठ आने [illegible] कम हो [illegible] दिया जाता है। इसके सिवा मजदूर स्त्रियोंके छोटे बच्चोंके लिए कारखानोंमें पालना रखना अनिवार्य कर दिया है और स्त्रियोंको समय समय पर बच्चोंको दूध पिलानेके लिए जानेकी छुट्टी दी जाती है।

९ कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंके काम करते करते किसी दुर्घटनाका शिकार हो जाने पर पहले कारखानेवालोंका इस बारेमें कोई

जिम्मेदारी नहीं मानी जाती थी। यह कहा जाता था कि कारखानेदार और मजदूरोंके बीच एक करारका सम्बन्ध है। उस करारके अनुसार मजदूरको उसकी मजदूरी दी जाती है। मजदूर काम करता है और उसके बदलेमें उसे मजदूरी मिलती है। लेकिन वह बीमार पड़े और दूसरे दिन काम पर न आये तो उस कारखानेदार उसके लिए कोई जिम्मेदारी अपने सिर पर नहीं रखता। बस आरम्भमें कारखानेमें काम करते करते मजदूर दुर्घटनाका शिकार हो जाता तो उसकी जिम्मेदारी भी कारखानेदार अपने सिर पर नहीं रखता था। फिर भी आखिर तो कारखानेदार मनुष्य ही होता था, इसलिए वह उसे अस्पतालमें भेज देता था और भला होता तो मजदूर जब तक बिस्तर पर पड़ा रहे तब तक उसे खानेको भी देता था। परन्तु ऐसा वह परोपकार और दयाका प्रदर्शन करता था कानूनी कर्तव्यके रूपमें नहीं। इस स्थितिमें सुधार करनेके लिए केन्द्रीय सरकारने सन् १९२३में वर्कमेन्स कॉम्पेन्सेशन एक्ट पास किया। उसके बाद इस कानूनमें कई सुधार किये गये हैं। इस कानूनके अनुसार दुर्घटनामें लगनेवाली चोटको ध्यानमें रखकर मजदूरको हर्जाना देनेका निर्णय किया गया है। दुर्घटनाके कारण मजदूर थोड़े दिन तक काम न कर सके तो उस कानूनके अनुसार कुछ हर्जाना दिया जाता है। यदि मजदूर हमेशाके लिए अपंग हो जाय तो उसे अमुक मात्रामें हर्जाना दिया जाता है और दुर्घटनामें मर जाय तो अमुक हर्जाना दिया जाता है।

१० हर्जानेकी रकम निश्चित करनेके लिए उद्योगके केन्द्रोंमें सरकारकी तरफसे विशेष अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं। मजदूरोंको राहत देनेवाले इस कानून या ऐसे दूसरे कानूनोंमें सरकारी अधिकारीकी ईमानदारी, सहानुभूति और न्याय-परायणता पर बड़ा आधार रहता है। हमारे मजदूर भी अभी अपने अधिकारों पर अमल करानेके लिए काफी जाग्रत और जानकार नहीं हुए हैं। जहां मजदूर-संघ सुसंगठित होते हैं वहां वे मजदूरोंकी तरफसे यह कार्य अच्छी तरह कर सकते हैं।

११ मजदूरोंके रहनेके मकानोंका प्रश्न बड़ा कठिन है। हर देशमें जब कारखाने शुरू होने लगे तब तो मजदूर कहां और कैसी जगहोंमें रहकर काम पर आते हैं इसका विचार करना किसीका भी फर्ज नहीं माना जाता था। निजी मकान-मालिक भाड़ा कमानेके लिए कारखानोंके पासके मुहल्लोंमें मजदूरोंके लिए मकान बनाने लगे। इनका ध्यान सुविधाएं देनेकी तरफ विशेष न होकर किराया कमाने पर ही अधिक रहता है। उसके बाद कुछ मिल-मालिकोंने भी मकान बनाना शुरू किया है। परन्तु उनमेंसे बहुत कम

६ हमारे यहाँ पहला फैक्टरी एक्ट सन १८८१ में पास हुआ। वह १८०२ के इंग्लैण्ड कानून से भी बदतर था। उसमें ७ वर्ष से कम उम्र के बालकों को कारखानों में न रखना तय हुआ था। १२ वर्ष तक की उम्र वालों को ही बालक माना गया था और बालकों से ९ घण्टे से अधिक काम न लेने का निश्चय किया गया था। परन्तु उसके बाद लोगों और सरकार की दयाबुद्धि विशेष जाग्रत हुई है। केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों ने अलग अलग कानून बनाये हैं। काम के घंटों और बालकों की कारखानों में रखने की उम्र के बारे में ऊपर कहा जा चुका है। फैक्टरी एक्ट में बड़े सुधार हुए हैं और सन १९४८ के इंडियन फैक्टरी एक्ट के अनुसार मकान बनाने में कृत्रिम नमी की मात्रा नियत रखना, बहुत गरमी से मजदूरों को बचाना, जिन कारखानों में १५० से अधिक मजदूर काम करते हों वहां मजदूरों को आराम के समय बैठने के लिए छायादार जगह देना, स्त्रियों तथा छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों को रखने के लिए अच्छे कमरों की व्यवस्था करना—आदि बातों के लिए नियम बनाने का प्रान्तीय सरकारों को अधिकार दिया गया है।

७ कारखानों में काम करने वाली स्त्रियों के लिए कुछ विशेष कानून बनाये गये हैं। ऊपर हम कह चुके हैं कि सुबह छह बजे से पहले और शाम को सात बजे बाद स्त्रियां और बालक कारखानों में नहीं रखे जा सकते। जो क्रियाएं शरीर को हानि पहुंचानेवाली अथवा अन्य प्रकार से खतरनाक हों उनमें स्त्रियों को लगाने की मनाही है। जिन उद्योगों में माल को उठाना होता हो उनमें स्त्रियां और १८ वर्ष से कम के लड़के नहीं लगाये जा सकते। सन् १९२९ में खानों के काम में स्त्रियों की संख्या घटाने का निर्णय किया गया और उसके अनुसार १९३७ में खानों में स्त्रियों से काम कराना बिलकुल बन्द कर दिया गया।

८ स्त्रियों को प्रसूति के समय कुछ न कुछ राहत या सुविधा देने के कानून सन १९२९ के बाद अलग अलग प्रान्तों में अलग अलग वर्षों में पास हुए हैं। बम्बई प्रान्त में स्त्रियों को प्रसूति के आठ सप्ताह की छुट्टी मिलती है। छुट्टी के दिनों में उन्हें चालू वेतन या प्रतिदिन आठ आने इन दोनों में जो कम हो वह दिया जाता है। इसके सिवा मजदूर स्त्रियों के छोटे बच्चों के लिए कारखानों में पालने रखना अनिवार्य कर दिया है और स्त्रियों को समय समय पर बच्चों को दूध पिलाने के लिए जाने की छुट्टी दी जाती है।

९ कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों के काम करते करते किसी दुर्घटना के शिकार हो जाने पर पहले कारखानेवालों का इस बारे में कोई

जिम्मेदारी नहीं मानी जाती थी। यह कहा जाता था कि कारखानेदार और मजदूरोंके बीच एक करारका सम्बन्ध है। उस करारके अनुसार मजदूरको उसकी मजदूरी दी जाती है। मजदूर काम करता है और उसके बदलेमें उसे मजदूरी मिलती है। लेकिन वह बीमार पड़े और दूसरे दिन काम पर नहीं आये तो उसे कारखानेदार इसके लिए कोई जिम्मेदारी आज भी अपने सिर पर नहीं रखता, वैसे आरंभमें कारखानेमें काम करते करते मजदूर दुर्घटनाका शिकार हो जाता तो उसकी जिम्मेदारी भी कारखानेदार अपने सिर पर नहीं रखता था। फिर भी आखिर तो कारखानेदार मनुष्य ही होता था, इसलिए वह उसे अस्पतालमें भेज देता था और भला होता तो मजदूर रोगशय्या पर पड़ा रहे तब तक उसे खानेको भी देता था। परन्तु ऐसा वह परोपकार और दयाकी दृष्टिसे करता था, कानूनी कर्तव्यके रूपमें नहीं। इस स्थितिमें सुधार करनेके लिए केन्द्रीय सरकारने सन् १९२३में वर्कमेन्स कम्पेन्सेशन एक्ट पास किया। उसके बाद इस कानूनमें बहुत सुधार किये गये हैं। इस कानूनके अनुसार दुर्घटनामें लगनेवाली चोटको ध्यानमें रखकर मजदूरको हरजाना देनेका निर्णय किया गया है। दुर्घटनाके कारण मजदूर थोड़े दिन तक काम न कर सके तो उसे वेतनके अनुसार कुछ हरजाना दिया जाता है। यदि मजदूर हमेशाके लिए अपंग हो जाय तो उसे अमुक मात्रामें हरजाना दिया जाता है और दुर्घटनामें मर जाय तो अमुक हरजाना दिया जाता है।

१० हरजानेकी रकम निश्चित करनेके लिए उद्योगके बड़े केन्द्रोंमें सरकारकी तरफसे विशेष अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं। मजदूरोंको राहत देनेवाले इस कानून या ऐसे दूसरे कानूनोंमें सरकारी अधिकारियोंकी ईमानदारी, सहानुभूति और न्याय-परायणता पर बहुत आधार रहता है। हमारे मजदूर भी अभी अपने अधिकारों पर अमल करानेके लिए काफी जाग्रत और जानकार नहीं हुए हैं। जहां मजदूर-संघ सुसंगठित होते हैं वहां वे मजदूरोंकी तरफसे यह काम अच्छी तरह कर सकते हैं।

११ मजदूरोंके रहनेके मकानोंका प्रश्न बड़ा कठिन है। हर देशमें जब कारखाने शुरू होने लगे तब तो मजदूर कहां और कैसी जगहोंमें रहकर काम पर आते हैं इसका विचार करना किसीको भी फर्ज नहीं मालूम होता था। निजी मकान-मालिक भाड़ा कमानेके लिए कारखानोंके पासके मुहल्लोंमें मजदूरोंके लिए मकान बनाने लगे। इनका ध्यान सुविधाएं देनेकी तरफ बिलकुल न होकर किराया कमाने पर ही अधिक रहता है। इसके बाद कुछ मिल-मालिकोंने भी मकान बनाना शुरू किया है। परन्तु उनमें से बहुत कम

मकान अच्छे सुभीतेके होते है। टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनीने अपने मजदूरोंके लिए मकानोंकी अच्छी व्यवस्था की है। अहमदाबाद म्युनिसिपल्टीने अपने मेहतर नौकरोंके लिए कुछ अच्छे मकान बनवाये है। अहमदाबादके मजदूर-संघने मजदूरोंके लिए थोड़से सुभीतेवाले मकान बनवाये है। इसके पीछे योजना यह है कि किरायेके साथ साथ मकानकी पूंजी भी किस्तोंमें लौटा कर अन्तमें मजदूर मकानका मालिक बन सकता है। परन्तु ये प्रयास समुद्रमें बूंदके समान कहे जा सकते है।

१२ मजदूरोंकी स्थिति सुधारनेकी दिशामें संघ और सरकारी कानून अभी तक तो बहुत थोड़ा ही काम कर पाये है। हमारे देशमें बड़े उद्योग बढ़ते जा रहे है और अभी बड़े उद्योग और ज्यादा बढ़ानेकी बातें भी बहुत हो रही है। बड़े उद्योग बढ़ाये बिना हम आर्थिक प्रगति नहीं कर सकेंगे, ऐसा केवल पूंजीपति ही नहीं परन्तु बहुतसे लोकसेवक भी मानते है। परन्तु प्रगतिका माप पूंजीपतियोंके नफे और मजदूरोंकी तनखाहें बढ़नेके आधार पर लगाना बड़ी भूल है। ये बड़े उद्योग जैसे जैसे बढ़ते जाते है वैसे वैसे लाखों आदमी मानवतापूर्ण जीवनसे दूर होते जा रहे है और भीड़, गन्दगी, अज्ञान, दुराचार और शराबखोरीकी स्थितिमें धकेले जा रहे है, इसका हम विचार नहीं करते। हमें इस बातका खयाल नहीं आता कि मजदूरोंकी अंधेरी और गन्दी कोठरियोंके भीतर गरीबी और दुराचारमें पिसनेवाले मजदूरोंकी हायकी कितनी प्रचण्ड आग धधक रही है।

८

आर्थिक सुरक्षितता और बीमा

बीमा-पद्धति

१ मनुष्यके और सब व्यवहारोंकी तरह उसका अर्थ-व्यवहार भी अनिश्चितता और खतरोंसे भरा रहता है। मृत्युसे अधिक निश्चित अन्य कोई वस्तु नहीं यह बात सच होते हुए भी उसके समयमें तो अनिश्चितताका तत्त्व है ही। मृत्यु आयेगी जरूर परन्तु यह निश्चित नहीं होता कि वह कब आयेगी। मनुष्य जवानीमें विचार करता है कि मैं अपनी आमदनीमें से थोड़ा थोड़ा बचाकर बुढ़ापेके लिए और अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके लिए बाकी रकम इकट्ठी कर लूँगा। इस तरह कुछ आदमी कुटुम्ब निबाहके लिए और बुढ़ापेके लिए कुछ न कुछ बचा भी सकते हैं। परन्तु बहुतेरे लोग कुछ बचा सकनेकी स्थितिमें ही नहीं होते और कुछ लोग असमय ही मर जाते हैं। उस समय उनके आश्रित लोग निराधार हो जाते हैं। बीमा ऐसी अनिश्चितताके आर्थिक परिणामोंसे बचनेकी एक योजना है। मनुष्य बीमा कंपनीमें जितनी रकमका बीमा कराता है उसके अनुसार उसे वार्षिक किस्तें चुकानी पड़ती हैं। आदमीकी उम्र क्या है उसकी जाति और उसके माता पिताका स्वास्थ्य कैसा है और माता पिता मर गये हों तो वे कितनी उम्रमें मर गये थे, बीमा करानेवाला आदमी जो धंधा करता है वह खतरेवाला है या बिना खतरेवाला है, शरीरका कष्ट दिखाई करनेवाला है या आराम करनेवाला है और कुल मिलाकर वह सुख-सुविधाका जीवन बिताता है या नहीं — इन सब बातोंका अन्दाज लगाया जाता है कि वह कितने वर्ष तक जियेगा और उसके अनुसार यह निर्णय किया जाता है कि अमुक रकमके बीमेके लिए उसे वर्षमें अमुक रकम चुकानी पड़ेगी। बीमा करानेवाला मनुष्य यह रकम नियमित चुकाता रहे तो उसके मर जाने पर — भले ही उसने एक ही किस्त दी हो — जितनी रकमका बीमा उसने कराया हो उतनी रकम उसके वारिसोंको या जिसके नाम लिखा गया हो उसे मिल जाती है। ये बातें सब जानते ही हैं। कुछ बीमोंमें ऐसी शर्त होती है कि अमुक निश्चित किये हुए वर्षों बाद। रकम भरनेवालेको जिन्दा या उसके पहले वह गुजर जाने तो

उसके वारिसोंको मिले। कुछ बीमोंमें जीवनभर बीमेकी निश्चित वार्षिक, छमाही या तिमाही किस्त चुकाना होती है और कुछमें निश्चित किये हुए पन्द्रह बीस या पच्चीस वर्ष तक किस्त चुकानेके बाद और कुछ देना नहीं पड़ता और बीमेकी रकम उसके मरने पर उसके वारिसोंको या जिनके नाम उसने वसीयत लिख दी हो उनको मिलती है। बीमेकी कुछ योजनाएं ऐसी होती हैं जिनमें बीमा करानेवाले मनुष्योंको बीमा कंपनीको होनेवाले मुनाफेमें से अमुक हिस्सा मिलता है।

२ इससे बीमा करानेवाले आदमीको एक तरहकी निश्चिन्तता और उसके पीछे रहनेवाले परिवारके सदस्योंको सुरक्षितता जैसी मालूम होती है। हर मनुष्य दीर्घ जीवन जीनेकी इच्छा तो रखता है परंतु दुर्भाग्यसे यदि वह जल्दी मर जाय तो बीमेके कारण अपने पर निर्भर रहनेवाले लोगोंको निवाहकी उसे चिंता नहीं रहती। लेकिन बीमा-कंपनियां यह काम किसी परोपकार-बुद्धिसे नहीं करतीं। उनका तो यह एक धंधा होता है क्योंकि बीमा करानेवाले सभी मनुष्य जल्दी नहीं मर जाते और बीमेकी किस्तें तो सबसे मिलती ही हैं। इन किस्तोंकी रकम अमुक हिसाब लगाकर निश्चित की जाती है। हर देशकी मृत्युसंख्या देखकर यह हिसाब लगाया जाता है कि अमुक उम्रमें प्रति हजार कितने आदमी मरते हैं। उस परसे यह निश्चित किया जाता है कि किसी कंपनीमें बीमा करानेवालोंमें से अमुक प्रतिशत लोग अमुक उम्रमें मरेंगे। बीमा कंपनीको यह तो निश्चय नहीं होता कि कौन आदमी किस उम्रमें मरेगा। परन्तु उसे यह अनुमान होता है कि प्रतिवर्ष प्रति हजार पांच या छह आदमी मरेंगे। इस परसे वह यह हिसाब लगा सकती है कि स्वीकार किये हुए बीमा पर उसे प्रतिवर्ष कितना पैसा चुकाना पड़ेगा। इसी परसे वह बीमेकी किस्तकी रकमका सर्व सामान्य स्तर निश्चित करती है। इस सिद्धांतमें अलग अलग ग्राहककी स्थितिके अनुसार उसका बीमा स्वीकार करते समय परिवर्तन भी कर लिया जाता है। और किसीके शरीरकी स्थिति खराब हो तो उसका बीमा कंपनी अस्वीकार भी कर देती है। बीमा स्वीकार करते समय ग्राहककी अमुक आयु मर्यादाकी संभावना सर्व सामान्य मृत्युसंख्या और बीमेकी किस्त पर मिलनेवाले ब्याज आदिका हिसाब लगाकर बीमा कंपनियां काम करती हैं।

३ जीवनके बीमेकी तरह मकान और मालका तथा आग और दुर्घटनाका बीमा करानेवाली और समुद्रमें यात्रा करनेवाले जहाजोंकी दुर्घटनाका बीमा करानेवाली कंपनियां भी होती हैं। इसके सिवा दुर्घटनासे मृत्यु तककी

जीवन न भी जाय परन्तु शरीर इतना पंगु हो जाय कि आदमी कोई काम धंधा करने लायक न रहे या कोई मान धंधा करने लायक न रहे तो उसका बीमा करनेवाली कंपनियां भी होती हैं।

बीमेकी आवश्यकता

४ बीमेकी प्रथा बिल्कुल आधुनिक है। उसकी आवश्यकता आज कलके यंत्रोद्योगोंकी सामाजिक अवस्थामें रहने और जिम्मेदार प्रतिस्पर्धामें पैदा हुई है। हमारे देशमें वर्ण-व्यवस्थाके सिद्धान्तके अनुसार लोग अपने बाप दादोंके धंधे करते थे। ग्राहकोंकी संख्या और निश्चित होती थी और अलग अलग प्रकारकी सामाजिक सेवा करनेवाले वर्गोंके लोग अपने ग्राहकोंकी काम और सेवा करनेके लिए बंधे हुए माने जाते थे और दूसरी तरफ वे ग्राहक अपने कारीगरों और सेवकोंका निर्वाह भलीभांति होता रहे यह देखनेको बंधे हुए माने जाते थे। इसके अलावा गांवोंमें ग्राम-पंचायत यह देखती थी कि उनके गांवोंमें बसे हुए सारे कारीगर और मजदूर आदिका योग-क्षेम अच्छी तरह चलता है या नहीं। नगरोंमें अलग अलग धंधा करनेवाले व्यापारियों तथा कारीगरोंकी पंचायतें इस बातका ध्यान रखती थीं। ऐसी स्थितिमें बीमेकी आवश्यकता इतनी नहीं पड़ती थी। साथ ही सम्मिलित कुटुम्बकी प्रथाके कारण बीमारी या बुढ़ापेमें आदमी निराधार नहीं हो जाता था। इतना ही नहीं काम करनेकी कम शक्तिवाले और कम शक्ति रखनेवाले आदमी भी सम्मिलित परिवारमें निभ जाता था। यूरोपमें भी मध्यकालमें बंधी हुई ग्राहकी और कारीगरोंकी पंचायतकी प्रथा थी। परन्तु इस यंत्रोद्योगके जमानेमें तो यह स्थिति हो गई है कि प्रतिदिन इतनी ही आय होती है जितनेमें मुश्किलसे निर्वाह हो सके। दूसरी तरफ सारी उद्योग-पद्धति ऐसी है जिसमें दुर्घटना और बेकारीकी संभावना अधिक रहती है। फिर यंत्रों और कारखानोंमें इनके कारण बीमारी भी समय समय पर आती रहती है और बुढ़ापा भी जल्दी आ जाता है। इस जमानेको आर्थिक प्रगतिका जमाना कहा जाता है। परन्तु जैसे जैसे आर्थिक प्रगति होती दिखाई देती है वैसे वैसे अधिकतर आदमियोंके जीवन अधिक अनिश्चितता और संकटोंमें घिरा होता जाता है। इसलिए आधुनिक युगमें इस अनिश्चितता और संकटोंके उपाय करनेके लिए बीमेकी प्रथा बहुत निकली है। बीमेकी योजनामें अनिश्चितता और संकटका भार एक व्यक्ति पर न रह कर बीमा-कंपनीके सब ग्राहकों पर बंट जाता है।

५ परन्तु यह बात बड़ी ध्यान देने लायक है कि जो ऊंचा आदर्श हुए धंधे पर रहता है। और एक लोगोंको सस्ता देना पड़ता होता है।

दाकी बहुत बड़ी आबादीकी आय ऐसा जीवन बितानेके लिए भी काफी नहीं होती जिसे उचित सुख-सुविधाओंवाला माना जा सके। हर साल कुछ बचत रखनेके बजाय पैसेकी तंगी रहती है। ऐसा होते हुए भी थोड़ी किन्तु नियमित आय हो तो आदमी उसके अनुकूल अपना जीवन बना लेता है। लेकिन आज कल उद्योगोंके जमानेमें तो आयकी जरा भी निश्चितता नहीं होती। किसी भी समय बेकार बनकर घरमें बैठनेका खतरा सिर पर लटकता रहता है। बेकारोंकी बड़ी फौज काम प्राप्त करनेके लिए मारी मारी फिरती ही रहती है। कुछ भी बचत न हो सके ऐसी दैनिक आय पर काम करनेवाला मजदूर जब बीमार पड़ता है तब उसकी स्थिति बहुत कठिन हो जाती है। बीमारीमें दवादारूका खर्च उलटा बढ़ जाता है। ऐसी कठिनाईके समय उसकी आय बंद हो जाती है। इसके सिवा कारखानेमें शरीरको घिस डालने वाली मजदूरी बीस पच्चीस साल करनेके बाद बुढ़ापेमें उसका कोई आधार नहीं रहता। कारखानेमें काम करते हुए दुर्घटना हो जाय और उसके कारण मजदूर अपंग बन जाय तो उसे हर्जाना मिलनेके कानून तो बन गये हैं। लेकिन यह हर्जाना वसूल करनेके लिए अदालतोंका सहारा लेना पड़ता है और उसमें मजदूरको पूरा लाभ शायद ही मिल पाता है। क्योंकि अदालतमें मालिककी तरफसे ऐसी सफाई पेश की जाती है कि मालिकने तो नियमके अनुसार मशीनको ढक रखा था परन्तु मजदूरकी अपनी असावधानीसे दुर्घटना हुई इसकी जिम्मेदारी मालिक क्यों उठाये? फिर एक मजदूर यदि दूसरे मजदूरकी असावधानीसे कोई चोट पहुंचा दे, तो मालिक उसके लिए भी क्या जिम्मेदार समझा जाय? इत्यादि। इसलिए मजदूर इस सारी झंझटमें पड़नेके बजाय इकट्ठी रकम लेकर समझौता कर लेता है। लेकिन ऐसे समझौतेमें जितना मिलना चाहिये उतना मुआवजा उसे नहीं मिलता। बीमारी बुढ़ापा और दुर्घटना जैसी आफतें मजदूरोंके जीवनको दुःखी और नीरस बना देनेके लिए काफी हैं। लेकिन बेकारी तो इन सबसे बढ़ी चढ़ी और सब जगह फैली हुई आफत है। मशीनोंकी नई नई खोजों और उनमें होनेवाले नये नये सुधारोंसे मजदूरोंके काममें उथल-पुथल हुआ ही करती है। किसी भी समय किसी न किसी उद्योगके मजदूर बेकार रहनेमें आते हैं जो एकदम किसी दूसरे उद्योगमें नहीं लगाये जा सकते। कारखानोंमें जो एकसा और उकतानेवाला काम करना पड़ता है उसके कारण भी मजदूर एक कामको छोड़कर दूसरी तरहका काम ढूंढ़ते फिरते हैं। साथ ही उद्योग धंधोंमें समय-समय पर जो मंदी आती है उसके कारण भी बेकारी पैदा होती है। कुछ उद्योग ऐसे

कपासकी आगाई और पिजाई मौसमी होती है। मौसम निकल जाने पर इस उद्योगमें काम करनेवालोंको बेकार बैठना पड़ता है। कुछ धंधोंमें, उदाहरणके लिए, ब्याह-शादियोंके दिनोंमें तथा दीपावली और दूसरे दिनके त्यौहारों पर दरजीके और मिठाई बनानेके धंधेमें, जाड़ेमें गरम कपड़ेके धंधेमें और … महीनेमें खिलौने बनानेके धंधेमें अवसरके अनुसार अस्थायी तेजी आती है। परन्तु बाकीके समय पूरा काम नहीं मिलता। कुछ धंधोंमें जैसे जहाजों और रेलके डिब्बोंमें माल भरने और उतारने वगैरहके धंधेमें काम बहुत ही अनियमित रहता है। मकान बनानेके काममें लगनेवाले राज वगैरह कारीगरोंको भी अनियमित रूपमें काम मिलता है। इस तरह कामोंकी [illegible] दुर्घटना मौसमी तेजी मंदी कामकी अनियमितता और बेकारी आदिका सामना करनेके लिए कामका [illegible] करना सुरक्षितताकी दृष्टिसे जरूरी हो गया है।

बीमा प्रथाके दोष

६ कामकी प्रथाका [illegible] भविष्यके खतरोंसे बचनेका उपाय करते हैं, परन्तु बीमा-कम्पनियोंकी दृष्टि तो नफे पर ही रहती है। लोगोंका बीमा करानेके लिए समझानेको वे अपने एजेन्ट रखती हैं और ये एजेन्ट अधिक संख्यामें ग्राहक पटाने और कमीशन [illegible] के लिए जी-तोड़ प्रयत्न करते हैं। इसका नतीजा यह भी होता है कि बीमा करानेवाले आदमी पूरी तरह समझे बिना या कामकी किस्तें चुकानेकी अपनी शक्ति और स्थिति पर पूरा विचार किये बिना बीमा करा लेता है और दो चार किस्तें चुका कर रुक जाता है। इस तरह अपने रुपये [illegible] बैठते हैं। अपढ़ और मजदूर-वर्गमें ऐसी घटनाएं बहुत अधिक होती देखी जाती हैं। आजकी बीमा कम्पनियोंका यह एक बड़ा दोष है।

सामाजिक सुरक्षितता

७ परन्तु यह तो व्यक्तिगत बीमेकी बात हुई। जिसे सामाजिक बीमा या सामाजिक सुरक्षितता कहा जाता है उसका आशय [illegible] मजदूर-वर्गको उनके कामके साथ [illegible] अनिश्चितताओं और खतरोंसे बचाना है। इस [illegible] नियमसे बाध्य होता है। [illegible] मजदूरोंको [illegible] लगता है। [illegible] जाता है और कामको [illegible] भी [illegible] है। [illegible] प्रथाको [illegible] नहीं किया जाता। अब [illegible] नहीं रहा है कि

यह जिम्मेदारी सरकारकी हो नया विभाग साल भर उठा लेनी चाहिये। और जीवन-बीमेका काम हमारी राष्ट्रीय सरकारने अपने हाथमें ले भी लिया है। इसकी तहमें कल्पना यह है कि चूंकि संपत्ति सारे समाजके उपयोगके लिए उत्पन्न की जाती है इसलिए इस सम्पत्तिके उत्पन्न करनेवालों पर जो खतरे आते हैं उनका बोझ सारे समाज पर पड़ना चाहिये। यह हेतु ध्यानमें रखकर कारखानेमें काम करनेवाले हर मजदूरके लिए दुर्घटना, बीमारी, बुढ़ापा और बेकारीके सामने कुछ न कुछ गारंटी होनी ही चाहिये। इस तरहके कानून पहले पहल जर्मनीने सन् १८८० से १८९० के दशकमें बनाये। उसके बाद इंग्लैण्ड, फ्रांस, आस्ट्रिया, इटली आदि देशोंमें ऐसे कानून बने। इन सब कानूनोंमें बीमेकी पद्धतिका आश्रय नहीं लिया गया। कुछ कानून तो सरकारकी ओरसे सीधी मदद देनेवाले भी हैं। परन्तु इन सबका उद्देश्य मजदूरको अनिश्चितता और खतरोंके सामने विवश हो जानेसे बचाना और उसकी सहायता करना है।

बीवरीज योजना

८. हम इन सब कानूनोंकी तफसीलमें न जाकर सामाजिक सुरक्षितताकी उस योजनाकी संक्षिप्त रूपरेखा यहां पेश करेंगे जो इंग्लैण्डमें सर विलियम बीवरीजने ग्रेट ब्रिटेनकी सारी जनताके लिए बनाई है। उससे हम समझ सकेंगे कि सामाजिक सुरक्षिततामें किन किन बातोंका समावेश होता है।

९. सर विलियम बीवरीजकी योजनामें मुख्य सिद्धांत यह रहा है कि सारे राष्ट्रके समस्त स्त्री-पुरुषोंकी, भले वे काम पर हों या न हों, बीमार हों या चंगे हों, बूढ़े हों या जवान हों, कमसे कम अमुक आय तो होनी ही चाहिये; निराधार हालतमें कोई न रहना चाहिये और सारे कुटुम्बको पूरी डाक्टरी सहायता मिलनी चाहिये। इसमें आंखों और दांतों संबंधी डाक्टरी सहायता आ जाती है तथा अस्पताल और नर्सिंग होमकी सेवा-शुश्रूषा और बीमारीसे अच्छा हो जानेके बाद शक्ति आने तक आरोग्य भवनमें रहना भी शामिल है। इसके अलावा शरीरको ताजगी और आराम देनेकी सुविधाएं भी हर नागरिकको मिलें ऐसी व्यवस्था इस योजनामें रखी गई है।

१०. इस योजनाके लिए समूची जनसंख्याका वर्गीकरण इस तरह किया गया है:

(१) नौकरीके करार पर काम करनेवाले सारे मनुष्य। इसमें वेतनकी कोई सीमा नहीं रखी गई है और सारे वेतनभोगी नौकरों और कारखानोंके मजदूरोंको शामिल किया गया है।

(२) नकदी दृष्टिसे काम करनेवाले सब मनुष्य। इसमें वेतनभोगी मजदूरोंको छोड़कर सब कारखानेदार और अपने अपने ढंगसे छोटे-बड़े धंधे करनेवाले लोग शामिल हैं।

(३) काम कर सकनेकी आयुवाली गृहिणियां — अर्थात् जो आयप्राप्ति हो ऐसा कोई काम न करती हो और निवृत्ति आयु पानेकी आयुसे कम हो।

(४) *काम कर सकनेकी आयुवाले अन्य लोग* जो मेहनताना या नफा कमानेका कोई धंधा न करते हों। इसमें कोई काम धंधा किये बिना व्याज भाड़े आदिसे घर बैठे आय करनेवाले लोगोंको और दूसरे किसी कारणसे काम करने योग्य न रह गये हों ऐसे लोगोंको समावेश होता है।

(५) काम करने योग्य आयुसे छोटे लोग। शाला छोड़नेके लिए जो आयु नियत की जाय उससे नीचेकी आयुवाले समस्त बालक इसमें शामिल हैं।

(६) काम करने योग्य आयुसे अधिक आयुके सेवा निवृत्त लोग।

११ इस वर्गीकरणमें जनसंख्याके सारे स्त्री, पुरुष और बालक आ जाते हैं। बड़े बड़े धनवान मनुष्योंको भी इस योजनामें अलग नहीं रखा गया है। इन योजनाओंमें मिलनेवाले लाभ सारे वर्गके लोगोंके लिए उनके धनसे या आयसे कोई विचार किये बिना एकसे रखे गये हैं। हर वर्गके आयुके सम्भावके लिए बीमा कराना अनिवार्य रखा गया है। बीमेकी किस्तकी रकम स्त्रीसे पुरुषके लिए थोड़ी ज्यादा रखी गई है। यह प्रति सप्ताह प्रति मनुष्य लगभग ४ शिलिंग ५ पेंस होता है। जो बड़ी आयुके स्त्री पुरुष बेकार बीमार या बूढ़े हो जाते हैं उनके बीमेकी किस्तकी रकम उन्हें मिलनेवाले लाभकी रकममें से काट ली जाती है। इसके बदलेमें दोनोंको समूची जनसंख्याको नीचे लिखे लाभ मिलते हैं —

(१) **मरणोत्तर क्रियाके लिए** बड़ी आयुवालोंके लिए २० पौण्ड १० से १९ वर्षवालोंके लिए १५ पौण्ड ५ से १० वर्षवालोंके लिए १० पौण्ड कमसे नीचेकी आयुवालोंके लिए पौण्ड।

(२) **बेकार या अपंग मनुष्योंके लिए** बड़ी आयुके अकेले आदमीके लिए ४ शिलिंग सप्ताह स्त्री और बड़ी आयुके हर आश्रितके लिए प्रति व्यक्ति १६ शिलिंग। दम्पतीको ४० शिलिंग। धंधा करनेवाली विवाहित स्त्रीको १५ शिलिंग। १८ से २१ वर्षवाले अकेले पुरुषके लिए २० शिलिंग ६ और १८ वर्षके बालक लड़के-लड़कीके लिए १५ शिलिंग। ये रकमें हर सप्ताह दी जाती हैं।

(३) **उद्योगके सबबमें अशक्त या अपंग होनेवालोंको पेंशन** पहले १३ सप्ताह तक ऊपर लिखी धारा २ के अनुसार अशक्त आत्मीय रूपमें लाभ मिले और उसके बाद उस इस धाराके मातहत रखा जाय और इतनी पेंशन दी जाय जो उसकी सामान्य आयके ⅔ के बराबर हो पर प्रति सप्ताह ६ शिलिंगसे ज्यादा न हो।

(४) **बेकारोंको** धारा २ के अनुसार।

(५) **बड़ी आयुवाला कोई व्यक्ति किसी खास धंधेकी शिक्षा पाना चाहे तो उसके लिए** धारा २ के अनुसार परन्तु ज्यादासे ज्यादा २६ सप्ताहके लिए।

(६) **प्रसूति-कालमें भत्ता** हर सप्ताह ३६ शिलिंग—१३ सप्ताह तक।

(७) **प्रसूतिकी मदद** ४ पौण्ड।

(८) **६० वर्षसे नीचेकी विधवाओंको** विधवा होनेके बाद १३ सप्ताह तक हर सप्ताह ३६ शिलिंग। फिर उसे कोई धंधा सीखनेके लिए धारा ५ के अनुसार लाभ मिलता है। उसके बाद काम न मिले तो बेकारीका लाभ मिलता है। अशक्त हो तो अशक्तताका लाभ मिलता है और पेंशनके लायक हो तब पेंशनका लाभ मिलता है।

(९) **६० वर्षसे नीचेकी आश्रित बालकोंवाली विधवाके लिए** हर सप्ताह २४ शिलिंग। परन्तु उसकी कमाईको देखकर इस रकममें कमी की जा सकती है। यह रकम उसके विधवापनकी मददके सिवा उसे मिलती है।

(१०) **बच्चोंके लिए** माता या पिता कमाता हो तो पहले बच्चेके लिए कुछ न दिया जाय। परन्तु वे कमाते हों तो भी एक ही बच्चेका बोझ कुटुम्ब पर रखा गया है। इसलिए पहले बच्चेके बादके हर बच्चे पर प्रति सप्ताह ८ शिलिंग।

(११) **निवृत्ति-कालमें पेंशन (२० वर्षके कामके बाद)** ६५ वर्षके पुरुष और ६० वर्षकी स्त्रीका यदि अकेले हों तो हर सप्ताह २४ शिलिंग और दम्पती हों तो हर सप्ताह ४० शिलिंग। दम्पतीमें स्त्री न कमाती हो और पुरुषके सहारे रहती हो तो स्त्रीकी आयु नहीं देखी जाती। निवृत्तिके लिए निश्चित की हुई आयु पर काम न छोड़कर जो मामूली काम जारी रखे उसने जितने वर्ष अधिक काम जारी रखा गया हो उतने वर्षोंके हिसाबसे प्रति सप्ताह एक शिलिंग अधिक दिया जाता है।

(१२) **निवृत्ति-कालमें पेंशन (पूरा काम न किया हो उनको)** (क) जिन्होंने पेंशनके लिए बीमा कराया हो उन्हें पहले वर्ष अकेलेका हर सप्ताह

१४ शिलिंग और दपनाका २५ शिलिंगके हिसाबसे बादमें हर दो सालमें क्रमसे १ शिलिंग और १॥ शिलिंग अधिक तब तक लिया जाय जब तक वृद्धि पूरा दर तक न पहुंच जाय। (ख) जिन्होंने पेंशनका बीमा न कराया हो उन्हें १९५८ तक कुछ न लिया जाय। बादमें ऊपर लिखे अनुसार लिया जाय।

१२ प्रत्येकको डाक्टरी मदद मिलनेके बारेमें ऊपर कहा जा चुका है। यह योजना अमलमें आनेके बाद सरकारकी तरफसे जारी की गई अलग अलग तरहकी कष्ट निवारणकी सारी योजनाएं बंद हो जायगी। इसी तरह जिन्होंने दूसरी बीमाकी कुछ आदि खानगी कंपनियोंमें बीमे कराये होंगे उन सबको भी सरकार ले लेगी। वर्कमेन्स काम्पेन्सेशन एक्टमें इकट्ठा या एक मुश्त रकम लेकर हमारे देशमें कम मजदूर समझौता कर डालता है बस इंग्लैण्डमें भी वह कर डालता है। क्योंकि मालिकके साथ अदालतमें लड़नेकी उसकी हिम्मत भी नहीं होती और शक्ति भी नहीं होती। कमी हम देख चुके हैं निजी कामोंमें भी बीमा-कंपनियोंके एजण्ट अपना काम चलानेके लिए मजदूरोंसे उल्टा-सीधा समझाकर बीमे करवा लेते हैं और बादमें मजदूर कामकी किस्तें न चुका सकनेके कारण नुकसानमें पड़ते हैं। इन सब बातोंकी चर्चा करके सर विलियम बेवरीजने कहा है कि सामाजिक सुरक्षाकी सारी जिम्मेदारी स्वयं सरकारको ही उठा लेनी चाहिये और यह सिफारिश की है कि कुल खर्चका एक भाग लाभार्थी एक भाग कारखानेदारोंसे और एक भाग सरकारी खजानेसे ले लिया जाय।

१३ आज इंग्लैण्डमें सामाजिक सुरक्षाकी योजनाओं पर जो खर्च होता है उसमें बेवरीजकी योजनामें कितना खर्च ज्यादा होगा यह नीचेके आंकड़ोंसे मालूम होगा।

	मौजूदा योजनाओंके अनुसार खर्च (करोड़ पौण्डमें)	बेवरीजके अनुसार खर्च
सरकारी खजाना	२६५	२११
लाभार्थी बीमेकी किस्तें	६०	१०८
मालिकोंसे	८२	१३
ब्याजकी आमद	१५	१
	४ २	६० ३

मौजूदा योजनाके अनुसार लाभार्थी बीमेकी किस्तके रूपमें हर सप्ताह औसतन ना १ शिलिंग १० पेन्स चुकाने पड़ते थे उसके बजाय बेवरीज योजनामें प्रति

सप्ताह ४ शिलिंग ३ पेंस चुकाने पडते है। परन्तु बीवरीजका कहना है कि मौजूदा योजनाओंके अनुसार अनिवार्य किस्तोंके साथ लोग जो अपनी मरजीसे बीमा कराते उसकी किस्तोंका हिसाब लगायें तो लोग हर सप्ताह लगभग ३ शिलिंग १ पेंस तो खर्च करते ही। अब यह सब खर्च करनेका उन्हें कारण नही रहेगा क्योंकि जिस उद्देश्यसे लोग निजी तौर पर बीमा कराते थे उसकी बहुत कुछ रक्षा बीवरीजकी योजनामें हो जाती है। इसलिए लोगोंको असलमें तो हर सप्ताह १ शिलिंग २ पेंस ही ज्यादा देने पडेंगे। सरकार और मालिकोंको भी जो अधिक पैसा देना पड़ता है वह भी उनके आजके कुल खर्चसे कुछ ही अधिक है। इसलिए थोडा अधिक बोझ उठा लेनेसे सारी प्रजाकी सुरक्षा बनी रहती है और किसीको विवश स्थितिमें नहीं रहना पडता।

योजनाकी मीमांसा

१४ इस सारे खर्चकी सैद्धांतिक छानबीन करें तो इसमें ऐसी कोई बात नही है कि किसीके खर्चका बोझ कोई दूसरा व्यक्ति उठाये। सरकार इस योजनामें जो पैसा देती है वह आखिरमें तो करदाताओंसे ही लिया जाता है और कारखानेदार जो योग देते हैं वह भी उत्पादन-खर्च पर चढाया जाता है और अंतमें चीजोंका उपयोग करनेवालोंको महंगी कीमतके रूपमें चुकाना पडता है। इस तरह लोगोंको लाभके रूपमें जो कुछ मिलता है वह उन्हींका दिया हुआ होता है। इतना कहा जा सकता है कि जिस व्यक्तिको जो मिलता है वह उसीका दिया हुआ नहीं होता। सब लोग मिलकर जो सम्पत्ति पैदा करते हैं वही सम्पत्ति उनमें फिरसे बंट जाती है। इसमें कोई नई सम्पत्ति उत्पन्न नही होती। सारे समाजकी कुल आयमें कोई फर्क नहीं पडता। पर समाजमें पैदा होनेवाली दुर्घटनाएं बीमारी बेकारी बुढ़ापा और कुटुम्बके एकसे अधिक बालकोंका बोझ सारे समाज पर पडता है। बड़े पैमानेकी उत्पादन पद्धतिका रूप ही ऐसा होता है कि उसमें बहुजन समाजके पास कोई स्थायी साधन नहीं रहते और उन्हें अपनी रोजकी मजदूरीसे रोजका निर्वाह करना पडता है। उनके पास बिना कमाईके दिनोंके लिए कोई बचत नहीं होती। इसके सिवा आजकी समाज रचना ऐसी है कि उसमें कुटुम्ब या पास पडोसके लोग कोई मदद नहीं कर सकते। इसलिए सरकारको नया विभाग खोलकर ऐसी व्यवस्था करनी पडती है। दुर्घटना बेकारी बीमारी तथा बुढापेके समय असहाय अनुभव करना और एकसे ज्यादा बच्चोंको पालनेकी शक्ति न होना—ये सब आजकी उत्पादन-पद्धति और उसके

साथ जुड़े हुए संपत्तिके असमान बंटवारेके परिणाम हैं। इसलिए आजकी सारी परिस्थितियों और इस योजनाका सार यह है कि पहले संपत्तिका बंटवारा असमान होने दिया जाय, बेकारी पैदा होने दी जाय और ऐसी स्थिति पैदा होने दी जाय कि लोग बिलकुल साधनहीन बन जायं और फिर उन स्थितियोंके उपायके रूपमें ऐसी राष्ट्रव्यापी योजना बनाकर एक सरकारी विभाग खोला जाय।

१५ इस योजनामें संकटोंको पैदा होनेसे रोकनेके उपाय नहीं किये जाते। उत्पादनकी नई नई खोजें, युक्तियां और कारखाने हमेशा नई नई बेकारी पैदा करती रहती हैं और जो बेकारी पहलेसे होती है उसे बढ़ाती हैं। फिर कारखानेके भीतरके काम और कुछ रासायनिक उद्योग शरीरको बहुत ज्यादा घिसाई करनेवाले और तरह तरहकी बीमारियां पैदा करनेवाले होते हैं।

१६ इसके सिवा कितनी ही योजनाएं क्यों न बनाई जायं और कितने ही कानून क्यों न पास किये जायं, परन्तु वे लोगोंके लिए सहायक और सुखके साधन तभी बन सकते हैं जब उनका अमल बहुत ही सहानुभूतिसे, ऊंची भावनासे और परमार्थ-बुद्धिसे किया जाय। प्रबंध जितना बड़ा और अटपटा होगा उतना ही सहानुभूति, जिम्मेदारी और व्यक्तिगत भावनाका तत्त्व उसमें कम रहेगा। ऐसे यंत्र रचनाकी तरह बड़े महकमोंमें यह नहीं देखा जाता कि अमुक कामका मनुष्य पर क्या असर होगा, बल्कि यही देखा जाता है कि नियमों और कानूनोंका पालन होता है या नहीं और ढांचा ठीक तरह बंधा हुआ है या नहीं?

१७ इसके सिवा ऐसी योजना तो इंग्लैंड जैसा बहुत पैसे-वाला और धनी देश ही बना सकता है। परन्तु ऐसा वह दूसरे अनेक देशोंकी प्रजाओंको कंगाल बनाकर और गरीबीमें डालकर ही कर सकता है। हमारे जैसे देशमें, जहां करोड़ों लोग कंगाल और भूखे हैं और जिन्हें खानेको मिलता है उनकी भी स्थिति अनिश्चित या खतरेसे भरी हुई है, ऐसी किसी योजनाका खयाल भी नहीं किया जा सकता।

९

सहकारिता आन्दोलन

१ आधुनिक पद्धतिवाली सहकारिताकी योजना मौजूदा पूंजीवादी और द्रव्यवादी समाजमें गरीब मजदूरों और किसानों द्वारा अपनाया गया अपने शोषणको रोकनेका एक उपाय है। यूरोपमें उन्नीसवीं सदीमें सहकारिताके इस सिद्धान्तके बारेमें इतनी बड़ी आशाएं बांधी गई थीं कि मजदूर यदि अच्छी तरहसे संगठित हो जायं तो जिन उद्योग-धंधोंमें वे काम करते हों उनमें से योजकों और व्यवस्थापकोंको निकाल कर सारी योजना और व्यवस्था अपने हाथमें ले सकते हैं। जिस प्रकार प्रजासत्तात्मक तंत्रमें प्रजाके चुने हुए प्रतिनिधि तंत्रको चलानेकी नीति निर्धारित करते हैं और उस तंत्रकी सारी जिम्मेदारी और खतरे अपने पर लेते हैं, उसी प्रकार मजदूर संगठित होकर अपने प्रतिनिधियोंके जरिये उद्योग-धंधे चला सकते हैं। फिर आजकी तरह योजक और व्यवस्थापक उद्योगोंके मालिक जैसे नहीं रहेंगे बल्कि मजदूरोंके प्रतिनिधियोंमें से ही होंगे अथवा उनके वेतनभोगी नौकर होंगे। जैसे राजनीतिक मामलोंमें प्रजाकी सत्ता चलती है वैसे उद्योग-धंधेके मामलोंमें मजदूरोंकी सत्ता चलेगी। परन्तु ये आशाएं कल्पनामें ही रही हैं। किसी किसी जगह इस तरहके प्रयोग किये गये, परन्तु वे असफल सिद्ध हुए हैं, क्योंकि ऐसे कार्योंके लिए आवश्यक जिम्मेदारीकी ऊंची भावना, सावधानी, बुद्धि-कुशलता तथा समूहके कामको अपना काम माननेकी उदार भावना और आदत किसी भी तरहके वेतनभोगी कर्मचारी बता सकें इतना मानव-विकास अभी हुआ नहीं है। सामूहिक संचालनमें जिस निस्पृहता, हृदयकी विशालता और कुशलताकी जरूरत है वह अच्छेसे अच्छा विधान अथवा कानून बनानेसे भी पैदा नहीं होती। अब तक सहकारिताके कायने इतनी ही प्रगति की है कि सहकारी भंडारोंके रूपमें दुकानें चलाई जायं, पैसेका लेन-देन किया जाय और छोटे उत्पादकोंके मालकी सधकर बिक्री और खरीद कर ली जाय।

सहकारी भंडार

२ दुकानदारी या व्यापारमें सहकारिताकी पद्धति जारी करना बहुत आसान है। मजदूर या अन्य कुछ लोग एक सहकारी समिति बना लें, थोड़ा-सा पैसा जमा कर लें, अपनी जरूरतकी चीजें थोकबन्द खरीद लें और फिर

आपसमें बांट लें — यह इसका सादेसे सादा स्वरूप है। जितने लोग इस तरहकी सहकारितामें शामिल होते हैं उनको माल सस्ता मिलता है और इस तरह थोडी बचत हो जाती है। लेकिन जब थोक माल खरीदा जाता है उसी समय सब लोगोंको उसकी जरूरत नहीं होती, इसके सिवा, किसीको एक तरहकी तो दूसरेको दूसरी तरहकी इस प्रकार तरह तरहकी चीजोंकी मांग होती है। इसके लिए समितिको अपनी दुकान खोलनी पडती है। दुकान खोलनेका मतलब यह है कि ग्राहकोंकी विविध मांगें पूरी करनेके लिए अलग अलग प्रकारका माल रखा जाय और उसमेंसे कुछ माल हलकी जातिका रह जाय तो उसे बिना नफेके और कभी कभी लागत कीमतसे कम भाव पर भी बेचा जाय। इसलिए सहकारी दुकानमें फुटकर माल बेचनेवाली दूसरी दुकानोंसे माल सस्ता नहीं बेचा जाता बल्कि फुटकर दुकानोंके भावसे ही बेचा जाता है। बादमें तीन महीने छह महीने या बारह महीनेमें हलकी जातिके पडे रहनेवाले मालका घाटा घटाकर मिलाकर सारी दुकानका तलपट तैयार किया जाता है और जो शुद्ध नफा रहता है वह समितिके सारे सदस्योंमें जिसने जितना माल खरीदा हो उसके हिसाबसे बांट दिया जाता है। सारे सदस्योंकी खरीदका हिसाब रखनेका काम जरा टेढा है। इसलिए हर सदस्यका एक कार्ड रखा जाता है और सदस्य जो खरीद करता है वह उसमें दर्ज कर दी जाती है। और उसके कुल जोड परसे मुनाफेके हिस्सेका हिसाब लगाया जाता है। सहकारी दुकानसे माल सस्ता बेचनेके बजाय बाजारके फुटकर भावसे बेचकर बादमें मुनाफा देनेसे दो लाभ होते हैं: एक तो सहकारी दुकानको अचानक घाटा आ जाय तो दुकान एकाएक टूट नहीं जाती और दूसरा, समितिके सदस्योंको हर खरीदके समय थोडी थोडी जो बचत होती है उसका पता नहीं चलता लेकिन तीन महीने या छह महीनेमें मुनाफेका जो हिस्सा मिलता है उसकी रकम बडी होनेके कारण वे उसे बचाकर रख सकते हैं। इस तरहकी बचतको प्रोत्साहन देनेके लिए सहकारी दुकान या भंडारके साथ साथ समितिके सदस्योंकी छोटी छोटी रकमें जमा करनेका काम भी शुरू किया जाता है। सहकारी दुकानमें [illegible] भी [illegible] जाता है।

सहकारी दुकानोंके द्वारा बडा लाभ यह है कि उसमें सारा विक्रय नकद पैसेसे हो जाता है। मामूली दुकानदारसे माल उधार मिलता है तब आदमी अपने खर्च पर काफी तरह नियंत्रण नहीं रख सकता और कभी कभी बिना कारण ही फिजूल खर्च भी कर डालता है। लेकिन सहकारी

दुकानमें मात्र नकद पैसेसे लेना पड़ता है इसलिए कुछ किफायत अपने-आप हो जाती है और बहुतसा बिगाड़ अपने-आप रुक जाता है।

४ कुछ सहकारी दुकानवाले थोड़ी ज्यादा कीमतसे माल बेचकर ज्यादा बड़ा नफा बांटते हैं। समितिके सदस्योंको यह बात मालूम होती है, फिर भी वे इसे पसंद करते हैं, क्योंकि फुटकर खरीद करते समय उन्हें जो ज्यादा पैसा देना पड़ता है वह नफेके रूपमें इकट्ठा वापिस मिल जाता है। बचत करनेका यह भी एक अनुकूल उपाय हो जाता है। छोटी छोटी फुटकर रकमें देनी पड़ें तो अधिक बोझ जैसा नहीं लगता। परन्तु एकसाथ बड़ी रकम मिल जाय तो वह बहुत उपयोगी हो जाती है।

५ इंग्लैण्डमें ऐसे सहकारी भंडारोंका काम बड़े पैमाने पर होता है। कुछ सहकारी भंडार तो इतने बड़े हैं कि उन्होंने अपने भंडारमें बेचनेकी चीजोंके छोटे छोटे कारखाने भी खोले हैं। अलबत्ता ये कारखाने व निजी कारखानदारोंकी तरह मौजूदा पद्धतिसे ही चलाते हैं। अंतर इतना ही है कि कारखानेका मुनाफा सहकारी समितिके सदस्योंको मिलता है। परन्तु यह तो शेयर-होल्डरोंको जाइंट-स्टाक कम्पनीके नफेमें से हिस्सा मिलने जैसा ही हुआ। जहां निजी दुकानदार कुशल न हों और गरीब लोगोंसे बहुत ज्यादा मुनाफा लेते हों वहां सहकारी भंडारोंकी खास आवश्यकता मानी जाती है। कहा जाता है कि अमरिकामें ऐसे सहकारी भंडार सफल नहीं होते क्योंकि वहांके दुकानदार अपने ग्राहकोंको अच्छा संतोष दे सकते हैं। हमारे देशमें शहरोंके मजदूर मुहल्लोंमें और गांवोंके पिछड़े हुए प्रदेशोंमें ऐसे सहकारी भंडारोंकी बहुत जरूरत है। क्योंकि वहां दुकान लगाकर बैठनेवाले छोटे व्यापारी माल महंगा ही नहीं बेचते बल्कि हल्की जातिका भी बेचते हैं।

कर्ज देनेवाली सहकारी समितियां

६ ऐसा कहा जा सकता है कि पैसा उधार देनेवाली सहकारी समितियोंके मामलेमें जर्मनीने नेतृत्व ग्रहण किया है। वहां किसानों और अकिसानोंको दो प्रकारकी पैसा उधार देनेवाली सहकारी समितियोंका जन्म हुआ है। शुल्ज नामके एक आदमीने एक सहकारी समिति छोटे दुकानदारों और कारीगरोंको कम हेतुसे खोली कि उन लोगोंको अच्छी शर्तों पर छोटे छोटे कर्ज मिल सकें। उसने सदस्योंमें से ही पैसा इकट्ठा करके पूंजी खड़ी की और उस पूंजीके बल पर बाहरके लोगोंसे दो तीन गुनी रकम ब्याजसे ली। ऐसा तय किया गया कि बाहरके आदमियोंसे ली

हुई रकमके लिए समितिके सारे सदस्य सामूहिक रूपमें और व्यक्तिगत रूपमें भी जिम्मेदार माने जायें। ऐसी व्यक्तिगत और सामूहिक जिम्मेदारीका मूल्य समितिकी सफलताके लिए जरूरी माना जाता है। क्योंकि समितिका उधार ली हुई पूरी रकमके लिए सारी समिति और समितिका प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूपमें जिम्मेदार होनेके कारण हर व्यक्ति समितिकी व्यवस्था और कामकाज पर अच्छी तरह नजर रखता है। इस तरह सदस्योंकी अपनी और बाहरसे उधार ली हुई रकमकी जो पूंजी इकट्ठी होती है उसमें से जिन सदस्योंको जरूरत हो उन्हें छोटी छोटी रकम थोड़ी अवधिके लिए उधार दे दी जाती हैं। बाहरसे उधार ली गई रकम जिस ब्याज पर ली जाती है उससे ब्याजकी कुछ अधिक दर उस आदमीसे ली जाती है जिसे पैसा उधार दिया जाता है। फिर भी यह आदमी दूसरी जगहसे जिस ब्याज पर पैसा उधार लेता है उससे तो समितिके ब्याजकी दर कम ही होती है। और समितिका ध्येय तो यही होता है कि उसके सदस्योंको कम ब्याज पर पैसा मिले। इस पद्धतिमें समितिके सभी सदस्योंकी संयुक्त साखका उपयोग होता है। जर्मनीमें छोटे पैमाने पर उत्पादन करनेवाले वर्गमें इस तरहकी सहकारी समितियां बहुत प्रिय हो गई हैं और वे हजारोंकी तादादमें बन गई हैं। उनमें से कुछ समितियां तो बहुत बड़ी हैं। उनके सदस्य भी बड़े बड़े व्यापारी और उत्पादक होते हैं और वे बड़ी अच्छी तरह काम करती हैं।

किसानोंकी सहकारी समितियां

७ जर्मनीके सहकारिता आन्दोलनका दूसरा बड़ा नेता रैफसन हो गया है। उसने किसानोंकी सहकारी समितियां बनानेका [illegible] बहुत बड़ा काम किया है। उसकी सारी भावना तो शुल्जकी सहकारी समितियां जैसी ही है। परन्तु पूंजी इकट्ठी करनेमें उसने थोड़ा सुधार किया है। इसके सिवा शुल्जकी समितियां कारीगरों और व्यापारियोंकी होती हैं इसलिए उनमें थोड़ी अवधिके कर्जसे काम चल जाता है जब कि ये समितियां किसानोंकी होनेके कारण उनमें कभी कभी लम्बी अवधिका कर्ज तो देना ही पड़ता है। जर्मनीमें ऐसी हजारों समितियां हैं और आधेसे ज्यादा किसान किसी न किसी समितिके सदस्य बन गए हैं।

इसके अलावा, जर्मनीमें खेतीके साधन और औजार खरीदने, तैयार माल बेचने और जो साधन एक व्यक्ति न खरीद सकता हो उन्हें मिलकर खरीदने और उनका उपयोग करनेके लिए भी सहकारी समितियां बनी, सफलतासे चली हैं।

डेनमार्कका सहकारी आंदोलन

८ परन्तु सहकारी समितियोंकी प्रवृत्तिमें सबसे आगे बढ़ा डेनमार्क है। और उससे दूसरे नम्बर पर नार्वे और स्वीडन हैं। किसानों और गोपालकोंने सहकारी पद्धतिसे बड़े पैमाने पर दूध इकट्ठा करने, उसका मक्खन और दूसरी चीजें बनानेमें और उन्हें विदेशोंको भेजनेमें सफलता प्राप्त की है। इसके सिवा सहकारी पद्धतिसे वे अण्डोंके भी बड़ा व्यापार करते हैं। डेनमार्कमें सहकारी पद्धतिके बहुत सफल होनेके मुख्य कारण ये हैं :

(१) *वहांके ग्रामवासी खेतीके साथ गोपालनका धंधा करते हैं। हर* छोटा किसान अपनी जमीनका स्वतंत्र मालिक है।

(२) सब किसान पढ़े-लिखे हैं।

(३) बड़ी आयुके किसानोंको अपना कुटुम्ब और ग्राम-जीवन सहकारी और शास्त्रीय पद्धतिसे बिताना सिखानेके लिए लोकशालाएं बहुत अच्छी और सफल रीतिसे चलायी जाती हैं। बड़ी उमरके किसानोंको इन लोकशालाओंमें ग्राम-जीवन और राष्ट्र-जीवनकी सामूहिक जिम्मेदारियोंकी कल्पना बहुत अच्छे ढंगसे कराया जाती है।

(४) वहांकी सहकारी समितियां व्यापारिक समितियां हैं। वे किसानोंकी सारी फसल ले लेती हैं और उसे अच्छी तरह बाजारके लायक बनाकर थोकबन्द बेच देती हैं। इसके सिवा वे किसानोंके घरेलू उपयोगकी और खेतीके उपयोगकी सारी वस्तुएं थोकबन्द खरीदकर सहकारी भंडारोंके जरिये उनके पास पहुंचाती हैं। ये सहकारी समितियां स्थानीय बैंकोंसे कर्ज लेती हैं और उस कर्जके लिए समितिके सारे सदस्य व्यक्तिगत रूपमें और सामूहिक रूपमें जिम्मेदार माने जाते हैं। बैंकोंमें सदस्योंका पैसा भी काफी जमा रहता है इसलिए एक तरहसे देखा जाय तो सदस्योंका अपना रुपया ही उन्हें उधार दिया जाता है। इसलिए हर सदस्यको पैसे लौटानेकी बहुत चिंता रहती है।

हमारे देशमें सहकारी आंदोलन

९ अब हम यह देखें कि हमारे देशमें सहकारिता आंदोलनने कितनी प्रगति की है। यूरोपके देशोंमें सहकारिताका आन्दोलन सन् १८५० के बाद शुरू हुआ। उस प्रकारकी सहकारिताकी प्रवृत्ति हमारे देशमें सन १९०० के बाद दिखाई पड़ती है। सहकारी समितियोंसे सम्बन्धित पहला कानून हमारे देशमें १९०४ में पास हुआ। इस कानूनका हेतु किसानों, कारीगरों

और दूसरे छोटी आयवाले लोगोंमें किफायत स्वावलम्बन और सहकारकी वृत्तिको प्रोत्साहन देना था। सहकारिताका आंदोलन चलानेके लिए प्रान्तीय सरकारोंसे रजिस्ट्रार नियुक्त करनेकी सिफारिश की गई और उनके जरिये जर्मनीकी शुल्ज और रैफसन समितियोंके ढंग पर हमारे देशमें सहकारी समितियां स्थापित होने लगीं। किसानोंको कर्ज और कर्जके ब्याजके बोझसे छुटकारा करनेके लिए उन्हें सस्ती दरसे पैसा उधार देना इन सहकारी समितियोंका उद्देश्य था। लेकिन किसानोंके कर्जका असल कारण तो उनकी खेती और ग्रामोद्योगोंकी तबाही थी। इसलिए जब तक खेतीमें सुधार न हो और किसानोंकी आमदनी न बढ़े तब तक सस्ते ब्याज पर लिये जानेवाले पैसेसे उनका प्रश्न हल होनेवाला नहीं था। इसलिए बहुतसी सहकारी समितियां असफल सिद्ध हुईं। सन् १९२१ में इस कानूनमें कुछ सुधार करके इन समितियोंको कानूनी मान्यता देनेका निर्णय किया गया और रजिस्ट्रारोंसे सहकारी आन्दोलन ज्यादा जोरसे चलानेको कहा गया। इन लोगोंके दबावसे समितियोंकी संख्या तो बढ़ी परन्तु घर करके बैठे हुए मूल रोगका कोई इलाज नहीं हुआ। इसलिए सहकारिताके आन्दोलनने कोई जोर नहीं पकड़ा। सन् १९१९ के सुधारोंके बाद सहकारिताका काम प्रान्तीय सरकारोंको सौंपा गया। इसलिए बम्बईने सन् १९२५ में मद्रासने सन् १९३२ में और बिहार तथा उड़ीसाने सन् १९३५ में सहकारी समितियोंके सम्बन्धमें कानून पास किये।

हमारी पंचवर्षीय योजनाओंमें सहकारी आंदोलनके विकास पर विशेष जोर दिया जाता है। १९५९–६० में इस आंदोलनकी स्थिति इस प्रकार थी

भारतकी सहकारी समितियां
(१९५९–६०)

समितियोंकी संख्या	सदस्योंकी संख्या	काम करनेके लिए पूंजी (वर्किंग कैपिटल)
१३४९०	०२१३०००	१०८३८७ लाख रु०

ऊपरकी कुल ३१३४९९ सहकारी समितियोंमें से ७२ प्रतिशत अर्थात् २२४९४३ ऋण देनेवाली समितियां थीं। बाकी रही २८ प्रतिशत अर्थात् ८८५५६ समितियां ऋण न देनेवाली थीं।

ऋण देनेवाली समितियोंमें से ९१ प्रतिशत खेती सम्बन्धी ऋण देनेवाली थीं। इस प्रकार अधिकतर समितियां ऋण देनेवाली ही थीं। अब

उन्हें विविध कार्यकारी समितियां बनानेका प्रयत्न चल रहा है तथा अन्य क्षेत्रोंमें भी सहकारी समितियां स्थापित करनेका प्रयत्न हो रहा है।

१० रिज़र्व बैंककी स्थापना हो जानेके बाद किसानोंको पैसा उधार देनेके सम्बन्धमें योजना बनानेका काम उसे सौंपा गया है। इस आन्दोलनकी जांच करके रिज़र्व बैंककी तरफसे एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई है। इस रिपोर्टमें बताया गया है कि गांवके लोगोंका बोझ हल्का करनेमें सहकारी आन्दोलनने अब तक जो काम किया है वह बहुत निराशाजनक है। लेकिन भूतकालमें मिली हुई निष्फलताके बावजूद सिर्फ सस्ते पैसेका प्रबन्ध करके ही नहीं बल्कि इस आन्दोलनको गांवके पुनर्रचनाका एक बड़ा साधन बनाकर इसका विकास करनेकी जरूरत है। किसानोंमें सहकारिता-आन्दोलन आगे न बढ़ सकनेके दो कारण हैं (१) किसानोंकी आमदनीकी अत्यन्त अनिश्चितता और (२) स्वावलम्बन तथा एक-दूसरेकी सहायता देनेकी वृत्ति जो सच्चे सहयोगका प्राण है बढ़ानेकी तरफ सहकारिता-आन्दोलनने कोई ध्यान ही नहीं दिया या लोगोंमें रही इस भावनाको वह जगा न सका। सहकारिता कोई सस्ते ब्याज पर रुपया देनेका ही आन्दोलन नहीं है। यह तो लोगोंमें घुलमिल जाने, उनका संगठन करने और उनमें एक दूसरेके साथ मिलकर सामूहिक जिम्मेदारियां उठानेकी शक्ति पैदा करनेका आन्दोलन है। लेकिन सहकारिता-आन्दोलनके नेताओंका — सरकारी अफसरों और गैर सरकारी कार्यकर्ताओंका — इस बातकी तरफ बहुत ही कम ध्यान गया है। मौजूदा सहकारिता-आन्दोलनकी इस कमजोरीकी तरफ रिज़र्व बैंककी रिपोर्टमें ध्यान खींचा गया है। उसमें यह भी सिफारिश की गई है कि आजकी सहकारी समितियां मुख्यतः पैसा उधार देनेका ही काम करती हैं इसके बजाय उन्हें कई हेतु ध्यानमें रखकर काम करना चाहिये। समिति केवल पैसा उधार देनेका ही काम न करे बल्कि साथ साथ गांववालोंके जीवनको सुधारनेमें भी सहायता दे, किसानोंको शुद्ध और अच्छी जातिके बीज दे, उनके औजारोंमें क्या क्या सुधार होने चाहिये इसकी खोज करके ज्यादा अच्छा काम देनेवाले औजार जुटा दे, उनमें पंचायतकी प्रथा जारी करके उन्हें मुकदमेबाजीसे बचा ले, किसानोंके बिखरे हुए खेतोंको एकत्र करके सामुदायिक खेतीकी योजना बनाये, उन्हें स्वच्छता और स्वास्थ्यकी रक्षाकी व्यावहारिक शिक्षा दे और स्त्रियोंके लिए प्रसूतिके समय दाइयों और सबके लिए बीमारीके मौसममें डाक्टरी सहायताकी व्यवस्था करे। संक्षेपमें ग्राम्य जीवनको ऊंचा उठानेके लिए और उसे स्वच्छ और सुहावना बनानेके

लिए जो जो काम करनेकी जरूरत है उन सबका केन्द्र प्रत्येक सहकारी समितिको बनना चाहिये।

११ हमारे देशमें आज खेतीकी इकाइयां आर्थिक दृष्टिसे लाभकारी नहीं है। हर किसानकी जमीन एक जगह नहीं होती बल्कि चारों तरफ बिखरी हुई होती है। इसके सिवा खेतोंकी इकाइयां छोटी होनेके कारण स्वभावतः उसमें खेतीके साधनोंकी कमी रहती है। यह कठिनाई और इस तरहकी खेतीकी अन्य कई कठिनाइयां अगर थोड़े थोड़े किसान मिलकर सहकारी पद्धतिसे खेती करें तो दूर हो सकती है। गोपालनका धंधा भी उसे करने वाले किसान हों या ग्वाले सहकारी पद्धतिसे करनेकी जरूरत है। क्योंकि अच्छी नस्लके सांडकी व्यवस्था अच्छी चराईकी व्यवस्था सूखे ढोरोंके लिए चरागाहका प्रबंध हरा घासचारा उगाने और साइलेज बनानेकी व्यवस्था — ये सब काम व्यक्तिगत ग्वालोंके लिए असंभव है और सहकारी पद्धतिसे बहुत अच्छी तरह और सस्तेमें हो सकते है।

१२ इस प्रकार इस प्रवृत्तिका क्षेत्र बहुत विशाल है। लोगोंकी तैयारी हो तो किसी भी धंधेमें सहकारी पद्धतिसे काम हो सकता है। हमारे देशमें कपासके जिन प्रेस तथा जिनिंग कारखाने सहकारी पद्धति पर चलने लगे हैं। छोटे उद्योगोंमें खास तौर पर इस पद्धतिसे काम करना लाभदायक है।

इस आंदोलनका उद्देश्य आर्थिक लाभके साथ जीवनकी उन्नति और विकास साधना भी समझना चाहिये। और यह उन्नति परस्पर सहायता तथा एकत्रित श्रमसे सिद्ध करना चाहिये।

समानता और न्याय, संयम और संचय संगठन और स्वावलम्बन समान अधिकार और समान अवसर प्रत्येक सबके लिए और सब प्रत्येकके लिए इस प्रकारकी सामूहिक जिम्मेदारी — ये सब इस आन्दोलनके सिद्धान्त माने जाते हैं। इन्हें ध्यानमें रखकर ही यह आन्दोलन चलाया जाना चाहिये।

ऐसा उद्देश्य अब इस आन्दोलनको विकसित करनेका — चलानेका प्रयत्न किया जाता है। इस कार्यमें सरकारको आवश्यक मार्गदर्शन और मदद देना चाहिये परन्तु यह भी देखना चाहिये कि उसके बाहर नीचे यह आन्दोलन दब न जाय। इस आन्दोलनका विकास और संचालन लोगोंमें से ही होना चाहिये। लोगोंमें सहयोगकी भावना और उसका समझ जितनी बढ़ेगा उतनी ही इस कामकी उन्नति होगी। सरकारी सहायता और नियम तो पौधेके लिए बाड़का काम करते हैं। यदि भावना और समझका पौधा न हो तो केवल मददगार और नियमोंसे बाग कोई काम नहीं होगा।

१०

सरकारी आय-व्यय

सरकारी खर्चका हेतु

१ कुछ काम ऐसे होते हैं जिन्हें प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र रूपसे करे या करावे तो उनका खर्च बहुत बढ़ जाय। इस कारण कम खर्चमें काम करनेके उद्देश्यसे ऐसे काम समस्त प्रजाकी ओरसे सरकार करती है। उदाहरणके लिए शिक्षा। सब लोग स्वतंत्र शिक्षक रखकर अपने बालकोंको शिक्षा दें तो खर्च बहुत अधिक आयेगा। इसलिए सबकी ओरसे सरकार शिक्षाकी व्यवस्था कर देती है और इस कामकी व्यवस्थामें होनेवाले खर्चके लिए प्रजासे कर लेती है। परन्तु सरकारको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि प्रजाको शिक्षाका पूरा लाभ मिले। इसके सिवा यह काम सामूहिक रूपमें होता है इसलिए कम पैसेमें प्रजाको अधिक लाभ मिलना चाहिये। यही सिद्धान्त राज्यके सब कार्योंको लागू होता है। सरकारका गुण सूर्यके जैसा होना चाहिये। सरकार जितना प्रजासे ले उससे अधिक प्रजाको वापिस दे जिस प्रकार सूर्य पानी चूसता है और बरसातके रूपमें उसे बरसा कर अनेक गुना लाभ दुनियाको पहुंचाता है। इसी प्रकार राज्यका कर लेनेका अथवा आय करनेका उद्देश्य प्रजाको अधिकसे अधिक लाभ पहुंचाना होना चाहिये।

व्यक्ति और सरकारके आय-व्ययमें अंतर

२ व्यक्ति और सरकारके आय-व्ययमें सबसे बड़ा अन्तर यह है कि व्यक्तिको अपनी आय देखकर खर्च करना होता है और आयके अनुपातमें ही खर्च करना पड़ता है। व्यक्तिको अपनी आयके अनुसार खर्चकी मर्यादा रखनी पड़ती है। इसके विपरीत सरकार पहले खर्चकी मर्यादा तय करती है और बादमें उसके हिसाबसे आय करनेकी बात सोचती है। प्रजाकी कर भरनेकी शक्तिकी दृष्टिसे सरकारको भी कुछ अंश तक व्यक्तिका नियम लागू होता है। परन्तु सरकार अधिक आय प्राप्त करनेके लिए प्रजा पर कर लगा सकती है इतनी हद तक सरकारका खर्च व्यक्तिके खर्चसे अलग पड़ता है। व्यक्ति चाहे उस समय अपनी आय नहीं बढ़ा सकता। सरकार भी अमर्यादित रूपमें कर नहीं बढ़ा सकती। परन्तु सरकारकी मर्यादा और व्यक्तिकी मर्यादामें

भेद है। यदि सरकारकी तरह व्यक्ति भी अपनी आय बना सके तो दोनोंके आय-व्ययमें कोई भेद न रहे।

सरकारके कर्तव्य और खर्च

३ ऐडम स्मिथके मतानुसार सरकारके कर्तव्य तीन प्रकारके हैं

(१) विदेशी आक्रमणसे देशकी रक्षा करना और देशके भीतरी लड़ाई-झगड़ोंको मिटा कर शांति और सुव्यवस्था स्थापित करना।

(२) व्यक्ति और व्यक्तिके बीच न्याय करना।

(३) ऐसा सामाजिक काम करना जो व्यक्तिसे नहीं हो सकता और जो सारे समाजके लिए उपयोगी हो।

४ उपरोक्त तीन कर्तव्योंके अनुसार राष्ट्रके खर्चके भी तीन विभाग किये जा सकते हैं

(१) सुरक्षा विभागका खर्च।

(२) न्याय विभागका खर्च।

(३) सार्वजनिक संस्थायें चलानेका तथा सामाजिक काम करनेका खर्च।

पहले विभागमें जलसेना स्थलसेना और वायुसेनाके खर्चका दूसरे विभागमें पुलिस अदालतों तथा जेलके खर्चका तथा तीसरे विभागमें शिक्षा व्यापार-उद्योग और अन्य सार्वजनिक कार्योंके खर्चका समावेश होता है।

५ आधुनिक समयमें राष्ट्रके कार्योंका क्षेत्र अत्यन्त विशाल हो गया है इसलिए इन तीनों विभागोंमें खर्च बहुत ज्यादा बढ़ गया है। मृगया-वृत्ति अथवा गोपवृत्तिवाले समाजमें प्रत्येक मनुष्य सिपाही होता था इसलिए सुरक्षाका खर्च बहुत कम होता था। परन्तु आज तो सुरक्षाका काम बहुत खर्चीला हो गया है। न्याय विभागका खर्च भी इतना ही बढ़ गया है। परन्तु इसमें से बहुतसा खर्च दोनों पक्षोंसे ली जानेवाली स्टाम्प-फीसमें से निकाल लिया जाता है। इससे न्याय विभागका काम तुलनामें उतना खर्चीला नहीं होता। सार्वजनिक संस्थायें चलानेका तथा सार्वजनिक काम करनेका खर्च भी देशके उद्योग-धंधोंका आधार राष्ट्रकी सहायता पर अधिक होनेके कारण बढ़ा ही है।

११

सरकारी आयके साधन

१ आधुनिक समयमें किसी भी सभ्य सरकारकी आयके साधनोंके तीन विभाग किये जाते हैं (१) प्रथम और मुख्य विभाग करका होता है, (२) दूसरा फीस (शुल्क) का और (३) तीसरा कीमतका या सम्पत्तिके विक्रयका।

(१) कर सरकारके कर्तव्य पूरे करनेमें होनेवाले खर्चके लिए सरकारी सत्ताके बल पर व्यक्ति या समुदायकी सम्पत्तिमें से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपमें जो भाग लिया जाता है उसे कर कहा जाता है। इस विभागमें उत्पत्ति-कर जमीन-कर नमक-कर आयात और निर्यात-कर आदि समस्त आयकी वस्तुओं पर लगाये जानेवाले करका समावेश होता है। इन सबमें एक सामान्य लक्षण यह है कि सरकारके कर्तव्य पूरे करनेमें होनेवाले खर्चके लिए व्यक्तिकी सम्पत्तिका अमुक भाग अनिवार्य रूपमें लिया जाता है भले ही कर उगाहनेकी पद्धति चाहे जो हो।

(२) फीस सरकारी आयका दूसरा साधन फीस है। सरकारके कुछ कार्य विशिष्ट व्यक्तियोंके लाभके लिए होते हैं। इसलिए उन पर सरकार जो खर्च करती है वह फीसके रूपमें सम्बन्धित व्यक्तियोंसे लिया जाता है। दीवानी अदालतोंमें वादी और प्रतिवादीसे ली जानेवाली कोर्टफीस दस्तावेज रजिस्टर्ड करानेकी फीस उत्तराधिकारके प्रमाणपत्रकी फीस तथा शिक्षाकी व्यवस्थाके बदलेमें विद्यार्थियोंसे ली जानेवाली फीससे प्राप्त आयका इस विभागमें समावेश होता है। इस आयके प्रकारमें विशेषता यह है कि सरकार जो काम करती है उसके बदलेमें यह फीस उसे मिलती है। अत यह काम करनेके लिए जितना पैसा खर्च हो उतनी या उससे कम फीस और कभी कभी मुनाफा करनेके उद्देश्यसे खर्चसे भी अधिक फीस रखी जाती है। इस दृष्टिसे यह आय करकी आयसे भिन्न है।

(३) कीमत अथवा सम्पत्तिका विक्रय सरकारकी आयका तीसरा साधन कीमत अथवा सम्पत्तिका विक्रय है। सरकार कुछ सम्पत्ति उत्पन्न करती है। और जिस प्रकार कोई निजी व्यक्ति अपना माल बेचकर आय या मुनाफा करता है उसी प्रकार सरकार भी निजी व्यक्तिकी तरह अमुक

माल ग्राहकोंको बेचकर उससे आय या मुनाफा करती है। कुछ कारखाने सरकार स्वयं चलाती है। उसी तरह कभी कभी सरकार जमीनकी मालिक होती है और उस जमीनका उसे भाड़ा अथवा लगान मिलता है। सरकारके अधिकारमें जंगल होते हैं जिनमें पैदा होनेवाली चीजें बेचनेसे प्रतिवर्ष सरकारको आय होती रहती है। इसी प्रकार सरकार नदीसे नहरें निकाल कर सिंचाईके लिए लोगोंको पानी देती है और इससे आय प्राप्त करती है। सरकार अपनी रेलें चलाती है और अपनी खानें चलाती है। इन दोनोंसे भी सरकारको पैसा मिलता है। संक्षेपमें सरकार स्वामी अथवा कारखानेदारके रूपमें जो आय करती है उन सबका समावेश इस विभागमें होता है।

२ पुराने जमानेमें इस प्रकारकी आयका विशेष महत्त्व था। यूरोपमें जागीर-पद्धतिके युगमें राजाको प्रजा पर कर नहीं लगाना पड़ता था क्योंकि राज्यका खर्च राजाके स्वामित्ववाली जमीनकी पैदावारसे निकल आता था। इसके सिवा नजराने वगैरासे भी राजाको आय होती थी। परन्तु आजके युगमें समस्त सभ्य राष्ट्रोंमें आयका दूसरा और तीसरा साधन अपेक्षाकृत कम महत्त्वका हो गया है। और सरकारकी मुख्य आय प्रजा पर लगाये करोंसे ही होती है।

अब हम करोंके विषयमें विचार करेंगे।

१२

कर-निर्धारण

करका सामान्य स्वरूप

१ देशमे सुव्यवस्था और शांति बनाये रखनेका और लोगोको दूसरी कई तरहकी सामूहिक सुविधाए प्रदान करनेका खर्च निकालनेके लिए हर देशकी सरकार लोगोसे कर लेती है। शहर या कस्बेकी म्युनिसिपलिटिया और जिलेके लोकल बोर्ड भी लोगोकी जो सेवाए करते है उनके बदलेमे उनसे कर लेते है। इसलिए एक तरहसे देखें तो कर सरकारको या स्थानीय सस्थाओको उनकी सेवाओके बदलेमें दिया जानेवाला मेहनताना अथवा बदला है। लेकिन हम दूसरी सेवाओ और कार्योके बदलेमें जो मेहनताना देते है उसमें तथा सरकार और स्थानीय सस्थाओको जो कर चुकाते है उसमे एक बहुत बडा भेद है। दूसरी सेवा या कार्यका बदला तो उसी सूरतमे दिया जाता है जब वह ली जाती है परन्तु कर तो अनिवार्य रूपमें देना पडता है। हम पत्र लिखें या तार दे या रेलमे यात्रा करें तो पत्र पर डाकका टिकट लगाना पडता है तारके दाम देने होते है या रेलका टिकट लेना पडता है। परन्तु सरकार पुलिस या सेना रखे म्युनिसिपलिटी रास्ते साफ स्वच्छ रखे या रोशनीका प्रबंध करे तो उसका सीधा लाभ हम लें या न लें तो भी उसके बदलेके रूपमें हमें अनिवार्य कर या म्युनिसिपल टैक्स चुकाना पडता है। क्योकि ये सार्वजनिक सेवाए और कार्य ऐसे है जिनका इस प्रकार हिसाब लगाना सभव नही कि उनसे किसने कितना लाभ उठाया। सरकार जो पुलिस और सेना रखती है उससे किसके जानमालकी कितनी रक्षा हुई यह कहना असभव है। इसलिए पुलिस और सेनाका खर्च और इसी तरहके दूसरे खर्च अमुक हिसाबसे सब पर डाल दिये जाते है। यह सच है कि यह बटवारा न्यायपूर्ण ढगसे होना चाहिये। करकी यह न्यायपूर्ण मात्रा निर्धारित करनेके प्रश्न पर बडे बडे वाद-विवाद हुए है।

२ ऐसे कुछ उदाहरण ढूढे जा सकते है जिनसे पता चले कि इस प्रकारकी सामूहिक सेवाओके कर भी अमुक वर्ग पर या उन सेवाओसे लाभ लेनेवालो पर ही लगाये जा सकते हैं। जैसे आग बुझानेके बम्बे रखनेका खर्च उन्हीं लोगो पर क्यो न डाला जाना चाहिये जो अपने पास सुलगने उठनेवाली चीजें रखते है?

जो सीमेण्ट-कांक्रीटके या आग न पकड़नेवाले मकान बनाते हैं उन पर यह खर्च किसलिए डाला जाय? ऐसी ऐसी दलीलें दी जाती हैं। लेकिन अब यह मान लिया गया है कि आगको फैलनेसे रोकना सारे समाजके लाभकी बात है इसलिए आग बुझानेके खर्चका कर सब लोगों पर पड़ना चाहिये। इसी तरह पहले शहर या घनी आबादीमें दूरकी सड़कों और पुलोंके खर्चके लिए टोल या चुंगी लगानेकी प्रथा थी। जो लोग इन सड़कों या पुलोंका उपयोग करते थे उन्हींसे यह चुंगी ली जाती थी। परन्तु अब यह प्रथा बन्द होती जाती है और सामान्य करोंकी आयसे ही इस तरहके खर्च किये जाते हैं। शिक्षाके खर्चका उदाहरण बहुत सोचने जैसा है। निजी ढंगसे शिक्षाका काम करना हो तो किया जा सकता है। हमारे देशमें पहले गुरु ऐसी निजी पाठशालाएं चलाते थे और जो विद्यार्थी पढ़ने आते उनसे अलग अलग रूपमें मेहनताना वसूल कर लेते थे। आज भी हमारे देशमें अधिकतर माध्यमिक शालाएं इसी पद्धति पर चलती हैं। पर अब प्रत्येक सभ्य प्रजा यह मानने लगी है कि अमुक दरजे तककी शिक्षा तो फीस दे सकनेवाले बच्चोंको ही नहीं बल्कि सभी बच्चोंको मिलनी चाहिये। धनिकोंसे लिये हुए करसे गरीबोंको शिक्षा मिलती है। इसमें एक हेतु यह भी है कि प्रत्येक व्यक्तिको गरीबसे गरीब वर्गको भी आगे बढ़नेका अवसर औरोंके जितना ही मिलना चाहिये। इसलिए अब सिर्फ प्राथमिक शिक्षा ही नहीं बल्कि उससे आगेकी शिक्षा भी माध्यमिक और निःशुल्क देनेके पक्षमें लोकमत जोरदार बनता जाता है। इस समय लोकमतका प्रवाह इस दिशामें बह रहा है कि पुस्तकालय संग्रहालय बाग-बगीचे अस्पताल आदि सभी सार्वजनिक कार्य करनेकी जिम्मेदारी अधिकाधिक मात्रामें सरकारको उठानी चाहिये। उसका उद्देश्य भी यही है कि धनियोंसे वसूल किये हुए करसे सारे समाजको लाभ दिया जाय। यह कहा जाता है कि करकी आयसे सार्वजनिक सेवाके ऐसे काम ज्यों ज्यों अधिक होते जायें त्यों त्यों यह मानना चाहिये कि सरकार और लोग सामूहिक कल्याण और प्रगतिके बारेमें अधिक जाग्रत होने लगे हैं।

३. लोगोंकी भलाईके अधिकसे अधिक काम सार्वजनिक रूपसे हों और उनसे सबको लाभ पहुंचे इस बारेमें एकमत होने पर भी उनके लिए स्वेच्छासे पैसा देनेवाले बहुत कम लोग तैयार होते हैं। सारे राष्ट्र पर आया हुआ संकट या इसी तरहकी दूसरी आपत्तिके समय लोग जरूर स्वेच्छासे पैसा देते हैं; लेकिन ऐसे प्रसंग बहुत कम आते हैं। सामूहिक हितके कार्योंके लिए नियमित रूपमें स्वेच्छासे पैसा देनेवाले कम लोग होते हैं। ऐसे भलाईके कार्योंकी आवश्यकता

विषयक विचारोंमें जितनी प्रगति हुई है उतनी ऐसे कार्योंके लिए पैसेकी सहायता देनेमें प्रगति नहीं हुई। इसीलिए कर अनिवार्य रूपमें लगाने पड़ते हैं। और लोग हमेशा उससे बचनेकी इच्छा रखते हैं। बहुतोंकी मनोवृत्ति यही होती है कि किस तरह कर चुकानेसे बिल्कुल बच जायें या कौनसा उपाय अपनाया जाय कि कमसे कम कर भरना पड़े। इसीलिए ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं कि करकी मात्रा कैसे निश्चित की जाय और उसे वसूल किस तरह किया जाये।

कर निश्चित करनेकी पद्धति

४ कर लगानेके बारेमें हिंदू शास्त्रकारोंका मत यह है कि राजा लोगोंकी जो सेवा करे उसके बदलेमें अपने मेहनतानेके रूपमें और राज दरबारके खर्चके लिए वह लोगोंसे कर ले। गुणाचार्य कहते हैं राजा कर जरूर वसूल करे परन्तु लोगोंकी कर चुकानेकी शक्ति बढ़ानेमें सहायता देनेके बाद ही वह कर ले — जैसे माली वृक्षोंसे फल-फूल लेता जरूर है परन्तु उनको पानी पिलाने और उनकी सार-संभाल करनेके बाद ही लेता है। इसलिए करकी मात्रा इस ढंगसे निश्चित करनी चाहिये कि लोगोंकी बरबादी न हो। वृक्ष पर जब फल पककर गिरनेको तैयार हो जाय तभी उसे तोड़ना चाहिये। भेड़की ऊन आप भले ही उतार लीजिये परन्तु उसकी चमड़ीको नुकसान नहीं पहुंचना चाहिये। इसी तरह करकी मात्रा सावधानीसे निश्चित की जाय तो राज्यके लिए पूरी आय उत्पन्न करने पर भी कर देनेवालोंकी उत्पादन शक्ति घटेगी नहीं। करका बोझ प्रत्येक व्यक्ति पर उसकी शक्तिके अनुसार ही पड़ेगा। जो लोग मुश्किलसे अपनी जीविका चला सकते हैं उन्हें करके बोझसे मुक्त करके सामर्थ्यवालोंसे ही अधिक कर लेना चाहिये। जैसे पानीकी कोई तंगी नहीं है ऐसे समुद्रमें से पानी भाप बनकर ऊपर चढ़ता है और फिर जिसे आवश्यकता होती है उसे बरसातके रूपमें मिल जाता है वैसी ही व्यवस्था करकी वसूली और उसके खर्चकी होनी चाहिये।

आधुनिक अर्थशास्त्रियोंमें जो पुराने विचारके हैं वे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपनी आयके हिसाबसे कर दे। धनी मनुष्यकी आय ज्यादा होती है इसलिए वह ज्यादा कर दे। परन्तु जितनी आय ज्यादा हो उतना ही ज्यादा कर वह दे उससे ज्यादा न दे। इसकी जड़में विचार यह है कि सम्पत्तिका बंटवारा जिस ढंगसे हो रहा है उसी ढंगसे बिना किसी हस्तक्षेपके उसे चालू रहने दिया जाय। जो मनुष्य सौ रुपये कमाता हो उससे यदि पांच रुपया कर लिया जाय तो हजार रुपये कमानेवालेसे आप पचास रुपये लीजिये। परन्तु पचाससे ज्यादा कर लिया जायगा तो उसका मतलब होगा कि आप

उसकी विशेष बुद्धि, कुशलता और दीर्घदृष्टि पर ही कर लगाते हैं। इस तरह विरुद्ध यह कहा जाता है कि प्रत्येक मनुष्य जब सरकारको कर देता है तब वह सामूहिक हितके लिए थोड़ा आत्मत्याग करता है। यह त्याग यदि सब लोग उचित मात्रामें करें तो ही कर लगानेमें समानता और न्यायकी रक्षा हो सकती है। हम मूल्यकी मीमांसामें देख चुके हैं कि सौ रुपयेकी आयवालेके लिए पांच रुपये जितने मूल्यवान हैं उतने हजारकी आयवालेके लिए पचास रुपये नहीं होते। सौ रुपयेकी आयवालेको जब पांच रुपये देने पड़ते हैं तब उसे अपने खानपान या दूसरे बहुत ही जरूरी खर्चमें कटौती करनी पड़ती है, जब कि हजारवालेको पचास रुपये देते समय सौवालेके अनुपातमें बहुत कम कटौती अपने जरूरी खर्चमें करनी पड़ती है। और जिनकी आय बहुत ज्यादा होती है और जिन्हें अपना खर्च कुछ भी कम किये बिना बचत होती है उन्हें इस बचतमें से कितनी भी रकम देनी पड़े तो भी उन्हें कोई त्याग नहीं करना पड़ता। इसलिए नये विचारवाले अर्थशास्त्रियोंका मत है कि करका दर उत्पादन या आयके सामान्य अनुपातमें निश्चित न करके उसकी बढ़ती हुई मात्राके अनुपातमें निश्चित करनी चाहिये। कर लगाते समय प्रत्येक मनुष्यकी आयकी मात्रा न देखी जाय बल्कि यह भी देखा जाय कि कर देनेकी उसकी शक्ति कितनी है। साथ ही कर चुकाते समय उसे कितना त्याग करना पड़ेगा इसका भी हिसाब लगाना चाहिये और इस तरह मनुष्यकी शक्ति और त्यागके हिसाबसे करकी दर निश्चित करनी चाहिये। यदि सौ रुपयेकी आयवालेकी कर देनेकी शक्ति या सामूहिक हितके लिए त्याग करनेकी शक्ति पांच रुपया हो, तो हो सकता है कि उस समाजमें हजार रुपयेकी आयवालेकी कर देनेकी या त्याग करनेकी शक्ति सौ रुपये बराबर हो और इससे अधिक आयवालोंकी शक्ति इससे भी अधिक बढ़ते हुए अनुपातमें हो।

५. आयकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मात्राके अनुसार कर लगानेका मत रखनेवाले अर्थशास्त्रियोंके मनमें एक और बात भी रहती है। उन्हें वर्तमान अर्थव्यवस्थामें अन्याय दिखाई देता है। आयकी भयंकर असमानताओंकी जड़में उन्हें न्याय और नीतिके तत्त्वोंका अभाव दिखाई देता है। इसलिए वे [illegible] एकाधिकारों पर नियन्त्रण, मजदूरोंकी दशा सुधारनेके लिए बनाये जाने वाले कानून, उत्पादनका काम अधिकाधिक मात्रामें सरकारके हाथमें लेनेकी योजनायें — समाजकी रचनामें सुधार करने और आर्थिक विषमताएं घटानेके इन सब उपायोंकी तरह वे कर आरोपणकी पद्धतिका उपयोग भी आर्थिक असमानता घटानेमें करना चाहते हैं।

६ इसलिए वे एक आय और दूसरी आयमें भी भेद करते हैं। यह भी एक चर्चाका प्रश्न है कि जमीन मकान आदि स्थावर सम्पत्तिके किरायेकी आय और द्रव्य या पूंजीके व्याजकी आय — जिसे हम स्वामित्वके अधिकारके कारण होनेवाली आय कहें — तथा सीधी मेहनत मजदूरीकी आय पर करकी दर एक ही हिसाबसे रखी जाय या कम-ज्यादा रखी जाय? जायदादवाले और उनके उत्तराधिकारियोंको सदा कोई श्रम किये बिना आय हुआ करती है। उनके पूर्वजोंके अधिकारमें यह जायदाद कैसे भी आई हो — उन्होंने मेहनत करके कमाई हो लड़ाईमें जान दे कर प्राप्त की हो तत्कालीन सरकारकी कोई विशेष मदद करके इनाममें पाई हो या किसीसे छीन ली हो — परन्तु एक बात निश्चित है कि आजकल उस भोगनेवालेको जो आय होती है उसके लिए उन्हें कोई श्रम नहीं करना पड़ता। इसलिए उनकी आय तो जिसे अनुपार्जित आय कहा जाता है वैसी ही है। दूसरी तरफ मेहनत मजदूरी करके प्राप्त हुई आयमें वेतन मजदूरी धंधेका नफा और वकील-डाक्टरोंकी फीसकी आय आती है। ये लोग जब तक कुछ भी श्रम करते हैं तभी तक इन्हें आय होती है। यह अलग प्रश्न है कि उनके मेहनतानेकी दर जो कम-ज्यादा होती है वह कहां तक उचित है। इसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। परन्तु एक बात निश्चित है कि इनकी आयको जायदादवालोंकी आयकी तरह बिना श्रम किये होनेवाली आय नहीं कहा जा सकता। तो फिर उस बिना श्रम किये होनेवाली आय पर और इस पसीनेकी कमाई पर लगनेवाले करकी दरमें अन्तर क्यों नहीं होना चाहिये? इन जायदादवालोंकी सारी जायदादको या उनकी समूची आयको करके जरिये या दूसरी तरह जब्त करनेकी योजनाको 'अन्यायपूर्ण' या 'बोल्शेविक' कहनेवाले अवश्य निकल आयेंगे परन्तु वर्तमान अर्थ रचनाको न्यायके स्तर पर लाना हो तो इसमें शंका नहीं कि उसके पहले कदमके रूपमें ऐसी आय पर बढ़ते हुए अनुपातसे कर लगाना चाहिये। अलबत्ता यह उपाय केवल तात्कालिक और ऊपरी उपाय है। सच्चा उपाय तो रोगकी जड़को ढूंढ़कर उसे निर्मूल बनाना ही है। इसके लिए जायदादके स्वामियोंको बिना श्रमकी कमाई खानेवाले न रहने देकर इस जायदादके सिलसिलेमें उनके सम्बन्धमें आनेवाले लोगोंके प्रति अपना कर्तव्य पूरा करनेवाले बनाना चाहिये — अर्थात् उस जायदादके ट्रस्टी बनाना चाहिये और ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि ट्रस्टीके रूपमें जितने मेहनतानेके वे अधिकारी हों उतनी ही आय उन्हें मिले। इसके लिए उपाय यह है कि शिक्षा देकर लोगोंको जाग्रत किया जाय और उनकी शक्ति इतनी बढ़ा दी जाय कि वे शोषणके शिकार बननेसे इनकार कर

दें और मुफ्तखोरोंको खिलानेसे इनकार कर दें। परन्तु हम जरा आगे बढ़ गये। अभी तो हम कर लगानेकी पद्धतिका ही विचार करेंगे।

करके बारेमें सरकारी नीति

७ परन्तु यह तो भावी योजनाओं और सिद्धान्तोंकी चर्चा हुई। जब सरकारके अर्थमंत्री अपना बजट समझाते हैं तब अपने भाषणमें वे ऐसी बातें कहते हैं कि कर देनेवालोंकी शक्तिके अनुसार ही कर लगाया गया है, यह चिन्ता रखी गई है कि गरीबों पर बोझ न पड़े और यह भी अच्छी तरह ध्यान रखा गया है कि किसी खास उद्योगको नुकसान न हो। परन्तु उनके मनमें तो एक यही बात होती है कि निर्धारित किये हुए खर्चको पूरा करनेके लिए आय किस तरह खड़ी की जाय और वह भी इस ढंगसे कि किसी बलवान और आवाज उठा सकनेवाले पक्षका विरोध न हो और लोग भी उस करसे नाराज होकर भड़क न उठें। इसलिए वे नीचे लिखी बातोंका ध्यान रखकर कर लगाते हैं:

(१) जहां प्रजामत बलवान होता है वहां धनी लोगोंकी आय पर उत्तरोत्तर बढ़ती जानेवाली मात्राके सिद्धान्त पर करकी दर निर्धारित की जाय तो उससे ठोस आय होती है और कोई खास विरोध नहीं होता। इसके अलावा जिन चीजोंका विशाल मात्रामें उपयोग होता है उन पर हलका कर लगाया जाय तो आय अच्छी होती है और विरोध नहीं होता। इसके सिवा चीजों पर लगाया गया कर परोक्ष रूपमें वसूल होता है। अन्तमें उसका बोझ उस चीजको काममें लेनेवालों पर ही पड़ता है, परन्तु वह सीधा उनसे नहीं लिया जाता बल्कि आयात-व्यापारी, निर्यात-व्यापारी अथवा कारखानेदार उत्पादकसे लिया जाता है। इसलिए ऐसा कर लोगोंको एकदम खटकता नहीं। व्यापारी इस करकी रकमको मालकी कीमत पर तो चढ़ाते ही हैं, फिर भी मालको काममें लेनेवाले लोग जब ऐसे माल खरीदने जाते हैं तब अलग से वे यह कर देते हैं और मालकी कीमत जितनी बढ़ जाती है उतना अर्थात् करके छोटी किस्तोंमें उन्हें यह कर चुकाना पड़ता है। इस तरह करका भार उन्हें भारी मालूम नहीं होता। फिर भी जिन चीजों पर कर लगाया जाता है उनके चुनावमें बहुत सावधानी तो रखनी ही पड़ती है। गरीब लोगोंकी प्रतिदिनकी जरूरतकी चीजों पर कर लगे और उसके कारण गरीब लोग आवश्यक मात्रामें उसका उपयोग न कर सकें—यानी वह चीज महंगी हो जाय (जैसे हमारे देशमें नमकका कर था) तो यह उचित नहीं है। इसी तरह इस ढंगसे कर लगाना भी उचित नहीं जिससे हमारे नये नये उद्योगोंके विकासमें रुकावट पड़े

हो। स्मृतिकारोंने कहा है कि जैसे मधुमक्खी फूलमें से शहद चूस लेती है और फूलको इसका पता भी नही चलता और उसे कोई नुकसान भी नही होता वैसे ही कर ऐसे अप्रत्यक्ष ढंगसे लगाना चाहिये कि लोगोंको उसका पता भी न चले और उन्हें कोई नुकसान भी न हो।

(२) कर लगाते समय इस सिद्धांतकी रक्षा करना जरूरी होता है कि कर चुकानेका समय, कर वसूल करनेकी पद्धति और करका आकड़ा यह सब कर चुकानेवालेको और दूसरे लोगोंको स्पष्ट और निश्चित रूपसे मालूम हो। इस तरहकी निश्चितता इसलिए आवश्यक होती है कि कर देनेवालेको यह सब यदि निश्चित रूपसे मालूम हो तो कर वसूल करनेवाले सरकारी अधिकारी उससे रिश्वत नही ले सकते और न किसी तरहका अन्याय अथवा जबरदस्ती कर सकते है।

(३) साथ ही कर इस ढंगसे और ऐसी चीजों पर लगाना चाहिये कि कर वसूल करनेका काम बहुत आसान हो जाय। चीजों पर लगाया हुआ अप्रत्यक्ष कर वसूल करना बहुत आसान होता है, क्योंकि जहां चीजें पैदा होती है या उनका आयात निर्यात होता है वहीं उन पर कर ले लिया जाता है। इसलिए कर वसूल करनेवालोंको अनेक स्थानों पर भटकना नही पड़ता।

(४) करकी योजनामें ध्यान देने योग्य चौथा तत्त्व यह है कि करकी रकम लोगोंकी जेबसे निकल कर सरकारी खजानेमें पहुंचे तब तक उसमें थोड़ीसे थोड़ी कमी होनी चाहिये, अर्थात् कर वसूल करनेकी योजना ऐसी होनी चाहिये कि उसमें कमसे कम खर्च आये। जिन करोंकी वसूलीमें अधिक खर्च आता है वे अच्छे नही माने जाते। उदाहरणके लिए शहरोंमें बाइसिकल पर जो कर लगाया जाता है वह इसी प्रकारका होता है। हमारे देशमें एक राज्यकी हदमें से दूसरे राज्यकी हदमें प्रवेश करते समय जो चुंगी ली जाती है वह बहुत तकलीफ देनेवाली और खर्चीली होती है। ऐसे करसे लोगोंमें अशांति पैदा होती है और सरकारको बहुत रकम नही मिलती।

८ कर निर्धारणके बारेमें कुछ अर्थशास्त्री ऐसा भी मानते है कि गरीब और मजदूर-वर्ग पर करका बिल्कुल बोझ न पड़े यह ठीक नही है। भले उन्हें थोड़ा ही कर चुकाना पड़े, परन्तु थोड़ा भी कर वे देते रहेंगे तो सार्वजनिक कार्योंमें और सार्वजनिक खर्चके बारेमें वे रस लेते रहेंगे। उन्हें कुछ भी कर न देना पड़े तो उनमें ऐसी वृत्ति पैदा हो जाती है कि सरकारके पास कोई बड़ा कोष जमा है, जिसमें से हमें सारी सुविधायें और रोजी भी मिलना चाहिये। हमारे देशमें गरीब लोगों पर विशेषत

मिलाना पर — जो उनकी जनसंख्याका बहुत बड़ा भाग है — करका भार बहुत अधिक पड़ता है और उसके बदलेमें उन्हें नाममात्रकी सुविधाएं मिलती हैं। इसलिए जहां सच्चा प्रजातन्त्र हो और सरकार प्रजाकी सच्ची सेवा करनेके लिए सदा तैयार रहती हो वहांके लिए शायद ऊपरकी दलील ठीक हो सकती है। वरना ऐसी छोटी रकमके करकी वसूली बहुत महंगी पड़ती है और उसे चुकानेवाले बिना कारण उत्तेजित हो उठते हैं। इसलिए मत देनेवालोंको प्रसन्न रखनेकी दृष्टिसे कोई ऐसे करका समर्थन नहीं करता। इसके बावजूद प्रजातांत्रिक सरकारें भी इस बातका विचार नहीं करतीं कि कर भाररूप मालूम होने पर भी ऐसे पराये ढंगसे लगाये जाने चाहिये कि लोगोंको वे अखरें नहीं।

विविध प्रकारके कर

९. **आय-कर** अनेक प्रकारके करोंमें आय-कर या इनकम टैक्स सारी दुनियामें अब अच्छेसे अच्छा कर माना जाने लगा है। जीवन-निर्वाहके लिए जितनी आय जरूरी समझी जाती है उस परसे मुक्त रखा जाय — और अधिकतर रखा ही जाता है — तो यह कर समाजके अधिक धनी वर्ग पर ही पड़ता है। अन्य अनेक तरहके करोंकी बात तो तुलनामें गरीबों पर ही अधिक पड़ता है। परन्तु यह कर सिर्फ धनवानोंको ही देना पड़ता है; इसलिए इसकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ाई भी जा सकती है।

१०. आय-कर दो तरहसे वसूल किया जाता है। (१) मनुष्यकी सारी आय पर सीधा कर लगाकर, और (२) जहां जिसकी आय होती है उसे मूल स्थानसे ही कर वसूल करके। उदाहरणके लिए कोई आदमी सरकारी लोन लेता है या म्युनिसिपैलिटी या लोकल बोर्डके डिबेंचर लेता है। इस तरह सरकारी या अर्ध-सरकारी संस्थाओंकी जमानतमें जिसने अपना रुपया लगाया हो उसे ब्याज दिया जाता है। यह ब्याज आय-कर काटकर ही दिया जाता है। इसी तरह जिन्होंने जाइंट स्टाक कम्पनियोंके शेयरोंमें रुपया लगा रखा हो उन्हें डिविडेंड देते समय आय-कर काटकर उनका मुनाफा सरकारकी तरफसे कम्पनीको दिया हुआ होता है। बैंकों और रेलवे कम्पनियोंमें जिन्होंने पूंजी अमानतके रूपमें रखी हो उन्हें मिलनेवाले ब्याजमें से भी आय-कर वसूल करना आसान है। इसी तरह जमीन या दूसरी स्थावर सम्पत्ति जिन्हें आय होती हो उनकी आयमें से भी लगान लेकर कर लेना बहुत आसान है। जो बहुत पेशेवार या सरकारी या गैर-सरकारी कर्मचारी इनकम टैक्स के पात्र होते हैं उनके पगारोंमें से भी उन ऑफिसों या संस्थाओंसे सीधे ही आय-कर काट

लिया जाता है। इस तरह जहां आयका जडको पकडा जा सकता हो वहां सरकारको कोई झझट या खर्च किये बिना इनकम टक्स मिल जाता है। परन्तु हर आयकी जड तक इस तरह पहुचना कठिन होता है। वकीलों और डाक्टरोंकी कमाई सीधी उनके मुवक्किलों और रोगियोंसे होती है। व्यापारियों और दुकानदारोंका नफा भी सीधा ग्राहकोंसे होता है। बडे कारखानदारों और उद्योगपतियोंको भी सरकारी या अर्ध सरकारी सस्थाओंसे या बैंकों और जाइण्ट स्टाक कपनियोंसे जो व्याज और डिविडेण्ड मिलता है उसके अलावा दूसरी आय भी होती है। किसीकी विदेशोंमें जायदाद बनाई हो या उद्योगमें पूजी लगाई हो तो उसकी सारी आय उस देशके बैंकोंके जरिये ही नहीं मिलती। इसलिए लोगोंसे इस बातका उत्तर मांगा जाता है कि उन्हें कितनी आय हुई है और इस उत्तरके बारेमें इनकम टक्स विभागके निरीक्षक जाच करनेके बाद आय कर लगाते हैं।

११ जब आयके मूल स्थानसे ही आय-कर काट लिया जाता है तब जिनकी कुल आय आय-करके योग्य नहीं होती उनकी आयमें से भी आय-कर कट जाता है। ऐसे आदमियोंको अपनी कुल आयका आकडा लिखकर प्रस्तुत करने पर काटा हुआ आय-कर लौटा दिया जाता है। लेकिन जिनकी आय बहुत अधिक होती है उनको आमदनीके अनुपातमें उत्तरोत्तर बढता हुआ कर देना पडता है। पर इस पद्धतिमें इस बढते हुए करसे वे लोग बच जाते हैं। इसलिए ऐसे लोगोंसे तो पुन उनकी कुल आयका आकडा दिखानेवाला उत्तर लेना जरूरी रहता है।

१२ बडी आय पर जो अधिक कर लिया जाता है उसे सुपर टक्स कहते हैं। इग्लण्डमें पाच हजार पौण्डसे अधिक आयवालों पर सुपर टक्स लगानेका आरभ १९१० से हुआ था। १९१४ से १९१८ के प्रथम महायुद्धके समय दो हजार पौण्डकी आय भी सुपर टक्सके लायक समझी गई थी। यह सुपर टक्स आयके अनुपातमें उत्तरोत्तर बढता हुआ रखा गया था। इग्लण्डमें अधिकसे अधिक कर आयके ५० प्रतिशत तक और अमरीकामें ६५ प्रतिशत तक पहुचा था। हमारे देशमें उत्तरोत्तर बढनेवाला आय-कर १९१६ में जारी किया गया था। १९१७ से सुपर टक्स शुरू हुआ और युद्धके कारण एक वर्षके लिए ३ हजार रुपयेसे अधिक आय पर अतिरिक्त मुनाफा कर (एक्सेस प्राफिट टक्स) लगाया गया। दूसरे विश्वयुद्धमें ३६ हजारसे ऊपरकी आय पर एक्सेस प्राफिट टक्स ८० प्रतिशत तक लगाया गया था।

१२ **उत्तराधिकार-कर** आय-करकी तरह उत्तराधिकार-करमें उत्तरोत्तर वर्धमान अनुपातका नियम लागू करना अधिक आसान है। परन्तु प्रश्न यह उठाया जाता है कि क्या इस करमें उत्तरोत्तर वृद्धि करना ठीक है? उत्तराधिकार-करके खिलाफ सबसे बड़ा एतराज यह दिया जाता है कि यदि लगातार यह कर बढ़ाता ही जाय तो मनुष्यमें जो बचत और संग्रह करनेकी वृत्ति है और जिसके कारण पूंजी इकट्ठा होती है और उद्योग-धन्धे बढ़ने लगते हैं उस वृत्तिको आघात पहुंचेगा और समाजमें पूंजी इकट्ठा नहीं होगी। पर यह एतराज पुराने जमानेका माना जाता है। आजकी आर्थिक असमानता अन्याय और शोषणका कारण बन गई है। उसे कम करने या मिटानेके लिए उत्तराधिकार-कर तो एक सौम्य उपाय है। विरासतमें मिली हुई बड़ी बड़ी जायदादोंके बल पर बिना कुछ श्रम किये गुलछर्रे उड़ानेवाला वर्ग समाजके लिए हानिकारक है। अगर भारी उत्तराधिकार करके कारण बड़ी बड़ी जायदादें मिट जायगी। तो फिर इन जायदादोंके कारण ही समाजमें जो काम होते हों वे काम सरकारको अपने हाथमें ले लेने चाहिये। बड़े जायदादवालोंके दानसे जो सार्वजनिक संस्थाएं चलती हों या बड़े जायदादवालोंकी पूंजीसे जो बड़े उद्योग चलते हों वे सब समाजके लिए यदि जरूरी हों तो जिस हद तक जरूरी हों उस हद तक वे सरकारकी तरफसे चलने चाहिये। आज तो लोकमत इस पक्षमें है कि आय-करकी भांति उत्तराधिकार-करकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ाई जाय अर्थात् जायदाद जितनी बड़ी हो उतना ही अधिक प्रतिशत उस पर कर लगाया जाय। हां आय-करकी तरह इस करसे होनेवाली आयका अन्दाज पहलेसे ही ठीक ठीक नहीं लगाया जा सकता। इसलिए राज्यके चालू खर्चके लिए इस आय पर भरोसा रखना ठीक नहीं। इस आयका उपयोग तो ज्यादा स्थायी बड़े कामोंके लिए ही करना ठीक है। इस जमानेमें यह निश्चित करना कठिन नहीं कि मनुष्य मरते वक्त कितनी सम्पत्ति छोड़ गया है। स्थावर सम्पत्ति तो प्रकट ही होती है और जंगम सम्पत्ति भी लोग अब अपने घरमें नहीं रख छोड़ते। जो जंगम सम्पत्ति लोग बैंकोंमें और असामियोंमें लगाते हैं वह भी छिपाकर नहीं रखी जा सकती। निजी गहने और दूसरी व्यक्तिगत उपयोगकी चीजें पकड़ी नहीं जा सकतीं। परन्तु वे बहुत बड़ी रकमकी नहीं होतीं। प्रश्न तो यह है कि अगर बहुत भारी उत्तराधिकार कर लगाया जाय तो परिणाम स्वरूप यह हो सकता है कि लोग अपने जीतेजी अपनी सम्पत्ति नाते-सम्बन्धियोंको बांट दें। ऐसा

उपाय यह है कि सार्वजनिक कार्योंके लिए तो नहीं परन्तु व्यक्तियोंको दी जानेवाली बड़ी कीमतकी या भारी रकमकी भेंटों पर बहुत भारी स्टाम्प ड्यूटी अनिवार्य रूपसे लगाई जाय। इंग्लैण्डमें उत्तराधिकार कर लगानेकी प्रथा है। और हमारे देशमें भी रु० ५०००० से ऊपरकी रकम पर उत्तराधिकार-करके साथ जुड़ा हुआ भेंट-कर डाला गया है। इसकी दर ४ प्रतिशतसे लेकर ४० प्रतिशत तक है।

१४ जमीनका कर हमारे देशमें सरकार तमाम जमीन पर कर लेती है। उस जमीनका महसूल कहते हैं। सरकार जो महसूल लेती है वह कर है या भाड़ा यह बड़ा विवादास्पद प्रश्न है। सरकारका दावा तो यह है कि वह तमाम जमीनकी मालिक है और लोगोंको जमीन जोतनेके लिए या दूसरे कार्योंमें उपयोग करनेके लिए देती है इसलिए वह उसका भाड़ा लेती है। सरकारका यह दावा लोग नहीं मानते। इतना ही नहीं परन्तु सामूहिक रूपमें और सफलताके साथ लोग इसका कई बार सक्रिय विरोध भी कर चुके हैं। परन्तु जमीनके इस महसूलको कर मानिये चाहे भाड़ा वह अपने हाथों खेती करनेवाले किसानों पर बहुत ही भारी बोझ है और उनकी गरीबी तथा कर्जदारीके लिए एक बहुत बड़ा कारण बना हुआ है। हमारे देशमें जमीन-करके मामलेमें एक और बड़ी बुराई यह है कि स्वयं खेती करनेवाले किसानों और सरकारके बीच जमीन पर स्वामित्व-अधिकार रखनेवाला एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो स्वयं जमीनमें खेती नहीं करता परन्तु दूसरोंको जमीन खेतीके लिए देता है और उसके बदलेमें उनसे भाड़ा लेता है। इसे जमाबन्दी कहा जाता है। यह अ-किसान या जमींदार वर्ग बीचमें बिना कुछ किये ही खेतीकी आय खाता है। सरकारको दिये जानेवाले जमीन महसूलका बोझ तो यह वर्ग किसानों पर डालता ही है इसके अलावा जमीन खेती करनेके लिए देनेके बदलेमें उनसे भाड़ा भी लेता है। इसलिए जो किसान जमीनके मालिक नहीं हैं उनके रक्षण और राहतके लिए महसूलका कानून बनानेके लिए सरकार पर लोकमतका दबाव डाला जाता है। हमारी खेतीकी वर्तमान स्थितिको देखते हुए जमीन महसूलके बारेमें और जमीनके मालिकी हकके बारेमें नीचे लिखे सुधार तुरन्त होने जरूरी हैं

(१) जो किसान स्वयं खेती करनेवाले हैं और जिनके पास अपने कुटुम्बके निर्वाह जितनी ही जमीन है उनसे जमीन महसूल बिलकुल न लिया जाय। साधारण परिवार अपनी मेहनतसे और मौसमके दिनोंमें मजदूर रखकर उनकी सहायतासे जितनी जमीनमें खेती कर सके उसको और साधारण कुटुम्बके

निर्वाहके लिए जितनी जमीन चाहिये उससे ऊपर ठहराकर — अलग अलग प्रदेशोंमें ऐसी कर-मुक्त जमीनकी मात्रा अलग अलग होगी — खेतोंकी उतनी पैदावारको हर प्रकारके करोंसे मुक्त समझना चाहिये। आय-करके विवेचनमें हम कह चुके हैं कि कुटुम्बके निर्वाहके लिए जरूरी कमसे कम आय निश्चित करके उसे आय-करसे मुक्त रखना चाहिये। वही न्याय यहां भी लागू किया जाय। जिस किसानकी आय अधिक हो उससे आय-करके सिद्धान्तके अनुसार कर लिया जाय।

(२) खेतीके दैनिक मजदूरोंके लिए उनका जीवन निर्वाह अच्छी तरह हो सके ऐसा कमसे कम दर तय करना चाहिये। उससे कम दर किसीको नहीं दी जानी चाहिये।

(३) जो गैर किसान खेतोंकी जमीनों पर मालिकी हक रखते हैं वे जिस हद तक अपनी जमीनके ट्रस्टी या संरक्षक बन सकें और जमीनमें सुधार करके तथा दूसरी तरहसे किसानको मदद देकर अपने श्रम और होशियारीसे खेतीकी उत्पत्ति बढ़ानेमें हाथ बटा सकें, उस हद तक वे उचित मेहनतानेके अधिकारी माने जायंगे। इस तरह मालिकी हकके कारण तो उन्हें कुछ भी नहीं मिलना चाहिये; परन्तु जो कुछ मिले वह उनके श्रम अथवा योजना और व्यवस्थाके कारण मिलना चाहिये। अपने किसानोंके ट्रस्टीके नाते सारे कर्तव्य पालन करते हुए जमींदारकी अगर ज्यादा आय हो तो उससे आय-करके नियमोंके अनुसार कर लिया जाय।

१५. अब हम अपने शहरों और गांवोंमें आबादीकी जमीन पर लगाये जानेवाले करका विचार करें। जो लोग ऐसी जमीनका — उस पर रहनेके लिए मकान बनाकर या और किसी तरह — स्वयं ही उपयोग करते हों, उनसे सरकार यदि आमदनीके लिए जरूरत पड़ने पर कर-निर्धारणके सिद्धान्तके अनुसार उनकी शक्तिके अनुसार कुछ कर ले तो इस पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। लेकिन प्रश्न तो तब पैदा होता है जब किसी शहर या गांवकी खुशहाली बढ़ने लगे और कोई खास मुहल्ला अधिक महत्त्वका माना जानेके कारण उसकी आबादीकी जमीनोंके दाम बहुत बढ़ जायं। हम सामान्य भाषामें कहते हैं कि मध्यवर्ती मुहल्लेमें मकानकी कीमत बढ़ जाती है; लेकिन असलमें कीमत तो जमीनकी ही बढ़ती है; क्योंकि उस भागमें बिलकुल निकम्मा मकान हो तो भी उस जगह पर उसकी किरायेकी कीमत और किरायेदार मिलने पर उसका किराया भी अधिक मिलता है। यह लाभ मकानके कारण नहीं बल्कि उसके मध्यवर्ती भागमें होनेके कारण ही मिलता

है। बिक्रीकी कीमतमें या किरायेकी आयमें होनेवाली यह वृद्धि मालिकके किसी पुरुषार्थसे नहीं होती। परन्तु समाजकी खुशहाली बढ़नेसे होती है। शहरोंमें महत्त्वकी जमीनकी कीमतमें होनेवाली इस तरहकी वृद्धि पर बढ़ी हुई कीमतके अनुसार ही माजिकस कर लिया जाता है। इंग्लैण्डमें ऐसी जमीन जब बेची जाती है तभी बढ़ी हुई बिक्रीकी कीमत पर कर ले लिया जाता है। हमारे यहां म्युनिसिपैलिटियां जब शहरके विस्तारकी योजना बना कर बढ़ाये हुए भागमें सड़कें बनाती हैं और रोशनी तथा पानीकी सुविधायें खड़ी करती हैं तब जमीनकी जो कीमत बढ़ती है उसका अमुक भाग अपने किये हुए खर्चके बदलेमें जमीन मालिकोंसे वसूल करती हैं। संक्षेपमें समाजकी खुशहाली या प्रगतिके कारण जमीनकी अपने-आप बढ़नेवाली कीमतका लाभ उसके मालिकके बजाय सारे समाजको मिलना चाहिये। इस तर्कके अनुसार बढ़ी हुई कीमतका बहुत बड़ा भाग करके रूपमें सरकार ले तो यह सर्वथा उचित है। बेशक, सरकार राष्ट्रीय होगी और इस तरहसे होनेवाली आय जनताकी भलाईके कामोंमें ही खर्च की जायगी। यहां एक और बात ध्यानमें रखने जैसी है। वह यह कि शहर या गांवके अमुक भागका महत्त्व बढ़नेके कारण या दूसरे सुभीतोंके कारण जिसने बढ़ी हुई कीमत पर यह जमीन खरीदी हो उसे इस जमीनसे कोई अनुपार्जित अतिरिक्त आय नहीं मिलती। इसलिए ऐसी जमीनका टैक्स सरकारने बढ़ा लिया हो तो खरीदते समय इस टैक्सका विचार करके ही खरीदार उस जमीनकी कीमत देता है।

१६ **मकान-कर** मकानके सम्बन्धमें अनुपार्जित आयका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। क्योंकि जिस जमीन पर मकान हो उस जमीनकी कीमतसे मकानकी कीमत अलग कर दी जाय तो मकानकी कीमत तो उसे बनानेमें हुए खर्चके बराबर ही होगी। लेकिन इसमें भी महंगाईके कारण इमारती सामानके भाव बढ़ गये हों तो मकानकी कीमत भी उसी हिसाबसे जरूर बढ़ जाता है और मकानके मालिकको मकान बेचने पर महंगाईका लाभ मिलता है। मकानों पर तो आम तौर पर म्युनिसिपैलिटी अपने खर्चके लिए कर लगाती है। जो मकान किराये पर दिये जाते हैं उन पर यदि ऐसा कर बढ़ा दिया जाता है तो मकान मालिक मकानका भाड़ा बढ़ा कर यह बोझ किरायेदार पर डाल देता है। जहां किसी खास समयके लिए मकान भाड़ेसे दिया जाता है वहां समय पूरा होने तक मालिकको करकी मार उठाना पड़ता है।

१७ **परोक्ष कर** आय उत्तराधिकार लगान और मकानके कर प्रत्यक्ष कर कहलाते हैं। क्योंकि कर निर्धारण करते समय विधानसभाके सदस्योंके मनमें यह निश्चित होता है कि जिन पर कर लगाया जाता है उन्हीं पर उसका भार पड़ेगा यद्यपि हमने मकानके सम्बन्धमें देख लिया कि अन्तमें यह भार मकान मालिक पर नहीं परन्तु किरायेदार पर पड़ता है।

१८ चीजों पर लगाये जानेवाले करको परोक्ष इसलिए कहा जाता है कि यद्यपि यह कर वसूल तो किया जाता है उस चीजके उत्पादक या बेचनेवालेसे, परन्तु उसका भार उस चीजको काममें लेनेवाले पर ही पड़ता है। उत्पादक या बेचनेवाला करकी रकम चीजकी कीमतमें जोड़कर ही अपनी चीज बेचता है। इसलिए वह सामान्यतः इस बातकी बहुत परवाह नहीं करता कि कर अधिक है या कम। परन्तु उत्पादकको करका विचार उस समय करना पड़ता है जब करके कारण चीज महंगी हो जाय और इस महंगाईका असर चीजकी मांग पर पड़े। किसी खास उद्योगमें उत्पादकके नफेकी गुंजाइश अधिक रहती हो तो कभी कभी वह करके जितना नफा छोड़ कर कम मूल्य कीमत पर उस चीजको बेचना जारी रखता है क्योंकि जहां नफेकी गुंजाइश अधिक होती है वहां ऐसी घटनाएं तो रहती ही हैं। फिर भी नियमके रूपमें यह कहा जा सकता है कि अधिकतर चीजोंमें और लम्बी अवधिमें तो चीजों पर करका भार खरीदार पर ही पड़ता है।

१९ इसलिए इस करके सम्बन्धमें यह सावधानी रखनी पड़ती है कि गरीब लोगोंके रोजके उपयोगकी उन चीजों पर जिनके बिना काम नहीं चल सकता, ऐसे कर नहीं लगने चाहिये। परन्तु अक्सर तो आय पर ही अपनी दृष्टि रखना है। जो चीज बहुत बड़ी मात्रामें इस्तेमाल होती है उस पर कर लगाया जाय तो करकी दर थोड़ी होने पर भी राज्यको बहुत बड़ी आय होती है। और धनी लोगोंके कामकी चीजों पर लगाये जानेवाले करकी दर अधिक होती हो तो भी आय थोड़ी होती है।

२० हमारे देशमें नमक-कर गरीब लोगों पर भारी अन्याय और भार रूप हो गया था क्योंकि शहरके और अच्छी स्थितिवाले लोगोंकी अपेक्षा गांवके किसानों और गरीब लोगोंको नमककी जरूरत ज्यादा होती है। उन्हें अपने उपयोगके लिए जितना नमक चाहिये उसके सिवाय अपने ढोरोंके लिए और खेतोंमें डालनेके लिए भी नमककी जरूरत पड़ती है।

२१ इसलिए चीजों पर कर लगाते समय इतना विचार तो करना ही चाहिये कि जिन लोगों पर करका भार पड़ेगा उन लोगोंमें इस करका

चुकानेकी शक्ति है या नहीं? जहां करके कारण जीवन निर्वाहका स्तर घटाना पड़े या जिन चीजोंके बिना काम न चल सके उन्हें भी कम करना पड़े वहां तो यह कर बिलकुल अनुचित ही है। करकी उत्तम व्यवस्था तो यही है कि विशाल जलराशिवाले समुद्रमें से पानी लेकर प्यासी पृथ्वीको बरसातके रूपमें दे दिया जाय जिससे सरकारका खर्च भी निकल आये और थोड़से आदमियोंके हाथोंमें इकट्ठी हुई सम्पत्तिका बहुत लोगोंमें बंटवारा हो जाय। ऐसी कर निर्धारण पद्धति उत्तम मानी जायगी।

२२ करके बारेमें एक अधिक महत्त्वका प्रश्न यह भी सोचने जैसा है कि अधिक कर लेकर समस्त सार्वजनिक कार्य सरकार ही करे तो अच्छा या सार्वजनिक कार्योंकी व्यवस्थाको भी विकेन्द्रित करके उसके लिए आवश्यक कर डालनेकी जिम्मेदारी स्वराज्य भोगनेवाले स्थानीय केन्द्रों पर छोड़ दी जाय तो अच्छा? यह प्रश्न कर लगानेकी पद्धतिसे सम्बन्ध नहीं रखता बल्कि इसका सम्बन्ध सारी राज्य व्यवस्थासे है। समाजका प्रत्येक घटक — छोटेसे छोटा और गरीबसे गरीब घटक भी — स्वतंत्रता भोग सके ऐसी राज्य व्यवस्था और अर्थ व्यवस्थाको ध्येयके रूपमें स्वीकार कर लिया जाय तो सार्वजनिक कार्योंकी व्यवस्थाको भी विकेन्द्रित कर देना ही अच्छा है। स्थानीय कार्योंके लिए स्थानीय संस्थाओंके हाथमें कर निर्धारणका अधिकार रखा जाय तो इससे न्यायकी रक्षा अधिक हो सकती है। इतना ही नहीं इससे स्वराज्यके इस सिद्धान्तकी रक्षा भी अधिक अच्छी तरह हो सकेगी कि अपनी व्यवस्था हम स्वयं ही करें।

१३

सरकारी ऋण

१ आजके युगमें कुछ सब सरकार ऋण लेकर करता है। आजकल प्रत्येक राष्ट्र पर ऋण होता है। और कुछ इस तरहकी मान्यता प्रचलित हो गई है कि ऋणी राष्ट्र मानो दूसरे राष्ट्रोंसे अधिक प्रगतिशील है।

२ आज संसारके राष्ट्रों पर जितना ऋण है उतना पुराने जमानेमें नहीं था। उस समय राजाओंको ऋण लेनेके बहुत कम मौके आते थे। कभी कभी युद्धके खर्चके लिए धनका अभाव होता तो उसके लिए राजा लोग थोड़े समयके लिए ऋण लेते थे और कुछ समयमें उसे लौटा देते थे। उस जमानेमें ऋण लेकर सार्वजनिक काम नहीं किये जाते थे। यदि राजाओंके पास खजानेमें अधिक धन होता तो उसके बल पर वे सार्वजनिक काम करते थे। परन्तु स्थायी ऋण करके पुराने जमानेके राजा-महाराजा कोई काम नहीं करते थे।

इस प्रकार पहलेके राजा-महाराजा अपने पास धन होता तो ही सार्वजनिक काम करते थे, धन न होता तो नहीं करते थे। इसलिए उन्हें ऋण नहीं लेना पड़ता था। और युद्धके लिए यदि ऋण लेना भी पड़ता था तो युद्धका अन्त हो जानेके बाद किसी धनिकसे पैसा लेकर भी वे यह ऋण चुका देते थे। लेकिन आज इससे उल्टी स्थिति हो गई है। आज एक भी राष्ट्र ऐसा नहीं है जिस पर ऋणका भार न हो। ऋण प्रत्येक राष्ट्रके लिए साधारण बात हो गई है।

सरकारी बनाम व्यक्तिगत ऋण

३ आजकल सरकार राष्ट्रके नाम पर विभिन्न सार्वजनिक कार्यों तथा युद्धोंके लिए ऋण लेती है। इसी प्रकार व्यक्ति भी ऋण लेता है। इन दोनोंके ऋणमें भेद क्या है? दोनोंके ऋण लेनेके कारण इस प्रकार हैं:

(१) आयका कम होना : व्यक्ति सदा अपनी आयके अनुसार ही खर्च करता है। परन्तु परिस्थितिवश उसकी आय घट जाय तो उसे पैसा उधार लेनेके लिए मजबूर हो जाना पड़ता है। यह बात राष्ट्रके विषयमें भी सच है। राष्ट्रकी आयका आधार प्रजा पर होता है। जब अकाल या किसी कारणसे राष्ट्रकी आय घट जाती है तब राष्ट्र पर भारी भार पड़ता है और वह भी ऋण लेता है।

(२) खचका बढ जाना खर्च बढ जाने पर व्यक्ति और राष्ट्र दोनोंके लिए दो ही मार्ग खुले रहते है। या तो खर्च घटाया जाय अथवा ऋण लिया जाय। लेकिन खर्च अगर घटाया न जा सके तो ऋण लिये सिवा कोई चारा नही रह जाता।

(३) अस्थायी कठिनाई ऐसी कठिनाईमें सामान्यत प्रत्येक व्यक्ति ऋण करता है। उदाहरणके लिए किसान वर्षमें दो फसल लेता हो और फसल पकनेके पूर्व उसे कोई खर्च करना जरूरी हो जाय तो ऐसे समय पास पैसा न होने पर किसान अपने पडोसी या साहूकारसे पैसा उधार लेकर काम चलाता है। यह अस्थायी ऋण है। राष्ट्रको भी जमीन महसूल आनेसे पूर्व अपना खर्च चलानेके लिए ऐसा अस्थायी ऋण लेना पडता है।

(४) असाधारण खर्च अकाल या आगका संकट आ पडने पर पैसा खर्च करना पडे तो व्यक्तिको पैसे उधार लेने पडते है। इसी प्रकार राष्ट्रको भी अचानक कोई खर्च करना पडे तो वह भी पैसा उधार लेता है। उदाहरणके लिए युद्धके अवसर पर।

(५) धंधा आरंभ करनेके लिए यह ऋण उत्पादक ऋण है। सामान्यत ऐसा ऋण दोषपूर्ण नही माना जाता क्योंकि इस ऋणके पैसे मुनाफा कमानेके लिए धंधेमें लगाये जाते है। यह ऋण चुकानेके लिए राष्ट्र जल्दी नही करता व्यक्ति भी जल्दी नही करता।

४ ऋण लेनेके जो कारण ऊपर बताये गये है वे राष्ट्र और व्यक्ति दोनोंको एकसे लागू होते है। व्यक्तिको तो सामान्यत अपना ऋण ब्याज और मूल रकमके साथ लौटाना होता है। परन्तु राष्ट्रके ऋणमें भेद होता है। राष्ट्र अमुक ऋणके लिए चाहे तो केवल ब्याज देता रहे और मूल धन न दे तो भी चल सकता है। इस तरह केवल ब्याज देते रहनेकी अवधि कभी कभी अमर्यादित होती है। और राष्ट्र उधार ली हुई रकम पर लम्बे समय तक ब्याज देता रहता है। इस प्रकारका ऋण केवल राष्ट्र ही ले सकता है। यह ऋण अवधिरहित ऋण कहा जाता है। निश्चित अवधिवाला ऋण राष्ट्र अमुक समयके पश्चात चुकानेके लिए वचनबद्ध होता है।

५ व्यक्तिको कोई धनी आदमी ऋण दे तो ही वह ऋण ले सकता है। परन्तु राष्ट्र जबरन भी प्रजासे ऋण ले सकता है। वह अपनी प्रजासे जबरन् पैसा वसूल कर सकता है। दूसरा भेद राष्ट्र और व्यक्तिके ऋणमें सुदृढ आर्थिक स्थितिके कारण खडा होता है। व्यक्तिकी अपेक्षा राष्ट्रकी आर्थिक

स्थिति अधिक सुदृढ मानी जाती है। इसलिए राज्यको कम ब्याज पर और स्थायी ऋण देनेवाले भी मिल जाते हैं जब कि व्यक्तिको नहीं मिलते।

६ व्यक्ति अपना सारा ऋण चुका देनेका प्रयत्न करता है। हां ऋणकी रकमसे अधिक आय करनेकी गुंजाइश हो तो वह ऐसा नहीं करता। परन्तु राष्ट्र उत्पादक ऋण चुकाना नहीं चाहता। व्यक्तिके पास अपनी पूंजी होती है राष्ट्रके पास अपनी पूंजी नहीं होती। इसलिए व्यक्ति अपना ऋण चुका दे तो उसे नुकसान नहीं होता इसमें उसका हित है। व्यक्ति उत्पादक ऋण चुका सकेगा। राष्ट्र उत्पादक ऋण नहीं चुकायेगा और न चुकानेमें ही उसका लाभ है। क्योंकि राष्ट्रके पास पैसे अधिक हों और यदि वह ऋण चुकानेमें वे पैसे लगा दे तो उसकी प्रजाको उतना ही कर देना होगा तथा वह लोकोपयोगी काम करना चाहे तो भी कर नहीं सकेगा। ऋण चुका देनेसे भावी प्रजाका बोझ कम अवश्य हो जायेगा परन्तु इसके लिए आजकी प्रजा पर बोझ डालना ठीक नहीं। सामान्यतः जो प्रजा कठिनाई भोगे उसीको लाभ मिलना चाहिये।

१४

राष्ट्रीय ऋणका स्वरूप और कारण

१ भारतमें राष्ट्रीय ऋणका आजरूपमें आरंभ पेशवाओंके समयसे हुआ था। प्रथम तीन पेशवाओंके समयमें युद्ध लड़नेके लिए ऋण लेनेकी जरूरत पड़ी तबसे इस पद्धतिका आरंभ हुआ। परन्तु इस पद्धतिका पुराना साहूकारा प्राहक तो पूरा हो है। यूरोपके सभी देशोंमें राष्ट्रीय ऋणकी पद्धतिका बहुत प्रचार हुआ है। राष्ट्र जितना बड़ा और जितना धन-सम्पन्न और बलवान होता है उतना ही उसका ऋण बड़ा होता है। इंग्लैंड जर्मनी फ्रांस आदि युद्धमें सम्मिलित होनेवाले राष्ट्रोंका ऋण बहुत बढ़ गया है। हमारे देशमें युद्धके बिना भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो गई है। यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं है कि हमारे देशमें तो उस समयसे ऋणकी पद्धति आरंभ हो चुकी है जब किसीको इस बातकी कल्पना भी नहीं थी कि एक अंग्रेज यहां भारतमें एक बड़ा राज्य पद्धतिका निर्माण करनेवाला है। क्योंकि रानी एलिजाबेथके जमानेमें अर्थात् सन् १६०१–०२में जिस ईस्ट इंडिया कम्पनीकी स्थापना हुई थी वह सन् १८५७में बादमें जब टूटी तो उस समय उसकी मूल पूंजीको भारत-सरकारके ऋणमें जोड़ दिया गया था। इस तरह कम्पनी-सरकारका भारतको आजतक

लिए जो लड़ाइयाँ लड़ी उन सबका खर्च भी इस राष्ट्रीय ऋणमें जोड़ दिया गया था। फिर कंपनी-सरकारने ब्रिटिश सरकारसे जो जो ऋण लिया उसका भी कुछ अंश इस राष्ट्रीय ऋणमें समाया हुआ था। कंपनी-सरकारका राज्य प्रबंध जब घाटेमें चलता उस समय ब्रिटिश सरकारको उसकी पूंजीका ब्याज भेजनेके लिए कंपनीको जो ऋण लेना पड़ता था उसका भी भारतके राष्ट्रीय ऋणमें समावेश कर दिया गया था। सन् १७६९ में कंपनी-सरकारको ऋण लेनेकी इजाजत दी गई। उसके बादमें कंपनी-सरकारका ऋण बढ़ता ही गया था। हैदरअली और टीपूके साथ लड़ी गई लड़ाइयाँ, मराठोंके साथ लड़ी गई लड़ाइयाँ ब्रिटेनके हितके लिए मोल ली गई परन्तु भारतके सिर मढ़ी गईं, अफगान लड़ाई, सिक्खोंको अन्यायसे अपने अधिकारमें करनेके लिए लड़ी गई लड़ाई, देशी राज्योंको खालसा करनेके लिए किये गये प्रपंच तथा सन् १८५७ के स्वातंत्र्य-युद्धको दबानेके लिए किये गये खर्चके कारण यह राष्ट्रीय ऋण तेज गतिसे बढ़ता गया था। १८५७ के विद्रोहके बादके वर्षमें हमारा ऋण ■ करोड़ पौंडका था। उसके बाद विनिमय-दराकी कठिनाईके कारण लिया गया ऋण, अकालके कारण लिया गया ऋण, रेलों और नहरोंके लिए लिया गया ऋण, महान यूरोपीय युद्धके खर्चके लिए भारतको जो भाग देना था उसके लिए लिया गया ऋण——इन सब ऋणोंको मिलाकर १९२० में हमारे सरकारी ऋणका आंकड़ा लगभग ४६ करोड़ पौंड तक पहुंच गया था।

२. अब इस पुराने ऋणका तो निबटारा हो गया है। परन्तु १९४७ में देशके स्वतंत्र होनेके बाद पंचवर्षीय योजनाओंके कारण हमारा राष्ट्रीय ऋण तेजीसे बढ़ता जा रहा है। यह ऋण मार्च १९६२ के अंतमें लगभग रु० ६००० करोड़ तक पहुंच गया था और वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है।

३. किसी भी देशमें राष्ट्रीय ऋणकी पद्धति आरंभ होनेके लिए उस देशमें स्थिर सरकारका होना जरूरी है। आज यह राजा है तो कल दूसरा ऐसी स्थितिमें राष्ट्रीय ऋणकी पद्धति संभव नहीं हो सकती। क्योंकि जो लोग ऋण दें उन्हें अपनी मूल रकम और उसका ब्याज बराबर मिलते रहनेका विश्वास होना चाहिए। देशमें लड़ाई या लूटपाट नहीं होनी चाहिये तथा शांति और न्यायका तंत्र होना चाहिये। जब तक प्रजाके जान-मालकी रक्षाके लिए पुलिस, सेना आदिकी संस्था खड़ी न हुई हो, जब तक व्यक्ति और व्यक्तिके बीचके झगड़ोंको मिटानेवाली तथा व्यक्ति और व्यक्तिके बीच हुए करारोंका न्यायपूर्वक पालन करानेवाली संस्थाकी देशमें स्थापना न हुई हो तब तक किसी देशमें व्यापार और उद्योग-धंधोंका विकास नहीं हो सकता। ऐसी

स्थितिमें लोग सरकारको उधार देनेके लिए पैसा कहाँसे लायें? और जो पैसे सरकारको उधार दिये जायँ वे कभी डूबनेवाले नहीं हैं ऐसा विश्वास लोगोंको न हो तो जिनके पास पैसे हों वे लोग भी सरकारको उधार देनेके लिए तैयार कम होंगे? ऐसी स्थितिमें लोग अपने धनको दबाकर रखते हैं और जब ऊपर बताई हुई अनुकूल स्थिति पैदा होती है तभी सरकारको उधार देनेके लिए तैयार होते हैं और तभी सरकार ऋणके रूपमें पैसा पानेमें समर्थ होती है।

४ यूरोपमें सब प्रथम राष्ट्रीय ऋणकी पद्धति इटलीके वेनिस, जिनोवा और फ्लारेन्स आदि स्थानोंमें आरम्भ हुई थी क्योंकि उपरोक्त अनुकूल स्थिति सबसे पहले इन्हीं भागोंमें उत्पन्न हुई थी। इसके बाद इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि बड़े बड़े राष्ट्रोंने इटलीके इन स्थानोंकी पद्धति पर राष्ट्रीय ऋण लेना शुरू किया। यूरोपके बड़े राष्ट्रोंमें से इंग्लैण्डमें अनुकूल स्थिति जल्दी उत्पन्न हो गई इसलिए वहाँ इस पद्धतिका तेजीसे प्रचार हुआ। इसीलिए इंग्लैण्डका राष्ट्रीय ऋण अन्य सब राष्ट्रोंकी अपेक्षा बहुत ज्यादा पुराना है। यह ऋण वहाँकी जागीरदारी पद्धति समाप्त होनेके बाद आरम्भ हुआ था।

५ इंग्लैण्डके राज्य विस्तारके साथ उसका राष्ट्रीय ऋण भी बहुत बढ़ने लगा। परन्तु राज्य विस्तारके साथ उसके उद्योग धन्धोंका भी अद्भुत विकास हुआ इसलिए वह आसानीसे ऋणका यह भारी बोझ उठा सका है। राष्ट्रीय ऋणकी वृद्धिसे इंग्लैण्डके व्यापारको नुकसान नहीं हुआ जब कि अन्य अनेक देशोंके व्यापारको उनके बहुत ऋणसे बहुत बड़ा नुकसान हुआ है।

६ आधुनिक कालमें सरकारको तीन कारणोंसे ऋण लेना अनिवार्य हो जाता है

(१) वार्षिक आय-व्ययका हिसाब न मिलने पर खजानेका घाटा पूरा करनेके लिए

(२) युद्धके अवसरों पर युद्धका खर्च पूरा करनेके लिए

(३) राजनीतिक या सामाजिक दृष्टिसे कुछ उद्योग सरकारको अपने अधिकारमें लेना आवश्यक मालूम हो तो उन उद्योगोंमें खर्च करनेके लिए। ये उद्योग यदि अनुत्पादक हों तो सरकारको उन्हें घाटेमें चलाना पड़ता है। उस समय अथवा उद्योगोंके उत्पादक होने पर भी उन्हें चलानेके लिए स्वतंत्र निजी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह साहस करके आगे न आयें तब सरकारके लिए उन उद्योगोंको चलाना आवश्यक हो जाता है और उन उद्योगोंमें लगाई जानेवाली पूँजीके लिए उसे उधार लेना पड़ता है।

प्रत्येक सभ्य राष्ट्रमें प्रजासत्ताका सिद्धांत कम-अधिक मात्रामें व्यवहारमें आता है इसलिए ऐसे राज्योंमें सरकार अपने वार्षिक आय-व्ययका बजट वर्ष आरंभ होनेसे पहले तैयार करके प्रजाकी प्रतिनिधि सभाके समक्ष रखती है। सामान्य नियम यह है कि आय-व्ययके बारेमें प्रतिनिधि-सभाकी सम्मति लेनी चाहिये। आधुनिक राष्ट्रोंकी आयका मुख्य साधन विभिन्न प्रकारके कर होते हैं। उनमें से बहुतसे कर परोक्ष होनेसे उनका ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। जिस करकी उत्पत्ति मालकी खपत पर आधार रखता है उस करकी आय भी कम-ज्यादा होती है। इसी प्रकार कोई विशेष कारण न होने पर भी खर्चके अनुमानमें फर्क पडना स्वाभाविक है। आय और व्यय दोनोंमें इस तरहकी अनिश्चितता होनेके कारण वर्षके अन्तमें आय-व्ययके पलड़े मिलते नहीं और सरकारी खजानेको द्रव्यकी तंगी भोगनी पडती है। ऐसे समय सरकारको तुरंत ऋण निकालना जरूरी हो जाता है क्योंकि नया कर लगानेके लिए प्रतिनिधि-सभाकी इजाजत लेनी पडती है और एक दो कर लगानेसे भी उनकी आय एकदम वसूल नहीं होती। अनेक सभ्य राष्ट्रोंमें अत्यन्त आवश्यक खर्चका अनुमान पहले निकाला जाता है और उस खर्चको चलाने जितना ही कर प्रजा पर लगाया जाता है। इसलिए आय-व्ययके बजटमें यथासंभव बचत नहीं दिखाई जाती। किसी भी प्रकार दोनों पलडोंको बराबर करना होता है। सरकार सदाके सामान्य खर्च जितनी रकम ही लोगोंसे वसूल करती है। किसी विशेष अवसर पर ही नया कर लगाया जाता है अथवा ऋण निकाला जाता है। परंतु कुछ देशोंमें ऋण लेनेका मौका ही न आये इस खयालसे अथवा आवश्यकता पडने पर उपयोगी सिद्ध होनेके खयालसे आय-व्ययका बजट इस प्रकार तैयार किया जाता है कि कुछ रकम बच जाय। इस पद्धतिमें खर्चका अन्दाज खूब ज्यादा लगाकर वह सारा खर्च पूरा हो सके इतने पैसे प्रजासे वसूल किये जाते हैं। लेकिन आवश्यकताके अनुसार रकम वसूल करनेकी पद्धति ही अच्छी है। ऐसा करनेसे वर्षके अंतमें सरकारी खजानेमें धनकी तंगी खडी हो तो भी कोई हर्ज नहीं क्योंकि इससे सरकार मितव्ययिता करना सीखती है। यदि खर्चके बाद रकम अधिक बचती है तो सरकारी अधिकारियोंको व्यर्थका खर्च करके पैसे बरबाद करनेका मोह होता है। यह सच है कि आय-व्ययके अनुमानकी घाटे वाली पद्धतिमें खर्चके आंकडेको मिलान करनेके लिए कभी कभी सरकारको ऋण लेना पडता है। परन्तु ऐसी तात्कालिक ऋण लेनेकी पद्धतिसे लोगोंको बहुत कष्ट नहीं उठाना पडता।

८ प्राचीन कालमें राजाओंको सैन्य विभाग पर बहुत थोड़ा — नहीं जैसा खर्च करना पड़ता था। परन्तु आजके युगमें सरकारको सैन्य विभागका संचालन करने और प्रत्यक्ष युद्ध लड़नेमें बहुत अधिक ऋण लेना पड़ता है। शांतिके समयका सरकारी खर्च उसकी आयके बराबर होता है, इसलिए यह सारा खर्च युद्ध छिड़ते ही सरकारको ऋण निकाल कर पूरा करना पड़ता है। नये कर लगाकर तात्कालिक खर्च पूरा नहीं हो सकता। लेकिन ऐसी व्यवस्था हो सके तो भी नये करोंके लिए प्रजा सम्मत नहीं होगी और युद्धका काम रुक जायगा। अतः यह कहा जा सकता है कि ऋण-पद्धतिसे खासकर युद्धको एक प्रकारसे उत्तेजन मिलता है। सम्पत्तिशास्त्रकी दृष्टिसे ऋण लेकर युद्ध करनेका अर्थ यही होता है कि सरकारके कृत्योंका फल भावी प्रजा भोगे; क्योंकि इस ऋणके ब्याजका भार सतत बना रहता है और यह भार भावी प्रजाको ही उठाना पड़ता है। कोई अन्य राष्ट्र अन्यायसे हम पर आक्रमण करे और उस समय केवल आत्मरक्षाके लिए ही युद्ध करना पड़े तो उस युद्धके साथ भावी प्रजाका सम्बन्ध रहता है। ऐसे समय राष्ट्रीय ऋण निकालना उचित है। परन्तु सरकारके दोषसे या उसकी मनमानीके कारण उपस्थित होनेवाले युद्धके खर्चका बोझ भावी प्रजा पर डालना अन्याय है। इसलिए कुछ सम्पत्तिशास्त्रियोंका तथा राजनीतिज्ञोंका मत है कि युद्धका खर्च यथासम्भव भारी कर डालकर ही पूरा किया जाना चाहिये।

९ ऋण निकालनेका तीसरा कारण इस बातमें है कि सरकारको उद्योग धंधोंके लिए पूंजी मुहैया करना पड़ती है। सरकार द्वारा ऋण निकालनेके जो तीन कारण ऊपर बताये गये हैं उनमेंसे इस तीसरे कारणके विषयमें कोई भी मतभेद नहीं है। राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिसे कुछ उद्योग-धंधे सरकारके हाथमें हों तो ही अच्छा। यह साधारण सभ्य देशोंमें ऐसे उद्योग धंधे सरकारके हाथमें ही रखे जाते हैं। गोला-बारूद तथा युद्धके शस्त्रास्त्र बनानेके कारखाने सरकारके हाथमें रहें यही वांछनीय माना जायगा। इसी प्रकार डाक-तार विभाग भी सरकारके हाथमें रहे यह उचित है। इसके सिवा सड़क, पानी और गैस प्रकारकी अन्य बातोंमें लोगोंको निजी रूपमें अनुकूलता न हो तो ऐसे समय राष्ट्रहितकी दृष्टिसे सरकारको ही इनकी सम्बन्धित संस्थायें अथवा कारखाने आदि खोलनेका काम हाथमें लेना चाहिये। इन कामोंके लिए ऋण लेकर पूंजी खड़ी करना भी गलत नहीं होगा। परन्तु ऐसी पूंजी कर द्वारा खड़ी नहीं करना चाहिये क्योंकि ये काम भावी प्रजाके लिए भी लाभदायक सिद्ध होते हैं और इस लाभके लिए यदि भावी

प्रजाको न्याजके रूपमे सरकारकी सहायता करनी पडे तो उसमें न्याय भी है। एसे कारखाने व्यापारकी दृष्टिसे लाभदायक न हो तो भी उनके लिए ऋण लेना वाछनीय माना जाता है। स्पष्ट है कि एसे कारखाने निजी व्यक्ति अपने ही बल-बूते पर नही खोल सकते। इसी कारणसे सरकारको एस समय आगे बढकर इस प्रकारके काम हाथमे लेने चाहिये। आजके युगमें एसे काम अधिकतर स्थानीय स्वराज्यकी सस्थाओके हाथमे होते है। म्युनिसिपल्टी जसी सस्थाओने राष्ट्रीय ऋण-पद्धतिके अनुसार इस ऋण पद्धतिको स्वीकार कर लिया यह उचित ही है। शहरका स्वास्थ्य सुधारनेके लिए ड्रेनेज बनानेकी जरूरत हो या पानीका सग्रह करनेके लिए रिज़र्वायर बनानेकी जरूरत हो उस समय ऋण निकालनेकी जो पद्धति प्रचलित है वह ठीक है। इसी प्रकार देशके समुद्र-तट पर बन्दरगाहोका विकास तथा एसे अन्य लोकहितके कार्य ऋणकी सहायतासे ही किये जा सकते है। खेती-बाडीके लिए नहरें यातायातके लिए खाडिया रेलें सडकें वगरा कार्योंके लिए भी लिया जाने वाला ऋण उचित माना जायगा। सार यह कि जो काय निजी व्यक्ति न कर सके तथा जिन्हे अत्यन्त लोकोपयोगी कार्य माना जा सके एसे सारे कार्य राष्ट्रीय ऋण-पद्धति पर अवलबित रहते है। अत इस प्रकारके कार्योंके लिए भावी प्रजा पर लादा जानेवाला ऋणका बोझ अनुचित नही माना जायगा क्योंकि उनका सारा लाभ उस प्रजाको मिलेगा। इसके विपरीत एसे महान काय वर्तमान प्रजासे पैसे लेकर किये जाय तो वह बडा अन्याय माना जायगा। क्योंकि एसा करनेसे भावी प्रजाके लाभके खातिर वर्तमान प्रजाके सिर पर बिना कारण बोझ पडता है।

१५

ऋणके प्रकार

१ सरकार जो ऋण निकालती है वह मुख्यतः तीन प्रकारका होता है (१) स्थायी (२) नियतकालिक (३) अस्थायी।

स्थायी ऋणका सरकार ब्याज दिया करती है। परन्तु मूल रकम वापस नहीं लौटाती है। ऋण देनेवालेको हमेशा अपनी रकमका ब्याज मिला करता है।

नियतकालिक ऋणमें पांच वर्ष बाद या अमुक वर्ष बाद मूल रकम लौटानेकी अवधि नियत कर दी जाती है। जब यह अवधि पूरी हो जाती है तब इस ऋणकी मूल रकम वापिस मिल जाती है और यदि रकमको ऋणके रूपमें चालू रखना हो तो दूसरे ऋणमें यह फिरसे रखी जा सकती है।

अस्थायी ऋण कुछ समयके लिए होता है और थोड़ी अवधिके बाद चुका दिया जाता है। जब बीच वर्षमें आय अमुक मासमें होनेवाली हो और खर्च उससे पहले करना हो अथवा अचानक कोई नया काम खड़ा हो जाय तब सरकारको ऐसा ऋण लेना पड़ता है।

२ स्थायी और नियतकालिक ऋणोंके दो विभाग किये जाते हैं (१) उत्पादक और (२) अनुत्पादक।

उत्पादक ऋणकी रकम नहरों, रेलों, कारखानोंमें खर्च की जाती है जिनसे बादमें हमेशा आय होती रहती है। ऐसा ऋण सरकारको भारी नहीं पड़ता क्योंकि उसमें से उसे ब्याज मिलता रहता है और कभी कभी मुनाफा भी होता है।

अनुत्पादक ऋण वह है जिससे सरकारको कोई आय नहीं होती परन्तु ब्याज भरना पड़ता है। इस ऋणसे सरकारको कोई लाभ नहीं मिलता अथवा लम्बी अवधिके बाद मिलता है। यह ऋण शिक्षा, युद्ध आदि पर खर्च किया जाता है। राष्ट्र और व्यक्ति दोनोंके ही ऋणमें ये दो विभाग रहते हैं।

३ जिस प्रकार व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे धन उधार लेता है उसी प्रकार राष्ट्र दूसरे राष्ट्रोंसे या अपनी प्रजासे धन उधार लेता है। भारत पर ऐसा देशविदेशका राष्ट्रीय ऋण मार्च १९२४ अन्तमें इस प्रकार था

रु० ४३९१ करोडका देशके भीतरका ऋण

इसमें रु० २७६७ करोडके लोन।

रु० १३२९ करोडकी खजानेकी हुंडिया।

रु० २७७ करोडका अस्थायी ऋण।

रु० १८ करोडके पके हुए लोन।

रु० १५२१ करोडका विदेशी ऋण

इसमें रु० ५०३ करोड अमरीकाके।

रु ९५ करोड अमरीकाके बैंकके।

रु० १२३ करोड रूसके।

रु० १७८ करोड इंग्लैण्डके।

रु० १९८ करोड विश्वबैंकके।

रु० १२९ करोड पश्चिम जर्मनीके।

रु० २९५ करोड अन्य देशोंके।

कुल ऋण रु० ५९१२ करोड

मानव अर्थशास्त्र

पाचवा भाग

व्यय

मनुष्य-जातिके जय-व्यवहारमें सम्पत्तिके उत्पादनकी अपेक्षा उसके खचका महत्त्व कम नही है। परन्तु इस ओर समाजशास्त्रियोंने जितना चाहिये उतना ध्यान अभी तक नहीं दिया है। अर्थके सदव्ययका सांगोपांग शास्त्र निर्माण होना अभी बाकी है। इसका एक कारण तो यह है कि उत्पादन अधिकतर सामूहिक या सामाजिक स्वरूपका होता है जब कि उसके व्ययमें व्यक्तिकी इच्छाएं रुचि-अरुचि और मनकी तरंगोंका बहुत बडा हाथ रहता है। आज अधिकतर व्यय परिवार तक ही सीमित रहता है। इसीलिए गृह विज्ञानमें व्ययका विवेचन आता है। किन्तु वह पूर्ण नही होता। इसके सिवा व्ययमें कुशलताकी अपेक्षा विचार शिक्षणकी अधिक आशा रखी जाती है। इसलिए इसका कुछ भाग तो शिक्षा और नीतिके क्षेत्रमें जाता है। इसलिए इस पुस्तकमें व्ययके सम्बन्धमें केवल दिशा सूचन करके ही रुक जाना हमने उचित समझा है।

किसी भी राष्ट्रका व्ययका विचार करनेसे पहले इस बातका भी विचार करना चाहिये कि उसकी सम्पत्ति और आय कितनी है और उसे खर्च करनेवाली जनसंख्या कितनी है। इसलिए ये दो प्रकरण हमने इस भागमें ही रखे हैं।

राष्ट्रीय संपत्ति और राष्ट्रीय आय

१ किसी मनुष्यकी आर्थिक स्थितिके बारेमें बातचीत या चर्चा होती है तब हममें यह कहनेकी प्रथा है कि अमुक सेठ करोड़पति है, अमुक व्यापारी लखपति है, अमुक किसानके पास पचास या सौ बीघा जमीन है या अमुक गोपालकके पास सौ गायें अथवा दो सौ गायोंका खेड़ है। इंग्लैंडमें मनुष्यकी स्थितिके बारेमें बात करते समय अधिकतर उसकी वार्षिक आय बताई जाती है कि अमुक व्यक्तिकी वार्षिक आय पांच हजार पौण्ड है या दस हजार पौण्ड है। इस तरह सम्पत्तिको मापनेकी दो पद्धतियां प्रचलित हैं: (१) सम्पत्तिकी संपूर्ण मात्राके आधार और (२) वार्षिक आयके आधार पर। कुल मात्रा परसे सम्पत्तिका हिसाब लगानेके बजाय आयके आधार पर यह हिसाब लगाना वस्तुस्थिति बतानेकी अधिक अच्छी रीति है, क्योंकि व्यक्ति या राष्ट्रकी आर्थिक सुख-सुविधाका आधार इस बात पर रहता है कि उसे उपभोग या खर्च करनेके लिए कितनी चीजें और कितनी सेवाएं मिल सकती हैं। भले किसी मनुष्यके पास एक लाख रुपयेकी जायदाद हो या सौ पचास बीघा जमीन हो, परन्तु उस जायदाद या जमीनसे उसे जितनी आय या जितनी पैदावार होगी वही उसे उपभोगके लिए मिल सकती है। जायदाद या जमीन तो उपयोगमें नहीं लाई जा सकती।

२ यह बात ठीक होते हुए भी उसके साथ यह बात भी ध्यानमें रखना जरूरी है कि महीने या वर्षमें होनेवाली अमुक आयका या उतने समयमें उपभोग या खर्चके लिए मिलनेवाली चीजों और सेवाओंका आधार इसी पर रहता है कि समाजमें या राष्ट्रमें सम्पत्तिकी कुल मात्रा कितनी है। अतः सम्पत्तिकी मात्राका विचार भी आवश्यक हो जाता है। किसी राष्ट्र या समाजकी संपत्तिकी मात्राका विचार करते समय ये सब बातें ध्यानमें रखनी चाहिये कि उस प्रदेशकी जमीन, खनिज पदार्थ आदि साधन-सम्पत्ति, वहांकी आबोहवा, उस प्रदेशकी प्राकृतिक सुन्दरता, नदियोंमें जहाजों या नावोंके चलनेकी सुविधा, उसके बन्दरगाहोंमें उपलब्ध सुविधाएं, उसका भौगोलिक महत्व और उस प्रदेशके ऐतिहासिक अवशेष और स्मारक जो यात्रियोंके लिए आकर्षक हों। संक्षेपमें, ऐसी सारी चीजोंकी गिनती करना चाहिये

जिन पर उस प्रदेशके लोग स्वामित्व अधिकार रख सकते हो और जिनका वे उपभोग कर सकते हो। इसके अलावा ये सब चीजें सम्पत्ति बनकर मनुष्यके उपयोगमें तभी आ सकती है जब वहा बसनेवाले लोगोको इन चीजोका उपयोग करना आता हो। किसी प्रदेशमें कुदरती सम्पत्ति बहुत होने पर भी यदि वहा रहनेवाले लोगोको उस सम्पत्तिका उपयोग करना न आता हो तो वह सम्पत्ति बेकार पडी रहती है।

द्रव्यके रूपमें सपत्तिका माप

३ राष्ट्रकी सपत्तिके इस प्रकारके समूह या सग्रहमें से उपयोगी चीजोका जो प्रवाह बहता रहता है वही राष्ट्रीय आय है। राष्ट्रकी सम्पत्तिके सारे अग उपयोगी वस्तुओके वार्षिक प्रवाहमें वृद्धि करते है। इनमें से जो जो अग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें समाजकी उत्पादन शक्ति बढाते है और उपयोगी चीजो या सेवाओकी मात्राको बढाते है वे सब राष्ट्रीय आयमें वृद्धि करते है। राष्ट्रीय सम्पत्ति और राष्ट्रीय आयको द्रव्यके रूपमें ही मापनकी प्रथा पड गई है क्योंकि हमारे पास सम्पत्ति और आयको मापनका द्रव्यके सिवा और कोई साधन नही है। परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि राष्ट्रीय सम्पत्ति और राष्ट्रीय आयमें बहुतसी चीज ऐसी होती है जो द्रव्यके गजसे नही मापी जा सकती। यह कठिनाई राष्ट्रीय सम्पत्तिका हिसाब लगानकी अपेक्षा राष्ट्रीय आयका हिसाब लगानमें ज्यादा बाधक होती है। उदाहरणके लिए राष्ट्रीय आयका हिसाब लगाते समय घर या फरनीचर यदि किसीको किरायसे दिया गया हो तो उसका भाडा आयमें गिना जाता है परतु उसका मालिक स्वय उसे काममें ले या भाडा लिये बिना दूसरे किसीको उपयोग करनके लिए दे दे तो उससे मालिकको कोई आय नही होती। इसलिए ऐसी चीज राष्ट्रीय आयमें नही गिनी जाती। अलबत्ता इन चीजोसे जो लाभ मिलता है या सुख-सुविधा मिलती है उससे समाजको प्राप्त होनवाले इस प्रकारके लाभ या सुविधाकी मात्रा तो बढ़ती ही है। यह कठिनाई दूर करनेके लिए ऐसा किया जाता है कि मालिक स्वय मकानका उपयोग करता हो तो भी उस किरायसे देने पर जो आय हो सकती है उसका अदाज लगाकर उसके अनुसार आयकी गिनती कर ली जाती है। परतु मनुष्यके पास कपडे-लत्ते हो बरतन भाडे हो गृहस्थीका दूसरा सामान हो पुस्तकालय हो घोडागाडी या मोटर हो गहना-गाठा हो और उन सबका वह स्वय ही उपयोग करता हो तो उसकी कोई आय नही पकडी जाती। हमारे जस देशमें तो आयका हिसाब लगानमें इससे भी ज्यादा कठिनाई होती है।

गतमें घरके हो आदमी काम करते हो तो उन्हें पैसेके रूपमें कोई मजदूरी नहीं चुकाई जाती। इसलिए उनके श्रमकी आयमें गिनती नहीं की जाती। इसी तरह खेतमें जो फसल पके उसे किसान स्वयं अपने उपयोगमें ले ले या घरमें जो गाय भैंस हो उनके दूध घी या छाछका स्वयं ही उपयोग करे तो उसे आयमें नहीं गिना जाता। जो बाजारमें बेचा जाय उसीकी गिनती आयमें होती है।

सेवाओंकी आय

४ सेवाओंकी आयका हिसाब लगानेमें भी कुछ अटपटे प्रश्न खड़े होते हैं। हमारे देशके कुछ अर्थशास्त्री इस मतके हैं कि ऐसी आय हिसाबमें न ली जाय। क्योंकि उन्हें इसमें सुसंगतता नहीं मालूम होती कि कुछ सेवाओंकी आय तो हिसाबमें पकड़ी जाय और कुछकी न पकड़ी जाय। घरका काम करनेवाले नौकरोंको जो वेतन मिलता है वह उनकी आय है और इसलिए वह हिसाबमें ली जा सकती है। परन्तु परिवारके लोग घरका काम करें, तो उन्हें कोई वेतन नहीं दिया जाता। इसलिए उनकी कोई आय नहीं गिनी जाती। परिवारमें माता और पत्नी जो सेवा करती हैं और उससे परिवारको जो सुख मिलता है उसकी कीमत पैसेमें आंकी ही नहीं जा सकती। राष्ट्रीय या सामाजिक आयमें उसकी कोई गिनती नहीं होती परन्तु इसी तरहका यद्यपि इससे बहुत अधिक घटिया काम आया नौकरानी या शिक्षिका करती है तो उसकी आय हिसाबमें पकड़ी जाती है। इस प्रकारकी हिसाबकी पद्धतिमें एक अजीब बात यह हो जाती है कि कोई पुरुष उसका घर सम्हालनेवाली नौकरानीसे विवाह कर ले तो राष्ट्रीय आयमें कमी हो जाती है। युद्धकालमें गृहिणियां जब अपने घरका काम नौकरोंको सौंपकर युद्ध प्रयत्नमें सहायता करनेके लिए तरह तरहके काम करती हैं तब घरका काम करनेवाले नौकरोंका वेतन और इन गृहिणियोंका वेतन दोनोंके मिलाकर राष्ट्रीय आयमें दुगुना वृद्धि गिनी जाती है।

५ अब सरकारी नौकरोंकी सेवाओंका विचार करें। उनकी सेवाएं राष्ट्रके लिए उपयोगी माना जाता है। परन्तु उन्हें जो वेतन मिलता है वह राष्ट्रीय आयमें उपयोगी माना जाता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि उन्हें जो वेतन मिलता है उसे राष्ट्रीय आयमें गिना जाय या नहीं? कुछ अर्थशास्त्री उसे राष्ट्रीय आयमें गिननेका विरोध करते हैं। वे कहते हैं कि इसका मतलब तो यह हुआ कि सरकारी अमलदारोंकी संख्या बढ़ाकर राष्ट्रीय आयमें वृद्धि होती है। मान लीजिए किसी प्रदेशमें चोरी या लूटखसोट ज्यादा होने

जिन पर उस प्रदेशके लोग स्वामित्व-अधिकार रख सकते हों और जिनका वे उपभोग कर सकते हों। इसके अलावा ये सब चीजें सम्पत्ति बनकर मनुष्यके उपयोगमें तभी आ सकती हैं जब वहां बसनेवाले लोगोंको इन चीजोंका उपयोग करना आता हो। किसी प्रदेशमें कुदरती सम्पत्ति बहुत होने पर भी यदि वहां रहनेवाले लोगोंको उस सम्पत्तिका उपयोग करना न आता हो तो वह सम्पत्ति बेकार पड़ी रहती है।

द्रव्यके रूपमें संपत्तिका माप

३ राष्ट्रकी संपत्तिके इस प्रकारके समूह या संग्रहमें से उपयोगी चीजोंका जो प्रवाह बहता रहता है वही राष्ट्रीय आय है। राष्ट्रकी सम्पत्तिके सारे अंग उपयोगी वस्तुओंके वार्षिक प्रवाहमें वृद्धि करते हैं। इनमें से जो जो अंग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें समाजकी उत्पादन शक्ति बढ़ाते हैं और उपयोगी चीजों या सेवाओंकी मात्राको बढ़ाते हैं वे सब राष्ट्रीय आयमें वृद्धि करते हैं। राष्ट्रीय सम्पत्ति और राष्ट्रीय आयको द्रव्यके रूपमें ही मापनेकी प्रथा पड़ गई है क्योंकि हमारे पास सम्पत्ति और आयको मापनेका द्रव्यके सिवा और कोई साधन नहीं है। परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि राष्ट्रीय सम्पत्ति और राष्ट्रीय आयमें बहुतसी चीजें ऐसी होती हैं जो द्रव्यके गजसे नहीं मापी जा सकती। यह कठिनाई राष्ट्रीय सम्पत्तिका हिसाब लगानेकी अपेक्षा राष्ट्रीय आयका हिसाब लगानेमें ज्यादा बाधक होती है। उदाहरणके लिए राष्ट्रीय आयका हिसाब लगाते समय घर या फरनीचर यदि किसीको किरायेसे दिया गया हो तो उसका भाड़ा आयमें गिना जाता है, परन्तु उसका मालिक स्वयं उसे काममें ले या भाड़ा लिये बिना दूसरे किसीको उपयोग करनेके लिए दे दे तो उससे मालिकको कोई आय नहीं होती। इसलिए ऐसी चीज राष्ट्रीय आयमें नहीं गिनी जाती। अलबत्ता इन चीजोंसे जो लाभ मिलता है या सुख-सुविधा मिलती है उससे समाजको प्राप्त होनेवाले इस प्रकारके लाभ या सुविधाकी मात्रा तो बढ़ती ही है। यह कठिनाई दूर करनेके लिए ऐसा किया जाता है कि मालिक स्वयं मकानका उपयोग करता हो तो भी उसे किरायेसे देने पर जो आय हो सकती है उसका अंदाज लगाकर उसके अनुसार आयकी गिनती कर ली जाती है। परन्तु मनुष्यके पास कपड़े-लत्ते हों, बरतन-भांडे हों, गृहस्थीका दूसरा सामान हो, पुस्तकालय हो, घोड़ागाड़ी या मोटर हो, गहना-गांठा हो और उन सबका वह स्वयं ही उपयोग करता हो तो उसकी कोई आय नहीं पकड़ी जाती। हमारे जैसे देशमें तो आयका हिसाब लगानेमें इससे भी ज्यादा कठिनाई होती है।

जिनमें घरके ही आदमी काम करते हों तो उनके श्रमके रूपमें कोई मजदूरी नहीं चुकाई जाती। इसलिए उनके श्रमकी आयमें गिनती नहीं की जाती। इसी तरह खेतमें जो फसल पके उसे किसान स्वयं अपने उपयोगमें ले ले या घरमें जो गाय भैंस हों उनके दूध घी या छाछका स्वयं ही उपयोग करे तो उसे आयमें नहीं गिना जाता। जो बाजारमें बेचा जाय उसीकी गिनती आयमें होती है।

लगती है और वहा पुलिस तथा फौजदारी अदालतोकी सख्या बढानी पडती है। सच पूछा जाय तो जितना सरकारी खर्च बढता है उतना ही कर देने वालो पर बोझ बढता है। इसके बदले यदि हम पुलिस और मजिस्ट्रेटोके वेतनोको राष्ट्रीय आयमें गिने तो लोगो पर करका बोझ बढ जाने पर भी राष्ट्रीय आय बढी हुई मालूम होगी। इतना होने पर भी जिस ढगसे आजकल राष्ट्रीय आयका हिसाब लगाया जाता है उसमे इस तरहके वेतन आयके रूपमें ही माने जाते है। हमारे जसे देशमे भी जहा सरकारी खर्च बहुत भारी है इसी तरह हिसाब किया जाता है। इसके भीतर रहा अन्याय तो स्पष्ट ही है।

६ अब वकीलो और डाक्टरोकी सेवाओका उदाहरण लीजिये। लोगोमें झगडे और मुकदमेबाजी बढने से वकीलोकी आय बढती है। लोगोमें बीमारी और महामारी फैले तो डाक्टरोकी आय बढती है। इन आयोको हिसाबमें पकडनेसे राष्ट्रीय आय बढी हुई दिखाई देगी पर झगडे-टटोवाले समाज और रोगी समाजमें लोगोकी उत्पादन शक्ति तो घटी हुई ही होती है और लोगोकी सुख सुविधाओमें भी कमी हो जाती है। इसी तरह शराबके धधेसे, जुएके धधेसे और सट्टेके धधेसे होनेवाली आयके बारेमें समझना चाहिये।

७ ऊपरकी चर्चा इतना ही ध्यानमे रखनेके लिए है कि किसी समाजको सचमुच कितनी आर्थिक सुख-सुविधाए प्राप्त है इसका अदाज राष्ट्रीय आयका इस तरह हिसाब लगानेसे निश्चित या सच्चे रूपमें नही हो सकता। इससे तो समाजकी आर्थिक स्थितिका बहुत मोटा और धुधला-सा अदाज ही हो सकता है। अकसर द्रव्यके रूपमें गिनी जानेवाली राष्ट्रीय सम्पत्तिका और राष्ट्रीय आयका समाजकी वास्तविक आर्थिक सुख-सुविधाओके साथ सीधा सम्बन्ध नही होता। फिर भी चूकि हिसाब लगानेका और कोई उपाय नही है इसलिए द्रव्यके रूपमें हम हिसाब लगाते है।

आयका हिसाब लगानेकी रीतियां

८ अब हम यह देखेंगे कि यह हिसाब किस तरह लगाया जाता है। इसकी दो रीतिया है एक रीति तो यह है कि समाजके प्रत्येक व्यक्तिकी पसेके रूपमें होनेवाली आयको जोड लगाकर उस परसे राष्ट्रीय आय निश्चित की जाती है। इनकम टैक्सके आकडो परसे आयका हिसाब लगाया जाता है और जिनकी आय इनकम टैक्सके लायक न हो या इनकम टैक्समें न आती हो उनकी आयका अन्दाज निकालकर उसमें जोड दिया जाता है।

९ दूसरी रीति यह है कि प्रतिवर्ष जितनी चीजें और सेवाएं समाजके उपभोगके लिए मिलती हैं उनकी सूची बनाकर और बाजार भावोंमें उनकी कीमत लगाकर उसे जोड़ लिया जाता है। देशमें होनेवाले हर प्रकारके उत्पादनका तफसीलवार और निश्चित नाप होता हो तो ही इस रीतिमें सफलता मिल सकती है।

१० इसलिए दोनों रीतियोंका आश्रय लेना ठीक है। एक रीतिसे निकाले हुए आंकड़ोंकी दूसरी रीतिसे निकाले हुए आंकड़ोंसे तुलना करके दोनों आंकड़ोंकी पक्की जांच भी की जा सकती है। इस प्रकारके हिसाबकी निश्चितताका आधार हिसाब लगानेके लिए उपलब्ध साधनों और आंकड़ों पर होता है। इस मामलेमें हमारे देशमें बड़ी कठिनाइयां हैं। जनसंख्याका बड़ा भाग किसानोंका है। उनकी आय इनकम टैक्सके क्षेत्रमें नहीं आती। आबादीके दूसरे वर्गोंमें भी इनकम टैक्स देनेवाले बहुत थोड़े लोग होते हैं। इसके आंकड़े नहीं मिल सकते कि श्रम करनेवाले लोगोंको कुल कितनी मजदूरी मिलती है। इसी तरह सब प्रकारके उत्पादनका भी तफसीलवार या निश्चित नाप नहीं होता। सरकारी विभागों और स्थानीय संस्थाओंमें कितने मनुष्य काम करते हैं और उनके वेतनकी रकम कितनी होती है इसके भी इकट्ठे आंकड़े नहीं मिलते। घरका काम करनेवाले गैरसरकारी संस्थाओंका कोई निश्चित आंकड़ा प्राप्त नहीं होता। इस तरहके सारे आधारभूत तथ्योंके अभावमें हमारे देशमें आयका कुल आंकड़ा निकालना भारी कठिन और जोखमका काम है।

डॉ० रावका हिसाब

११ फिर भी हमारे देशमें कई एक अर्थशास्त्रियोंने यह साहस किया है। उनमें से अन्तिम और अधिक सूक्ष्म प्रयास डॉ० रावका है। उन्होंने राष्ट्रीय आयकी नीचे लिखे अनुसार व्याख्या करके उसका हिसाब लगाया है :

१२ जिन चीजों और सेवाओंका प्रवाह वर्ष भर चलता रहा हो और जो उस वर्षमें विनिमयके लिए उपलब्ध हों, उनमें से आयात हुई चीजें और सेवाएं अलग निकालकर जो बचें उनकी बाजार भावसे कीमत निकाली जाय। और उसमें से नीचे लिखी चीजें अलग कर दी जायं :

(१) वर्षमें पुराने सामानमें से जो कुछ खर्च किया जाय और उसके कारण उस सामानमें जो कमी हो उसकी कीमत।

(२) जिन चीजों और सेवाओंका प्रवाह उत्पादन-कार्यमें लगा हो उनकी कीमत।

(३) पूंजीके रूपमें काम आनेवाली साधन-सम्पत्तिकी रक्षाके लिए जो चीजें और सेवाएं खर्च हों उनकी कीमत।

(४) राज्यको परोक्ष करोंके जरिये होनेवाली आय।

(५) आयात निर्यातकी व्यापार-तुलामें होनेवाली बचत।

(६) देशके विदेशी ऋणमें होनेवाली वृद्धि।

(७) किस्तोंसे वसूल होनेवाले देशके — सरकारके और प्रजाके — ऋणमें होनेवाली कमी।

१३ इस सिद्धान्तके आधार पर डा० रावने सन् १९३१–३२ के वर्षका हिसाब लगाकर ब्रिटिश भारतकी राष्ट्रीय आयका अंदाज लगभग सत्रह अरब रुपया निकाला है। उसकी तफसील इस तरह है

आयका मूल स्रोत	कीमत (करोड़ रुपयोंमें)
(१) खेतीका उत्पादन	५९२.७
(२) ढोरोंका उत्पादन	२६८.३
(३) मच्छीमारी और शिकार	१२.०
(४) जंगलका उत्पादन	९.२
(५) खानोंका उत्पादन	१८.०
(६) इनकम टैक्सकी अनुमानित आय	२१६.१
(७) उद्योगोंमें लगे हुए मजदूरोंकी आय	२१०.०
(८) सरकारी विभागों रेल्वे डाक और तारके नौकरोंकी आय	५९.०
(९) व्यापारमें लगे हुए लोगोंकी आय	१२२.३
(१०) वकील डाक्टर शिक्षक आदिकी आय	४१.६
(११) रेल्वे डाक और तारके अलावा यातायातके अन्य साधनोंमें लगे हुए लोगोंकी आय	२८.९
(१२) घरका काम करनेवाले नौकरोंकी आय	३२.५
(१३) विविध	७८.०
कुल	१६८९.०

नं० ७ से १३ तककी आय ऐसी है जिस पर इनकम टैक्स नहीं लगाया गया है। इस हिसाबसे ब्रिटिश भारतमें सन १९३१–३२ के वर्षके लिए प्रतिमनुष्य औसत आय ६२ रुपये आता है।

इससे पहले लगाये गये हिसाब

१४ हमारे देशमें राष्ट्रीय आयका हिसाब सबसे पहले दादाभाई नौरोजीने सन १८७६ में लगाया था। उन्होंने अपने हिसाबके लिए १८६८ ६९ का वर्ष लिया था। तबसे आज तक अनेक निष्णातों द्वारा यह हिसाब लगाया गया है। नीचे कोष्ठकमें इनकी तफसील दी गई है

हिसाब लगाने वालेका नाम	किस वर्षमें हिसाब लगाया	हिसाबका वर्ष	प्रतिमनुष्य औसत आय (रुपयोंमें)
दादाभाई नौरोजी	१८७६	१८६८	२०
वरिंग एण्ड बारबर	१८८२	१८८१	२७
लॉर्ड कर्जन	१९०१	१८९७–९८	३०
विलियम डिगबी	१९०२	१८९९	१८
एफ० जी० एटकिंसन	१९०२	१८७५	२७ ३
	१९०२	१८९५	५ २
सर बी० एन० शर्मा	१९२१	१९११	५०
फिण्ड्ले शिराज	१९२४	१९११	४९
	१९२४	१९२१	१०७
	१९२४	१९२२	११६
शाह और खंबाता	१९२४	१९२१	७०
वाडिया और जोशी	१९२५	१९१३–१४	४४ ३
फिण्ड्ले शिराज	१९३२	१९३१	६३
डॉ० राव	[illegible]	१९२५–२९	७६
,,	१९४०	१९३१–३२	६२

ऊपरके हिसाबमें शाह और खंबाताके आंकड़े सारे हिन्दुस्तानके लिए हैं और दूसरे सब आंकड़े सिर्फ ब्रिटिश भारतके लिए हैं।

१५ परन्तु हम इन आंकड़ोंकी एक-दूसरेके साथ तुलना नहीं कर सकते क्योंकि इतने लम्बे अर्सेमें चीजोंके भावोंमें बहुत उथल-पुथल हो गई है। साथ ही प्रत्येक लेखकका हिसाब लगानेकी रीति अलग है। फिर भी डॉ० रावने सन् १९२५ से २९ तकके भावोंके आधार पर कुछ पुराने आंकड़ोंमें परिवर्तन करके उन्हें एक बनानेका प्रयत्न किया है जिससे उन आंकड़ोंकी आपसमें तुलना की जा सके। उसका परिणाम इस तरह है

लेखक	औसत आयका आकडा	हिसाबका वर्ष	१९२५ से २९ के भावोंके अनुसार फर्क करने पर आया हुआ आकडा
दादाभाई नौरोजी	२००	१८६८	४४२
एटकिंसन	३५२	१८९५	५५०
शाह और खभाता	८८०	१९२१-२२	७८०
डा० राव	७६०	१९२५-२९	७६

परन्तु डा० राव स्वयं ही यह कहते हैं कि इस तरहका परिवर्तन कर देने पर भी इन आकडोंको सच्चे मानकर एक दूसरेके साथ इनकी तुलना करना ठीक नहीं है क्योंकि अंदाज निकालनेकी रीतिमें बडा फर्क रहता ही है। उसका असर अंदाजने आकडा पर पडे बिना नहीं रहता।

१६ जैसे किसी एक देशके पुराने आकडोंके साथ नये आकडोंकी तुलना करना दोषपूर्ण है वैसे ही अलग अलग देशोंकी आयके आकडोंकी भी एक दूसरेके साथ तुलना करना दोषपूर्ण है। क्योंकि अलग अलग देशोंमें लोगोंकी जरूरतकी चीजोंके भावोंका स्तर अलग अलग होता है अर्थ रचना अलग अलग होती है और हिसाब लगानेकी रीति भी अलग अलग होती है। फिर भी इन आकडोंको एक साथ देखनेसे अलग अलग देशोंके रहन-सहनके स्तरका मोटा अंदाज तो लग ही सकता है। यह जाननेके लिए नीचेके आकडे दिये जाते हैं

देश	प्रति मनुष्य वार्षिक आय (रुपयोंमें) (१९५५)	(१९५९)
अमेरिका	१०२३४	११११८
केनेडा	६९८१५	७३१९
ग्रेट ब्रिटेन	४०४३	४८६३
फ्रान्स	३९५३	४२०८
जापान	१०६	१४२६
भारत	२६२	३०२

१७ भावोंका फर्क और हिसाब लगानेकी रीतियोंके भेदको ध्यानमें रखें तो भी ऊपरके आकडे देखनेसे यह मालूम होता है कि हमारे देश और दूसरे देशोंकी आर्थिक स्थितिके बीच जमीन-आसमानका अंतर है। थोडेसे धनवान देशोंको छोड दें तो भी दूसरे देशोंसे हम बहुत गरीब हैं।

२

जनसंख्या

१ प्रत्येक देशको अपना राष्ट्रीय आयका हिसाब लगानेके साथ ही अपनी जनसंख्याका हिसाब भी ध्यानमें रखना ही चाहिये और इस बातका हिसाब लगाना चाहिये कि इसका वार्षिक उत्पादन इसमें बसनेवाले लोगोंके भरण पोषणके लिए पर्याप्त है या नहीं। यह बात बिलकुल सच है कि अधिकतर लोगोंकी गरीबी संपत्तिके असमान बंटवारेके कारण पैदा होती है। परन्तु मान लीजिये कि इस संपत्तिका न्यायपूर्ण और उचित बंटवारा करनेमें सफल हो जायं तो भी यह प्रश्न तो खड़ा ही रहता है कि इसकी कुल आय इसमें बसनेवाले सारे लोगोंके लिए पर्याप्त है या नहीं।

माल्थसकी चेतावनी

२ अठारहवीं सदीके उत्तरार्धमें माल्थस नामके एक व्यक्तिने ऐसा हिसाब लगाया था कि बीचमें और कोई बाधा न आये तो दुनियाकी जनसंख्या पच्चीस वर्षमें दुगुनी हो सकती है। इसके सिवा जितनी मात्रामें जनसंख्या बढ़ती है उतनी मात्रामें खाद्य पदार्थोंकी पैदावार नहीं बढ़ती। जहां जनसंख्या रेखा-गणितके नियमसे अर्थात् दो दूने चार, चार दूने आठ, आठ दूने सोलहके क्रमसे बढ़ती है वहां खाद्य पदार्थोंकी पैदावार अंकगणितके नियमसे अर्थात् दो और दो चार, चार और दो छह, छह और दो आठ तथा आठ और दो दसके क्रमसे बढ़ती है।

३ ऐसा अन्दाज लगाया गया है कि सामान्यतः स्वस्थ समाजमें अधिकसे अधिक जन्मसंख्या एक हजार पर ४५ रहती है और कमसे कम मृत्युसंख्या एक हजार पर १० रहती है। इस हिसाबसे चक्रवृद्धि ब्याजकी पद्धतिसे गिनती की जाय तो २५ वर्षमें जनसंख्या जरूर दुगुनी हो सकती है। परन्तु आज तक दुनियामें देखा गया है कि किसी भी जातिके प्राणियोंकी संख्या अधिकसे अधिक दरके अनुसार बढ़ ही नहीं सकती। इसी विचार पर डार्विनका अपना जीवन-संग्रामका सिद्धान्त निकाला है। उसने कहा है कि कोई भी प्राणी अपनी संख्यामें अपनी पूरी शक्तिके अनुसार वृद्धि कर सके तो दूसरे कोई प्राणियोंके लिए पृथ्वी पर रहनेकी जगह ही न बचे और उन्हें खानेको पूरी खुराक भी न मिले। इसलिए दुनियाके प्राणियोंमें आपसमें और एक प्राणीका दूसरे प्राणीके साथ जीवन-संग्राम होता रहता है और उसमें जो अधिक बलवान होता है वही जी सकता है। इसमें बलवान किसे

कहा जाय यह प्रश्न सोचने लायक है। जिनकी संहार शक्ति अधिक हो वे बलवान या जिनकी सहयोग शक्ति अधिक हो वे बलवान? अधिक संहार शक्तिवाली जातियोंका परिचय हमें दो महायुद्धोंमें हो गया है। अब तो शांति और प्रगतिके लिए सहयोग शक्तिका विकास किये बिना काम नहीं चल सकता। पर हम दूसरे प्रश्न पर चले गये।

४ माल्थसका हिसाब अक्षरशः सच्चा नहीं निकला। दुनियाके सामने उसका मत प्रस्तुत होनेको आज लगभग पौने दो सौ वर्ष हो गये हैं। पच्चीस वर्षमें तो नहीं परन्तु संभव है इन पौने दो सौ वर्षोंमें दुनियाकी जनसंख्या दुगुनी हुई हो। परंतु उसके साथ मनुष्यने खाद्य पदार्थोंकी पैदावार भी काफी बढ़ा ली है। नये नये प्रदेश उसने ढूंढ़े हैं और आहारके भी बहुतसे नये साधन मनुष्यको मिले हैं। परन्तु माल्थसकी बातको हम अक्षरशः न करें और उसे चेतावनीके रूपमें मानें तो उसकी बातमें बहुत सार है और यह विचारने लायक है ऐसा हमें मानना ही पड़ेगा।

वृद्धि पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अंकुश

५ माल्थसने तो यह चेतावनी जगतके सभ्य समाजोंको दी है परन्तु बिलकुल प्राथमिक और जंगली जीवन बितानेवाले समाजोंमें भी आहारके अनुपातमें जनसंख्याके बढ़नेका प्रश्न पैदा होता है और उन्हें उसे रोकनेके उपाय करने पड़ते हैं। रूसी लेखक क्रोपाटकिनने अपनी 'सहयोग वृत्ति' नामक पुस्तकमें उत्तरी ध्रुवमें बसनेवाली एस्कुट जातिके कुछ रीति रिवाजोंका वर्णन किया है। माता पिता बच्चोंसे बहुत प्यार करते हैं और उन्हें लाड़ लड़ाते हैं। इस बातका उल्लेख करके वह आगे कहता है: "ऐसे प्रेमी माता पिताको जब हम बच्चोंकी हत्या करते देखते हैं तब हमें यह स्वीकार करना ही चाहिये कि यह प्रथा भले उसका बाहरी रूप कैसा भी हो अनिवार्य परिस्थितियोंके दबावके कारण ही चली होगी। अपने समूहकी हस्ती कायम रखनेका कर्तव्य पूरा करनेके लिए और पाल पोस कर बड़े किये हुए अपने बालकोंको जीवित रखनेके लिए वे बालहत्याकी प्रथाको आसरा लेते होंगे। वे अमर्यादित रूपमें प्रजोत्पत्ति नहीं करते और जन्मकी संख्याको मर्यादामें रखनेके लिए अपने पर कितने ही अंकुश लगाते हैं और उनका सख्तीसे पालन करते हैं फिर भी जितने बच्चे पैदा होते हैं उन सबका वे पालन-पोषण नहीं कर सकते। यह भी पता चला है कि जब वे अपने निर्वाहके साधन बढ़ा पाते हैं तब उनमें एकदम बालहत्या कम हो जाती है। माता पिता यह क्रूर कृत्य बहुत ज्यादा मजबूर हो जाने पर ही करते हैं। जन्मके लिए उन्होंने अच्छे और

शकुनके दिन निश्चित कर रखे हैं। अच्छे दिन पैदा होनेवाले बच्चोंको वे जिलाते हैं और बुरे दिन पैदा होनेवालोंको मार देते हैं। फिर भी बच्चेको मार डालनेका क्रूर काम करते समय सबको वेदना तो छूटती ही है। इस लिए साथी हिंसा करके बच्चेकी जान लेनेके बजाय वे ऐसे बच्चेको जंगलमें छोड़ आना अधिक पसन्द करते हैं। इस तरह उन लोगोंमें बालहत्याकी प्रथा निर्दयताके कारण नहीं बल्कि सारी आबादीके लिए पूरा आहार न होनेके कारण लाचारीसे पड़ी है। श्री आर्किनने कहा है कि अन्य बहुतसी वनवासी जातियोंमें भी बालहत्याकी प्रथा ऐसे ही कारणोंसे प्रचलित है।

६ और इसी कारण बहुतसी वनवासी जातियोंमें आत्महत्या करनेकी प्रथा भी पायी जाती है। जब किसी बूढ़े आदमीको लगता है कि वह समूह पर भार बन गया है और हर रोज बच्चोंके मुँहका कौर छीनता है, साथ ही जब उसे ऐसा लगता है कि हर रोज समुद्रके पथरीले किनारे पर या घने जंगलमें उसे नौजवानोंके कंधे पर चढ़कर घूमना पड़ता है तब वह कहने लगता है, "मैं दूसरेके खानेमें हिस्सा बटाता हूँ। अब मेरे जानेका समय आ पहुँचा है।" फिर वह बूढ़ा मरनेको तैयार हो जाता है। वह अपने लिए कब्र खोद लेता है और अपने सगे-सम्बन्धियोंको इकट्ठा करके उनसे प्रेमके साथ बिदा लेता है। उसके पिताने भी ऐसा ही किया था और अब उसे भी ऐसा ही करना चाहिये। इस तरहकी आत्महत्याको ये वनवासी लोग अपने समूहके प्रति एक बड़ा भारी कर्तव्य समझते हैं। कुछ वनवासी जातियोंमें थोड़ासा खाना या रास्तेमें खानेका सामान बूढ़े आदमीके साथ बाँध कर उसे जंगलमें छोड़ आनेकी भी प्रथा है।'

७ कुछ वनवासी जातियोंमें ऐसी प्रथा होती है कि कोई नौजवान जब तक कमसे कम एक आदमीको मार कर उसका सिर न ले आये तब तक वह विवाहके लायक नहीं माना जाता। इस प्रथाकी जड़में यह खयाल तो है ही कि मनुष्यको गृहस्थाश्रमका भार उठानेके लिए तैयार होनेसे पहले अपने पराक्रमका प्रमाण देना चाहिये। इसके अलावा इसके पीछे यह खयाल भी हो सकता है कि विवाह करके मनुष्य जनसंख्यामें वृद्धि करने लगे उससे पहले उसमें कमी भी कर दे। यह सच है कि जिन वनवासी जातियोंमें विवाहकी योग्यता पानेके लिए किसीकी हत्या करनेकी प्रथा होती है उन जातियोंकी संख्या बढ़ नहीं पाती।

८ हमारे सभ्य कहे जानेवाले समाजोंमें जनसंख्याकी वृद्धि पर इस प्रकारके अंकुश काम करते हैं। एक अंकुश तो प्रत्यक्ष है। लड़ाइयाँ युद्धोंमें

होनेवाला संहार अकाल बाढ़ भूकंप भुखमरी आदि आकस्मिक संकटोंके कारण बहुत लोग समय समय पर मारे जाते हैं और जनसंख्याके बढ़नेमें रुकावट हो जाती है। दूसरा अंकुश अप्रत्यक्ष है। बड़ी उमरमें विवाह करना जिससे सन्तानोत्पत्तिकी अवधि कम रहे और बड़ी उमरमें बच्चे होते भी कम हैं इसलिए एक शारीरिक कारणका भी लाभ मिलता है संयम रखना और गर्भ निरोधके कृत्रिम उपाय काममें लेना — ये उपाय दूसरे प्रकारके अंकुशमें शामिल हैं। एक मान्यता ऐसी भी है कि मनुष्य जैसे जैसे अपने रहन-सहनका स्तर ऊंचा करता जाता है और मानसिक व्यवसायोंमें ज्यादा व्यस्त रहता है वैसे वैसे उसकी प्रजनन शक्ति घटती जाती है। ऐसा लगता है कि यह मान्यता इस साधारण निरीक्षणके आधार पर बनी होगी कि गरीब लोगों और मजदूर वर्गोंमें बच्चोंकी संख्या अधिक पाई जाती है और धनिकों तथा सुशिक्षितोंमें कम बच्चे देखे जाते हैं। मनुष्य जैसे जैसे अपने जीवनको संस्कारी उदात्त और आदर्श-परायण बनाता जाता है और उच्च प्रकारके सुख भोग सकता है वैसे वैसे उसकी प्रजननकी प्रवृत्ति अपने आप घटती जाती है।

९ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अंकुशोंके बारेमें एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये। प्रत्यक्ष अंकुशों जैसे महामारी अकाल आदिके कारण जनसंख्या न बढ़े तो इसमें समाजकी सुस्थिति और समृद्धिकी रक्षा नहीं है। ये अंकुश मृत्युकी संख्याको बहुत बढ़ाकर अपना काम करते हैं। इनमें लोगोंको अपार संकट और यातनायें भोगनी पड़ती हैं। इसलिए हमें ऐसे ही उपाय करने चाहिये जिनसे समाजमें इस प्रकारके अंकुशोंके व्यवहारमें आनेकी स्थिति पैदा न हो। ऐसे अंकुशोंको काम करनेका मौका ही न मिले यह सुखी समाजका एक लक्षण है। फिर भी हम देखते हैं कि ये अंकुश अपना काम लगभग दुनियाके सारे देशोंमें करते हैं। सारी दुनियामें अपना व्यापार धंधा जमाकर धनी बने हुए देश अकाल और महामारी आदि संकटोंसे मुक्त रह सकते हैं परन्तु वे अपने अमर्याद लोभके कारण बार बार युद्धोंको न्योता देने लगे हैं और इस तरह संहार और सर्वनाशके रास्ते मुड़ गये हैं।

१० सारी दुनियाको लूटकर धनवान बने हुए पश्चिमके देशोंमें आज रहन सहनका जो ऊंचा स्तर है उसे बनाये रखनेके लिए कृत्रिम तरीकोंसे गर्भ निरोध और सन्तति नियमनके प्रयोग भी वहां हो रहे हैं। अंग्रेजी भाषा बोलनेवाले देशोंमें इस तरहके प्रचार और प्रयोगके खिलाफ सरकार या समाजकी ओरसे कोई प्रतिबन्ध नहीं है जब कि रोमन कैथोलिक सम्प्रदायवाले लोगोंमें इस चीजको पाप समझकर इसका विरोध किया जाता

है। पर किसी किसी देशमें तो गर्भ निरोधके आन्दोलनका सरकारकी ओरसे इसलिए भी विरोध किया जाता है कि युद्धके लिए उसे मनिक चाहिये। इतना ही नहीं अधिक बच्चावाले माता पिताको राज्यकी ओरसे प्रोत्साहन दिया जाता है। सोवियट रूसको भी गर्भ निरोध और सन्तति नियमनकी जरूरत नहीं मालूम हुई। उसे ऐसा लगता है कि यदि सम्पत्तिका बटवारा उचित रूपमें किया जाय तथा उत्पादन कुछ लोगोंके नफेके लिए नहीं परन्तु सारे समाजकी जरूरतोंका विचार करके किया जाय और ऐसी सुनियोजित पद्धतिसे किया जाय कि किसी तरहका बिगाड न हो तो बढ़ने वाली जनसंख्याके लिए आहार आदिकी चिन्ता न करनी पड़े। इस विचारकी जड़में यह दृष्टि भी हो सकती है कि दूसरे देशोंके आक्रमणके सामने नई अर्थ रचनाके प्रयोगको टिकाये रखनेके लिए रूसको बड़ी सेनाकी जरूरत रहेगा। इन सब देशोंमें फ्रांसका उदाहरण ध्यान खींचनेवाला है। वहां यह प्रवृत्ति खूब फैली हुई है और उसके कारण फ्रांसकी जनसंख्या पिछले कुछ दशकोंमें बिल्कुल नहीं बढ़ने पाई है।

जन्म-मरणके आंकड़े

११ लीग आफ नेशन्सकी सन् १९३५-३६ की स्टेटिस्टिकल ईयर बुकमें नीचे लिखे देशोंके जन्म मरणके आंकड़े दिये गये हैं। ये विचार करने जैसे हैं। ये आंकड़े १९३१ से १९३५ तकके वर्षोंके प्रति हजारके हिसाबसे निकाले हुए औसतके हैं।

देशका नाम	प्रति हजार जन्म	प्रति हजार मरण	जन्मकी औसतकी वृद्धि	कितने वर्षमें जन संख्या दुगुना हो सकता है
मिस्र	४३६	२७०	१५७	४५
रूमानिया	३२८	२०६	१२२	५७
जापान	३१६	१८१	१३५	५२
इटली	२३८	१४०	९८	७१
हंगरी	२२४	१५८	६६	१०५
अमरीका	१७	१०९	६४	१०९
आस्ट्रेलिया	१६०	९०	७९	८८
न्यूजीलैंड	१६९	८२	८७	८०
फ्रांस	१६५	१५७	८	८६८
इंग्लैंड और वेल्स	१५५	१२२	३३	२११
स्वीडन	१४१	११६	२५	२७६

१२ न्यूजीलण्ड आस्ट्रेलिया और अमरीकाकी मरण-सख्या कमसे कम है। थोडी मत्युसख्या स्वास्थ्य और खुशहालीका सूचक है। जन्मका प्रमाण घटानेमें इन तीन देशोके सिवा फ्रास इग्लण्ड और स्वीडनने भी सफलता पाई है। जन्मका अनुपात घटाकर भी वे अपने यहा मत्युका प्रमाण नही घटा सके इसलिए उनकी जनसख्या स्थिर-सी हो गई है। वह बढती नहीं। बाकी सब सभ्य माने जानेवाले देशोने अपने जन्मका प्रमाण पहलेसे घटा दिया है। यह नीचे लिखे आकडोसे जान पडेगा

इग्लण्ड	१८५०–६०	प्रति हजार जन्मका अनुपात	३५
इग्लण्ड	१९३१–३५		१५ ५
फ्रास	१८५०–६०	,, ,,	२६
फ्रास	१९३१–३५		१६ ५
जर्मनी	१८५०–६०		३६
जर्मनी	१९३१–३५		१६ ६

यह माना जाता है कि इन सब देशोने कृत्रिम उपायोंसे गर्भ निरोध करके अपने यहा जन्मका प्रमाण घटाया है।

१३ अब हम अपने देशके जन्म मरणके आकडे देखें।

वर्ष	प्रतिसहस्र जनसख्या पर	
	जन्म	मत्यु
१९०१–१०	४८ १	४२ ६
१९११–२०	४९ २	४८ ६
१९२१–३०	४६ ४	३६ ३
१९३१–४०	४५ २	३१ २
१९४१–६०	३९ ९	२७ ४

हमारे यहा जन्मसख्या और मरण-सख्यामें १९२१के बाद कमी होती गई है। इन दोनोंके बीचका फर्क हमारी जनसख्याके बढ जानेका एक बडा कारण दीखता है।

१४ मरण-सख्यामें भी बच्चोंकी मत्युकी सख्या हमेशा ज्यादा होती है और हमारे देशमें तो बालमत्युकी सख्या भयकर रूपसे ज्यादा है। नीचेके कोष्ठकमें हमारे देशमें तथा इग्लण्डमें जन्मे हुए प्रति हजार बालकोंमें से एक वर्षके भीतर कितने बालक मर जाते है इसके आकडे दिये गये है

	१९११	१९२१	१९३५	१९३६	१९४१	१९५०	१९५४	१९५५
इंग्लैंड	११०	८०	७५	७०	—	—	२६·३	२५·९
हिंदुस्तान	२०५	२०२	१७८	१८९	१७०	१६०	११६	१०२

इतना भयंकर बालमृत्युके कारणोंमें बाल-विवाहके सिवा पौष्टिक भोजनका अभाव एक खास कारण है। स्त्रियोंकी मृत्युसंख्या भी गर्भधारण करनेकी उम्र जैसे १५ से ४५ वर्षकी उमरमें बहुत अधिक है। इसके अलावा हमारे देशमें बच्चोंकी संख्या अधिक होनेसे और कमजोरी तथा बुढ़ापा जल्दी आ जानेसे कुल जनसंख्याका थोड़ा भाग ही अच्छी तरह काम करने लायक रहता है। ऐसा अन्दाज लगाया गया है कि हमारे देशमें कुल जनसंख्याके ४० प्रतिशत लोग काम करने लायक होते हैं जब कि फ्रांसमें ५० प्रतिशत और इंग्लैण्डमें ६० प्रतिशत लोग काम करने लायक होते हैं।

१५ जैसे अलग अलग स्थानोंके जन्म और मरणके अनुपातके आंकड़ोंमें फर्क रहता है वैसे ही एक देशके भीतर अलग अलग वर्गोंमें भी जन्म-मरणके अनुपातमें फर्क रहता है। रहन-सहन सुविधा स्थितिके कारण वर्गोंमें जन्म और मरण दोनोंका अनुपात थोड़ा होता है। खास तौर पर मृत्युकी संख्या तो कम होती ही है। हमने ऊपर जो मृत्युके आंकड़े दिये हैं वे तो पूरी जनसंख्याके सभी वर्गोंको शामिल करके निकाले गये हैं। अगर गरीब वर्गोंके मरण-संख्याके आंकड़े निकाले जायं तो उनका अनुपात बहुत भारी होगा।

१६ हम देख चुके हैं कि किसी देशकी जनसंख्याके बढ़नेकी दरका आधार उसके जन्म-मरणके अनुपात पर है। जिस प्रकार पौष्टिक तत्त्वोंसे रहित सारहीन भोजन मरण-संख्याका सबसे बड़ा कारण होता है उसी प्रकार जन्मसंख्या इस बात पर निर्भर करती है कि देशकी कुल जनसंख्याके कितने प्रतिशत स्त्री-पुरुष विवाहित हैं उनका विवाह सामान्यतः किस उमरमें होता है और हर परिवारमें औसतन कितने बच्चे पैदा होते हैं। इन कसौटियोंको सामने रखकर देखें तो जब हमारे यहाँ मरणसंख्या दूसरे देशोंसे अधिक है तब तो विवाह-संख्या भी ज्यादा है। सन् १९५१की जनगणनाके अनुसार १५ से ४५ वर्षकी स्त्रियोंमें विवाहित स्त्रियोंका प्रमाण भारतमें १८ प्रतिशत था जब कि इंग्लैण्डमें यह प्रमाण १२.६ प्रतिशत था। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतमें विवाहित स्त्रियोंका प्रमाण बहुत बड़ा है। इसलिए इस बड़ी विवाह-संख्याको हमारी भयंकर जनसंख्याका एक कारण अवश्य समझना चाहिए।

जनसंख्याका असमान बटवारा

१७ अब हम यह विचार कर कि क्या कुल मिलाकर मानव जन संख्या पृथ्वी पर बहुत अधिक बढ गई है? हमारी इस धरतीमें जितन मनुष्योका निर्वाह करनकी शक्ति है उसकी अपेक्षा क्या जनसंख्या बहुत ज्यादा बढ गई है? इस समय दुनियाकी जनसंख्या तीन अरब मानी जाती है। इतन मनुष्योको पाल सकनेकी शक्ति पृथ्वी जरूर रखती है। परन्तु उन्नीसवी सदीमें और बीसवी सदीके आरम्भमें जिस प्रमाणमें जनसंख्या बढी, उसी प्रमाणमे यदि बढ़ती चली जाय और हर पच्चीस वर्षमें न सही परन्तु हर सौ वर्षमें दुनियाकी जनसंख्या दुगुनी होती जाय तो क्या पृथ्वी इस बढ़ती हुई जनसंख्याके लिए पूरा अन्न दे सकती है? बेशक, यह तो नही माना जा सकता कि पृथ्वीकी अन्न देनेकी शक्ति अपार है। परन्तु साथ ही क्या हम यह मान ल कि जनसंख्या भी अमर्यादित रूपमें बढती ही रहेगी? हम ऊपर देख चुके ह कि पश्चिमके अनेक देशोने तो अपनी जन संख्याकी वृद्धि पर काफी अकुश लगाना शुरू कर दिया है। दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार सम्पत्तिका असमान बटवारा और सम्पत्तिका अप व्यय (इस पर हम अगले प्रकरणमें विचार करेगे) इस दुनियाकी कगालीका बडा कारण है उसी प्रकार इस पृथ्वी पर जनसंख्याका असमान बटवारा भी सब लोगोको पर्याप्त पोषण न मिलनेका एक बडा कारण है। दुनियाके जो भूभाग बसने लायक ह और जहा काफी मात्रामें अन्न मिल सकता है एसे थोडी जनसंख्यावाले प्रदेशोमें घनी जनसंख्यावाले भूभागोसे जाकर लोग बसने लगें तो कितने ही वर्षों तक अधिक जनसंख्याका प्रश्न खडा ही न होने पाय। युनाइटेड स्टेटस (अमरीका) कैनेडा दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया — ये सब थोडी जनसंख्यावाले देश ह। परन्तु अपने रहन सहनका स्तर ऊचा रखने और अपनी सम्पत्तिमे से दूसरोको हिस्सा न देनेके लिए वे अपनी राजनीतिक सत्ताका उपयोग करके दूसरोको अपने भूभागमें घुसने ही नही देते। इसके सिवा दक्षिण अमरीका और अफ्रीकामें कितने ही प्रदेश एसे ह जहा मनुष्य बस सकते ह। अलबत्ता नई बस्तिया बसानेके लिए साहस करना पडेगा और अनेक कठिनाइयोका सामना करना पडेगा। परन्तु नये उपनिवेशोका प्रश्न मनुष्य जातिकी आर्थिक जरूरतोका प्रश्न न रहकर थोडसे गोरे लोगोकी सत्ताका प्रश्न बन गया है। विपुल साधन-सम्पत्तिवाले और बसनेके लिए अच्छा आबहवा होन पर भी थोडी

जनसंख्यावाले इन प्रदेशोंका कुछ भार लोग स्वीकार कर लें तो उन्हें और इस तरह युद्धोंके लिए कारण पैदा कर रहे हैं।

हमारे देशकी स्थिति

१८. आज अधिक जनसंख्याका प्रश्न यदि ज्यादासे ज्यादा गंभीर रूपमें किसी देशके सामने हो तो वह चीन और हिन्दुस्तानके सामने है। दुनियाकी जनसंख्याका लगभग तीसरा हिस्सा इन दो देशोंमें है। दुनियाके उपनिवेशोंके दरवाजे इन दोनों देशोंके लिए बन्द हैं। गत महायुद्धमें इन देशोंके सैनिकों और नौजवान लोगोंका जो संहार हुआ है उसके कारण यह भी हो सकता है कि हर देश अपनी जनसंख्या बढ़ानेके लिए अपने यहांकी जनसंख्याको बढ़ानेमें जुट जाय। इसलिए दूसरे लोगोंके बारेमें या सारी दुनियाकी जनसंख्याके बारेमें तर्क वितर्क करनेके बजाय हम अपने देशके प्रश्न पर ही विचार करेंगे।

१९. हमारे देशको प्राचीन और मध्यकालके विदेशी यात्रियोंने बहुत घना आबादीवाला देश बताया है। पहले आजकलकी तरह जनगणना नहीं की जाती थी फिर भी यह अन्दाज लगाया गया है कि अकबरके मरनेके समय अर्थात् सन् १६०५ में हिन्दुस्तानकी जनसंख्या १० करोड़ थी। यह बात स्पष्ट नहीं है कि यह आंकड़ा सारे हिन्दुस्तानका माना जाय या अकबरके साम्राज्यका ही माना जाय। यह आंकड़ा सारे हिन्दुस्तानका हो तब तो यह जनसंख्या आजकी जनसंख्याका एक-चौथाई हुई। फिर भी उस समयके और उससे पहले आये हुए यात्रियोंने हिन्दुस्तानको बहुत घनी आबादीवाला देश कहा है। उस परसे इतना ही अनुमान होता है कि दूसरे देश बहुत कम आबादीवाले रहे होंगे।

२०. पिछले छह दशकोंमें तो हमारी जनसंख्या बहुत ही बढ़ गई है। नीचेका कोष्ठक देखिये :

वर्ष	जनसंख्या (करोड़में)	बढ़ती या घटती (प्रतिशत)
१९०१	२३.५०	—
१९११	२५.०७	+६.६९
१९२१	२४.९९	−०.३१
१९३१	२७.७४	+११.००
१९४१	३१.६९	+१४.२३
१९५१	३५.९२	+१३.३४
१९६१	४३.६४	+२१.४९

इन आकडाके अनुसार गत ६० वर्षोंमें हमारी जनसंख्यामें २० करोडकी वृद्धि हुई है। अर्थात ८५ प्रतिशतकी बढती हुई है। ये आकडे भारतके इस समयके भूभागको ध्यानमें रखकर दिये गये ह।

२१ यह मानकर कि हमारी जनसख्याका अलग अलग दष्टिसे वर्गीकरण करने पर कुछ आकड रसप्रद और शिक्षाप्रद सिद्ध होग व यहा दिय जाते ह

स्थानके अनुसार वर्गीकरण

वर्ष	शहर	शहरोकी जनसंख्या (लाखमें)	गाव	गावाकी जनसख्या (लाखमें)
१९३१	२५७५	३८९	६९६८३१	३१३८
१९४१	२७०३	४९६	६५५८९२	३३९३
१९६१	३०१८	७८८	५५८०८८	३५९२

पाच हजारसे ज्यादा जनसख्यावाले स्थानाको शहर माना गया है और पाच हजार या उससे कम जनसख्यावालोका गाव माना गया है। इन शहरोंमें एक लाखमे ज्यादा जनसख्यावालोकी सख्या १९३१ में ३८ थी जो १९६१ में १११ हो गई है। य आकड दिखाते ह कि १९३१ में गावाकी आबादीका अनुपात ८७ ९ प्रतिशत था जो १९६१ में घटकर ८२ १६ प्रतिशत हो गया है।

२२ अब हम शिक्षाकी दष्टिसे वर्गीकरण देखें। शिक्षाका मतलव इतना ही होता है कि अपनी मातृभाषामें साधारण लिखना पढना आ जाय। ऐसा नहा होता कि इस तरह पढ हुए लोगोको पुस्तक या अखबार पढना भी आता ही हो।

वर्ष	शिक्षिताकी सख्या (लाखमें)	शिक्षितोका प्रतिशत
१९०१	११७	५ ३
१९११	१२६	५ ४
१९२१	१४८	६ ३
१९३१	१७	६ ९
१९४१	३७०	१२ ८

१९५१ की जनगणनाके अनुसार भारतमें उपरोक्त प्रमाणसे पुरुषोंमें शिक्षणका प्रतिशत ३३ ९ और स्त्रियोंमें १२ ८ आया है। और दोनोका कुल प्रतिशत २३ ७ आया है। इसका अर्थ यह हुआ कि सपूर्ण देशमें प्रति चार मनुष्यो पर एक मनुष्य पढ लिख सकता है।

धंधेके अनुसार वर्गीकरण (१९६१)

धंधा	जनसंख्याका प्रतिशत
खेती	६९.८
खेतीसे भिन्न धंधे	१०.५
व्यापार	६.०
यातायात	१.६
नौकरी	१२.१
	१००.०

इस प्रकार हमारी जनसंख्याके ७० प्रतिशत लोग खेतीके धंधेमें लगे हुए हैं।

क्या देशमें पर्याप्त अन्न है?

२३ अब हम यह प्रश्न लें कि अपनी बढ़ती हुई जनसंख्याके लिए काफी हो सके इतना अन्न हम पैदा करते हैं या नहीं? हमारे यहाँकी सामान्य मान्यता ऐसी है कि हमारा देश खेती-प्रधान होनेके कारण हमारे देशमें इतना अनाज पैदा होता है जितना हमें खाना चाहिये। हमें कभी कभी अकालका जो कष्ट भुगतना पड़ता था उसका कारण यह माना जाता था कि विदेशी सरकार हमारे यहाँसे अनाज खींच कर बाहर ले जाती थी। परन्तु हम अपनी सच्ची स्थितिका बारीकीसे निरीक्षण करें तो यह मानना ठीक नहीं है। यह निश्चित सत्य है कि हमारी सुजलाम् सुफलाम् मातृभूमि हमारी समूची जनसंख्याके लिए आवश्यक भोजन आज नहीं दे सकती। और आज हम अपने खानेके लिए जरूरी अन्न पैदा नहीं कर सकते।

२४ १९४७–४८ के आँकड़ोंके अनुसार भारतमें कुल २१.७६ करोड़ एकड़ जमीनमें खेती हुई थी। इस हिसाबसे प्रति व्यक्ति ०.७४ एकड़ जमीन होती है। एक अमेरिकन लेखकने हिसाब लगाया है कि एक मनुष्यको उसकी मामूली जरूरतका अन्न पैदा करनेके लिए १.२ एकड़ जमीन चाहिये, परन्तु अच्छी पौष्टिक खुराकके लिए १ एकड़ जमीन चाहिये। अमेरिकाके खान-पानके तरीके तथा जमीनकी पैदावारकी स्थिति हमसे बिलकुल भिन्न होनेके कारण हमारे लिए प्रति व्यक्ति ०.७४ एकड़ जमीन होना बहुत ही खराब स्थिति माना जायगा। इतनी कम जमीनकी आजकी स्थितिमें हमें पर्याप्त अन्न हरगिज नहीं मिल सकता। साथ ही यह भी ध्यानमें रखना है कि इस जमीनके ७७

प्रतिशत भागमें ही खाद्य-वस्तुए पदा होती ह बाकीके २३ प्रतिशत भागमे कपास सन तम्बाकू आदि मनुष्यके लिए अखाद्य वस्तुए उत्पन्न होती ह।

२५ डाक्टर राधाकमल मुकर्जीने सन १९३८में लिखी अपनी फूड प्लानिंग फार फार हण्डड मिलियस (४० करोड मनुष्योंके लिए खुराककी योजना) नामक पुस्तकमें बताया है कि सामान्यत अच्छे सालम भी हमारी जनसख्याके लिए १२ प्रतिशत अनाजकी कमी रहती है। प्रो० ज्ञानचदने सन १९० से १९३४ तकका हिसाब लगाकर दिखाया है कि इतने वर्षोमें जहा भारतकी जनसख्या २१ प्रतिशत बढी है वहा खतीकी जमीन ११ प्रतिशत ही बढी है।

२६ परन्तु यह ता अनाजकी बात हुई। शरीरके योग्य पोषणके लिए अनाजके सिवा सागभाजी कुछ फल और खास तौर पर दूधकी जरूरत है। सागभाजी और फल हम कितनी मात्राम उत्पन्न करते ह इसके ठीक ठीक आकड नहा मिल सकते। और दूधके मामलेम तो स्थिति यह है कि दुनियाके किसी भी देशसे हमारे यहा दुधारू माने जानवाले ढोरोकी सख्या अधिक होने पर भी हमारे करोडो आदमियोको दूधकी एक बूद भी देखनेको नसीब नही होती।

२७ इसलिए एक ओर हमारे खाद्य पदार्थोंका उत्पादन बढानेकी जरूरत है और दूसरी ओर हमारी जनसख्याकी निरकुश वृद्धिको रोकनेकी जरूरत है। खानेकी चीजोके वतमान उत्पादनमें तत्काल कितनी वृद्धि होना जरूरी है इस बारेमें कोनूरकी न्युट्रीशन रिसच लेबोरेटरीके डायरेक्टर डा० एक्राइडकी नीचे लिखी सूचनाए ध्यानमें रखने लायक ह

(१) अनाजका उत्पादन १५ से २० प्रतिशत बढाया जाय।

(२) दालोंके उत्पादनमें १५ से २५ प्रतिशत वृद्धि की जाय।

(३) शक्कर गुडका उत्पादन १० स २० प्रतिशत बढाया जाय।

(४) सागभाजीके उत्पादनम १ ० प्रतिशत वृद्धि की जाय।

(५) घी-तेलका उत्पादन २ ० प्रतिशत बढाया जाय।

(६) दूधका उत्पादन यथासभव बढाया जाय परन्तु फिलहाल १०० प्रतिशत तो बढाया ही जाय।

(७) मछलियोंमें १०० प्रतिशत वृद्धि की जाय।

(८) परम्पराके कारण और भोजनमें उसकी जरूरतको देखते हुए हिन्दुस्तानमें आहारके तौर पर मासको कम महत्त्व दिया जाता है और यह

ठाक हो है। खाद्य पदार्थोंकी पैदावार बढानेके कार्यक्रममें उसे स्थान देनेकी जरूरत नहीं।

(९) अंडे आहारके नाते बहुत कीमती होने पर भी बहुत महंगे हैं क्योंकि मुर्गों और बतखोंको दाना खिलाकर उनसे अंडे प्राप्त करनेमें ९० प्रतिशत कलरीकी हानि उठानी पड़ती है।

(१०) फलोंकी वर्तमान उत्पादन और खपतके निश्चित आंकड़े मिल नहीं सके परन्तु ज्यादा फल पैदा करो का जबरदस्त आन्दोलन करनेकी जरूरत है।

२८ ऊपर सिर्फ खाद्य पदार्थोंकी पैदावारका विचार किया गया है परन्तु उसके साथ साथ दूसरी भी जरूरी चीजोंकी पैदावार बढ़ाना जरूरी है। हमारे लोगोंको पहननेके लिए पूरे कपड़े नहीं मिलते, रहनेके मकान हवा रोशनीवाले नहीं होते और गन्दे होते हैं। लोगोंकी तन्दुरुस्तीके लिए और बच्चोंकी शिक्षाके लिए पूरा प्रबन्ध नहीं है। इन सब बातोंमें सुधार और वृद्धि करके हमारे रहन-सहनके अत्यन्त नीचे वर्तमान स्तरको ऊंचा उठानेकी जरूरत है।

जनसंख्याकी वृद्धिको रोकनेके उपाय

२९ परन्तु इस दिशामें जितने भी प्रयत्न किये जायें उनका ठीक लाभ हमें तभी मिल सकता है जब हमारी जनसंख्याकी तेज वृद्धि पर रोक लगाई जाय। ऐसा मालूम होता है कि पश्चिमी देशोंमें जन्मका प्रमाण जो पहलेसे बहुत घटा है उसका खास कारण यह है कि वहां गर्भ निरोधक कृत्रिम साधनोंका उपयोग किया जाता है। हमारे यहां भी इन साधनोंका हिमायत होने लगी है और उच्च वर्गके कुछ कुटुम्बोंमें इनका उपयोग भी शुरू हो चुका होगा। पर यह एक बड़ा गंभीर प्रश्न है कि ऐसे साधनोंकी हिमायत या उनका समर्थन करना चाहिये या नहीं। ऐसा मालूम होता है कि पश्चिमी देशोंको इन साधनोंसे मनचाहा जनसंख्या मर्यादित करनेमें सफलता मिली है परन्तु यह भी देखनेकी जरूरत है कि वहां इन उपायोंके उपयोगके शारीरिक और नैतिक परिणाम क्या आये हैं। अभी इतना समय नहीं बीता है कि इन साधनोंके उपयोगसे मनुष्यके शरीर और स्वभाव पर होनेवाले असरके बारेमें निश्चित रूपसे कुछ कहा जा सके। परन्तु इस बारेमें कोई शंका नहीं हो सकती कि इन उपायोंके उपयोगके कारण एक ओर स्वच्छन्दता और कामुकता तथा दूसरी ओर स्वार्थ और लोभ बढ़ते हैं। बाद भी समाज संयमकी वृत्तिको बढ़ाये बिना आगे नहीं बढ़ सकता। हमारे धार्मिक विचारोंम

और सामाजिक आत्मा भी हमें इसी दिशामें प्रयत्न करनेकी प्रेरणा देते हैं। अतः जनसंख्याकी अनुचित वृद्धिको रोकनेके लिए संयम ही सबसे उत्तम उपाय है। ब्रह्मचर्य-अवस्थाका समय जहां तक हो सके लम्बा कर देना चाहिये। उत्तम उपाय यही है कि बड़ी उमरमें विवाह किया जाय और बादमें भी जहां तक हो सके विवाहित या गृहस्थ जीवनकी अवधि कम कर दी जाय। एक या दो सन्तान होनेके बाद प्रजोत्पत्ति रोक देनी चाहिये।

अच्छी संतान पैदा करना

३० जनसंख्याको अमर्याद रूपमें बढ़ने न देनेके साथ ही इसका भी विचार करना चाहिये कि भावी सन्तान उत्तम गुणों और शक्तिवाली ही पैदा हो तथा शारीरिक और मानसिक रोगवाले और विकलांग मनुष्योंकी वृद्धि न हो। सुप्रजनन शास्त्रमें हुई प्रगतिके कारण जब हम वनस्पति और पशु पक्षीकी जातिको सुधारते हैं तो मानव वंशको सुधारनेकी कोशिश हम क्यों नहीं करनी चाहिये? परन्तु इस बातका विचार करना जितना आसान है उतना ही कठिन उस पर अमल करना है। वनस्पति तथा पशु पक्षीके विषयमें तो हम जितने विक्षेपक अंग सूझ सकते हैं उतनोंको दूर करके उनके संयोगके प्रयोग हम कर सकते हैं। परन्तु मनुष्यके मामलेमें ऐसे प्रयोग करना बिल्कुल संभव नहीं। विवाहका विषय इतना व्यक्तिगत है कि समाज या कानून मनुष्यकी विवाह-सम्बन्धी पसन्दमें कोई रुकावट डालनेमें सफल हो ही नहीं सकता। फिर भी वर या कन्याके चुनावमें—भले वह चुनाव माता पिता करें या वे खुद करें—कई बातोंकी सावधानी रखना जरूरी है। बहुत नजदीकके रिश्तेमें या एक ही गोत्रमें विवाह न करनेकी जो प्रथा हिन्दुओंमें प्रचलित है उसकी जड़में सुप्रजननका विचार होगा ही। परन्तु हम यहीं रुक जाना पड़ता है। आजकलका प्रजननशास्त्र तो कहता है कि आप चाहे जितना चुनाव कीजिये तो भी अपने विचारोंके अनुसार सन्तान आप पैदा नहीं कर सकेंगे। इससे इनकार नहीं कि माता और पिताके कुछ गुण बच्चोंमें आते हैं परन्तु बच्चोंमें ऐसे गुण भी उतरे हुए देखे जाते हैं जो माता पितामें बिल्कुल नहीं पाये जाते। माता पितामें उनके किसी पुरखेमें प्रकट हुए गुण बिलकुल लुप्त और अदृश्य दशामें पड़े रहते हैं और वे गुण उनके बच्चोंमें उतर आते हैं। इससे बहुत बार ऐसा देखा गया है कि माता पिता दोनों सुंदर हों तो भी उनके बच्चे उनसे आधे भी सुन्दर नहीं होते। माता पिता सुचरित्र हों तो भी उनकी सन्तान दुश्चरित्र निकल जाती है। इसी तरह चरित्र हीन माता पिताके पेटसे चरित्रवान सन्तान जन्म ले सकती है। जीवविद्याशास्त्री

और प्रजननशास्त्री इसका कारण यह बताते हैं कि दो तीन चार या इससे भी ज्यादा पीढ़ीके पूर्वजोंके लक्षण बालकमें प्रगट होते हैं। यह भी हो सकता है कि बिलकुल नीरोग माता पिताके बच्चोंमें कोई पुरखोंका रोग उतर आय। इसलिए यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि स्त्री-पुरुष बहुत अच्छा चुनाव करके विवाह करें तो भी उनसे उत्तम सन्तान ही उत्पन्न होगा।

३१ एक और बात भी सोचने लायक है। वनस्पति और पशु-पक्षियोंके प्रजननका विचार करते समय हम कोई विशेष निश्चित किया हुआ गुण ही उनकी सन्तानमें लानेके प्रयोग करते हैं। अनाजके विषयमें बड़े दानेकी या किसी खास रोगके सामने टिके रहनेकी शक्तिका और गायके विषयमें उसकी बछियोंमें ज्यादा दूधकी या बछड़ेमें ज्यादा बोझ ढोनेकी या ज्यादा दौड़नेकी शक्तिका ही हम ध्यान रखते हैं। परन्तु मनुष्य तो कई गुण-अवगुणों और शक्ति अशक्तियोंका मिश्रण होता है। कुछ मनुष्य विचक्षण बुद्धिवाले होने पर भी भारी भुलक्कड़ होते हैं। कलाकार अपनी कलामें डूबा रह सकता है परन्तु दूसरी बहुतसी बातोंमें वह असावधान रहता है। विशिष्ट प्रतिभावाले कवियों कलाकारों वैज्ञानिकों और राजनीतिक पुरुषोंमें अवश्य कोई न कोई विचित्रता पाई जाती है। फिर भी इन सबके लिए समाजमें स्थान है और महत्वका स्थान है। योजनाके साथ पसन्द किये गये स्त्री-पुरुषोंके संयोगसे प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा नहीं किये जा सकते।

३२ परन्तु इससे हम यह नहीं कह सकते कि समाज अच्छी सन्तान पैदा करनेका कोई विचार ही न करे। हरएक समाजको यह सावधानी तो रखनी ही चाहिये कि उसकी विवाह-प्रथा सुयोग्य हो और विवाहमें चुनावके नियम निर्दोष हों। यह सावधानी भी रखनी पड़ेगी कि बाल विवाह न हों इतना ही नहीं बल्कि उमरमें गुणोंमें स्वभावमें और आदर्शोंमें दो स्त्री-पुरुष बेमेल न हों और यदि अकस्मात ऐसा बेमेल सम्बन्ध हो जाय तो पति या पत्नी दोनोंमें से किसी एकके चाहने पर उस विवाहका विच्छेद हो सकनेकी भी व्यवस्था होनी चाहिये। बच्चोंमें कौनसे गुण आयेंगे और कौनसे नहीं आयेंगे या माता पितामें न पाये जानेवाले दूसरे ही कोई गुण आ जायेंगे — इस बारेमें हम निश्चित रूपसे कुछ न कह सकें तो भी इतना निश्चित है कि अधिकतर बच्चोंमें माता पिताके ही बहुतसे गुण आते हैं। इसके सिवा यह भी जरूरी है कि बचपनमें बालकको माता पिताका प्रेममय और अच्छे संस्कारोंवाला वातावरण मिले। ये सब बातें कानूनसे नहीं हो सकतीं। इन बातोंमें शिक्षा और समाजके अच्छे रीति रिवाजोंका अधिक हाथ रहता है।

और सामाजिक आदर्श भी हम इसी दिशामें प्रयत्न करनेकी प्रेरणा देते हैं। अतः जनसंख्याकी अनुचित वृद्धिको रोकनेके लिए संयम ही सबसे उत्तम उपाय है। ब्रह्मचर्य-अवस्थाका समय जहां तक हो सके लम्बा कर देना चाहिये। उत्तम उपाय यही है कि बड़ी उमरमें विवाह किया जाय और बादमें भी जहां तक हो सके विवाहित या गृहस्थ जीवनकी अवधि कम कर दी जाय। एक या दो सन्तान होनेके बाद प्रजोत्पत्ति रोक देनी चाहिये।

अच्छी संतान पैदा करना

३ जनसंख्याको अमर्याद रूपमें बढ़ने न देनेके साथ ही इसका भी विचार करना चाहिये कि भावी संतान उत्तम गुणों और शक्तिवाली ही पैदा हो तथा शारीरिक और मानसिक रोगवाले और विकलांग मनुष्योंकी वंशवृद्धि न हो। सुप्रजनन शास्त्रमें हुई प्रगतिके कारण जब हम वनस्पति और पशु-पक्षीकी जातिको सुधारते हैं, तो मानव वंशको सुधारनेकी कोशिश हमें क्यों नहीं करनी चाहिये? परन्तु इस बातका विचार करना जितना आसान है उतना ही कठिन उस पर अमल करना है। वनस्पति तथा पशु-पक्षीके विषयमें तो हमें जितने विस्फक अंग सूझ सकते हैं उतनोंको दूर करके उनके संयोगके प्रयोग हम कर सकते हैं। परन्तु मनुष्यके मामलेमें ऐसे प्रयोग करना बिलकुल संभव नहीं। विवाहका विषय इतना व्यक्तिगत है कि समाज या कानून मनुष्यकी विवाह-सम्बन्धी पसन्दमें कोई रुकावट डालनेमें सफल हो ही नहीं सकता। फिर भी वर या कन्याके चुनावमें — भले वह चुनाव माता पिता करें या वे स्वयं करें — कई बातोंकी सावधानी रखना जरूरी है। बहुत नजदीकके रिश्तेमें या एक ही गोत्रमें विवाह न करनेकी जो प्रथा हिन्दुओंमें प्रचलित है उसकी जड़में सुप्रजननका विचार होगा ही। परन्तु हमें यही रुक जाना पड़ता है। आजकलका प्रजननशास्त्र तो कहता है कि आप चाहे जितना चुनाव कीजिये तो भी अपने विचारोंके अनुसार संतान आप पैदा नहीं कर सकते। इससे इनकार नहीं कि माता और पिताके कुछ गुण बच्चोंमें आते हैं, परन्तु बच्चोंमें ऐसे गुण भी उतरे हुए देखे जाते हैं जो माता पितामें बिलकुल नहीं पाये जाते। माता पितामें उनके किसी पुरखेमें प्रकट हुए गुण बिलकुल गुप्त और अव्यक्त रूपमें पड़े रहते हैं और वे गुण उनके बच्चोंमें उतर आते हैं। इसमें बहुत बार ऐसा देखा गया है कि माता पिता दोनों सुन्दर हों तो भी उनके बच्चे उनसे आधे भी सुन्दर नहीं होते। माता पिता सुचरित्र हों तो भी उनकी संतान दुश्चरित्र निकल जाती है। इसी तरह चरित्र हीन माता पिताके पेटसे चरित्रवान संतान जन्म ले सकती है। जीवविद्याशास्त्री

हानिकर है। इनके बिना लम्बी आयु भी व्यक्ति और समाजके लिए आपत्ति बन जाता है।

३६ सार यह कि किसी प्रजाको सुखी बनना हो और अपनी उन्नति साधनी हो तो उसे संयमका जीवन बिताकर जनसंख्याको अमर्यादित रूपमें बढ़ने नहीं देना चाहिये और साथ ही यह चिन्ता भी रखना चाहिये कि भावी पीढ़ी शरीरसे बलवान, बुद्धिमें तेजस्वी और चरित्रमें उत्तम हो। संख्या पर अंकुश और गुणोंमें वृद्धि यह सूत्र प्रत्येक प्रजाको अपनी दृष्टिके सामने रखना चाहिये। 'वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि' — इस सुन्दर वचनको ध्यानमें रखकर चलना चाहिये।

३

सम्पत्तिका व्यय

१ समाजकी सारी आर्थिक प्रवृत्तियोंका संपत्तिके उत्पादनका अंतिम हेतु सम्पत्तिका व्यय करना है। समाजके लिए आवश्यक सम्पत्ति निर्माण हो, निर्माण हुई सम्पत्ति जिस जिसको जरूरत हो उसके उपयोगके लिए उसके पास पहुंचा दी जाय और इन दोनों कार्योंमें सहायता करनेवाले समाजके अंग-प्रत्यंगोंमें उसका न्यायपूर्ण और उचित बंटवारा हो जाय इतनेसे ही अर्थशास्त्रकी विचारणा पूरी नहीं होती। अर्थ-प्रवृत्ति तभी कृतार्थ होती है जब सम्पत्तिके उत्पादनमें से जो कुछ मनुष्यके हिस्सेमें आता है उसका उत्तम रीतिसे व्यय हो। और सम्पत्तिका उत्तम व्यय हुआ तब माना जाता है जब सम्पत्तिमें मनुष्यके लिए उपयोगी होनेका मनुष्यकी सुख-सुविधा जुटानेका जो गुण है उसका मनुष्यको पूरा लाभ मिले। सम्पत्तिका जरा भी बिगाड़ न हो उसका पूरा रस निकालकर इस तरह उसका उपयोग करना जिससे समाजको ज्यादासे ज्यादा सुख-सुविधाएं मिलें यह सम्पत्तिका सद्व्यय माना जायगा। उससे जितना सुख-सुविधा मिल सकता है उतनी प्राप्त किये बिना सम्पत्तिका व्यय कर डालना उसका दुर्व्यय है और उस हद तक समाज द्वारा सम्पत्तिके उत्पादनमें खर्च किया हुआ श्रम व्यर्थ जाता है।

व्ययके बारेमें उपेक्षा

२ पूंजीवादी अर्थशास्त्रियोंने आज तक सम्पत्तिके उत्पादन और उसके आवश्यक अंग विनिमयकी ओर ही ज्यादा ध्यान दिया है। ये अर्थशास्त्री यह

३३ और कानून भी अच्छी सन्तान पैदा करनेके बारेमें एक काम तो कर ही सकता है। कानून इतना तो कर ही सकता है कि छूतवाले और वंश-परम्परागत रोगोंके रोगी, पागल, मूर्ख और अपराधी वृत्तिवाले स्त्री-पुरुष बच्चे पैदा करके बुरी प्रजाको न बढ़ाने पायें। हम ऊपर कह चुके हैं कि दुष्ट माता पिताके पेटसे भी पवित्र बालक जन्म ले सकता है। परन्तु जहां दुष्टता सिद्ध हो चुकी हो वहां यह समझ कर कि शायद ऐसे बुरे माता पिताके पेटसे भी शुद्ध बालक पैदा हो सकते हैं, उन्हें प्रजावृद्धि करने देना ठीक नहीं। जो लोग शरीर या मनकी निश्चित रोगी दशाके कारण समाजके लिए कूड़ा-करकट बन गये हैं, उन्हें तो बच्चे पैदा करनेसे रोकना ही चाहिये। एक छोटीसी शस्त्रक्रिया द्वारा मनुष्यको वंध्य बना देनेकी जो आधुनिक खोज हुई है उसका प्रयोग ऐसे लोगों पर करनेमें कोई बुराई नहीं है।

३४ इसके सिवा, जैसे सरकारी नौकरी या फौजमें भरती करनेसे पहले मनुष्यकी डाक्टरी जांच की जाती है वैसे ही विवाहकी इच्छा रखनेवाले स्त्री-पुरुषोंकी डाक्टरी जांच करनेकी प्रथा पड़े या कानून बन तो वह भी बुरा नहीं है। यद्यपि डाक्टरी जांचसे पूरी खातिरी तो नहीं हो सकती फिर भी छूत या वंश-परम्परागत रोगका तो पता चल ही जायगा।

३५ आयु-मर्यादाका प्रमाण बड़ा यह समाजकी तन्दुरुस्तीका एक लक्षण माना जाता है। परन्तु इसमें भी देखना यह है कि युवावस्थाका समय ज्यादा हो न कि वृद्धावस्थाका। मनुष्यका स्वास्थ्य और काम करनेकी शक्ति लम्बे समय तक टिकी रहनी चाहिये। उपनिषदोंमें सौ वर्ष जीनेकी इच्छा रखनेकी बात कही गई है, लेकिन उसके साथ यह भी कहा गया है कि कर्तव्य-कर्म करते करते ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा रखनी चाहिये। इसमें जीनेकी इच्छाकी अपेक्षा कर्तव्य-कर्म करने पर अधिक जोर दिया गया है। निष्क्रियतावाली वृद्धावस्था लम्बी हो तो वह समाजके लिए संकटरूप बन जाती है। इसलिए मनुष्यकी आयु-मर्यादा बढ़ानेके प्रयत्नके साथ साथ ऐसी स्थिति पैदा करनेका भी प्रयत्न होना चाहिये जिससे मरने तक मनुष्यके शरीर और मनकी शक्तियां अच्छी तरह टिकी रहें और वह उपयोगी काम करता रहे। ऐसे उपाय करने चाहिये जिनसे समाजमें रोगी, अपंग, पागल, कमजोर और काम न कर सकनेवाले आदमियोंकी वृद्धि जहां तक हो सके रुके। साथ ही असंतोषी, मूर्ख और स्वार्थी मनुष्योंकी भी वृद्धि नहीं होनी चाहिये। इन सब शर्तोंके साथ प्राप्त होनेवाली लम्बी आयु समाजके लिए

और वे इतने खुले हों कि पहनने पर शरीरको ज्यादासे ज्यादा आराम मिले तथा कपड़े इस तरह धोये और पहने जाने चाहियें जिससे उनकी अधिक सफाई हो और वे लम्बे समय तक टिकें। परन्तु व्यवहारमें हम देखते हैं कि उत्पादनमें जो किफायत सिद्ध हो सकी है वह व्ययमें नहीं हो सकी है।

सद्व्ययके लिए अधिक कुशलता चाहिये

४ उत्पादकका ध्येय एक ही चीज बनानेकी ओर रहता है जिसके बनानेमें वह अधिकसे अधिक कुशल हो और जिसे बनानेकी उसके पास अधिकसे अधिक सुविधा हो। इसके लिए वह तालीम लेता है कि उसका काम शुरू हो जाता है। एक बार अपना धंधा निश्चित कर लेनेके बाद उसे विशेष चुनाव नहीं करना होता। उस धंधेकी परम्परागत प्रणाली-रिवाजोंके आधार पर उसे चलना होता है। उत्पादक कोई नया सुधार करे तो वह भी एक धंधे तक ही सीमित होता है। उत्पादक एक चीजके बनाने पर ही अपनी सारी शक्ति केन्द्रित करता है। उसे एक ही प्रश्नका विचार करना होता है। परन्तु व्यय करनेवालेके नाते मनुष्यके सामने कई बातें आकर खड़ी रहती हैं। यदि बिल्कुल प्रारंभिक आवश्यकताओंका ही विचार करें तो भी क्या खायें क्या पहनें क्या ओढ़ें कैसे गरम रहें—इस तरह हर बातमें मनुष्यके लिए अपना चुनाव करनेकी गुंजाइश रहती है। और यह सब शास्त्रीय पद्धतिसे इस तरह करना हो कि उससे अधिकसे अधिक लाभ हो तो इन सब विविध विषयोंका ज्ञान उसे होना चाहिये। इस ज्ञानको अमलमें लानेका संकल्प-बल उसमें होना चाहिये और उसमें अच्छी आदतें होनी चाहियें। इसलिए सफल और कुशल उत्पादकसे सफल और कुशल व्ययी (खर्च करनेवाले) में अधिक बुद्धि होशियारी ज्ञान और सूझ-बूझकी जरूरत है। सत्य यह है कि फिर भी मनुष्यने उत्पादन पर जितनी शक्ति और बुद्धि खर्च की है और परिश्रम बचाने पर तथा नये नये पदार्थ खोजकर उनके उत्पादन अच्छा और सस्ता बनाने पर जितना विचार किया है उतना सम्पत्तिके व्यय पर नहीं किया। इसका एक बड़ा कारण तो यह है कि उत्पादनमें किये हुए सुधारोंका फल प्रत्यक्ष दीखता है और उसका लाभ भी उसी समय मिल जाता है जब कि सुधरी हुई और शास्त्रीय पद्धतिसे किये गये खर्चका लाभ तुरन्त और प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता। पुरानी आदतों और समाजके परम्परागत रीति रिवाजोंसे मनुष्य जल्द छूट नहीं सकता, इस छूटका विचार भी नहीं आता। हाथचक्कीका पिसा आटा और मशीनका पिसा आटा या मशीनसे कूटकर खूब साफ किया हुआ चावल और सिर्फ

मानकर चले हैं कि यथासंभव अधिकसे अधिक उत्पादन किया जाय और उसका इस तरह विनिमय किया जाय कि उत्पादकको अधिकसे अधिक लाभ मिले तो निश्चित ही समाजकी सुख सुविधा अपने आप सध जायगी। जब तक सम्पत्तिका बटवारा उचित और न्यायपूर्ण पद्धतिसे करके समाजमें फैली हुई असमानता दूर न की जायगी तब तक कोई भी समाज सुखी नहीं हो सकता इस बातकी ओर सबसे पहले समाजवादी अर्थशास्त्रियोंने संसारका ध्यान खींचा और इस सम्बन्धमें आज तीव्र ऊहापोह चल रहा है। आज इस किस्मकी नई समाज रचना करनेके लिए आन्दोलन हो रहे हैं जिसमें न्याय और समानताके आधार पर सम्पत्तिका बटवारा हो। परन्तु सम्पत्तिके सद्व्ययकी ओर अभी तक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है।

३ आजकलके वैज्ञानिकों और शोधकोंने नई नई मशीनों और रसायनोंकी खोज करके चीजोंका उत्पादन किस तरह बढ़ सकता है और परिवहन-व्यवस्थामें भी नई नई खोज करके उत्पन्न मालका विनिमय किस तरह आसान और शीघ्र हो सकता है इसके लिए जितने प्रयत्न किये हैं उनके सौवें हिस्सेके प्रयत्न भी इस बातकी खोजके लिए नहीं किये कि सम्पत्तिका सद्व्यय कैसे हो सकता है। आज बड़े बड़े कारखानोंमें ठेठ नीचेकी सीढ़ीके उत्पादकके काममें भी यांत्रिक शोधों और विज्ञानकी मदद मिलती है परन्तु सुशिक्षित माने जानेवाले लोगोंको भी सम्पत्तिका व्यय करना नहीं आता। इस दिशामें मार्ग दिखाने और मदद करनेका काम वैज्ञानिकों और संशोधकोंने बहुत थोड़ा किया है। उत्पादन अच्छेसे अच्छे ढंगसे हुआ तभी कहा जायगा जब उत्पादनका खर्च कमसे कम आये कमसे कम श्रम द्वारा कुदरतसे कच्चा माल प्राप्त किया जाय उसका तैयार माल बनाते समय जरा भी बिगाड़ न हो और कमसे कम कच्चा माल खर्च हो तथा तैयार मालके बनानेमें भी कमसे कम श्रम करना पड़े। इसी तरह सम्पत्तिका अच्छेसे अच्छा व्यय हुआ तब माना जायगा जब उससे समाजको ज्यादासे ज्यादा सुख-सुविधायें मिलें। उत्पादनमें हम खर्च घटानेका प्रयत्न करते हैं जब कि व्ययमें सुख-सुविधा या उपयोगिता बढ़ानेका प्रयत्न करना होता है। जैसे उत्पादक इस बातकी चिन्ता रखता है कि कपड़का एक थान कमसे कम खर्चमें कैसे तैयार हो वैसे ही व्यय करनेवालेको कपड़के थानका उपयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उसका ज्यादासे ज्यादा उपयोग कैसे हो सकता है। थानसे कपड़े काटने या सिलाने समय यह सावधानी रखनी चाहिये कि कपड़की कतरन बिलकुल न निकले या कमसे कम निकले इन कपड़ोंकी बनावट ऐसी हो

और वे इतने खुले हों कि पहनने पर शरीरको ज्यादासे ज्यादा आराम मिले तथा कपड़े इस तरह धोये और पहने जाने चाहिये जिससे उनकी अधिक सम्हाल हो और वे लम्बे समय तक टिकें। परन्तु व्यवहारमें हम देखते हैं कि उत्पादनमें जो किफायत सिद्ध हो सकी है वह व्ययमें नहीं हो सकी है।

सद्व्ययके लिए अधिक कुशलता चाहिये

४ उत्पादकका लक्ष्य एसी एक ही चीज बनानेकी ओर रहता है जिसके बनानेमें वह अधिकसे अधिक कुशल हो और जिस बनानेकी उसके पास अधिकसे अधिक सुविधा हो। इसके लिए वह तालीम ले ले कि उसका काम शुरू हो जाता है। एक बार अपना धंधा निश्चित कर लेनेके बाद उसे विशेष चुनाव नहीं करना होता। उस धंधेकी परम्परागत प्रणालिकाओंके आधार पर उसे चलना होता है। उत्पादक कोई नया सुधार करे तो वह भी एक धंधे तक ही सीमित होता है। उत्पादक एक चीजके बनाने पर ही अपनी सारी शक्ति केन्द्रित करता है। उसे एक ही प्रश्नका विचार करना होता है। परन्तु व्यय करनेवालेके नाते मनुष्यके सामने कई चीजें आकर खड़ी रहती हैं। यदि बिलकुल प्रारंभिक आवश्यकताओंका ही विचार करें तो भी क्या खायें, क्या पहनें, क्या ओढ़ें, कैसे घरमें रहें — इस तरह हर बातमें मनुष्यके लिए अपना चुनाव करनेकी गुंजाइश रहती है। और यह सब शास्त्रीय पद्धतिसे इस तरह करना होता है कि उसे अधिकसे अधिक लाभ हो। इसके लिए इन सब विविध विषयोंका ज्ञान उसे होना चाहिये। इस ज्ञानको अमलमें लानेका संकल्प-बल उसमें होना चाहिये और उसमें अच्छी आदतें होनी चाहिये। इसलिए सफल और कुशल उत्पादकसे सफल और कुशल व्ययी (खर्च करनेवाले) में अधिक बुद्धि, होशियारी, ज्ञान और सूझ-बूझकी जरूरत है। सत्य यह है, फिर भी मनुष्यने उत्पादन पर जितनी शक्ति और बुद्धि खर्च की है और परिश्रम बचाने पर तथा नये नये पदार्थ खोजकर उनमें उत्पादन अच्छा और सस्ता बनाने पर जितना विचार किया है उतना सम्पत्तिके व्यय पर नहीं किया। इसका एक कारण तो यह है कि उत्पादनमें किये हुए सुधारोंका फल प्रत्यक्ष दीखता है और उसका लाभ भी उसी समय मिल जाता है जब कि सुधरी हुई और शास्त्रीय पद्धतिसे किये गये सद्व्ययसे लाभ तुरन्त और प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते। पुरानी आदतों और समाजके परम्परागत रीति रिवाजोंसे मनुष्य झट छूट नहीं सकता। उसे छूटनेका विचार भी नहीं आता। हाथचक्कीका पिसा आटा और मशीनका पिसा आटा या मशीनसे कूटकर खूब साफ किया हुआ चावल और सिर्फ

लकडीकी चक्कीमें कुटा हुआ या बहुत साफ न किया हुआ हाथकुटा चावल —इन दोनोंके बीच पोषक तत्त्वोंकी दृष्टिसे जो फर्क रहता है उसे तुरन्त जाना या अनुभव नहीं किया जा सकता। और इसलिए इस तरहके परिवर्तनोंको स्वीकार करनेके लिए मनुष्यकी बुद्धि तैयार नहीं होती। इसी कारणसे उत्पादनकी अपेक्षा व्ययके बारेमें मनुष्य स्वभावसे ही दकियानूसी पाया जाता है। अपना भोजन बनानेकी पद्धतिमें, भोजनके व्यंजनोंमें, अपनी पोशाकमें और मकानकी बनावटमें मनुष्य बहुत ही थोडा और धीमा परिवर्तन करता है।

उपयोग करनेकी शक्तिमें अंतर

५ कुछ मनुष्योंमें अमुक प्रकारकी भौतिक अथवा अभौतिक वस्तुओंका उपभोग करनेकी दूसरोंसे अधिक शक्ति होती है। खाद्य पदार्थों जैसी प्राथमिक आवश्यकताकी चीजोंका भी सब मनुष्य एकसी मात्रामें उपयोग नहीं कर सकते। अगर सब लोगोंको समान मात्रामें अथवा एक ही प्रकारका आहार दिया जाय तो वह सबको अनुकूल नहीं आयगा और उससे भारी अनर्थ पैदा हो सकता है। प्राथमिक आवश्यकताओंकी वस्तुओंकी अपेक्षा उच्च कोटिकी मानी जानेवाली वस्तुओंका उपभोग करनेकी मनुष्यकी शक्तिमें बहुत बडा अन्तर देखा जाता है। किसी मनुष्यकी शक्ति अमुक प्रकारकी सम्पत्तिका अधिक उपभोग करनेकी होती है, जैसे पुस्तकें और दूसरे मनुष्यकी शक्ति एक दूसरे ही प्रकारकी सम्पत्तिका अधिक उपभोग करनेकी होती है जैसे वाद्य चित्रकलाके साधन आदि। आर्थिक जरूरतोंसे भिन्न दूसरी चीजोंके बारेमें वैयक्तिक शक्तिके ऐसे भेद अधिक पाये जाते हैं। उदाहरणके लिए एक आदमी प्रकृतिका रमणीय दृश्य देखकर उससे आनंद प्राप्त कर सकता है और दूसरा नहीं प्राप्त कर सकता। रस्किन कहता है कि जिसमें रसिकताका विकास नहीं हुआ है और जो प्रारंभिक दशाका जीवन बिताता है वह किसान किसी उच्च कलाकृतिका रसास्वादन नहीं कर सकता अथवा साधारण लिखना पढ़ना जाननेवाले मनुष्योंके लिए गंभीर विषयोंकी चर्चा करनेवाले साहित्यका पुस्तकालय निरुपयोगी अथवा बहुत कम उपयोगी सिद्ध होगा। वे कहानियोंका या दूसरी हलके साहित्यकी पुस्तकोंका उपभोग कर सकते हैं। आज भी हम बहुतसे सार्वजनिक पुस्तकालयोंमें देखते हैं कि ऐसी ही पुस्तकोंका उपयोग ज्यादा होता है। उपभोगके योग्य किसी भी सम्पत्तिके बारेमें यह कहा जा सकता है कि जीवनके लिए उपयोगी हो सकनेवाले उसके मूल्यका आधार इसी बात पर रहता है कि जिसके हाथमें वह आती है उसे उसका सद्व्यय

करना आता है या नहीं। इसमें सिर्फ लोगोंमें रसवृत्ति उत्पन्न करने या उसका विकास करनेका प्रश्न नहीं होता, प्रश्न किसी वस्तुमें रही उपयोगिताका पूरा लाभ उठानेकी क्षमताका भी होता है।

दुर्व्ययके प्रकार और कारण

६ अज्ञान यह रोजके अनुभवकी बात है कि हमारे घरोंके चूल्हों और अंगीठियोंमें जो ताप होते हैं उनके कारण ईंधनकी बहुतसी गरमी बेकार जाती है और धुएंका कष्ट भी उठाना पड़ता है। यूरोप और अमरीकामें मैदेकी सफेद डबल रोटी खानेका रिवाज पड़ गया है। और विज्ञानका ज्ञानवाले सुशिक्षित लोग भी यही रोटी खाते रहते हैं। अद्यय आहारशास्त्री अब यह कहते लगे हैं कि इससे रोग न केवल उसमें पोषक तत्त्व ही खो बैठते हैं बल्कि यह मैदेकी डबल रोटी बहुत लम्बे समय तक खाई जाय तो आंतों और पाचन शक्तिको बिगाड़ देती है। घी और मावेकी मिठाइयों और तेलमें तली हुई चीजोंके बारेमें भी यह कथन सत्य है। ये चीजें ज्यादा महंगी होती हैं और स्वास्थ्यको नुकसान पहुंचाती हैं। उनके पक्षमें स्वादके सिवा दूसरा एक भी कारण नहीं है। परन्तु स्वादवृत्तिका इस तरह विकास किया जा सकता है कि जो चीजें पोषणकी दृष्टिसे लाभदायक हों वे ही हमें ज्यादासे ज्यादा स्वादिष्ट लगें। इस तरहके दुर्व्ययकी जड़में स्वादेंद्रियकी गलत तालीम और उससे पड़ी हुई बुरी आदतें होती हैं। इस तरहका भोजन करनेमें समाजमें कोई अप्रतिष्ठा नहीं समझी जाती। इसके विपरीत सामाजिक आनंद मनाने और समाजमें वाहवाही लूटनेके लिए भोजन-समारंभोंमें खास तौर पर ऐसा तरहका भोजन काममें लिया जाता है।

■ धार्मिक विधियां और अंधविश्वास पूजामें घीके दिये जलाना, होम हवनमें घी जैसे बड़े महत्त्वके खाद्य पदार्थको जला डालना, महादेव या अन्य देवी-देवताओंकी मूर्तियों पर दूधके घड़ोंके घड़े ढालना, उन पर केसर-चन्दन या तेल सिंदूरकी तहें चढ़ाना, मूर्तियोंको कीमती वस्त्र तथा आभूषण पहनाना — ये सब धर्म या विधियोंके कारण होनेवाले दुर्व्ययके विविध प्रकार हैं। दूसरे विश्वयुद्धके जमानेमें जब लोगोंको खानेके लिए भी घी-दूधकी तंगी थी, सैकड़ों या हजारों मन घी जलाकर विष्णुयाग किये गये थे। देवमन्दिरोंमें जो अन्नकूट होता है और थाल रखवाये जाते हैं, उनमें भी कितना ही भोजन-सामग्री व्यर्थ नष्ट होती है।

इसी तरह धर्मके नाम पर फैले हुए अंधविश्वासोंके कारण भी अक्सर भारी बिगाड़ होता है। लोग किसी न किसी कामनाके खातिर कोई अनुष्ठान

करते हैं। इसमें धर्मके नाम पर धोखा देनेवाले लोग मिल ही जाते हैं। कुछ अनुष्ठान तो बहुत ही खर्चीले होते हैं। इसके सिवा बीमारीमें सीधे डाक्टर वैद्य या हकीमका इलाज करानेके बजाय लोग ओझोंसे मंतर-जंतर कराते हैं, माला घुमाते हैं। इन बातोंमें होनेवाला खर्च बेकार तो है ही, परन्तु यह प्रथा समाजके नैतिक स्तरको भी गिरानेवाली है। ऐसी प्रथाओंसे अनेक नैतिक बुराइयां पैदा होती हैं।

८ **उड़ाऊपन और श्रीमन्ताईका प्रदर्शन** लोग श्रीमंती दिखानेके लिए जो कुछ भारी खर्च करते हैं, वे भी आर्थिक दृष्टिसे हानिकारक हैं। श्रीमंतीका प्रदर्शन करनेके खातिर तड़क-भड़कवाले जरी या मखमलके कपड़े पहननेमें और आभूषणोंसे सजनेमें व्ययका खर्च तो होता ही है, साथ ही शरीरको भी बड़ी असुविधा और हानि होती है। मनुष्य जितना धनवान होता है उससे ज्यादा दिखानेके लिए बहुत बार वह गलत खर्च करता है। लड़केके लिए बहू लानी हो, वसीलेसे काम निकालना हो या कोई बड़ा ठेका लेना हो, तब लोग अपने वतसे बाहर खर्च कर डालते हैं। लड़केके लिए लड़की न मिलती हो तो लोग कर्ज करके जमीन खरीदते हैं, मकान बनाते हैं और घोड़ागाड़ी रखते हैं। इसके अलावा आतिथ्यमें भी अपना बड़प्पन और अमीरी दिखानेके लिए लोग भारी खर्च करते हैं।

९ **सामाजिक रीति रिवाज और रूढ़ियां** विवाह, मृत्यु और जनेऊ आदि सामाजिक प्रसंगों पर भोजोंमें अन्नका जो बिगाड़ होता है और दूसरे कितने ही व्यर्थके खर्च होते हैं, वे सबको मालूम हैं। इसके उत्तरमें यह कहा जाता है कि जन्मभर मनुष्य एक ही तरहका, किसी भी प्रकारकी विविधताके बिना, पाई पाईके हिसाबवाला, झंझटभरा जीवन बिताता है। उसके जीवनमें दो चार ही ऐसे मौके आते हैं जब वह अपनी बंधी हुई थैलियोंको जरा खुला छोड़ सकता है। ऐसे समय यदि वह अधिक खर्च कर ले तो इसकी टीका क्यों की जाती है? ऐसी टीका आनन्द-उत्सवके प्रेमी या भोगी और रसिक कहलानेवाले लोगों द्वारा खास तौर पर किया जाता है। यह सच है कि आनन्द उत्सव जीवनके लिए जरूरी हैं। जीवनमें उल्लास और आनन्दके लिए स्थान होना ही चाहिये। परंतु आनन्द भूलना या अन्यायपूर्ण ढंगसे नहीं मनाया जा सकता। इसमें आसपासके लोग भूखे मरते हों ऐसे समय जिनके पास साधन-सम्पत्ति हो वे आनन्द-उत्सवमें पैसे उड़ायें, इसमें समाजके साथ एक तरहका अन्याय अवश्य होता है। परंतु बाजकी करुण स्थिति तो यह है कि जिसके पास कोई साधन नहीं होता और जिसका ऐसा खर्च करनेका हार्दिक

इच्छा भी नहीं होती, उसे समाजके रीति रिवाज और रूढ़ियोंके कारण इस तरहकी फिजूलखर्ची और बिगाड़ करना पड़ता है। ऐसे उड़ाऊपनमें और सम्पत्तिकी बरबादीमें भला क्या रसिकता या क्या आनंद हो सकता है? लोग पेटूकी तरह खाते और फिर भी पत्तलोंमें बहिसाब जूठन छोड़कर उठ जायें और बादमें यह सब जूठन भिखारी खाय या चाटें — इस दृश्यको रसोत्पादक आनन्ददायी अथवा उल्लासपूर्ण कैसे कहा जा सकता है? बड़े शहरोंमें कुछ मौजी जीव होटलोंमें खान-पीनका आनन्द लेते हैं और वहां बहिसाब अन्नका बिगाड करके आनन्द और उल्लास प्राप्त करनेका दावा करते हैं। परन्तु होटलवाला तो हिसाबी वृत्तिका आदमी होता है। इसलिए वह अपने यहांकी जूठन और बासी खाना गरीब लोगोंको बेच डालता है। उस आनन्द और उल्लासको कलुषित करनेवाले इस आनुषंगिक परिणाम पर ऐसे लोगोंका ध्यान जाना ही चाहिये जिनमें समाजके प्रति जिम्मेदारीकी थोड़ी भी भावना बची हुई है। सगे सम्बन्धियों और मित्रोंके साथ मिलने-जुलनेका आनन्द लेना हो तो उसके लिए भी अच्छे और संस्कारी तरीके ढूंढ़ने चाहिये। आज तो हम इस तरह व्यवहार करते हैं मानो साथ बैठकर मिठाइयां उड़ाना ही आनन्दका एकमात्र साधन है। हमें ऐसे सहभोजोंकी योजना करना सीखना चाहिये जो सादे हों, जिनमें बहुत झंझट न हो और जिनमें अन्नका बिगाड़ न हो।

१० व्यसन तंबाकू, मद्यपान और जुआ आदि व्यसनों पर भी मनुष्य अपार दुर्व्यय करता है। इनमें से मद्यपान तो किसी भी समाजमें प्रतिष्ठाकी बात नहीं समझा जाता। परन्तु तम्बाकूका सेवन, खास कर बीड़ी सिगरेट पीनेका रिवाज सब जगह है और इसमें कोई अप्रतिष्ठा भी नहीं मानी जाती। प्रोफेसर सिगरेटका धुआं उड़ाते उड़ाते अपने विद्यार्थियोंके साथ बातें करते हैं कवि और लेखक बीड़ी सिगरेटके धुएंसे प्रेरणा ग्रहण करनेका दावा करते हैं और कारकुनी या मजदूरी करनेवाले लोग बीच बीचमें बीड़ीके धुएंसे आरामका अनुभव करते हैं। तम्बाकूको बनानेके लिए बहुत ज्यादा जमीन काममें ली जाती है। शराबकी लत मनुष्यका छूटना आसान है पर बीड़ीकी लत मनुष्यको दबाये रखती है। बीड़ीका व्यसनी जब बीड़ी न मिले ऐसी स्थितिमें पड़ जाता है तो वह बीड़ी जुटानेके लिए चाहे जैसा नीच उपाय करनेमें भी नहीं हिचकिचाता। यही बात जुएकी भी है। ताश कुछ प्रकार उदाहरणके लिए घुड़दौड़ ऐसे हैं जिनमें भाग लेना अप्रतिष्ठित नहीं माना जाता। जिन्हें उसकी लत पड़ जाती है वे लोग केवल स्वयं-पतनका ही कारण नहीं होते बल्कि दूसरों भी कई कुटुम्बोंके विनाशके कारण बन

जाते हैं। रेस या घुड़दौड़ पीछे कितना सफर-खर्च कितना होटल-खर्च और कितना समय नष्ट होता है इसका हिसाब लगाया जाय तो ठीक पता चले कि उसके लिए कितना दुर्व्यय होता है।

११ फैशन कपड़ा और रहन-सहनके फैशन समय-समय पर बदलते रहते हैं। और एक फैशन पुराना हुआ कि उसके लिए खरीदी हुई सारी चीजें और बनाया हुआ माल निकम्मा हो जाता है। फैशनके लिए मालके बनानेमें भी बहुत बिगाड़ होता है। शरीरकी सजावट और कपड़े वगैराके बारेमें मनुष्य सुघड़ जरूर रहे और कला तथा सुन्दरताका भी ध्यान रखे परन्तु आजकलके फैशन न सिर्फ पैसा बरबाद करनेवाले होते हैं बल्कि कला और सौंदर्यका खून करनेवाले और अभिरुचिको हीन बनानेवाले भी होते हैं।

पूंजीवादी उत्पादन और नफाखोरी

१२ सम्पत्तिके दुर्व्ययके इन अलग अलग प्रकारोंकी जड़में आजकी जो दोषपूर्ण अर्थ-व्यवस्था है उसका अब हम विचार करेंगे। आजकल उत्पादक लोग पैसेके रूपमें उन्हें ज्यादासे ज्यादा नफा हो इसी दृष्टिसे अपनी उत्पादनकी प्रवृत्ति चलाते हैं इसलिए उपभोगकी वस्तुओंके प्रकारमें तथा उपभोगकी समूची रीतिमें बहुत बड़े दोष घुस गये हैं। नफाखोर उत्पादक उपभोग और व्ययकी कलाको मुख्यतः तीन तरहसे बिगाड़ते हैं और नुकसान पहुंचाते हैं। (१) मनुष्यको सचमुच हानि पहुंचानेवाली और उसका अनिष्ट करनेवाली चीजें और सवाएं व्ययके लिए वे बाजारमें रखते हैं (२) समाजकी मुख्य आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए बाजारमें आनेवाली चीजोंमें मिलावट करके या उन चीजोंकी बनावटमें हल्का माल लगाकर या घटिया काम करके उन चीजोंकी उपयोगी होनेकी शक्तिको घटा देते हैं (३) वे लोगोंको ज्यादासे ज्यादा सुख-सुविधा पहुंचानेके लिए नहीं बल्कि इस दृष्टिसे काम करते हैं कि उन्हें ज्यादासे ज्यादा नफा हो। इसलिए वे लोगोंकी कुछ व्ययकी या कम महत्वकी आवश्यकताओंको विशेष उत्तेजन देते हैं और जीवनकी पोषक आवश्यकताओंको पीछे ढकेल देते हैं।

१३ हमारी कुछ अत्यन्त खर्चीली और जीवनको चूसनेवाली सामाजिक बुराइयों — जैसे मद्यपान जुआ वेश्यावृत्ति बिना हवा रोशनीवाले गंदे चालें मिलावटवाली खाने-पीनेकी चीजें झूठी दवाइयां और नकली तथा कमजोर चीजें वगैरा — की तहमें देखें तो मालूम होता है कि इन चीजोंके धंधेमें बहुत बड़ा नफा रहता है और इसलिए समाजमें इनका प्रचार हुआ है। इस प्रकारके व्यापार धंधेमें लगे हुए लोग जीवन-कलाकी प्रगतिके बहुत बड़े शत्रु हैं। इन

चार्जोंका बुराइमें फँसे हुए लोगोंको उनके चंगुलमें से किस तरह निकाला जाय यह अत्यन्त गंभीर सामाजिक प्रश्न है। इन सब बुराइयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यापार धनोंका कम करना या इन पर अंकुश रखनेके लिए हर देशकी सरकार थोड़ा-बहुत मेहनत करती है या मेहनत करनेका दिखावा करती है। इन नशाखोरीके सवालोंमें भी अपना ठाठबाट और अपना असर इतना जमा रखा है कि वे सरकारको उचित आवश्यक कदम नहीं उठाने देते। सरकारें भी केवल ऐसा दिखावा ही करवाती हैं कि वह जनताकी भला चाहनेवाली है। इसलिए सरकार द्वारा इन बुराइयोंको जड़ उखाड़नेमें कितनी सफलता मिलेगी यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। इसका सच्चा उपाय ऐसा अर्थ रखनेवाले अस्तित्वमें लाना होगा जिनसे इन बुराइयोंकी जड़में घुसे हुए लोगोंके लिए जरा भी गुंजाइश न रहे। इसके लिए लोगोंको शिक्षा देकर तैयार करनेका काम शिक्षाशास्त्रियों और सुधारकोंका है। वे यदि सरकार पर प्रभाव डाल सकें तो इस कामके लिए सरकारी तंत्रका उपयोग हो सकता है।

खाद्य पदार्थोंमें मिलावट

१४ नशाखोरीके कारण मनुष्यकी प्रतिदिनकी खान-पीनकी चीजोंमें होनेवाली मिलावटके और उसके कारण कमसे कम प्राथमिक आवश्यकताओंकी पूर्तिमें घुसी हुई बुराइयोंके कुछ उदाहरण हम यहां देंगे। दूध और घीमें होनेवाली मिलावट तो बहुत जानी हुई और सबके अनुभवकी बात है। आज शुद्ध दूध या घी न केवल सिर्फ शहरोंमें नहीं मिल सकता बल्कि गांवोंमें भी नहीं मिल सकता। मिलावट करनेकी युक्तियां और मिलावटकी चीजें इतनी भीतरी भागोंमें भी घुस गई हैं। होटलों लारियों और मिठाईकी दुकानोंमें खास खास चीजें शरीरको हानि पहुंचानेवाले रंगोंसे और हल्के दरजेके सुगंधित पदार्थोंसे आकर्षक बनाई जाती हैं। होटलोंमें आमको और दूसरे फलोंको जो रस परोसा जाता है वह शायद ही उन फलोंका सच्चा रस होता है। दातनमें बना ही हल्की चीजोंका सावा बनाकर उसमें उस फलकी सुगंध देनेवाले इत्र सत (एसेन्स) डाल दिये जाते हैं। बाजारमें तैयार मिलने वाली मिठाइयां मुरब्बे वगैरामें कैसा मिलावट होता है इसके कुछ उदाहरण एच० जी० वेल्सकी वर्क वर्क एण्ड हैपीनेस आफ मैनकाइण्ड नामकी पुस्तकसे नीचे दिये जाते हैं

(१) एक मटमोठा गोलियोंकी पुड़िया पर शुद्ध फलोंका रस और सिर्फ शक्कर ऐसा छपा पर्चा चिपकाकर एक कम्पनी बेचती थी। उस पर धोखा देनेकी नालिश हुई। उसमें कभी शुद्ध करके बनाया गया था कि

मीठा गोलियां बनानेमें फल या शक्कर दोनोंमें से किसीका भी उपयोग नहीं किया गया था। व्यापारी आजकल असली चीजोंके बजाय 'स्वीकृत विकल्प' काममें लेते हैं। यह भी एक चतुराई भरा शब्दप्रयोग है। नीबूके रसके स्थान पर 'साइट्रिक एसिड' और शक्करके स्थान पर 'ग्लुकोज' को 'स्वीकृत विकल्प' माना जाता है। इस कंपनीने तो साइट्रिक एसिड भी दूसरे व्यापारीसे खरीदा था। उस दूसरे व्यापारीका यह खयाल था कि साइट्रिक एसिड के स्वीकृत विकल्पके रूपमें टार्टरिक एसिड दिया जा सकता है। व्यापारकी नीति तो यहां तक पहुंचती है कि टार्टरिक एसिड भी हलका बनाया जा सकता है। इस तरह खटमीठी गोलियां बनानेवाली उस कंपनीको तो टार्टरिक एसिड के स्वीकृत विकल्पके रूपमें दूसरी ही कोई चीज मिली थी। उस कंपनीको कुछ पता ही न था कि उसने क्या चीज काममें ली है। साइट्रिक एसिड नीबूका तेजाब होता है और टार्टरिक एसिड इमलीका तेजाब है। परन्तु ये नीबू या इमलीसे नहीं बनाये जाते। इतनी ही बात है कि रासायनिक दृष्टिसे उनमें नीबू और इमलीके तत्त्व होते हैं। कुछ बहुत हल्की चीजोंसे ये तेजाब बनाये जाते हैं। ग्लुकोज शक्करके तत्त्वोंवाला रासायनिक पदार्थ है और अधिकतर हड्डियोंसे बनाया जाता है। अन्ततकी तरहसे पृथक्करण कराने पर यह मालूम हुआ कि वह हड्डियोंसे ही बनाया गया था। इस तरह उस कंपनीने तो जीभके स्वादमें फंसे हुए बेचारे बच्चोंको विकल्पका विकल्प और उसका भी विकल्प ऐसा कोई पदार्थ दिया था। पुड़िया पर चिपकाये गये पर्चेमें उपरोक्त झूठ शब्द ही नहीं थे बल्कि उस पर तो एक बड़े और पीले नीबूका और पीछेका और सुन्दर दिखाई देनेवाले और नीबूको ताजा बनानेवाले नीबूके सुन्दर हरे पत्तोंका भी चित्र दिया गया था। प्रतिवादी कंपनीने यह दलील दी थी कि यह चित्र तो इसलिए दिया गया था कि उसे देखकर खानेवालेको यह अनुभव हो कि इन खटमीठी गोलियोंका स्वाद सच्चे नीबू जैसा है। परन्तु साक्षी ऐसी आई कि गोलियोंमें नीबूका स्वाद जरा भी नहीं आता था। प्रतिवादी यह दलील भी दे सकते थे कि इसीलिए तो पुड़िया पर नीबूका चित्र इनकी खास जरूरत था! शराबसे अथवा घृणा करनेवाला कोई आदमी जो जन्म भर इस धातक जहरसे दूर रहा हो, अगर इन खटमीठी गोलियोंको चाव से खाकर शराब और मद्य वह हड्डियोंसे निकाली गई न पचनेवाली चीजें हों उनके पेटमें जायगा। यह विचार बड़ा दुःखदायी है।

(२) लिया फलका मुरब्बा फल और शक्करकी चाशनी इन नाम बनता है। घर पर बनाये गए मुरब्बेमें खानेकर ये ही दो चीजें होती हैं।

उसमें हल्का जातिका जड़ें हल्का वनस्पतियोंकी मात्रा, रंग आदि कुछ नहीं डाला जाता। परन्तु इनके बाजारमें पहले दरजके और दूसरे दरजके मुरब्बे कैसे बिकते हैं यह जानने लायक है। पहले दरजके मरब्बेमें फलकी मात्रा ५० प्रतिशतसे अधिक नहीं होती और दूसरे दरजके मुरब्बेमें यह मात्रा २० प्रतिशतसे अधिक नहीं होती। इनके अलावा ये ५० प्रतिशत फल भी शुद्ध नहीं होते। उनमें स्वीकृत विशेष रूपमें बनी जानवाली चाहे जैसी बासी वनस्पतिकी मात्रा होता है। जिस फलका मुरब्बा कहा जाता हो उस फलके बीज मालमें दीखने चाहिये। इसलिए बाज बेचनेवाले पुराने सग्रहमें से बीज लाकर इनमें डाल देते हैं। इन बीजों पर साइट्रिक एसिड या टार्टरिक एसिड चुपड़ दिया जाता है और वे इस तरह रंग दिये जाते हैं कि ताज़े दिखाई दें। पहले दरजका अंग्रेजी मुरब्बा जब ऐसा होता है तो दूसरे और तीसरे दरजेके मुरब्बे कैसे होते होंगे इसकी कल्पना की जा सकती है।

१५ जो लोग बाजारमें मिलनेवाले तैयार अचार चटनी मुरब्बे आदि काममें लेते हैं उन्हें सावधान रहना चाहिये।

१६ यह तो मिलावटकी बात हुई। परन्तु हमारी आजकी आदत और हमारा जीवन ऐसा हो गया है कि हमारे खान-पानकी चीजोंमें जो गुण होने हैं उनका हमें पूरा लाभ नहीं मिलता। अहमदाबाद और बम्बई जैसे शहरोंमें जो दूध मिलता है वह १२–१५ घंटे पहले निकाला हुआ होता है। दूधके गुणकारी तत्त्व ऐसे बासी दूधमें बहुत कम हो जाते हैं। यही बात सागभाजी, फल और अण्डे आदिकी है। शहरोंमें बड़े बड़े अमीरोंको भी ये चीजें ताजी नहीं मिल सकतीं। हाथचक्कीमें रोज पीसकर काममें लिये जानेवाले आटे और मिलमें पिसवाकर ८–१५ दिन तक काममें लिये जानेवाले आटेके गुणोंमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ जाता है। ऐसा ही अन्तर हाथकुटे चावल और मिलमें पालिश किये हुए चावलके गुणोंमें पड़ जाता है।

झूठी दवाएं

१७ आजकल हम उनको जब तब तो सारा धोखेबाजी होता दिखाई देता है। आजकलके अखबारोंमें आधा आधा पन्ना दवाके विज्ञापनोंसे भरा रहता है। दवाएं गोली और उनके प्रचारके लिए जबरदस्त खर्च करनेवाले विज्ञापन तथा दवाओंकी शीशियों और डिब्बियोंके बढ़िया पैकिंग पर ज्यादा खर्च होता है। असलमें दवा तो कम ही कम कीमतकी होती है और वह भी नाम मात्रको लाभ पहुंचानेवाली होती है या नाम मात्रकी नुकसानदेह होती है।

मीठी गोलियां बनानेमें फल या शक्कर दोनोंमें से किसीका भी उपयोग नहीं किया गया था। व्यापारी आजकल असली चीजोंके बजाय 'स्वीकृत विकल्प' काममें लेते हैं। यह भी एक चतुराई भरा शब्दप्रयोग है। नीबूके रसके स्थान पर 'साइट्रिक एसिड' और शक्करके स्थान पर 'ग्लूकोज'को 'स्वीकृत विकल्प' माना जाता है। इस कंपनीने तो साइट्रिक एसिड भी दूसरे व्यापारीसे खरीदा था। उस दूसरे व्यापारीका यह खयाल था कि 'साइट्रिक एसिड' के स्वीकृत विकल्पके रूपमें 'टार्टरिक एसिड' दिया जा सकता है। व्यापारकी नीति तो यहां तक पहुंचती है कि 'टार्टरिक एसिड' भी हल्का बनाया जा सकता है। इस तरह खटमीठी गोलियां बनानेवाली उस कंपनीको तो 'टार्टरिक एसिड' के स्वीकृत विकल्पके रूपमें दूसरी ही कोई चीज मिली थी। उस कंपनीको कुछ पता ही न था कि उसने क्या चीज काममें ली है। साइट्रिक एसिड नीबूका तेजाब होता है और टार्टरिक एसिड इमलीका तेजाब है। परन्तु ये नीबू या इमलीसे नहीं बनाये जाते। इतनी ही बात है कि रासायनिक दृष्टिसे उनमें नीबू और इमलीके तत्त्व होते हैं। कुछ बहुत हलकी चीजोंसे ये तेजाब बनाये जाते हैं। ग्लूकोज शक्करके तत्त्वोंवाला रासायनिक पदार्थ है और अधिकतर हड्डियोंसे बनाया जाता है। अदालतकी तरफसे पृथक्करण कराने पर यह मालूम हुआ कि वह हड्डियोंसे ही बनाया गया था। इस तरह उस कंपनीने तो जीभके स्वादमें फंसे हुए बेचारे बच्चोंको विकल्पका विकल्प और उसका भी विकल्प ऐसा कोई पदार्थ दिया था। पुड़िया पर चिपकाये गये पर्चेमें उपरोक्त झूठे शब्द ही नहीं थे, बल्कि उस पर तो एक बड़े और पीले नीबूका और पीछेकी ओर सुन्दर दिखाई देनेवाले और नीबूको ताजा बनानेवाले नीबूके सुन्दर हरे पत्तोंका भी चित्र दिया गया था। प्रतिवादी कंपनीने यह दलील दी थी कि यह चित्र तो इसलिए दिया गया था कि उसे देखकर खानेवालेको यह अनुभव हो कि इन खटमीठी गोलियोंका स्वाद अच्छे नीबू जैसा है। परन्तु साक्षी ऐसी आई कि गोलियोंमें नीबूका स्वाद जरा भी नहीं आता था। प्रतिवादी यह दलील भी दे सकते थे कि इसीलिए तो पुड़िया पर नीबूका चित्र देनेकी खास जरूरत थी! शराबके अत्यन्त घृणा करनेवाला कोई आदमी जो जन्म भर इस धातक व्यसनसे दूर रहा हो अगर इन खटमीठी गोलियोंको चखे तो शुद्ध शराब और मनों हद दर्जेकी हड्डियोंसे निकाली गई न पचनेवाली चीजें हां उसके पेटमें जायगी। यह विचार बड़ा दुःखदायी है।

(२) निमा फलका मुरब्बा फल और शक्करकी चाशनी इन नाम बनता है। घर पर बनाये हुए मुरब्बेमें मामूली ये ही दो चीजें होती हैं।

उसमें हल्दी जातिकी जडें हल्की वनस्पतियोंकी मात्रा रंग आदि कुछ नहीं डाला जाता। परन्तु लन्दनके बाजारमें पहले दरजेके और दूसरे दरजेके मुरब्बे कैसे बिकते हैं यह जानने लायक है। पहले दरजेके मुरब्बेमें फलकी मात्रा ५० प्रतिशतसे अधिक नहीं होती और दूसरे दरजेके मुरब्बेमें यह मात्रा २० प्रतिशतसे अधिक नहीं होती। इसके अलावा ये ५० प्रतिशत फल भी शुद्ध नहीं होते। उनमें स्ट्रौबेरी विक्रयके रूपमें बरता जानेवाला चाहे जैसा सामान्य वनस्पतियोंका मावा होता है। जिस फलका मुरब्बा कहा जाता हो उस फलके बीज मात्रमें डालने चाहिये। इसलिए बीज बेचनेवालोंके पुराने संग्रहमेंसे बीन लेकर इसमें डाल देते हैं। इन बीजों पर साइट्रिक एसिड या टार्टरिक एसिड चुपड़ दिया जाता है और वे इस तरह रंग दिये जाते हैं कि ताजे दिखाई दें। पहले दरजेका अंग्रेजी मुरब्बा जब ऐसा होता है तो दूसरे और तीसरे दरजेके मुरब्बे कैसे होते होंगे इसकी कल्पना की जा सकती है।

१५ जो लोग बाजारमें मिलनेवाले तैयार अचार चटनी मुरब्बे आदि काममें लेते हैं उन्हें सावधान रहना चाहिये।

१६ यह तो मिलावटकी बात हुई। परन्तु हमारा आजका आहार और हमारा जीवन ऐसा हो गया है कि हमारे खान-पानकी चीजोंमें जो गुण होते हैं उनका हमें पूरा लाभ नहीं मिलता। अहमदाबाद और बम्बई जैसे शहरोंमें जो दूध मिलता है वह १२–१५ घंटे पहले निकाला हुआ होता है। दूधके गुणकारी तत्त्व ऐसे बासी दूधमें बहुत कम हो जाते हैं। यही बात सागभाजी फल और अण्डे आदिकी है। शहरोंमें बड़े बड़े अमीरोंको भी ये चीजें ताजी नहीं मिल सकतीं। हाथचक्कीमें रोज पीसकर काममें लिये जानेवाले आटे और मिलमें पिसवाकर ८–१५ दिन तक काममें लिये जानेवाले आटेके गुणोंमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ जाता है। ऐसा ही अन्तर हाथकुटे चावल और मिलमें पालिश किये हुए चावलके गुणोंमें पड़ जाता है।

झूठी दवाएं

१७ दवाके क्षेत्रमें हम जाते हैं तब तो भारी धोखेबाजी दिखाई देती है। आजकल अखबारोंमें आधी जगह दवाके विज्ञापनोंसे भरी रहती है। दवाके गुणों और उसके प्रचारसे होनेवाले जबरदस्त लाभ बतानेवाले विज्ञापन तथा दवाकी शीशियों और डिब्बियोंके बढ़िया पैकिंग ही ज्यादा खर्चीले होते हैं। असली दवा तो बहुत ही कम कीमतकी होती है और वह भी काम पहुंचानेवाली होती है या नहीं यह सन्देह होता है।

मीठी गोलियां बनानेमें फल या शक्कर दोनोंमें से किसीका भी उपयोग नहीं किया गया था। व्यापारी आजकल असली चीजोंके बजाय 'स्वीकृत विकल्प' काममें लेते हैं। यह भी एक चतुराई भरा शब्दप्रयोग है। नीबूके रसके स्थान पर 'साइट्रिक एसिड' और शक्करके स्थान पर 'ग्लूकोज' को 'स्वीकृत विकल्प' माना जाता है। इस कंपनीने तो 'साइट्रिक एसिड' भी दूसरे व्यापारीसे खरीदा था। उस दूसरे व्यापारीका यह खयाल था कि 'साइट्रिक एसिड' के स्वीकृत विकल्पके रूपमें 'टार्टरिक एसिड' दिया जा सकता है। व्यापारकी नीति तो यहां तक पहुंचती है कि 'टार्टरिक एसिड' भी हलका बनाया जा सकता है। इस तरह खटमीठी गोलियां बनानेवाली उस कंपनीको तो 'टार्टरिक एसिड' के स्वीकृत विकल्पके रूपमें दूसरी ही कोई चीज मिली थी। उस कंपनीको कुछ पता ही न था कि उसने क्या चीज काममें ली है। साइट्रिक एसिड नीबूका तेजाब होता है और टार्टरिक एसिड इमलीका तेजाब है। परन्तु वे नीबू या इमलीसे नहीं बनाये जाते। इतनी ही बात है कि रासायनिक दृष्टिसे उनमें नीबू और इमलीके तत्त्व होते हैं। कुछ बहुत हलकी चीजोंसे ये तेजाब बनाये जाते हैं। ग्लूकोज शक्करके तत्त्वोंवाला रासायनिक पदार्थ है और अधिकतर हड्डियोंसे बनाया जाता है। अदालतकी तरफसे पृथक्करण कराने पर यह मालूम हुआ कि वह हड्डियोंसे ही बनाया गया था। इस तरह उस कंपनीने तो जीभके स्वादमें फंसे हुए बेचारे बच्चोंको विकल्पका विकल्प और उसका भी विकल्प ऐसा कोई पदार्थ दिया था। पुड़िया पर चिपकाये गये पर्चेमें उपरोक्त झूठे नाम ही नहीं थे, बल्कि उस पर तो एक बड़े और पीले नीबूका और पीछेकी ओर सुन्दर दिखाई देनेवाले और नीबूको ताजा बतानेवाले नीबूके सुन्दर हरे पत्तोंका भी चित्र दिया गया था। प्रतिवादी कंपनीने यह दलील दी थी कि यह चित्र तो इसलिए दिया गया था कि उसे देखकर खानेवालेको यह अनुभव हो कि इन खटमीठी गोलियोंका स्वाद सच्चे नीबू जैसा है। परन्तु साक्षी ऐसी आई कि गोलियोंमें नीबूका स्वाद जरा भी नहीं आता था। प्रतिवादी यह दलील भी दे सकते थे कि इसीलिए तो पुड़िया पर नीबूका चित्र रखना लाजिमी था। शराबसे अत्यन्त घृणा करनेवाला कोई आदमी जो जन्म भर इस घातक जहरसे दूर रहा हो, अगर इन खटमीठी गोलियोंको खाय तो ग्लूकोजका शराब और मन्द हड्डियोंसे निकाली गई न पचनेवाली चीजें उसके पेटमें जायंगी। यह विचार बड़ा दुःखदायी है।

(२) बिना फलका मुरब्बा, फल और शक्करकी चाशनी इन नामसे बनता है। घर पर बनाये हुए मुरब्बेमें फल और शक्कर ये दो ही चीजें होती हैं।

उसमें हल्की जातिकी जड़ें, हल्की वनस्पतियोंका मावा, रंग आदि कुछ नहीं डाला जाता। परन्तु लन्दनके बाजारमें पहले दरजेके और दूसरे दरजेके मुरब्बे कैसे बिकते हैं यह जानने लायक है। पहले दरजेके मुरब्बेमें फलकी मात्रा ५० प्रतिशतसे अधिक नहीं होती और दूसरे दरजेके मुरब्बेमें यह मात्रा २० प्रतिशतसे अधिक नहीं होती। इसके अलावा ये ५० प्रतिशत फल भी शुद्ध नहीं होते। उनके स्वीकृत विकल्पके रूपमें बरती जानेवाली चाहे जैसी सस्ती वनस्पतियोंका मावा होता है। जिस फलका मुरब्बा कहा जाता हो उस फलके बीज मावेमें दीखने चाहिये। इसलिए बीज बेचनेवालोंके पुराने संग्रहमें से बीज लेकर इसमें डाले जाते हैं। इन बीजों पर साइट्रिक एसिड या टार्टरिक एसिड चुपड़ दिया जाता है और वे इस तरह रंग दिये जाते हैं कि ताजे दिखाई दें। पहले दरजेके अंग्रेजी मुरब्बेका जब ऐसा होता है तो दूसरे और तीसरे दरजेके मुरब्बे कैसे होते होंगे इसकी कल्पना की जा सकती है।

१५ जो लोग बाजारमें मिलनेवाले तैयार अचार, चटनी, मुरब्बे आदि काममें लेते हैं उन्हें सावधान रहना चाहिये।

१६ यह तो मिलावटकी बात हुई। परन्तु हमारा आजका आलस्य और हमारा जीवन ऐसा हो गया है कि हमारे खानपानकी चीजोंमें जो गुण होते हैं उनका हम पूरा लाभ नहीं मिलता। अहमदाबाद और बम्बई जैसे शहरोंमें जो दूध मिलता है वह १२–१५ घंटे पहले निकाला हुआ होता है। दूधके गुणकारी तत्त्व ऐसे बासी दूधमें बहुत कम हो जाते हैं। यही बात साग-भाजी, फल और अण्डे आदिकी है। शहरोंमें बड़े बड़े अमीरोंको भी ये चीजें ताजी नहीं मिल सकतीं। हाथचक्कीमें रोज पीसकर काममें लिये जानेवाले आटे और मिलमें पिसवाकर ८–१५ दिन तक काममें लिये जानेवाले आटेके गुणोंमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ जाता है। ऐसा ही अन्तर हाथकुटे चावल और मिलमें पालिश किये हुए चावलके गुणोंमें पड़ जाता है।

झूठी दवाएं

१७ दवाके क्षेत्रमें हम उतरते हैं तब तो भारी धोखेबाजी होती दिखाई देती है। आजकलके अखबारोंमें अधिकतर ज्यादा जगह दवाके विज्ञापनोंसे भरी रहती है। दवाके गुणों और उसके असरके बारेमें जबरदस्त दावे करनेवाले विज्ञापन तथा दवाकी शीशियों और डिब्बियोंके बढ़िया पैकिंग ही ज्यादा खर्चीले होते हैं। असली दवा तो बहुत ही कम कीमतकी होती है और वह भी लाभ पहुंचानेवाली होती है या नहीं यह संदेहास्पद होता है।

१८ हमारे राष्ट्रकी कुल आय १९६०–६१में १४२ अरब रुपया मानी गई है। उसका हमें पूरा उपयोग करना हो यानी उससे सामान्य लोगोंको अधिकसे अधिक सुख-सुविधायें देना हो तो सबसे पहले इस आयका बंटवारा न्यायपूर्वक होना चाहिये। वर्तमान अन्यायपूर्ण आर्थिक असमानतामें थोड़ेसे आदमियोंके हिस्सेमें आयका बहुत बड़ा भाग चला जाता है और उन्हें किसी बातकी कमी न होनेके कारण वे सम्पत्तिका भयंकर दुर्व्यय करते हैं। दूसरी ओर बड़ी संख्याके लोगोंको आवश्यक व्यय करने लायक पैसा भी मयस्सर नहीं होता। हमें जो कुछ आय प्राप्त होती है उसका पूरा सद्व्यय करनेके लिए हमें कहां कहां नजर दौड़ानेकी जरूरत है और कैसे कैसे बिगाड़ रोकने चाहिये इसकी कुछ कल्पना करानेके लिए हमने दुर्व्ययके प्रकारोंके कुछ उदाहरणों पर विचार कर लिया। यदि समाजकी उचित और आरोग्य प्रदान करनेवाली आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर समाजके रहन-सहन और खर्चके स्तर निश्चित किये जायं तो हमारी कुल आयसे समाजको अधिकसे अधिक सुख-सुविधायें मिल सकती हैं और समाजका जीवन भी सब तरहसे विपुल समृद्ध बन सकता है। ऐसा होनेमें कहां कहां रुकावटें आती हैं इसे भलीभांति समझनेके लिए हम अपनी आवश्यकताओं और उन्हें पूरा करनेकी पद्धतियों पर थोड़ा विचार करेंगे।

प्राथमिक समाजमें दुर्व्यय नहीं होता था

१९ मनुष्यने अपने आसपासकी प्रकृतिसे पहले तो सहज वृत्तिसे और बादमें बुद्धिका उपयोग करके अपनी आवश्यकतायें पूरी करना आरंभ किया। जिस प्रकृतिके बीच मनुष्य रहा उसमें अपने जीवनको टिकाये रखनेके लिए उसने परिश्रम करके अपनी आवश्यकताएं पूरी करनेकी कुछ प्रथाएं डालीं। शुरूमें उसने अपने पासकी प्रकृतिसे ही अपना भोजन अपने कपड़े अपना घर अपने औजार और अपने हथियार जुटाना शुरू किया। अपने आसपासके प्रदेशमें जो वनस्पति और पशु-पक्षी मिल जाते उन्हींमें से उसने अपना भोजन ढूंढ निकाला। बेशक उनमें से अपना चुनाव करनेके लिए तो उसे बुद्धि लगानी ही पड़ती थी। और उसने बुद्धि लगाई इसीलिए अपना भण्डार बनानेके लिए उसे खेती करना और पशुपालन करना सूझा। अपने पहननेओढ़नेके लिए कपड़ा भी उसने उसी जगह मिल जानेवाले चमड़े रोएं बाल और पत्तोंकी छालको टीप टाप कर बना लिया। रहनेके लिए उसने बड़ पत्थरोंके खोखले तना और गुफाओंका उपयोग किया। अपने औजार हथियार और बरतन आदि भी उसने इसी तरह आसपासकी प्रकृतिमें

से उत्पन्न कर लिये। यह सब करनेमें जहां तक मनुष्यकी प्रवृत्ति प्राथमिक स्वरूपकी आवश्यकतायें पूरी करने तक ही मर्यादित रही वहां तक व्ययके मामलेमें गंभीर भूल होनेकी या सम्पत्तिका विनाश होनेकी गुंजाइश बहुत थोड़ी थी। हां ऐसा होता था कि स्थानीय प्रदेशमें मिलनेवाले आहारको तथा सभी चीजोंका उपयोग वह नहीं कर सकता था। लेकिन यह स्थिति बहुत समय तक नहीं रह सकी। जैसे जैसे जनसंख्या बढ़ती गई वैसे वैसे आहारके बारेमें प्रयोग करके स्थानीय प्रदेशमें मिल सकनेवाली सारी भोजन सामग्रीका उपयोग वह करने लगा। किसी जहरीली चीजको खा जानेकी भूल मनुष्यने की होगी परन्तु उसे तुरंत सुधार भी ली होगी। क्योंकि वह जो कुछ खाता था केवल जीवनको टिकाये रखनेके लिए खाता था, तरह तरहके स्वाद लेने और मौज उड़ानेके लिए नहीं खाता था। इसलिए जैसे आज हल्के जहरका काम करके शरीरको हानि पहुंचानेवाली चीजें मनुष्य जानते हुए भी स्वादवृत्तिके वश होकर खाता है वैसा प्राथमिक मानव नहीं करता था। जब तक मनुष्यका रहन-सहन प्राथमिक स्वरूपका था और मनुष्य प्रकृतिके अधिक समीप था, तब तक प्रकृतिमें मिलनेवाले अधिकतर पदार्थोंके व्ययमें से मनुष्य जीवनकी दृष्टिसे ज्यादासे ज्यादा लाभ उठा लेता था। खान-पान और काममें दूसरी चीजोंका चुनाव करनेमें उसका मुख्य ध्यान यही देखनेकी ओर रहता था कि उनमें जीवनके लिए उपयोगी होनेके गुण कितने हैं। गुफाओंमें रहनेवाले मनुष्यों या प्रारंभिक दशाका गोप-जीवन बितानेवाले कुटुम्बोंके रहन-सहनका स्तर बहुत ऊंचा नहीं था पर वे जिन किसी चीजका व्यय करते थे उसमें मनुष्यका सुख-सुविधा जुटानेकी जितनी भी शक्ति होती थी उसका वे पूरा उपयोग कर लेते थे। उनके व्ययमें विनाश या उड़ाऊपन नहीं होता था। मनुष्यको आहारके जरूरी तत्त्वों सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिक शोधोंका उसे ज्ञान नहीं था। फिर भी आहारमें से प्रोटीन शक्कर चरबी नमक आदि तत्त्व जरूरी मात्रामें मिलते रहें इस ढंगसे उसने अपनी खानेकी चीजें सहज वृत्तिसे पसन्द कर ली थी। इसी तरह प्राथमिक मनुष्य आजके जैसे कपड़े कभी नहीं पहनता था जिनमें फैशनके कारण कपड़ेका काफी विनाश होता है और फिर भी शरीरको न तो पूरा आराम मिलता है और न उसका पूरा रक्षण होता है। इसके सिवा वह अपने पासके साधनोंका एक नहीं परन्तु अनेक उपयोग करता था। उसके औजार और हथियार लगभग एक ही रहते थे। वे उत्पादनके काममें भी आते थे और आत्मरक्षाके लिए लड़नेमें भी काम आते थे।

रहनेका निवास और कपड़े वह ऐसे बनाता था जो शरीरको सरदी गरमी और बरसातसे बचानेके सिवा हिंस्र पशुओंसे भी उसकी रक्षा करते थे। खाना बनाने और खानेका समय उसने ऐसा रखा था कि ईंधनका उपयोग जिस समय खाना बनानेके लिए होता उसी समय उसे तापनेको भी मिल जाता था।

२० जब इस स्थितिमें से समाज ग्राम बना और खेती तथा हाथ उद्योगोंका विकास हुआ उसके बाद भी जब तक उत्पादन और व्ययके बीच सीधा संबंध रहा और अधिकतर उत्पादन या तो अपने ही उपभोगके लिए होता था या अपने जाने हुए ग्राहकोंके लिए होता था तब तक उत्पादन और व्यय दोनोंमें संपत्तिका बिगाड़ नहीं होता था। परन्तु जबसे उत्पादन दूर दूरके बाजारोंके लिए और बस मुनाफेके लिए होने लगा और परिवहन तथा व्यापारके साधन अधिक तेज होने लगे तबसे उत्पादन और उद्योग धंधे खूब बढ़े हैं, दूर दूरके लोग एक दूसरेकी बनाई हुई चीजोंका उपयोग करने लगे हैं, परन्तु कुदरती और स्थानीय अर्थ रचनाको इससे बड़ा धक्का लगा है। इससे इनकार नहीं कि बाजारके लिए किये जानेवाले इस उत्पादनसे समाजको कुछ लाभ हुआ होगा, परन्तु लाभकी अपेक्षा हानि अधिक हुई है। हम यह नहीं जान सकते कि दूरके देशोंमें तैयार हुई खानेकी और दूसरी चीजोंमें कितनी मिलावट है कितना नकलीपन है। पुराने जमानेके लोग बाहरसे आई हुई अपरिचित वस्तुओंको हमेशा शंकाकी नजरसे देखते थे। पर आज तो नवीनताका मोह इतना अधिक बढ़ गया है कि नई चीजमें जीवनके लिए उपयोगी होनेका कितना गुण है इसकी अच्छी तरह जांच किये बिना हम उसे सिर्फ इसलिए ले लेते हैं कि वह नई है और फिर देखादेखी उसका प्रचार भी होता है।

२१ आज हमने अपनी आवश्यकताओंका जंजाल इतना बढ़ा लिया है कि हम यह विवेक करना भी भूल गये हैं कि हमारी सच्ची आवश्यकतायें क्या हैं और ऐश-आरामकी वस्तुएं क्या हैं। जब तक मनुष्य अपनी आवश्यकतायें उतनी ही रखता है जितनी उसके शरीरको भलीभांति काम करने लायक स्थितिमें रखनेके लिए जरूरी हैं, तब तक वे अपने आप ही सम्पत्तिके सव्ययका उचित मर्यादामें रहती हैं। लेकिन जब वह तथाकथित सभ्य जीवनका स्तर ऊंचा उठाता है और ऐसी आवश्यकतायें बढ़ाने लगता है जिनकी जीवन जीनेकी दृष्टिसे बहुत कम कीमत है, कुछ नहीं है या घटाने लायक है तब सम्पत्तिके उत्पादन और व्यय दोनोंमें भूलें और बिगाड़ होनेकी संभावनाएं बढ़ने लगती हैं और राष्ट्रीय आय निकम्मी और हानिकारक चीजों पर खर्च

होने लगता है। इसीलिए पश्चिमके बहुतसे विचारवान लोगोंने और गांधीजीने आधुनिक सभ्यताको एक महारोग कहा है।

२२. हम देख चुके हैं कि हमारी आय बहुत ही थोड़ी है। इसलिए निकम्मी चीजों पर गलत खर्च करना हमें पुसा नहीं सकता। हमारे पास जो कुछ है उसका पूरा पूरा सदुपयोग हम करेंगे तो ही टिक सकेंगे। अलबत्ता इसका यह मतलब नहीं कि हम कंगाल और नीरस जीवन बितायें। केवल हमारी शारीरिक आवश्यकतायें पूरी हो जायं इससे हमें कभी संतोष नहीं मानना चाहिये। जीवनमें आनंद और उल्लासके लिए जरूर स्थान है। परन्तु यह आनन्द और उल्लास प्राप्त करनेके तरीके हमें ऐसे खोजने चाहिये जो सारे समाजको वह पहुंचानेवाले हों। मनोरंजनकी एक नई कला हमें निर्माण करनी होगी और इसके लिए समाजको तालीम भी देनी होगी। खर्चीले साधनोंके बिना भी हम ऊंचे प्रकारका आनंद ले सकते हैं। कम खर्चवाले मनोरंजनोंकी योजना भी की जा सकती है। और बड़े बड़े साधनोंके आडम्बरके बिना भी नृत्य-संगीत पूरी तरह आह्लादजनक बनाये जा सकते हैं। प्राकृतिक दृश्योंका रसास्वाद लेनेकी हमें तालीम मिली हो तो उनमें से तो उल्लासकी धारायें बहाई जा सकती हैं। और इसमें कौन इनकार कर सकता है कि मोटर या रेलकी यात्राकी अपेक्षा पैदल यात्राका मूल्य कहीं अधिक है? सभ्यताके नाम पर अथवा आनन्द उल्लास या मौज-शौकके नाम पर संपत्तिका दुर्व्यय सच्चे विकास या प्रगतिका लक्षण नहीं है, बल्कि सादे जीवनके साथ ऊंचे विचारों और ऊंची रसवृत्तियोंका विकास करनेमें ही सच्चा विकास और सच्ची प्रगति है।

मानव अर्थशास्त्र

छठा भाग

नवीन अय-रचना

मानव अर्थशास्त्र

छठा भाग

नवीन अथ रचना

१

समाजवाद

१ मजदूर-संघोंकी विविध प्रवृत्तियां, समाजकी आर्थिक सुरक्षाकी योजनायें, सहयोग-पद्धति और कर लगाकर असमानता कम करनेकी रीति — ये सब सम्पत्तिके असमान बंटवारेकी बुराइयोंको दूर करनेका प्रयत्न जरूर करती हैं; परन्तु ये सब प्रवृत्तियां और योजनायें आर्थिक असमानताकी जड़ पर प्रहार करनेवाली नहीं हैं। इन योजनाओं और प्रवृत्तियोंका हेतु यह है कि समाजकी पूंजीवादी व्यवस्थाको कायम रखकर उसमें यथासंभव सुधार किया जाय। कुछ अर्थशास्त्री मानते हैं कि नई नई खोजें और सुधार करके सम्पत्तिका उत्पादन करनेका प्रोत्साहन और प्रेरणा पूंजीवादी व्यवस्थामें ही संभव है और जैसे जैसे सम्पत्तिका उत्पादन बढ़ता जायगा वैसे वैसे भौतिक सुख-सुविधायें अधिकाधिक मात्रामें मनुष्योंको मिलती जायंगी। इसलिए वे ऐसी प्रवृत्तियों और योजनाओंको ही समाजकी सुस्थिति और प्रगतिके लिए पर्याप्त मानते हैं। जो लोग यह मानते हैं कि सम्पत्तिके बंटवारेमें असमानतायें तो रहेंगी ही और ये असमानतायें समाजकी प्रगतिके लिए वांछनीय और आवश्यक भी हैं, वे तो यह भी सुझाते हैं कि ये प्रवृत्तियां और योजनायें जरा धीमी गतिसे चलनी चाहिये। दूसरी ओर ऐसा वाद पैदा हुआ है जो कहता है कि वर्तमान पूंजीवादी अर्थ-रचनाको छिन्नभिन्न करके उसके स्थान पर ऐसी नई समाज-रचना स्थापित किये बिना मानव-समाज आगे प्रगति नहीं कर सकता, जिसमें उत्पादनके साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व-अधिकार न हो। इतना ही नहीं, बल्कि समाजकी प्रगतिने पूंजीवादी व्यवस्थाका नाश अब नजदीक ला पहुंचा है और हमें तो इस नाशमें निमित्तमात्र ही बनना है।

२ आज तककी अर्थ-रचनामें व्यक्तिको प्रधानता दी गई है। दुनिया इस विश्वास पर चली है या उसे चलाया गया है कि प्रत्येक व्यक्तिको पूरी आर्थिक स्वतंत्रता मिले तो अपने आप सारे समाजका आर्थिक हित सध जायगा। इसके स्थान पर अब एक ऐसा वाद व्यवहारमें आया है जो कहता है कि सारे समाजके हितकी दृष्टिसे विचार करो। समाजकी तुलनामें व्यक्ति गौण है और समाजके हितमें ही व्यक्तिका हित भी समाया हुआ है। यह वाद अर्थोत्पादनके सारे साधनों परसे व्यक्तिगत स्वामित्व हटाकर उन पर समाजका स्वामित्व स्थापित करनेकी और सम्पत्तिके उत्पादन, वितरण आदि समस्त

आर्थिक प्रवृत्तियों परसे व्यक्तिका नियंत्रण दूर करके समाजका नियंत्रण स्थापित करनेकी हिमायत करता है। इसलिए यह वाद समाजवाद कहलाता है।

२ ऐसा कहा जा सकता है कि इस समाजवादका एक आर्थिक दलके रूपमें यूरोपमें १९वीं शताब्दीमें जन्म हुआ। उसकी अनेक योजनाएं हैं। इन सब योजनाओंमें यह तत्त्व सामान्य है कि उत्पादनके साधनों परसे व्यक्तिगत स्वामित्वका अधिकार नष्ट कर दिया जाना चाहिये। लेकिन सभी समाजवादी यह नहीं मानते कि किसी भी तरहका काम करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको एकसा पारिश्रमिक मिलना चाहिये और समाजमें पूरी आर्थिक समानता स्थापित होनी चाहिये। पूरी समानताका आग्रह रखनेवालोंको दूसरे समाजवादियोंसे अलग पहचाननेके लिए साम्यवादी (कम्युनिस्ट) कहा जाता था। परन्तु सन १९१७की रूसी क्रान्तिके बाद समाजवादी (सोशलिस्ट) और साम्यवादी (कम्युनिस्ट) ये दो शब्द कुछ दूसरे ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। जो हिंसक क्रान्तिको अनिवार्य समझते हैं और मजदूरोंके विद्रोह द्वारा राज्यसत्ता हाथमें लेकर उस सत्ताके द्वारा सारे समाजमें क्रान्ति फैलाना चाहते हैं वे साम्यवादी (कम्युनिस्ट) कहलाते हैं, और जो वर्तमान लोकसत्तात्मक व्यवस्थामें बहुमत प्राप्त करके कानूनकी मददसे आर्थिक मामलोंमें क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेमें विश्वास रखते हैं वे समाजवादी (सोशलिस्ट) कहलाते हैं। हमारे देशमें अधिकतर कम्युनिस्ट (साम्यवादी) रूसकी कम्युनिस्ट पार्टीके साथ संबंध रखनेवाले हैं। 'अधिकतर' शब्दका प्रयोग इसलिए किया गया है कि ऐसे भी कुछ लोग हैं जो अपनेको साम्यवादी (कम्युनिस्ट) तो मानते हैं परन्तु रूसकी कम्युनिस्ट पार्टीके साथ संबंध नहीं रखते। हमारे देशके सोशलिस्ट ऐसा मानते हैं कि समाजवादी अर्थ-रचना स्थापित करनेके लिए पहले तो हमें विदेशी हुकूमतके पंजेसे छूटना होगा और इस पंजेसे छूटनेके लिए जो समाजवादी विचारधारा नहीं रखते उन लोगोंके साथ भी अभी तो हमें संयुक्त भावसे साधना करनी होगी और स्वतंत्र होनेके बाद प्रजातंत्रके जरिये ही समाजवादी अर्थ-रचना स्थापित करनेका कार्य शुरू किया जा सकेगा। अंतिम हेतु एक होने पर भी अलग अलग कार्य-पद्धतियोंकी हिमायत करनेवालोंके लिए समाजवादी और साम्यवादी अथवा सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट जैसे अलग अलग शब्द काममें लिये जाते हैं। वैसे इस सत्यनाशके लिए तो समाजवाद शब्द ही व्यापक है क्योंकि यह शब्द मूल अर्थको पूरी तरह प्रकट करता है।

उत्पादनके काममें भौतिक शक्तिका उपयोग करनेकी खोज होनेके बाद यूरोपमें बड़े पैमाने पर उत्पादन करनेवाले कारखाने शुरू हुए और

उनके कारण यन्त्रयुग अथवा उद्योग-युग आरम्भ हुआ। इस युगकी बुराइयोंका सामना करनेके लिए समाजवादका जन्म हुआ है। अनेक समय इसका और प्रचारकोंने समाजवादके अलग अलग रूपों और प्रयोगोंकी हिमायत की है। इन सबमें अपनी विद्वत्ता, प्रतिभा और पारमार्थिकताके कारण प्रसिद्ध जर्मन तत्ववेत्ता कार्ल मार्क्स अपना अनोखा स्थान रखता है। उसने समाजवादको शास्त्रीय रूप देकर उसका सम्पूर्ण कार्यक्रम बहुत विस्तारके साथ दुनियाके सामने प्रस्तुत किया है। उसके मुख्य सिद्धान्तोंकी इस प्रकरणमें हम संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

पूंजीका संचय मजदूरोंके शोषणसे हुई बचतका परिणाम

५ आज जिस सम्पत्तिका उपभोग हम कर रहे हैं वह सब मनुष्यके परम्परागत श्रमका परिणाम है और इसलिए चीजोंका मूल्य उन्हें तैयार करनेमें लगे हुए परिश्रमके आधार पर आंका जाना चाहिये — इस तरहके कार्ल मार्क्सके सिद्धान्तका, जिसे 'लेबर थियरी ऑफ वैल्यू' के नामसे पुकारा जाता है, विवेचन* करते समय हम देख चुके हैं कि उत्पादनके सब साधन पूंजीपतियोंके अधिकारमें होनेके कारण वे मजदूरोंको उनके श्रमके जितने दाम चुकाते हैं उनसे अधिक दाम उस चीजका — जो उनके श्रमका फल है — बाजारमें बेचकर वसूल कर लेते हैं। जहां उत्पादनके सभी साधनोंका मालिक स्वयं श्रम करता हो — जैसे हाथके कारीगरीके धंधोंमें — वहां ऐसे जो भी अधिक दाम मिलते हैं वे श्रम करनेवालेको ही मिलते हैं। परन्तु जहां उत्पादनके साधनोंका मालिक और श्रम करनेवाले लोग अलग अलग आदमी होते हैं वहां ये अधिक दाम उत्पादनके साधनोंका मालिक हड़प कर लेता है और उस हद तक मजदूरोंका शोषण होता है। इस तरहका शोषण दुनियामें बहुत पुराने जमानेसे जबसे मालिकों और मजदूरोंके दो अलग अलग वर्ग हुए तभीसे चला आया है। मालिक गुलामोंका शोषण करते थे, ठाकुर और जमींदार किसानोंका शोषण करते हैं, व्यापारी दस्तकारों-कारीगरोंका शोषण करते हैं और आजकल कारखानेदार मजदूरोंका शोषण करते हैं। उत्पादनके विविध साधनोंके रूपमें जो भी सम्पत्ति आज दुनियामें मौजूद है और उसमें जो वृद्धि होती जा रही है उस पर व्यक्तिगत स्वामित्व भी इसी शोषणका कारण है। मार्क्स दुनियामें पहला हुआ जिसने उसने जो कुछ स्पष्ट किया और उसमें जो कुछ काम किया उस निराले ढंगसे दावा जो कुछ कहता है वह

* देखिये पृष्ठ २०९ प्रकरण ८ भाग ।

हमारी वर्तमान पूंजी है। *यह पूंजी समस्त जनसमाजके श्रमका फल है न कि किसी खास वर्गके श्रमका* इसलिए उस परसे व्यक्तिगत स्वामित्व दूर होना चाहिए *और समाजका स्वामित्व स्थापित होना चाहिए।* तब उस पूंजीको साधनके रूपमें उपयोग करके उस पर श्रम करनेसे जो कुछ बचत होगी वह थोड़ेसे पूंजीपतियों या मालिकोंको न मिलकर सारे जनसमाजको मिलेगी। इस बचतका उपयोग मजदूरों यानी सारे समाजके रहन-सहनका स्तर ज्यादा ऊंचा उठानेमें किया जायगा साथ ही पुरानी पूंजीकी घिसाई पूरी करने या उत्पादनकी मात्रा बढ़ानेके लिए पुरानी पूंजीकी वृद्धि करनेमें भी इसका उपयोग किया जायगा।

६ आज जो लोग उत्पादनके अलग अलग साधनोंके मालिक बन बैठे हैं वे उत्पादनके काममें स्वयं परिश्रम करके या बुद्धि लगाकर जो कुछ मदद देंगे उसके बदलेमें अन्य मजदूरोंकी तरह उन्हें भी पारिश्रमिक मिलेगा। परन्तु सिर्फ स्वामित्व-अधिकारके बावत उन्हें कुछ नहीं मिलेगा। इसका परिणाम यह होगा कि उत्पन्न होनेवाली संपत्तिमें से भाड़ा, ब्याज और नफेके रूपमें एक छोटासा वर्ग आज जो बड़ा हिस्सा हड़प कर लेता है वह नहीं कर सकेगा। उत्पादनके काममें भाग लेनेवाले सभीको पारिश्रमिक या मजदूरी मिलेगी।

आर्थिक नियतिवाद

७ *वर्तमान आर्थिक असमानता और उसके कारण पैदा होनेवाली* बेशुमार बुराइयोंकी जड़ पूंजी या उत्पादनके साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार है *ऐसा समझाकर मार्क्स कहता है कि पूंजी पर जमे हुए व्यक्तिगत स्वामित्वके* अधिकारका मिटना अब मानव-जातिकी विशेष प्रगतिके लिए अनिवार्य है अथवा इसके लिए परिस्थितियां निर्माण हो चुकी हैं। अपना यह कथन सिद्ध करनेके लिए वह इतिहासका सहारा लेता है। इतिहासकी घटनाओंको एक महान विवेककी दृष्टिसे देखकर उनका सूक्ष्म विश्लेषण करनेकी मार्क्समें अद्भुत शक्ति है। यूरोपके इतिहासमें विपुल सामग्री प्रस्तुत करके वह सिद्ध करता है कि उत्पादनकी अलग अलग पद्धतियां अलग अलग समयकी ऐतिहासिक परिस्थितियोंके कारण व्यवहारमें आई हैं। उत्पादनके साधनोंमें जिनमें औजारों और यंत्रोंका मुख्य स्थान है जैसे जैसे सुधार होता जाता है वैसे वैसे उत्पादनकी पद्धति बदलती जाती है। दुनियामें जब कोई प्रथा या संस्था अस्तित्वमें आती है तब वह अपने साथ अपने गर्भमें ही अपने नाशके तत्व भी बीजरूपमें लेकर आती है। उत्पादनकी कोई प्रथा आरंभ

होकर विकसित होते होते व्यापक बनती है उसके साथ ही उसके नाशके बीज भी व्यापक बनते रहते हैं। जब यह प्रथा विकासकी ऐसी मंजिल पर पहुंच जाती है कि जिससे आगे उसका अधिक विकास होना संभव नहीं रहता तब वह मानव-जातिकी प्रगतिमें बाधक बन जाती है और इस प्रथाके साथ ही उत्पन्न हुए व विनाशके बीजरूप तत्त्व बड़ा आकार धारण कर लेते हैं और इस प्रथाको तोड़फोड़ कर फेंक देते हैं। गुलामोंकी प्रथा, जमींदारी या जागीरी पद्धति, शहरों और कस्बोंके स्वतंत्र कारीगर और व्यापारी — ये सब उस उस समयकी आर्थिक जरूरतोंके कारण पैदा हुए और परिस्थितियां बदलने पर नये उत्पन्न होनेवाले आर्थिक बलोंके कारण नष्ट हो गये। जब मनुष्यने भौतिक शक्तिका उपयोग करना सीखा तब उसकी मददसे बड़े बड़े कारखाने, रेल, जहाज आदि चलानेके लिए कुछ समृद्ध व्यापारियोंके पास जमा हुई पूंजी काममें आई। उत्पादनकी मात्रा और उसकी विविधता बढ़ी। मनुष्य पहले जितनी चीजें काममें ले सकता था उनसे ज्यादा चीजें काममें लेने लगा, ज्यादा तेजीसे और ज्यादा सुविधासे यात्रा करने लगा और दूर दूरके देशोंमें बसे हुए लोगोंके एक-दूसरेके सम्पर्कमें आनेके साधन बढ़े। तार, डाक, अखबारों और पुस्तकों आदिके जरिये एक-दूसरेके बारेमें मनुष्योंकी जानकारी बहुत ही बढ़ गई। परन्तु इसके साथ ही इस उत्पादनकी बुनियादमें ही जो दोष है उसके कारण ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती जाती हैं कि उत्पादन तो खूब बढ़ता है परन्तु आम जनताकी उसे खरीदनेकी शक्ति घटती जाती है। इस दोषके कारण उत्पादनके साधन एक अधिकाधिक छोटा होते जानेवाले वर्गके हाथमें एकत्र होते जा रहे हैं और एक ऐसा मजदूर-वर्ग बढ़ता जा रहा है जिसके पास अपने हाथ-पैरोंके सिवा और कोई साधन नहीं है। इसके सिवा यंत्रोंकी बनावटमें लगातार होनेवाले सुधारोंके कारण मानव-शक्ति अथवा मजदूरोंकी जरूरत भी कम होती जाती है इसलिए बेकार लोगोंकी संख्या भी दिनोंदिन बढ़ती जाती है। उत्पादन बढ़ जाने पर भी लोगोंको वस्तुओंकी तंगी भुगतनी पड़ती है। यह भारी विसंगतता है। इससे समाजमें तीव्र असन्तोष पैदा होता है। इस विसंगतताको दूर करनेके लिए और अपने देशके गरीब तथा बेकार लोगोंको काम देकर उनकी गरीबी दूर करनेके लिए उद्योगमें आगे बढ़े हुए देश पिछड़े हुए देशोंमें उपनिवेश स्थापित करते हैं और अपने बढ़ते हुए उत्पादनके लिए वहां बाजार खड़े करते हैं। इससे यंत्रोद्योगमें आगे बढ़े हुए देशोंको तो राहत मिलती है परन्तु पिछड़े हुए देशोंके प्राचीन हाथ-उद्योग नष्ट हो जाते हैं

और वहाँकी अर्थ-रचना छिन्नभिन्न हो जाती है। फिर वहाँ गरीबी और बेकारी बड़े पैमाने पर फैलती है। वहाँके उत्साही लोग अपने देशमें नये उद्योग खड़े करते हैं और पुराने यंत्रोद्योगोंवाले देशोंसे होड़ लगाते हैं। पुराने देशोंकी तो एक दूसरेके साथ होड़ चला ही करती है। इस सारी होड़के कारण उद्योग-धंधोंमें समय समय पर उथल-पुथल और तेजी मंदी आती रहती है, क्योंकि मालकी पूर्ति और मांगकी तुलामें संतुलन कभी रहता ही नहीं। और इसका भी भयंकर परिणाम यह होता है कि बाजारों पर अधिकार करनेकी व्यापारिक प्रतिस्पर्धाके कारण बार बार युद्ध होते हैं। ज्यों ज्यों उद्योग केन्द्रित होते जाते हैं त्यों त्यों उनकी रक्षा और फैलावके लिए राज्यसत्ताको भी केन्द्रित बनना पड़ता है। ज्यादातर बड़े उद्योग अमुक स्थानों पर ही ज्यादा सुविधाके साथ चलाये जा सकते हैं, इसलिए मजदूर भी उन्हीं स्थानोंमें केन्द्रित होते हैं और अपने लिए सुविधाएं पानेके खातिर संगठित होते हैं। संक्षेपमें, अमुक देशोंमें होनेवाला अधिक उत्पादन, इस उत्पादनकी बिक्रीके लिए बाजार खोजनेकी प्रतिस्पर्धा, उत्पादनकी तुलनामें सब बातोंको देखते हुए लोगोंकी खरीद-शक्तिमें होनेवाली कमी अर्थात् पूर्ति और मांगकी विषमता, इसके कारण बाजारमें आनेवाली लम्बी अवधियोंकी मंदी, मजदूर-वर्गमें बढ़ती जानेवाली गरीबी और बेकारी, उसे दूर करनेके लिए मजदूरोंका संगठित होना और हड़तालों आदिके द्वारा मालिकोंके साथ झगड़ना, अपने देशके मजदूरोंको काम देनेके खातिर दूसरे देशों पर आर्थिक आक्रमण करना और इस सारी आर्थिक प्रतिस्पर्धासे पैदा होनेवाले विश्वव्यापी महायुद्ध—ये सब वर्तमान पूंजीवादी अर्थ-रचनाकी विसंगतताएं हैं। ये विसंगतताएं मनुष्य-जातिकी प्रगतिका गला घोंट रही हैं। और इसलिए मानव-जाति इन विसंगतताओंको जन्म देनेवाली पूंजीवादी अर्थ-रचनाका नाश किये बिना नहीं रहेगी। ये विसंगतताएं ही पूंजीवादी अर्थ-रचनाका नाश करती हैं। इसीसे इस विचारसरणीको कार्ल मार्क्सने 'आर्थिक नियतिवाद' (इकॉनॉमिक डिटर्मिनिज्म) नाम दिया है। इसका अर्थ यह है कि अमुक समयकी उत्पादन-प्रथा अमुक प्रकारकी अर्थ-रचनाका निर्माण करती है। इस अर्थ-रचनामें ही इस रचनाको नष्ट करनेवाले आर्थिक वर्ग उत्पन्न होते हैं और पुरानी अर्थ-रचना तथा नये उत्पन्न हुए आर्थिक वर्गोंके संघर्षसे पुरानी अर्थ-रचनाका नाश होता है और उसमेंसे नई अर्थ-रचना उत्पन्न होती है और मानव-जाति विकासमें इससे एक कदम आगे बढ़ती है। नई अर्थ-रचनाके स्थिर होनेके बाद इसकी भी यही दशा होती है।

८. हम दुनियाके इतिहासकी जांच करें तो पता चलेगा कि भूतकालमें ऐसे अनेक संघर्ष हुए हैं, ऐसे प्रत्येक संघर्षने मानव जातिको आगे बढ़ाया है और भविष्यमें भी ऐसे संघर्षोंसे ही मानव जाति प्रगति करेगी। समाजकी आर्थिक प्रगतिके लिए यह क्रम नियत हुआ है, इसलिए इसे नियतिवादका नाम दिया गया है। इस सारे क्रममें मनुष्यकी नैतिक भावनाएं, आदर्श तत्त्वज्ञान, दुनियाके रीति रिवाज और धार्मिक विश्वास सब गौण रहते हैं। या यों कहिये कि इन सबका आधार उत्पादनकी पद्धति पर और उसमें पैदा होनेवाली समाजकी अर्थ रचना पर रहता है। समाजमें सबसे बड़ी और समाजको चलानेवाली शक्ति आर्थिक वर्गोंकी है। मनुष्यके जीवनके अन्य सब क्षेत्रों या पहलुओंकी रचना, मनुष्यके अन्य सब विचार और व्यवहार, धर्म और नीतिकी भावनाएं भी समय समय पर काम करनेवाले आर्थिक वर्गोंमें उत्पन्न होनेवाली अर्थ रचनाके अनुसार निर्माण होती हैं या गढ़ी जाती हैं। अर्थतंत्रकी बुनियाद पर ही समाजके जीवनकी सारी इमारत खड़ी होती है। यह सब बातें मार्क्सने पुराने इतिहाससे अनेक उदाहरण देकर सिद्ध कर दिखाया है, इसलिए इस वादको 'हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म'* भी कहा जाता है। हम इसके लिए 'इतिहास-प्रेरित भौतिकवाद' शब्दका प्रयोग करेंगे। इस वादके अनुसार कार्ल मार्क्स यह कहना चाहता है कि पूंजीवादी अर्थ रचना जिस बुनियाद पर खड़ी हुई है और जिसमें सम्पत्तिके व्यक्तिगत अधिकारको धर्म, नीति, कानून, समाजके रीति रिवाज और मनुष्यके वर्तमान स्वभावने स्वीकार किया है, उसे मिटाना होगा और उसकी जगह समस्त पूंजी पर समाजका स्वामित्व स्थापित करना होगा। यहां 'पूंजी पर समाजका स्वामित्व' शब्द ध्यानमें रखने चाहियें। क्योंकि मनुष्यकी व्यक्तिगत उपयोगकी चीजों — जैसे कपड़े, किताबें, रहनेका मकान, उसका साज सामान आदि पर जो व्यक्तिगत अधिकार है उसे मिटानेकी यह बात नहीं है। इस तरहके व्यक्तिगत स्वामित्वसे किसीका शोषण नहीं हो सकता। शोषण तो पूंजीके व्यक्तिगत अधिकारसे, उत्पादनके साधनोंके व्यक्तिगत अधिकारसे होता है। थोड़ेमें यह कहा जा सकता है कि जिन चीजोंसे मुनाफा पैदा किया जा सकता है उन पर किसीका व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होना चाहिये। मकानादि उपयोग और [illegible] नहीं। किन्तु उनको किराये पर दें अर्थात् स्वयं कोई मेहनत किये बिना उससे आय करें

---

* इकानामिक डिटर्मिनिज्म, हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म, डायलेक्टिकल मटीरियलिज्म — इन सब शब्दोंका एक ही अर्थ है।

और वहाँकी अर्थ रचना छिन्नभिन्न हो जाती है। फिर वहाँ गरीबी और बेकारी बेहद प्रमाणमें फैल जाती है। वहाँके उत्साही लोग अपने देशमें यन्त्रोद्योग खड़े करते हैं और पुराने यन्त्रोद्योगोंवाले देशोंसे होड़ लगाते हैं। पुराने देशोंकी तो एक दूसरेके साथ होड़ चलती ही रहती है। इस सारी होड़के कारण *उद्योग-धंधोंमें समय समय पर उथल-पुथल और तेजी-मंदी आती* रहती है, क्योंकि मालकी पूर्ति और मांगकी तुलामें संतुलन कभी रहता ही नहीं। और इसका भी भयंकर परिणाम यह होता है कि बाजारों पर अधिकार करनेकी व्यापारिक प्रतिस्पर्धाके कारण बार बार युद्ध होते हैं। ज्यों ज्यों उद्योग केन्द्रित होते जाते हैं त्यों त्यों उनकी रक्षा और फैलावके लिए राज्यसत्ताको भी केन्द्रित बनना पड़ता है। ज्यादातर बड़े उद्योग अमुक स्थानों पर ही ज्यादा सुविधाके साथ चलाये जा सकते हैं, इसलिए मजदूर भी उन्हीं स्थानोंमें केन्द्रित होते हैं और अपने लिए सुविधाएं पानेके खातिर संगठित होते हैं। संक्षेपमें, अमुक देशोंमें होनेवाला अधिक उत्पादन, इस उत्पादनकी बिक्रीके लिए बाजार खोजनेकी प्रतिस्पर्धा, उत्पादनकी तुलनामें सब बातोंको देखते हुए लोगोंकी खरीद-शक्तिमें होनेवाली कमी अर्थात् पूर्ति और मांगकी विषमता, उसके कारण बाजारमें आनेवाली लम्बी *अवधियोंकी मंदी, मजदूर-वर्गमें बढ़ती जानेवाली गरीबी और बेकारी,* उसे दूर करनेके लिए मजदूरोंका संगठित होना और हड़तालों आदिके द्वारा मालिकोंके साथ झगड़ना, अपने देशके मजदूरोंको काम देनेके खातिर दूसरे देशों पर आर्थिक आक्रमण करना और इस सारी आर्थिक प्रतिस्पर्धासे पैदा होनेवाले विनाशकारी महायुद्ध — ये सब वर्तमान पूंजीवादी अर्थ रचनाकी विसंगतताएं हैं। ये विसंगतताएं मनुष्य जातिकी प्रगतिका गला घोंट रही हैं। और इसलिए मानव जाति इन विसंगतताओंको जन्म देनेवाली पूंजीवादी अर्थ रचनाका नाश किये बिना नहीं रहेगी। ये विसंगतताएं ही पूंजीवादी अर्थ रचनाका नाश करती हैं। अपनी इस विचारसरणीको कार्ल मार्क्स आर्थिक नियतिवाद (इकोनॉमिक डिटर्मिनिज्म) नाम देता है। इसका अर्थ यह है कि *अमुक समयकी उत्पादन प्रथा अमुक प्रकारकी अर्थ रचनाका निर्माण* करती है। इस अर्थ रचनामें ही उस रचनाको नष्ट करनेवाले आर्थिक वर्ग उत्पन्न होते हैं और पुरानी अर्थ रचना तथा नये उत्पन्न हुए आर्थिक वर्गोंके संघर्षमें पुरानी अर्थ रचनाका नाश होता है और उसमेंसे नई अर्थ रचना उत्पन्न होती है और मानव जाति विकासक्रममें एक कदम आगे बढ़ती है। फिर नई अर्थ रचनाके स्थिर होनेके बाद उसकी भी यही दशा होती है।

८ हम दुनियाके इतिहासका नाप करें तो पता चलेगा कि अबतकमें एक अनेक संघर्ष हुए हैं। इस प्रत्येक संघर्षने मानव जातिको आगे बढ़ाया है और जब यह ना एक सर्वोच्च ला मानव जाति प्रगति करेगा। समाजकी आर्थिक प्रगतिके लिए यह क्रम नियत हुआ है इसलिए इस नियतिवादका नाम दिया गया है। इस सारे क्रममें मनुष्यकी नैतिक भावनाएँ और तत्त्वज्ञान दुनियाके रीति रिवाज और धार्मिक विश्वास सब गौण रहते हैं। या यों कहिए कि इन सबका आधार उत्पादनकी पद्धति पर और उसमें पैदा होनेवाली समाजकी अर्थरचना पर रहता है। समाजमें सबसे बड़ी और समाजको चलानेवाली शक्ति आर्थिक व्यवस्था है। मनुष्यके जीवनके अन्य सब पहलू या पहलुओंकी रचना मनुष्यके अन्य सब विचार और परस्पर धर्म और नीतिकी भावनाएँ भी समय समय पर काम करनेवाले आर्थिक क्रमसे उत्पन्न होनेवाली अर्थरचनाके अनुसार निर्माण होता है या गढ़ा जाता है। अर्थरचनाकी बुनियाद पर ही समाजके जीवनकी सारी इमारत खड़ी होती है। यह सब कार्ल मार्क्सने पुराने इतिहासमें आये उदाहरण देकर सिद्ध कर दिखाया है इसलिए इस वादको 'हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म' * भी कहा जाता है। हम इसके लिए 'इतिहास परिगत भौतिकवाद' शब्दका प्रयोग करेंगे। इस वादके अनुसार कार्ल मार्क्स यह कहना चाहता है कि पूँजीवादी अर्थरचना जिस व्यक्तिवाद पर खड़ी हुई है और जिसमें सम्पत्तिके व्यक्तिगत अधिकारको धर्म नीति कानून समाजके रीति रिवाज और मनुष्यके वर्तमान स्वभावने स्वीकार किया है उसे मिटाना होगा और उसकी जगह समस्त पूँजी पर समाजका स्वामित्व स्थापित करना होगा। यहाँ पूँजी पर समाजका स्वामित्व शब्द ध्यानमें रखने चाहिए। क्योंकि मनुष्यको व्यक्तिगत उपयोगकी चीजों — जैसे कपड़े बिछौने रहनेका मकान उसका साज सामान आदि पर तो व्यक्तिगत अधिकार है उस सिद्धान्तका यह दावा नहीं है। इस तरहका व्यक्तिगत स्वामित्व मिटानेका कारण नहीं हो सकता। कारण तो पूँजीका व्यक्तिगत अधिकार उत्पादनके साधनोंपर व्यक्तिगत अधिकार होता है। थोड़ेमें यह कहा जा सकता है कि जिस चीजका उत्पादन किया जा सकता है उस पर किसीका व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होना चाहिए। रहनेका उपयोग आप स्वयं करें तो बाधा नहीं। लेकिन उसको भाड़े किराये पर दें अर्थात् उसे बाद ... किये बिना ... आद करें

* हिस्टॉरिकल डिटर्मिनिज्म, हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म, डायलेक्टिकल मटीरियलिज्म — इन सब शब्दोंका एक ही अर्थ है।

और उनकी अर्थरचना छिन्नभिन्न हो जाती है। फिर वहां गरीबी और बेकारी बड़े पैमाने पर फैलती है। वहांके उत्साही लोग अपने देशमें यंत्रोद्योग खड़े करते हैं और पुराने यंत्रोद्योगोंवाले देशोंसे होड़ लगाते हैं। पुराने देशोंकी तो एक दूसरेके साथ होड़ चलती ही रहती है। इस सारी होड़के कारण उद्योगधंधोंमें समय समय पर उथल-पुथल और तेजी मंदी आती रहती है, क्योंकि मांगकी पूर्ति और मांगकी तुलामें संतुलन कभी रहता ही नहीं। और इससे भी भयंकर परिणाम यह होता है कि बाजारों पर अधिकार करनेकी व्यापारिक प्रतिस्पर्धाके कारण बार बार युद्ध होते हैं। ज्यों ज्यों उद्योग केन्द्रित होते जाते हैं त्यों त्यों उनकी रक्षा और फैलावके लिए राज्यसत्ताको भी केन्द्रित बनना पड़ता है। ज्यादातर बड़े उद्योग अमुक स्थानों पर ही ज्यादा सुविधाके साथ चलाये जा सकते हैं, इसलिए मजदूर भी उन्हीं स्थानोंमें केन्द्रित होते हैं और अपने लिए सुविधाएं पानेके खातिर संगठित होते हैं। संक्षेपमें अमुक देशोंमें होनेवाला अधिक उत्पादन, इस उत्पादनको बेचनेके लिए बाजार खोजनेकी प्रतिस्पर्धा, उत्पादनकी तुलनामें सब बातोंको देखते हुए लोगोंकी खरीदशक्तिमें होनेवाली कमी अर्थात् पूर्ति और मांगकी विषमता, उसके कारण बाजारमें आनेवाली लम्बी अवधियोंकी मंदी, मजदूर वर्गमें बढ़ती जानेवाली गरीबी और बेकारी, उसे दूर करनेके लिए मजदूरोंका संगठित होना और हड़तालों आदिके द्वारा मालिकोंके साथ झगड़ना, अपने देशके मजदूरोंको काम देनेके खातिर दूसरे देशों पर आर्थिक आक्रमण करना और इन सारी आर्थिक प्रतिस्पर्धाओंसे पैदा होनेवाले विश्वव्यापी महायुद्ध — ये सब वर्तमान पूंजीवादी अर्थरचनाकी विसंगतताएं हैं। ये विसंगतताएं मनुष्य जातिकी प्रगतिका गला घोंट रही हैं। और इसलिए मानव जाति इन विसंगतताओंको जन्म देनेवाली पूंजीवादी अर्थरचनाका नाश किये बिना नहीं रहेगी। ये विसंगतताएं ही पूंजीवादी अर्थरचनाका नाश करती हैं। [illegible] इस विचारसरणीको कार्ल मार्क्स 'आर्थिक नियतिवाद' (इकानामिक डिटर्मिनिज्म) नाम देता है। इसका अर्थ यह है कि अमुक समयकी उत्पादन प्रथा अमुक प्रकारकी अर्थरचनाका निर्माण करती है। इस अर्थरचनामें ही इस रचनाको नष्ट करनेवाले आर्थिक वर्ग उत्पन्न होते हैं और पुरानी अर्थरचना तथा नये उत्पन्न हुए आर्थिक वर्गोंके संघर्षसे पुरानी अर्थरचनाका नाश होता है और उसमेंसे नई अर्थरचना उत्पन्न होती है और मानव जाति विकासक्रममें एक कदम आगे बढ़ती है। इस तरह अर्थरचनाएं फिर [illegible] बाद इसकी भी यही दशा होती है।

८. हम दुनियाके इतिहासकी जांच करें तो पता चलेगा कि भूतकालमें हम अनेक संघर्ष देखते हैं। इन संघर्षोंने मानव जातिको आगे बढ़ाया है और भविष्यमें भी ऐसे संघर्षोंसे ही मानव जाति प्रगति करेगी। इतिहासकी आर्थिक प्रगतिके लिए यह क्रम नियत हुआ है इसलिए इसे नियतिवादका नाम दिया गया है। इस मतके अनुसार मनुष्यकी नैतिक भावनाएं आदर्श तत्त्वज्ञान दुनियाके रीति रिवाज और धार्मिक विश्वास सब गौण रहते हैं। या यों कहिये कि इन सबका आधार उत्पादनकी पद्धति पर और उससे पैदा होनेवाली समाजकी अर्थ रचना पर रहता है। समाजमें सबसे बड़ा और समाजको चलानेवाला तत्त्व आर्थिक बल ही है। मनुष्यके जीवनके अन्य सब पहलू या पहलुओंकी रचना मनुष्यके अन्य सब विचार और व्यवहार धर्म और नीतिकी भावनाएं भी समय समय पर बदलनेवाले आर्थिक बलोंसे उत्पन्न होनेवाली अर्थ रचनाके अनुसार निर्माण होती है या गढ़ी जाती है। अर्थतंत्रकी बुनियाद पर ही समाजकी बाकीकी सारी इमारत खड़ी होती है। यह सब बातें मार्क्सने पुराने इतिहासके उदाहरण देकर सिद्ध कर दिखाया है इसलिए इस वादको 'हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म'* भी कहा जाता है। हम इसके लिए 'इतिहासकी भौतिकवादी' शब्दका प्रयोग करेंगे। इस वादके अनुसार कार्ल मार्क्स यह कहना चाहता है कि पूंजीवादी अर्थरचना जिस बुनियाद पर खड़ी हुई है और जिसमें सम्पत्तिके व्यक्तिगत अधिकारको धर्म नीति कानून समाजके रीति रिवाज और मनुष्यके वर्तमान स्वभावने स्वीकार किया है उसे मिटाना होगा और उसकी जगह समस्त पूंजी पर समाजका स्वामित्व स्थापित करना होगा। सब पूंजी पर समाजका स्वामित्व रहे, इसे ध्यानमें रखना चाहिये। क्योंकि मनुष्यकी व्यक्तिगत उपयोगकी चीजें—जैसे कपड़े बिस्तर रहनेका मकान उसका घर सामान आदि पर तो व्यक्तिगत अधिकार है उसे मिटानेका सवाल बाकी नहीं है। इस तरहके व्यक्तिगत स्वामित्वसे किसीका शोषण नहीं हो सकता। शोषण तो पूंजीके व्यक्तिगत अधिकारसे उत्पादनके साधनों पर व्यक्तिगत अधिकारसे होता है। इसमें यह कहा जा सकता है कि जिस चीजको कमाई या जो सकता है उस पर उसका व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होना चाहिये। मकानका उपयोग आप खुद करें तो बात दूसरी है। किन्तु मकान आप किराये पर दें अर्थात् स्वयं कोई दूसरा लिये बिना उपयोग करें

* इकॉनॉमिक डिटर्मिनिज्म हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म डायलेक्टिकल मटीरियलिज्म — इन सब शब्दोंका एक ही अर्थ है।

और वहाँकी अर्थ रचना छिन्नभिन्न हो जाती है। फिर वहाँ गरीबी और बेकारी बड़े पैमाने पर फैलती है। वहाँके उत्साही लोग अपने देशमें यंत्रोद्योग खड़े करते हैं और पुराने यंत्रोद्योगवाले देशोंसे होड़ लगाते हैं। पुराने देशोंमें तो एक दूसरेके साथ होड़ चला ही करती है। इस सारी होड़के कारण उद्योग धंधोंमें समय समय पर उथल पुथल और तेजी मंदी आती रहती है क्योंकि मांगकी पूर्ति और मांगकी तुलामें संतुलन कभी रहता ही नहीं। और इससे भी भयंकर परिणाम यह होता है कि बाजारों पर अधिकार करनेकी व्यापारिक प्रतिस्पर्धाके कारण बार बार युद्ध होते हैं। ज्यों ज्यों उद्योग धंधे बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों उनकी रक्षा और फैलावके लिए राज्यसत्ताको भी बलिष्ठ बनना पड़ता है। ज्यादातर बड़े उद्योग अमुक स्थानों पर ही ज्यादा सुविधाके साथ चलाये जा सकते हैं इसलिए मजदूर भी उन्हीं स्थानोंमें केंद्रित होते हैं और अपने लिए सुविधाएं पानेके खातिर संगठित होते हैं। संक्षेपमें अमुक स्थानोंमें होनेवाला अधिक उत्पादन इस उत्पादनकी बिक्रीके लिए बाजार खोजनेकी प्रतिस्पर्धा, उत्पादनकी तुलनामें मजदूरोंको मिलते हुए वेतनोंसे खरीदशक्तिमें होनेवाली कमी अथवा पूर्ति और मांगकी विषमता उसके कारण बाजारमें आनेवाली लम्बी अवधियोंकी मंदी मजदूर वर्गमें बढ़ती जानेवाली गरीबी और बेकारी उसे दूर करनेके लिए मजदूरोंका संगठित होना और हड़तालों आदिके द्वारा मालिकोंके साथ झगड़ना अपने देशके मजदूरोंको काम देनेके खातिर दूसरे देशों पर आर्थिक आक्रमण करना और इस सारी आर्थिक प्रतिस्पर्धासे पैदा होनेवाले विश्वव्यापी महायुद्ध — ये सब वर्तमान पूंजीवादी अर्थ रचनाकी विसंगतताएं हैं। ये विसंगतताएं मनुष्य जातिकी प्रगतिको नष्ट भ्रष्ट कर रही हैं। और इसलिए मानव जाति इन विसंगतताओंको जन्म देनेवाली पूंजीवादी अर्थ रचनाको नाश किये बिना नहीं रहेगी। ये विसंगतताएं ही पूंजीवादी अर्थ रचनाका नाश करती हैं। अपनी इस विचारसरणीको कार्ल मार्क्स आर्थिक निर्णयवाद (इकोनॉमिक डिटर्मिनिज्म) नाम देता है। इसका अर्थ यह है कि अमुक समयकी उत्पादन प्रथा अमुक प्रकारकी अर्थ रचनाका निर्माण करती है। इस अर्थ रचनामें ही इस रचनाको नष्ट करनेवाले आर्थिक वर्ग उत्पन्न होते हैं और पुरानी अर्थ रचना तथा नये नये उत्पन्न हुए आर्थिक वर्गोंके संघर्षसे पुरानी अर्थ रचनाका नाश होता है और उसमेंसे नई अर्थ रचना उत्पन्न होती है और मानव जाति विकासक्रममें एक कदम आगे बढ़ती है। इस नई अर्थ रचनाके स्थिर होनेके बाद इसकी भी यही दशा होती है।

८ हम दुनियाके इतिहासकी जाँच करें तो पता चलेगा कि अन्तरमें ऐसे अनेक संघर्ष हुए हैं। इस प्रकार संघर्षने मानव जातिको आगे बढ़ाया है और भविष्यमें भी ऐसे संघर्षोंसे ही मानव जाति प्रगति करेगी। समाजकी आर्थिक प्रगतिके लिए यह क्रम नियत हुआ है, इसलिए इसे नियतिवादका नाम दिया गया है। इस मतसे मनुष्यकी नैतिक भावनाएँ और तत्त्वज्ञान, दुनियाकी रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वास सब गौण रहते हैं। या यों कहिये कि इन सबका आधार उत्पादनकी पद्धति पर और उससे पैदा होनेवाली समाजकी अर्थरचना पर रहता है। समाजमें सबसे बड़ी और समाजको चलानेवाली शक्ति आर्थिक रचना है। मनुष्यके जीवनके अन्य सब क्षेत्रों या पहलुओंकी रचना, मनुष्यके अन्य सब विचार और व्यवहार, धर्म और नीतिकी भावनाएँ भी समय समय पर काम करनेवाली आर्थिक रचनामें उत्पन्न होनेवाली अर्थरचनाके अनुसार निर्माण होती हैं या गढ़ी जाती हैं। अर्थरचनाकी बुनियाद पर ही समाजके जीवनकी सारी इमारत खड़ी होती है। यह सब बातें मार्क्सने पुराने इतिहासके अनेक उदाहरण देकर सिद्ध करके दिखाया है। इसलिए इस वादको 'हिस्टॉरिकल मटीरियलिज़्म'* भी कहा जाता है। इस शब्दके लिए 'इतिहासजन्य भौतिकवाद' शब्दका प्रयोग करेंगे। इस वादके अनुसार मार्क्स यह कहना चाहता है कि पूँजीवादी अर्थरचना जिस बुनियाद पर खड़ी हुई है और जिसमें सम्पत्तिके व्यक्तिगत अधिकारको इस नीति, कानून, समाजके रीति-रिवाज और मनुष्यके वर्तमान स्वभावने स्वीकार किया है, उसे मिटाना होगा और उसकी जगह समस्त पूँजी पर समाजका स्वामित्व स्थापित करना होगा। यहाँ पूँजी पर समाजका स्वामित्व होगा, यह ध्यानमें रखना चाहिये। क्योंकि मनुष्यकी व्यक्तिगत उपयोगकी चीजें — जैसे कपड़े, किताबें, रहनेका मकान, उसका घरका सामान आदि पर जो व्यक्तिगत अधिकार है उसे मिटानेकी बात नहीं है। इस तरहके व्यक्तिगत स्वामित्वसे किसीका नुकसान नहीं होता। शोषण तो पूँजीके व्यक्तिगत अधिकारसे, उत्पादनके साधनोंके व्यक्तिगत अधिकारसे होता है। मार्क्समें यह कहा जा सकता है कि जिन चीजोंको बनाकर बेचा जा सकता है उस पर आमतौर व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होना चाहिये। मशीनका उपयोग घर पर करें तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन उसको और किराये पर दें अथवा उससे उत्पन्न किये हुए माल बेचकर आय करें

* डायलेक्टिकल मटीरियलिज़्म, हिस्टॉरिकल मटीरियलिज़्म, मार्क्सियन मटीरियलिज़्म — इन सब नामोंसे यह वाद जाना जाता है।

और वहांकी अर्थ रचना छिन्नभिन्न हो जाती है। फिर वहां गरीबी और बेकारी बड़े पैमाने पर फैलती है। वहांके उत्साही लोग अपने देशमें यंत्रो द्वारा उत्पादन करते हैं और पुराने यंत्रोद्योगवाले देशोंसे होड़ लगाते हैं। पुराने देशोंकी तो एक दूसरेके साथ होड़ चला ही करती है। इस सारी होड़के कारण उद्योगधंधोंमें समय समय पर उथलपुथल और तेजी मंदी आती रहती है। देशोंकी मांगकी पूर्ति और मालकी तुलामें संतुलन कभी रहता ही नहीं। और इसका भी भयंकर परिणाम यह होता है कि बाजारों पर अधिकार करनेकी व्यापारिक प्रतिस्पर्धाके कारण बार बार युद्ध होते हैं। ज्यों ज्यों उद्योग केन्द्रित होते जाते हैं त्यों त्यों उनकी रक्षा और फैलावके लिए राज्यसत्ताको भी केन्द्रित बनना पड़ता है। ज्यादातर बड़े उद्योग अमुक स्थानों पर ही ज्यादा सुविधाके साथ चलाये जा सकते हैं इसलिए मजदूर भी उन्हीं स्थानोंमें केन्द्रित होते हैं और अपने लिए सुविधाएं पानेके खातिर संगठित होते हैं। संक्षेपमें अमुक देशोंमें होनेवाला अधिक उत्पादन इस उत्पादनकी बिक्रीके लिए बाजार खोजनेकी प्रतिस्पर्धा, उत्पादनकी तुलनामें सब लोगोंको देखते हुए लोगोंकी खरीद शक्तिमें होनेवाली कमी अर्थात् पूर्ति और मांगकी विषमता इसके कारण बाजारमें आनेवाली लम्बी अवधियोंकी मंदी मजदूर वर्गमें बढ़ती जानेवाली गरीबी और बेकारी उसे दूर करनेके लिए मजदूरोंका संगठित होना और हड़ताल आदिके द्वारा मालिकोंके साथ झगड़ना अपने देशके मजदूरोंको काम देनेके खातिर दूसरे देशों पर आर्थिक आक्रमण करना और इस सारी आर्थिक प्रतिस्पर्धामें पैदा होनेवाले विश्वव्यापी महायुद्ध — ये सब वर्तमान पूंजीवादी अर्थ रचनाकी विसंगतताएं हैं। ये विसंगतताएं मनुष्य जातिकी प्रगतिका गला घोट रही हैं। और इसीलिए मानव जाति इन विसंगतताओंको जन्म देनेवाली पूंजीवादी अर्थ रचनाका नाश किये बिना नहीं रहेगी। ये विसंगतताएं ही पूंजीवादी अर्थ रचनाका नाश करती हैं। अपनी इस विचारसरणीको मार्क्स आर्थिक नियतिवाद (इकानामिक डिटर्मिनिज्म) नाम देता है। इसका अर्थ यह है कि अमुक समयकी उत्पादन प्रथा अमुक प्रकारकी अर्थ रचनाका निर्माण करती है। इस अर्थ रचनामें ही इस रचनाका नाश करनेवाले आर्थिक बल उत्पन्न होते हैं और पुरानी अर्थ रचना तथा नये उत्पन्न हुए आर्थिक बलोंके संघर्षमें पुरानी अर्थ रचनाका नाश होता है और उसमें से नई अर्थ रचना उत्पन्न होती है और मानव जाति विकासके क्रममें एक कदम आगे बढ़ती है। इस नई अर्थ रचनाके स्थिर होनेके बाद इसका भी यही हाल होता है।

८. हम दुनियाके इतिहासकी ओर देखें तो पता चलता है कि भूतकालमें इन अनेक संघर्षों द्वारा ही [illegible] मनुष्य मानवजातिको आगे बढ़ाता है और निश्चित रूपसे ऐसे संघर्षोंसे ही मानव जाति प्रगति करती है। समाजकी आर्थिक परिस्थिति [illegible] इन निश्चित हुए हैं, इसलिए इन सिद्धान्तोंको [illegible] नाम दिया गया है। इन सबसे मनुष्यकी नैतिक भावनाएं और तत्त्वज्ञान, दुनियाकी रीतिरिवाज और धार्मिक विश्वास सब पैदा होते हैं। यों भी कहिये कि इन सबका आधार उत्पादनकी पद्धति पर और उससे पैदा होनेवाली समाजकी अर्थरचना पर रहता है। समाजके रहन सहन और समाजको चलानेवाली शक्ति आर्थिक बलोंकी है। मनुष्यके जीवनकी अन्य सब रचना या ऊपरकी रचना, मनुष्यके अन्य सब विचार और व्यवहार, धर्म और नीतिकी भावनाएं भी समय समय पर काम करनेवाले आर्थिक बलोंसे पैदा होनेवाली अर्थरचनाके अनुसार निर्माण होता है या गढ़ा जाता है। अर्थतन्त्रकी बुनियाद पर ही समाजके जीवनकी सारी इमारत खड़ी होती है। यह सब बात मार्क्सने पुराने इतिहाससे अनेक उदाहरण देकर सिद्ध कर दिखाया है, इसलिए इस वादको 'हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म'* भी कहा जाता है। हम इसके लिए 'इतिहास-फलित भौतिकवाद' शब्दका प्रयोग करेंगे। इस वादके अनुसार कार्ल मार्क्स यह कहना चाहता है कि पूंजीवादी अर्थरचना जिस बुनियाद पर खड़ी हुई है और जिसमें सम्मिलित व्यक्तिगत अधिकारको धर्म, नीति, कानून, समाजके रीतिरिवाज और मनुष्यके वर्तमान स्वभावने स्वीकार किया है, उसे मिटना होगा और उसकी जगह समस्त पूंजी पर समाजका स्वामित्व स्थापित करना होगा। यहां पूंजी पर समाजका स्वामित्व [illegible] ध्यानमें रखना चाहिये। क्योंकि मनुष्यकी व्यक्तिगत उपभोगकी चीजों — जैसे कपड़े, बिस्तर, रहनेका मकान, उसका साज-सामान आदि पर जो व्यक्तिगत अधिकार है उसे मिटानेकी यह बात नहीं है। इस तरहका व्यक्तिगत स्वामित्व मिटानेका कारण नहीं हो सकता। कारण तो पूंजीके व्यक्तिगत अधिकारसे, उत्पादनके साधनोंके व्यक्तिगत अधिकारसे होता है। थोड़ेमें यह कहा जा सकता है कि जिस चीजसे मुनाफा भी हो सकता है उस पर किसीका व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होना चाहिये। मकानका उपयोग आप खुद करें तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन दूसरोंको किराये पर देकर अथवा दूसरे कोई [illegible] किये बिना [illegible] आय करें

---

* डायालेक्टिकल, मिकॅनिकल, हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म, साइंटिफिक मटीरियलिज्म — इन सब शब्दोंका एक ही अर्थ है।

तो वह पूंजी हो जाती है और उस पर आपका व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं हो सकता।

९ उन्नीसवीं सदीके बीचमें जब मार्क्स यह सब लिखता था और अपने विचारोंको अमलमें लानेके लिए प्रचार भी करता था तब उसे ऐसा लगता था कि आर्थिक नियतिवादके अनुसार मजदूरोंका विद्रोह बिलकुल समीप है। उसे यह भी लगता था कि मजदूरोंका विद्रोह उद्योग धंधोंमें आगे बढ़े हुए उन देशोंमें पहले होगा जहां पूंजीवादका अधिकसे अधिक विकास हुआ है और जहां मजदूर अधिक संगठित हो गये हैं। इंग्लैण्डके कारखानों और खानोंमें उस समय मजदूरों और उनके स्त्री-बच्चोंकी ऐसी स्थिति हो रही थी जिसे देखकर कंपकंपी पैदा हो जाय। उसने इनकी दुर्दशाका सचोट वर्णन किया है। उसकी मान्यताके अनुसार तो इंग्लैण्डमें क्रांति जल्दी होनी चाहिये थी। लेकिन इंग्लैण्डने अपने मालके लिए अपने उपनिवेशोंके और हिंदुस्तान जैसे दूसरे अधिकारमें लिये हुए देशोंके बाजार ढूंढ निकाले और वहां चलायी हुई व्यापारिक लूटमें से उसने अपने यहांके मजदूरोंको भी कुछ टुकड़े डालने शुरू किये। इस तरह उसने मजदूरोंकी हालत अच्छी करके उन्हें संतुष्ट कर दिया और क्रांतिकी परिस्थितियां दूर कर दीं या उसे आगे ठेल दिया। और रूसमें आर्थिक परिस्थितियोंकी अपेक्षा — क्योंकि आर्थिक परिस्थिति तो उसके जैसी अन्य अनेक देशोंमें खराब थी — राजनीतिक परिस्थिति अधिक अनुकूल होनेके कारण तथा उसको समर्थ नेतृत्व मिल जानेके कारण वहां सन १९१७ में क्रान्ति हुई। मनुष्य भूतकालकी बातोंका जितनी सावधानीसे और निश्चितताके साथ विश्लेषण कर सकता है उतनी सावधानी और निश्चितताके साथ भविष्यकी घटनाओंकी सूचना नहीं दे सकता। इसलिए आर्थिक नियतिवादके प्रत्येक शब्दको यदि हम सही समझेंगे तो धोखा खा जानेका डर है। इसके सिवा यूरोपके इतिहासको पढ़कर कार्ल मार्क्सने जो अनुमान निकाले हैं वे हिन्दुस्तानके और एशियाके दूसरे देशोंके इतिहाससे भी निकलने ही चाहिये अथवा निश्चित रूपसे निकल सकते हैं या नहीं यह भी एक बड़ा प्रश्न है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि हमारे देशमें गुलामीका रिवाज बिलकुल नहीं था परन्तु यूरोपकी तरह व्यापक तो वह हरगिज न था। यूनान और रोममें जैसे गुलामोंसे ही अर्थोत्पादनका सब काम कराया जाता था वैसे हमारे देशमें बिलकुल नहीं होता था। यूरोपकी-सी जागीरदारशाही या सामन्तशाही हमारे देशमें थी और आज भी है फिर भी जागीरदारोंके सामने सिर ऊंचा कर सकनेवाली और अपने स्वत्व और स्वातन्त्र्यकी रक्षा कर

सकनेवाली ग्राम-पचायतें जितनी व्यापक और बलवान हमारे यहा था उतनी यूरोपमें नही थी। इसके सिवा यूरोपके सामाजिक आदोलन अथवा जो प्रधानता दी है और अथकी जसी पूजा का है वसा हमारे देशके सामाजिक आन्दोलनने कभी नहा की। इन सब कारणोसे अगर हम यह कहें कि यूरोपमें जिस ढगसे मजदूरोकी मुक्तिका आन्दोलन हुआ है और हो रहा है उसी ढगसे हमारे यहा भी होना चाहिये तो मानना पडेगा कि हमने अपना इतिहास अच्छी तरह नहा पढा है।

वर्ग विग्रह

१० कार्ल मार्क्सके आर्थिक तत्त्वज्ञानका एक दूसरा बडा सिद्धात वर्ग विग्रहका है। उसका यह कहना है कि इतिहासकी जाच करनेसे मालूम होता है कि अलग अलग समयमें अर्थोत्पादन और विनिमयकी जो विभिन्न प्रथाए उत्पन्न हुई ह उन प्रथाओके आधार पर ही उस उस समयका राज नीतिक धार्मिक आदि प्रथाओकी रचना हुई है। मनुष्यकी सारी प्रवत्तियोका स्पष्टीकरण उसने तत्कालीन अर्थोत्पादनकी पद्धतियोमें खोजा है जो उन प्रवत्तियोका प्रेरक कारण रहा ह। इस दृष्टिसे सारी एतिहासिक घटनाओकी जाच करके मार्क्सने यह सार निकाला है कि मनुष्य-जातिका इतिहास समाजमें पदा हुए वर्गोंके परस्पर विग्रहके इतिहासके सिवा दूसरा कुछ नही है। शोषक और शोषित सत्ताधारी और पददलित इन दोनो वर्गोंके बीच सदा ही विग्रह चलता रहा है। मालिक और गुलाम जमीदार और किसान व्यापारी और कारीगर इन वर्गोंके बीचके विग्रहने मानव जातिकी आर्थिक प्रगति और विकासमें हाथ बटाया है। इस समय यह विग्रह पूजीपति और मजदूरोके बीच चल रहा है। पूजीपतिके पास उत्पादनके सारे साधन ह और राज्यसत्ता भी उसीके हाथमें है अथवा राज्यतत्रमें उसीकी चलती है। मजदूरके पास उसके श्रमके सिवा और कुछ नहा है। वह अपना श्रम पूजीपतिको बेचे तभी उसका निर्वाह हो सकता है। क्योकि जिस पूजी अथवा उत्पादनके साधनो पर वह श्रम कर सकता है उनसे वह वचित हो गया है। इसके सिवा जस जस नई नई यात्रिक और वज्ञानिक खोजें होती जाती ह वस वस उत्पादनके लिए मनुष्यके श्रमकी जरूरत कम होती जाती है। जो काम पहले मानवकी शक्तिसे होता था वह अब भौतिक शक्तिसे होता है। इसलिए मनुष्यका तो यत्र पर यह देखनेका ही काम रहता होता है कि यत्र ठीकसे चलता है या नहीं। इसलिए औरतो और बच्चोसे भी मजदूरोके रूपमें काम लिया जा सकता है। इसके सिवा नई नई शोधोंके

कारण इन उद्योगोंकी अपेक्षा यन्त्र उद्योगोंमें मनुष्यकी कुशलताकी कम जरूरत होती है। ऐसे काम जिनमें कुशल मजदूरोंकी जरूरत पड़ती है दिनोंदिन घटते जाते हैं। क्योंकि यन्त्रसे ही वह कुशलता प्राप्त हो जाती है। इस तरह मनुष्यकी कुशलता और मनुष्यकी शक्ति दोनोंकी जरूरत लगातार कम होती जाती है इसलिए उत्पादनके साधनोंसे वंचित हुआ बहुत बड़ा मजदूर वर्ग बेकार होता जाता है। इस बेकारीसे पैदा होनेवाली गरीबीका नतीजा यह होता है कि पूंजीपति जितना उत्पादन करता है उतना खरीदनेकी शक्ति समाजमें नहीं होती। दुनियाकी सारी जनसंख्याका विचार करें तो उसका बहुत बड़ा भाग आज साधनहीन बेकार और कंगाल बना हुआ है। इस सारी परिस्थितिका कारण वह छोटासा शोषक वर्ग है। परन्तु अब यह शोषण बहुत दिन नहीं चल सकता क्योंकि शोषित वर्गमें अब चमनके लिए सत ही बाकी नहीं रहा है। इसलिए इस शोषक वर्गका नाश अनिवार्य है यह इतिहासके क्रमसे निश्चित हो चुका है। परन्तु पूंजीवादी शोषणका अन्त अपने आप नहीं होगा। मजदूर वर्गको पूंजीपति वर्गके खिलाफ बहुत तीव्र वर्ग विग्रह करके उसका जल्द नाश करना होगा। इस नियतिको नजदीक लानेके लिए मजदूर वर्गको इस हद तक संगठित बनना होगा। पूंजीपति वर्गके मिट जानेके बाद वर्गभेद बिलकुल नष्ट रहेगा और सब प्रकारके शोषण और उत्पीड़नका अन्त हो जायगा। सारी जनताकी एक साथ और स्थायी शक्तिके लिए नया जन्म उगना मानव जातिके लिए नियत हो चुका है। मजदूर जितने जल्दी जाग्रत और संगठित होंगे उतने ही जल्दी वे अपना यह इतिहास नियत कर्तव्य पूरा कर सकेंगे।

भी मानते हैं और लोग यह मान लिया कि उसमें हमारा हित है या नहीं, हमारे देशके पूंजीपतियोंका मान और हित है या नहीं, राष्ट्रके नाम पर अपने देशके पूंजीपतियोंको दूसरे देशके पूंजीपतियोंके विरुद्ध उनमें मदद भी करते हैं। कार्ल मार्क्स कहता है कि यह सब वाहियात बात है। क्योंकि किसी भी राष्ट्रमें वहांके मजदूरोंका क्या होता है? राष्ट्रकी धन-सम्पत्तिमें —फिर वह कुदरती हो या मनुष्यकी मेहनतसे पैदा की हुई हो—मजदूरोंका कोई हिस्सा नहीं होता। एक वर्ग उसका उपभोग करता है और अधिक सम्पत्ति पैदा करनेके लिए उसका उपयोग करता है तब भी वह मजदूरोंका तो शोषण ही करता है। राष्ट्रकी राजसत्तामें भी मजदूरोंका कोई हिस्सा नहीं होता। मजदूरोंको मताधिकार—शासनका अधिकार —जरूर मिला होता है परन्तु राजनीतिक दावपेंच कुछ ऐसे होते हैं कि अपने मताधिकारके जोरसे राजसत्ताके द्वारा वे अपना काम करा नहीं सकते, जब कि पूंजीपति-वर्ग राजनीतिक पुरुषोंको भी अपनी उंगलियों पर नचाया करता है। राष्ट्रमें जो अलग अलग धर्म-सम्प्रदाय चलते हैं वे भी पूंजीपति और सत्ताधारी वर्गके ही आधीन रहते हैं। ये धर्माचार्य यह कह कर कि धनवान लोग तो सुख भोगते हैं यह उनके पूर्वजन्मके सत्कर्मोंका फल है और मजदूर लोगोंको यदि दुःख और गरीबीमें गुजर करना पड़ता है तो यह उनके पूर्वजन्मके बुरे कर्मोंका परिणाम है, मजदूरोंको सिखाते हैं कि वे धनिकोंसे बिलकुल ईर्ष्या न करें और अपनी स्थितिमें सन्तोष मान कर रहें। समाजमें भी धनवानोंकी प्रतिष्ठा होती है। अच्छे मकान, अच्छे रास्ते, साफ पानी, हवा, मानसिक आनन्द, अच्छी शिक्षा तथा डाक्टरी इलाज, इन सबका उपयोग राष्ट्रमें धनिकोंके लिए ही होता है और मजदूरोंको बस्तियोंमें तंग किराये मकानोंकी गंदी गलियोंमें रहना, दिनभर कारखानोंमें सख्त मेहनत करना, मालिककी दुकानोंमें या खेतोंमें और हल चलाते हुए बिना विश्राम किये काम करना, कारखानोंके पंजेमें फंसे रहना और अपने स्त्री-बच्चोंको भी मजदूरी कराना ही लिखा होता है। राष्ट्रका धन दौलत साहित्य-सम्पत्ति, अच्छी शिक्षा किसीका भी लाभ मजदूरोंको नहीं मिलता। फिर भी राष्ट्रकी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए लड़ना उन्हें ही पड़ता है और पूंजीपति लोग अपने स्वार्थ और लाभके लिए दूसरे राष्ट्रोंसे लड़ाई छेड़ते हैं तो उसमें सिपाही बनकर जान भी उन्हें ही देनी पड़ती है। यह स्थिति मानव समाज नायक मजदूरोंसे कहता है कि 'तुम्हारे लिए राष्ट्र जैसी कोई चीज है ही नहीं। राष्ट्रका

कारण दूसरे उद्योगोंकी अपेक्षा या उद्योगोंमें मनुष्यकी कुशलताकी कम जरूरत होती है। ऐसे काम जिनमें कुशल मजदूरोंकी जरूरत पड़ती है दिनादिन घटते जाते हैं। क्योंकि यंत्रोंसे ही वह कुशलता प्राप्त हो जाती है। इस तरह मनुष्यकी कुशलता और मनुष्यकी शक्तिकी जनताको जरूरत लगातार कम होती जाती है इसलिए उत्पादनके साधनोंसे वंचित हुआ बहुत बड़ा मजदूर वर्ग बेकार होता जाता है। इस बेकारीसे पैदा होनेवाली गरीबीका नतीजा यह होता है कि पूंजीपति जितना उत्पादन करता है उतना खरीदनेकी शक्ति समाजमें नहीं रहती। दुनियाकी सारी जनसंख्याका विचार करें तो उसका बहुत बड़ा भाग आज साधनहीन बेकार और कंगाल बना हुआ है। इस सारी परिस्थितिका कारण वह छोटासा शोषक वर्ग है। परन्तु अब यह शोषण बहुत दिन नहीं चल सकता क्योंकि शोषित वर्गमें अब चूसनेके लिए कम ही बाकी बचा रहा है। इसलिए इस शोषक वर्गका नाश अनिवार्य है यह ऐतिहासिक क्रमसे निश्चित हो चुका है। परन्तु पूंजीवादी शोषणका अन्त अपने आप नहीं होगा। मजदूर वर्गको पूंजीपति वर्गके खिलाफ अन्त तक तीव्र वर्ग विग्रह करके उसका जड़मूल नाश करना होगा। इस नियतिको नजदीक लानेके लिए मजदूर वर्गको इस हद तक निमित्त बनना होगा। पूंजीपति वर्गके मिट जानेके बाद वर्गभेद बिल्कुल नहीं रहेगा और सब प्रकारके शोषण और उत्पीड़नका अन्त हो जायगा। सारी जनताका एक साथ और स्थायी मुक्तिके लिए नया कदम उठाना मानव जातिके लिए नियत हो चुका है। मजदूर जितने जल्दी जाग्रत और संगठित होंगे उतने ही जल्दी वे अपना यह इतिहास नियत कार्य पूरा कर सकेंगे।

११ आज तक सारी अर्थ प्रवृत्ति एक एक देशको या एक एक राष्ट्रको एक एक घटक मानकर हुई है। अर्थशास्त्रमें सारे प्रश्नोंका विचार राष्ट्रकी संपत्ति राष्ट्रकी आय राष्ट्रका व्यापार तथा राष्ट्रके आर्थिक लाभकी दृष्टिसे किया जाता है। परन्तु प्रत्येक राष्ट्रका बहुत बड़ा जनसमुदाय तो कंगाल होता है। प्रत्येक राष्ट्रकी संपत्ति आय व्यापार नफा आदि थोड़ेसे धनवान लोगोंके लिए ही होते हैं। राष्ट्रका व्यापार ज्यादा बढ़े और वहांकी संपत्ति बढ़ी तो उससे फायदा तो उस राष्ट्रमें रहनेवाले थोड़ेसे अधिकारी और धनी लोगोंको ही होता है। किसान और शहरके मजदूर-वर्गकी हालत कम ज्यादा बराबर ही समान होती है। अलग अलग देशोंके पूंजीपति एक-दूसरेसे स्पर्धा किया करते हैं और इस स्पर्धामें अपने अपने राष्ट्रका नाम आगे करके राष्ट्रके तमाम लोगोंकी राष्ट्रभक्ति और मदद

भी मांगते हैं और लोग यह सोच लेते कि इसमें हमारा हित है या नहीं, हमारे देशके पूंजीपतियोंकी बात ठीक है या नहीं। राष्ट्रके नाम पर अपने देशके पूंजीपतियोंको दूसरे देशके पूंजीपतियोंके विरुद्ध [illegible] मदद भी करते हैं। पर मालूम रहना चाहिए कि यह सब वाग्जाल मात्र है। क्योंकि किसी भी राष्ट्रमें बेचारे मजदूरोंका क्या होता है? राष्ट्रकी धन-सम्पत्तिमें —फिर वह कुदरती हो या मनुष्यकी मेहनतसे पैदा की हुई हो—मजदूरोंका कोई हिस्सा नहीं होता। एक छोटा-सा धनिक वर्ग उसका उपभोग करता है और अधिक सम्पत्ति पैदा करनेके लिए उसका उपयोग करता है तब भी वह मजदूरोंका ही शोषण किया करता है। राष्ट्रकी राज्यसत्तामें भी मजदूरोंका कोई हिस्सा नहीं होता। मजदूरोंको मताधिकार—वोटका अधिकार —जरूर मिला होता है परन्तु राज्यतन्त्रके दावपेंच कुछ ऐसे होते हैं कि अपने मताधिकारके जरिये राजतन्त्र द्वारा वे अपना कोई काम ले नहीं सकते जब कि पूंजीपति-वर्ग राजनैतिक पुरुषोंको भी अपनी उंगलियों पर नचा सकता है। राष्ट्रमें जो अलग अलग धर्म-सम्प्रदाय चलते हैं वे भी पूंजीपति और सत्ताधारी वर्गके ही आश्रित रहते हैं। ये धर्माचार्य यह कह कर कि धनवान लोग तो पुण्यवान हैं यह उनके पूर्वजन्मके सत्कर्मोंका फल है और मजदूर लोगोंको यदि दुःख और रोगादि सहन करना पड़ता है तो यह उनके पूर्वजन्मके बुरे कर्मोंका परिणाम है, मजदूरोंको सिखाते हैं कि वे धनिकोंके विरुद्ध ईर्ष्या न रखें और अपनी स्थितिमें संतोष मान कर पड़े रहें। समाजमें भी धनवानकी प्रतिष्ठा होती है। अच्छे मकान, अच्छे साफ साफ पानी, हवा, खोराक, अच्छी शिक्षा तथा डाक्टरी [illegible] सबकी व्यवस्था राष्ट्रमें धनिकोंके लिए ही होती है और मजदूरोंके नसीबमें तो मिला हुआ रोजानाकी [illegible] आराम रहित [illegible] कारखानेमें सख्त मेहनत करना, शराबकी दुकानोंमें, गन्दे होटलोंमें और [illegible] विश्राममें [illegible] बरबाद करना, [illegible] कर्जमें फंसकर [illegible] और अपने स्त्री-बच्चोंको भी मजदूरी कराना [illegible]। राष्ट्रका धन दौलत, शान्ति-समाचार, स्वच्छता, शिक्षा-दीक्षाका नाम मजदूरोंको नहीं मिलता। फिर भी राष्ट्रकी सम्पत्ति [illegible] वश किया [illegible] और पूंजीपति लोग अपने स्वार्थ और लाभके लिए दूसरे राष्ट्रोंके साथ [illegible] लड़ाइयोंमें भी [illegible] [illegible] के लिए भी वे ही जाते हैं। [illegible] मजदूरोंसे कहता है कि 'तुम्हारे लिए राष्ट्र [illegible] है ही [illegible]।' राष्ट्रकी

कारण इन उद्योगोंकी अपेक्षा यंत्र उद्योगोंमें मनुष्यकी कुशलताकी कम जरूरत होती है। ऐसे काम जिनमें कुशल मजदूरोंकी जरूरत पड़ती है दिनोदिन घटते जाते हैं। क्योंकि यंत्रोंसे ही वह कुशलता प्राप्त हो जाती है। इस तरह मनुष्यकी कुशलता और मनुष्यकी शक्ति दोनोंकी जरूरत लगातार कम होती जाती है इसलिए उत्पादनके साधनोंसे वंचित हुआ बहुत बड़ा मजदूर वर्ग बेकार होता जाता है। इस बेकारीसे पैदा होनेवाली गरीबीका नतीजा यह होता है कि पूंजीपति जितना उत्पादन करता है उतना खरीदनेकी शक्ति समाजमें नहीं होती। दुनियाकी सारी जनसंख्याका विचार करें तो उसका बहुत बड़ा भाग आज साधनहीन बेकार और कंगाल बना हुआ है। इस सारी परिस्थितिका कारण वह छोटासा शोषक वर्ग है। परन्तु अब यह शोषण बहुत दिन नहीं चल सकता क्योंकि शोषित लोग अब चूसनेके लिए धन ही बाकी नहीं रहा है। इसलिए इस शोषक वर्गका नाश अनिवार्य है यह ऐतिहासिक नियम निश्चित हो चुका है। परन्तु पूंजीवादी शोषणका अंत अपने आप नहीं होगा। मजदूर वर्गको पूंजीपति वर्गके खिलाफ अत्यन्त तीव्र वर्ग विग्रह करके उसका खात्मा नाश करना होगा। इस स्थितिको नजदीक लानेके लिए मजदूर वर्गको स्वयं हेतु एक निमित्त बनना होगा। पूंजीपति वर्गके मिट जानेके बाद वर्गभेद बिलकुल नहीं रहेगा और सब प्रकारके शोषण और उत्पीड़नका अंत हो जायगा। सारी जनताकी एक साथ और स्थायी मुक्तिके लिए नया जन्म उठाना मानव जातिके लिए नियत हो चुका है। मजदूर जितने जल्दी जाग्रत और संगठित होंगे उतने ही जल्दी ये अपना यह ऐतिहासिक नियत कर्तव्य पूरा कर सकेंगे।

११ आज तक सारी अर्थ प्रवृत्ति एक एक देशको या एक एक राष्ट्रको एक एक घटक मानकर हुई है। अर्थशास्त्रमें सारे प्रश्नोंका विचार राष्ट्रकी सम्पत्ति राष्ट्रकी आय राष्ट्रका व्यापार तथा राष्ट्रका आर्थिक लाभकी दृष्टिसे किया जाता है। परन्तु प्रत्येक राष्ट्रका बहुत बड़ा जनसमुदाय तो कंगाल ही होता है। प्रत्येक राष्ट्रकी सम्पत्ति आय व्यापार नफा आदि बढ़नेसे एक बहुत छोटे वर्गके लिए ही लाभ होता है। राष्ट्रका व्यापार उद्योग बढ़े और वहांकी सम्पत्ति बढ़े तो उससे फायदा तो उस राष्ट्रमें रहनेवाले थोड़ेसे अधिकारी और धनी व्यापारियोंको ही होता है। किसान और गरीब मजदूर-वर्गका जीवन बहुत कम या नहींके बराबर ही समृद्ध होता है। अलग अलग देशोंके पूंजीपति एक दूसरेसे स्पर्धा शुरू करते हैं और इस स्पर्धामें अपने अपने राष्ट्रका नाम आगे करके राष्ट्रके तमाम लोगोंकी सहानुभूति और मदद

भी मांगते हैं और लोग यह सोचे बिना कि इसमें हमारा हित है या नहीं, हमारे देशके पूंजीपतियोंकी चाल तो नहीं है या नहीं, राष्ट्रके नाम पर अपने देशके पूंजीपतियोंको दूसरे देशके पूंजीपतियोंके विरुद्ध संग्राममें मदद भी करते हैं। कार्ल मार्क्स कहता है कि यह सब वाहियात बात है। क्योंकि किसी भी राष्ट्रमें वहांके मजदूरोंका क्या होता है? राष्ट्रकी धन-संपत्तिमें —फिर वह कुदरती हो या मनुष्योंकी मेहनतसे पैदा की हुई हो—मजदूरोंका कोई हिस्सा नहीं होता। एक बहुत छोटा वर्ग उसका उपभोग करता है और अधिक संपत्ति पैदा करनेके लिए उसका उपयोग करता है तब भी वह मजदूरोंका तो शोषण ही करता है। राष्ट्रकी राज्यसत्तामें भी मजदूरोंका कोई हिस्सा नहीं होता। मजदूरोंको मताधिकार—वोटका अधिकार —जरूर मिला होता है परन्तु राज्यतंत्रके दावपेंच कुछ ऐसे होते हैं कि अपने मताधिकारके जरिए राज्यतंत्रके द्वारा वे अपना कोई खास लाभ नहीं कर सकते जब कि पूंजीपति-वर्ग राजनीतिक पुरुषोंको भी अपनी उंगलियों पर नचा सकता है। राष्ट्रमें जो अलग अलग धर्म-सम्प्रदाय पाये जाते हैं वे भी पूंजीपति और सत्ताधारी वर्गके ही साथ रहते हैं। ये धर्माचार्य यह कह कर कि धनवान लोग जो सुख भोगते हैं वह उनके पूर्वजन्मके सत्कर्मोंका फल है और मजदूर लोगोंको यदि दुःख और कष्टोंमें रहना पड़ता है तो यह उनके पूर्वजन्मके बुरे कर्मोंका परिणाम है, मजदूरोंको सिखाते हैं कि वे धनिकोंसे बिलकुल ईर्ष्या न रखें और अपनी स्थितिमें संतोष मान कर पड़े रहें। समाजमें भी धनवानोंकी प्रतिष्ठा होती है। अच्छे मकान, अच्छे रास्ते, साफ पानी, हवा, [illegible] तथा डाक्टरी, नर्सों वगैरा सबकी सुविधाएं राष्ट्रमें धनिकोंके लिए ही होती हैं और मजदूरोंके जीवनमें तो बिना हवा रोशनीकी गन्दी जगहोंमें रहना, दिनभर कारखानोंमें सख्त मेहनत करना, शराबकी दुकानोंमें जा हाथमें आई हुई [illegible] विश्राम [illegible] बरबाद करना, [illegible] पथमें [illegible] और [illegible] भी मजदूरोंके [illegible] लिखा होता [illegible]। राष्ट्रकी धन दौलत, [illegible] मजदूरोंको नहीं मिलता। फिर भी राष्ट्रकी सम्पत्तिकी [illegible] बड़ा हिस्सा वे ही देते हैं और पूंजीपति लोग अपने स्वार्थ और लाभके लिए दूसरे राष्ट्रोंसे [illegible] लड़ाइयोंमें या [illegible] बाहर लड़ाइके लिए भी वे ही जाते हैं। यह स्थिति होनेके कारण मार्क्स मजदूरोंसे कहता है कि 'तुम्हारे लिए राष्ट्र नामकी कोई चीज है ही नहीं'। राष्ट्रकी

कारण इस उद्योगोंकी अपेक्षा या उद्योगोंमें मनुष्यकी कुशलताकी कम जरूरत होती है। ऐसे काम जिनमें कुशल मजदूरोंकी जरूरत पड़ती है दिनोदिन घटते जाते हैं। क्योंकि यंत्रसे ही वह कुशलता प्राप्त हो जाती है। इस तरह मनुष्यकी कुशलता और मनुष्यकी शक्ति दोनोंकी जरूरत लगातार कम होती जाती है इसलिए उत्पादनके साधनोंसे वंचित हुआ बहुत बड़ा मजदूर वर्ग बेकार होता जाता है। इस बेकारीसे पैदा होनेवाली गरीबीका नतीजा यह होता है कि पूंजीपति जितना उत्पादन करता है उतना खरीदनेकी शक्ति समाजमें नहीं होती। दुनियाकी सारी जनसंख्याका विचार करें तो उसका सबसे बड़ा भाग आज साधनहीन बेकार और कंगाल बना हुआ है। इस सारी परिस्थितिका कारण वह छोटासा शोषक वर्ग है। परन्तु अब यह शोषण बहुत दिन नहीं चल सकता क्योंकि शोषित वर्गमें अब चूसनेके लिए धन ही बाकी नहीं रहा है। इसलिए इस शोषक वर्गका नाश अनिवार्य है यह ऐतिहासिक क्रमसे नियत हो चुका है। परन्तु पूंजीवादी शोषणका अंत अपने आप नहीं होगा। मजदूर वर्गको पूंजीपति वर्गके खिलाफ बहुत तीव्र वर्ग विग्रह करके उसका जल्दी नाश करना होगा। इस नियतिको नजदीक लानेके लिए मजदूर वर्गको इस हद तक निमित्त बनना होगा। पूंजीपति वर्गके मिट जानेके बाद वर्गभेद बिल्कुल नहीं रहेगा और सब प्रकारके शोषण और उत्पीड़नका अंत हो जायगा। सारी जनताकी एक साथ और स्थायी मुक्तिके लिए नया कदम उठाना मानव जातिके लिए नियत हो चुका है। मजदूर जितने जल्दी जाग्रत और संगठित होंगे उतने ही जल्दी वे अपना यह ऐतिहासिक नियत कार्य पूरा कर सकेंगे।

११ आज तक सारी अर्थ प्रवृत्ति एक एक देशको या एक एक राष्ट्रको एक एक घटक मानकर हुई है। अर्थशास्त्रके सारे प्रश्नोंका विचार राष्ट्रकी सम्पत्ति राष्ट्रकी आय राष्ट्रके व्यापार तथा राष्ट्रके आर्थिक लाभकी दृष्टिसे किया जाता है। परन्तु प्रत्येक राष्ट्रका बहुत बड़ा जनसमुदाय तो कंगालोंका होता है। प्रत्येक राष्ट्रकी सम्पत्ति आय व्यापार नफा आदि थोड़ेसे एक सब लोगोंके लिए नहीं होते हैं। राष्ट्रका व्यापार उद्योग बढ़े और राष्ट्रकी सम्पत्ति बढ़े तो उसका फायदा तो उस राष्ट्रमें रहनेवाले थोड़ेसे जमींदारों और धनी लोगोंको ही होता है। बेकार और गरीब मजदूर-वर्गको इससे धन मिले या न मिले बराबर ही समझा जाता है। अलग अलग देशोंके पूंजीपति एक-दूसरेसे स्पर्धा करते हैं और इस स्पर्धामें अपने अपने राष्ट्रका नाम आगे करके राष्ट्रके तमाम लोगोंकी सहानुभूति और मदद

भी मागते है और लोग यह सोचें बिना कि इसमें हमारा हित है या नहीं हमारे देशके पूंजीपतियोंकी बात ठीक है या नहीं राष्ट्रके नाम पर अपने देशके पूंजीपतियोंको दूसरे देशके पूंजीपतियोंके विरुद्ध उनसे मदद भी करते हैं। मार्क्स कहता है कि ये सब वाहियात बातें हैं। क्योंकि किसी भी राष्ट्रमें वहांके मजदूरोंका क्या होता है? राष्ट्रकी धन-सम्पत्तिमें —फिर वह कुदरती हो या मनुष्यकी मेहनतसे पैदा की हुई हो—मजदूरोंका कोई हिस्सा नहीं होता। एक बहुत छोटा वर्ग उसका उपभोग करता है और अधिक सम्पत्ति उन लोगोंके लिए उनका उपयोग करता है तब भी वह मजदूरोंका तो शोषण ही करता है। राष्ट्रकी राज्यसत्तामें भी मजदूरोंका कोई हिस्सा नहीं होता। मजदूरोंको मताधिकार—वास्तव अधिकार —जरूर मिला होता है परन्तु राज्यतंत्र दावपेंच कुछ ऐसे होते हैं कि अपने मताधिकारके कारण राज्यतंत्रक द्वारा वे अपना कोई बड़ा लाभ नहीं कर सकते जब कि पूंजीपति-वर्ग राजनीतिक पुरुषोंको भी अपनी उंगलियों पर नचा सकता है। राष्ट्रमें जो अनेक जाति धर्म-सम्प्रदाय चलते हैं वे भी पूंजीपति और सत्ताधारी वर्गके ही अनुकूल रहते हैं। ये धर्माचार्य यह कहकर कि धनवान लोग तो पुण्य भोगते हैं वे उनके पूर्वजन्मके सत्कर्मोंका फल है और मजदूर लोगोंको यदि दुखी और गरीब हालतमें रहना पड़ता है तो यह उनके पूर्वजन्मके बुरे कर्मोंका परिणाम है मजदूरोंको सिखाते हैं कि वे धनिकोंसे बिल्कुल ईर्ष्या न करें और अपनी स्थितिमें संतोष मान कर पड़े रहें। समाजमें भी धनवानोंकी प्रतिष्ठा होती है। अच्छे मकान अच्छे रास्ते बाग बगीचे हवा पानीकी जगह अच्छी शिक्षा तथा आरोग्य सभी चीजोंका सबसे ज्यादा राष्ट्रमें धनिकोंके लिए ही होता है और मजदूरोंको गांवोंमें तो मिला हुआ रहनेकी गंदी जगहोंमें रहना होता है। बिना अच्छे अन्नके मेहनत करना गांवकी गुफाओंमें गंदे हालातमें और हवा पानी बिना दिन बिताना इस करना दुःखदायी परिस्थितिमें फंसकर जूझना और अपने स्त्री-बच्चोंको भी मजदूरी कराना ही लिखा होता है। राष्ट्रका धन दौलत साहित्य-भंडार संस्कृति शिक्षा विज्ञान का लाभ मजदूरोंको नहीं मिलता। फिर भी राष्ट्रका गर्व तो उत्पन्न कर दिया ही रहता है और पूंजीपति लोग अपने स्वार्थ और लाभके लिए दूसरे राष्ट्रोंसे भी लड़ाइयां भी करवाते हैं तो इन लोगोंको जबरदस्ती लड़ने भेज दिया जाता है। यह स्थिति होनेके कारण मार्क्स मजदूरोंसे कहता है कि 'तुम्हारे लिए राष्ट्र जैसी कोई चीज है ही नहीं। राष्ट्रकी

बात तुम छोड दो। तुम्हारे राष्ट्रके हो या दूसरे राष्ट्रके तुम्हारे सच्चे शत्रु तो पूंजीपति ही है और तुम्हारे राष्ट्रके हो अथवा दूसरे राष्ट्रके हो तुम्हारे सच्चे भाई मजदूर ही है। इसलिए दुनिया भरके मजदूरो तुम एक हो जाओ और पूंजीपतियोंके विरुद्ध विद्रोह करके अपने पैरोंकी बेडियां तोड दो। दुनियामें तुम्हारे पास इन बेडियोंके सिवा और है ही क्या? तुम्हारे पास खोनेकी अगर कोई चीज है तो ये बेडियां ही है। *

---

* पूंजीपतियों और मजदूरोंके बीचके संबंधका यह पृथक्करण या वर्णन सारी दुनियाके समस्त पूंजीपतियों और मजदूरोंकी समग्र दृष्टिसे विचार करें तो सच्चा माना जा सकता है परन्तु प्रत्येक देशकी सच्ची परिस्थितियोंको देखते हुए इसकी सत्यता पर शंका की जा सकती है। उदाहरणके लिए इंग्लैण्डमें आज मजदूरोंकी हालत वैसी नहीं है जैसी ऊपर वर्णन की गई है। वहांके पूंजीपति और राजनीतिक नेता दूरदेशी और समझदारीसे काम लेकर वहांके मजदूरोंको संतुष्ट रखनेकी कोशिश करते दिखाई देते है। साम्यवादी इस वस्तुस्थितिका यह स्पष्टीकरण करते है कि इंग्लैण्डके पूंजीपतियोंकी इस तरहकी दूरदेशीभरी समझदारी या दूसरे शब्दोंमें कहें तो समझदारीके साथ स्वार्थ साधनेकी युक्ति सूझ सकती है क्योंकि शोषण करनेके लिए उनके पास कई उपनिवेश पडे है। इसलिए इस बडे शोषणमें से वे अपने देशके मजदूरोंको हिस्सा दे सकते है। इंग्लैण्डके मजदूरोंको तो वहांके पूंजीपतियोंके छोटे साझेदार ही मानना चाहिये। ये मजदूर राष्ट्रवादी होनेके अलावा साम्राज्यवादी भी है क्योंकि इंग्लैण्डका साम्राज्य टिका रहे तो ही उनके रहन-सहनका वर्तमान ऊंचा स्तर टिका रह सकता है। व्यापार-उद्योगमें आगे बढ़ा हुआ प्रत्येक राष्ट्र आज साम्राज्य जमानेकी कोशिश करता है और यदि वह साम्राज्य जमा सके तो उसकी लूटमें से अपने यहांके मजदूरोंको भी थोडा-बहुत हिस्सा देनेका प्रलोभन देता है। इसलिए 'तुम्हारे लिए राष्ट्र जैसी कोई चीज है ही नहीं' यह बात मजदूरोंको समझाना आरंभ करनेको लगभग सौ बरस होने आये तो भी अभी तक मजदूरोंमें से राष्ट्रीय भावना मिट नहीं सकी। दूसरी दृष्टिसे देखें तो राष्ट्रकी भावना हर मनुष्यके दिलमें गहरी जडें जमाकर रहनेवाली एक वृत्ति है।। इसलिए इसे मिटानेके बजाय शुद्ध करनेकी कोशिश करना चाहिये। इसमें जो संकीर्णता भरी है उसे निकाल दिया जाय और राष्ट्रीय भावना आन्तर राष्ट्रीयता और विश्वबंधुत्वकी विरोधी भावना हो ही सकती है और अपने स्वार्थ भूख तथा कमजोरियों और गलत स्वार्थों आदिको राष्ट्रीय भावनाके

मजदूर-दलकी तानाशाही

१२ वर्तमान पूंजीवादी समाज रचनाका राज्य बहुत बड़ा सहारा है। जो इंग्लैण्ड और अमरीका लोकतांत्रिक शासनवाले देश कहलाते हैं वहां भी गहरे जाकर देखें तो शासनमें उद्योगपतियों और पूंजीपतियोंकी ही प्रत्यक्ष या परोक्ष सत्ता चलती है। पूंजीपति और मजदूर-वर्गके बीच किसी छोटे या मामूली प्रश्न पर झगड़ा हो जाय और उसमें मजदूर-पक्ष कानूनकी दृष्टिसे सच्चा हो तो कानून जरूर मजदूरोंकी मदद करता है। लेकिन अगर मजदूरों और पूंजीपतियोंके बीच जीवन मरणका संघर्ष छिड़ जाय तो तमाम नियम नहीं कि कानून व नीति सब ताकमें रखा रह जाती है और राज्यसत्ता पूंजीपतियोंकी मदद पर अपनी संगीनें और मशीनगनें लेकर खड़ी हो जाती है। राज्यतंत्र पुकारा तो जाता है लोकशाहीके नाममें परन्तु उसमें उद्योगपति, लक्ष्मीपति सेनापति और सत्तापति सबका गठबंधन रहता है और उनकी टोली अपने वर्गके स्वार्थोंका ध्यान रखकर ही सारा राजकाज चलाती है। इसीलिए मार्क्स कहता है कि उत्पादनके साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्वको स्वीकार करनेवाली अर्थ रचनाको मिटा कर मजदूरोंको पूंजीपतियोंके चंगुलसे निकलना हो तो पूंजीपतियोंके खिलाफ तीव्र वर्ग विग्रहकी तैयारी करनी होगी और विग्रह करके मजदूर-वर्गको राज्यसत्ता पर अधिकार करना पड़ेगा। राज्यसत्ताको हाथमें लेना मजदूरोंकी क्रान्तिका पहला सोपान है क्योंकि क्रान्तिका कार्य तो राज्यसत्ता पर अधिकार करनेके बाद शुरू होता है। यह स्वाभाविक है कि मजदूरोंके इस विद्रोहमें अगुआ नेता ही भाग लेंगे। अलबत्ता उन्हें सारे मजदूर-वर्गकी सहानुभूति और समर्थन मिलेगा। इसलिए राज्यसत्ता पहले तो इन नेताओंके हाथमें ही आयेगी। वे अगर पुराने शासनको कायम रखकर चुनाव करने और विधानसभाके चलानेके चक्करमें पड़ जायेंगे, तब तो पूंजीपति-वर्ग उनकी क्रान्तिको आगे नहीं बढ़ने देगा और उनके विग्रहको बेकार बना देगा। इसलिए क्रान्तिको टिकाये रखने उसे आगे बढ़ाने और साम्यवादी सिद्धान्तोंके मुताबिक सारी समाज रचना बदल डालनेके लिए उन्हें शासनतंत्रके जंजालमें न फंसकर और उसका ख्याल न रखकर सीधी ताना

नामका पालन देना चाहिये यह विचार दूर कर दिया जाय तो राष्ट्रीय भावनायें अनेक गुनी उपयोगी हो सकती हैं और मानव जातिके विकासमें आज यह जो बहुत बड़ी रुकावट बनी हुई है उसके बजाय अत्यन्त सहायक बन सकती है।

बात तुम छोड दो। तुम्हारे राष्ट्रके हो या दूसरे राष्ट्रके तुम्हारे सच्चे शत्रु तो पूंजीपति ही ह और तुम्हारे राष्ट्रके हो अथवा दूसरे राष्ट्रके हो तुम्हारे सच्चे भाई मजदूर ही ह। इसलिए दुनिया भरके मजदूरो तुम एक हो जाओ और पूंजीपतियाके विरुद्ध विद्रोह करके अपने पराकी बडिया तोड दो। दुनियामें तुम्हारे पास इन बडियोंके सिवा और है ही क्या? तुम्हारे पास खानेको अगर कोई चीज है तो य बडिया ही ह। *

पूजीपतिया और मजदूरोके बीचके सबधका यह पथक्करण या वणन सारी दुनियाके समस्त पूजीपतिया और मजदूराका समग्र दष्टिसे विचार करें तो सच्चा माना जा सकता है परन्तु प्रत्यक देशकी सच्ची परिस्थितियाका देखने हुए इसकी सत्यता पर शका की जा सक्ती है। उदाहरणके लिए इग्लण्डमें आज मजदूराकी हालत वसी नही है जसी ऊपर वणन की गई है। वहाके पूजीपति और राजनीतिक नेता दूरदेशी और समझदारीस काम लेकर वहाके मजदूराको सतुष्ट रखनकी कोशिश करते दिखाई देते ह। साम्यवादी इस वस्तुस्थितिका यह स्पष्टीकरण करते ह कि इग्लण्डके पूजीपतियाको इस तरहकी दूरन्देशीभरी समझदारी या दूसरे शब्दामे कहें तो समझदारीके साथ स्वाथ साधनकी शक्ति पुसा सकती है क्याकि शोषण करनके लिए उनके पास कई उपनिवश पडे हैं। इसलिए इस बडे शोषणमें से वे अपन देशके मजदूरोको हिस्सा द सकते ह। इग्लण्डके मजदूराको तो वहाके पूजीपतियाके छोटे साझेदार ही मानना चाहिए। य मजदूर राष्ट्रवादी होनके अलावा साम्राज्यवादी भी ह क्याकि इग्लण्डका साम्राज्य टिका रहे तो ही उनके रहन-सहनका वतमान ऊचा स्तर टिका रह सकता है। व्यापार उद्योगमें आगे बढा हुआ प्रत्यक राष्ट्र आज साम्राज्य जमानकी कोशिश करता है और यदि वह साम्राज्य जमा सकता तो उसकी लूटमें स अपन यहाके मजदूराको भी थोडा-बहुत हिस्सा देनका प्रलोभन देता है। इसलिए तुम्हारे लिए राष्ट्र जसी कोई चीज है हा नही यह बात मजदूराको समझाना आरभ करनको लगभग सौ बरस होन आय तो भी अभी तक मजदूरामें स राष्ट्रीय भावना मिट नही सकी। दूसरी दष्टिसे देखें तो राष्ट्रकी भावना हर मनुष्यक दिलमें गहरी जडें जमाकर रहनवाली एक वत्ति है। इसलिए इस मिटानके बजाय शुद्ध करनका कोशिश करना चाहिये। इसमें जा सकीणता भरा है उस निकाल दिया जाय और राष्ट्रीय भावना आन्तर राष्ट्रीयता और विश्वबन्धुत्वकी विरोधी भावना हा हा सकती है और अपन प्यारी भूल द्वारा कमजोरिया और गलत स्वार्थो आदिको राष्ट्रीय भावनाक

मजदूर-दलकी तानाशाही

१२. वर्तमान पूंजीवादी समाज रचनाको राज्यका बहुत बड़ा सहारा है। जो इंग्लैंड और अमरीका लोकतांत्रिक शासनवाले देश कहलाते हैं वहां भी गहरे जाकर देखें, तो शासनमें उद्योगपतियों और पूंजीपतियोंकी ही प्रत्यक्ष या परोक्ष सत्ता चलती है। पूंजीपति और मजदूर वर्गके बीच किसी छोटे या मामूली प्रश्न पर झगड़ा हो जाय और उसमें मजदूर-पक्ष कानूनकी दृष्टिसे सच्चा हो तो कानून जरूर मजदूरोंकी मदद करता है। लेकिन अगर मजदूरों और पूंजीपतियोंके बीच जीवन मरणका संघर्ष छिड़ जाय, तो इसमें शक नहीं कि कानून व नीति सब ताकमें रखा रह जाती है और राज्यसत्ता पूंजीपतियोंकी मदद पर अपनी सेनायें और मशीनगनें लेकर खड़ा हो जाता है। राज्यतंत्र पुकारा तो जाता है लोकशाहीके नामसे परन्तु उसमें उद्योगपति लक्ष्मीपति सेनापति और सत्तापति सबका गठबंधन रहता है और उनकी टोली अपने वर्गके स्वार्थोंका ध्यान रखकर ही सारा राजकाज चलाती है। इसीलिए मार्क्स कहता है कि उत्पादनके साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्वको स्वीकार करनेवाली अर्थ रचनाको मिटा कर मजदूरोंको पूंजीपतियोंके चंगुलसे निकलना हो तो पूंजीपतियोंके खिलाफ सारे वर्ग विग्रहकी तैयारी करनी होगी और विद्रोह करके मजदूर-वर्गको राज्यसत्ता पर अधिकार करना पड़ेगा। राज्यसत्ताको हाथमें लेना मजदूरोंकी क्रान्तिका पहला सोपान है क्योंकि क्रान्तिका कार्य तो राज्यसत्ता पर अधिकार करनेके बाद शुरू होता है। यह स्वाभाविक है कि मजदूरोंके इस विद्रोहमें अमुक नेता ही भाग लेंगे। अलबत्ता उन्हें सारे मजदूर-वर्गकी सहानुभूति और समर्थन मिलेगा। इसलिए राज्यसत्ता पहले तो इन नेताओंके हाथमें ही आयेगी। वे अगर पुराने लोकतंत्रको कायम रखकर चुनाव करने और विधानसभाएं चलानेके चक्करमें पड़ जायेंगे तब तो पूंजीपति-वर्ग उनकी क्रान्तिको आगे नहीं बढ़ने देगा और उनके विरोधको निष्फल बना देगा। इसलिए क्रान्तिको टिकाये रखने, उसे आगे चलाने और क्रान्तिकारी सिद्धान्तोंके मुताबिक सारी समाज रचना बदल डालनेके लिए उन्हें लोकतंत्रके जंजालमें न फंसकर और उसका स्वांग न रचकर सीधी ताना

ताको पोषण देना चाहिए यह विचार दूर कर दिया जाय तो राष्ट्रीय भावनाके अनेक सदुपयोग हो सकते हैं और मानव जातिके विकासमें आज वह जो बहुत बड़ी रुकावट बनी हुई है उसके बजाय अच्छी सहायक बन सकती है।

बात तुम छोड दो। तुम्हारे राष्ट्रके हों या दूसरे राष्ट्रके तुम्हारे सच्चे शत्रु तो पूंजीपति ही हैं और तुम्हारे राष्ट्रके हों अथवा दूसरे राष्ट्रके हों तुम्हारे सच्चे भाई मजदूर ही हैं। इसलिए दुनिया भरके मजदूरो तुम एक हो जाओ और पूंजीपतियोंके विरुद्ध विद्रोह करके अपने पैरोंकी बेडियां तोड दो। दुनियामें तुम्हारे पास इन बेडियोंके सिवा और है ही क्या? तुम्हारे पास खोनेको अगर कोई चीज है तो ये बेडियां ही हैं। *

---

* पूंजीपतियों और मजदूरोंके बीचके संबंधका यह पृथक्करण या वर्णन सारी दुनियाके समस्त पूंजीपतियों और मजदूरोंका समग्र दृष्टिसे विचार करें तो सच्चा माना जा सकता है परन्तु प्रत्येक देशकी सच्ची परिस्थितियोंको देखते हुए इसकी सत्यता पर शंका की जा सकती है। उदाहरणके लिए इंग्लैण्डमें आज मजदूरोंकी हालत वैसी नहीं है जैसी ऊपर वर्णन की गई है। वहांके पूंजीपति और राजनीतिक नेता दूरदर्शी और समझदारीसे काम लेकर वहांके मजदूरोंको संतुष्ट रखनेकी कोशिश करते दिखाई देते हैं। साम्यवादी इस वस्तुस्थितिका यह स्पष्टीकरण करते हैं कि इंग्लैण्डके पूंजीपतियोंको इस तरहकी दूरदर्शीभरी समझदारी या दूसरे शब्दोंमें कहें तो समझदारीके साथ स्वार्थ साधनेकी युक्ति सूझ सकती है क्योंकि शोषण करनेके लिए उनके पास कई उपनिवेश पड़े हैं। इसलिए इस बड़े शोषणमें से वे अपने देशके मजदूरोंको हिस्सा दे सकते हैं। इंग्लैण्डके मजदूरोंको तो वहांके पूंजीपतियोंके छोटे साझेदार ही मानना चाहिये। ये मजदूर राष्ट्रवादी होनेके अलावा साम्राज्यवादी भी हैं क्योंकि इंग्लैण्डका साम्राज्य टिका रहे तो ही उनके रहन-सहनका वर्तमान ऊंचा स्तर टिका रह सकता है। व्यापार उद्योगमें आगे बढ़ा हुआ प्रत्येक राष्ट्र आज साम्राज्य जमानेकी कोशिश करता है और यदि वह साम्राज्य जमा सके तो उसकी लूटमें से अपने यहांके मजदूरोंको भी थोड़ा-बहुत हिस्सा देनेका प्रलोभन देता है। इसलिए 'तुम्हारे लिए राष्ट्र जैसी कोई चीज है ही नहीं' यह बात मजदूरोंको समझाना आरंभ करनेको लगभग सौ बरस होने आये तो भी अभी तक मजदूरोंमें से राष्ट्रीय भावना मिट नहीं सकी। दूसरी दृष्टिसे देखें तो राष्ट्रकी भावना हर मनुष्यके दिलमें गहरी जड़ें जमाकर रहनेवाली एक वृत्ति है। इसलिए इसे मिटानेके बजाय शुद्ध करनेकी कोशिश करना चाहिये। इसमें जो संकीर्णता भरी है उसे निकाल दिया जाय और राष्ट्रीय भावना आंतर राष्ट्रीयता और विश्वबंधुत्वकी विरोधी भावना ही हो सकती है और अपने दूसरी भूलों भरी कमजोरियां और गलत स्वार्थों आदिको राष्ट्रीय भावनाके

मजदूर दलकी तानाशाही

१२ वर्तमान पूंजीवादी समाज रचनाका राज्य बहुत बड़ा सहारा है। जो इंग्लैण्ड और अमरीका लोकतांत्रिक शासनवाले देश कहलाते हैं वहां भी गहरे जाकर देखें, तो शासनमें उद्योगपतियों और पूंजीपतियोंकी ही प्रत्यक्ष या परोक्ष सत्ता चलती है। पूंजीपति और मजदूर वर्गके बीच किसी छोटे या मामूली प्रश्न पर झगड़ा हो जाय और उसमें मजदूर पक्ष कानूनकी दृष्टिसे सच्चा हो तो कानून जरूर मजदूरोंकी मदद करता है। लेकिन अगर मजदूरों और पूंजीपतियोंके बीच जीवन मरणका संघर्ष छिड़ जाय, तो [illegible] नहीं कि कानून व नीति सब ताकमें रखी रह जाती है और राज्यसत्ता पूंजीपतियोंकी मदद पर अपनी संगीन और मशीनगन लेकर खड़ी हो जाती है। राज्यतंत्र पुकारा तो जाता है लोकशाहीके नामसे, परन्तु उसमें उद्योगपति, लक्ष्मीपति, सनातनि और सत्तापति सबका गठबंधन रहता है और उनकी टोली अपने वर्गके स्वार्थोंका ध्यान रखकर ही सारा राजकाज चलाती है। इसलिए मार्क्स कहता है कि उत्पादनके साधनों पर व्यक्तिगत मालिकीको स्वीकार करनेवाली अर्थ रचनाको मिटा कर मजदूरोंको पूंजीपतियोंके पंजेसे निकलना हो तो पूंजीपतियोंके खिलाफ सशस्त्र वर्ग विग्रहकी तैयारी करनी होगी और विद्रोह करके मजदूर-वर्गको राज्यसत्ता पर अधिकार करना पड़ेगा। राज्यसत्ताको हाथमें लेना मजदूरोंकी क्रान्तिका पहली मंजिल है, क्योंकि क्रान्तिका कार्य तो राज्यसत्ता पर अधिकार करनेके बाद शुरू होता है। यह स्वाभाविक है कि मजदूरोंके इस विद्रोहमें अगुआ थोड़े ही लोग होंगे। अलबत्ता उन्हें सारे मजदूर-वर्गकी सहानुभूति और समर्थन मिलेगा। क्रान्तिकारी राज्यसत्ता पहले तो इन नेताओंके हाथमें ही आयेगी। ये अगर पुराने लोकतंत्र कायम रखकर चुनाव करने और विधानसभाएं चलाने [illegible], तब तो पूंजीपति-वर्ग उनकी क्रान्तिको आगे नहीं बढ़ने देगा और [illegible] अगरन्त बना देगा। इसलिए क्रान्तिकारी [illegible] और क्रान्तिकारी सिद्धान्तोंके मुताबिक सारे समाजकी [illegible] लोकतंत्र [illegible] और [illegible]

[illegible]

शाही ही चलानी पड़ेगी। नेताओं और क्रांतिकारी मजदूरोंको इस तानाशाहीकी अपनी सत्ताकी मददसे समाजमें सारे क्रांतिकारी परिवर्तन दाखिल करने पड़ेंगे। इसका विरोध करनेवाले पर कोई दया किये बिना उनका नाम निशान मिटा देना चाहिये। इसमें ढिलाई करनेसे काम नहीं चलेगा। पूंजीपति वर्गके साथ पूंजीवादी वृत्तिको भी समाजमें से उखाड़ फेंकना होगा। इसके लिए इस तानाशाहीको नीचे लिखा कार्यक्रम हाथमें लेकर अपनी सत्ताके द्वारा यथासंभव जल्दी ही उसे अमलमें लाना होगा

(१) उत्पादनके तमाम साधनों — जमीन कारखानों आदिको राज्यकी सम्पत्ति बनाकर राज्यकी ओरसे खेती करवाना और कारखाने चलवाना चाहिये।

(२) उत्पादक साधनोंके सिवा दूसरी कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति हो तो वह मनुष्यके पास रहे परन्तु उस सम्पत्तिका उपयोग वह किराया ब्याज या नफा कमानेके काममें नहीं कर सकेगा।

(३) उत्तराधिकारकी प्रथा मिटा दी जाय।

(४) जो लोग क्रांतिका विरोध करें उनकी सारी जमीन-जायदाद जब्त करके उन्हें सजा दी जाय।

(५) देशका तमाम सराफी कामकाज सरकारके अधीन चले।

(६) सन्देश-व्यवहार यातायात तथा परिवहनके सारे साधन सरकारके हाथमें रहें।

(७) समाजके आर्थिक विकासके लिए सुगठित योजना बनाकर उसके अनुसार खेती और दूसरे उद्योगोंका विकास सरकारकी ओरसे किया जाय।

(८) इस योजनामें खेती और दूसरे उद्योग धंधोंके बीच उचित अनुपात बना रहना चाहिये ताकि शहरों और गांवोंके बीचका भेद धीरे धीरे मिट जाय और सारे देशमें जनसंख्याका बंटवारा समुचित रूपमें हो।

(९) सारे सशक्त स्त्री-पुरुषोंके लिए सरकारकी ओरसे निश्चित किया हुआ समाजोपयोगी श्रम करना अनिवार्य होना चाहिये। बीमार अपंग और काम न कर सकनेवालोंके निर्वाहका इन्तजाम सरकारकी ओरसे होना चाहिये।

(१०) राज्यकी ओरसे तमाम बच्चोंको मुफ्त शिक्षा दी जाय और हर एकको अच्छीसे अच्छी शिक्षा पानेका समान अवसर मिले।

वर्गविहीन समाज

१ यह कार्यक्रम जैसे जैसे अमलमें आता जायगा वैसे वैसे वर्ग समाजसे धीरे धीरे मिटता जायगा और राज्यको समाजके सुव्यवस्थित संचालनके लिए

अपनी सत्ताका दिनादिन कम उपयोग करना पड़ेगा। जैसे जैसे क्रान्ति आगे बढ़ती जायगी वैसे वैसे राज्यके काम घटते जायँगे और अन्तमें समाज वर्गविहीन बन जायगा इसलिए किसी तरहके संघर्षका कारण नहीं रहेगा और राज्यसत्ताकी भी जरूरत नहीं रहेगी।

१४ मार्क्स कहता है कि पूँजीवादी समाजमें लोगोंको तंगी भुगतनी पड़ती है क्योंकि उत्पादन उतना ही और उसी तरहका होता है जिससे नफा हो। परन्तु क्रांतिके बाद सब लोग सारे समाजकी आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए उत्पादन करेंगे, देशकी कुदरती साधन-संपत्तिका पूरा पूरा उपयोग होगा, यांत्रिक तथा वैज्ञानिक शोधोंका लाभ सारे समाजको देनेमें पूँजीपतियोंकी तरफसे कोई रुकावट नहीं रहेगी, इसलिए समाजकी उत्पादन शक्ति कई गुनी बढ़ जायगी और समाजकी सुख-सुविधायें सभी क्षेत्रमें निरन्तर बढ़ने लगेंगी। तब साम्यवादी समाज यह नारा बुलन्द कर सकेगा कि 'प्रत्येक अपनी शक्तिके अनुसार काम करे और प्रत्येकको अपनी जरूरतके अनुसार मिले।'

१५ मार्क्सके सिद्धान्तों और कार्यक्रमकी यह बहुत ही संक्षिप्त रूपरेखा है। समाजवादी समाजकी स्थापनाके लिए मजदूरोंके विद्रोह या हिंसक क्रान्तिको दूसरे भी बहुतसे समाजवादी अनिवार्य मानते हैं। ऐसे भी समाजवादी हैं जो वर्तमान लोकतंत्रके जरिये अर्थात् मजदूर-वर्गके प्रतिनिधियोंका पार्लमेण्टमें बहुमत बनाकर तथा वैधानिक पद्धतिसे कानून बनाकर समाजवाद स्थापित करनेकी आशा रखते हैं। आयकर और उत्तराधिकार-कर धीरे धीरे खूब बढ़ा देना और कारखाने, रेल्वे, बैंक आदि धीरे धीरे राज्यके हाथमें ले लेना — यह उनका कार्यक्रम है। यह बात भी समाजवादी मानने लगे हैं कि राष्ट्रीय भावनाकी अवहेलना बिलकुल उसे दबाकर हम क्रान्ति नहीं कर सकेंगे। आजके साम्राज्यवादियोंके नीचे जो राष्ट्र कुचले जा रहे हैं, उनकी आजादीकी घोषणा पहले करना पड़ेगा। साथ ही यह भी वांछनीय होगा कि स्वतंत्र प्रजायें अपने अपने राष्ट्रमें ही पहले समाजवादकी स्थापना करें। मार्क्स यह मानता था कि दूसरे राष्ट्र यदि पूँजीवादी रचनावाले रहें तो उन राष्ट्रोंके बीच बाद साम्यवादी राष्ट्र अपनी क्रान्तिको टिकाए नहीं रख सकेगा। इसलिए एक राष्ट्रमें साम्यवादी क्रान्ति हो तो उसे दूसरे देशोंके मजदूरोंको भी ऐसी ही क्रान्ति करनेके लिए आह्वान करना चाहिए और उनकी मदद भी करना चाहिए। रूसमें क्रान्ति हुई तब ट्राटस्की ऐसा मानता था कि दूसरे राष्ट्रोंमें क्रान्ति करानेके लिए रूसको क्रान्तिकारी

शाही ही बनाना पड़ेगा। नेताओं और क्रान्तिकारी मजदूरोंको इस तानाशाहीको अपनी सत्ताकी मददसे समाजमें सारे क्रान्तिकारी परिवर्तन दाखिल करने पड़ेंगे। इसका विरोध करनेवालों पर कोई दया किये बिना उनका नाम निशान मिटा देना चाहिये। इसमें ढिलाई करनेसे काम नहीं चलेगा। पूंजीपति-वर्गके साथ पूंजीवादी वृत्तिको भी समाजमें से उखाड़ फेंकना होगा। इसके लिए इस तानाशाहीको नीचे लिखा कार्यक्रम हाथमें लेकर अपनी सत्ताके द्वारा यथासंभव जल्दी ही उसे अमलमें लाना होगा :

(१) उत्पादनके तमाम साधनों — जमीन कारखानों आदिको राज्यकी सम्पत्ति बनाकर राज्यकी ओरसे खेती करवाना और कारखाने चलवाना चाहिये।

(२) उत्पादनके साधनोंके सिवा दूसरी कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति हो तो वह मनुष्यके पास रहे, परन्तु उस सम्पत्तिका उपयोग वह किराया ब्याज या नफा कमानेके काममें नहीं कर सकेगा।

(३) उत्तराधिकारकी प्रथा मिटा दी जाय।

(४) जो लोग क्रान्तिका विरोध करें उनकी सारी जमीन जायदाद जब्त करके उन्हें सजा दी जाय।

(५) देशका तमाम सराफी कामकाज सरकारके अधीन चले।

(६) सन्देश-व्यवहार यातायात तथा परिवहनके सारे साधन सरकारके हाथमें रहें।

(७) समाजके आर्थिक विकासके लिए सुगठित योजना बनाकर उसके अनुसार खेती और दूसरे उद्योगोंका विकास सरकारकी ओरसे किया जाय।

(८) इस योजनामें खेती और दूसरे उद्योग धंधोंके बीच उचित अनुपात बना रहना चाहिये ताकि शहरों और गांवोंके बीचका भेद धीरे धीरे मिट जाय और सारे देशमें जनसंख्याका बंटवारा समुचित रूपमें हो।

(९) सारे सक्षम स्त्री-पुरुषोंके लिए सरकारकी ओरसे निश्चित किया हुआ समाजोपयोगी श्रम करना अनिवार्य होना चाहिये। बीमार, अपंग और काम न कर सकनेवालोंके निर्वाहका इन्तजाम सरकारकी ओरसे होना चाहिये।

(१०) राज्यकी शालाओंमें तमाम बच्चोंको मुफ्त शिक्षा दी जाय और हर बच्चेको अच्छीसे अच्छी शिक्षा पानेका समान अवसर मिले।

वर्गविहीन समाज

१३. यह कार्यक्रम जैसे जैसे अमलमें आता जायगा वैसे वैसे समाजसे वर्गभेद मिटता जायगा और राज्यको समाजके सुव्यवस्थित संचालनके लिए

अपनी सत्ताका दिनोंदिन कम उपयोग करना पड़ेगा। जैसे जैसे क्रान्ति आगे बढ़ती जायगी वैसे वैसे राज्यके काम घटते जायंगे और अन्तमें समाज वर्गविहीन बन जायगा। इसलिए किसी तरहके संघर्षका कारण नहीं रहेगा और राज्यसत्ताकी भी जरूरत नहीं रहेगी।

१४ मार्क्स कहता है कि पूंजीवादी समाजमें लोगोंको तंगी भुगतनी पड़ती है क्योंकि उत्पादन उतना ही और उसी तरहका होता है जिससे नफा हो। परन्तु क्रान्तिके बाद सब लोग सारे समाजकी आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए उत्पादन करेंगे, इससे कुदरती साधन-सम्पत्तिका पूरा पूरा उपयोग होगा, यांत्रिक तथा वैज्ञानिक खोजोंका लाभ सारे समाजको देनेमें पूंजीपतियोंकी तरफसे कोई रुकावट नहीं रहेगी। इसलिए समाजकी उत्पादन शक्ति कई गुनी बढ़ जायगी और समाजकी सुख-सुविधायें सभी तरहसे निरन्तर बढ़ने लगेंगी। तब साम्यवादी समाज यह नारा बुलन्द कर सकेगा कि 'प्रत्येक अपनी शक्तिके अनुसार काम करे और प्रत्येकको अपनी जरूरतके अनुसार मिले।'

१५ मार्क्सके सिद्धान्तों और कार्यक्रमकी यह बहुत ही संक्षिप्त रूपरेखा है। समाजवादी समाजकी स्थापनाके लिए मजदूरोंके विद्रोह या हिंसक क्रान्तिको दूसरे भी बहुतसे समाजवादी अनिवार्य मानते हैं। ऐसे भी समाजवादी हैं जो जनमतको शान्तिमय तरीकेसे अर्थात् मजदूर-वर्गके प्रतिनिधियोंको पार्लमेण्टमें बहुमत बनाकर तथा वैधानिक पद्धतिसे कानून बनाकर समाजवाद स्थापित करनेकी आशा रखते हैं। आय-कर और उत्तराधिकार-कर धीरे धीरे खूब बढ़ा देना और कारखाने, रेल्वे, बैंक आदि धीरे धीरे राज्यके हाथमें ले लेना — यह उनका कार्यक्रम है। यह बात भी समाजवादी मानने लगे हैं कि राष्ट्रीय भावनाकी अवहेलना, बिलकुल उसे दबाकर हम क्रान्ति नहीं कर सकेंगे। आजकल साम्राज्यवादके जुल्मके नीचे जो राष्ट्र कुचले जा रहे हैं उनकी आजादीकी घोषणा पहले करनी पड़ेगी। साथ ही यह भी वांछनीय होगा कि स्वतंत्र प्रजायें अपने अपने राष्ट्रमें ही पहले समाजवादकी स्थापना करें। मार्क्स यह मानता था कि दूसरे राष्ट्र यदि पूंजीवादी रहनेवाले रहें, तो ऐसे राष्ट्रोंके बीच कोई साम्यवादी राष्ट्र अपनी क्रान्तिको स्थिर नहीं रख सकेगा। इसलिए एक राष्ट्रमें साम्यवादी क्रान्ति हो तो उसे दूसरे देशोंके मजदूरोंको भी ऐसी ही क्रान्ति करनेके लिए आह्वान करना चाहिए और उनकी मदद भी करनी चाहिए। जब रूसमें क्रान्ति हुई तब ट्रॉट्स्कीका जोर इस बात पर था कि दूसरे राष्ट्रोंमें क्रान्ति करानेके लिए रूसको क्रान्तिकारी

सेनाकी सहायतासे उन राष्ट्रो पर चढाई की जाय। लेकिन लेनिनने उसे रोक दिया। लेनिन यह मानता था कि रूसमें यदि क्रांति सफल हो गई, तो दूसरे राष्ट्रोंमें अपने आप क्रान्ति होगी। परन्तु लेनिनके अवसानके बाद रूसकी सत्ता स्टालिनके हाथमें आई और कुछ जानकार कहते है कि आजकल वहाका समाज साम्यवादी सिद्धान्तो पर नही चलता बल्कि वहा एक सकुचित और आक्रमणकारी राष्ट्रवाद पूरी तरह फैला हुआ है। इसके सिवा वहा पूजीवादको भी खुली छूट मिलने लगी है। इग्लण्डके बारेमें कहा जाता है कि वहाकी कुल राष्ट्रीय सम्पत्तिका ५/६ भाग १० प्रतिशत लोगोके हाथमें है परन्तु साम्यवादी कहलानेवाले रूसमें आज राष्ट्रकी ५० प्रतिशत सम्पत्ति १० प्रतिशत लोगोके हाथोमें आ गई है।

१६ रूसके प्रयोगके बारेमें अभी हम अतिम निर्णय घोषित नही कर सकते। फिर भी वहाकी जो बातें बाहर आती है उनसे बहुतेरे समाजवादी जो मार्क्स और लेनिनके साहित्यसे प्रेरणा पाकर ही समाजवादी बने है इस बारेमें शका करने लगे है कि मार्क्स और लेनिनके ही कार्यक्रमके अनुसार प्रत्येक देशमें समाजवाद स्थापित हो सकता है।

२

समाजवादकी मीमासा

१ हम यह माननेको तयार हो जाय कि मार्क्सने प्राचीन इतिहासका विश्लेषण करके और आजकी आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियो और बलोका समुचित आकलन करके जो आर्थिक नियतिवाद दुनियाके सामने प्रस्तुत किया है उसके अनुसार पूजीवादी समाज रचनाका विनाश अनिवार्य है। इस विनाशके चिह्न हमें स्पष्ट दिखाई दे रहे है। इग्लण्ड जसे रूढिवादी देशमें जब पार्लमेण्टमें अनुदार दलके हाथमें सत्ता थी तब भी आय कर और उत्तराधिकार-करके बारेमें कड़े कानून बने है और आज वहा राष्ट्रके एक एक आदमीकी आर्थिक सुरक्षाकी योजना पर विचार हो रहा है। ये सब कार्य और योजनायें समाजवादके आगमनकी पूर्व सूचना देनेवाले है। जिस हद तक सरकार सारे समाजके आर्थिक हितकी दृष्टिसे विचार करने और कानून बनाने लगी है उस हद तक तो इसे समाजवादका ही प्रयोग समझा जा सकता है। इस तरह मार्क्सकी भविष्यवाणी सही मानी जायगी। लेकिन मजदूरोंके विद्रोह अथवा मजदूरोंकी हिंसक क्रान्तिसे राज्यसत्ता पर अधिकार

करनेके बाद मजदूर वर्गकी तानाशाही स्थापित करनेका और उस तानाशाहीके बल पर समाजमें क्रान्ति फैलानेका काम जैसे जैसे सिद्ध होता जायगा वैसे वैसे राज्यसत्ता धीरे धीरे क्षीण होती जायगी और अन्तमें बिलकुल निःशेष हो जायगी — ऐसा जो कार्यक्रम मार्क्सने दिया है उसके बारेमें अलग अलग रायें और शंकाएं जरूर पैदा होती है।

२ हम मजदूरोंके विद्रोहका या हिंसक क्रान्तिके अनिवार्य होनेका प्रश्न लें। आज युद्ध-सामग्रीमें जो भारी विकास हो चुका है और सरकारके पास टैंक हवाई जहाज और मशीनगन आदि संहारक साधनोंका जो एकाधिकार है उसे देखते हुए कोई भी जनता अपने देशकी सरकारके सामने हिंसक विद्रोह करके टिक सके ऐसी स्थिति नहीं है। सरकारके पास हिंसाके जैसे साधन है उनके लाखवें हिस्सेके साधन भी जनता नहीं जुटा सकती। जनताके विद्रोहकी खुली तैयारी और संगठन तो सरकार कभी नहीं करने देगी और गुप्त रीतिसे बहुत बड़ा संगठन कभी हो नहीं सकता और न ऐसे हिंसाके शक्तिशाली साधन तैयार किये जा सकते है। यह बात सच है कि रूसमें जनताने विद्रोह करके राज्यसत्ता हाथमें ली। लेकिन रूसको जो परिस्थितियां मिल गई वैसी बार बार सभी देशोंको नहीं मिला करती। प्रथम महायुद्धमें जारका खजाना खाली हो गया और जार अपनी सेनाको कपड़ा खुराक और हथियार तक न दे सका। इसलिए सेना असंतुष्ट और निरुत्साह होकर ऊब गयी अधिकारियोंके हुक्मोंका अनादर करने लगा और अन्तमें अपने आप बिखरने लगा। इस तरह जब जारका सैनिक बल टूट गया तभी रूसने लेनिनका राज्यसत्ता पर अधिकार कर पाये। सरकारके पास सेना न रहनेका जो अवसर रूसकी प्रजाको मिल गया वह और देशोंको मिल ही जायगा यह नहीं माना जा सकता। रूसकी क्रान्तिके बाद जर्मनीमें इटलीमें स्पेनमें और पुर्तगालमें समाजवादियोंने सशस्त्र विद्रोह करके वहांकी राज्यसत्ताको हाथमें लेनेकी कोशिश की थी परन्तु वे सफल नहीं हुए। यह नहीं कहा जा सकता कि किसी देशको रूसके जैसा अवसर मिल जायगा या नहीं। आज तो यह हालत है कि सरकारमें किसी शत्रु राज्यसे लड़नेकी शक्ति भले न हो परन्तु हर देशकी सरकारमें अपनी प्रजाको दबाकर रखनेकी शक्ति तो है ही। ऐसी आशा रखी जाती है कि सेनाको प्रजाके पक्षमें कर लिया जाय तो विद्रोह सफल हो सकता है। लेकिन जब तक सरकारसे आराम सेनाको खाना कपड़ा और पूरा वेतन मिलता रहेगा तब तक ऐसी आशा रखना हवाई किले बनाने जैसी बात है। हर देशमें सरकारें अपनी सेनाको

सेनाकी सहायतासे उन राष्ट्रों पर चढाई की जाय। लेकिन लेनिनने उसे रोक लिया। लेनिन यह मानता था कि रूसमें यदि क्रांति सफल हो गई तो दूसरे राष्ट्रोंमें अपने आप क्रांति होगी। परन्तु लेनिनके अवसानके बाद रूसकी सत्ता स्टालिनके हाथमें आई और कुछ जानकार कहते हैं कि आजकल वहाका समाज साम्यवादी सिद्धान्तों पर नहीं चलता बल्कि वहां एक संकुचित और आक्रमणकारी राष्ट्रवाद पूरी तरह फला हुआ है। इसके सिवा वहां पूजीवादको भी खुली छूट मिलने लगी है। इग्लण्डके बारेमें कहा जाता है कि वहांकी कुल राष्ट्रीय सम्पत्तिका ¾ भाग १० प्रतिशत लोगोंके हाथमें है परन्तु साम्यवादी कहलानेवाले रूसमें आज राष्ट्रकी ५० प्रतिशत सम्पत्ति १ प्रतिशत लोगोंके हाथोंमें आ गई है।

१६ रूसके प्रयोगके बारेमें अभी हम अंतिम निर्णय घोषित नहीं कर सकते। फिर भी वहांकी जो बातें बाहर आती हैं उनसे बहुतेरे समाजवादी, जो मार्क्स और लेनिनके साहित्यसे प्रेरणा पाकर ही समाजवादी बने हैं इस बारेमें शंका करने लगे हैं कि मार्क्स और लेनिनके ही कार्यक्रमके अनुसार प्रत्येक देशमें समाजवाद स्थापित हो सकता है।

२

समाजवादकी मीमांसा

१ हम यह माननेको तैयार हो जायं कि मार्क्सने प्राचीन इतिहासका विश्लेषण करके और आजकी आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों और बलोंका समुचित आकलन करके जो आर्थिक नियतिवाद दुनियाके सामने प्रस्तुत किया है उसके अनुसार पूजीवादी समाज रचनाका विनाश अनिवार्य है। इस विनाशके चिह्न हमें स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। इग्लण्ड जैसे रूढ़िवादी देशमें जब पार्लमेण्टमें अनुदार दलके हाथमें सत्ता थी तब भी आय-कर और उत्तराधिकार-कर के बारेमें कड़े कानून बने हैं और आज वहां राष्ट्रके एक एक आदमीकी आर्थिक सुरक्षाकी योजना पर विचार हो रहा है। ये सब कार्य और योजनायें समाजवादके आगमनकी पूर्व सूचना देनेवाले हैं। जिस हद तक सरकार सारे समाजके आर्थिक हितकी दृष्टिसे विचार करने और कानून बनाने लगा है उस हद तक तो इसे समाजवादका ही प्रयोग समझा जा सकता है। इस तरह मार्क्सकी भविष्यवाणी सही मानी जायगी। लेकिन मजदूरोंके विद्रोहका अथवा मजदूरोंकी हिंसक क्रान्तिसे राज्यसत्ता पर अधिकार

करनेके बाद मजदूर वर्गकी तानाशाही स्थापित करनेका और उस तानाशाहीके बल पर समाजमें क्रान्ति फैलानेका काम जैसे जैसे सिद्ध होता जायगा वैसे वैसे राज्यसत्ता धीरे धीरे क्षीण होती जायगी और अंतमें बिलकुल निःशेष हो जायगी — ऐसा जो कार्यक्रम मार्क्सने दिया है उसके बारेमें अलग अलग रायें और शंकाएं जरूर पैदा होती हैं।

२ हम मजदूरोंके विद्रोहका या हिंसक क्रांतिके अनिवार्य होनेका प्रश्न लें। आज युद्ध-सामग्रीमें जो भारी विकास हो चुका है और सरकारके पास टैंक हवाई जहाज और मशीनगन आदि संहारक साधनोंका जो एकाधिकार है, उसे देखते हुए कोई भी जनता अपने देशकी सरकारके सामने हिंसक विद्रोह करके टिक सके ऐसी स्थिति नहीं है। सरकारके पास हिंसाके जैसे साधन हैं उनके लाखवें हिस्सेके साधन भी जनता नहीं जुटा सकती। जनताके विद्रोहकी खुली तैयारी और संगठन तो सरकार कभी नहीं करने देगी और गुप्त रीतिसे बहुत बड़ा संगठन कभी हो नहीं सकता और न ऐसे हिंसाके शक्तिशाली साधन तैयार किये जा सकते हैं। यह बात सच है कि रूसमें जनताने विद्रोह करके राज्यसत्ता हाथमें ली। लेकिन रूसको जो परिस्थितियां मिल गई वैसी बार बार सभी देशोंको नहीं मिला करतीं। प्रथम महायुद्धमें जारका खजाना खाली हो गया और जार अपनी सेनाको कपड़ा खुराक और हथियार तक न दे सका। इसलिए सेना असंतुष्ट और निरुत्साह होकर ऊब गयी अधिकारियोंके हुक्मोंका अनादर करने लगी और अन्तमें अपने आप बिखरने लगी। इस तरह जब जारका सैनिक बल टूट गया तभी रूसकी जनता राज्यसत्ता पर अधिकार कर पाये। सरकारके पास सेना न रहनेका जो अवसर रूसकी प्रजाको मिल गया वह और देशोंको मिल ही जायगा यह नहीं माना जा सकता। रूसकी क्रान्तिके बाद जर्मनीमें इटलीमें स्पेनमें और पुर्तगालमें समाजवादियोंने सशस्त्र विग्रह करके वहांकी राज्यसत्ताको हाथमें लेनेकी कोशिश की थी, परन्तु वे सफल नहीं हुए। यह नहीं कहा जा सकता कि किसी देशको रूसके जैसा अवसर मिल जायगा या नहीं। आज तो यह हालत है कि सरकारमें किसी शत्रु राज्यसे लड़नेकी शक्ति भले न हो परन्तु हर देशकी सरकारमें अपनी प्रजाको दबाकर रखनेकी शक्ति तो है ही। ऐसी आशा रखी जाती है कि सेनाको प्रजाके पक्षमें कर लिया जाय तो विद्रोह सफल हो सकता है। लेकिन जब तक सरकारकी ओरसे सेनाको खाना कपड़ा और पूरा वेतन मिलता रहेगा तब तक ऐसी आशा रखना हवाई किले बांधने जैसी बात है। हर देशमें सरकारें अपनी सेनाको

दुनियाकी परिस्थितियोंसे और नये विचारोंसे इतना ज्यादा अनजान रखता है और प्रजा कितना ही भूखों मरती हो और कष्ट सहती हो तो भी सेनाको उसकी तुलनामें इतना अधिक सुख-सुविधासे रखा जाता है कि कार्यकर्ताओं और प्रचारकोंके लिए सेनामें पहुंचकर उसे प्रजाके पक्षमें लानेके लिए समझाना असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन जरूर है। पिछले डेढ़ सौ वर्षके इतिहासमें इस बातकी कई मिसालें मौजूद हैं कि सरकारकी व्यवस्थित और भारी यांत्रिक सैनिक शक्तिके सामने प्रजाके मामूली हथियारोंसे किये जानेवाले उपद्रव, तोड़फोड़ और छुटपुट मारकाटसे कोई काम नहीं बन सकता।

३ इतने पर भी दलीलके खातिर हम मान लेते हैं कि मजदूरोंका विग्रह सफल हुआ और मजदूरोंकी तानाशाही स्थापित हो गयी। फिर भी यह तानाशाही सारे मजदूर-वर्गकी न होकर मजदूर वर्गके कुछ नेताओंकी ही होगी। देशके शान्ति विरोधी पक्षोंके उपद्रवों, तोड़फोड़ आदिसे शान्तिकी रक्षा करनेके लिए उन्हें बड़ा सैनिक शासन रखना होगा। देशमें शान्ति और व्यवस्था बनाये रखनेके लिए उन्हें सेना और पुलिसके अधिकारियोंका बड़ा तंत्र खड़ा करना पड़ेगा। दूसरी ओर कारखानों और खेतोंमें होनेवाले उत्पादनके कामका प्रबंध करने और उसकी देखरेख रखनेके लिए भी सरकारी कर्मचारियोंका बड़ा तंत्र खड़ा करना होगा। यह तानाशाही बहुत बड़ी अफसरशाही या नौकरशाहीके जरिये ही अपना काम कर सकेगी। भले ही तानाशाही भोगनेवाले मजदूर-नेताओंके दिलमें मजदूरोंकी भलाई हो और वे अपनी सत्ताका उपयोग मजदूरोंके लिए ही करना चाहते हों, तो भी उनके हाथ-नीचे तो यह सैनिक ढंगकी नौकरशाही ही होगी। इस नौकरशाहीके मातहत मजदूर जनता किसी प्रकारकी स्वतंत्रता भोग सकती है ऐसा मानना निरा भ्रम होगा। सारे उद्योग और समूचा उत्पादन-तंत्र व्यक्तिगत स्वामित्वका न रहकर सरकारके अधिकारमें आ जायगा, परन्तु इस सरकारी तंत्र पर लोगोंका कुछ भी अधिकार नहीं रह सकेगा। पुराने पूंजीपतियों और प्रबंधकोंकी जगह नये सरकारी अफसर कारखानों वगैराकी व्यवस्था करनेमें लग जायंगे। इस तरह मजदूर तो जहांके तहां ही रहेंगे। कारखानों वगैरामें शान्ति-विरोधी लोग तोड़फोड़ और हस्तक्षेप न कर सकें, इसकी देखरेख रखनेकी सरकारको इतनी ज्यादा चिन्ता होगी कि उन व्यवस्थापक अधिकारियोंको अत्यन्त विशाल और निरंकुश सत्ता दिये बिना काम ही नहीं चलेगा। हमारा मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि उत्पादनके साधनों पर कानूनी

अधिकार किसका हो, बल्कि यह है कि उन साधनों पर मजदूरों या आम जनताका अधिकार है या नहीं। मजदूर-वर्गकी तानाशाहीमें उत्पादनके साधनों पर सरकारका स्वामित्व होने पर भी उन पर मजदूर-वर्गका कोई नियंत्रण नहीं होगा। बात यह है कि किसी भी बड़े राज्यतंत्र पर — विशेषतः बड़े औद्योगिक तत्त्वोंके राज्यतंत्र पर — अंकुश रखनेके लिए जो बौद्धिक जिम्मेदारीकी शक्ति, कुशलता और सामाजिक विचारकी भावना चाहिये वही अभी आम लोगोंमें नहीं आई है। और इसलिए बड़े बड़े राज्यतंत्रोंमें जहां चुनाव करके जनताको अपने प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार होता है वहां भी जनताका सरकारी कामकाज पर कोई विशेष नियंत्रण नहीं रह सकता।

४. इसके सिवा यह राज्यतंत्र तो मजदूर-वर्गके चुने हुए प्रतिनिधियोंका न होकर अपने आप मजदूरोंके नेता बने हुए एक छोटेसे वर्ग या पक्षकी तानाशाहीवाला होगा। और यह तो राजनीतिक पुरुषोंके प्रतिदिनके अनुभवकी बात है कि तानाशाही भोगनेवाला दल अपने हाथमें आई हुई सत्ता छोड़नेको तैयार नहीं होता। जो वर्ग या पक्ष अपनी ताकतसे सत्ता प्राप्त करता है वह वर्ग या वह पक्ष सत्ताको अपने ही हाथमें बनाये रखना चाहता है। शुरूमें तो वह यही मानता है कि आम जनताकी भलाईके लिए ही उसे सत्ता अपने हाथमें रखनी चाहिये और उसकी यह मान्यता प्रामाणिक भी होती है। परन्तु बादमें उसे सत्ताका मोह पैदा हो जाता है। रूस सम्बन्धी पुस्तकों और वहां जाकर सारी स्थितिका निरीक्षण करके लौटनेवालोंके वर्णनोंसे मालूम होता है कि अब तो उन्होंने तानाशाहीको प्रजातंत्रका चोला पहना दिया है। फिर भी तानाशाही कम तो भी कम नहीं हुई, बल्कि बढ़ती जा रही है। और जो सिद्धान्त सामने रखकर क्रान्ति की गई थी उन सिद्धान्तोंको भी बलिदान किया जा रहा है। रूसमें उत्पादनके साधनों पर सरकारका अधिकार होने पर भी वहांके अलग-अलग वर्गोंकी आयमें इतनी असमानता है कि रूसकी सारी आयका आधा भाग वहांके दस या ग्यारह प्रतिशत लोगोंको मिलता है और बाकी आधा हिस्सा आम नब्बे प्रतिशत लोगोंमें बंटता है। सरकारी अधिकारियों और कारखानोंके व्यवस्थापकोंकी सत्ता इतनी जम गई है कि उसे हटा सकना मजदूरोंके लिए अब किसी दूसरे जितना कभी भी असंभव हो गया है। अतः राज्यसत्ताके धीरे धीरे विसर्जित हो जाने और इससे सारी प्रजाके स्वतंत्र हो जानेकी आशा नहीं रखी जा सकती।

५ अब हम समाजवादके दूसरे स्वरूप पर विचार करें। हिंसक क्रान्तिके द्वारा नहीं बल्कि इंग्लैण्ड और अमरीकाके बहुतसे समाजवादी मानते हैं उस प्रकार वैध उपायोंसे पार्लियामेण्टरी पद्धतिसे समाजवाद स्थापित किया जाय तो क्या स्थिति होगी? यह हो सकता है कि इसमें वे उपद्रव विद्रोह और तोड़फोड़ वगैरा न हों जिनके बलपूर्वक स्थापित किये गये समाजवादमें क्रान्ति विरोधी और समाज विरोधी तत्त्वोंकी तरफसे होनेका डर रहता है। (रूसमें सन् १९३९ तक अर्थात् क्रान्ति होनेके बीस बरस बाद तक भी तोड़फोड़ और विद्रोहके कारण समय समय पर कठिनाइयां पैदा होती रहती थीं।) फिर भी आम जनताके पास जो मताधिकारका एकमात्र साधन है उसके द्वारा विशाल राज्यतंत्र पर — जिसने बड़े बड़े उद्योग भी अपने अधिकारमें ले लिये हों और इस कारणसे जो और भी अटपटा बन चुका हो — उचित अंकुश नहीं रख सकनेकी कठिनाई तो बनी ही रहेगी। इसलिए ऐसे समाजवादमें यह तो संभव है कि मजदूरोंको ज्यादा सुविधायें मिलें और उनकी आर्थिक स्थिति अमुक हद तक सुधरे परन्तु यह संभव नहीं दीखता कि उन्हें सच्ची स्वतंत्रता मिल जायगी और उनका अपने देशकी सरकार पर सच्चा नियंत्रण हो जायगा। यह सारा प्रश्न ही निराला है। सैनिक बल पर टिके हुए राज्यतंत्रमें प्रजा सच्ची आजादी भोग ही नहीं सकती। गांधीजीने तो पुकार पुकार कर कहा है कि अहिंसाके सिद्धान्त पर रचे हुए समाजके सिवा और कहीं भी सच्चा प्रजातंत्र या सच्चा समाजवाद संभव नहीं है।

६ अब हम उन शंकाओंकी जांच करेंगे जो पूंजीवादी अर्थशास्त्री समाजवादी अर्थरचनाके बारेमें खड़ी करते हैं।

७ उनकी एक दलील यह है कि समाजवादमें कारखानों और खेती वगैराकी व्यवस्था करनेके लिए आपको व्यवस्थापक नियुक्त करने पड़ेंगे। इनका पारिश्रमिक निश्चित किया हुआ होनेके कारण ये सरकारी नौकरों जैसे होंगे। पूंजीपति जब अपने कारखानों या खेतोंकी व्यवस्था करता है तब यदि व्यवस्था अच्छी हो तो उसे ज्यादा नफा कमानेका प्रलोभन रहता है। परन्तु सरकारी व्यवस्थापकोंको ऐसा कोई प्रलोभन नहीं होता। आरंभमें क्रान्तिका नया जोश रहे तब तक तो संभव है कि निःस्वार्थ और समाजका भला चाहनेवाले व्यक्ति अच्छी व्यवस्था कर सकें यद्यपि उनमें भी अनुभव और कुशलताके अभावके कारण दोष तो रहेंगे ही। परन्तु समय पाकर सारा प्रबंध एक नौकरशाहीका रूप ले लेगा और फिर स्वभावतः दफ्तरशाही

बिना सारी व्यवस्था बिगड़ जायगी। नई खोज करने, विशेष उत्पादन करनेका उत्साह किसीमें नहीं रहेगा और देशकी आर्थिक प्रगति रुक जायगी।

८ इसके खिलाफ यह कहा जा सकता है कि मौजूदा पूंजीवादी समाजमें भी रेल, तार, डाक, टेलीफोन आदि सब काम सरकारी अधिकारमें ही चलते हैं और उनकी व्यवस्था व्यक्तिगत स्वामित्ववाली व्यवस्थासे अधिक अच्छी होती है। म्युनिसिपलिटियोंकी ओरसे पानी, बिजली और गैस आदि देनेका काम भी सार्वजनिक ढंगसे और कुशलताके साथ किया जाता है और लोगोंको संतोष भी दिया जाता है। अलबत्ता यह सब कामकाज सरकारी या सार्वजनिक पद्धतिसे होने पर भी इनमें कम-ज्यादा वेतन ठेके देनेका रिवाज आदि बातें तो पूंजीवादी पद्धतिकी जैसी ही हैं।

९ दूसरी तरफ व्यक्तिगत स्वामित्वके मातहत चलनेवाले बड़े कारखानों, ट्रस्टों, कम्बाइनों और सिंडिकेटोंके बारेमें यह कहा जा सकता है कि उनके मूल व्यवस्थापक तो बहुत होशियार और मेहनती होते हैं, परंतु बादमें ये बड़े कारखाने उनके उत्तराधिकारियोंके हाथमें पड़ जाते हैं और वे सभी लोग कुशल और परिश्रमी नहीं होते। साथ ही इन कारखानोंमें ये दोष तो होते ही हैं कि भानजे, भतीजे और सगे-सम्बन्धी लोग गलत तरीकेसे और बिना अधिकारके रख लिये जाते हैं।

१० इस तरह गुण और दोष इन दोनों प्रथाओंमें रहते हैं। फिर भी सार्वजनिक पद्धतिसे चलनेवाली व्यवस्थामें सामान्य लोग कुछ आवाज उठा सकते हैं और चर्चा कर सकते हैं। इसलिए कुल मिलाकर देखें तो व्यक्तिगत स्वामित्वकी व्यवस्थासे सार्वजनिक व्यवस्थामें लोगोंको अधिक लाभ मिलनेकी संभावना है।

११ दूसरी शंका यह उठाई जाती है कि अगर आपको आर्थिक असमानता मिटानी है तो सब तरहके काम करनेवालोंकी आय एकसी कर देनी होगी। ज्यादा अच्छा, ज्यादा कठिन या ज्यादा कुशलताका काम करनेवालेको ज्यादा पारिश्रमिक मिले और दूसरोंको कम मिले, यह तो समाजवादके मूल सिद्धान्तके विरुद्ध है। इस तरह यदि सबको समान पारिश्रमिक देंगे तथा कुशल और अकुशल सबको काम और निश्चित आयका भरोसा करा देंगे तो फिर कुशल आदमी किसलिए लगातार अच्छा काम करेगा? कठिन, ऊबानेवाला या गन्दा अथवा शरीरको नुकसान पहुंचानेवाला काम करनेसे सब इनकार करेंगे तो फिर ये काम आप किनसे करायेंगे?

जो लोग आलसी या निकम्मे बनकर ठीकसे काम नहीं करेंगे, उनसे आप किस तरह काम लेंगे? अपने सिद्धान्तके अनुसार आप ऐसे लोगोंको भी खाना देनेसे इनकार तो कर नहीं सकेंगे। कुछ मस्त कवि चित्रकार और दूसरे कलाकार उमंग आने पर तो कलाकृतियोंका सृजन करेंगे और बाकीके समयमें अपनी कल्पनाकी धुनमें रमते रहेंगे। ऐसे लोगोंके कामका माप आप किस तरह लगायेंगे? मान लीजिये कि ऐसा कोई कलाकार वर्षके अंतिम दिन एकाध सुन्दर कलाकृतिका सृजन कर दे और इस तरह अपने पारिश्रमिकका अधिकारी बन जाय, परन्तु साल भर तक समाज उसका निर्वाह किस नियमसे करेगा? समाजको इस बातका तो कोई भरोसा नहीं होता कि वर्षके अंतिम दिन वह कुछ न कुछ सृजन कर ही देगा। इस तरहके कई प्रश्न खड़े किये जा सकते हैं। समाजवादी इनका इतना ही उत्तर देते हैं कि समाजमें आर्थिक समानता स्थापित करना तो हमारा अंतिम ध्येय है। सब अपनी अपनी शक्तिके अनुसार काम करें और सबको अपनी अपनी जरूरतके अनुसार मिल जाय, इस ध्येय तक हमें पहुंचना है। लेकिन समाजवादी क्रान्ति आरंभ हो और अंतमें इस ध्येय तक हम पहुंचें, इससे पहले बीचके समयमें सिद्धांतोंके साथ अनेक तरहका समझौता करना ही पड़ेगा। जब तक मनुष्यके मनसे सम्पत्ति और आयके पूंजीवादी विचारोंका असर मिट नहीं जाता, तब तक कुछ लोगोंको ज्यादा पारिश्रमिक और कुछको कम पारिश्रमिक देना ही पड़ेगा। परन्तु पूंजीवादी शोषण मिटा दिया जायगा और यह सावधानी रखी जायगी कि कोई ऐसी निजी सम्पत्ति फिरसे संग्रह न कर सके जिसके बल पर वह दूसरोंका शोषण कर सके। इसलिए कम-अधिक आयके कारण समाजमें भेदभाव उत्पन्न करनेवाली असमानता नहीं पनपने पायेगी। पारिश्रमिक निश्चित करनेके लिए सामान्यतः नीचेके नियम हो सकते हैं:

(१) मनुष्यकी शक्ति और कुशलताके अनुसार, यानी उसकी बाजार कीमतके अनुसार।

(२) मनुष्यको कितना कुरबानी करनी पड़ती है अर्थात् किसी काममें उसके शरीरकी कितनी घिसाई होती है, वह काम उसके लिए कितना कष्टदायक है, इस आधार पर।

( ) इस आधार पर कि आदमी कितने घण्टे काम करता है।

१२ जिन सामान्य श्रमके कामोंमें विशेष कुशलताकी जरूरत न हो उनमें तो कामके घण्टोंका नियम ही ठीक है। जिसमें मनुष्यको विशेष बुद्धि न लड़ानी पड़े और बनाया हुआ काम नियत ढंगसे करते रहना हो, उस काममें

कामके घटाका नियम ही लगभग सब जगह होता है। इसके सिवा मशीन पर काम करना हो तब मुख्य काम मशीन करती है मनुष्यको तो केवल मशीन पर निगाह रखकर खड़े रहना पड़ता है। दूसरे प्रकारका काम जिसमें मनुष्यके शरीर या मनको घिसाई ज्यादा होती है या तो मनुष्य गरजसे करता है — दूसरा काम न मिलनेके कारण और पेटका गड्ढा भरना अनिवार्य होनेसे लाचार होकर करता है या ज्यादा पारिश्रमिकके लालचसे करता है। समाजवादमें लाचारीका तो प्रश्न नहीं होता इसलिए लालचका ही प्रश्न रहता है। परन्तु पारिश्रमिक ज्यादा दिया जाय तो आर्थिक असमानता पैदा होगी। इसलिए दूसरा कोई प्रलोभन ढूंढना चाहिये। आर्थिक लोभ ही तो एकमात्र प्रलोभन नहीं होता। ऐसे कामोंके लिए पारिश्रमिक तो दूसरे कामोंके बराबर ही रखा जाय परन्तु कामके घंटे दूसरे कामोंसे कम रखे जायं तो संभव है कि इस लालचसे मनुष्य ऐसे काम करनेको तैयार हो जाय कि अतिरिक्त समयमें वह दूसरा कोई मनपसन्द काम कर सकेगा।

१३ तीसरा नियम ज्यादा शक्ति और कुशलतावाले मनुष्योंका अधिक बाजार-कीमतका रहता है। यह बात सच है कि आज ये लोग अपने पूंजीपति मालिकोंको ज्यादा नफा करके देते हैं इसलिए इनकी बाजार-कीमत अधिक है। लेकिन एक बार समाजमें से व्यक्तिगत मुनाफा और व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राप्त करनेका सिद्धान्त मिट गया कि फिर मनुष्योंके विचार भी बदले बिना नहीं रहेंगे। व्यक्तिगत मुनाफा और व्यक्तिगत सम्पत्तिके बजाय दूसरी शक्तियां मनुष्यको काम करनेकी प्रेरणा देंगी। मनुष्य-स्वभाव ही ऐसा है कि उसमें जो शक्ति होती है उसे व्यक्त किये बिना उसे चैन नहीं पड़ता। कीर्ति या नामकी चाह अथवा समाजके लिए अधिक उपयोगी होनेका आत्म संतोष या सिर्फ अच्छा काम करनेकी खातिर ही अच्छा काम करनेकी वृत्ति — ये सब मनुष्यमें रहते ही हैं। और अगर आजके नफाखोरी समाजमें भी नफेकी परवाह किये बिना ये वृत्तियां काम करती हुई पाई जाती हैं तो नफेका तत्त्व नष्ट हो जानेके बाद तो इन वृत्तियोंके लिए और भी ज्यादा अवकाश रहेगा। पूंजीवादी अर्थशास्त्रियोंने मनुष्यको निरा अर्थ परायण — कम श्रम करके ज्यादा नफा लेनेकी वृत्तिवाला — समझकर अपने सारे सिद्धान्त रच डाले हैं। इसलिए उन्हें ये शक्तियां कम मालूम होती हैं। साथ ही एक ऐसा अर्थतंत्र खड़ा करके जिसमें सामान्य आदमियोंके लिए निर्वाहके साधन प्राप्त करना उत्तरोत्तर ज्यादा कठिन हो जाय उन्होंने ऐसा भ्रम खड़ा कर दिया है कि मनुष्य तो निरा अर्थपरायण है।

जो लोग आलसी या निकम्मे बनकर ठीकसे काम नहीं करेंगे, उनसे आप किस तरह काम लेंगे? अपने सिद्धान्तके अनुसार आप ऐसे लोगोंको भी खाना देनेसे इनकार तो कर नहीं सकेंगे। कुछ मस्त कवि चित्रकार और दूसरे कलाकार उमंग आने पर तो कलाकृतियोंका सर्जन करेंगे और बाकीके समयमें अपनी कल्पनाकी धुनमें रमते रहेंगे। ऐसे लोगोंके कामका माप आप किस तरह लगायेंगे? मान लीजिये कि ऐसा कोई कलाकार वर्षके अंतिम दिन एकाध सुन्दर कलाकृतिका सर्जन कर दे और इस तरह अपने पारिश्रमिकका अधिकारी बन जाय, परन्तु साल भर तक समाज उसका निर्वाह किस नियमसे करेगा? समाजको इस बातका तो कोई भरोसा नहीं होता कि वर्षके अंतिम दिन वह कुछ न कुछ सर्जन कर ही देगा। इस तरहके कई प्रश्न खड़े किये जा सकते हैं। समाजवादी इनका इतना ही उत्तर देते हैं कि समाजमें आर्थिक समानता स्थापित करना तो हमारा अंतिम ध्येय है। सब अपनी अपनी शक्तिके अनुसार काम करें और सबको अपनी अपनी जरूरतके अनुसार मिल जाय, इस ध्येय तक हमें पहुंचना है। लेकिन समाजवादी क्रांति आरंभ हो और अंतमें इस ध्येय तक हम पहुंचें, इससे पहले बीचके समयमें सिद्धान्तोंके साथ अनेक तरहका समझौता करना ही पड़ेगा। जब तक मनुष्यके मनसे सम्पत्ति और आयके पूंजीवादी विचारोंका असर मिट नहीं जाता, तब तक कुछ लोगोंको ज्यादा पारिश्रमिक और कुछको कम पारिश्रमिक देना ही पड़ेगा। परन्तु पूंजीवादी शोषण मिटा दिया जायगा और यह सावधानी रखी जायगी कि कोई ऐसी निजी सम्पत्ति फिरसे संग्रह न कर सके जिसके बल पर वह दूसरोंका शोषण कर सके। इसलिए कम-अधिक आयके कारण समाजमें वर्गभाव उत्पन्न करनेवाली असमानता नहीं पनपने पायेगी। पारिश्रमिक निश्चित करनेके लिए सामान्यतः नीचेके नियम हो सकते हैं:

(१) मनुष्यकी शक्ति और कुशलताके अनुसार अर्थात् उसकी बाजार कीमतके अनुसार।

(२) मनुष्यको कितनी कुरबानी करनी पड़ती है अर्थात् किसी काममें उसका शरीरका कितना घिसाई होती है, वह काम उसके लिए कितना अरुचिकर होता है इस आधार पर।

( ) इस आधार पर कि आदमी कितने घंटे काम करता है।

१२ जिन सामान्य श्रमके कामोंमें विशेष कुशलताकी जरूरत न हो, उनमें तो कामके घंटोंका नियम ठीक ठीक है। जिनमें मनुष्यको विशेष बुद्धि न लगानी पड़े और बनाया हुआ काम नियत ढंगसे करते रहना हो, उन कामोंमें

कामके घंटोंका नियम ही लगभग सब जगह होता है। इसके सिवा मशीन पर काम करना हो तब मुख्य काम मशीन करती है, मनुष्यको तो केवल मशीन पर निगाह रखकर खड़े रहना पड़ता है। दूसरे प्रकारका काम जिसमें मनुष्यके शरीर या मनकी घिसाई ज्यादा होती है या तो मनुष्य मजबूरन करता है — दूसरा काम न मिलनेके कारण और पेटका गड्ढा भरना अनिवार्य होनेसे लाचार होकर करता है या ज्यादा पारिश्रमिकके लालचसे करता है। समाजवादमें लाचारीका तो प्रश्न नहीं होता, इसलिए लालचका ही प्रश्न रहता है। परन्तु पारिश्रमिक ज्यादा दिया जाय तो आर्थिक असमानता पैदा होगी। इसलिए दूसरा कोई प्रलोभन ढूंढना चाहिये। आर्थिक लोभ ही तो एकमात्र प्रलोभन नहीं होता। ऐसे कामोंके लिए पारिश्रमिक तो दूसरे कामोंके बराबर ही रखा जाय, परन्तु कामके घंटे दूसरे कामोंसे कम रखे जायं तो संभव है कि इस लालचसे मनुष्य ऐसे काम करनेको तैयार हो जाय कि अतिरिक्त समयमें वह दूसरा कोई मनपसन्द काम कर सकेगा।

१३ तीसरा नियम ज्यादा शक्ति और कुशलतावाले मनुष्योंकी अधिक बाजार-कीमतका रहता है। यह बात सच है कि आज ये लोग अपने पूंजीपति मालिकोंको ज्यादा नफा करवा देते हैं इसलिए इनकी बाजार-कीमत अधिक है। लेकिन एक बार समाजमें से व्यक्तिगत मुनाफा और व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राप्त करनेका सिद्धान्त मिट गया कि फिर मनुष्यके विचार भी बदले बिना नहीं रहेंगे। व्यक्तिगत मुनाफा और व्यक्तिगत सम्पत्तिके बजाय दूसरी शक्तियां मनुष्यको काम करनेकी प्रेरणा देंगी। मनुष्य-स्वभाव ही ऐसा है कि उसमें जो शक्ति होती है उसे व्यक्त किये बिना उसे चैन नहीं पड़ता। कीर्ति या नामकी चाह अथवा समाजके लिए अधिक उपयोगी होनेका आत्मसंतोष या सिर्फ अच्छा काम करनेकी खातिर ही अच्छा काम करनेकी वृत्ति — ये सब मनुष्यमें रहती ही हैं। और अगर आजके नफाखोर समाजमें भी नफेकी परवाह किये बिना ये वृत्तियां काम करती हुई पाई जाती हैं तो नफेका तत्व नष्ट हो जानेके बाद तो इन वृत्तियोंके लिए और भी ज्यादा अवकाश रहेगा। पूंजीवादी अर्थशास्त्रियोंने मनुष्यको सिर्फ स्वार्थ-परायण — कम श्रम करके ज्यादा नफा उठानेकी वृत्तिवाला — मानकर अपने सारे सिद्धान्त रच डाले हैं। इसलिए उन्हें ये शक्तियां बड़ी मालूम होती हैं। साथ ही एक ऐसा समाज खड़ा करके जिसमें सामान्य आदमियोंके लिए निर्वाहके साधन प्राप्त करना ज्यादासे ज्यादा कठिन हो जाय उन्होंने ऐसा भ्रम खड़ा कर लिया है कि मनुष्य तो सिर्फ अर्थ-परायण है।

जो लोग आलसी या निठल्ले बनकर ठीकसे काम नहीं करेंगे, उनसे आप किस तरह काम लेंगे? अपने सिद्धान्तके अनुसार आप ऐसे लोगोंको भी खाना देनेसे इनकार तो कर नहीं सकेंगे। कुछ मस्त कवि, चित्रकार और दूसरे कलाकार उमंग आने पर तो कलाकृतिका सर्जन करेंगे और बाकीके समयमें अपनी कल्पनाकी धुनमें रमन रहेंगे। ऐसे लोगोंके कामका माप आप किस तरह लगायेंगे? मान लीजिये कि ऐसा कोई कलाकार वर्षके अंतिम दिन एकाध सुन्दर कलाकृतिका सर्जन कर दे और इस तरह अपने पारिश्रमिकका अधिकारी बन जाय। परन्तु साल भर तक समाज उसका निर्वाह किस नियमसे करेगा? समाजको इस बातका तो कोई भरोसा नहीं होता कि वर्षके अंतिम दिन वह कुछ न कुछ सर्जन कर ही देगा। इस तरहके कई प्रश्न खड़े किये जा सकते हैं। समाजवादी इनका इतना ही उत्तर देते हैं कि समाजमें आर्थिक समानता स्थापित करना तो हमारा अंतिम ध्येय है। सब अपनी अपनी शक्तिके अनुसार काम करें और सबको अपनी अपनी जरूरतके अनुसार मिल जाय, इस ध्येय तक हम पहुंचना है। लेकिन समाजवादी क्रान्ति आरंभ हो और अंतमें इस ध्येय तक हम पहुंचें, उससे पहले बीचके समयमें सिद्धान्तोंके साथ अनेक तरहका समझौता करना ही पड़ेगा। जब तक मनुष्यके मनसे सम्पत्ति और आयके पूंजीवादी विचारोंका असर मिट नहीं जाता तब तक कुछ लोगोंको ज्यादा पारिश्रमिक और कुछको कम पारिश्रमिक देना ही पड़ेगा। परन्तु पूंजीवादी शोषण मिटा दिया जायगा और यह सावधानी रखी जायगी कि कोई ऐसी निजी सम्पत्ति फिरसे संग्रह न कर सके जिसके बल पर वह दूसरोंका शोषण कर सके। इसलिए कम-अधिक आयके कारण समाजमें वर्गभाव उत्पन्न करनेवाली असमानता नहीं फलने पायगी। पारिश्रमिक निश्चित करनेके लिए सामान्यतः नीचेके नियम हो सकते हैं:

(१) मनुष्यकी शक्ति और कुशलताके अनुसार अर्थात् उसकी बाजार कीमतके अनुसार।

(२) मनुष्यका कितना कुरबाना करनी पड़ती है अर्थात् किसी काममें उसके शरीरकी कितनी घिसाई होती है, वह काम उसके लिए कितना जोखम वाला है, इस आधार पर।

( ) इस आधार पर कि आदमी कितने घंटे काम करता है।

१२ जिन सामान्य प्रकारके कामोंमें विशेष कुशलताकी जरूरत न हो उनमें तो कामके घंटोंका नियम ही ठीक है। जिसमें मनुष्यको विशेष बुद्धि न लगाना पड़े और बनाया हुआ काम नियत ढंगसे करते रहना हो, उन कामोंमें

कामके घण्टेका नियम ही लगभग सब जगह होता है। इसके सिवा मशीन पर काम करना हो तब मनुष्य काम मशीन करती है मनुष्यको तो केवल मशीन पर निगाह रखकर खड़े रहना पड़ता है। दूसरे प्रकारका काम जिसमें मनुष्यके शरीर या मनकी घिसाई ज्यादा होती है या तो मनुष्य मजबूरन करता है—दूसरा काम न मिलनेके कारण और पेटका खड्डा भरना अनिवार्य होनेसे लाचार होकर करता है या ज्यादा पारिश्रमिकके लालचसे करता है। समाजवादमें लाचारीका तो प्रश्न नहीं होता इसलिए लालचका ही प्रश्न रहता है। परन्तु पारिश्रमिक ज्यादा दिया जाय तो आर्थिक असमानता पैदा होगी। इसलिए दूसरा कोई प्रलोभन ढूंढ़ना चाहिए। आर्थिक लाभ ही तो एकमात्र प्रलोभन नहीं होता। ऐसे कामोंके लिए पारिश्रमिक तो दूसरे कामोंके बराबर ही रखा जाय परन्तु कामके घंटे दूसरे कामोंसे कम रखे जायं तो संभव है कि इस लालचसे मनुष्य ऐसे काम करनेको तैयार हो जायं कि अतिरिक्त समयमें वे दूसरा कोई मनपसन्द काम कर सकेंगे।

१३ तीसरा नियम ज्यादा शक्ति और कुशलतावाले मनुष्योंकी अधिक बाजार-कीमत रहती है। यह बात सच है कि आज ये लोग अपने पूंजीपति मालिकोंको ज्यादा नफा करवा देते हैं इसलिए इनकी बाजार-कीमत अधिक है। लेकिन एक बार समाजमें से व्यक्तिगत मुनाफा और व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राप्त करनेका सिद्धान्त मिट गया कि फिर मनुष्योंके विचार भी बदले बिना नहीं रहेंगे। व्यक्तिगत मुनाफा और व्यक्तिगत सम्पत्तिके बजाय दूसरी शक्तियां मनुष्यको काम करनेकी प्रेरणा देंगी। मनुष्य-स्वभाव ही ऐसा है कि उसमें जो शक्ति होती है उसे व्यक्त किये बिना उससे रहा नहीं जाता। कीर्ति या नामकी चाह अथवा समाजके लिए अधिक उपयोगी होनेका आत्मसंतोष या सिर्फ अच्छा काम करनेके शौकिया ही अच्छा काम करनेकी वृत्ति—ये सब मनुष्यमें रहते ही हैं। और अगर आजके नफाखोरी समाजमें भी नफेकी परवाह किये बिना ये बढ़िया काम करते हुए पाये जाते हैं तो नफेका तत्व नष्ट हो जानेके बाद तो इन वृत्तियोंके लिए और भी ज्यादा गुंजाइश रहेगी। पूंजीवादी अर्थशास्त्रियोंने मनुष्यको निरा अर्थपरायण—कम श्रम करके ज्यादा नफा लेनेकी वृत्तिवाला—समझकर अपने सारे सिद्धान्त रचे होते हैं। इसलिए उन्हें ये कठिनाइयां बड़ी मालूम होती हैं। साथ ही उन्होंने एक ऐसा अर्थतंत्र खड़ा किया जिसमें साधारण आदमियोंके लिए निर्वाहके साधन प्राप्त करना पहलेसे ज्यादा कठिन हो जाय उन्होंने ऐसा भ्रम खड़ा कर लिया है कि मनुष्य तो निरा अर्थ-परायण है।

जो लोग आलसी या निकम्मे बनकर ठीकसे काम नहीं करेंगे, उनसे आप किस तरह काम लेंगे? अपने सिद्धान्तके अनुसार आप ऐसे लोगोंको भी खाना देनेसे इनकार तो कर नहीं सकेंगे। कुछ मस्त कवि चित्रकार और दूसरे कलाकार उमंग आने पर तो कलाकृतिका सृजन करेंगे और बाकीके समयमें अपनी कल्पनाकी धुनमें रमते रहेंगे। ऐसे लोगोंके कामका माप आप किस तरह लगायेंगे? मान लीजिये कि ऐसा कोई कलाकार वर्षके अंतिम दिन एकाध सुन्दर कलाकृतिका सृजन कर दे और इस तरह अपने पारिश्रमिकका अधिकारी बन जाय परन्तु साल भर तक समाज उसका निर्वाह किस नियमसे करेगा? समाजको इस बातका तो कोई भरोसा नहीं होता कि वर्षके अंतिम दिन वह कुछ न कुछ सृजन कर ही देगा। इस तरहके कई प्रश्न खड़े किये जा सकते हैं। समाजवादी इनका इतना ही उत्तर देते हैं कि समाजमें आर्थिक समानता स्थापित करना तो हमारा अंतिम ध्येय है। सब अपनी अपनी शक्तिके अनुसार काम करें और सबको अपनी अपनी जरूरतके अनुसार मिल जाय इस ध्येय तक हमें पहुंचना है। लेकिन समाजवादी क्रांति आरंभ हो और अंतमें इस ध्येय तक हम पहुंचें इसके पहले बीचके समयमें सिद्धान्तोंके साथ अनेक तरहका समझौता करना ही पड़ेगा। जब तक मनुष्यके मनसे सम्पत्ति और आयके पूंजीवादी विचारोंका असर मिट नहीं जाता तब तक कुछ लोगोंको ज्यादा पारिश्रमिक और कुछको कम पारिश्रमिक देना ही पड़ेगा। परन्तु पूंजीवादी शोषण मिटा दिया जायगा और यह सावधानी रखी जायगी कि कोई ऐसी निजी सम्पत्ति फिरसे संग्रह न कर सके जिसके बल पर वह दूसरोंका शोषण कर सके। इसलिए कम-अधिक आयके कारण समाजमें वर्गभाव उत्पन्न करनेवाली असमानता नहीं फैलने पायेगी। पारिश्रमिक निश्चित करनेके लिए सामान्यतः नीचेके नियम हो सकते हैं:

(१) मनुष्यकी शक्ति और कुशलताके अनुसार यानी उसकी बाजार कीमतके अनुसार।

(२) मनुष्यको जितनी कुरबानी करनी पड़ती है अर्थात किसी काममें उसके शरीरकी जितनी घिसाई होती है वह काम उसके लिए जितना कष्टदायक है इस आधार पर।

( ) इस आधार पर कि आदमी कितने घंटे काम करता है।

१. जिन सामान्य श्रमके कामोंमें विशेष कुशलताकी जरूरत न हो उनमें तो घंटेके हिसाबका नियम ही ठीक है। जिसमें मनुष्यको विशेष बुद्धि न लगानी पड़े और बनाया हुआ काम नियत ढंगसे करते रहना हो उस काममें

कामके घण्टोंका नियम ही लगभग सब जगह होता है। इसके सिवा मकान पर काम करना हो तब मुख्य काम मकान करनेका है मनुष्यको तो केवल मकान पर निगाह रखकर बैठ रहना पड़ता है। दूसरे प्रकारका काम जिसमें मनुष्यके शरीर या मनकी घिसाई ज्यादा होती है या तो मनुष्य मजबूरन करता है—दूसरा काम न मिलनेके कारण और पेटका गड्ढा भरना अनिवार्य होनेसे लाचार होकर करता है या ज्यादा पारिश्रमिकके लालचसे करता है। समाजवादमें लाचारीका तो प्रश्न नहीं होता इसलिए लालचका ही प्रश्न रहता है। परन्तु पारिश्रमिक ज्यादा दिया जाय तो आर्थिक असमानता पैदा होगी। इसलिए दूसरा कोई प्रलोभन ढूंढ़ना चाहिये। आर्थिक लाभ ही तो एकमात्र प्रलोभन नहीं होता। ऐसे कामोंके लिए पारिश्रमिक तो दूसरे कामोंके बराबर ही रक्खा जाय परन्तु कामके घंटे दूसरे कामोंसे कम रक्खे जायं तो संभव है कि कम लालची मनुष्य उस कामको करनेको तैयार हो जाय कि अतिरिक्त समयमें वह दूसरा कोई मनपसन्द काम कर सकेगा।

१३ तीसरा नियम ज्यादा शक्ति और कुशलतावाले मनुष्योंको अधिक बाजार-कीमतका रहता है। यह बात सच है कि आज ये लोग अपने पूंजीपति मालिकोंको ज्यादा नफा करा देते हैं इसलिए इनका बाजार-दाम अधिक है। लेकिन एक बार समाजमें से व्यक्तिगत मुनाफा और व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राप्त करनेका सिद्धान्त मिट गया कि फिर मनुष्योंके विचार भी बदले बिना नहीं रहेंगे। व्यक्तिगत मुनाफा और व्यक्तिगत सम्पत्तिके बजाय दूसरी शक्तियां मनुष्यको काम करनेकी प्रेरणा देंगी। मनुष्य-स्वभाव भी ऐसा है कि उसमें जो शक्ति होती है उसे व्यक्त किये बिना उसे चैन नहीं पड़ता। कीर्ति या नामकी चाह अथवा समाजके लिए अधिक उपयोगी होनेका आत्मसन्तोष या सिर्फ अच्छा काम करनेके खातिर ही अच्छा काम करनेकी वृत्ति—ये सब मनुष्यमें रहते ही हैं। और अगर आजके नफाखोर समाजमें भी नफेकी परवाह किये बिना ये वृत्तियां काम करती हुई पाई जाती हैं तो नफेका तत्व नष्ट हो जानेके बाद तो इन वृत्तियोंके लिए और भी ज्यादा अवकाश रहेगा। पूंजीवादी अर्थशास्त्रियोंने मनुष्यको निरा अर्थपरायण—कम श्रम करके ज्यादा नफा उठानेकी वृत्तिवाला—समझकर अपने सारे सिद्धान्त रच डाले हैं। इसलिए उन्हें ये कठिनाइयां बड़ी मालूम होती हैं। साथ ही एक ऐसा अर्थतंत्र खड़ा करके जिसमें सामान्य आदमियोंके लिए निर्वाहके साधन प्राप्त करना ज्यादासे ज्यादा कठिन हो जाय इन्होंने ऐसा भ्रम खड़ा कर लिया है कि मनुष्य तो निरा अर्थ-परायण है।

वमे काम एसा चीज है ही नहो जो मनुष्यको अच्छा न लग। आज ऐसी स्थिति पदा कर दी गई है कि अपनी आवश्यक्ताय पूरी करनेके लिए मनुष्यका अपने ही भाइयाके खिलाफ जीवन-सग्राम करना पडता है उसके दूर होते ही मालूम हो जायगा कि मनुष्य अर्थ-परायण नही परन्तु समाज परायण है। आलस्य कामचोरपन धूतता जसे सब दुगुण आजकी नफावादी अर्थ रचनाके परिणाम ह। अर्थ रचना बदली कि य दुगुण अपन आप मिट जायग। बचके बीचके समयमें य सब प्रश्न कठिनाइया जरूर पदा करेंगे। परन्तु जस जसे कठिनाइया खडी होती जायगी वसे वसे उनका हल भी निकलता जायगा क्योकि मूल बात यह है कि मनुष्य निरा अर्थ-परायण नहा है। इसलिए उसकी अर्थ-परायणताको ही आधार मानकर खडी की गई कठिनाइयाको हल कर सकना जरा भी मुश्किल नहा है। पीटर ड्रकर नामके लखकने अपनी दि एण्ड आफ दि इकानामिक मन नामकी पुस्तकमें बहुत अच्छी तरह बताया है कि पूजीवादी अर्थतत्र द्वारा निर्माण किया हुआ अर्थ परायण मनुष्य तो कभीका स्वग सिधार गया है।

१४ पूजीवादी अर्थशास्त्री समाजवादकी सफलताके बारेमें तीसरी शका यह उठाते ह कि समाजवादी समाजमें कुटुम्ब सस्थाके कायम रहनका कोई कारण बाकी नही रहता जिसने मानव जातिकी प्रगतिम अब तक इतना बडा हाथ बटाया है। एक तो इसमें उत्तराधिकारकी प्रथा मिट जाती है और दूसरे बच्चाकी शिक्षाकी तमाम जिम्मेदारी राज्य या समाज ले लेता है तब फिर कुटुम्ब-सस्थाकी जरूरत ही कहा रह जाती है? कुटुम्ब सस्थाका सबसे बडा उद्देश्य बच्चाकी शिक्षा है। अपने पदा किये हुए बच्चाका स्त्री और पुरुष दोनो मिलकर अच्छी तरह पालन पोषण करें और उन्हें अच्छी तरह शिक्षा दें इसीके लिए कुटुम्बकी जरूरत है और इसीमें कुटुम्बकी सार्थकता है। बालकके सर्वांगीण विकासके लिए जिस सुन्दरता और नि स्वाथ प्रमके वातावरणकी जरूरत है वह वातावरण कुटुम्बमें ही मिल सकता है। यदि आप बिलकुल छोटे बच्चाको नसरीमें रखें और उनसे जरा बडी उमरके बालकोंके लिए बाल मन्दिर खोलें तो फिर कुटुम्बकी जरूरत कहा रह जाती है? मार्क्सन अपन कम्यनिस्ट मनिफस्टो में इसका बडा सचोट उत्तर दिया है। वह कहता है कि आपकी दलील बिलकुल सही है परन्तु यह सब तो आप भल लोगोंके लिए है। कुछ जनमत्ताके नक्व प्रतिशतम ऊपरका सख्यावाले हम मजदूर लोगोंको कहा कोई उत्तराधिकार दत है? और कहा हमारे बालकोंको शिक्षा तरहका तालीम देना है? जब स्त्रियाको भी पुरुषोंके साथ काम पर

जाना पड़ता हो और कारखानोंमें काम करनेवाली स्त्रियोंको अपने शिशुओंको दूध पिलानेके लिए भी मुश्किलसे समय मिलता हो वहां बालकोंका दूसरा संभाल और शिक्षाकी तो बात ही पैदा नहीं होती। अब आप कारखानोंमें भूल रखने लगे हैं परन्तु इससे पहले तो हम बच्चोंको समान विभागके शोरगुलमें ही रखते थे और फिर जब वे घर पर छोड़ आने लायक हो जाते थे तब बेचारे हमारी गंदी चालोंमें और गंदे मुहल्लोंमें आवारा फिरते फिरते बड़े होते थे और ज्यों ही थोड़े सयाने होते त्यों ही आपके कारखानोंमें काम पर आने लगते थे। हमारे कुटुम्ब आपके कारखानोंके लिए मजदूर पैदा करनेके सिवा और क्या काम करते हैं? अगर हमारे कुटुम्ब नष्ट हो जायं तो माता पिताके द्वारा होनेवाले बच्चोंके शोषण नष्ट होनेके सिवा और कुछ भी नष्ट नहीं होगा।

१५ इसमें कौन इनकार कर सकता है कि मजदूर-वर्गकी आजकी स्थितिमें तो यह बात सोलहों आने सच है? दूसरी ओर इस बातसे भी कौन इनकार कर सकता है कि बच्चोंकी शिक्षाके लिए माता पिताकी प्रेमभरी और शीतल छाया जरूरी है और उसका स्थान नर्सरी या बाल छात्रालय नहीं ले सकते? सच्चा उपाय एक ही है ऐसी अर्थ रचना स्थापित करनेका प्रयत्न किया जाय जिसमें माता पर कमाई करनेका भार न हो उसका प्रधान कर्तव्य बच्चोंका पालन पोषण और उन्हें शिक्षा देना ही हो तथा माताओंको इस तरहकी तालीम दी जाय जिससे इस कर्तव्यमें सम्बन्धित उनका ज्ञान और कुशलता बढ़े। स्त्रियोंके लिए ऊंची शिक्षाकी ज्यादा जरूरत है, परन्तु डाक्टर वकील या प्रोफेसर बननेके लिए नहीं। जिन स्त्रियोंको डाक्टर वकील या प्रोफेसर बनना हो वे भले ही बनें परन्तु उनका सबसे बड़ा काम तो भावी पीढ़ीका उत्तम रीतिसे पालन-पोषण करके उसे गुणकारी बनाना ही है। और इस कामके लिए कौटुम्बिक जीवन आवश्यक है। परन्तु यह काम पूरा करनेके लिए वर्तमान अर्थ रचनामें आमूलाग्र परिवर्तन तो होना ही चाहिये और स्त्रियोंको पुरुषोंसे भी अधिक अच्छी शिक्षा दिये बिना यह हो नहीं सकता।

१६ यह सच है कि पूंजीवादियोंकी ऊपरकी दलीलोंमें बहुत सार नहीं है। परन्तु सोचना यह है कि सारी दुनियाको सतानेवाली आजकी तमाम बुराइयोंका इलाज समाजवादसे हो सकता या नहीं? इसके प्रयोगसे जो समय जो शिक्षा मिली है उससे ऐसी आशा नहीं बंध सकती। यह स्वीकार भी किया जा सकता है कि इसमें तो समाजवादने कुछ मूलभूत सिद्धान्तोंके साथ समझौता

श्रम पर नहीं परन्तु फुरसत पर खड़ी करता है और ऐसा करके वह आजकी कई बुराइयोंके लिए गुंजाइश रखता है। फिर वह कहता है उस प्रकार यदि प्रत्येक मनुष्यके लिए कामके घंटे रोज चार या इससे भी कम किये जा सकें तो बाकीके फुरसतके समयका लोग क्या उपयोग करेंगे और उसमें कैसे कैसे प्रश्न पैदा होंगे यह एक बड़ी भारी समस्या है। आज तो फुरसतका सदुपयोग करनेकी शक्ति और कुशलता विरले मनुष्योंमें ही पाई जाती है और इसीलिए हम लोगोंमें यह कहावत पड़ी है कि ठाला बैठा सत्यानास करते।

२० मनुष्य अपनी आर्थिक सुख सुविधायें बढ़ाता चला जाय इसे समाज-वादी मनुष्य जीवनका एक महत्त्वपूर्ण ध्येय मानता है। अर्थोत्पादन बढ़ाते हुए उपभोगके साधन भी बढ़ाते रहना इसे वह सबसे बड़ा सामाजिक पुरुषार्थ समझता है। परन्तु वह यह नहीं जानता कि इन दोनों प्रवृत्तियों — अर्थो-त्पादन और उपभोग अथवा श्रम और आराम — के अमुक सीमा तक पहुंच जानेके बाद उन पर रोक लगानेकी जरूरत है। इसलिए यह डर बना रहता है कि दुनियासे आर्थिक स्पर्धा और युद्धको मिटानेका उसका दावा होते हुए भी वह इसमें असफल रहेगा।

३

गांधीजीका आर्थिक कार्यक्रम

१ वर्तमान पूंजीवादी अर्थ-रचनाकी जिन अनेक बुराइयोंने — खास तौर पर बेकारी, गरीबी और विश्वव्यापी युद्ध — दुनियाको परेशान कर रखा है उनके उपायके रूपमें समाजवादी अर्थ-रचना स्थापित करनेका सुझाव दिया जाता है। उस अर्थ-रचनाके मुख्य सिद्धान्त हम देख चुके हैं। इसके अलावा समाजवादके समालोचनावाले प्रकरणमें समाजवादी अर्थ-रचनाके कुछ दोषोंकी ओर तथा इस बातकी ओर ध्यान खींचा गया है कि व्यक्ति और समाजके जीवनसे संबंध रखनेवाले महत्त्वपूर्ण नैतिक मूल्योंमें इस अर्थ-रचनासे बुनियादी परिवर्तन नहीं होते। पूंजीवादी अर्थ-रचनाकी बुराइयां दूर करनेके लिए गांधीजीने नया एक आर्थिक कार्यक्रम लोगोंके सामने प्रस्तुत किया है। पर गांधीजी शास्त्रकार नहीं थे। इसलिए उन्होंने मार्क्सकी तरह दुनियाके इतिहासकी जांच करके और मानव समाजकी परम्पराका समन्वय करके उसके आधार पर कहीं यह सिद्ध नहीं किया है कि अमुक अर्थ-रचनाके बाद अमुक अर्थ-रचना ही निर्माण होनी चाहिये या

होगा। गांधीजी तो अपने पसन्द किये हुए जीवनके कुछ विशेष आदर्शोंके उपासक होनेके साथ साथ एक व्यावहारिक विचारक और सुधारक थे। और इस तरह उनके सामने जो जो प्रश्न आये उनका हल ढूंढते ढूंढते अन्य बातोंके साथ साथ आर्थिक बातोंमें भी वे अमुक निर्णयों पर पहुंचे थे। उनका कार्य क्षेत्र इतना व्यापक था कि जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले लगभग सभी प्रश्नोंकी उन्हें छानबीन करनी पड़ी है। और इस तरह किसी भी क्षेत्रमें शास्त्रकार या वाद निर्माण करनेवाले न होकर भी या होनेका प्रयत्न न करते हुए भी उन्होंने उन क्षेत्रोंमें सुधारका विस्तृत कार्यक्रम तो दिया ही है। इसके सिवा वे जीवनका समग्र दृष्टिसे विचार करते थे इसलिए उनके कार्यक्रममें एक निश्चित विचारसरणीकी एकसूत्रता पाई जाती है। यह कहा जा सकता है कि उनका आर्थिक कार्यक्रम भी ऐसा एकसूत्रता रखनेवाला है।

२. यहां एक बात ध्यानमें रखना चाहिये। उन्होंने जो आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया है वह हमारे देशकी परिस्थितियोंका ध्यान रख कर ही किया है। उनका कार्यक्रम यह बताता है कि हमारे देशके आर्थिक प्रश्न किस तरह हल किये जा सकते हैं। लेकिन हमारे देशके आर्थिक प्रश्नोंको दुनियासे अलग नहीं किया जा सकता। उनमें से ज्यादातर प्रश्न तो इंग्लैण्डके साथ हमारा सम्बन्ध होनेके कारण ही पैदा हुए थे। इंग्लैण्डने हम पर राजनीतिक सत्ता जमाई उससे पहले उसने आर्थिक आक्रमण शुरू कर दिया था। वह हम पर सिर्फ राजनीतिक सत्ता ही नहीं भोगता था बल्कि आर्थिक सत्ता भी भोगता था। और इन दोनों सत्ताओंसे भी अधिक तो उसने हमारे शिक्षित समाज पर विचारोंकी सत्ता जमा ली थी। इन सब सत्ताओंके खिलाफ किये गये सुले विग्रहमें से गांधीजीके आर्थिक और दूसरे कार्यक्रमोंका जन्म हुआ है। उनके कार्यक्रममें वे उपाय बताये गये हैं जो एक गुलाम प्रजाको आजाद होनेके लिए करने चाहिये। इसलिए ऊपर ऊपरसे देखने पर ऐसा लग सकता है कि गांधीजीका कार्यक्रम सिर्फ पराधीन प्रजाओंका स्वतंत्रता प्राप्त करनेका और शोषणसे मुक्त होनेका कार्यक्रम है। परन्तु वह कार्यक्रम ऐसा है जो सत्ता भोगनेवाली या शोषण करनेवाली प्रजाओंको भी अच्छी तरह लागू हो सकता है। उनके कार्यक्रमका दुनियामें आर्थिक न्याय और समानताका तत्त्व है, इसलिए जो वह शोषित प्रजाकी दृष्टिसे उसके छुटकारेके लिए उपयोगी है वैसे ही शोषक प्रजा जो अन्याय करती है उससे उसका उद्धार करनेके लिए भी उपयोगी है। अतः मूलतः गांधीजीका कार्यक्रम सिर्फ हिन्दुस्तानके

लिए होने पर भी दुनियामें शान्ति स्थापित करनेकी दृष्टिसे वह दूसरे देशों पर भी लागू किया जा सकता है।

३ गांधीजीके आर्थिक कार्यक्रममें एक तत्त्व यह ध्यानमें रखने जैसा है कि वे आर्थिक प्रश्नों पर सामाजिक और नैतिक प्रश्नोंसे अलग विचार नहीं करते। यह उनका एक मूल सिद्धान्त है कि व्यक्ति या समाजसे संबंध रखनेवाले किसी भी प्रश्नका या किसी भी सामाजिक शास्त्रके सिद्धान्तका विचार करते समय धर्म और नीतिका अर्थात् सारी मानव जातिके श्रेष्ठ कल्याणका विचार सदा सामने रखना चाहिये। अर्थशास्त्री ऐसा कहते हैं कि आर्थिक प्रश्नों पर शुद्ध शास्त्रीय ढंगसे विचार करना हो तो उसमें धर्म या नीतिको बीचमें नहीं लाना चाहिये। गांधीजी कहते हैं कि मनुष्य जीवनसे सम्बन्धित किसी भी प्रश्नका विचार धर्म और नीतिको छोड़कर करनेकी बात ही अशास्त्रीय है, क्योंकि धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजशास्त्र, समाजशास्त्र और कानूनशास्त्र सब एक-दूसरेके साथ इस तरह सम्बद्ध हैं कि उन सबको एक-दूसरेसे अलग मानकर उनसे सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार किया ही नहीं जा सकता।

४ गांधीजीका कार्यक्रम आर्थिक व्यापार और प्रश्नोंकी जड़ तक जानेवाला है। आजके जीवनमें वह बुनियादी परिवर्तनका तकाजा करता है। हमारी आदतों, रीति रिवाजों, कल्पनाओं और विचारोंमें भी वह जड़मूलसे परिवर्तन चाहता है। संक्षेपमें कहा जाय तो उसमें सारे जीवन पर नये सिरेसे विचार करनेकी आवश्यकता पर भार दिया गया है। गांधीजीके कार्यक्रमका यह प्रधान स्वरूप ध्यानमें रखकर हम उसकी विस्तृत चर्चा करेंगे।

स्वदेशी

५ गांधीजीकी संपूर्ण आर्थिक योजनाका आधार स्वदेशी है। हमारे देशमें स्वदेशी आन्दोलनका जन्म विदेशी उद्योग-धंधोंकी स्पर्धासे हमारे देशी उद्योग-धंधोंको बचानेकी और देशी कारीगरोंको उत्तेजन देनेकी भावनाके परिणामस्वरूप हुआ है। जब हमारे देशमें विदेशी माल ढेर लगने लगा और देशी उद्योग-धंधे नष्ट होने लगे, तब इन धंधोंको बचानेके लिए सरकारको विदेशी माल पर आयात-कर लगाना चाहिये था। परन्तु सरकार विदेशी ढंगकी। उसे भला इसकी चिन्ता क्यों होती? इसके विपरीत उसका नाश तो भारतको नुकसान पहुंचाकर अपने देशके उद्योग-धंधे बढ़ानेका था। इसलिए स्वदेशी आन्दोलनने जनताके जरिये यह काम अपने हाथमें लिया। परन्तु गांधीजीने स्वदेशीको इतना संकुचित अर्थ नहीं दिया। गांधीजीके मतसे धर्ममें जिस

विलायती यन्त्रोद्योगोंके विरुद्ध ही नहीं बल्कि अपने देशके कारखानेवालोंके विरुद्ध भी हमारे गांवोंके धंधोंकी रक्षा करनेकी बात है। हमारे देशके कितने ही छोटे छोटे धंधे मृतप्राय हो रहे हैं और कुछ तो मर भी गये हैं। उसका कारण देशी और विदेशी बड़े कारखाने हैं। हमारे ग्रामोद्योग हमारी खेतीको बल पहुंचानेवाले थे। हमारे किसानोंको बारहों महीने काम नहीं रहता था इसलिए फुरसतके समय खादीका अथवा दूसरा कोई उद्योग करके वे अपनी जीविका चलाते थे। परन्तु शुरूमें विदेशी और बादमें देशी मिलोंके कपड़ेके कारण खादीका उद्योग नष्ट हुआ और इसी तरह कारखानोंमें तैयार हुए दूसरे मालके कारण दूसरे ग्रामोद्योग नष्ट हो गये। हमारे देशके किसानोंकी कंगाली और अनिवार्य बेकारीको जिस रूपमें गांधीजीने देखा है उस रूपमें शायद हमारे देशके बड़े अर्थशास्त्री या अर्थशास्त्रज्ञ भी नहीं देखा होगा। इसका विश्लेषण करने पर गांधीजीको पता चला कि स्वदेशीका विस्मरण हमारी आजकी दुर्दशाका सबसे बड़ा कारण है। स्वदेशीको वे आजका युगधर्म कहते हैं। ऐसा स्वदेशी धर्म कौनसा हो सकता है जिसे सब लोग समझ सकें और जिसका पालन करनेकी इस युगमें इस देशमें बड़ी आवश्यकता है? ऐसा कौनसा स्वदेशी धर्म हो सकता है जिसके अल्प पालनसे भी हिंदुस्तानके करोड़ों मनुष्योंकी रक्षा हो सकती है? इसके उत्तरमें चरखा और खादी मिली। बादमें दूसरे ग्रामोद्योग भी उनमें शामिल कर लिये गये।

६ यह स्वदेशी धर्म सिर्फ हमारे ही देशके लिए नहीं बल्कि सब देशोंके लिए जरूरी है। आज प्रत्येक सभ्य माना जानेवाला और उद्योग धंधोंमें आगे बढ़ा हुआ देश अपने यहांका माल दूसरे देशोंमें भरनेकी कोशिश कर रहा है। देश विदेशके बाजारों पर अधिकार करनेके लिए इन बड़े समझे जानेवाले देशोंके बीच भयानक प्रतिस्पर्धा चल रही है। फिर इसके लिए आयात-निर्यात कर लगाकर विदेशी मालको अपने देशमें आनेसे रोकनेकी और अपने देशके उद्योगोंको तरह तरहकी सहायता देकर अपने देशका माल दूसरे देशोंके बाजारोंमें भर देने और सस्ता बेचनेकी प्रथाका भी आश्रय लिया जाता है। इसके सिवा बाजारों पर अधिकार करनेके लिए राजनीतिक सत्ता तथा कूटनीति और सैनिक बलका भी खुले हाथों उपयोग किया जाता है। हर देशको अपने अपने व्यापार धंधोंकी रक्षाके लिए शस्त्रोंसे सज्ज रहना पड़ता है और जनता इस सैनिक खर्चके बोझके नीचे दबकर कराहती रहती है। प्रथम महायुद्ध ऐसी व्यापारी स्पर्धाका परिणाम था और दूसरे महायुद्धका भी यही कारण था। सारी दुनिया इन युद्धोंके मारे त्राहि त्राहि पुकार रही है। युद्धोंका इस भयंकर

परम्परासे बचनेका एकमात्र उपाय यही है कि तमाम देश शुद्ध स्वदेशीका पालन करने लग जाय। इसीलिए गांधीजी स्वदेशीको इस युगके महारोगका रामबाण उपाय कहते हैं।

७ बड़े बड़े कारखानोंमें मजदूर-वर्गको चूसा जाता है और उत्पादन समाजकी आवश्यकतायें पूरी करनेके उद्देश्यसे नहीं बल्कि नफेके लिए होता है। इसलिए बहुतसी जरूरी चीजोंके बिना लोग मारे मारे फिरते हैं और अनावश्यक चीजोंका जरूरतसे ज्यादा उत्पादन होता है। इसका उपाय कार्ल मार्क्स यह बताता है कि उत्पादनके सब साधनों पर समाज या राज्यका अधिकार करके उत्पादनको नियंत्रित कर लिया जाय। परन्तु समाजवादकी मीमांसामें हम देख चुके हैं कि उत्पादनके साधनों पर राज्यका स्वामित्व हो जाय तो भी राज्य पर लोगोंका स्वामित्व नहीं हो पाता। कोई भी राज्य सच्चा लोकतंत्र तो तभी कहला सकता है जब राज्यकी व्यवस्था पर आम लोगोंका सच्चा नियंत्रण हो। परन्तु इस तरहका नियंत्रण पश्चिमके लोकतांत्रिक कहलाने वाले राज्योंमें से किसी भी राज्यमें — रूस तकमें — व्यवहारमें नहीं आता। बड़े बड़े राजनीतिज्ञोंका कहना है कि पश्चिमका लोकतंत्रका प्रयोग असफल रहा है। दोष इस तंत्रकी रचनामें ही नहीं बल्कि इसकी बुनियादमें भी दोष है। यह सारा तंत्र हिंसा पर रचा हुआ है। जब कि गांधीजी कहते हैं कि जब तक समाजने तंत्रकी बुनियादके तौर पर — उसके मुख्य आधारके रूपमें — अहिंसाको स्वीकार नहीं किया जायगा तब तक सच्चा लोकतंत्र कभी स्थापित नहीं किया जा सकेगा। और समाजको अहिंसाके सिद्धान्त पर चलाना हो तो मानव जातिकी प्रगतिकी आजकी मंजिलमें तो हम बहुत बड़े तंत्र नहीं चला सकेंगे क्योंकि मनुष्यने विशाल तंत्रोंको सिर्फ लोकमतके बल पर चलानेकी शक्ति और कुशलता अभी तक प्राप्त नहीं की है। मनुष्यका अभी तक इतना विकास नहीं हुआ है। इसलिए बड़े-बड़े तंत्र चलानेके लिए राज्यरूप या संगठित शक्ति अनिवार्य हो जाती है। उत्पादनको केन्द्रित करके बड़े पैमाने पर चलानेके लिए बड़े बड़े कारखानोंकी और आन्तर राष्ट्रीय व्यापार तथा अर्थ-व्यवहारकी रक्षा करनेके लिए केन्द्रित राज्यसत्ता — अवश्य ही संगठित बलवाली — का होना अनिवार्य है। इसलिए इस फौजी सत्तासे पिण्ड छुड़ाना पाना हो तो गांधीजी कहते हैं कि हमें आजके समाजके जटिल अर्थ-व्यवहारको विकेन्द्रित करना होगा और हमारे व्यवहारोंको सरल बनाकर उन्हें छोटे क्षेत्रमें मर्यादित करना होगा, जिससे एक-दूसरे पर नैतिक प्रभाव डाला जा सके। आजकलके आर्थिक और राजनीतिक सवालोंकी चर्चामें बड़े बड़े इतिहासकारों

उद्योगशास्त्रियों कानूनके पंडितों और दूसरे निष्णातोंको रस आना होगा परन्तु सामान्य आदमीको उनकी एक भी बात समझमें नहीं आती। कुछ लोग अखबारोंमें इन प्रश्नोंकी चर्चा पढ़कर या विज्ञापनों द्वारा प्रकट किये हुए मतोंको रटकर इन सब बातोंको समझनेका दावा या ढोंग कर सकते हैं परन्तु ऐसे प्रश्नोंके बारेमें निर्णय करनेकी सत्ता तो हर देशमें राज्यदंड धारण करनेवाले छोटेसे गुटके हाथमें ही होती है। और दो देशोंके आपसी सम्बन्धोंके बारेमें भी जो दल बलवान हो उसीकी बात चलती है। इसलिए अन्तमें सब बातोंको देखते हुए सारी दुनियाको डरा सकनेवाले बलवान देशोंके शासक-वर्ग पर ही सारा आधार रहता है। इसलिए मामूली आदमियोंको आम लोगोंको अपनी आजादीकी रक्षा करनी हो तो उन्हें अपनी दुनियाको छोटी बना लेना पड़ेगा। उन्हें अपने व्यवहारोंका दायरा इतना छोटा कर लेना पड़ेगा कि उन्हें वे समझ सकें और उन पर अपना अंकुश भी रख सकें। अपने जीवनकी बुनियादी चीजोंके लिए और जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी बातोंके लिए उन्हें दूर दूरके नहीं बल्कि नजदीकके लोगोंके साथ व्यवहार रखना पड़ेगा। तभी वे स्वतंत्रता भोग सकेंगे और तभी वे सच्चे प्रजातंत्रका अनुभव कर सकेंगे। ')

८ जीवनकी प्रतिदिनकी आवश्यक चीजोंके बाजार आज तो संसार व्यापी हो गये हैं। गांधीजीकी स्वदेशीकी योजनासे ये बाजार भी खतम हो जाते हैं क्योंकि गांधीजी आजके उत्पादनकी समूची पद्धतिको ही बदल डालना चाहते हैं। पूंजीवादी रचनामें व्यापारियों या सटोरियोंके लिए और समाजवादी रचनामें राज्यके अधिकारियोंकी सूचनाके अनुसार लोगोंके लिए उत्पादन होता है। इसके बजाय गांधीजीकी रचनामें उत्पादक लोग अधिकतर अपने ही लिए उत्पादन करते हैं। जिस व्यवस्थामें एक गांव या एकसी कुदरती स्थितिवाला एक प्रदेश आर्थिक व्यवहारका लगभग स्वावलम्बी घटक बन जाय हर कुटुम्बके पास उत्पादनके साधन उसके अपने ही हों चीजोंका उत्पादन नफेके लिए या दूरके बाजारोंमें बेचनेके लिए नहीं बल्कि हमारी अपनी और हमारे पड़ोसियोंकी सहज मोटी मोटी आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए होता हो ऐसी व्यवस्थामें जरूरतसे ज्यादा उत्पादनका प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। उस गांव या प्रदेशके ज्यादातर कुटुम्ब अपने कामकी लगभग सभी चीजें स्वयं तैयार कर लें जो चीजें स्वयं न बना सकें और फिर भी जो जरूरी हों ऐसी चीजें भी जहां तक पड़ोसमें तैयार होती हों वहां तक बाहरसे लाकर उपयोग न करनेकी स्वाभाविक धर्म पालन करें तो आज आयात निर्यातका जो व्यापार

अनावश्यक रूपमें बन गया है और जिस व्यापारने दुनियाके देशोंके बीच लड़ाईका रूप धारण कर लिया है वह व्यापार अपने आप कम हो जायगा। फिर तो जो चीजें हमारे पड़ोसमें बन ही न सकती हों या बहुत अधिक श्रमसे और न करने योग्य श्रमसे ही बन सकती हों उन्हींका आयात होगा, और हमारे प्रदेशमें बननेवाली चीजोंसे सारे पड़ोसकी जरूरतें पूरी होनेके बाद जो चीजें बचेंगी उन्हींका निर्यात होगा।

९ इस योजनामें मनुष्यको कुचल डालनेवाली राक्षसी मशीनें काममें नहीं ली जायगी इसलिए हो सकता है कि उत्पादनकी मात्रा कम हो जाये या आज साधारण मनुष्यको भी कारखानोंकी बनी हुई जो अनेक तरहकी चीजें उपयोगके लिए मिलती हैं वे न मिलें। आजके अर्थशास्त्री यह कह कर हमें समझाते हैं कि पहले बड़े बड़े अमीर-उमरावों और राजा महाराजाओंको भी जैसी चीजें उपयोगके लिए नहीं मिलती थीं ऐसी कितनी ही वस्तुएं आज सामान्य आदमीको भी उपयोगके लिए मिलती हैं इससे पता चलता है कि दुनियाने कितनी बड़ी आर्थिक प्रगति की है। वे यह भी कहते हैं कि आप अगर इस तरह ग्रामोद्योगवाली अर्थ रचना करेंगे तो जीवनको असुविधाओंवाला ही बना रहने देंगे। लेकिन गांवोंमें थोड़े आदमियोंने टार्च लाइट काममें ले ली कुछ नौजवानोंने अगर रिस्ट वाच बांध ली या जेबमें फाउंटेन पेन रख लिया अगर गांवके थोड़े घरोंमें प्राइमस जलने लगा गांवमें वार-त्योहार पर पट्रोमैक्स की रोशनी हो गई गांवके कुछ निठल्ले नौजवानोंने होटलमें बैठकर चायके प्याले पी लिये या सिगरेटें फूंक दी या कुछ आदमियोंने मोटर बसमें यात्रा कर ली तो इससे क्या लोगोंका दारिद्र्य मिट जाता है? क्या लोगोंको खानेके लिए भरपेट अन्न मिलने लगता है? क्या लोगोंको खानेके लिए अच्छी साग भाजी मिलती है? क्या लोगोंके पेटमें दूध घी अधिक जाता है? इसलिए हमें चुनाव करना है हानिकारक मौज-शौक और पौष्टिक भोजनके बीच शोषण और सुरक्षाके बीच तथा पराधीनता और स्वाधीनताके बीच।

१० इस स्वदेशी धर्म या नीतिके विरुद्ध यह कहा जाता है कि यह नीति तो अपने चारों ओर दीवार खड़ी करके उसके बीच घुसकर मर जाने जैसी है। ऐसा भी कहा जाता है कि यह नीति अपना हित साधनेके लिए दूसरोंके द्वेष करनेकी नीति है। परन्तु ये धारणाएं स्वदेशीका सच्चा अर्थ न समझनेसे पैदा होती हैं। यह तो कोई भी नहीं कहता कि विशाल या उदार दृष्टि रखनेके कारण चोरको चोरी करनेसे और डाकूको लूटनेसे न रोका जाय। आजका

उद्योगशास्त्रियों कानूनके पंडितों और दूसरे निष्णातोंको रस आता होगा परन्तु सामान्य आदमीको उनकी एक भी बात समझमें नहीं आती। कुछ लोग अखबारोंमें इन प्रश्नोंकी चर्चा पढ़कर या विशेषज्ञों द्वारा प्रकट किये हुए मतोंको रटकर इन सब बातोंको समझनेका दावा या ढोंग कर सकते हैं परन्तु ऐसे प्रश्नोंके बारेमें निर्णय करनेकी सत्ता तो हर देशमें राज्यदंड धारण करनेवाले छोटेसे गुटके हाथमें ही होती है। और दो देशोंके आपसी सम्बन्धोंके बारेमें भी जो दल बलवान हो उसीकी बात चलती है। इसलिए अन्तमें सब बातोंको देखते हुए सारी दुनियाको टरा सकनेवाले बलवान देशोंके शासक-वर्ग पर ही सारा आधार रहता है। इसलिए मामूली आदमियोंको आम लोगोंको अपनी आजादीकी रक्षा करनी हो तो उन्हें अपनी दुनियाको छोटी बना लेना पड़ेगा। उन्हें अपने व्यवहारोंका दायरा इतना छोटा कर लेना पड़ेगा कि उन्हें वे समझ सकें और उन पर अपना अंकुश भी रख सकें। अपने जीवनकी बुनियादी चीजोंके लिए और जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी बातोंके लिए उन्हें दूर दूरके नहीं बल्कि नजदीकके लोगोंके साथ व्यवहार रखना पड़ेगा। तभी वे स्वतंत्रता भोग सकेंगे और तभी वे सच्चे प्रजातंत्रका अनुभव कर सकेंगे। १)

८ जीवनकी प्रतिदिनकी आवश्यक चीजोंके बाजार आज तो संसार व्यापी हो गये हैं। गांधीजीकी स्वदेशीकी योजनासे ये बाजार भी खतम हो जाते हैं क्योंकि गांधीजी आजके उत्पादनकी समूची पद्धतिको ही बदल डालना चाहते हैं। पूंजीवादी रचनामें व्यापारियों या सटोरियोंके लिए और समाजवादी रचनामें राज्यके अधिकारियोंकी सूचनाके अनुसार लोगोंके लिए उत्पादन होता है। इसके बजाय गांधीजीकी रचनामें उत्पादक लोग अधिकतर अपने ही लिए उत्पादन करते हैं। जिस व्यवस्थामें एक गांव या एकसी कुदरती स्थितिवाला एक प्रदेश आर्थिक व्यवहारका लगभग स्वावलम्बी घटक बन जाय हर कुटुम्बके पास उत्पादनके साधन उसके अपने हों हों चीजोंका उत्पादन नफेके लिए या दूरके बाजारोंमें बेचनेके लिए नहीं बल्कि हमारी अपनी और हमारे पड़ोसियोंकी पहलेसे सोची हुई आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए होना हो ऐसी व्यवस्थामें जरूरतसे ज्यादा उत्पादनका प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। उस गांव या प्रदेशके ज्यादातर कुटुम्ब अपने कामकी लगभग सभी चीजें स्वयं तैयार कर लें जो चीजें स्वयं न बना सकें और फिर भी जो जरूरी हों ऐसी चीजें भी जहां तक पड़ोसमें तैयार होती हों वहां तक बाहरसे लाकर उपयोग न करनेका स्वाभाविक धर्म पालन करें तो आज आयात निर्यातका जो व्यापार

अनावश्यक रूपमें बढ़ गया है और जिस व्यापारने दुनियाके देशोंके बीच लड़ाईका रूप धारण कर लिया है वह व्यापार अपने आप कम हो जायगा। फिर तो जो चीजें हमारे पड़ोसमें बन ही न सकती हों या बहुत अधिक श्रमसे और न करने योग्य श्रमसे ही बन सकती हों उन्हींका आयात होगा और हमारे प्रदेशमें बननेवाली चीजोंसे सारे पड़ोसकी जरूरतें पूरी होनेके बाद जो चीजें बचेंगी उन्हींका निर्यात होगा।

९ इस योजनामें मनुष्यको कुचल डालनेवाली राक्षसी मशीनें काममें नहीं ली जायगी इसलिए हो सकता है कि उत्पादनकी मात्रा कम हो जाये या आज साधारण मनुष्यको भी कारखानोंकी बनी हुई जो अनेक तरहकी चीजें उपयोगके लिए मिलती हैं वे न मिलें। आजके अर्थशास्त्री यह कह कर हमें समझाते हैं कि पहले बड़े बड़े अमीर-उमरावों और राजा महाराजाओंको भी जैसी चीजें उपयोगके लिए नहीं मिलती थीं एसी कितनी ही वस्तुएं आज सामान्य आदमीको भी उपयोगके लिए मिलती हैं इससे पता चलता है कि दुनियाने कितनी बड़ी आर्थिक प्रगति की है। वे यह भी कहते हैं कि आप अगर इस तरह ग्रामोद्योगवाली अर्थरचना करेंगे तो जीवनको असुविधाओंवाला ही बना रहने देंगे। लेकिन गांवोंमें थोड़ेसे आल्मिनियम टॉर्च लाइट काममें ले ली कुछ नौजवानोंने अगर रिस्ट वाच बांध ली या जेबमें फाउन्टेन पेन रख लिया अगर गांवके थोड़ेसे घरोंमें प्राइमस जलने लगा गांवमें वार-त्योहार पर पेट्रोमेक्स की रोशनी हो गई गांवके कुछ निठल्ले नौजवानोंने होटलमें बैठकर चायके प्याले पी लिये या सिगरेटें फूंक दीं या थोड़ेसे आल्मिनियम मोटर बसमें यात्रा कर ली तो इससे क्या लोगोंका दारिद्र्य मिट जाता है? क्या लोगोंको खानेके लिए भरपेट अन्न मिलने लगता है? क्या लोगोंको खानेके लिए अच्छी साग भाजी मिलती है? क्या लोगोंके पेटमें दूध घी अधिक जाता है? इसलिए हमें चुनाव करना है हानिकारक मौजशौक और पौष्टिक भोजनके बीच शोषण और सुरक्षाके बीच तथा पराधीनता और स्वाधीनताके बीच।

१० इस स्वदेशी धर्म या नीतिके विरुद्ध यह कहा जाता है कि यह नीति तो अपने चारों ओर दीवार खड़ी करके उसके बीच घर कर बैठ जाने जैसी है। एसा भी कहा जाता है कि यह नीति अपना हित साधनेके लिए दूसरोंसे द्वेष करनेकी नीति है। परन्तु ये दावाएं स्वदेशीका सच्चा अर्थ न समझनेसे ही पैदा होते हैं। यह तो कोई भी नहीं कहेगा कि विशाल या उदार दृष्टि रखनेके कारण घरकी चारों दीवारें और छतको ढूंढ़नेसे न रोका जाय। आपका

उद्योगशास्त्रियों कानूनके पंडितों और दूसरे निष्णातोंको रस आता होगा परन्तु सामान्य आदमीको उनकी एक भी बात समझमें नहीं आती। कुछ लोग अखबारोंमें इन प्रश्नोंकी चर्चा पढ़कर या विशेषज्ञों द्वारा प्रकट किये हुए मतोंको रटकर इन सब बातोंको समझनेका दावा या ढोंग कर सकते हैं परन्तु ऐसे प्रश्नोंके बारेमें निर्णय करनेकी सत्ता तो हर देशमें राज्यदंड धारण करनेवाले छोटेसे गुटके हाथमें ही होती है। और दो देशोंके आपसी सम्बन्धोंके बारेमें भी जो देश बलवान हो उसीकी बात चलती है। इसलिए अन्तमें सब बातोंको देखते हुए सारी दुनियाको डरा सकनेवाले बलवान देशके शासक-वर्ग पर ही सारा आधार रहता है। इसलिए मामूली आदमियोंको आम लोगोंको अपनी आजादीकी रक्षा करनी हो तो उन्हें अपनी दुनियाको छोटी बना लेना पड़ेगा। उन्हें अपने व्यवहारोंका दायरा इतना छोटा कर लेना पड़ेगा कि उन्हें वे समझ सकें और उन पर अपना अंकुश भी रख सकें। अपने जीवनकी बुनियादी चीजोंके लिए और जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी बातोंके लिए उन्हें दूर दूरके नहीं बल्कि नजदीकके लोगोंके साथ व्यवहार रखना पड़ेगा। तभी वे स्वतंत्रता भोग सकेंगे और तभी वे सच्चे प्रजातंत्रका अनुभव कर सकेंगे। ")

८ जीवनकी प्रतिदिनकी आवश्यक चीजोंके बाजार आज तो संसार व्यापी हो गये हैं। गांधीजीकी स्वदेशीकी योजनासे ये बाजार भी खतम हो जाते हैं क्योंकि गांधीजी आजके उत्पादनकी समूची पद्धतिको ही बदल डालना चाहते हैं। पूंजीवादी रचनामें व्यापारियों या सटोरियोंके लिए और समाजवादी रचनामें राज्यके अधिकारियोंकी सूचनाके अनुसार लोगोंके लिए उत्पादन होता है। इसके बजाय गांधीजीकी रचनामें उत्पादक लोग अधिकतर अपने ही लिए उत्पादन करते हैं। जिस व्यवस्थामें एक गांव या एकसी कुदरती स्थितिवाला एक प्रदेश आर्थिक व्यवहारका लगभग स्वावलम्बी घटक बन जाय हर कुटुम्बके पास उत्पादनके साधन उसके अपने ही हों चीजोंका उत्पादन नफेके लिए या दूरके बाजारोंमें बेचनेके लिए नहीं बल्कि हमारी अपनी और हमारे पड़ोसियोंकी महसूस की हुई आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए होता हो ऐसी व्यवस्थामें जरूरतसे ज्यादा उत्पादनका प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। उस गांव या प्रदेशके ज्यादातर कुटुम्ब अपने कामकी लगभग सभी चीजें स्वयं तैयार कर लें जो चीजें स्वयं न बना सकें और फिर भी जो जरूरी हों ऐसी चीजें भी जहां तक पड़ोसमें तैयार होती हों वहां तक बाहरसे लाकर उपयोग न करनेका स्वाभाविक धर्म पालन करें तो आज आयात निर्यातका जो व्यापार

अनावश्यक रूपमें बन गया है और जिस व्यापारने दुनियाके देशोंके बीच लडाईका रूप धारण कर लिया है वह व्यापार अपने आप कम हो जायगा। फिर तो जो चीजें हमारे पडोसमें बन ही न सकती हों या बहुत अधिक श्रमसे और न करने योग्य श्रमसे ही बन सकती हों उन्हींका आयात होगा और हमारे प्रदेशमें बननेवाली चीजोंसे सारे पडोसकी जरूरतें पूरी होनेके बाद जो चीजें बचेंगी उन्हींका निर्यात होगा।

९ इस योजनामें मनुष्यको कुचल डालनेवाली राक्षसी मशीनें काममें नहीं ली जायगी इसलिए हो सकता है कि उत्पादनकी मात्रा कम हो जाय या आज साधारण मनुष्यको भी कारखानोंकी बनी हुई जो अनेक तरहकी चीजें उपयोगके लिए मिलती हैं वे न मिलें। आजके अर्थशास्त्री यह कह कर हमें समझाते हैं कि पहले बडे बडे अमीर-उमरावों और राजा महाराजाओंको भी जो चीजें उपयोगके लिए नहीं मिलती थी ऐसी कितनी ही वस्तुएं आज सामान्य आदमीको भी उपयोगके लिए मिलती हैं इससे पता चलता है कि दुनियाने कितनी बडी आर्थिक प्रगति की है। वे यह भी कहते हैं कि आप अगर इस तरह ग्रामोद्योगवाली अर्थरचना करेंगे तो जीवनको असुविधाओंवाला ही बना रहने देंगे। लेकिन गांवोंमें थोडेसे आदमियोंने टॉर्च लाइट काममें ले ली कुछ नौजवानोंने अगर 'रिस्ट वॉच' बांध ली या जबमें 'फाउंटेन पेन' रख लिया अगर गांवके थोडेसे घरोंमें 'प्राइमस' जलने लगा गांवमें वारस्थानक पर 'पट्रोमेक्स' की रोशनी हो गई गांवके कुछ निठल्ले नौजवानोंने होटलमें बैठकर चायके प्याले पी लिये या सिगरेटें फूंक दी या थोडेसे आदमियोंने मोटर बसमें यात्रा कर ली तो इससे क्या लोगोंका दारिद्र्य मिट जाता है? क्या लोगोंको खानेके लिए भरपेट अन्न मिलने लगता है? क्या लोगोंको खानेके लिए अच्छी साग भाजी मिलती है? क्या लोगोंके पेटमें दूध घी अधिक जाता है? इसलिए हमें चुनाव करना है हानिकारक मौज-शौक और पौष्टिक भोजनके बीच शोषण और पुरुषार्थके बीच तथा पराधीनता और स्वाधीनताके बीच।

१० इस स्वदेशी धर्म या नीतिके विरुद्ध यह कहा जाता है कि यह नीति तो अपने चारों ओर दीवार खडी करके उसके बीच घुसकर भर जाने जैसी है। ऐसा भी कहा जाता है कि यह नीति अपना हित साधनेके लिए दूसरोंसे द्वेष करनेकी नीति है। परन्तु ये आक्षेप स्वदेशीका सच्चा अर्थ न समझनेके कारण पैदा होते हैं। यह तो कोई भी नहीं कहेगा कि किसानको उसके ऊपर दृष्टि रखकर कारण घासको घास करके और टाकूरा ढूंढकर न रखा जाय। आरक्षा

व्यापार चोरी और लूट नहीं तो और क्या है? हम स्वदेशी धर्मका पालन करके ग्रामोद्योगोंके सिद्धान्त पर अर्थ रचना करें तो हो सकता है कि देशी और परदेशी मिलवालोंका धंधा न चले। परन्तु इससे दुनियाका क्या नुकसान होगा? दुनियासे तो उतना शोषण और उतनी निरंकुशता ही कम होगी। जो लोग अनुचित रीतिसे धन कमाते या सत्ता भोगते हैं उनके उस धन और सत्ताका नाश हो जाय तो इसमें उनका और जगतका लाभ ही है। जिन पड़ोसियोंके बीच हम रात दिन जीवन बिताते हैं जिनके और हमारे बीच कई मामलोंमें आपसी सम्बन्ध हो गये हैं और होते रहते हैं उन्हींके साथ हमारा व्यवहार पहले होना चाहिये। इस तरहके व्यवहारकी उपेक्षा करके सारी दुनियाके साथ व्यवहारका नाता जोड़नेमें दंभ और ढोंग ही होगा। और स्वदेशीके द्वारा जिस व्यवहारको तोड़नेके लिए कहा जाता है वह तो शोषक और शोषितके बीचका अत्याचारी और गुलामके बीचका व्यवहार है, मजबूरीसे अथवा कुटिल प्रयोगों द्वारा बांधा गया व्यवहार है। स्वावलम्बी और समान बलवाले समाज यदि एक-दूसरेसे स्वेच्छापूर्वक शुद्ध सम्बन्ध बांधें तो इसे स्वदेशी धर्म मना नहीं करता। गांधीजी कहते हैं, "स्वदेशी धर्मको जाननेवाला अपने कुएमें डूब नहीं मरता। जो चीज हमारे देशमें न बनती हो या भारी कष्टसे ही बनती हो उसे परदेशसे द्वेष रखकर अपने ही देशमें बनाने लगें तो इसमें स्वदेशी धर्म नहीं है। स्वदेशी धर्मको पालनेवाला परदेशीसे कभी द्वेष कर ही नहीं सकता। संपूर्ण स्वदेशीमें किसीसे भी द्वेष नहीं होता। यह संकुचित धर्म नहीं है। यह प्रेममें अहिंसासे उत्पन्न हुआ सुन्दर धर्म है।" स्वदेशीके पालनमें जो आर्थिक सम्बन्ध छोड़ने पड़ते हैं वे तो ऐसे हैं जिनमें गन्दा स्वार्थ भरा है शोषण भरा है, दगाबाजी भरी है लूट भरी है और गुलामी भरी है। शुद्ध आर्थिक सम्बन्ध जितने जरूरी हों उतने चालू रहने चाहियें। और आर्थिक मामलोंके सिवा विद्या संस्कार आदिके दूसरे सब सम्बन्ध तो बने ही रहने चाहिये। अशुद्ध आर्थिक संबंध खतम हो जायंगे तो दूसरे शुद्ध सम्बन्धोंके लिए अधिक गुंजाइश रहेगी।

यन्त्रोंकी मर्यादा

११ गांधीजीकी ग्रामोद्योगकी हिमायत सुनकर ऐसा प्रश्न पूछा जाता है कि यन्त्रोंका जो इतना शोधे हुई है उनके कारण स्थान और कालके बंधन घट गये हैं। दुनिया मानो सिमट कर छोटी हो गई है और हमारी उत्पादन शक्ति कई गुना बढ़ गई है। क्या ये सब सुविधायें छोड़ दी जायं? गांधीजी यन्त्रोंका विरोध जरूर करते हैं परन्तु वे उनके एकान्तिक विरोधी नहीं हैं।

उन्होंने यंत्रका इसलिए कभी विरोध नहीं किया कि वह यंत्र है। वे यंत्रोंके अनुचित उपयोगका विरोध करते हैं। जहां यंत्रोंके उपयोगसे लाभ न हो वहां भी यंत्रको दाखिल करनेका विरोध करते हैं और उस स्थितिमें यंत्रका विरोध करते हैं, जब यंत्र मनुष्यका सेवक बननेके बदले मनुष्यको अपना गुलाम बनाता है और उसकी शक्तियोंके विकासको रोककर उन्हें कुंठित बना देता है। यंत्रोंके बारेमें गांधीजीका रुख उनके लेखोंसे हम कुछ उद्धरण देकर हम स्पष्ट करेंगे।

१२. मेरी आपत्ति यंत्रोंके विरुद्ध नहीं है, परन्तु यंत्रोंके मोहके विरुद्ध है। जिन यंत्रोंको श्रम बचानेवाले कहा जाता है उनके लिए आज लोगों पर मोह सवार हो गया है। एक तरफ श्रमकी बचत होती जाती है और दूसरी तरफ लाखों आदमी यंत्रोंके कारण बेकार होकर भूखसे तड़पते हुए सड़कों पर मारे मारे फिरते हैं। समय और श्रमकी बचत मैं जरूर चाहता हूं परन्तु यह किसी खास वर्गके लिए नहीं परन्तु सारी मानव-जातिके लिए होना चाहिये। मैं यह नहीं चाहता कि सम्पत्ति कुछ इने गिने लोगोंके हाथोंमें इकट्ठी हो जाय, बल्कि यह चाहता हूं कि सबके हाथोंमें इकट्ठी हो। आज तो यंत्र मुट्ठीभर आदमियोंको करोड़ों लोगोंकी पीठ पर सवार होनेमें मदद कर रहे हैं। आजकी इस व्यवस्थाके खिलाफ मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर लड़ रहा हूं।

१३. मैं इतना और कहना चाहता हूं कि विज्ञान और यंत्रोंको लोभका साधन न रहना चाहिये। ऐसा हो जाने पर मजदूरोंसे उनकी शक्तिसे बाहर काम नहीं लिया जायगा और यंत्र रुकावट न बनकर मददगार हो जायंगे। मेरा ध्येय सब यंत्रोंका नाश करना नहीं है, परन्तु उनकी मर्यादा बांध देना है।

१४. परन्तु यंत्रों पर समाजका अधिकार कर लिया जाय तो मजदूर वर्गका आर्थिक शोषण बन्द किया जा सकता है और यंत्रोंके दूसरे भी बहुतसे दुरुपयोग मिटाये जा सकते हैं। फिर भी यंत्रोंके सार्वजनिक उपयोगके खिलाफ तो गांधीजीका विरोध कायम ही रहता है। एक तो यंत्रोंका उपयोग खास कर बड़े पैमाने पर उत्पादनके लिए ही हो सकता है। और बड़े कारखानों पर समाजका अधिकार कितना ही बड़ी मात्रामें क्यों न स्थापित कर लिया जाय तो भी उनमें व्यवस्थापकों और विशेषज्ञोंकी सत्ता बनी ही रहती है। इस सत्ता पर मजदूर-वर्ग या आम लोगोंका अंकुश नहीं हो सकता। इसलिए मजदूर वर्गका आर्थिक शोषण होना भले दूर हो जाय परन्तु दूसरी सब स्वतन्त्रतायें तो उन्हें नहीं ही मिलतीं। दूसरी आपत्ति यह है कि ज्यों ज्यों यंत्रोंमें सुधार